ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।≈) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥≡) एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।≠) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥≠) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रिताबङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालय मनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (८८, ८९) अंक (७२, ७३)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४२ कार्त्तिक कृष्ण पक्ष

१—११—८५

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान आठवें वर्ष के कि जो ६६ । ६७ अङ्क से प्रारंभ हो कर ७६ । ७७ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के सात वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है ॥

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द को ५।/)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द को ६)

[ख] एक वेद के ६५ अङ्क तक २१॥=) और दोनों वेदों के ४३।/)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास को प्रथम तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा। इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे, एक अङ्क ।/) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करदें। जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायं गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित कर दिया करें। जिस में पुस्तक ठीक २ पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

अथ द्वितीयाष्टकारम्भः ॥

तत्र प्रथमोऽध्यायः ॥

—:०*०:—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ।

प्रवइत्यस्य पञ्चदशर्चस्य द्वाविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवान् ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । ५ । १४ । भुरिक् पङ्क्तिः । ४ निचृत्पङ्क्तिः । ३ । १५ स्वराट्पङ्क्तिः ६ । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ९ । १० । १३ विराट् त्रिष्टुप् ८ । १२ निचृत् त्रिष्टुप् ७ । ११ । त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तत्रादौ सभापतिकार्यमुपादिश्यते ॥

अब द्वितीय अष्टक के प्रथम अध्याय का आरम्भ है उस में एकसौ बाईशवें सूक्त के प्रथम मंत्र में सभापति के कार्य्य का उपदेश किया जाता है ॥

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् । दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥

प्र । वः । पान्तम् । रघुऽमन्यवः । अन्धः । यज्ञम् । रुद्राय । मीढुषे । भरध्वम् । दिवः । अस्तोषि । असुरस्य । वीरैः । इषुध्याऽइव । मरुतः । रोदस्योः ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्र) प्रकृष्टे (वः) युष्मान् (पान्तम्) रक्षन्तम् (रघुमन्यवः) लघुक्रोधाः । अत्र वर्णव्यत्ययेन लस्य रः (अन्धः) अन्नम् (यज्ञम्) सङ्गन्तव्यम् (रुद्राय) दुष्टानां रोदयित्रे (मीढुषे) सज्जनान् प्रति सुखसेचकाय (भरध्वम्) धरध्वम् (दिवः) विद्याप्रकाशान् (अस्तोषि) स्तौमि (असुरस्य) अविदुषः (वीरैः) (इषुध्येव) इषवो धीयन्ते यस्यां तयेव (मरुतः) वायवः (रोदस्योः) भूमिसूर्ययोः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे रघुमन्यवो रोदस्योर्मरुतइव इषुध्येव वीरैः सह वर्त्तमाना यूयं मीढुषे रुद्राय वः पान्तं यज्ञमन्धश्च दिवोऽसुरस्य सम्बन्धे वर्त्तमानान् यथा प्रभरध्वं तथाहमेतमस्तोषि ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तो० मनुष्यैर्यदा योग्यपुरुषैः सह प्रयत्यते तदा कठिनमपि कृत्यं सहजतया साद्धुं शक्यते ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (रघुमन्यवः) थोड़े क्रोध वाले मनुष्यो (रोदस्योः) भूमि और सूर्य्य मण्डल में जैसे (मरुतः) पवन विद्यमान वैसे (इषुध्येव) जिस में बाण धरे जाते उस धनुष से जैसे वैसे (वीरैः) वीरमनुष्यों के साथ वर्त्तमान तुम (मीढुषे) सज्जनों के प्रति सुखरूपी वृष्टि करने और (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने हारे सभाध्यक्षादि के लिये (वः) तुम लोगों की (पान्तम्) रक्षा करते हुए (यज्ञम्) सङ्गम करने योग्य उत्तम व्यवहार और (अन्धः) अन्न को

तथा (दिवः) विद्या प्रकाशों जो कि (असुरस्य) अविद्वान् के सम्बन्ध में वर्त्तमान उपदेश आदि उन को जैसे (प्र, भरध्वम्) धारण वा पुष्ट करो वैसे मैं इस तुम्हारे व्यवहार की (अस्तोषि) स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में पूर्णोपमा और वाचकलुप्तोपमा ये दोनों अलंकार हैं—जब मनुष्यों का योग्य पुरुषों के साथ अच्छा वर्त्ताव बनता है तब कठिन भी काम सहज से सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

अथ दम्पत्योर्व्यवहारमाह ॥

अब स्त्री पुरुषों के व्यवहार को अगले मंत्र में० ॥

पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने। स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥ २ ॥

पत्नीऽइव । पूर्वऽहूतिम् । ववृधध्यै । उषसानक्ता । पुरुधा । विदाने इति । स्तरीः । न । अत्कम् । विऽउतम् । वसाना । सूर्यस्य । श्रिया । सुऽदृशी । हिरण्यैः ॥ २ ॥

पदार्थः—(पत्नीव) यथा विदुषी स्त्री (पूर्वहूतिम्) पूर्वा हूतिराह्वानं यस्य तम् (ववृधध्यै) वर्धयितुम् । अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुस्तुजादित्वाद्दीर्घश्च (उषासानक्ता) रात्रिदिने (पुरुधा) ये पुरून् बहून् धरतस्ते (विदाने) विज्ञायमाने (स्तरीः) कला-यंत्रादिसंयोगेनास्तारिषत यास्ता नौकाः (न) इव (अत्कम्) कूपमिव (व्युतम्) विविधतयोतं विस्तृतं वस्त्रम् (वसाना) परिदधती

(सूर्यस्य) सवितुः (श्रिया) शोभया (सुदृशी) सुष्ठुदर्शनं यस्याः सा (हिरण्यैः) ज्योतिभिरिव ॥ २ ॥

अन्वयः—हे सति स्त्रि त्वं पत्नीव ववृधध्यै पूर्वहूतिं पतिं स्वीकृत्य पुरुधा विदाने उषासानक्तेव वर्त्तस्व सूर्यस्य हिरण्यैः श्रिया च सुदृशी अत्कमिव व्युतं वसाना सती स्तरीर्न सततं भव ॥२॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—पतिव्रता सन्तं पतिं प्रीणाति स्त्रीव्रतः पतिः स्त्रियं च तौ यथाऽहोरात्रः सम्बद्धो वर्त्तते तथा वर्त्तमानौ वस्त्रालङ्कारैः सुशोभितौ धर्म्ये व्यवहारे यथावत्प्रयतेताम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे सरल स्वभावयुक्त उत्तम स्त्री तू (पत्नीव) जैसे यज्ञादि कर्म में साथ रहने वाली विद्वान् की स्त्री (ववृधध्यै) वृद्धि करने को अर्थात् गृहस्थाश्रम आदि व्यवहारों के बढ़ाने को (पूर्वहूतिम्) जिस का पहिले बुलाना होता अर्थात् सब कामों से जिस की प्रथम सेवा करनी होती उस अपने पति को स्वीकार कर (पुरुधा) जो बहुत व्यवहार वा पदार्थों की धारणा करने हारे (विदाने) जाने जाते उन (उषासानक्ता) रात्रिदिन के समान वर्त्ते वैसी वर्त्ता कर तथा (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (हिरण्यैः) सुवर्ण सी खिलकती हुई ज्योतियों और (श्रिया) उत्तम शोभा से (सुदृशी) जिस तेरा अच्छा दर्शन वह (अत्कम्) कुएं के समान (व्युतम्) अनेक प्रकार बुने हुए विस्तारयुक्त वस्त्र को (वसाना) पहिनती हुई (स्तरीः) जैसे कलायंत्रादिकों के संयोग से ढांपी हुई नाव हों (न) वैसी निरन्तर हो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—पतिव्रता स्त्री विद्यमान अपने पति को प्रसन्न करती और स्त्रीव्रत अर्थात् नियम से अपनी स्त्री में रमने हारा पति जैसे दिनरात्रि संबन्ध से मिला हुआ वर्त्तमान है वैसे संबन्ध से वर्त्तमान कपड़े और गहने पहिने हुए सुशोभित धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् प्रयत्न करें॥२॥

अथ सद्गुणानाव्यवसायं व्यवहारं चाह ॥

अब अगले मंत्र में अच्छे गुणों के विचार और व्यवहार का उपदेश करते हैं ॥

ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् । शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३ ॥

ममत्तु । नः । परिऽज्मा । वसर्हा । ममत्तु । वातः । अपाम् । वृषण्ऽवान् । शिशीतम् । इन्द्रापर्वता । युवम् । नः । तत् । नः । विश्वे । वरिवस्यन्तु । देवाः ॥ ३ ॥

पदार्थः–(ममत्तु) हर्षयतु (नः) अस्मान् (परिज्मा) परितो जमत्यत्ति यः सोऽग्निः (वसर्हा) वसानां वासहेतूनामर्हकः। अत्र शकन्ध्वादिना पररूपम् (ममत्तु) (वातः) वायुः(अपाम्) जलानाम् (वृषण्वान्) वृष्टिहेतुः (शिशीतम्) तीक्ष्णबुद्धियुक्तान् कुरुतम् (इन्द्रापर्वता) सूर्य्यमेघाविव (युवम्) युवाम् (नः) अस्मान् (तत्) (नः) अस्मभ्यम् (विश्वे) सर्वे (वरिवस्यन्तु) परिचरन्तु (देवाः) विद्वांसः ॥ ३ ॥

अन्वयः—यथा वसर्हा परिज्मा नो ममत्त्वपां वृषण्वान् वातो नो ममत्तु। हे इन्द्रापर्वतेव वर्त्तमानावध्यापकोपदेशकौ युवं नश्शिशीतं विश्वे देवा नो वरिवस्यन्तु तथा तत् तान् सर्वान् सत्कृतान् वयं सततं कुर्य्याम ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमा०—ये मनुष्या यथाऽस्मान् प्रसादयेयुस्तथा वयमप्येतान् प्रीणयेम ॥ ३ ॥

पदार्थः—जैसे (वसर्हा) निवास कराने की योग्यता को प्राप्त होता और (परिज्मा) पाये हुए पदार्थों को सब ओर से खाता जलाता हुआ अग्नि (नः) हम लोगों को (ममत्तु) आनन्दित करावे वा (अपाम्) जलों की (वृषण्वान्) वर्षा कराने हारा (वातः) पवन हम लोगों को (ममत्तु) आनन्दयुक्त करावे । हे (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करने वालो (युवम्) तुम दोनों (नः) हम लोगों को (शिशीतम्) अति तीक्ष्ण बुद्धि से युक्त करो वा (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम लोगों के लिये (वरिवस्यन्तु) सेवन अर्थात् आश्रय करें वैसे (तत्) उन सब को सत्कार युक्त हम लोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य जैसे हम लोगों को प्रसन्न करें वैसे हम लोग भी उन मनुष्यों को प्रसन्न करें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै । प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४ ॥

उत । त्या । मे । यशसा । श्वेतनायै । व्यन्ता । पान्ता । औशिजः । हुवध्यै । प्र । वः । नपातम् । अपाम् । कृणुध्वम् । प्र । मातरा । रास्पिनस्य । आयोः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(उत) अपि (त्या) तौ (मे) मम (यशसा) सत्कीर्त्त्या (श्वेतनायै) प्रकाशाय (व्यन्ता) विविधबलोपेतौ (पान्ता) रक्षकौ (औशिजः) कामयमानपुत्रः (हुवध्यै) आदातुम्

(प्र) (वः) युष्माकम् (नपातम्) पातरहितम् (अपाम्) जलानाम् (कृणुध्वम्) कुरुध्वम् (प्र) (मातरा) मानकारकौ (रास्पिनस्य) आदातुमर्हस्य (आयोः) जीवनस्य ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्ता त्या हुवध्यै मातरा रास्पिनस्यायोर्वर्द्धनाय प्रवर्त्तेते यथापां नपातं यूयं प्रकृणुध्वं तथोतौशिजोऽहं व आयुः सततं प्रवर्द्धयेयम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमा०—हे मनुष्या यथा सुशिक्षयाऽस्माकमायुर्यूयं वर्द्धयत तथावयमपि युष्माकं जीवनमुन्नयेम ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (मे) मेरे (यशसा) उत्तम यश से (श्वेतनायै) प्रकाश के लिये (व्यन्ता) अनेक प्रकार के बल से युक्त (पान्ता) रक्षा करने वाले (त्या) वे पूर्वोक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारे (हुवध्यै) हम लोगों के ग्रहण करने को (मातरा) मान करने हारे (रास्पिनस्य) ग्रहण करने योग्य (आयोः) जीवन अर्थात् आयुर्दा के बढ़ाने को (प्र) प्रवृत्त होते हैं तथा जैसे तुम लोग (अपां) जलों के (नपातम्) विनाशरहित मार्ग को वा जलों के न गिरने को (प्र, कृणुध्वम्) सिद्ध करो वैसे (उत) निश्चय से (औशिजः) कामना करते हुए का सन्तान मैं (वः) तुम लोगों की आयुर्दा को निरन्तर बढ़ाऊं ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो हम जैसे सुन्दर शिक्षा से हम लोगों की आयुर्दा को तुम बढ़ाओ वैसे हम भी तुम्हारी आयुर्दा की उन्नति किया करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे । प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥

आ । वः । रुवण्युम् । औशिजः । हुवध्यै । घोषाऽइव । शंसम् । अर्जुनस्य । नंशे । प्र । वः । पूष्णे । दावने । आ । अच्छ । वोचेय । वसुऽतातिम् । अग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थः-(आ) (वः) युष्माकम् (रुवण्युम्) सुशब्दायमानम् (औशिजः) विद्याकामस्य पुत्रः (हुवध्यै) होतुमादातुम् (घोषेव) आप्तानां वागिव (शंसम्) प्रशस्तम् (अर्जुनस्य) रूपस्य अर्जुनमिति रूपना० निघं० ३ । ७ (नंशे) नाशनाय (प्र) (वः) (पूष्णे) पोषणाय (दावने) दात्रे (आ) (अच्छ) (वोचेय) (वसुतातिम्) धनमेव (अग्नेः) पावकात् ॥ ५ ॥

अन्वयः-हे विद्वांस औशिजोऽहं वो रुवण्युमाहुवध्यै अर्जुनस्य शंसं घोषेव दुःखं नंशे वः पूष्णे दावनेऽग्नेर्वसुतातिं प्राच्छा वोचेय॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलु०-यथा वैद्याः सर्वेभ्य आरोग्यं प्रदाय रोगान् सद्यो निवर्त्तयन्ति तथा सर्वे विद्यावन्तः सर्वान् सुखिनो विधाय सुप्रतिष्ठितान् कुर्वन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः-हे विद्वानो (औशिजः) विद्या की कामना करने वाले का पुत्र मैं (वः) तुम लोगों के (रुवण्युम्) अच्छे कहे हुए उत्तम उपदेश के (आ, हुवध्यै) ग्रहण करने के लिये (अर्जुनस्य) रूप के (शंसम्) प्रशंसित व्यवहार को वा (घोषेव) विद्वानों की वाणी के समान दुःख के (नंशे) नाश और (वः) तुम लोगों की (पूष्णे) पुष्टि करने तथा (दावने) दूसरों को देने के लिये (अग्नेः) अग्नि के सकाश से जो (वसुतातिम्) धन उस को ही (प्र, आ, अच्छा, वोचेय) उत्तमता से भलीभांति अच्छा कहूं ॥ ५ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं-जैसे वैद्य जन सब के लिये आरोग्य पन देके रोगों को जलदी दूर कराते वैसे सब विद्यावान् सब को सुखी कर अच्छी प्रतिष्ठा वाले करें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

श्रुतं मे मित्रावरुणाहवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् । श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥

श्रुतम् । मे । मित्रावरुणा । हवा । इमा । उत । श्रुतम् । सदने । विश्वतः । सीम् । श्रोतु । नः । श्रोतुऽरातिः । सुऽश्रोतुः । सुऽक्षेत्रा । सिन्धुः । अत्ऽभिः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(श्रुतम्) (मे) मम (मित्रावरुणा) सुहृद्वरौ (हवा) होतुमर्हाणि वचनानि (इमा) इमानि (उत) अपि (श्रुतम्) अत्र विकरणलुक् (सदने) सदसि सभायाम् (विश्वतः) सर्वतः (सीम्) सीमायाम् (श्रोतु) शृणोतु (नः) अस्माकम् (श्रोतुरातिः) श्रोतुः श्रवणं रातिर्दानं यस्य (सुश्रोतुः) सुष्ठुशृणोति यस्तस्य (सुक्षेत्रा) शोभनानि क्षेत्राणि (सिन्धुः) नदी (अद्भिः) जलैः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा सुश्रोतुर्म इमा हवा श्रुतमुतापि सदने विश्वतः सीं श्रुतमद्भिः सिन्धुः सुक्षेत्रेव श्रोतुरातिर्नोवचनानि श्रोतु॥६॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्वद्भिः सर्वेषां प्रश्नान् श्रुत्वा यथावत् समाधेयाः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन (सुश्रोतुः, मे) मुझ अच्छे सुनने वाले के (इमा) इन (हवा) देने लेने योग्य वचनों को (श्रुतम्) सुनो (उत) और (सदने) सभा वा (विश्वतः) सब ओर से (सीम्) मर्य्यादा में (श्रुतम्) सुनो अर्थात् वहां की चर्चा को समझो तथा (अद्भिः) जलों से जैसे (सिन्धुः) नदी (सुक्षेत्रा) उत्तम खेतों को प्राप्त हो वैसे (श्रोतुरातिः) जिस का सुनना दूसरे को देना है वह (नः) हम लोगों के वचनों को (श्रोतु) सुने ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वानों को चाहिये कि सब के प्रश्नों को सुन के यथावत् उन का समाधान करें ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे । श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥ ७ ॥

स्तुषे । सा । वाम् । वरुण । मित्र । रातिः । गवाम् । शता । पृक्षऽयामेषु । पज्रे । श्रुतऽरथे । प्रियऽरथे । दधानाः । सद्यः । पुष्टिम् । निऽरुन्धानासः । अग्मन् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(स्तुषे) स्तौति । अत्र व्यत्ययेन मध्यमः (सा) (वाम्) युवाम् (वरुण) गुणोत्कृष्ट (मित्र) सुहृत् (रातिः) या राति ददाति सा (गवाम्) वाणीनाम् (शता) शतानि (पृक्षयामेषु) पृच्छयन्ते ये ते पृक्षास्तेषामिमे यामास्तेषु । अत्र पृच्छधातो बाहुलकादौणादिकः क्सः प्रत्ययः (पज्रे) गमके (श्रुतरथे) श्रुते रमणीये रथे (प्रियरथे) कमनीये रथे (दधानाः)

धरन्तः (सद्यः) (पुष्टिम्) (निरुन्धानासः) निरोधं कुर्वाणाः (अग्मन्) गच्छेयुः ॥ ७ ॥

अन्वयः—यथा विद्वांसः पज्रे श्रुतरथे प्रियरथे सद्यः पुष्टिं दधाना दुःखं निरुन्धानासोऽग्मंस्तथा हे वरुण मित्र युवां पृक्षयामेषु गवां शता गच्छतम् या युवयो रातिः स्त्री सा वां युवां यथा स्तुषे तथाऽहमपि स्तौमि ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथेह विद्वांसः पुरुषार्थेनानेकान्यद्भुतानि यानानि रचयन्ति तथान्यैरपि रचनीयानि ॥ ७ ॥

पदार्थः—जैसे विद्वान् जन (पज्रे) पदार्थों के पहुंचा ने वाले (श्रुतरथे) सुने हुए रमण करने योग्य रथ वा (प्रियरथे) अतिमनोहर रथ में (सद्यः) शीघ्र (पुष्टिम्) पुष्टि को (दधानाः) धारण करने और दुःख को (निरुन्धानासः) रोकते हुए (अग्मन्) जावें वैसे हे (वरुण) गुणों से उत्तमता को प्राप्त और (मित्र) मित्र तुम (पृक्षयामेषु) जो पूंछे जाते उन के यम नियमों में (गवां, शता) सैकड़ों वचनों को प्राप्त होओ । और जो तुम्हारी (रातिः) दान देने वाली स्त्री है (सा) वह (वाम्) तुम दोनों की (स्तुषे) स्तुति करती है वैसे मैं भी स्तुति करूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे इस संसार में विद्वान् जन पुरुषार्थ से अनेकों अद्भुत यानों को बनाते हैं वैसे औरों को भी बनाने चाहिये ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः । जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८ ॥

अस्य । स्तुषे । महिऽमघस्य । राधः । सचा । सनेम । नहुषः । सुऽवीराः । जनः । यः । पज्रेभ्यः । वाजिनीऽवान् । अश्वऽवतः । रथिनः । मह्यम् । सूरिः ॥ ८ ॥

पदार्थः–(अस्य) (स्तुषे) (महिमघस्य) महन्मघं पूज्यं धनं यस्य तस्य (राधः) धनम् (सचा) समवायेन (सनेम) संभजेम (नहुषः) शुभाशुभकर्मबद्धो मनुष्यः । नहुषइति मनुष्य ना० निघं० २ । ३ (सुवीराः) उत्कृष्टशूरवीराः (जनः) (यः) (पज्रेभ्यः) गमकेभ्यो यानेभ्यः (वाजिनीवान्) प्रशस्तवेदाक्रिया-युक्तः (अश्वावतः)बह्वश्वयुक्तस्य । मंत्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ। अ० ६ । ३ । १३१ ।इत्यश्वशब्दस्य मतौ दीर्घः (रथिनः) प्रशस्तरथस्य (मह्यम्) (सूरिः) विद्वान् ॥ ८ ॥

अन्वयः–हे विद्वंस्त्वमस्याश्वावतो रथिनो महिमघस्य जनस्य राधः स्तुषे तस्य तत्सुवीरा वयं सचा सनेम यो नहुषो जनः पज्रेभ्यो वाजिनीवान् जायते स सूरिर्मह्यमेतां विद्यां ददातु ॥ ८ ॥

भावार्थः–यथा पुरुषार्थी समृद्धिमान् जायते तथा सर्वैर्भावि-तव्यम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् आप (अस्य) इस (अश्वावतः) बहुत घोडाओं से युक्त (रथिनः) प्रशंसित रथ और (महिमघस्य) प्रशंसा करने योग्य उत्तम धन वाले जन के (राधः) धन की (स्तुषे) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हो उन आप के उस काम को (सुवीराः) सुन्दर शूरवीर मनुष्यों वाले हमलोग (सचा) संबन्ध से (सनेम) अच्छे प्रकार सेवें (यः) जो (नहुषः) शुभ अशुभ कामों से बन्धा हुआ (जनः) मनुष्य (पज्रेभ्यः) एकस्थान को पहुंचाने हारे यानों से (वाजिनीवान्) प्रशंसित वेदोक्त क्रिया युक्त होता है वह (सूरिः) विद्वान् (मह्यम्) मेरे लिये इस वेदोक्त शिल्पविद्या को देवे ॥ ८ ॥

भावार्थः—जैसे पुरुषार्थी मनुष्य समृद्धिमान् होता है वैसे सब लोगों को होना चाहिये ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनो-
त्यक्ष्णयाध्रुक्। स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं
होत्राभिर्ऋतावा ॥ ९ ॥

जनः। यः। मित्रावरुणौ। अभिऽध्रुक्। अपः। न। वाम्। सुनोति। अक्ष्णयाऽध्रुक्। स्वयम्। सः। यक्ष्मम्। हृदये। नि। धत्ते। आप। यत्। ईम्। होत्राभिः। ऋतऽवा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(जनः) विद्वान् (यः) (मित्रावरुणौ) प्राणोदानाविव (अभिध्रुक्) अभितो द्रोहं कुर्वन् (अपः) प्राणान् (न) निषेधे (वाम्) युवयोः (सुनोति) निष्पन्नान् करोति (अक्ष्णयाध्रुक्) कुटिलया रीत्या द्रुह्यति सः (स्वयम्) (सः) (यक्ष्मम्) राजरोगम् (हृदये) (नि) (धत्ते) (आप) आप्नोति (यत्) यः (ईम्) सर्वतः (होत्राभिः) आदातुमर्हाभिःक्रियाभिः (ऋतावा) य ऋतेन सत्येन वनोति संभजति सः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे सत्योपदेशकयाजकौ यो जनो वामपो मित्रावरुणाविवाभिध्रुगक्ष्णयाध्रुक् सन्न सुनोति स स्वयं हृदये यक्ष्मं निधत्ते यदृतावा होत्राभिरीमाप स स्वयं हृदये सुखं निधत्ते ॥ ९ ॥

भावार्थः—यो मनुष्यः परोपकारकान् विदुषो द्रुह्यति स सदा दुःखी यश्च प्रीणाति स च सुखी जायते ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे सत्य उपदेश और यज्ञ कराने वालो (यः) जो (जनः) विद्वान् (वाम्) तुम दोनों के (अपः) प्राण अर्थात् बलों को (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदान जैसे वैसे (अभिध्रुक्) आगे से द्रोह करता वा (अक्षणयाध्रुक्) कुटिलरीति से द्रोह करता हुआ (न) नहीं (सुनोति) उत्पन्न करता (सः) वह (स्वयम्) आप (हृदये) अपने हृदय में (यक्ष्मम्) राजरोग को (नि, धत्ते) निरन्तर धारण करता वा (यत्) जो (ऋतावा) सत्य भाव से सेवन करने वाला (होत्राभिः) ग्रहण करने योग्य क्रियाओं से (ईम्) सब ओर से आप के व्यवहारों को प्राप्त होता है वह (आप) अपने हृदय में सुख को निरन्तर धारण करता है ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परोपकार करने वाले विद्वानों से द्रोह करता वह सदा दुःखी और जो प्रीति करता है वह सुखी होता है ॥ ९ ॥

अथ युद्धविषय उपदिश्यते ॥

अब युद्ध के विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्त्तश्रवाः। विसृष्टरातिर्याति बाढसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ १० ॥ २ ॥

सः। व्राधतः। नहुषः। दंऽसुजूतः। शर्धःऽतरः। नराम्। गूर्त्तऽश्रवाः। विसृष्टऽरातिः। याति। बाढऽसृत्वा। विश्वासु। पृत्ऽसु। सदम्। इत्। शूरः ॥ १० ॥ २ ॥

पदार्थः—(सः) (व्राधतः) विरोधिनः (नहुषः) मनुष्यः (दंसुजूतः) यो दंसुभिरुपक्षयितृभिर्वीरैर्जूतः प्रेरितः सः(शर्धस्तरः) अतिशयेन बलवान् (नराम्) नायकानां वीराणाम् (गूर्त्तश्रवाः) गूर्त्तेनोद्यमेन श्रवः श्रवणमन्नं वा यस्य सः (विसृष्टरातिः) विविधाः सृष्टा रातयो दानादीनि येन सः (याति) प्राप्नोति (वाढसृत्वा) यो वाढेन प्रशस्तेन बलेन सरति सः (विश्वासु) (पृत्सु) सेनासु (सदम्) शत्रुहिंसकसैन्यम् (इत्) एव (शूरः) शत्रूणां हिंसकः ॥ १० ॥

अन्वयः—यो दंसुजूतः शर्धस्तरो गूर्त्तश्रवा विसृष्टरातिर्बाढसृत्वा नहुषो नरां विश्वासु पृत्सु सदमिद् गृहीत्वा व्राधतो युद्धाय याति स विजयमाप्नोति ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यैः शत्रोरधिकां युद्धसामग्रीं कृत्वा सुसहायेन स शत्रुर्विजेतव्यः ॥ १० ॥

पदार्थः—जो (दंसुजूतः) विनाश करने हारे वीरों ने प्रेरणा किया (शर्धस्तरः) अत्यन्त बलवान् (गूर्त्तश्रवाः) जिस का उद्यम के साथ सुनना और अन्न आदि पदार्थ (विसृष्टरातिः) जिस ने अनेक प्रकार के दान आदि उत्तम२ काम सिद्ध किये (बाढसृत्वा) जो प्रशंसित बल से चल ने (शूरः) और शत्रुओं को मारने वाला (नहुषः) मनुष्य (नराम्) नायक वीरों की (विश्वासु) समस्त (पृत्सु) सेनाओं में (सदम्) शत्रुओं के मारने वाले वीर सेनाजन को (इत्) ही ग्रहण कर (व्राधतः) विरोध करने वालों को युद्ध के लिये (याति) प्राप्त होता है (सः) वह विजय को पाता है ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने शत्रु से अधिक युद्ध की सामग्री को इकट्ठी कर अच्छे पुरुषों के सहाय से उस शत्रु को जीतें ॥ १० ॥

पुनरुपदेशककृत्यमाह ॥

फिर उपदेश करने वाले का कर्त्तव्य अ० ॥

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः । नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥

अध । ग्मन्त । नहुषः । हवम् । सूरेः । श्रोत । राजानः । अमृतस्य । मन्द्राः । नभःऽजुवः । यत् । निरवस्य । राधः । प्रऽशस्तये । महिना । रथऽवते ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अध) आनन्तर्ये (ग्मन्त) प्राप्नुत । अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (नहुषः) विदुषो नरस्य (हवम्) उपदेशाख्यं शब्दम् (सूरेः) सर्वविद्याविदः (श्रोत) शृणुत । अत्र विकरणलुक् द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घश्च (राजानः) राजमानाः (अमृतस्य) अविनाशिनः (मन्द्राः) आह्लादयितारः (नभोजुवः) विमानादिना नभसि गच्छन्तः (यत्) (निरवस्य) निर्गतोऽवो रक्षणं यस्य (राधः) धनम् (प्रशस्तये) प्रशस्ताय (महिना) महत्त्वेन (रथवते) बहवो रथा विद्यन्ते यस्य तस्मै॥११॥

अन्वयः—हे मन्द्रा राजानो यूयममृतस्य सूरेर्नहुषो हवं श्रोत नभोजुवो यूयं यन्निरवस्य राधस्तद्ग्मन्ताध महिना प्रशस्तये रथवते राधो दत्त ॥ ११ ॥

भावार्थः—ये परमेश्वरस्य परमविदुषः स्वात्मनश्च सकाशादविरोधिनस्तदुपदेशांश्च गृह्णीयुस्ते प्राप्तविद्या महाशया जायन्ते॥११॥

पदार्थः—हे (मन्द्राः) आनन्द कराने वाले (राजानः) प्रकाशमान सज्जनो तुम (अमृतस्य) आत्मरूप से मरण धर्म रहित (सूरेः) समस्त विद्याओं को जानने वाले (नहुषः) विद्वान् जन के (हवम्) उपदेश को (श्रोत) सुनो (नभोजुवः) विमान आदि से आकाश में गमन करते हुए तुम (यत्) जो (निरवस्य) रक्षा हीन का (राधः) धन है उस को (ग्मन्त) प्राप्त होओ (अध) इस के अनन्तर (महिना) बड़प्पन से (प्रशस्तये) प्रशंसित (रथवते) बहुत रथ वाले को धन देओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो परमेश्वर, परम विद्वान् और अपने आत्मा के सकाश से विरोधी नहीं होते और उन के उपदेशों का ग्रहण करें वे विद्याओं को प्राप्त हुए महाशय होते हैं ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एतं शर्द्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे । द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥ १२ ॥

एतम् । शर्द्धम् । धाम । यस्य । सूरेः । इति । अवोचन् । दशऽतयस्य । नंशे । द्युम्नानि । येषु । वसुऽतातिः । ररन् । विश्वे । सन्वन्तु । प्रऽभृथेषु । वाजम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(एतम्) पूर्वोक्तं सर्वं वस्तुजातम् (शर्द्धम्) बलयुक्तम् (धाम) स्थानम् (यस्य) (सूरेः) विदुषः (इति) अनेन प्रकारेण (अवोचन्) वदेयुः (दशतयस्य) दशधा विधस्य (नंशे) अदर्शयेयम् (द्युम्नानि) यशांसि धनानि वा (येषु) (वसुतातिः) धनाद्यैश्वर्य्ययुक्तः (रारन्) दद्युः (विश्वे) सर्वे (सन्वन्तु) संभजन्तु (प्रभृथेषु) (वाजम्) ज्ञानमन्नं वा ॥१२॥

अन्वयः—वसुतातिरहं यथा विद्वांसो यस्य दशतयस्य सूरेः सकाशाद् यच्छर्द्दं धामावोचन् । ये विश्वे वाजं रारन् येषु प्रभृथेषु द्युम्नानि सन्वन्त्विति तदेतं सर्वं सेवित्वा दुःखानि नंशे ॥१२॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये विपश्चितो मनुष्याः पूर्णविद्याविदो ऽखिला विद्याः प्राप्यान्यानुपदिशन्ति ते यशस्विनो भवन्ति ॥१२॥

पदार्थः—(वसुतातिः) धन आदि ऐश्वर्य्य युक्त मैं जैसे विद्वान् जन (यस्य) जिस (दशतयस्य) दश प्रकार की विद्याओं से युक्त (सूरेः) विद्वान् के सकाश से जिस (शर्द्धम्) बलयुक्त (धाम) स्थान को (अवोचन्) कहें वा जो (विश्वे) सब विद्वान (वाजम्) ज्ञान वा अन्न को (रारन्) देवें (येषु) जिन (प्रभृथेषु) अच्छे धारण किये हुए पदार्थों में (द्युम्नानि) यश वा धनों का (सन्वन्तु) सेवन करें (इति) इस प्रकार उस ज्ञान और (एतम्) इन पूर्वोक्त सब पदार्थों का सेवन कर दुःखों को (नंशे) नाश करूं ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमा लंकार है—जो विद्वान मनुष्य पूर्ण विद्याओं को जानने हारे समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते हैं वे यशस्वी होते हैं ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

मन्दा॑महे॒ दश॑तयस्य धा॒सेर्द्वि॒र्यत्पंञ्च॒ बिभ्र॑तो॒ यन्त्यन्ना॑। किमि॒ष्टाश्व॑ इ॒ष्टर॑श्मिरे॒त ई॑शा॒नास॒स्तरु॑ष ऋञ्जते॒ नॄन् ॥ १३ ॥

मन्दा॑महे । दश॑ऽतयस्य । धा॒सेः । द्विः । यत् । पञ्च॑ । बिभ्र॑तः । यन्ति॑ । अन्ना॑ । किम् । इ॒ष्टऽअ॑श्वः । इ॒ष्टऽर॑श्मिः । ए॒ते । ई॒शा॒नासः॑ । तरु॑षः । ऋ॒ञ्ज॒ते॒ । नॄन् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(मन्दामहे) स्तुमः (दशतयस्य) दशविधस्य (धासेः) विद्यासुखधारकस्य विदुषः (द्विः) द्विवारम् (यत्) (पञ्च) अध्यापकोपदेशकाऽध्येत्र्युपदेश्यसामान्याः (बिभ्रतः) विद्यासुखेन सर्वान् पुष्यतः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (अन्ना) सुसंस्कृतान्यन्नानि (किम्) प्रश्ने (इष्टाश्वः) इष्टाः संगता अश्वा यस्य सः (इष्टरश्मिः) इष्टाः संयोजिता रश्मयो येन (एते) (ईशानासः) समर्थाः (तरुषः) अविद्यासंप्लवकान् (ऋञ्जते) (नॄन्) विद्यानायकान् ॥ १३ ॥

अन्वयः—यद्ये पञ्च दशतयस्य धासेर्विद्यामन्ना च द्विर्यन्ति यएत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते प्रसाध्नुवन्ति तान् बिभ्रतो नॄन् जनान् वयं मन्दामहे तच्छिक्षां प्राप्य जनइष्टाश्व इष्टरश्मिः किं न जायते ?॥१३॥

भावार्थः—ये सुशिक्षया सर्वान् विदुषः कुर्वन्तः साधनारिष्टसाधकान् समर्थान् विदुषो न सेवन्ते तइष्टं सुखमपि न लभन्ते ॥१३॥

पदार्थः—(यत्) जो (पञ्च) पढ़ाने उपदेश करने पढ़ने और उपदेश सुनने वाले तथा सामान्य मनुष्य (दशतयस्य) दश प्रकार के (धासेः) विद्या सुख का धारण करने वाले विद्वान् की विद्या को और (अन्ना) अच्छे संस्कार से सिद्ध किये हुए अन्नों को (द्विः) दोवार (यन्ति) प्राप्त होते हैं वा जो (एते) ये (ईशानासः) समर्थ (तरुषः) अविद्या अज्ञान में डुबाने वालों को (ऋञ्जते) प्रसिद्ध करते हैं उन (बिभ्रतः) विद्या सुख से सब की पुष्टि (नॄन्) और विद्याओं की प्राप्ति कराने हारे मनुष्यों की हम लोग (मन्दामहे) स्तुति करते हैं उन की शिक्षा को पाकर मनुष्य (इष्टाश्वः) जिस को घोड़े प्राप्त हुए वा (इष्टरश्मिः) जिस ने कला यंत्रादिकों की किरणें जोड़ी ऐसा (किम्) क्या नहीं होता है ? ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो अच्छी शिक्षा से सब को विद्वान् करते हुए साधनों से चाहे हुए को सिद्ध करने वाले समर्थ विद्वानों का सेवन नहीं करते वे अभीष्ट सुख को भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः । अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥

हिरण्यऽकर्णम् । मणिऽग्रीवम् । अर्णः । तत् । नः । विश्वे । वरिवस्यन्तु । देवाः । अर्यः । गिरः । सद्यः । आ । जग्मुषीः । आ । उस्राः । चाकन्तु । उभयेषु । अस्मे इति ॥ १४ ॥

पदार्थः—(हिरण्यकर्णम्) हिरण्यं कर्णे यस्य तम् (मणिग्रीवम्) मणयो ग्रीवायां यस्य तम् (अर्णः) सुसंस्कृतमुदकम् (तत्) (नः) अस्मभ्यम् (विश्वे) अखिलाः (वरिवस्यन्तु) सेवन्ताम् (देवाः) विद्वांसः (अर्य्यः) वैश्यः (गिरः) सर्वदेशभाषाः (सद्यः) तूर्णम् (आ) (जग्मुषीः) प्राप्तुं योग्याः (आ) (उस्राः) गावः (चाकन्तु) कामयन्तु (उभयेषु) स्वेष्वन्येषु च (अस्मे) अस्मासु ॥ १४ ॥

अन्वयः—ये विश्वे देवा नो जग्मुषीर्गिरस्सद्य आचकन्तूभयेष्वस्मे च यदर्णः कामयेरन् योऽर्यो जग्मुषीर्गिर उस्राश्च कामयते तं हिरण्यकर्णं मणिग्रीवं तदस्मांश्चावरिवस्यन्तु तानेतान् वयं प्रतिप्रापयेम ॥ १४ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो याश्च विदुष्यस्तनयान् दुहितरश्च सद्यो विदुषो विदुषीश्च कुर्वन्ति । ये वणिग्जनाः सकलदेशभाषा विज्ञाय देशदेशान्तराद्द्वीपद्वीपान्तराच्च धनमाहृत्य श्रीमन्तो भवन्ति ते सर्वैः सर्वथा सत्कर्त्तव्याः ॥ १४ ॥

पदार्थः—जो (विश्वे, देवाः) समस्त विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये (जग्मुषीः) प्राप्त होने योग्य (गिरः) वाणियों की (सद्यः) शीघ्र (आ, चाकन्तु) अच्छे प्रकार कामना करें वा (उभयेषु) अपने और दूसरों के निमित्त तथा (अस्मे) हम लोगों में जो (अर्णः) अच्छा बना हुआ जल है उस की कामना करें और जो (अर्यः) वैश्य प्राप्त होने योग्य सब देश भाषाओं और (उस्राः) गौओं की कामना करे उस (हिरण्यकर्णम्) कानों में कुण्डल और (मणिग्रीवम्) गले में मणियों को पहिने हुए वैश्य को (तत्) तथा उस उक्त व्यवहार और हम लोगों की (आ, वरिवस्यन्तु) अच्छे प्रकार सेवा करें उन सब की हम लोग प्रतिष्ठा करावें ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य वा विदुषी पण्डिता स्त्री लड़के लड़कियों को शीघ्र विद्वान् और विदुषी करते वा जो वणियें सब देशों की भाषाओं को जान के देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर से धन को लाय ऐश्वर्ययुक्त होते हैं वे सब को सब प्रकारों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ १४ ॥

अथ राजधर्मविषयमाह ॥

अब राजधर्म वि० ॥

च॒त्वारो॑ मा मश॒र्शार॑स्य॒ शिश्व॒स्त्रयो॒ राज्ञ॒ आय॑वसस्य जि॒ष्णोः । रथो॑ वां मित्रावरुणा दी॒र्घाप्साः॒ स्यूम॑गभस्तिः॒ सूरो॒ नाद्यौ॑त् ॥ १५ ॥ ३ ॥

च॒त्वार॑ः । मा॒ । म॒श॒र्शार॑स्य । शिश्व॑ः । त्रय॑ः राज्ञ॑ः । आय॑वसस्य । जि॒ष्णोः॥ रथ॑ः । वा॒म् । मि॒त्रा॒व॒रु॒णा॒ । दी॒र्घऽअ॑प्साः । स्यूम॑ऽगभस्तिः । सूर॑ः । न । अद्यौ॑त् ॥ १५ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(चत्वारः) वर्णा आश्रमाश्च (मा) माम् (मशर्शारस्य) यो मशान् दुष्टान् शब्दान् शृणाति हिनस्ति तस्य। अत्र पृषोदरादिना पूर्वपदस्य रुगागमः (शिश्वः) शासनीयाः (त्रयः) अध्यक्षप्रजाभृत्याः (राज्ञः) न्यायविनयाभ्यां राजमानस्य प्रकाशमानस्य (आयवसस्य) पूर्णसामग्रीकस्य (जिष्णोः) जयशीलस्य (रथः) यानम् (वाम्) युवयोः (मित्रावरुणा) सुहृद्वरौ (दीर्घाप्साः) दीर्घा बृहन्तोऽप्साः शुभगुणव्याप्तयो येषां ते (स्यूमगभस्तिः) समूहकिरणः (सूरः) सविता (न) इव (अयौत्) प्रकाशयति॥ १५॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा यो वां रथः स मा मां प्राप्नोतु यस्य मशर्शारस्यायवसस्य जिष्णो राज्ञः स्यूमगभस्तिः सूरो न रथोऽयौत् तथा यस्य दीर्घाप्साश्चत्वारस्त्रयश्च शिश्वः स्युः स राज्यं कर्तुमर्हेत्॥ १५॥

भावार्थः—अत्रोपमालं० यस्य राज्ञो राष्ट्रे विद्यासुशिक्षायुक्ता गुणकर्मस्वभावतो नियता धार्मिकाश्चत्वारो वर्णा आश्रमाश्च त्रयः सेनाप्रजान्यायाधीशाश्च सन्ति स सूर्य इव कीर्त्या सुशोभितो भवति॥ १५॥

अत्र राजप्रजामनुष्यधर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति द्वाविंशत्युत्तरं शततमं सूक्तं तृतीयो वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन जो (वाम्) तुम लोगों का (रथः) रथ है वह (मा) मुझ को प्राप्त होवे जिस (मशर्शारस्य) दुष्ट शब्दों का विनाश करते हुए (आयवसस्य) पूर्ण सामग्री युक्त (जिष्णोः) शत्रुओं को जीतने हारे (राज्ञः) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा का (स्यूमगभस्तिः) बहुत किरणों से युक्त (सूरः) सूर्य के (न) समान रथ (अयौत्) प्रकाश करना तथा जिस के (दीर्घाप्साः) जिन की अच्छे गुणों में

बहुत व्याप्ति वे (चत्वारः) ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र वर्ण और ब्रह्मचर्य गृहस्थ वान-प्रस्थ संन्यास ये चार आश्रम तथा (त्रयः) सेना आदि कामों के अधिपति, प्रजाजन तथा भृत्यजनये तीन (शिश्वः) शिखाने योग्य हों वह राज्य करने को योग्य हो॥ १५॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जिस राजा के राज्य में विद्या और अच्छी शिक्षा युक्त गुण कर्म स्वभाव से नियमयुक्त धर्मात्माजन चारों वर्ण और आश्रम तथा सेना, प्रजा और न्यायाधीश हैं वह सूर्य के तुल्य कीर्त्ति से अच्छी शोभा युक्त होता है ॥ १५ ॥

इस सूक्त में राजा प्रजा और साधारण मनुष्यों के धर्म के वर्णन से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछिले सूक्त के साथ एकता है यह जानना चाहिये॥

यह १२२ एकसौ बाईशवां सूक्त और तीसरा वर्ग पूरा हुआ ॥

पृथुरित्यस्य त्रयोदशर्चस्य त्रयोविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवानृषिः। उषा देवता। १ । ३ । ६ । ७ । ९ । १० । १३ विराट् त्रिष्टुप् २।४।८ । १२ । निचृत्त्रिष्टुप् ५ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

अथ दम्पत्योर्विषयमाह ॥

अब एकसौ तेईशवें १२३ सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में स्त्री पुरुष के विषय को कहते हैं ॥

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः। कृष्णादुदस्थादर्या३ विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥

पृथुः । रथः । दक्षिणायाः । अयोजि । आ । एनम् । देवासः । अमृतासः । अस्थुः । कृष्णात् । उत् । अस्थात् । अर्य्या । विऽहायाः । चिकित्सन्ती । मानुषाय । क्षयाय ॥१॥

पदार्थः—(पृथुः) विस्तीर्णः (रथः) वाहनम् (दाक्षिणायाः) दिशः (अयोजि) युज्यते (आ) (एनम्) (देवासः) दिव्यगुणाः (अमृतासः) मरणधर्मरहिताः (अस्थुः) तिष्ठन्तु (कृष्णात्) अन्धकारात् (उत्) (अस्थात्) ऊर्ध्वमुदेति (अर्या) वैश्य कन्या (विहायाः) महती (चिकित्सन्ती) चिकित्सां कुर्वती (मानुषाय) मनुष्याणामस्मै (क्षयाय) गृहाय ॥ १ ॥

अन्वयः-या मानुषाय क्षयाय चिकित्सन्ती विहाया अर्या उषाः कृष्णादुदस्थादिव विदुषाऽयोजि सा चैनं पतिं च युनक्ति ययोर्दक्षिणायाः पृथूरथश्चरति तावमृतासो देवास आऽस्थुः ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—या उषर्गुणा स्त्री चन्द्रगुणश्च पुमान् भवेत् तयोर्विवाहे जाते सततं सुखं भवति ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (मानुषाय) मनुष्यों के इस (क्षयाय) घर के लिये (चिकित्सन्ती) रोगों को दूर करती हुई (विहायाः) बड़ी प्रशंसित (अर्या) वैश्य की कन्या जैसे प्रातःकाल की वेला (कृष्णात्) अंधेरे से (उदस्थात्) ऊपर को उठती उदय करती है वैसे विद्वान् ने (अयोजि) संयुक्त किई अर्थात् अपने संग लिई और वह (एनम्) इस विद्वान् को पतिभाव से युक्त करती अपना पति मानती तथा जिन स्त्री पुरुषों का (दक्षिणायाः) दक्षिण दिशा से (पृथुः) विस्तार युक्त (रथः) रथ चलता है उन को (अमृतासः) विनाश रहित (देवासः) अच्छे २ गुण (आ,अस्थुः) उपस्थित होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो प्रातःसमय की वेला के गुण युक्त अर्थात् शीतल स्वभाव वाली स्त्री और चन्द्रमा के समान शीतल गुण वाला पुरुष हो उन का परस्पर विवाह हो तो निरन्तर सुख होता है ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री । उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥

पूर्वा । विश्वस्मात् । भुवनात् । अबोधि । जयन्ती । वाजम् । बृहती । सनुत्री । उच्चा । वि । अख्यत् । युवतिः । पुनःऽभूः । आ । उषाः । अगन् । प्रथमा । पूर्वऽहूतौ ॥ २ ॥

पदार्थः–(पूर्वा) (विश्वस्मात्) अखिलात् (भुवनात्) जगत्स्थात्पदार्थसमूहात् (अबोधि) बुध्यते (जयन्ती) जयशीला (वाजम्) विज्ञानम् (बृहती) महती (सनुत्री) विभाजिका (उच्चा) उच्चानि वस्तूनि) (वि) (अख्यत्) ख्यापयति । अत्रान्तर्गतएयर्थः (युवतिः) (पुनर्भूः) या विवाहितपतिमरणानन्तरं नियोगेन पुनःसन्तानोत्पादिका भवति सा (आ) (उषाः) (अगन्) गच्छति । अत्र लङि प्रथमैकवचने बहुलं छन्दसीति शपो लुक् संयोगत्वेन तल्लोपे मोनोधातोरिति मस्य नकारादेशः (प्रथमा) (पूर्वहूतौ) पूर्वैषां विद्यावृद्धानां हूतिराह्वानं यस्मिन् गृहाश्रमे तस्मिन् ॥ २ ॥

अन्वयः—या पूर्वहूतौ पुनर्भूर्वाजं जयन्ती बृहती सनुत्री प्रथमा युवतिर्यथोषा विश्वस्माद्भुवनात् पूर्वाऽबोधि। उच्चा व्यख्यत् तथा आगन्त्सा विवाहे योग्या भवति ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—सर्वाः कन्याः शतस्य चतुर्थांशं वयो विद्याभ्यासे व्यतीत्य पूर्णविद्या भूत्वा स्वसदृशं पतिमुदुह्य प्रभातवत्सुरूपा भवन्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—(पूर्वहूतौ) जिस में वृद्धजनों का बुलाना होता उस गृहस्थाश्रम में जो (पुनर्भूः) विवाहे हुए पति के मरजाने पीछे नियोग से फिर सन्तान उत्पन्न करने वाली होती वह (वाजम्) उत्तम ज्ञान को (जयन्ती) जीतती हुई (बृहती) बड़ी (सनुत्री) सब व्यवहारों को अलग २ करने और (प्रथमा) प्रथम (युवतिः) युवा अवस्था को प्राप्त होने वाली नवोढा स्त्री जैसे (उषाः) प्रातःकाल की वेला (विश्वस्मात्) समस्त (भुवनात्) जगत् के पदार्थों से (पूर्वा) प्रथम (अबोधि) जानी जाती और (उच्चा) ऊंची २ वस्तुओं की (वि, अख्यत्) अच्छे प्रकार प्रकट करती वैसे (आ, अगन्) आती है वह विवाह में योग्य होती है ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—सब कन्या पच्चीस वरस अपनी आयु को विद्या के अभ्यास करने में व्यतीत कर पूरी विद्या वाली हो कर अपने समान पति से विवाह कर प्रातःकाल की वेला के समान अच्छे रूप वाली हों॥२॥

पुनस्तामेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते । देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥

यत् । अद्य । भागम् । विऽभजासि । नृऽभ्यः । उषः । देवि । मर्त्यऽत्रा । सुऽजाते । देवः । नः । अत्र । सविता । दमूनाः । अनागसः । वोचति । सूर्याय ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यत्) यम् (अद्य) (भागम्) भजनीयम् (विभजासि) विभजेः (नृभ्यः) नायकेभ्यः (उषः) प्रभातवत् (देवि) सुलक्षणैः सुशोभिते (मर्त्यत्रा) मर्त्येषु मनुष्येषु (सुजाते) सत्कीर्त्या प्रकाशिते (देवः) देदीप्यमानः (नः) अस्मभ्यम् (अत्र) अस्मिन् गृहाश्रमे (सविता) सूर्यः (दमूनाः) सुहृद्वरः (अनागसः) अनपराधिनः (वोचति) उच्याः (सूर्याय) परमेश्वरविज्ञानाय ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे सुजाते देवि कन्ये त्वमद्य नृभ्य उषरिव यद्यं भागं विभजासि यश्चात्र दमूना मर्त्यत्रा सवितेव देवस्तव पतिः सूर्याय नोऽनागसो वोचति तौ युवां वयं सततं सत्कुर्याम ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदा द्वौ स्त्रीपुरुषौ विद्यावन्तौ धर्माचारिणौ विद्याप्रचारकौ सदा परस्परस्मिन् प्रसन्नौ भवेतां तदा गृहाश्रमेऽतीव सुखभाजिनौ स्याताम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (सुजाते) उत्तम कीर्त्ति से प्रकाशित और (देवि) अच्छे लक्षणों से शोभा को प्राप्त सुलक्षणी कन्या तूं (अद्य) आज (नृभ्यः) व्यवहारों की प्राप्ति कराने हारे मनुष्यों के लिये(उषः)प्रातःसमय की वेला के समान (यत्) जिस (भागम्) सेवने योग्य व्यवहार का (विभजासि) अच्छे प्रकार सेवन करती और जो (अत्र) इस गृहाश्रम में (दमूनाः) मित्रों में उत्तम (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (सविता) सूर्य के समान (देवः) प्रकाशमान तेरा

पति (सूर्याय) परमात्मा के विज्ञान के लिये (नः) हम लोगों को (अनागसः) विना अपराध के व्यवहारों को (वोचति) कहे उन तुम दोनों का सत्कार हमलोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—जब दो स्त्री पुरुष विद्यावान् धर्म का आचरण और विद्या का प्रचार करने हारे सब कभी परस्पर में प्रसन्न हों तब गृहाश्रम में अत्यन्त सुख का सेवन करने हारे होवें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना । सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥

गृहम्ऽगृहम् । अहना । याति । अच्छ । दिवेऽदिवे । अधि । नाम । दधाना । सिसासन्ती । द्योतना । शश्वत् । आ । अगात् । अग्रम्ऽअग्रम् । इत् । भजते । वसूनाम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(गृहंगृहम्) निकेतनं निकेतनम् (अहना) दिवसेन व्याप्त्या वा । अत्र वाच्छन्दसीत्यल्लोपो न (याति) (अच्छ) उत्तमरीत्या । अत्र निपातस्येति दीर्घः (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (अधि) उपरिभावे (नाम) संज्ञाम् (दधाना) धरन्ती (सिषासन्ती) दातुमिच्छन्ती (द्योतना) प्रकाशमाना (शश्वत्) निरन्तरम् (आ) (अगात्) प्राप्नोति (अग्रमग्रम्) पुरःपुरः (इत्) एव (भजते) सेवते (वसूनाम्) पृथिव्यादीनाम् ॥ ४ ॥

अन्वयः-या स्त्री यथोषा अहना गृहंगृहमच्छाधियाति दिवेदिवे नाम दधाना द्योतना सती वसूनामग्रमग्रं भजते शश्वदिदागात् तथा सिषासन्ती भवेत् सा गृहकार्य्यालंकारिणी स्यात् ॥ ४ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-यथा सूर्यदीप्तिः पदार्थानां पुरोभागं सेवते नियमेन प्रतिसमयं प्राप्नोति तथा स्त्रियापि भवितव्यम् ॥४॥

पदार्थः-जो स्त्री जैसे प्रातःकाल की वेला (अहना) दिन वा व्याप्ति से (गृहंगृहम्) घरघर को (अच्छाधियाति) उत्तम रीति के साथ अच्छी ऊपर से आती (दिवेदिवे) और प्रतिदिन (नाम) नाम (दधाना) धरती अर्थात् दिनदिन का नाम आदित्यवार सोमवार आदि धरती (द्योतना) प्रकाशमान (वसूनाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अग्रमग्रम्) प्रथम २ स्थान को (भजते) भजती और (शश्वत्) निरन्तर (इत्) ही (आ, अगात्) आती है वैसे (सिषासन्ती) उत्तम पदार्थ पति आदि को दिया चाहती हो वह घर के काम को सुशोभित करने हारी हो ॥ ४ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—जैसे सूर्य की कान्ति—घाम सब पदार्थों के अगले २ भाग को सेवन करती और नियम से प्रत्येक समय प्राप्त होती है वैसे स्त्री को भी होना चाहिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व । पश्चा स दध्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥ ५॥ ४ ॥

भगस्य । स्वसा । वरुणस्य । जामिः । उषः । सूनृते । प्रथमा । जरस्व । पश्चा । सः । दघ्याः । यः । अघस्य । धाता । जयेम । तम् । दक्षिणया । रथेन ॥ ५ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(भगस्य) ऐश्वर्य्यस्य (स्वसा) भगिनीव (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (जामिः) कन्येव (उषः) उषाः (सूनृते) सत्याचरणयुक्ते (प्रथमा) (जरस्व) स्तुहि (पश्चा) पश्चात् (सः) (दघ्याः) तिरस्कुरु (यः) (अघस्य) पापस्य (धाता) (जयेम) (तम्) (दक्षिणया) सुशिक्षितया सेनया (रथेन) विमानादियानेन ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे सूनृते त्वमुषरुषाइव भगस्य स्वसेव वरुणस्य जामिरिव प्रथमा सती विद्या जरस्व योऽघस्य धाता भवेत् तं दक्षिणया रथेन यथा वयं जयेम तथा त्वं दघ्याः । यो जनः पापी स्यात् स पश्चा तिरस्करणीयः ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—स्त्रीभिः स्वस्वगृह ऐश्वर्य्योन्नतिः श्रेष्ठा रीतिर्दुष्टताडनं च सततं कार्य्यम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (सूनृते) सत्य आचरण युक्त स्त्री तूं (उषः) प्रातःसमय की वेला के समान वा (भगस्य) ऐश्वर्य्य की (स्वसा) बहिन के समान वा (वरुणस्य) उत्तम पुरुष की (जामिः) कन्या के समान (प्रथमा) प्रख्याति प्रशंसा को प्राप्त हुई विद्याओं की (जरस्व) स्तुति कर (यः) जो (अघस्य) अपराध का (धाता) धारण करने वाला हो (तम्) उस को (दक्षिणया) अच्छी शिखाई हुई सेना और (रथेन) विमान आदि यान से जैसे हम लोग (जयेम) जीतें वैसे तूं (दघ्याः) उस का तिरस्कार कर जो मनुष्य पापी हो (सः) वह (पश्चा) पीछा करने अर्थात् तिरस्कार करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—स्त्रियों को चाहिये कि अपने २ घर में ऐश्वर्य की उन्नति श्रेष्ठरीति और दुष्टों का ताड़न निरन्तर किया करें ॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः । स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६ ॥

उत् । ईरताम् । सूनृताः । उत् । पुरम्ऽधीः । उत् । अग्नयः । शुशुचानासः । अस्थुः । स्पार्हा । वसूनि । तमसा । अपऽगूळ्हा । आविः । कृण्वन्ति । उषसः । विऽभातीः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(उत) उत्कृष्टतया (ईरताम्) प्रेरयन्तु (सूनृताः) सत्यभाषणादिक्रियाः (उत) (पुरन्धीः) याः पुरं श्रितां दधाति ताः (उत्) (अग्नयः) पावकाइव (शुशुचानासः) भृशं पवित्रकारकाः (अस्थुः) तिष्ठन्तु (स्पार्हा) स्पृहणीयानि (वसूनि) (तमसा) अन्धकारेण (अपगूढा) आच्छादितानि (आविः) प्राकट्ये (कृण्वन्ति) कुर्वन्ति (उषसः) प्रभाताः (विभातीः) विशिष्टप्रकाशान् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे सत्पुरुषा सूनताः सन्तो यूयं यथा पुरन्धीश्शुशुचानासोऽग्नयइव स्त्रिय उदीरताम् स्पार्हा वसूनि उदस्थुः । यथोषसस्तमसापगूढा द्रव्याणि विभातीश्चोदाविष्कृण्वन्ति तथा भवत॥६॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदा स्त्रियउषर्वद्वर्त्तमाना अविद्यामलिनतादि निष्कृत्य विद्यापवित्रतादि संप्रकाश्यैश्वर्यमुन्नयन्ति तदा ताः सततं सुखिन्यो भवन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे सत्पुरुषो (सूनृताः) सत्यभाषणादि क्रियावान् होते हुए तुम लोग जैसे (पुरन्धीः) शरीर के आश्रित क्रिया को धारण करती और (शुशुचानासः) निरन्तर पवित्र कराने वाले (अग्नयः) अग्नियों के समान चमकती दमकती हुई स्त्री लोग (उदीरताम्) उत्तमता से प्रेरणा देवें वा (स्पार्हा) चांहने योग्य (वसूनि) धन आदि पदार्थों को (उदस्थुः) उन्नति से प्राप्त हों वा जैसे (उषसः) प्रभातसमय (तमसा) अन्धकार से (अपगूढा) ढंपे हुए पदार्थों और (विभातीः) अच्छे प्रकाशों को (उदाविष्कृण्वन्ति) ऊपर से प्रकट करते हैं वैसे होओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जब स्त्रीजन प्रभातसमय की वेलाओं के समान वर्त्तमान अविद्या मैलापन आदि दोषों को निराले कर विद्या और पाकपन आदि गुणों को प्रकाश कर ऐश्वर्य की उन्नति करती हैं तब वे निरन्तर सुख युक्त होती हैं ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते । परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥ ७ ॥

अप । अन्यत् । एति । अभि । अन्यत् । एति । विषुरूपे इति विषुऽरूपे । अहनीइति । सम् । चरेतेइति । परिऽक्षितोः । तमः । अन्या । गुहा । अकः । अद्यौत् । उषाः । शोशुचता । रथेन ॥ ७ ॥

पदार्थः—(अप) (अन्यत्) (एति) प्राप्नोति (अभि) (अन्यत्) (एति) (विषुरूपे) व्याप्तस्वरूपे (अहनी) रात्रिदिने

(सम्) (चरेते) (परिक्षितोः) सर्वतो निवसतोः । अत्र तुमर्थे तोसुन् (तमः) रात्री (अन्या) भिन्नानि (गुहा) आच्छादिका (अकः) करोति (अद्यौत्) द्योतयति (उषाः) दिनम् (शोशुचता) अत्यन्तं प्रकाशमानेन (रथेन) रम्येण स्वरूपेण ॥७॥

अन्वयः—ये विषुरूपेऽहनी रात्रिदिने सह संचरेते तयोः परिक्षितोस्तमः प्रकाशयोर्मध्याद्गुहातमोऽन्याऽकः कृत्यानि करोति उषाः शोशुचता रथेनाद्यौत्।अन्यदपैति।अन्यदभ्येतीव दम्पती वर्तेताम्॥७॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—अस्मिन् जगति तमःप्रकाशरूपौ द्वौ पदार्थौ स्तः,याभ्यां सदा लोकार्द्धे दिनं रात्रिश्च वर्तेते। यद्दस्तु तमस्त्यजति तत् त्विषं गृह्णाति यावद्दीप्तिस्तमस्त्यजति तावत्तामिस्रादत्ते द्वौ पर्यायेण सदैव स्वव्याप्त्या प्राप्तं प्राप्तं द्रव्यमाच्छादयतः सहैव वर्तेते तयोर्यत्र२ संयोगस्तत्र२ संध्या यत्र२ वियोगस्तत्र२ रात्रिर्दिनं च यौ स्त्रीपुरुषावेवं संयुक्तौ वियुक्तौ च भूत्वा दुःखनिमित्तानि जहीतः सुखकारणानि चादत्तस्तौ सदानन्दितौ भवतः ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (विषुरूपे) संसार में व्याप्त (अहनी) रात्रि और दिन एक साथ (सं, चरेते) संचार करते अर्थात् आते जाते हैं उन में (परिक्षितोः) सब ओर से वसने हारे अन्धकार और उजेले के बीच से (गुहा) अन्धकार से संसार को ढांपने वाली (तमः) रात्री (अन्या) और कामों को (अकः) करती तथा (उषाः) सूर्य के प्रकाश से पदार्थों को तपाने वाला दिन (शोशुचता) अत्यन्त प्रकाश और (रथेन) रमण करने योग्य रूप से (अद्यौत्) उजेला कराता (अन्यत्) अपने से भिन्न प्रकाश को (अप, एति) दूर करता तथा (अन्यत्) अन्य प्रकाश को (अभ्येति) सब ओर से प्राप्त होना इस सब व्यवहार के समान स्त्री पुरुष अपना वर्त्ताव वर्त्तें ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—इस जगत् में अन्धेरा उजेला दो पदार्थ हैं जिन से सदैव पृथिवी आदि लोकों के आधे भाग में दिन और आधे में रात्रि रहती है जो वस्तु अन्धकार को छोड़ता वह उजेले का ग्रहण करता और जितना प्रकाश अन्धकार को छोड़ना उतना रात्रि लेती दोनों पारी से सदैव अपनी व्याप्ति के साथ पाये २ हुए पदार्थ को ढांपते और दोनों एक साथ वर्त्तमान हैं उन का जहां २ संयोग है वहां २ संध्या और जहां २ वियोग होना अर्थात् अलग होते वहां २ रात्रि और दिन होता जो स्त्री पुरुष ऐसे मिल और अलग हो कर दुःख के कारणों को छोड़ने और सुख के कारणों को ग्रहण करते वे सदैव आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम । अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥ ८ ॥

सऽदृशीः । अद्य । सऽदृशीः । इत् । ऊम् इति । श्वः । दीर्घम् । सचन्ते । वरुणस्य । धाम । अनवद्याः । त्रिंशतम् । योजनानि । एकाऽएका । क्रतुम् । परि । यन्ति । सद्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(सदृशीः) सदृश्यो रात्र्य उषसश्च (अद्य) अस्मिन् दिने (सदृशीः) (इत्) एव (उ) वितर्के (श्वः) आगामिदिने (दीर्घम्) महान्तं समयम् (सचन्ते) समवेता वर्त्तन्ते (वरुणस्य) वायोः (धाम) स्थानम् (अनवद्याः) आनन्दिताः (त्रिंशतम्)

(योजनानि) विंशत्यधिकशतं क्रोशान् (एकैका) (क्रतुम्) कर्म (परि) (यन्ति) (सद्यः) शीघ्रम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—या अद्य अनवद्या सदृशीरु श्वः सदृशीर्वरुणस्य दीर्घं धाम सचन्ते। एकैका त्रिंशतं योजनानि क्रतुं सद्यः परियन्ति तादृग्व्यर्थाः केनचिन्नो नेयाः ॥ ८ ॥

भावार्थः—यथेश्वरनियमनियतानां गतानां वर्त्तमानानामागामिनां च रात्रिदिनानामन्यथात्वं न जायते तथैव सर्वस्याः सृष्टेः क्रमविपर्यासो न भवति तथा ये मनुष्या आलस्यं विहाय सृष्टिक्रमानुकूलतया प्रयतन्ते ते प्रशंसितविद्यैश्वर्या जायन्ते यथैतद्रात्रिदिनं यथासमयं यात्यायाति च तथैव मनुष्यैर्व्यवहारेषु सदा वर्त्तितव्यम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—जो (अद्य) आज के दिन (अनवद्याः) प्रशंसित (सदृशीः) एकसी (उ) अथवा तो (श्वः) अगले दिन (सदृशीः) एकसी रात्रि और प्रभात वेला (वरुणस्य) पवन के (दीर्घम्) बड़े समय वा (धाम) स्थान को (सचन्ते) संयोग को प्राप्त होती और (एकैका) उन में से प्रत्येक (त्रिंशतम्, योजनानि) एकसौ वीश क्रोश और (क्रतुम्) कर्म को (सद्यः) शीघ्र (परि, यन्ति) पर्य्याय से प्राप्त होती हैं वे (इन्) हीं व्यर्थ किसी को न खोनीं चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर के नियम को प्राप्त जो हो गये, होते और होने वाले रात्रि दिन हैं उन का अन्यथापन नहीं होता वैसे ही इस सब संसार के क्रम का विपरीत भाव नहीं होता तथा जो मनुष्य आलस को छोड़ सृष्टिक्रम की अनुकूलता से अच्छा यत्न किया करते हैं वे प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्य्य वाले होते हैं और जैसे यह रात्रि दिन नियतसमय आता और जाता वैसे ही मनुष्यों को व्यवहारों में सदा अपना वर्त्ताव रखना चाहिये ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची । ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥

जानती । अह्नः । प्रथमस्य । नाम । शुक्रा । कृष्णात् । अजनिष्ट । श्वितीची । ऋतस्य । योषा । न । मिनाति । धाम । अहःऽअहः । निःऽकृतम् । आऽचरन्ती ॥ ९ ॥

पदार्थः—(जानती) ज्ञापयन्ती (अह्नः) दिनस्य (प्रथमस्य) विस्तीर्णस्यादिमावयवस्य वा (नाम) संज्ञाम् (शुक्रा) शुद्धिकरी (कृष्णात्) निकृष्टवर्णात् तमसः (अजनिष्ट) जायते (श्वितीची) या श्विर्तिं श्वेतवर्णमञ्चति सा (ऋतस्य) सत्यव्यवहारयुक्तजनस्य (योषा) भार्या (न) निषेधे (मिनाति) हिनस्ति (धाम) स्थानम् (अहरहः) (निष्कृतम्) निष्पन्नं निश्चितं वा (आचरन्ती) ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि यथा प्रथमस्याह्नो नाम जानती शुक्रा श्वितीच्युषाः कृष्णादजनिष्ट । ऋतस्य योषेवाऽहरहराचरन्ती सती निष्कृतं धाम न मिनाति तथा त्वं भव ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तो०—यथोषा अन्धकारादुत्पद्य दिनं प्रसाधयति दिनविरोधिनी न जायते तथा स्त्री सत्याचरणेन स्वमातापितृपतिकुलं सत्कीर्त्या प्रशस्तं कृत्वा श्वशुरं प्रति पतिं प्रत्यप्रियं किंचिन्नाचरेत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जैसे (प्रथमस्य) विस्तारित पहिले (अह्नः) दिन वा दिन के आदिम भाग का (नाम) नाम (जानती) जनाती हुई (शुक्रा) शुद्धि करने हारी (श्वितीची) सुपेदी को प्राप्त होती हुई प्रातःसमय की वेला (कृष्णात्) काले रंग वाले अंधेरे से (अजनिष्ट) प्रसिद्ध होती है वा (ऋतस्य) सत्यआचरण युक्त मनुष्य की (योषा) स्त्री के समान (अहरहः) दिन २ (आचरन्ती) आचरण करतीहुई (निष्कृतम्) उत्पन्न हुए वा निश्चय को प्राप्त (धाम) स्थान को (न) नहीं (मिनाति) नष्ट करती वैसी तूं हो॥ ९॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे प्रातःसमय की वेला अन्धकार से उत्पन्न हो कर दिन को प्रसिद्ध करती है दिन से विरोध करने हारी नहीं होती वैसे स्त्री सत्य आचरण से तथा अपने माता पिता और पति के कुल को उत्तम कीर्त्ति से प्रशस्त कर अपने श्वशुर और पति के प्रति उन के अप्रसन्न होने का व्यवहार कुछ न करे॥ ९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँएषि देवि देवमियक्षमाणम्। संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती॥ १०॥ ५॥

कन्याऽइव। तन्वा। शाशदाना। एषि। देवि। देवम्। इयक्षमाणम्। सम्ऽस्मयमाना। युवतिः। पुरस्तात्। आविः। वक्षांसि। कृणुषे। विऽभाती॥ १०॥ ५॥

पदार्थः—(कन्येव) कन्यावद्वर्त्तमाना (तन्वा) शरीरेण (शाशदाना) व्यवहारेष्वतितीक्ष्णतामाचरन्ती (एषि) प्राप्नोषि (देवि) कामयमाने (देवम्) विद्वांसम् (इयक्षमाणम्) अतिशयेन संगच्छमानम् (संस्मयमाना) सम्यङ् मन्दहासयुक्ता

(युवतिः) चतुर्विंशतिवार्षिकी (पुरस्तात्) प्रथमतः (आविः) प्रसिद्धौ (वक्षांसि) उरांसि (कृणुषे) (विभाती) विविधतया सद्गुणैः प्रकाशमाना ॥ १० ॥

अन्वयः—हे देवि या त्वं तन्वा कन्येव शाशदानेयक्षमाणं देवं पतिमेषि पुरस्तात् विभाती युवतिः संस्मयमाना वक्षांस्याविष्कृणुषे सोषरूपमा जायसे ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा विदुषी ब्रह्मचारिणी पूर्णां विद्याशिक्षां स्वसदृशं हृद्यं पतिं च प्राप्य सुखिनी भवति तथान्याभिरप्याचरणीयम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (देवि) कामना करने हारी कुमारी जो तूं (तन्वा) शरीर से (कन्येव) कन्या के समान वर्त्तमान (शाशदाना) व्यवहारों में अतितेजी दिखाती हुई (इयक्षमाणम्) अत्यन्त संग करते हुए (देवम्) विद्वान् पति को (एषि) प्राप्त होती (पुरस्तात्) और सन्मुख (विभाती) अनेक प्रकार सद् गुणों से प्रकाशमान (युवतिः) ज्वानी को प्राप्त हुई (संस्मयमाना) मन्द २ हंसती हुई (वक्षांसि) छाती आदि अंगों को (आविः,कृणुषे) प्रसिद्ध करती है सो तूं प्रभात वेला की उपमा को प्राप्त होती है ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री पूरी विद्या शिक्षा और अपने समान मनमाने पति को पा कर सुखी होती है वैसे ही और स्त्रियों को भी आचरण करना चाहिये ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् । भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥

सुसंकाशा । मातृमृष्टाऽइव । योषा । आविः । तन्वम् । कृणुषे । दृशे । कम् । भद्रा । त्वम् । उषः । विऽतरम् । वि । उच्छ । न । तत् । ते । अन्याः । उषसः । नशन्त ॥ ११ ॥

पदार्थः—(सुसंकाशा) सुष्ठुशिक्षया सम्यक् शासिता (मातृमृष्टेव) विदुष्या मात्रा सत्यशिक्षाप्रदानेन शोधितेव (योषा) प्राप्तयौवना (आविः)(तन्वम्)शरीरम् (कृणुषे) करोषि (दृशे) द्रष्टुम् (कम्) सुखस्वरूपम् (भद्रा) मंगलाचारिणी (त्वम्) (उषः) उषर्वद् वर्त्तमाने (वितरम्) सुखदातारम् (वि) विगतार्थे (उच्छ) विवासय (न) (तत्) (ते) तव (अन्याः) (उषसः) प्रभाताः (नशन्त) नश्यन्ति ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे कन्ये सुसंकाशा योषा मातृमृष्टेव या दृशे तन्वमाविष्कृणुषे भद्रा सती कं पतिं प्राप्नोषि सा त्वं वितरं सुखं व्युच्छ। हे उषो यथा अन्या उषसो न नशन्त तथा ते तत्सुखं मा नश्यतु ११

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथोषसो नियमेन स्वस्वं समयं देशं च प्राप्नुवन्ति तथा स्त्रियः स्वकीयं२ पतिं प्राप्यर्त्तुं प्राप्नुवन्तु॥ ११॥

पदार्थः—हे कन्या (सुसंकाशा) अच्छी शिखावट से शिखाई हुई (योषा) युवति (मातृमृष्टेव) पढ़ी हुई पंडिता माता ने सत्यशिक्षा दे कर शुद्ध किई सी जो (दृशे) देखने को (तन्वम्) अपने शरीर को (आविः) प्रगट (कृणुषे) करती (भद्रा) और मंगल रूप आचरण करती हुई (कम्) सुख स्वरूप पति को प्राप्त होती है सो (त्वम्) तूं (वितरम्) सुख देने वाले पदार्थ और सुख को (व्युच्छ) स्वीकार कर हे (उषः) प्रभात वेला के समान वर्त्तमान स्त्री जैसे (अन्याः) और (उषसः) प्रभातसमय (न) नहीं (नशन्त) विनाश को प्राप्त होते वैसे (ते) तेरा (तत्) उक्त सुख न विनाश को प्राप्त हो ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे प्रातःकाल की वेला नियम से अपने २ समय और देश को प्राप्त होती हैं वैसे स्त्री अपने २ पति को पा कर ऋतु धर्म को प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्वा॑वती॒र्गोम॑ती॒र्वि॒श्ववा॑रा॒ यत॑माना र॒श्मिभि॒ः सूर्य॑स्य । परा॑ च॒ यन्ति॒ पुन॒रा च॑ यन्ति भ॒द्रा नाम॒ वह॑माना उ॒षासः॑ ॥ १२ ॥

अश्व॑ऽवतीः । गोऽम॑तीः । वि॒श्वऽवा॑राः । यत॑मानाः । र॒श्मिऽभिः॑ । सूर्य॑स्य । परा॑ । च॒ । यन्ति॑ । पुन॑रिति॑ । आ । च॒ । यन्ति॒ । भ॒द्रा । नाम॑ । वह॑मानाः । उ॒षसः॑ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(अश्वावतीः) प्रशस्ता अश्वा व्याप्तयो विद्यन्ते यासां ताः । अत्र मतौ पूर्वपदस्य दीर्घः (गोमतीः) बहुपृथिवीकिरण-युक्ताः (विश्ववाराः) याः सर्वं जगद्वृण्वन्ति ताः (यतमानाः) प्रयत्नं कुर्वत्यः (रश्मिभिः) किरणैः सह (सूर्यस्य) सवितृलोकस्य (परा) (च) (यन्ति) इच्छन्ति (पुनः) (आ)(च) (यन्ति) (भद्रा) भद्राणि (नाम) नामानि (वहमानाः) प्राप्नुवत्यः (उषासः) प्रत्यूषसमयाः । अत्रान्येषामपीति दीर्घः॥१२॥

अन्वयः—हे स्त्रियो सूर्यस्य रश्मिभिस्सहोत्पन्ना यतमाना अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा भद्रा नाम वहमाना उषसः परा यन्ति च पुनरायन्ति च तथा यूयं वर्त्तध्वम् ॥१२॥

मूल्य प्राप्ति स्वीकार।

रा० रा० गनपत भास्कर कोटकर	पूना	१६)
गोपाल सिंह टीचर	कर्णवास	५)
राय बहादुर पं०सुन्दर लाल जी	अलीगढ़	२७॥)
बाबू नत्थूराम जी	अजमेर	२५)
बाबू प्यारी नाथ जी घोस	जसर	८)
क्यूरेटर गवर्नमेंट बुकडिपो	लाहौर	४८)
बाबू माधो राम जी ओझा	कानपुर	३)
बाबू कपूर सिंह जी सुपरवाईजर	बसीरपुर	२५)
बाबू सन्तराम जी	थानावसन्त	१०)
पं० रामधनी पांडे	दारजीलिंग	११॥/)
ठाकुर किशन लाल जी नागर	मथुरा	८)
सीता राम जी हकीम	छिड़ावली	४)
राय बहादुर दौलत राम जी	कालका	५३)
पं० लक्ष्मी नारायण जी	दरभंगा	३०)
मान्यवर रंगापामंगेश जी	मांजेश्वर (मद्रास)	५०)
पं० जुगल किशोर जी	बल्लभगढ़	५)
पं० हृदय नारायण जी	मांटगुमरी	७)
बाबू शीस चन्द्र बनरजी	काशी	२६)
सत्यधर्म्म प्रकाशिनी सभा	नयनीताल	८)
पं० रामदत्त जी	जलन्धर	२०)
बाबू गुलाबचन्दलाल जी	दारजीलिंग	१६)
		४०६/)

विज्ञापन।

सब सज्जनों को सूचना है कि जो यंत्रालय को पत्र वा पुस्तकादि भेजा करते हैं वे अब पीछे पूरा पता लिखकर जहां प्रयाग वा इलाहाबाद लिखते हैं वहां एक शब्द "सिटी" और लिख दिया करें जैसे प्रयाग सिटी वा इलाहाबाद सिटी इस से पत्र ठीक और शीघ्र हमारे पास आवेंगे अन्यथा पत्र मारे जाने का भी भय है।

निवेदन॥

सब समाजों के मंत्रियों तथा उन महाशयों से जिन से यंत्रालय के पुस्तकों का हिसाब है निवेदन है कि वर्त्तमान वर्ष समाप्त होना चाहता है इस लिए जिन २ की तर्फ जितना रुपया यंत्रालय का है वे अपना रुपया भेज कर हिसाब चुकता कर लें। तथा जिन का यंत्रालय में जमा हो वे उस के पुस्तक मंगा कर ता० २० नवम्बर स० ८५ तक हिसाब चुकता करलें।

समर्थदान

प्रबन्धकर्त्ता

यह पुस्तक मुन्शी समर्थदान प्रबन्धकर्त्ता के द्वारा "वैदिकयन्त्रालय" प्रयाग में छप कर प्रतिमास की पहिली तारीख को प्रकाशित होता है॥

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

—— ⁓०※०⁓ ——

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥≡) एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

——:——

इसग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।⁄) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥⁄) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तु: समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय मेनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (९०, ९१) अंक (७४, ७५)

अयं ग्रंथ: प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रित: ॥

संवत् १९४२ फाल्गुन कृष्ण पक्ष

१—२—८५

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा प्रभातवेलाः सूर्यस्य सन्नियोगेन नियताः सन्ति तथा विवाहिताः स्त्रीपुरुषाः परस्परं प्रेमास्पदाः स्युः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो जैसे (सूर्यस्य) सूर्य मण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ उत्पन्न (यतमानाः) उत्तम यत्न करती हुई (अश्वावतीः) जिन की प्रशंसित व्याप्तियां (गोमतीः) जो बहुत पृथिवी आदि लोक और किरणों से युक्त (विश्ववाराः) समस्त जगत् को अपने में लेती और (भद्रा) अच्छे (नाम) नामों को (वहमानाः) सब की बुद्धियों में पहुंचाती हुई (उपसः) प्रभातवेला नियम के साथ (परा, यन्ति) पीछे को जाती (च) और (पुनः) फिर (च) भी (आ, यन्ति) आती हैं वैसे नियम से तुम अपना वर्त्ताव वर्त्तो ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे प्रभात वेला सूर्य के संयोग से नियम को प्राप्त हैं वैसे विवाहित स्त्रीपुरुष परस्पर प्रेम के स्थिर करनेहारे हों॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि । उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

ऋतस्य । रश्मिम् । अनुऽयच्छमाना । भद्रम्ऽभद्रम् । क्रतुम् । अस्मासु । धेहि । उषः । नः । अद्य । सुऽहवा । वि । उच्छ । अस्मासु । रायः । मघवत्ऽसु । च । स्युरिति स्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(ऋतस्य) जलस्य (रश्मिम्) किरणम् (अनुयच्छमाना) अनुकूलतया प्राप्ता (भद्रंभद्रम्) कल्याणकल्याणकारकम् (क्रतुम्) प्रज्ञां कर्म वा (अस्मासु) (धेहि) (उषः) उषर्वद्वर्त्तमाने (नः) अस्मान् (अद्य) (सुहवा) सुष्ठुसुखप्रदा (वि) (उच्छ) (अस्मासु) (रायः) श्रियः (मघवत्सु) पूजितेषु धनेषु (च) (स्युः) ॥ १३ ॥

अन्वयः–हे उषर्वत्पत्नि त्वमद्य ऋतस्य रश्मिमुषाइव हृद्यं पतिमनुयच्छमानाऽस्मासु भद्रंभद्रं क्रतुं धेहि । सुहवा सती नोऽस्मान् व्युच्छ यतो मघवत्स्वस्मासु रायश्च स्युः ॥ १३ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–यथा सत्यः स्त्रियः स्वस्वपत्यादीन् यथावत् संसेव्य प्रज्ञाधर्मैश्वर्याणि नित्यं वर्द्धयन्ति तथोषसोऽपि वर्त्तन्ते ॥ १३ ॥

अत्रोषर्दृष्टान्तेन स्त्रीधर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इति त्रयोविंशत्युत्तरं शततमं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (उषः) प्रातःसमय की वेलासी अत्र वेली स्त्री तूं (अद्य) आज जैसे (ऋतस्य) जल की (रश्मिम्) किरण को प्रभातसमय की वेला स्वीकार करती वैसे मन से प्यारे पति को (अनुयच्छमाना) अनुकूलता से प्राप्तहुई (अस्मासु) हम लोगों में (भद्रंभद्रम्, क्रतुम्) अच्छी २ बुद्धि वा अच्छे२ काम को (धेहि) धर (सुहवा) और उत्तम सुख देने वाली होती हुई (नः) हम लोगों को (व्युच्छ) ठहरा जिस से (मघवत्सु) प्रशंसित धन वाले (अस्मासु) हम लोगों में (रायः) शोभा (च) भी (स्युः) हों ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे श्रेष्ठ स्त्री अपने २ पति आदि की यथावत् सेवा कर बुद्धि धर्म और ऐश्वर्य्य को नित्य बढ़ाती हैं वैसे प्रभात समय की वेला भी हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभातसमय की वेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के धर्म का वर्णन करने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछिले सूक्त में कहे अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह १२३ वां सूक्त और छठा ६ वर्ग पूरा हुआ ॥

अथ चतुर्विंशत्युत्तरशततमस्य त्रयोदशर्चस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः । उषा देवता॥१।३।६।९। १० निचृत् त्रिष्टुप् ४ । ७ । ११ त्रिष्टुप् १२ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः २ । १३ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिः । ८ । विराट् पङ्क्तिश्च छन्दः पञ्चमः स्वरः ॥

अथ सूर्यलोकविषयमाह ॥

अब तेरह ऋचा वाले एकसौ चौवीश वें १२४ सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में सूर्य लोक के विषय का वर्णन किया है ॥

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् । देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद्द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥

उषाः। उच्छन्ती। सम्ऽइधाने। अग्नौ। उत्ऽयन्। सूर्यः। उर्विया। ज्योतिः। अश्रेत्। देवः। नः। अत्र। सविता। नु। अर्थम्। प्र। असावीत्। द्विऽपत्। प्र। चतुःऽपत्। इत्यै॥ १॥

पदार्थः—(उषाः) (उच्छन्ती) अन्धकारं निस्सारयन्ती (समिधाने) प्रदीप्ते (अग्नौ) पावके (उद्यन्) उदयं प्राप्नुवन् (सूर्य्यः) सविता (उर्विया) पृथिव्या। उर्वीति पृथिवीना० निघं०। १। १ (ज्योतिः) प्रकाशः (अश्रेत्) श्रयति (देवः) दिव्यप्रकाशः (नः) अस्माकम् (अत्र) जगति (सविता) कर्म्मसु प्रेरकः (नु) शीघ्रम् (अर्थम्) प्रयोजनम् (प्र) (असावीत्) सुनोति (द्विपत्) द्वौ पादौ यस्य तत् (प्र) (चतुष्पत्) (इत्यै) प्रापयितुम्॥ १॥

अन्वयः—यदा समिधानेऽग्नौ सूर्य्य उद्यन्त्सन्नुर्विया सह ज्योतिरश्रेत्तदोच्छन्त्युषा जायते। एवमत्र सविता देवो नोऽर्थमित्यै प्रासावीत्, द्विपच्चतुष्पच्च नु प्रासावीत्॥ १॥

भावार्थः—पृथिव्याः सूर्य्यकिरणैः सह संयोगो जायते सएव तिर्य्यग्गतः सन्नुषसः कारणं भवति यदि सूर्य्यो न स्यात्तर्हि विविधरूपाणि द्रव्याणि पृथक् २ द्रष्टुमशक्यानि स्युः॥ १॥

पदार्थः—जब (समिधाने) जलते हुए (अग्नौ) अग्नि का निमित्त (सूर्यः) सूर्यमण्डल (उद्यन्) उदय होता हुआ (उर्विया) पृथिवी के साथ (ज्योतिः) प्रकाश को (अश्रेत्) मिलाता तब (उच्छन्ती) अन्धकार को निकालती हुई (उषाः) प्रातःकाल की वेला उत्पन्न होती है ऐसे (अत्र) इस संसार में (सविता)

कामों में प्रेरणा देने वाला (देवः) उत्तम प्रकाश युक्त उक्त सूर्यमण्डल (नः) हमलोगों को (अर्थम्) प्रयोजन को (इत्यै) प्राप्त कराने के लिये (प्रासावीत्) सारांश को उत्पन्न करता तथा(द्विपत्)दो पग वाले मनुष्य आदि वा(चतुष्पत्) चार पग वाले चौपाये पशुआदि प्राणियों को (नु) शीघ्र (प्र) उत्तमता से उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

भावार्थः—पृथिवी का सूर्य की किरणों के साथ संयोग होना है वही संयोग तिरछा जाता हुआ प्रभात समय के होने का कारण होता है जो सूर्य न हो तो अनेक प्रकार के पदार्थ अलग २ देखे नहीं जा सकते हैं ॥ १ ॥

अथोपदृष्टान्तेन स्त्रीविषयमाह ॥

अब उषा के दृष्टान्त से स्त्री के वि० ॥

अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि । ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

अमिनती । दैव्यानि । व्रतानि । प्रऽमिनती । मनुष्या । युगानि । ईयुषीणाम् । उपमा । शश्वतीनाम् । आयतीनाम् । प्रथमा । उषाः । वि । अद्यौत् ॥ २ ॥

पदार्थः—(अमिनती) अहिंसन्ती (दैव्यानि) दिव्यगुणानि (व्रतानि) वर्त्तमानानि सत्यानि वस्तूनि कर्माणि वा (प्रमिनती) प्रकृष्टतया हिंसन्ती (मनुष्या) मानुषसंबन्धीनि (युगानि) वर्षाणि (ईयुषीणाम्) अतीतानाम् (उपमा) दृष्टान्तः (शश्वतीनाम्) सनातनीनामुषसां प्रकृतीनां वा (आयतीनाम्) आगच्छन्तीनाम् (प्रथमा) (उषाः) (वि) (अद्यौत्) विविधतया प्रकाशयति ॥२॥

अन्वयः—हे स्त्रि यथोषा दैव्यानि व्रतान्यमिनती मनुष्या युगानि प्रमिनती शश्वतीनामीयुषीणामुपमाऽऽयतीनां च प्रथमा विश्वं व्यद्यौत्। जागृतैर्मनुष्यैर्युक्त्या सदा सेव्या तथा त्वं वर्त्तस्व ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथेयमुषाःसन्ततेन पृथिवीसूर्यसंयोगेन सह चरिता यावन्तं पूर्वं देशं जहाति तावन्तमुत्तरं देशमादत्ते वर्त्तमानाऽतीतानामुषसामुपमाऽऽगामिनीनामादिमा सती कार्य्यकारणयोर्ज्ञानं प्रज्ञापयन्ती सत्यधर्माचरणनिमित्तकालावयवत्वादायुर्व्ययन्ती वर्त्तते सा सेविता सती बुद्ध्यारोग्यादीन् शुभगुणान् प्रयच्छति तथा विदुष्यः स्त्रियः स्युः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे स्त्री जैसे (उषाः) प्रातःसमय की वेला (दैव्यानि) दिव्य गुण वाले (व्रतानि) सत्य पदार्थ वा सत्य कर्मों को (अमिनती) न छोड़ती और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (प्रमिनती) अच्छे प्रकार व्यतीत करती हुई (शश्वतीनाम्) सनातन प्रभातवेलाओं वा प्रकृतियों और (ईयुषीणाम्) हो गई प्रभातवेलाओं की (उपमा) उपमा दृष्टान्त और (आयतीनाम्) आने वाली प्रभातवेलाओं में (प्रथमा) पहिली संसार को (व्यद्यौत्) अनेक प्रकार से प्रकाशित कराती और जागते अर्थात् व्यवहारों को करते हुए मनुष्यों को युक्ति के साथ सदा सेवन करने योग्य है वैसे तू अपना वर्त्ताव रख ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे यह प्रातःसमय की वेला विस्तारयुक्त पृथिवी और सूर्य के साथ चलने हारी जितने पूर्व देश को छोड़ती उतने उत्तर देश को ग्रहण करती है तथा वर्त्तमान और व्यतीत हुई प्रातःसमय की वेलाओं की उपमा और आने वालियों की पहिली हुई कार्यरूप जगत् का और जगत् के कारण का अच्छे प्रकार ज्ञान कराती और सत्य धर्म के आचरण निमित्तक समय का अंग होने से उमर को घटाती हुई वर्त्तमान है वह सेवन किई बुद्धि और आरोग्य आदि अच्छे गुणों को देती है वैसी पंडिता स्त्री हों॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् । ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥

एषा । दिवः । दुहिता । प्रति । अदर्शि । ज्योतिः । वसाना । समना । पुरस्तात् । ऋतस्य । पन्थाम् । अनु । एति । साधु । प्रजानतीऽइव । न । दिशः । मिनाति ॥३॥

पदार्थः—(एषा) (दिवः) प्रकाशस्य (दुहिता) कन्येव (प्रति) (अदर्शि) दृश्यते (ज्योतिः) प्रकाशम् (वसाना) स्वीकुर्वती (समना) संग्रामे । अत्र सुपांसुलुगित्याकारादेशः (पुरस्तात्) प्रथमतः (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (पन्थाम्) मार्गम् (अनु) (एति) (साधु) सम्यक् यथा स्यात् तथा (प्रजानतीव) यथा विज्ञानवती विदुषी (न) निषेधे (दिशः) (मिनाति) त्यजति ॥ ३ ॥

अन्वयः—यथैवैषा ज्योतिर्वसाना समना दिवो दुहितेवास्माभिः पुरस्तात् प्रत्यदर्शि यथाऽऽप्तो वीर ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीवोषा दिशो न मिनाति तद्वद्वर्त्तमानाः स्त्रियो वराः स्युः॥३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सुनियमेन वर्त्तमाना सत्युषाः सर्वानाह्लादयति सोत्तमं स्वभावं न हिनस्ति तथा स्त्रियो गार्हस्थ्यधर्मे वर्त्तेरन् ॥ ३ ॥

पदार्थः—जैसे ही (एषा) यह प्रातःसमय की वेला (ज्योतिः) प्रकाश को (वसाना) ग्रहण करती हुई (समना) संग्राम में (दिवः) सूर्य के प्रकाश की (दुहिता) लड़िकीसी हम लोगों ने (पुरस्तात्) दिन के पहले (प्रत्यदर्शि) प्रतीति से देखी वा जैसे समस्त विद्या पढ़ा हुआ वीर जन(ऋतस्य) सत्य कारण के (पन्थाम्) मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से प्राप्त होता वा (साधु) अच्छे प्रकार जैसे हो वैसे (प्रजानतीव) विशेष ज्ञान वाली विदुषी पढ़ी हुई पंडिता स्त्री के समान प्रभात वेला (दिशः) दिशाओं को (न) नहीं (मिनाति) छोड़ती वैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तती हुई स्त्री उत्तम हों ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे अच्छे नियम से वर्त्तमान हुई प्रातः समय की वेला सब को आनन्दित कराती और वह उत्तम अपने भाव को नहीं नष्ट करती वैसे स्त्री लोग गिरस्ती के धर्म में वर्त्तें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधाइवाविरकृत प्रियाणि । अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥

उपोऽइति । अदर्शि । शुन्ध्युवः । न । वक्षः । नोधाःऽइव । आविः । अकृत । प्रियाणि । अद्मऽसत् । न । ससतः । बोधयन्ती । शश्वत्ऽतमा । आ । अगात् । पुनः । आऽईयुषीणाम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(उपो) सामीप्ये (अदर्शि) दृश्यते (शुन्ध्युवः) आदित्यकिरणाः । शुन्ध्युरादित्यो भवति निरु० १ । ४ (न) उपमायाम् (वक्षः) प्राप्तं वस्तु । वक्षइति पदनामसु० निघं०४। २

(नोधाइव) यो नौति सर्वाणि शास्त्राणि तद्वत्।नुवोधुट्चउणा० ४ । २२६ अनेन नुधातोरसिप्रत्ययो धुडागमश्च (आविः) प्राकट्ये (अकृत) करोति (प्रियाणि) वचनानि (अद्मसत्) योऽन्नानि सादयति परिपचति सः (न) इव (ससतः) स्वपतः प्राणिनः (बोधयन्ती) जागारयन्ती (शश्वत्तमा) यातिशयेन सनातनी (आ) (अगात्) प्राप्नोति (पुनः) (एयुषीणाम्) समन्तादतीतानामुषसाम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—यथोषा वक्षः शुन्ध्युवो न प्रियाणि नोधाइवाद्मसन्न ससतो बोधयन्त्येयुषीणां शश्वत्तमा सती पुनरागादाविरकृत च साऽस्माभिरूपो अदर्शि तथाभूताः स्त्रियो वरा भवन्ति ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकाराः—यास्त्र्युषर्वत्सूर्यवद्विद्वद्वच्चस्वापत्यानि सुशिक्षया विदुषः करोति सा सर्वैः सत्कर्त्तव्येति ॥ ४ ॥

पदार्थः—जैसे प्रभात वेला (वक्षः) पाये पदार्थ को (शुन्ध्युवः) सूर्य की किरणों के (न) समान वा (प्रियाणि) प्रिय वचनों की (नोधाइव) सब शास्त्रों की स्तुति प्रशंसा करने वाले विद्वान् के समान वा (अद्मसत्) भोजन के पदार्थों को पकाने वाले के (न) समान (ससतः) सोते हुए प्राणियों को (बोधयन्ती) निरन्तर जगाती हुई और (एयुषीणाम्) सब ओर से व्यतीत होगई प्रभात वेलाओं की (शश्वत्तमा) अतीव सनातन होती हुई (पुनः) फिर (आ, अगात्) आती और (आविरकृत) संसार को प्रकाशित करती. वह हम लोगों ने (उपो) समीप में (अदर्शि) देखी वैसी स्त्री उत्तम होती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार हैं—जो स्त्री प्रभात वेला वा सूर्य वा विद्वान् के समान अपने संतानों को उत्तम शिक्षा से विद्वान् करती है वह सब को सत्कार करने योग्य है ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पूर्वे अर्द्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् । व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥७॥

पूर्वे । अर्द्धे । रजसः । अप्त्यस्य । गवाम् । जनित्री । अकृत । प्र । केतुम् । वि । ऊम् इति । प्रथते । विऽतरम् । वरीयः । आ । उभा । पृणन्ती । पित्रोः । उपऽस्था ॥५॥७॥

पदार्थः—(पूर्वे) सन्मुखे वर्त्तमाने (अर्द्धे)(रजसः) लोकसमूहस्य (अप्त्यस्य) अप्तौ विस्तीर्णे संसारे भवस्य (गवाम्) किरणानाम् (जनित्री) उत्पादिका (अकृत) करोति (प्र) (केतुम्) किरणम् (वि) (उ) वितर्के (प्रथते) विस्तृणोति (वितरम्) विविधानि दुःखानि तरन्ति येन कर्मणा तत् (वरीयः) अतिशयेन वरम् (आ) (उभा) (पृणन्ती) सुखयन्ती (पित्रोः) जनकयोरिव भूमिसूर्ययोः (उपस्था) क्रोडे तिष्ठति सा ॥ ५ ॥

अन्वयः—यथोषा उभा लोकौ पृणन्ती पित्रोरुपस्थासती वितरं वरीयो व्युप्रथते गवां जनित्र्यप्त्यस्य रजसः पूर्वेऽर्द्धे केतुं प्राकृत तथा वर्त्तमाना भार्य्योत्तमा भवति ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—उषसउत्पन्नः सूर्यप्रकाशो भूगोलार्द्धे सर्वदा प्रकाशतेऽपरेऽर्द्धे रात्रिर्भवति तयोर्मध्ये सर्वदोषाविराजत एवं नैरन्तर्येण रात्र्युषर्दिनानि क्रमेण वर्त्तन्तेऽतः किमागतं यावान्

भूगोलप्रदेशः सूर्यस्य संनिधौ तावति दिनं यावानसंनिधौ तावति रात्रिः।सन्ध्योरुषाश्चैवं लोकभ्रमणद्वारैतान्यपि भ्रमन्तीव दृश्यन्ते ॥५॥

पदार्थः—जैसे प्रातःसमय की वेला कन्या के तुल्य (उभा) दोनों लोकों को (पृणन्ती) सुख से पूरती और (पित्रोः) अपने माता पिता के समान भूमि और सूर्यमण्डल की (उपस्था) गोद में ठहरी हुई (विनरम्) जिस से विविध प्रकार के दुःखों के पार होते हैं उस (वरीयः) अत्यन्त उत्तम काम को (वि, उ, प्रथते) विशेष करके तो विस्तारती तथा(गवाम्) सूर्य की किरणों को (जनित्री) उत्पन्न करने वाली (अप्त्यस्य) विस्तार युक्त संसार में हुए (रजसः) लोक समूह के (पूर्वे) प्रथम आगे वर्त्तमान (अर्द्धे) आधेभाग में (केतुम्) किरणों को (प्र, आ, अक्रत) प्रसिद्ध करती है वैसा वर्त्तमान करती हुई स्त्री उत्तम होती है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—प्रभात वेला से प्रसिद्ध हुआ सूर्य मण्डल का प्रकाश भूगोल के आधे भाग में सब कभी उजेला करता है और दूसरे आधे भाग में रात्रि होती है उन दिन रात्रि के बीच में प्रातःसमय की वेरा विराजमान है ऐसे निरन्तर रात्रि प्रभातवेला और दिन क्रम से वर्त्तमान हैं इस से क्या आया कि जितना पृथिवी का प्रदेश सूर्य मण्डल के आगे होता उतने में दिन और जितना पीछे होता जाता उतने में रात्रि होती तथा सायं और प्रातः काल की सन्धि में उषा होती है इसी उक्त प्रकार से लोकों के घूमने के द्वारा ये सायं प्रातःकाल भी घूमते से दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् । अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥

एव। इत्। एषा। पुरुऽतमा। दृशे। कम्। न। अजामिम्। न। परि। वृणक्ति। जामिम्। अरेपसा। तन्वा। शाशदाना। न। अर्भात्। ईषते। न। महः। विऽभाती॥६॥

पदार्थः—(एव) (इत्) अपि (एषा) (पुरुतमा) या बहून् पदार्थान् ताम्यति काङ्क्षति सा (दृशे) द्रष्टुम् (कम्) सुखम् (न) इव (अजामिम्) अभार्य्याम् (न) इव (परि) (वृणक्ति) त्यजति (जामिम्) भार्याम् (अरेपसा) अकंपितेन (तन्वा) शरीरेण (शाशदाना) अतीव सुन्दरी (न) निषेधे (अर्भात्) अल्पात् (ईषते) गच्छति (न) निषेधे (महः) महत् (विभाती) प्रकाशयन्ती॥६॥

अन्वयः—यथारेपसा तन्वा शाशदाना पुरुतमा स्त्री दृशे कं सुखं पतिं न न परिवृणक्ति पतिश्च जामिं न सुखं न परित्यजति। अजामिं च परित्यजति तथैवैषोपाऽर्भादिन्महो विभाती सती स्थूलं न परिजहाति किन्तु सर्वमीषते॥६॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा पतिव्रता स्त्री स्वं पतिं विहायान्यं न संगच्छते यथा च स्त्रीव्रतः पुमान् स्वस्त्रीभिन्नां स्त्रियं न समवैति विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ यथानियमं यथासमयं संगच्छेते तथैवोषा नियतं देशं समयं च विहायान्यत्र युक्ता न भवति॥६॥

पदार्थः—जैसे (अरेपसा) न कंपते हुए निर्भय (तन्वा) शरीर से (शाशदाना) अति सुन्दरी (पुरुतमा) बहुत पदार्थों को चाहने वाली स्त्री (दृशे) देखने के लिये (कम्) सुख को पति के (न) समान (परि, वृणक्ति) सब

ओर से (न) नहीं छोडती पति भी (जामिम्) अपनी स्त्री के (न) समान सुख को (न) नहीं छोड़ता और (अजामिम्) जो अपनी स्त्री नहीं उस को सब प्रकार से छोड़ता है वैसे (एव) ही (एषा) यह प्रातः समय की वेला (अर्भात्) थोड़े से (इत्) भी (महः) बहुत सूर्य के तेज का (विभाती) प्रकाश कराती हुई बड़े फैलते हुए सूर्य के प्रकाश को नहीं छोड़ती किन्तु समस्त को (ईषते) प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति को छोड़ और के पति का संग नहीं करती वा जैसे स्त्रीव्रत पुरुष अपनी स्त्री से भिन्न दूसरी स्त्री का सम्बन्ध नहीं करता और विवाह किये हुए स्त्रीपुरुष नियम और समय के अनुकूल संग करते हैं वैसे ही प्रातःसमय की वेला नियम युक्त देश और समय को छोड़ अन्यत्र युक्त नहीं होती ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्त्तारुगिव सनये धनानाम् । जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥

अभ्राताऽइव । पुंसः । एति । प्रतीची । गर्त्तऽआरुगिव । सनये । धनानाम् । जायाऽइव । पत्ये । उशती । सुऽवासाः । उषाः । हस्राऽइव । नि । रिणीते । अप्सः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(अभ्रातेव) यथाऽबन्धुस्तथा (पुंसः) पुरुषस्य (एति) प्राप्नोति (प्रतीची) प्रत्यंचतीति (गर्त्तारुगिव) गर्त्ते आरुगारोहणं गर्त्तारुक् तद्वत् (सनये) विभागाय (धनानाम्) द्रव्याणाम् (जायेव) स्त्रीव (पत्ये) स्वस्वामिने (उशती)कामयमाना

(सुवासाः) शोभनानि वासांसि यस्याः सा (उषाः) (हस्रेव) हसन्तीव (नि) (रिणीते) प्राप्नोति (अप्सः) रूपम् ।अप्सइति रूपना० निघं० ३ । ७ ॥ ७ ॥

अन्वयः—इयमुषाः प्रतीची सत्यभ्रातेव पुंसो धनानां सनये गर्त्तारुगिव सर्वानेति पत्य उशती सुवासा जायेव पदार्थान् सेवते हस्रेव अप्सो निरिणीते ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र चत्वार उपमालं०—यथा भ्रातृरहिता कन्या स्वप्रीतं पतिं स्वयं प्राप्नोति यथा न्यायाधीशो राजा राजपत्नीधनानां विभागाय न्यायाऽऽसनमाप्नोति । यथा प्रसन्नवदना स्त्री आनन्दितं पतिं प्राप्नोति सुरूपेण हावभावं च प्रकाशयति तथैवेयमुषा अस्तीति वेद्यम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—यह (उषाः) प्रातःसमय की वेला (प्रतीची) प्रत्येक स्थान को पंहुची हुई (अभ्रातेव) विन भाई की कन्या जैसे (पुंसः) पुरुष को प्राप्त हो उस के समान वा जैसे (गर्त्तारुगिव) दुःखरूपी गढ़े में पड़ा हुआ जन (धनानाम्) धन आदि पदार्थों के (सनये) विभाग करने के लिये राजगृह को प्राप्त हो वैसे सब ऊंचे नीचे पदार्थों को (एति) पंहुचती तथा (पत्ये) अपने पति के लिये (उशती) कामना करती हुई (सुवासाः) और सुन्दर वस्त्रों वाली (जायेव) विवाहिता स्त्री के समान पदार्थों का सेवन करती और (हस्रेव) हंसती हुई स्त्री के तुल्य (अप्सः) रूप को (नि, रिणीते) निरन्तर प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में चार उपमालं०—जैसे विना भाई की कन्या अपनी प्रीति से चांहे हुए पति को आप प्राप्त होती वा जैसे न्यायाधीश राजा राजपत्नी और धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिये न्यायासन अर्थात् राजगद्दी को प्राप्त होता वा

जैसे हसमुखी स्त्री आनन्द युक्त पति को प्राप्त होती और अच्छे रूप से अपने हावभाव को प्रकाशित करती वैसे ही यह प्रातःसमय की वेला है यह समझना चाहिये ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव। व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगाइव व्राः ॥ ८ ॥

स्वसा । स्वस्रे । ज्यायस्यै । योनिम् । अरैक् । अप । एति । अस्याः। प्रतिचक्ष्यऽइव। विऽउच्छन्ती । रश्मिऽभिः। सूर्यस्य । अञ्जि । अङ्क्ते । समनगाःऽइव । व्राः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(स्वसा) भगिनी (स्वस्रे) भगिन्यै (ज्यायस्यै) ज्येष्ठायै (योनिम्) गृहम् (अरैक्) अतिरिणक्ति (अप)(एति) दूरं गच्छति (अस्याः) भगिन्याः (प्रतिचक्ष्येव) प्रत्यक्षं दृष्ट्वेव (व्युच्छन्ती) तमो विवासयन्ती (रश्मिभिः) किरणैः सह (सूर्यस्य) सवितुः (अञ्जि) व्यक्तं रूपम् (अङ्क्ते) प्रकाशयति (समनगाइव) समनमवधारितं स्थानं गच्छन्तीव (व्राः) या वृणोति ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे कन्ये यथा व्युच्छन्ती व्रा उषाः सूर्यस्य रश्मिभिः सहाञ्जि समनगाइवाङ्क्ते यथा वा स्वसा ज्यायस्यै स्वस्रे योनिमारैगस्या वर्त्तमानं प्रतिचक्ष्येवापैति विवाहाय दूरं गच्छति तथा त्वं भव ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—कनिष्ठा भगिनी ज्येष्ठाया वर्त्त-मानं वृत्तं विज्ञाय स्वयंवराय दूरेऽपि स्थितं योग्यं पतिं गृह्णीयात् । यथा शान्ताः पतिव्रताः स्त्रियः स्वंस्वं पतिं सेवन्ते तथा स्वं पतिं सेवेत यथा च सूर्यः स्वकान्त्या कान्तिः सूर्येण च सह नित्यमानुकूल्येन वर्त्तेत तथैव स्त्रीपुरुषौ स्याताम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे कन्या जैसे (व्युच्छन्ती) अन्धकार का निवारण करती हुई (व्राः) पदार्थों को स्वीकार करने वाली प्रातःसमय की वेला (सूर्यस्य) सूर्य मण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ (अञ्जि) प्रसिद्ध रूप को (समनगाइव) निश्चय किये स्थान को जाने वाली स्त्री के समान (अङ्क्ते) प्रकाश करती है वा जैसे (स्वसा) वहिन (ज्यायस्यै) जेठी (स्वस्रे) वहिन के लिये (योनिम्) अपने स्थान को (अरैक्) छोड़ती अर्थात् उत्थान देती तथा (अस्याः) इस अपनी बहिन के वर्त्तमान हाल को (प्रतिचक्ष्येव) प्रत्यक्षदेखके जैसेवैसे विवाह के लिये (अपैति) दूर जाती है वैसी तू हो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—छोटी बहिन जेठी बहिन के वर्त्तमान हाल को जान आप स्वयंवर विवाह के लिये दूर भी ठहरे हुए अपने अनुकूल पति का ग्रहण करे जैसे शान्त पतिव्रता स्त्री अपने २ पति को सेवन करती हैं वैसे अपने पति का सेवन करे जैसे सूर्य अपनी कान्ति के साथ और कान्ति सूर्य के साथ नित्य अनुकूलता से वर्त्ते वैसे ही स्त्री पुरुषहों ॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आसां पूर्वासामहंसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् । ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥

आसाम् । पूर्वासाम् । अहऽसु । स्वसृणाम् । अपरा । पूर्वाम् । अभि । एति । पश्चात् । ताः । प्रत्नऽवत् । नव्यसीः । नूनम् । अस्मे इति । रेवत् । उच्छन्तु । सुऽदिनाः । उषसः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(आसाम्) (पूर्वासाम्) ज्येष्ठानाम् (अहसु) दिनेषु । अत्र वाच्छन्दसीति रोरभावे नलोपः (स्वसृणाम्) भगिनीनाम् (अपरा) (पूर्वाम्) (अभि) (एति) प्राप्नुयात् (पश्चात्) (ताः) (प्रत्नवत्) प्रत्नः प्राचीनो निधिर्विद्यते यस्मिन् (नव्यसीः) नवीयसीः (नूनम्) निश्चितम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (रेवत्) प्रशस्तपदार्थयुक्तं द्रव्यम् (उच्छन्तु) तमो विवासयन्तु (सुदिनाः) शोभनानि दिनानि याभ्यस्ताः (उषासः) उषसः प्रभाताः। अत्रान्येषामपीति दीर्घः ॥ ९॥

अन्वयः—यथासां पूर्वासां स्वसृणामपरा काचिद्भगिन्यहसु केषुचिदहःसु पूर्वां भगिनीमभ्येति पश्चात् स्वगृहं गच्छेत् तथा सुदिना उषासोऽस्मे नूनं प्रत्नवद्रेवन्नव्यसीः प्रकाशयन्तु ता उच्छन्तु च ॥९॥

भावार्थः—यथा बहवो भगिन्यो दूरे२ देशे विवाहिताः कदाचित्कयाचित्सह काचिन्मिलति स्वव्यवहारमाख्याति तथा पूर्वा उषसो वर्त्तमानया सह संयुज्य स्वव्यवहारं प्रकटयन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—जैसे (आसाम्) इन (पूर्वासाम्) प्रथम उत्पन्न जेठी (स्वसृणाम्) बहिनियों में (अपरा) अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन (अहसु) किन्हीं दिनों में अपनी (पूर्वाम्) जेठी बहिन के (अभ्येति) आगे जावे और (पश्चात्) पीछे अपने घर को चली जावे वैसे (सुदिनाः) जिन से अच्छे २ दिन होते वे (उषसः) प्रातःसमय की वेला (अस्मे) हम लोगों के लिये

(नूनम्) निश्चय युक्त (प्रत्नवत्) जिस में पुरानी धन की धरोहर है उस (रेक्णत्) प्रशंसित पदार्थ युक्त धन को (नव्यसीः) प्रति दिन अत्यन्त नवीन होती हुई प्रकाश करे (ताः) वे (उच्छन्तु) अन्धकार को निराला करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—जैसे बहुत बहिनें दूर २ देश में विवाही हुई होती उन में कभी किसी के साथ कोई मिलती और अपने व्यवहार को कहती है वैसे पिछिली प्रातः समय की वेला वर्त्तमान वेला के साथ संयुक्त होकर अपने व्यवहार को प्रसिद्ध करती हैं ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र बो॑धयोषः पृण॒तो म॑घो॒न्यबु॑ध्यमानाः प॒णयः॑ सस॒न्तु । रे॒वदु॑च्छ म॒घव॑द्भ्यो मघो॒नि रे॒वत् स्तो॒त्रे सू॑नृते जा॒रय॑न्ती ॥ १० ॥ ८ ॥

प्र । बो॒धय॒ । उ॒षः॒ । पृ॒ण॒तः । म॒घो॒नि॒ । अबु॑ध्यमानाः । प॒णयः॑ । स॒स॒न्तु॒ । रे॒वत् । उ॒च्छ॒ । म॒घव॑त्ऽभ्यः । म॒घो॒नि॒ । रे॒वत् । स्तो॒त्रे । सू॒नृ॒ते॒ । जा॒रय॑न्ती ॥ १० ॥ ८ ॥

पदार्थः—(प्र) (बोधय) (उषः) उषर्वद्वर्त्तमाने (पृणतः) पालयतः पुष्टान् प्राणिनः (मघोनि) पूजितधनयुक्ते (अबुध्यमानाः) (पणयः) व्यवहारयुक्ताः (ससन्तु) स्वपन्तु (रेवत्) प्रशस्तधनवत् (उच्छ) (मघवद्भ्यः) प्रशंसितधनेभ्यः (मघोनि) बहुधनकारिके (रेवत्) नित्यं संबद्धं धनम् (स्तोत्रे) स्तावकाय (सूनृते) सुष्ठुसत्यस्वभावे (जारयन्ती) वयो गमयन्ती॥१०॥

अन्वयः—हे मघोन्युषः स्त्रि त्वं येऽबुध्यमानाः पणयः उषस्समये दिने वा ससन्तु तान् पृणत उषर्वत् प्रबोधय। हे मघोनि सूनृते त्वमुषर्वज्जारयन्ती मघवद्भ्यो रेवत् स्तोत्रे रेवदुच्छ प्रापय॥१०॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—न केनचिद् रात्रेः पश्चिमे यामे दिने वा शयितव्यम् । कुतो निद्रादिनयोरधिकोष्णतायोगेन रोगाणां प्रादुर्भावात् कार्यावस्थयोर्हानेश्च । यथा पुरुषार्थयुक्त्या पुष्कलं धनं प्राप्नोति तथा सूर्योदयात् प्रागुत्थाय यत्नवान् दारिद्र्यं जहाति॥१०॥

पदार्थः—हे (मघोनि) उत्तम धनयुक्त (उषः) प्रभात वेला के तुल्य वर्त्तमान स्त्री तू जो (अबुध्यमानाः) अचेत नींद में डूबे हुए वा (पणयः) व्यवहारयुक्त प्राणी प्रभात समय वा दिन में (ससन्तु) सोवें उन की (पृणतः) पालना करने वाले पुष्ट प्राणियों को प्रातःसमय की वेला के प्रकाश के समान (प्र,बोधय) बोध करा । हे (मघोनि) अतीव धन इकट्ठा करने वाली (सूनृते) उत्तम सत्यस्वभावयुक्त युवति तू प्रभात वेला के समान (जारयन्ती) अवस्था व्यतीत कराती हुई (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धनवानों के लिये (रेवत्) उत्तम धनयुक्त व्यवहार जैसे हो वैसे (स्तोत्रे) स्तुति प्रशंसा करने वाले के लिये (रेवत्) स्थिर धन की (उच्छ) प्राप्ति करा ॥१०॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—किसी को रात्रि के पिछिले पहर में वा दिन में न सोना चाहिये क्योंकि नींद और दिन के घाम आदि की अधिक गरमी के योग से रोगों की उत्पत्ति होने से तथा काम और अवस्था की हानि से, जैसे पुरुषार्थ की युक्ति से बहुत धन को प्राप्त होता वैसे सूर्योदय से पहिले उठ कर बलवान् पुरुष दरिद्रता का त्याग करता है ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अवे॒यम॑श्वैद्यु॒व॒तिः पु॒रस्ता॑द्यु॒ङ्क्ते गवा॑मरु॒णा-
ना॒मनी॑कम्।वि नू॒नमु॑च्छादस॑ति॒ प्र के॒तुर्गृ॒हंगृ॑ह॒मु-
तिष्ठाते अ॒ग्निः ॥ ११ ॥

अव॑। इ॒यम्। अ॒श्वै॒त्। यु॒व॒तिः। पु॒रस्ता॑त्। यु॒ङ्क्ते। गवा॑म्। अ॒रु॒णाना॑म्। अनी॑कम्। वि। नू॒नम्। उ॒च्छा॒त्। अस॑ति। प्र। के॒तुः। गृ॒हम्ऽगृ॑हम्। उप॑। ति॒ष्ठा॒ते॒। अ॒ग्निः॥११॥

पदार्थः—(अव) (इयम्) (अश्वैत्) वर्द्धते (युवतिः) पूर्णचतुर्विंशतिवार्षिकी (पुरस्तात्) प्रथमतः (युङ्क्ते) समवैति (गवाम्) किरणानां गवादीनां पशूनां वा (अरुणानाम्) रक्तानाम् (अनीकम्) सैन्यमिव समूहम् (वि) (नूनम्) (उच्छात्) प्राप्नुयात् (असति) स्यात् (प्र) (केतुः) उद्गतशिखा प्रज्ञावती वा (गृहंगृहम्) (उप) (तिष्ठाते) तिष्ठेत (अग्निः) अरुणतरुणतापस्तीव्रप्रतापो वा ॥ ११ ॥

अन्वयः—यथेयमुषा अरुणानां गवामनीकं युङ्क्ते पुरस्तादवश्वैच्च तथा युवतिररुणानां गवामनीकं युङ्क्तेऽवश्वैत्ततः प्रकेतुरुषा असति नूनं व्युच्छात्। अग्निरस्याः प्रतापो गृहंगृहमुपतिष्ठाते युवतिश्च प्रकेतुरसति नूनं व्युच्छात्। अग्निरस्याः प्रतापो गृहंगृहमुपतिष्ठाते ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथोषर्दिने सदैव समवेते वर्त्तेते तथैव विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ वर्त्तेयातां यथानियतं सर्वान् पदार्थान् प्राप्नुयातां च तदानयोः प्रतापो वर्द्धते ॥११॥

पदार्थः—जैसे (इयम्) यह प्रभात वेला (अरुणानाम्) लाली लिये हुए (गवाम्) सूर्य की किरणों के (अनीकम्) सेना के समान समूह को (युङ्क्ते) जोड़ती और (पुरस्तादवश्वैत्) पहिले से बढ़ती है वैसे (युवतिः) पूरी चौबीश

वर्ष की ज्वान स्त्री लाल रंग के गौ आदि पशुओं के समूह को जोड़नी पीछे उन्नति को प्राप्त होती इस से (प्र, केतुः) उठी है शिखा जिस की वह बढ़ती हुई प्रभात वेला (असति) हो और (नूनम्) निश्चय से (व्युच्छात्) सब को प्राप्त हो (अग्निः) तथा सूर्यमण्डल का तरुण ताप—उत्कट घाम (गृहं-गृहम्) घर २(उप,तिष्ठाते) उपस्थित हो युवति भी उत्तम बुद्धि वाली होती निश्चय से सब पदार्थों को प्राप्त होती और इस का उत्कट प्रताप घर २ उपस्थित होना अर्थात् सब स्त्री पुरुष जानते और मानते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे प्रभातवेला और दिन सदैव मिले हुए वर्त्तमान हैं वैसे ही विवाहित स्त्री पुरुष मेल से अपना वर्त्ताव रक्खें और जिस नियम के जो पदार्थ हों उस नियम से उन को पावें तब इन का प्रताप बढ़ता है ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उत्ते वर्यश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ । अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥

उत् । ते । वयः । चित् । वसतेः । अपप्तन् । नरः । च । ये । पितुऽभाजः । विऽउष्टौ । अमा । सते । वहसि । भूरि । वामम् । उषः । देवि । दाशुषे । मर्त्याय ॥ १२ ॥

पदार्थः—(उत) (ते) तुभ्यम् (वयः) (चित्) अपि (वसतेः) निवासात् (अपप्तन्) पतन्ति (नरः) मनुष्याः (च) (ये) (पितुभाजः) अन्नस्य विभाजकाः (व्युष्टौ) विशिष्टे निवासे (अमा) समीपस्थगृहाय (सते) वर्त्तमानाय (वहसि) (भूरि) बहु (वामम्) प्रशस्यम् (उषः) उषर्वद्विद्याप्रकाश-युक्ते (देवि) दात्रि (दाशुषे) दात्रे (मर्त्याय) नराय पतये ॥१२॥

अन्वयः—हे नरो ये पितुभाजो यूयं चिद् यथा वयो वसतेरुदपप्तन् तथा व्युष्टावमा सते भवत।हे उषर्वद्देवि स्त्रि यात्वं च दाशुषे मर्त्यायामा सते भूरि वामं वहसि तस्यै ते तुभ्यमेतत्पतिरपि वहतु॥१२॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा पक्षिण उपर्य्यधो गच्छन्ति तथोषा रात्रिदिनयोरुपर्य्यधो गच्छति यथा स्त्री पत्युः प्रियाचरणं कुर्य्यात्तथैव पतिरपि करोतु॥१२॥

पदार्थः—हे (नरः) मनुष्यो (ये) जो (पितुभाजः) अन्न का विभाग करने वाले तुम लोग (चित्) भी जैसे (वयः) अवस्था को (वसतेः) वसीति से (उत्, अपप्तन्) उत्तमता के साथ प्राप्त होते वैसे ही (व्युष्टौ) विशेष निवास में (अमा) समीप के घर वा (सते) वर्त्तमान व्यवहार के लिये होओ और हे (उषः) प्रातःसमय के प्रकाश के समान विद्या प्रकाश युक्त (देवि) उत्तम व्यवहार की देने वाली स्त्री जो तूं (च) भी (दाशुषे) देने वाले (मर्त्याय) अपने पति के लिये तथा समीप के घर और वर्त्तमान व्यवहार के लिये (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसनीय व्यवहार की (वहसि) प्राप्ति करती उस (ते) तेरे लिये उक्त व्यवहार की प्राप्ति तेरा पति भी करे॥१२॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे पखेरू ऊपर और नीचे जाते हैं वैसे प्रातःसमय की वेला रात्रि और दिन के ऊपर और नीचे जाती है तथा जैसे स्त्री पति के प्रियाचरण को करे वैसे ही पति भी स्त्री के प्यारे आचरण को करे॥१२॥

पुनः कीदृश्यः स्त्रियो वरा भवेयुरित्याह॥

फिर कैसी स्त्री श्रेष्ठ हों इस वि०॥

अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः। युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम्॥१३॥९॥

**अस्तोढ्वम् । स्तोम्याः । ब्रह्मणा । मे । अवीवृधध्वम् ।
उशतीः । उषसः । युष्माकम् । देवीः । अवसा । सनेम ।
सहस्रिणम् । च । शतिनम् । च । वाजम् ॥ १३ ॥ ९ ॥**

पदार्थः—(अस्तोढ्वम्) स्तुवत (स्तोम्याः) स्तोतुमर्हाः (ब्रह्मणा) वेदेन (मे) मह्यम् (अवीवृधध्वम्) वर्द्धयत (उशतीः) कामयमानाः (उषासः) प्रभाताः । अत्रान्येषामपीत्युपधादीर्घः (युष्माकम्) (देवीः) दिव्यविद्यायुक्ताः(अवसा) रक्षणाद्येन (सनेम) अन्येभ्यो दद्याम (सहस्रिणम्) सहस्रमसंख्याता गुणा विद्यन्ते यस्मिंस्तम् (च) (शतिनम्) शतशो विद्यायुक्तम् (च) (वाजम्) विज्ञानमयं बोधम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे उषास उषोभिस्तुल्या स्तोम्या देवीर्विदुष्यो ब्रह्मणा उशतीर्यूयं मे विद्या अस्तोढ्वमवीवृधध्वम् । युष्माकमवसा सहस्रिणं च शतिनं च वाजं सांगसरहस्यवेदादिशास्त्रबोधं सनेम॥१३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथोषसः शुभगुणकर्मस्वभावाः सन्ति तद्वत् स्त्रियो भवेयुस्तथाऽत्युत्तमा मनुष्या भवेयुः । यथान्यस्माद्विदुषः स्वप्रयोजनाय विद्या गृह्णीयुस्तथैव प्रीत्यान्येभ्योऽपिदद्युः॥१३॥

अत्रोषसो दृष्टान्तेन स्त्रीणां गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य
पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥

इति चतुर्विंशत्युत्तरशततमं सूक्तं नवमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (उषासः) प्रभात वेलाओं के तुल्य (स्तोम्याः) स्तुति करने के योग्य (देवीः) दिव्य विद्या गुण वाली पंडिताओ (ब्रह्मणा) वेद से (उशतीः) कामना और कान्ति को प्राप्त होती हुई तुम (मे) मेरे लिये विद्याओं की (अस्तोढ्वम्) स्तुति प्रशंसा करो और (अवीवृधध्वम्) हम

लोगों की उन्नति कराओ तथा (युष्माकम्) तुम्हारी (अवसा) रक्षा आदि से (सहस्रिणम्) जिस में सहस्रों गुण विद्यमान (च) और जो(शतिनम्) सैकड़ों प्रकार की विद्याओं से युक्त (च) और (वाजम्) अंग उपांग उपनिषदों सहित वेदादि शास्त्रों का बोध उस को दूसरों के लिये हम लोग(सनेम)देवें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे प्रातर्वेला अच्छे गुण कर्म और स्वभाव वाली है वैसी स्त्री हों और वैसे उत्तम गुण कर्म वाले मनुष्य हों जैसे और विद्वान् से अपने प्रयोजन के लिये विद्या लेवें वैसे ही प्रीति से औरों के लिये भी विद्या देवें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभात वेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह १२४ वां सूक्त और ९ वां वर्ग समाप्त हुआ ॥

प्रातारत्नमिति पञ्चविंशत्युत्तरशततमस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः। दम्पती देवते १। ३। ७ त्रिष्टुप् छन्दः २।६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ४।५ जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ कोऽत्र धन्यवादार्हो भूत्वाऽखिलसुखानि प्राप्नुयादित्याह॥

अब सात ऋचा वाले एकसौ पच्चीशवें १२५ सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में इस संसार में कौन धन्यवाद के योग्य हो कर सब सुखों को प्राप्त हो इस विषय को कहते हैं ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते। तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥ १॥

प्रातरिति । रत्नम् । प्रातःऽइत्वा । दधाति । तम् । चिकित्वान् । प्रतिऽगृह्य । नि । धत्ते । तेन । प्रऽजाम् । वर्धयमानः । आयुः । रायः । पोषेण । सचते । सुऽवीरः ॥ १ ॥

पदार्थः-(प्रातः) प्रभाते (रत्नम्) रम्यानन्दं वस्तु (प्रातरित्वा) यः प्रातरेव जागरणमेति सः । अत्र प्रातरुपपदादिण्धातोः क्वनिप् (दधाति) (तम्) (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (प्रतिगृह्य) दत्वा गृहीत्वा च । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (नि) (धत्ते) नित्यं धरति (तेन) (प्रजाम्) पुत्रपौत्रादिकाम् (वर्द्धयमानः) विद्यासुशिक्षयोन्नयमानः (आयुः) जीवनम् (रायः) धनस्य (पोषेण) पुष्ट्या (सचते) समवैति (सुवीरः) शोभनश्चासौ वीरश्च सः ॥ १ ॥

अन्वयः—यश्चिकित्वान्प्रातारित्वा सुवीरो मनुष्यः प्राता रत्नं दधाति प्रतिगृह्य तं निधत्ते तेन रायस्पोषेण प्रजामायुश्च वर्द्धयमानः सचते स सततं सुखी भवति ॥ १ ॥

भावार्थः—य आलस्यं विहाय धर्म्येण व्यवहारेण धनं प्राप्य संरक्ष्य भुक्त्वा भोजयित्वा दत्वा गृहीत्वा च सततं प्रयतेत स सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयात् ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (चिकित्वान्) विशेष ज्ञानवान् (प्रातरित्वा) प्रातःकाल में जागने वाला (सुवीरः) सुन्दर वीर मनुष्य (प्रातः ,रत्नम्) प्रभात समय में रमण करने योग्य आनन्दमय पदार्थ को (दधाति) धारण करता और (प्रतिगृह्य) दे, ले कर फिर (तम्) उस को (नि, धत्ते) नित्य धारण वा

(तेन) उस (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि से (प्रजाम्) पुत्र पौत्र आदि संतान और (आयुः) आयुर्दा को (वर्द्धयमानः) विद्या और उत्तमशिक्षा से बढ़ाता हुआ (सचते) उस का संबन्ध करता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥ १ ॥

भावार्थः—जो आलस्य को छोड़ धर्म सम्बन्धी व्यवहार से धन को पा उस की रक्षा उस का स्वयंभोग कर दूसरों को भोगकरा और दे के कर निरन्तर उत्तम यत्न करे वह सब सुखों को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

कोऽत्र धर्मात्मा यशस्वी जायतइत्याह ॥

इस संसार में कौन धर्मात्मा और यशस्वी कीर्तिमान् होता है इस वि० ॥

सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति । यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥

सुऽगुः । असत् । सुऽहिरण्यः।सुऽअश्वः। बृहत् । अस्मै। वयः । इन्द्रः । दधाति । यः । त्वा ।आऽयन्तम् । वसुना। प्रातःऽइत्वः । मुक्षीजयाऽइव । पदिम्। उत्ऽसिनाति ॥२॥

पदार्थः-(सुगुः) शोभना गावो यस्य सः (असत्) भवेत् (सुहिरण्यः) शोभनानि हिरण्यानि यस्य सः (स्वश्वः) शोभना अश्वा यस्य सः (बृहत्) महत् (अस्मै) (वयः) चिरंजीवनम् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (दधाति) (यः) (त्वा) त्वाम् (आयन्तम्) आगच्छन्तम् (वसुना) उत्तमेन द्रव्येण सह (प्रातरित्वः) प्रातःकालमारभ्य प्रयत्नकर्त्तः (मुक्षीजयेव) मुक्ष्या मुञ्जाया जायते सा मुक्षीजा तयेव (पदिम्) पद्यते गम्यते या श्रीस्ताम् (उत्सिनाति) उत्कृष्टतया बध्नाति ॥ २ ॥

अन्वयः—हे प्रातरित्वो य इन्द्रो वसुना आयन्तं त्वा दधात्यस्मै बृहद्वयश्च मुञ्जीजयेव पदिमुत्सिनाति स सुगुस्सुहिरण्यस्स्वश्वोऽसद्भवेत् ॥ २ ॥

भावार्थः—यो विद्वान् प्राप्तान् शिष्यान् सुशिक्षयाऽधर्मविषयलोलुपतात्यागोपदेशेन दीर्घायुषो विद्यावतः श्रीमतश्च करोति सोऽत्र पुण्यकीर्तिर्जायते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (प्रातरित्वः) प्रात समय से लेकर अच्छा यत्न करने हारे (यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यवान् पुरुष (वसुना) उत्तम धन के साथ (आयन्तम्) आते हुए (त्वा) तुझ को (दधाति) धारण करता (अस्मै) इस कार्य के लिये (बृहत्) बहुत (वयः) चिरकाल तक जीवन और (मुञ्जीजयेव) जो मूंज से उत्पन्न होती उस से जैसे बांधना बने वैसे साधन से (पदिम्) प्राप्त होते हुए धन को (उत्सिनाति) अत्यन्त बांधता अर्थात् संबन्ध करता वह (सुगुः) सुन्दर गौओं (सुहिरण्यः) अच्छे २ सुवर्ण आदि धनों और (स्वश्वः) उत्तम २ घोड़ों वाला (असत्) होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् पाये हुए शिष्यों को उत्तम शिक्षा अर्थात् अधर्म और विषयभोग की चञ्चलता के त्याग आदि के उपदेश से बहुत आयुर्दायुक्त विद्या और धन वाले करता है वह इस संसार में उत्तम कीर्तिमान् होता है ॥ २ ॥

पुनरत्र स्त्रीपुरुषौ कीदृशौ भवेतामित्याह ॥

फिर इस संसार में स्त्री और पुरुष कैसे हों इस वि० ॥

आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन । अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्द्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥

आयम् । अद्य । सुऽकृतम् । प्रातः । इच्छन् । इष्टेः । पुत्रम् । वसुऽमता । रथेन । अंशोः । सुतम् । पायय । मत्सरस्य । क्षयत्ऽवीरम् । वर्धय । सूनृताभिः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(आयम्) आगच्छेयं प्राप्नुयाम् (अद्य) अस्मिन् दिने (सुकृतम्) धर्म्यं कर्म (प्रातः) प्रभाते (इच्छन्) (इष्टेः) इष्टस्य गृहाश्रमस्य स्थानात् (पुत्रम्) पवित्रं तनयम् (वसुमता) प्रशंसितधनयुक्तेन (रथेन) रमणीयेन यानेन (अंशोः) स्त्रीशरीरस्य भागात् (सुतम्) उत्पन्नम् (पायय) (मत्सरस्य) हर्षनिमित्तस्य (क्षयद्वीरम्) क्षयतां शत्रुहन्तॄणां मध्ये प्रशंसायुक्तम् (वर्द्धय) उन्नय (सूनृताभिः)विद्यासत्यभाषणादिशुभगुणयुक्ताभिर्वाणीभिः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे धात्रि अहमद्य वसुमता रथेन प्रातरिष्टेः सुकृतमिच्छन् यं पुत्रमायँस्तं सुतं मत्सरस्यांशोरसं पायय सूनृताभिः क्षयद्वीरं वर्द्धय ॥ ३ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषौ पूर्णब्रह्मचर्य्येण विद्यां संगृह्य परस्परस्य प्रसन्नतया विवाहं कृत्वा धर्म्येण व्यवहारेण पुत्रादीनुत्पादयेताम् । तद्रक्षायै धार्मिकीं धात्रीं समर्पयेतां साचेमं सुशिक्षया सम्पन्नं कुर्यात्॥३॥

पदार्थः—हे धात्रि मैं (अद्य) आज (वसुमता) प्रशंसित धनयुक्त (रथेन) मनोहर रमण करने योग्य रथ आदि यान से (प्रातः) प्रभात समय (इष्टेः) चाहे हुए गृहाश्रम के स्थान से (सुकृतम्) धर्मयुक्त काम की (इच्छन्)इच्छा करता हुआ जिस (पुत्रम्) पवित्र बालक को (आयम्) पाऊं उस (सुतम्) उत्पन्न हुए पुत्र को (मत्सरस्य) आनन्द कराने वाला जो (अंशोः) स्त्री का

शरीर उस के भाग से ओरस अर्थात् दूध उत्पन्न होता उस दूध को (पायय) पिला । हे वीर ! (सूनृताभिः) विद्या सत्य भाषण आदि शुभगुणयुक्त वाणियों से (क्षयद्वीरम्) शत्रुओं का क्षय करने वालों में प्रशंसित वीर पुरुष की(वर्द्धय) उन्नति कर ॥ ३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष पूरे ब्रह्मचर्य से विद्या का संग्रह और एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह कर धर्मयुक्त व्यवहार से पुत्र आदि संतानों को उत्पन्न करें और उन की रक्षा कराने के लिये धर्मवती धायि को देवें और वह इस संतान को उत्तम शिक्षा से युक्त करे ॥ ३ ॥

पुनस्त्रीपुरुषौ किं कुर्यातामित्याह ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

उप॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वो मयो॒भुव॑ ई॒जानं॑ च य॒क्ष्य-
मा॑णं च धे॒नवः॑ । पृ॒णन्तं॑ च॒ पपु॑रिं च श्र॒व॒स्यवो॑
घृ॒तस्य॒ धारा॒ उप॑ यन्ति वि॒श्वतः॑ ॥ ४ ॥

उप॑ । क्षर॒न्ति॒ । सिन्ध॑वः । म॒यः॒ऽभुवः॑ । ई॒जा॒नम् । च॒ । य॒क्ष्यमा॑णम् । च॒ । धे॒नवः॑ । पृ॒णन्त॑म् । च॒ । पपु॑रिम् । च॒ । श्र॒व॒स्यवः॑ । घृ॒तस्य॑ । धाराः॑ । उप॑ । य॒न्ति॒ । वि॒श्वतः॑ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(उप) (क्षरन्ति) वर्षन्तु (सिन्धवः) नदाइव (मयोभुवः) सुखं भावुकाः (ईजानम्) यज्ञं कुर्वन्तम् (च) (यक्ष्यमाणम्) यज्ञं करिष्यमाणम् (च) (धेनवः) पयःप्रदा गावइव (पृणन्तम्) पुष्यन्तम् (च) (पपुरिम्) पुष्टम् (च) (श्रवस्यवः) स्वयं श्रोतुमिच्छवः (घृतस्य) जलस्य (धाराः) (उप) (यन्ति) (विश्वतः) सर्वतः ॥ ४ ॥

अन्वयः—ये सिन्धवइव मयोभुवो जना धेनवइव पत्न्यो धार्य्यो वा ईजानं यक्ष्यमाणं चोपक्षरन्ति । ये श्रवस्यवो विद्वांसो विदुष्यश्च पृणन्तं च पपुरिं च शिक्षन्ते ते विश्वतो घृतस्य धाराइव सुखान्युपयन्ति प्राप्नुवन्ति ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये पुरुषाः स्त्रियश्च गृहाश्रमे परस्परस्य प्रियाचरणं कृत्वा विद्या अभ्यस्य सन्तानानभ्यासयन्ति ते सततं सुखान्यश्नुवते ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (सिन्धवः) बड़े नदों के समान (मयोभुवः) सुख की भावना कराने वाले मनुष्य और (धेनवः) दूधदेने हारी गौओं के समान विवाही हुई स्त्री वा धार्यी (ईजानम्) यज्ञ करने (च) और (यक्ष्यमाणम्) यज्ञ करने वाले पुरुष के(उप,क्षरन्ति) समीप आनन्द वर्षावें वा जो(श्रवस्यवः) आप सुनने की इच्छा करते हुए विद्वान् (च) और विदुषी स्त्री (पृणन्तम्) पुष्ट होते (च) और (पपुरिम्) पुष्ट हुए (च) भी पुरुष को शिक्षा देते हैं वे (विश्वतः) सब ओर से (घृतस्य) जल की (धाराः) धाराओं के समान सुखों को (उप,यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो पुरुष और स्त्री गृहाश्रम में एक दूसरे के प्रिय आचरण और विद्याओं का अभ्यास करके सन्तानों को अभ्यास कराते हैं वे निरन्तर सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

मनुष्यैः कैः कर्मभिरत्र मोक्षप्राप्तव्यइत्याह ॥

इस संसार में मनुष्यों को किन कामों से मोक्ष प्राप्त हो सकता है इस वि० ॥

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति । तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५ ॥

नाकस्य । पृष्ठे । अधि । तिष्ठति । श्रितः । यः । पृणाति । सः । ह । देवेषु । गच्छति । तस्मै । आपः । घृतम् । अर्षन्ति । सिन्धवः । तस्मै । इयम् । दक्षिणा । पिन्वते । सदा ॥५॥

पदार्थः—(नाकस्य) अविद्यमानदुःखस्यानन्दस्य (पृष्ठे) आधारे (अधि) उपरिभावे (तिष्ठति) (श्रितः) विद्यामाश्रितः (यः) (पृणाति) विद्यासुशिक्षासंस्कृताऽन्नाद्यैः स्वयं पुष्यति सन्तानान् पोषयति च (सः) (ह) किल (देवेषु) दिव्येषु गुणेषु विद्वत्सु वा (गच्छति) (तस्मै) (आपः) प्राणा जलानि वा (घृतम्) आज्यम् (अर्षन्ति) वर्षन्ति (सिन्धवः) नद्यः (तस्मै)(इयम्) अध्यापनजन्या (दक्षिणा) (पिन्वते) प्रीणाति (सदा) ॥५॥

अन्वयः—यो मनुष्यो देवेषु गच्छति स ह विद्यामाश्रितः सन् नाकस्य पृष्ठेऽधि तिष्ठति सर्वान् पृणाति तस्मा आपः सदा घृतमर्षन्ति तस्मा इयं दक्षिणा सिन्धवः सदा पिन्वते ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालं०—ये मनुष्या नरदेहमाश्रित्य सत्पुरुषसंगं धर्म्याऽचारं च सदा कुर्वन्ति ते सदैव सुखिनो भवन्ति ये विद्वांसो या विदुष्यो बालकान् यूनो वृद्धांश्च कन्या युवतीर्वृद्धाश्च निष्कपटतया विद्यासुशिक्षे सततं प्रापयन्ति तेऽत्राखिलं सुखं प्राप्य मोक्षमधिगच्छन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—(यः) जो मनुष्य (देवेषु) दिव्यगुण वा उत्तम विद्वानों में (गच्छति) जाता है (सः, ह) वही विद्या के (श्रितः) आश्रय को प्राप्त हुआ (नाकस्य) जिस में किंचित् दुःख नहीं उस उत्तम सुख के (पृष्ठे) आधार (अधि, तिष्ठति) पर स्थिर होता वा (पृणाति) विद्या उत्तम शिक्षा और

अच्छे बनाए हुए अन्न आदि पदार्थों से आप पुष्ट होता और सन्तानों को पुष्ट करता है (तस्मै) उस के लिये (आपः) प्राण वा जल (सदा) सब कभी (घृतम्) घी (अर्षन्ति) वर्षाते तथा (तस्मै) उस के लिये (इयम्) यह पढ़ाने से मिली हुई (दक्षिणा) दक्षिणा और (सिन्धवः)नदीनद(सदा)सब कभी (पिन्वते) प्रसन्नता करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य इस मनुष्य देह का आश्रय कर सत्पुरुषों का संग और धर्म के अनुकूल आचरण को सदा करते वे सदैव सुखी होते हैं जो विद्वान् वा जो विदुषी पंडिता स्त्री बालक ज्वान और बुड्ढे मनुष्यों तथा कन्या युवति और बुड्ढी स्त्रियों को निष्कपटता से विद्या और उत्तम शिक्षा को निरन्तर प्राप्त कराते वे इस संसार में समग्र सुख को प्राप्त हो कर अन्तकाल में मोक्ष को अधिगत होते अर्थात् अधिकता से प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

पुनश्चतुर्वर्णस्थाः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर चारो वर्णों में स्थिर होने वाले मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः । दक्षिणावन्तोऽअमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः ॥ ६ ॥

दक्षिणाऽवताम् । इत् । इमानि । चित्रा । दक्षिणाऽवताम् । दिवि । सूर्यासः । दक्षिणाऽवन्तः । अमृतम् । भजन्ते । दक्षिणाऽवन्तः । प्र । तिरन्ते । आयुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(दक्षिणावताम्) धर्मोपार्जिता धनविद्यादयो बहवः पदार्था विद्यन्ते येषां तेषाम् (इत्) एव (इमानि) प्रत्यक्षाणि (चित्रा) चित्राण्यद्भुतानि (दक्षिणावताम्) प्रशंसितयोर्धर्म्यधनविद्ययोर्दक्षिणा दानं येषां तेषाम् । प्रशंसायां मतुप् (दिवि)दिव्ये प्रकाशे

(सूर्यासः)सवितारइव तेजस्विनोजनाः(दक्षिणावन्तः)बहुविद्यादानयुक्ताः(अमृतम्) मोक्षम् (भजन्ते) (दक्षिणावन्तः)बह्वभयदानदातारः (प्र) (तिरन्ते) संतरन्ति (आयुः) प्राणधारणम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—दक्षिणावतां जनानामिमानि चित्राऽद्भुतानि सुखानि दक्षिणावतां दिवि सूर्य्यासः प्राप्नुवन्ति दक्षिणावन्त इदेवामृतं भजन्ते दक्षिणावन्त आयुः प्रतिरन्ते प्राप्नुवन्ति ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये ब्राह्मणाः सार्वजनिकसुखाय विद्यासुशिक्षादानं ये क्षत्रिया न्यायेन व्यवहारेणाभयदानं ये वैश्या धर्मोपार्जितधनस्य दानं ये च शूद्राः सेवादानं च कुर्वन्ति ते पूर्णायुषो भूत्वेहामुत्रानन्दं सततं भुञ्जते ॥ ६ ॥

पदार्थः—(दक्षिणावताम्) जिन के धर्म से इकट्ठे किये धन विद्या आदि बहुत पदार्थ विद्यमान् हैं उन मनुष्यों को (इमानि) ये प्रत्यक्ष (चित्रा) चित्र विचित्र अद्भुत सुख (दक्षिणावताम्) जिन के प्रशंसित धर्म के अनुकूल धन और विद्या की दक्षिणा का दान होता उन सज्जनों को(दिवि)उत्तम प्रकाश में (सूर्य्यासः) सूर्य्य के समान तेजस्वी जन प्राप्त होते हैं (दक्षिणावन्तः) बहुत विद्यादानयुक्त सत्पुरुष (इत्) ही (अमृतम्) मोक्ष का (भजन्ते) सेवन करते और (दक्षिणावन्तः) बहुत प्रकार का अभय देने हारे जन (आयुः) आयु के (प्रतिरन्ते) अच्छे प्रकार पार पहुंचे अर्थात् पूरी आयु भोगते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो ब्राह्मण सब मनुष्यों के सुख के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा का दान वा जो क्षत्रिय न्याय के अनुकूल व्यवहार से प्रजा जनों को अभय दान वा जो वैश्य धर्म से इकट्ठे किये हुए धन का दान और जो शूद्र सेवा दान करते हैं वे पूर्ण आयुवाले होकर इस जन्म और दूसरे जन्म में निरन्तर आनन्द को भोगते हैं ॥ ६ ॥

इह संसारे कतिविधाः पुरुषा भवन्तीत्याह ॥

इस संसार में कै प्रकार के पुरुष होते हैं इस वि० ॥

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः । अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥७॥१०॥

मा । पृणन्तः । दुःऽइतम् । एनः । आ । अरन् । मा । जारिषुः । सूरयः । सुऽव्रतासः । अन्यः । तेषाम् । परिऽधिः । अस्तु । कः । चित् । अपृणन्तम् । अभि । सम् । यन्तु । शोकाः ॥ ७ ॥ १० ॥

पदार्थः—(मा) निषेधे (पृणन्तः) स्वं स्वकीयांश्च पुष्यन्तः (दुरितम्) दुःखायेतं प्राप्तम् (एनः) पापाचरणम् (आ) समन्तात् (अरन्) आचरन्तु (मा) (जारिषुः) जारकर्माणि कुर्वन्तु (सूरयः) विद्वांसः (सुव्रतासः) शोभनानि व्रतानि सत्याचरणानि येषान्ते (अन्यः)भिन्नः (तेषाम्) धार्मिकाणां विदुषामधार्मिकाणां मूर्खाणां च (परिधिः) आवरणं मर्य्यादा (अस्तु) (कः) (चित्) अपि (अपृणन्तम्) धर्मेणापुष्यन्तमन्यानपोषयन्तम् (अभि) सर्वतः (सम्) सम्यक् (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (शोकाः) विलापाः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या भवन्तः पृणन्तः सन्तो दुरितमेनो माऽरन् दुरितमेनो मा जारिषुः किन्तु सुव्रतासः सूरयः सन्तो धर्ममेवाचरन्त ये च

युष्मदध्यापकास्तेषां युष्माकं च कश्चिदन्यः परिधिरस्तु । अपृणन्तं जनं शोका अभिसंयन्तु ॥ ७ ॥

भावार्थः—अस्मिन् जगति द्विविधा जनाः सन्ति । एके धर्मिका अपरे पापाश्च ते प्रभिन्नप्रस्थानास्सन्ति । ये धार्मिकास्ते धार्मिकस्याऽनुकरणेनैव धर्ममार्गे चलन्ति । ये च दुष्टास्तेत्वधर्मिकानुकरणेनैवाधर्मे चलन्ति । नैव कदाचिद्धार्मिकैरधार्मिकमार्गे गन्तव्यमधार्मिकैस्तु धार्मिकमार्गे गन्तुं योग्यमेवं प्रत्येकजातौ धार्मिकाधार्मिकयोर्द्वौ मार्गौ स्तः, तत्र धार्मिकान् सुखान्यधार्मिकान् दुःखानि च सदाप्नुवन्ति ॥ ७ ॥

अस्मिन् सूक्ते धर्म्याचरणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति पंचदशोत्तरं शततमं सूक्तं दशमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आपलोग (पृणन्तः) स्वयं वा अपने सन्तान आदि को पुष्ट करते हुए (दुरितम्) दुःख के लिये जो प्राप्त होना अर्थात् (एनः) पाप का आचरण (मा, आ, अरन्) मत करो और दुःख के लिये प्राप्त होने वाला पापाचरण जैसे हो वैसे (मा, जारिषुः) खोटे कामों को मत करो किन्तु (सुव्रतासः) उत्तम सत्य आचरण वाले (सूरयः) विद्वान् होते हुए धर्म ही का आचरण करो और जो तुम्हारे अध्यापक हों(तेषाम्)उन धार्मिक विद्वानों तथा तुमलोगों के बीच (कश्चित्)कोई (अन्यः) भिन्न (परिधिः)मर्य्यादा अर्थात् तुम सभों को ढांपने गुप्त राखने मूर्खपने से बचाने वाला प्रकार (अस्तु) हो और (अपृणन्तम्) धर्म से न पुष्ट होने न दूसरों को पुष्ट करने वाले किन्तु अधर्म से पुष्ट होने तथा अधर्म ही से औरों को पुष्ट करने वाले मनुष्य को (शोकाः) शोक विलाप (अभि,सम् , यन्तु) सब ओर से प्राप्त हों ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं एक धार्मिक और दूसरे पापी ये दोनों अच्छे प्रकार अलग २ स्थान और आचरण वाले हैं अर्थात् जो धार्मिक हैं वे धर्मात्माओं के अनुकरण ही से धर्ममार्ग में चलते और जो दुष्ट आचरण करने वाले पापी हैं वे अधर्मी दुष्ट जनों के आचरण ही से अधर्म में चलते हैं कभी किन्हीं धर्मात्माओं को अधर्मी दुष्टजनों के मार्ग में नहीं चलना चाहिये और अधर्मी दुष्टों को अपनी दुष्टता छोड़ धार्मिकों के मार्ग में चलना योग्य है इस प्रकार प्रत्येक जाति के पीछे धार्मिक और अधर्मिकों के दो मार्ग हैं उन में धर्म करने वालों को सुख और अधर्मी दुष्टों को दुःख सदा प्राप्त होते हैं॥ ७॥

इस सूक्त में धर्म के अनुकूल आचरण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये।

यह एकसौ पच्चीस का सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ॥

आमन्दानित्यस्य सप्तर्चस्य षड्विंशत्युत्तरशततमस्य
सूक्तस्य १। २। ३। ४। ५ कक्षीवान् ६।
भावयव्यः ७रोमशा ब्रह्मवादिनी चर्षिः।विद्वांसो
देवताः। १। २। ४। ५निचृत्त्रिष्टुप्।
३ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतःस्वरः। ६। ७
अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

को ऽत्र राज्याधिकारे न स्थापनीयइत्याह॥

अब सात ऋचा वाले १२६ एकसौ छव्वीशवें सूक्त का आरम्भ है। उस के प्रथम मंत्र मे इस संसार के राज्य के अधिकार में कौन न स्थापन करने योग्य है इस वि०॥

अमन्दान् स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य। यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः॥ १॥

अमन्दान् । स्तोमान् । प्र । भरे । मनीषा । सिन्धौ । अधि । क्षियतः । भाव्यस्य । यः । मे । सहस्रम् । अमिमीत । सवान् । अतूर्त्तः । राजा । श्रवः । इच्छमानः ॥ १ ॥

पदार्थः—(अमन्दान्) मन्दभावरहितान् तीव्रान् (स्तोमान्) स्तोतुमर्हान् विद्याविशेषान् (प्र) (भरे) धरे (मनीषा) बुद्ध्या (सिन्धौ) नद्याः समीपे (अधि) स्वीयचित्ते (क्षियतः) निवसतः (भाव्यस्य) भवितुं योग्यस्य (यः) (मे) मम (सहस्रम्) (अमिमीत) निमिमीते (सवान्) ऐश्वर्ययोग्यान् (अतूर्त्तः) अहिंसितः (राजा) (श्रवः) श्रवणम् (इच्छमानः) व्यत्ययेनात्मने पदम् ॥ १ ॥

अन्वयः—योऽतूर्त्तः श्रव इच्छमानो राजा सिन्धौ क्षियतो भाव्यस्य मे सकाशात् सहस्रं सवानमन्दान् स्तोमाँश्च मनीषाऽमिमीत तमहमधिप्रभरे ॥ १ ॥

भावार्थः—यावदाप्तस्य विदुष आज्ञया पुरुषार्थी विद्वान् नरो न भवेत्तावत्तस्य राज्याधिकारे स्थापनं न कुर्यात् ॥ १ ॥

पदार्थः—(यः) जो (अतूर्त्तः) हिंसा आदि के दुःख को न प्राप्त और (श्रवः) उत्तम उपदेश सुनने की (इच्छमानः) इच्छा करता हुआ (राजा) प्रकाशमान सभाध्यक्ष (सिन्धौ) नदी के समीप (क्षियतः) निरन्तर वसते हुए (भाव्यस्य) प्रसिद्ध होने योग्य (मे) मेरे निकट (सहस्रम्) हज़ारों (सवान्) ऐश्वर्य योग्य (अमन्दान्) मन्दपनरहित तीव्र और (स्तोमान्) प्रशंसा करने योग्य विद्यासंबन्धी विशेष ज्ञानों का (मनीषा) बुद्धि से (अमिमीत) निरन्तर मान करता उस को मैं (अधि) अपने मन के बीच (प्र, भरे) अच्छे प्रकार धारण करूं ॥ १ ॥

भावार्थः—जब तक सकल शास्त्र जानने हारे विद्वान् की आज्ञा से पुरुषार्थी विद्वान् न हो तब तक उस का राज्य के अधिकार में स्थापन न करे॥१॥

केऽत्र यशो विस्तारयन्तीत्याह ॥

कौन इस संसार में यश का विस्तार करते हैं इस वि० ॥

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान् शतमश्वान् प्रयतान् सद्य आदम् । शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान॥ २ ॥

शतम् । राज्ञः । नाधमानस्य । निष्कान् । शतम् । अश्वान् । प्रऽयतान् । सद्यः । आदम् । शतम् । कक्षीवान् । असुरस्य । गोनाम् । दिवि । श्रवः । अजरम् । आ । ततान ॥ २ ॥

पदार्थः—(शतम्) (राज्ञः) (नाधमानस्य) प्राप्तैश्वर्यस्य (निष्कान्) सौवर्णान् (शतम्) (अश्वान्) तुरङ्गान् (प्रयतान्) सुशिक्षितान् (सद्यः) (आदम्) आददामि (शतम्) (कक्षीवान्) बह्व्यः कक्षयः विद्याप्रदेशा विदिताः सन्ति यस्य सः (असुरस्य) मेघस्य (गोनाम्) किरणानाम् (दिवि) आकाशे (श्रवः) श्रूयमाणं यशः (अजरम्) वयोनाशहीनम् (आ) (ततान) विस्तृणाति ॥ २ ॥

अन्वयः—यः कक्षीवान् विद्वानसुरस्येव नाधमानस्य राज्ञः शतं निष्कान् प्रयतान् शतमश्वान् दिव्यजरं गोनां शतमिव श्रव आततान तमहं सद्य आदम् ॥ २ ॥

भावार्थः—ये न्यायकारिणो विदुषो राज्ञः सकाशात् सत्कारं प्राप्नुवन्ति ते यशो वितन्वते ॥ २ ॥

पदार्थः—जो (कक्षीवान्) विद्या के बहुत व्यवहारों को जानता हुआ विद्वान् (असुरस्य) मेघ के समान उत्तम गुणी (नाधमानस्य) ऐश्वर्यवान् (राज्ञः) राजा के (शतम्) सौ (निष्कान्) निष्क सुवर्णों (प्रयतान्) अच्छे शिखाये हुए (शतम्) सौ (अश्वान्) घोड़ों और (दिवि) आकाश में (अजरम्) अविनाशी (गोनाम्, शतम्) सूर्यमंडल की सैकड़ों किरणों के समान (श्रवः) श्रूयमाण यश को (आ, ततान) विस्तारता है उस को मैं (सद्यः) शीघ्र (आदम्) स्वीकार करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—जो न्यायकारी विद्वान् राजा के समीप से सत्कार को प्राप्त होते वे यश का विस्तार करते हैं ॥ २ ॥

पुना राज्ञा किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

उप॑ मा श्या॒वाः स्व॒नये॑न द॒त्ता व॒धूम॑न्तो॒ दश॒ रथा॑सो अस्थुः । षा॒ष्टिः स॒हस्र॒मनु॒ गव्य॒माग॒ात् सन॑त् क॒क्षीवाँ॑ अभिपि॒त्वे अह्ना॑म् ॥ ३ ॥

उप॑ । मा॒ । श्या॒वाः । स्व॒नये॑न । द॒त्ताः । व॒धूम॑न्तः । दश॑ । रथा॑सः । अ॒स्थुः॒ । ष॒ष्टिः । स॒हस्र॑म् । अनु॑ । गव्य॑म् । आ । अ॒गा॒त् । सन॑त् । क॒क्षीवा॑न् । अ॒भि॒पि॒त्वे । अह्ना॑म् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(उप) (मा) माम् (श्यावाः) सवितुः किरणाः (स्वनयेन) स्वस्य नयनं यस्य दातुस्तेन (दत्ताः) (वधूमन्तः)

प्रशस्ता वध्वः स्त्रियो विद्यन्ते येषु ते (दश) एतत्संख्याकाः (रथासः) यानानि (अस्थुः) तिष्ठन्ति(षष्टिः) (सहस्रम्) (अनु) (गव्यम्) गवां भावम् (आ) (अगात्) गच्छेत् (सनत्) सदा (कक्षीवान्) युद्धे प्रशस्तकक्षः (अभिपित्वे) सर्वतः प्राप्तौ (अह्नाम्) दिनानाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—येन स्वनयेन दात्रा सवितुः श्यावाइव दत्ता दशरथासो वधूमन्तो मा मां सेनापतिमुपास्थुः । यः कक्षीवानभिपित्वेऽह्नां सहस्रं गव्यमन्वागाद्यस्य षष्टिः पुरुषा अनुगच्छन्ति स सनत् सुखवर्द्धकोऽस्ति ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यतः सर्वे योद्धारो राज्ञः सकाशा-द्धनादिकं प्राप्तुमिच्छन्ति तस्माद्राज्ञा तेभ्यो यथायोग्यं देयमेवं विनोत्साहो न जायते ॥ ३ ॥

पदार्थः—जिस (स्वनयेन) अपने धन आदि पदार्थ के पहुंचाने अर्थात् देने वाले ने (श्यावाः) सूर्य की किरणों के समान (दत्ताः) दिये हुए (दश) दश (रथासः) रथ (वधूमन्तः) जिन में प्रशंसित बहुएं विद्यमान वे (मा) मुझ सेनापति के (उपास्थुः) समीपस्थित होते तथा जो (कक्षीवान्) युद्ध में प्रशंसित कक्षा वाला अर्थात् जिस की ओर अच्छे वीर योद्धा हैं वह (अ-भिपित्वे) सबओर से प्राप्ति के निमित्त (अह्नाम् , सहस्रम्) हजार दिन (गव्यम्)गौओं के दुग्ध आदि पदार्थ को(अन्वागात्)प्राप्त होता और जिस के (षष्टिः) साठ पुरुष पीछे चलते वह (सनत्)सदा सुख का बढ़ाने वाला है॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जिस कारण सब योद्धा राजा के समीप से धन आदि पदार्थ की प्राप्ति चाहते हैं इस से राजा को उन के लिये यथायोग्य धन आदि पदार्थ देनायोग्यहैऐसे विना किये उत्साह नहीं होता॥३॥

केऽत्र चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तुमर्हन्तीत्याह ॥

इस संसार में कौन चक्रवर्त्ति राज्य करने को योग्य होते हैं इस वि० ॥

च॒त्वा॒रिं॒शद्दश॑रथस्य॒ शोणा॑ः स॒हस्र॒स्याग्रे॒ श्रेणिं॑ नय॑न्ति। म॒द॒च्युत॑ः कृश॒नाव॑तो॒ अत्या॑न् क॒क्षीव॑न्त॒ उद॑मृक्षन्त प॒ज्राः ॥ ४ ॥

च॒त्वा॒रिं॒शत् । दश॑ऽरथस्य । शोणा॑ः । स॒हस्र॑स्य । अग्रे॑ । श्रेणि॑म् । नय॒न्ति॒ । म॒द॒ऽच्युत॑ः । कृ॒श॒न॒ऽव॑तः । अत्या॑न् । क॒क्षीव॑न्तः । उत् । अ॒मृ॒क्ष॒न्त॒ । प॒ज्राः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(चत्वारिंशत्) (दशरथस्य) दश रथा यस्य सेनेशस्य (शोणाः) रक्तगुणविशिष्टाऽश्वाः (सहस्रस्य) (अग्रे) पुरतः (श्रेणिम्) पङ्क्तिम् (नयन्ति) (मदच्युतः) ये मदान् च्यवन्ते ते(कृशनावतः) कृशनं वहु सुवर्णादेर्भूषणं विद्यते येषान्ते(अत्यान्) येऽतन्ति मार्गान् व्याप्नुवन्ति तान् (कक्षीवन्तः) प्रशस्ताः कक्षयो विद्यन्ते येषान्ते (उत्) (अमृक्षन्त) मृषन्ति सहन्ते (पज्राः) पद्यते गच्छन्ति मार्गान् यैस्ते । अत्र वर्णव्यत्ययेन दस्य तः ॥४॥

अन्वयः—यस्य दशरथस्य चत्वारिंशच्छोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति। यस्य वा पज्राः कक्षीवन्तो भृत्या मदच्युतः कृशनावतोऽत्यानुदमृक्षन्त स शत्रून् जेतुमर्हति ॥ ४ ॥

भावार्थः—येषां चतुरश्वयुक्ता दशसु दिक्षु रथाः सहस्राण्यश्विका लक्षाणि पदातयोऽक्षयः कोशः पूर्णा विद्याविनयाः सन्ति तएव साम्राज्यं कर्त्तुमर्हन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—जिस (दशरथस्य) दशरथों से युक्त सेनापति के (चत्वारिंशत्) चालीश (शोणाः) लाल घोड़े (सहस्रस्य) सहस्र योद्धा वा सहस्र रथों के (अग्रे) आगे (श्रेणिम्) अपनी पांति को (नयन्ति) पंहुचाते अर्थात् एक साथ होकर आगे चलते वा जिस सेनापति के भृत्य ऐसे हैं (पज्राः) कि जिन के साथ मार्गों को जाते और (कक्षीवन्तः) जिन की प्रशंसित कक्षा विद्यमान अर्थात् जिन के साथी छटे हुए वीर लड़ने वाले हैं वे (मदच्युतः) जो मद को चुआते उन (कृशनावतः) सुवर्ण आदि के गहने पहिने हुए तथा (अत्यान्) जिन से मार्गों को रमते पंहुचते उन घोड़ा हाथी रथ आदि को (उदमृक्षन्त) उत्कर्षता से सहते हैं वह शत्रुओं के जीतने को योग्य होता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—जिन के चार घोड़ा युक्त दशों दिशाओं में रथ सहस्रों अश्व वार(असवार) लाखों पैदल जाने वाले अत्यन्त पूर्ण कोश धन और पूर्ण विद्या विनय नम्रता आदि गुण हैं वे ही चक्रवर्त्ति राज्य करने को योग्य हैं ॥ ४ ॥

केऽत्रोत्तमा भवन्तीत्याह ॥

कौन मनुष्य इस जगत् में उत्तम होते इस वि० ॥

पूर्वामनु प्रयतिमाददे वस्त्रीन् युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः । सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ५ ॥

पूर्वाम् । अनु । प्रऽयतिम् । आ । ददे । वः । त्रीन् । युक्तान् । अष्टौ । अरिऽधायसः । गाः । सुऽबन्धवः । ये । विश्याःऽइव । व्राः । अनस्वन्तः । श्रवः । ऐषन्त । पज्राः ॥ ५ ॥

पदार्थः–(पूर्वाम्) आदिमाम् (अनु) आनुकूल्ये (प्रयतिम्) प्रयतन्ते यया ताम् (आ) (ददे) गृह्णामि (वः)

युष्माकम् (त्रीन्) (युक्तान्) नियुक्तान् (अष्टौ) (अरिधायसः) अरीन् शत्रून् दधति यैस्ते (गाः) वृषभान् (सुबन्धवः) शोभना बन्धवो येषान्ते (ये) (विश्याइव) यथा विक्षु प्रजासु साधवो वणिग्जनाः (व्राः) ये व्रजन्ति ते । अत्र व्रजधातोर्बाहुलकादौणादिको डः प्रत्ययः । व्राइति पदना० निघं० ४ । २ (अनस्वन्तः) बहून्यनांसि शकटानि विद्यन्ते येषान्ते (श्रवः) अन्नम् (ऐषन्त) इच्छेयुः (पज्राः) प्रपन्नाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—ये सुबन्धवोऽनस्वन्तो व्राः पज्रा विश्याइव श्रव ऐषन्त तान् वस्त्रीन्युक्तानध्यक्षान् अष्टौ सभ्यानरिधायसो वीरान् गाश्चषा पूर्वाम्प्रयतिमहमन्वाददे ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये जनाः सभासेनाशालाऽध्यक्षान् कुशलानष्टौ सभासदः शत्रुविनाशकान् वीरान् गवादीन् पशून् मित्राणि धनाढ्यान् वणिग्जनान् कृषीवलाँश्च संरक्ष्यान्नाद्यैश्वर्य्यमुन्नयन्ति ते मनुष्यशिरोमणयः सन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—(ये) जो ऐसे हैं कि (सुबन्धवः) जिन के उत्तम बन्धुजन (अनस्वन्तः) और बहुत लढ़ा छकड़ा विद्यमान (व्राः) तथा जो गमन करने वाले और (पज्राः) दूसरों को प्राप्त वे (विश्याइव) प्रजाजनों में उत्तम वणिक् जनों के समान (श्रवः) अन्न को (ऐषन्त) चाहें उन (वः) तुम्हारे (त्रीन्) तीन (युक्तान्) आज्ञा दिये और अधिकार पाये भृत्यों (अष्टौ) आठ सभासदों (अरिधायसः) जिन से शत्रुओं को धारण करते समझते उन वीरों और (गाः) बैल आदि पशुओं को तथा इन सभों की (पूर्वाम्) पहिली (प्रयतिम्) उत्तम यत्न की रीति को मैं (अनु, आ, ददे) अनुकूलता से ग्रहण करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो जन सभा सेना और शाला के अधिकारी कुशल चतुर आप्त सभासदों शत्रुओं का विनाश करने वाले वीरों गौ बैल आदि पशुओं मित्र धनी वणिक्जनों और खेती करने वालों की अच्छे प्रकार रक्षा कर के अन्न आदि ऐश्वर्य्य की उन्नति करते हैं वे मनुष्यों में शिरोमणि अर्थात् अत्यन्त उत्तम होते हैं ॥ ५ ॥

कैः कात्र राज्येऽवश्यं प्राप्तव्येत्याह ॥

किन से इस राज्य में क्या अवश्य पानी चाहिये इस वि० ॥

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता॥ ६ ॥

आऽगधिता। परिऽगधिता। या। कशीकाऽइव। जङ्गहे।
ददाति। मह्यम्। यादुरी। याशूनाम्। भोज्या। शता ॥६॥

पदार्थः—(आगधिता) समन्तादगृहीता। गध्यं गृह्णातेः नि० ५। १५ (परिगधिता) परितः सर्वतो गधिता शुभैर्गुणैर्युक्ता नीतिः। गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मा निरु० ५। १५ (या) (कशीकेव) यथा ताडनार्था कशीका (जङ्गहे) अत्यन्तं ग्रहीतव्ये (ददाति) (मह्यम्) (यादुरी) प्रयत्नशीला। अत्र यतधातोर्बाहुलकादौणादिक उरी प्रत्ययः तस्य दः (याशूनाम्) प्रयतमानानाम्। अत्र यसु प्रयत्ने धातोर्बाहुलकादुण्प्रत्ययः सस्य शश्च (भोज्या) भोक्तुं योग्यानि (शता) शतानि असंख्यातानि वस्तूनि ॥ ६ ॥

अन्वयः—या आगधिता परिगधिता जङ्गहे कशीकेव याशूनां यादुरी शता भोज्या मह्यं ददाति सा सर्वैः स्वीकार्य्या ॥६॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यया नीत्याऽसंख्यातानि सुखानि स्युः सा सर्वैः संपादनीया ॥ ६ ॥

पदार्थः—(या) जो (आगधिता) अच्छे प्रकार ग्रहण किई हुई (परिगधिता) सबओर से उत्तम २ गुणों से युक्त (जङ्गहे) अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार में (कशीकेव) पशुओं के ताड़ना देने के लिये जो आंगी होती उस के समान (याशूनाम्) अच्छा यत्न करने वालों की (यादुरी) उत्तम यत्न वाली नीति (भोज्या) भोगने योग्य (शता) सैकड़ों वस्तु (मह्यम्) मुझे (ददाति) देनी है वह सब को स्वीकार करने योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जिस नीति अर्थात् धर्म की चाल से अगणित सुख हों वह सब को सिद्ध करनी चाहिये ॥ ६ ॥

पुना राज्ञी किं कुर्य्यादित्याह ॥

फिर रानी क्या करे इस वि० ॥

उपो॑प मे॒ परा॑ मृश॒ मा मे॑ द॒भ्राणि॑ मन्यथाः । सर्वा॒-हमस्मि रोम॒शा ग॒न्धारी॑णामिवावि॒का ॥ ७ ॥ ११ ॥ १८ ॥

उप॑ऽउप । मे॒ । परा॑ । मृ॒श॒ । मा । मे॒ । द॒भ्राणि॑ । म॒न्य॒थाः । सर्वा॑ । अ॒हम् । अ॒स्मि॒ । रो॒म॒शा । ग॒न्धारी॑णाम्ऽइव । अ॒वि॒का ।
॥ ७ ॥ ११ ॥ १८ ॥

पदार्थः—(उपोप) अतिसमीपत्वे (मे) मम (परा) (मृश) विचारय (मा) निषेधे (मे) मम (दभ्राणि) अल्पानि कर्माणि (मन्यथाः) जानीयाः (सर्वा) (अहम्) (अस्मि) (रोमशा) प्रशस्तलोमा (गन्धारीणामिव) यथा पृथिवीराज्यधर्त्रीणां मध्ये (अविका) रक्षिका ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे पते राजन् याऽहं गन्धारीणामिवाविका रोमशा सर्वास्मि तस्या मे गुणान् परा मृश मे दभ्राणि कर्माणि मोपोप मन्यथाः ॥ ७ ॥

भावार्थः—राज्ञी राजानं प्रति ब्रूयादहं भवतो न्यूना नास्मि यथा भवान् पुरुषाणां न्यायाधीशोऽस्ति तथाऽहं स्त्रीणां न्यायकारिणी भवामि यथा पूर्वा राजपत्न्यः प्रजास्थानां स्त्रीणां न्यायकारिण्योऽभूवन् तथाहमपि स्याम् ॥ ७ ॥

अत्र राजधर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इति षड्विंशत्युत्तरं शततमं सूक्तमेकादशो वर्गोऽष्टादशोऽनुवाकश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे पति राजन् जो (अहम्) मैं (गन्धारीणाम् इव) पृथिवी के राज्यधारण करने वालियों में जैसे (अविका) रक्षा करने वाली होती वैसे (रोमशा) प्रशंसित रोमों वाली (सर्वा) सब प्रकार की (अस्मि) हूं उस (मे) मेरे गुणों को (परा, मृश) विचारो (मे) मेरे (दभ्राणि) कामों को छोटे (मा, उपोप) अपने पास में मत (मन्यथाः) मानो ॥ ७ ॥

भावार्थः—रानी राजा के प्रति कहे कि मैं आप से न्यून नहीं हूं जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हो वैसे मैं स्त्रियों का न्याय करने वाली होती हूं और जैसे पहिले राजा महाराजों की स्त्री प्रजास्थ स्त्रियों की न्याय करने वाली हुई वैसी मैं भी होऊं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में राजों के धर्म का वर्णन होने से इससूक्तके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ छब्बीस का सूक्त ग्यारहवां वर्ग और अठारहवां अनुवाक समाप्त हुआ

अथाग्निमित्यस्यैकादशर्चस्य सप्तविंशत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य
परुच्छेप ऋषिः । अग्निर्देवता १ । २ । ३ । ८ । ९
अष्टिश्छन्दः । ४ । ७ । ११ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः
स्वरः ५ । ६ अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः
स्वरः । १० भुरिगति शक्वरी
छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अथ कीदृशयोः स्त्रीपुरुषयोर्विवाहो भवितुं योग्य इत्याह ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले एकसौ सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में कैसे स्त्री पुरुषों का विवाह होना चाहिये इस विषय का वर्णन किया है ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥

अग्निम् । होतारम् । मन्ये । दास्वन्तम् । वसुम् । सूनुम् । सहसः । जातवेदसम् । विप्रम् । न । जातऽवेदसम् । यः । ऊर्ध्वया । सुऽअध्वरः । देवः । देवाच्या । कृपा । घृतस्य । विऽभ्राष्टिम् । अनु । वष्टि । शोचिषा । आऽजुह्वानस्य । सर्पिषः ॥ १ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) अग्निवद्वर्त्तमानम् (होतारम्) ग्रहीतारम् (मन्ये) जानीयाम् (दास्वन्तम्) दातारम् (वसुम्) ब्रह्मचर्येण

कृताविद्यानिवासम् (सूनुम्) पुत्रम् (सहसः) बलवतः (जात-वेदसम्) प्रसिद्धविद्यम् (विप्रम्)मेधाविनम् (न) इव (जातवेदसम्) प्रकटविद्यम् (यः) (ऊर्ध्वया) उत्कृष्टया विद्यया (स्वध्वरः) सुष्ठु यज्ञस्याऽनुष्ठाता (देवः) कमनीयः (देवाच्या) या देवानञ्चति तया (कृपा) कल्पते समर्थयति यया तया (घृतस्य) आज्यस्य (विभ्राष्टिम्) विविधतया भृज्जन्ति परिपचन्ति येन तम् (अनु) (वष्टि) कामयेत (शोचिषा) प्रकाशेन (आजुह्वानस्य)समन्ताद्धूयमानस्य (सर्पिषः) गन्तुं प्राप्तुमर्हस्य ॥ १ ॥

अन्वयः—हे कन्ये यथाऽहं य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवाच्या कृपा देवोऽस्ति तमाजुह्वानस्य सर्पिषो घृतस्य शोचिषा सह विभ्राष्टि जनमनुवष्टि।यमग्निमिव होतारं दास्वन्तं वसुं सहसस्सूनुं जातवेदसं विप्रन्न जातवेदसं पतिं मन्ये तथेदृशं पतिं त्वमपि स्वीकुरु ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यस्य शुभगुणशीलेषु महती प्रशंसा यस्योत्कृष्टं शरीरात्मबलं भवेत् तं पुरुषं स्त्री पतित्वाय वृणुयात् । एवं पुरुषोऽपीदृशीं स्त्रियं भार्यत्वाय स्वीकुर्यात् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे कन्या जैसे मैं (यः) जो (ऊर्ध्वया) उत्तम विद्या से (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञ का अनुष्ठान अर्थात् आरम्भ करने वाली वह (देवाच्या) जो कि विद्वानों को प्राप्त होनी और जिस से व्यवहार को समर्थ करते उस (कृपा) कृपा से (देवः) जो मनोहर अतिसुन्दर है उस जन को (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार होमने और (सर्पिषः)प्राप्त होने योग्य (घृतस्य) घी के (शोचिषा) प्रकाश के साथ (विभ्राष्टिम्) जिस से अनेक प्रकार पदार्थ को पकाने उस अग्नि के समान (अनुवष्टि) अनुकूलता से चाहता है वा जिस (अग्निम्) अग्नि के समान (होतारम्) ग्रहण करने (दास्वन्तम्) देने वाले (वसुम्)

तथा ब्रह्मचर्य से विद्या के बीच में निवास किये हुए (सहसः) बलवान् पुरुषके (सूनुम्) पुत्रको(जातवेदसम्) जिस की प्रसिद्ध वेदविद्या उस(विप्रम्) मेधावी के (न) समान (जातवेदसम्) प्रगट विद्या वाले विद्वान् को पति (मन्ये) मानती हूं वैसे ऐसे पति को तू भी स्वीकार कर ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जिस की उत्तम गुण वालों में बहुत प्रशंसा जिस का अति उत्तम शरीर और आत्मा का बल हो उस पुरुष को स्त्री पति पने के लिये स्वीकार करे ऐसा पुरुष भी इसी प्रकार की स्त्री को भार्या-पन के लिये स्वीकार करे ॥ १ ॥

पुनः प्रजा राजत्वाय कीदृशं जनमाश्रयेयुरित्याह ॥

फिर प्रजाजन राज्य के लिये कैसे जन का आश्रय करें इस वि० ॥

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः । परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ॥ शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥

यजिष्ठम् । त्वा । यजमानाः । हुवेम । ज्येष्ठम् । अङ्गिरसाम् । विप्र । मन्मऽभिः । विप्रेभिः । शुक्र । मन्मऽभिः । परिज्मानम्ऽइव । द्याम् । होतारम् । चर्षणीनाम् । शोचिःऽकेशम् । वृषणम् । यम् । इमाः । विशः । प्र । अवन्तु । जूतये । विशः ॥ २ ॥

पदार्थः—(यजिष्ठम्) अतिशयेन यष्टारम् (त्वा) त्वाम् (यजमानाः) संगन्तारः (हुवेम) प्रशंसेम (ज्येष्ठम्) अतिशयेन

प्रशस्तम् (अगिङ्रसाम्) प्राणिनाम् (विप्र) मेधाविन् (मन्मभिः) मान्यमानैः (विप्रेभिः) विपश्चिद्भिः सह (शुक्र) शुद्धात्मन् (मन्मभिः) विज्ञानैः (परिज्मानमिव) परितः सर्वतो भोक्तारमिव (द्याम्) प्रकाशम् । (होतारम्) दातारम् (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (शोचिष्केशम्) शोचींषीव केशा यस्य तम् (वृषणम्) बलिष्ठम् (यम्) (इमाः) (विशः) प्रजाः (प्र) (अवन्तु) प्राप्नुवन्तु (जूतये) रक्षणाद्याय (विशः) प्रजाः ॥२॥

अन्वयः-हे विप्र यजमाना वयं मन्मभिर्विप्रेभिः सहाङ्गिरसां मध्ये ज्येष्ठं यजिष्ठं त्वा हुवेम । हे शुक्र यं मन्मभिश्चर्षणीनां होतारं परिज्मानमिव द्यां शोचिष्केशं वृषणं त्वामिमा विशः प्रावन्तु स त्वं जूतये इमा विशः प्राव ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्या यं विद्वांसं प्रशंसेयुः प्रजाश्च तमेवाश्रमाश्रयन्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (विप्र) उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् (यजमानाः) व्यवहारों का संग करने हारे हम लोग(मन्मभिः) मान करने वाले (विप्रेभिः) विचक्षण विद्वानों के साथ (अङ्गिरसाम्) प्राणियों के बीच (ज्येष्ठम्) अतिप्रशंसित (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञ करने वाले (त्वा,हुवेम) तुझ को प्रशंसित करते हैं (शुक्र) शुद्धआत्मा वाले धर्मात्मा जन (यम्) जिस (मन्मभिः) विज्ञानों के साथ (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (होतारम्) दान करने वाले (परिज्मानमिव) सबओर से भोगने हारे के समान (द्याम्) प्रकाश रूप (शोचिष्केशम्) जिस के लपट जैसे चिलकते हुए केश हैं उस (वृषणम्) बलवान् तुझ को (इमाः) ये (विशः) प्रजाजन (प्रावन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें वह तू (जूतये) रक्षा आदि के लिये (विशः) प्रजा जनों को अच्छे प्रकार प्राप्त हो और पाल ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्वान् और प्रजाजन जिस की प्रशंसा करें उसी आप्त सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् का आश्रय सब मनुष्य करें ॥ २ ॥

कोऽत्र प्रजापालनायोत्तमो भवतीत्याह ॥

इस संसार में कौन प्रजा की पालना करने के लिये उत्तम होता है इस वि० ॥

स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः । वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् । निःषहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

सः । हि । पुरु । चित् । ओजसा । विरुक्मता । दीद्यानः । भवति । द्रुहम्ऽतरः । परशुः । न । द्रुहन्ऽतरः । वीळु । चित् । यस्य । समऽऋतौ । श्रुवत् । वनाऽइव । यत् । स्थिरम् । निःऽसहमानः । यमते । न । अयते । धन्वऽसहा । न । अयते । ३ ॥

पदार्थः—(सः) सभेशः (हि) किल (पुरु) बहु । अत्र संहितायामिति दीर्घः (चित्) अपि (ओजसा) बलेन (विरुक्मता) विविधा रुचो भवन्ति यस्मात्तेन (दीद्यानः) प्रकाशमानः (भवति) (द्रुहन्तरः) यो द्रोग्धॄन् तरति (परशुः) कुठारः (न) इव (द्रुहन्तरः) द्रुहं तरति येन सः (वीळु) दृढम् (चित्) (यस्य) (समृतौ) सम्यक् ऋतिः प्राप्तिर्यया तस्याम् (श्रुवत्) यः शृणोति सः (वनेव) यथा वनानि तथा (यत्)

(स्थिरम्) निश्चलम् (निःसहमानः) नितरां सहमाना वीरा यस्य सः (यमते) यच्छति ।अत्र वाच्छन्दसीति छादेशो न (न) निषेधे (अयते) प्राप्नोति (धन्वासहा) यो धनुषा शत्रून् सहते। अत्र छान्दसोन्त्यलोपः (न) निषेधे (अयते) प्राप्नोति ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्य सम्तृतौ चिद्वनेव वीळु स्थिरं बलं यो निःसहमानः श्रुवत् शत्रून् यमते यं शत्रुर्नायते धन्वासहारीन् विजयते यत् यस्य विजयं शत्रुर्नायते यो द्रुहन्तरः परशुर्न पुरु विरुक्मतौजसा सहदीद्यानो द्रुहन्तरो भवति स हि चिद्विजयी जायते ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—मनुष्यैर्यः शत्रुभिर्नाभिभूयते प्रशस्तबलेन तान् विजेतुं शक्नोति स एव प्रजापालकेषु शिरोमणिर्भवतीति वेदितव्यम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिस की (सम्तृतौ) अच्छे प्रकार प्राप्ति कराने वाली क्रिया के निमित्त (चित्) ही (वनेव) बनों के समान (वीळु) दृढ (स्थिरम्) निश्चल बल को (निःसहमानः) निरन्तर सहनशील वीरों वाला (श्रुवत्) सुनता हुआ शत्रुओं को (यमते) नियम में लाता अर्थात् उन के सुने हुए उस बल को छिन्न भिन्न कर उन को शत्रुता करने से रोकता वा जिस को शत्रु जन (नायते) नहीं प्राप्त होता वा (धन्वासहा) जो अपने धनुष् से शत्रुओं को सहने वाला शत्रु जनों को अच्छे प्रकार जीतता वा (यत्) जिस के विजय को शत्रु जन (नायते) नहीं प्राप्त होता वा जो (द्रुहन्तरः) द्रोह करने वालों को तरता वह (परशुः) फरसा वा कुलाढ़ा के (न) समान (पुरु) तीव्र बहुत प्रकार से ज्यों हो त्यों (विरुक्मता) जिस से अनेक प्रकार की प्रीतियां हों उस (ओजसा) बल के साथ (दीद्यानः) प्रकाशमान (द्रुहन्तरः) द्रुहन्तर (भवति) होता अर्थात् जिस के सहाय से अति द्रोह करने वाले शत्रु को जीतता (सः, हि, चित्) वही कभी विजयी होते हैं॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—मनुष्यों जानना चाहिये कि जो शत्रुओं से नहीं पराजित होता और अपने प्रशंसित बल से उन को जीत सकता है वही प्रजा पालने वालों में शिरोमणि होता है ॥ ३ ॥

पुनर्न्यायाधीशैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर न्यायाधीशों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

दृढा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे। प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा। स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥

दृढा । चित् । अस्मै । अनु । दुः । यथा । विदे । तेजिष्ठाभिः । अरणिऽभिः । दाष्टि । अवसे । अग्नये । दाष्टि । अवसे । प्र । यः । पुरूणि । गाहते । तक्षत् । वनाऽइव । शोचिषा । स्थिरा । चित् । अन्ना । नि । रिणाति । ओजसा । नि । स्थिराणि । चित् । ओजसा ॥ ४ ॥

पदार्थः—(दृढा) दृढानि (चित्) (अस्मै) सभाध्यक्षाय (अनु) (दुः) दद्युः। अत्र लुङ्यडभावः (यथा) येन प्रकारेण (विदे) विदुषे (तेजिष्ठाभिः) अतिशयेन तेजस्विनीभिः (अरणिभिः) (दाष्टि) दशति (अवसे) रक्षकाय (अग्नये) अग्नयइव वर्त्तमानाय (दाष्टि) दशति (अवसे) रक्षणाद्याय (प्र) (यः) (पुरूणि) बहूनि (गाहते) विलोडते (तक्षत्) जलादीनि तनूकुर्वन् (वनेव)

रश्मय इव । वनमिति रश्मिना० निघं० १ । ५ (शोचिषा) न्याय-सेनाप्रकाशेन (स्थिरा) स्थिराणि (चित्) अपि (अन्ना) अत्तुमर्हाण्यन्नानि (नि) (रिणाति) प्राप्नोति (ओजसा) पराक्रमेण (नि) (स्थिराणि) (चित्) अपि (ओजसा) कोमलेन कर्मणा ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा विद्वाँस्तेजिष्ठाभिररणिभिरस्मै विदेऽवसेऽग्नये दाष्टि विद्वांसो वा दृढा स्थिरा निश्चलानि चिद्विज्ञानान्यनुदुस्तथा योऽवसे दाष्टि तक्षत्सन् सूर्यो वनेव शोचिषा पुरूणि शत्रुदलानि प्रगाहते । ओजसा स्थिराणि कर्माणि निरिणाति चिदोजसाऽन्ना चिन् निरिणाति स सुखमवाप्नोति ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा विपश्चितो विद्याप्रचारेण मनुष्याणामात्मनः प्रकाश्य सर्वान् पुरुषार्थे नयन्ति तथा विद्वांसो न्यायाधीशाः प्रजा उद्यमयन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे विद्वान् (तेजिष्ठाभिः) अत्यन्त तेज वाली (अरणिभिः) अरणियों से (अस्मै) इस (विदे) शास्त्रवेत्ता (अवसे) रक्षा करने वाले (अग्नये) अग्नि के समान वर्त्तमान सभाध्यक्ष के लिये (दाष्टि) ओषिली को घिसने से काटता वा विद्वान् जन (दृढा) (स्थिरा) निश्चल (चित्) भी विज्ञानों को (अनु,दुः) अनुक्रम से देवें वैसे (यः) जो (अवसे) रक्षाआदि करने के लिये (दाष्टि) काटता अर्थात् उक्त क्रिया को करता वा (तक्षन्) अपने तेज से जल आदि को छिन्न भिन्न करता हुआ सूर्य मण्डल (वनेव) किरणों को जैसे वैसे (शोचिषा) न्याय और सेना के प्रकाश से (पुरूणि) बहुत शत्रु दलों को (प्र, गाहते) अच्छे प्रकार विलोडता वा (ओजसा) पराक्रम से (स्थिराणि) स्थिर कर्मों को (नि) निरन्तर प्राप्त होता (चित्) और (ओजसा) कोमल काम से (अन्ना) खाने योग्य अन्नों को (चित्) भी (नि, रिणाति) निरन्तर प्राप्त होता है वह सुख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में दो उपमालंकार हैं—जैसे विद्वान् जन विद्या के प्रचार से मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कर सब को पुरुषार्थी बनाते हैं वैसे न्यायाधीश विद्वान् प्रजाजनों को उद्यमी करते हैं ॥ ४ ॥

पुनर्न्यायाधीशैः किमनुष्ठेयमित्याह ॥

फिर न्यायाधीशों को क्या अनुष्ठान वा आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात्। आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म्म न सूनवे। भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥

तम् । अस्य । पृक्षम् । उपरासु । धीमहि । नक्तम् । यः । सुदर्शऽतरः । दिवाऽतरात् । अप्रऽआयुषे । दिवाऽतरात् । आत् । अस्य । आयुः । ग्रभणऽवत् । वीळु । शर्म । न । सूनवे । भक्तम् । अभक्तम् । अवः । व्यन्तः । अजराः । अग्नयः । व्यन्तः । अजराः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(तम्) (अस्य) संसारस्य (पृक्षम्) सम्पृक्तारम् (उपरासु) दिक्षु । उपरा इति दिङ्ना० निघं० १ । ६ । (धीमहि) दधीमहि (नक्तम्) रात्रौ (यः) (सुदर्शतरः) सुष्ठु द्रष्टुं योग्यः सुदर्शोऽतिशयेन सुदर्शः पूर्णकलश्चन्द्रइव (दिवातरात्) अतिशयेन दिवा दिवातरस्तस्मात् सूर्यात् (अप्रायुषे) यः प्रैति स प्रायुट्

न प्रायुडप्रायुट् तस्मै (दिवातरात्) अतिशयेन दिवातरः सूर्यइव तस्मात् (आत्) (अस्य) जनस्य (आयुः) जीवनम् (ग्रभणवत्) प्रशस्तं ग्रभणं ग्रहणं विद्यते यस्मिंस्तत् (वीळु) दृढम् (शर्म) गृहम् (न) इव (सूनवे)पुत्राय(भक्तम्) सेवितम् (अभक्तम्) असेवितम् (अवः) रक्षणादियुक्तम् (व्यन्तः) व्याप्नुवन्तः (अजराः) वयोहानिरहिताः (अग्नयः) विद्युत इव (व्यन्तः) कामयमानाः (अजराः) वयोहानिविरहाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः सुदर्शतरोऽस्य दिवातरादप्रायुषे नक्तं सर्वान् दर्शयतीव तं पृक्षं दिवातरादुपरासु वयं धीमहि । आदस्य ग्रभणवद्वीळु भक्तमभक्तमव आयुः सूनवे न शर्म व्यन्तोऽजरा अग्नय इव व्यन्तोऽजरा वयं धीमहि ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा चन्द्रो नक्षत्राण्योषधीश्च पोषयति तथा सज्जनैः प्रजाः पोषणीयाः । यथा सन्तानान् पितरौ प्रीणीतस्तथा सर्वान् प्राणिनो वयं प्रीणीयाम ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो(सुदर्शतरः) अतीव सुन्दर देखनेयोग्य पूरी कलाओं से युक्त चन्द्रमा के समान राजा (अस्य) इस संसार का (दिवातरात्) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्य से (अप्रायुषे) जो व्यवहार नहीं प्राप्त होता उस के लिये (नक्तम्) रात्रि में सब पदार्थों को दिखलाता सा है (तम्) उस (पृक्षम्) उत्तम कामों का सम्बन्ध करने वाले को (दिवातरात्) अतीव प्रकाशवान् सूर्य के तुल्य उस से(उपरासु)दिशाओं में हमलोग (धीमहि) धारण करें अर्थात् सुनें (आत्) इस के अनन्तर (अस्य) इस मनुष्य का (ग्रभणवत्) जिस में प्रशंसित सब व्यवहारों का ग्रहण उस (वीळु) दृढ (भक्तम्) सेवन किये वा (अभक्तम्) न सेवन किये हुए (अवः) रक्षा

आदि युक्त कर्म और (आयुः) जीवन को (सूनवे) पुत्र के लिये (न) जैसे वैसे (शर्म) घर को (व्यन्तः) विविध प्रकार से प्राप्त होते हुए (अजराः) पूर्णावस्था वाले वा (अग्नयः) बिजुली रूप अग्नि के समान (व्यन्तः) सब पदार्थों की कामना करते हुए (अजराः) अवस्था हानि से रहित हम लोग धारण करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे चन्द्रमा तारागण और ओषधियों को पुष्ट करता है वैसे सज्जनों को प्रजाजनों का पालन पोषण करना चाहिये जैसे सन्तानों को पिता माता तृप्त करते हैं वैसे सब प्राणियों को हम लोग तृप्त करें ॥ ५ ॥

अथ राजादयः किं कुर्य्युरित्याह ॥
अब राजा आदि क्या करें इस वि० ॥

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरा-
स्विष्टनिरार्त्तनास्विष्टनिः। आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य
केतुरर्हणा। अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे
जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥

सः । हि । शर्धः । न । मारुतम् । तुविऽस्वनिः । अप्नस्वतीषु । उर्वरासु । इष्टनिः । आर्त्तनासु । इष्टनिः । आदत् । हव्यानि । आऽददिः । यज्ञस्य । केतुः । अर्हणा । अध । स्म । अस्य । हर्षतः । हृषीवतः । विश्वे । जुषन्त । पन्थाम् । नरः । शुभे । न । पन्थाम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(सः) विद्वान् (हि) खलु (शर्धः) बलम् (न) इव (मारुतम्) मरुतामिमम् (तुविस्वनिः) तुविर्वृद्धा स्वनिरुपदेशो

यस्य सः (अप्रस्वतीषु) प्रशस्तमप्रोऽपत्यं विद्यते यासां तासु (उर्वरासु) सुन्दरवर्णयुक्तासु (इष्टनिः) इच्छाविशिष्टः । अत्रेषधातोर्बाहुलकादौणादिकोऽनिः प्रत्ययस्तुगागमश्च (आर्त्तनासु) या आर्तयन्ति सत्ययन्ति (इष्टनिः) यष्टुं योग्यः (आदत्) अद्यात् (हव्यानि) अत्तुमर्हाणि (आदादिः) आदाता (यज्ञस्य) संगन्तव्यस्य व्यवहारस्य (केतुः) ज्ञानवान् (अर्हणा) सत्कृतानि (अध) अथ (स्म) एव (अस्य) (हर्षतः) प्राप्तहर्षस्य (हृषीवतः) बह्वाऽऽनन्दयुक्तस्य । अत्रान्येषामपिदृश्यतइति पूर्वपदस्य दीर्घः (विश्वे) सर्वे (जुषन्त) सेवन्ताम् (पन्थाम्) पन्थानम् (नरः) नायकाः (शुभे) शोभनाय (न) इव (पन्थाम्) धर्म्यं मार्गम् । अत्र वर्णव्यत्ययेन नस्य स्थाने अकारादेशः ॥६॥

अन्वयः—हे विश्वे नरो यूयं हृषीवतो हर्षतोऽस्य यज्ञस्य शुभे न पन्थां जुषन्ताध यं केतुरादददिरर्हणा हव्यान्यादन्मारुतं शर्धो नाप्रस्वतीपूर्वरास्वार्त्तनासु तुविष्वणिरिष्टनिरस्ति स स्मेष्टनिर्हि न्यायपन्थां प्राप्तुमर्हति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकारौ—ये मनुष्या धर्मेणोपार्जितानां पदार्थानां भोगं कुर्वन्तः प्रजासु धर्मविद्याः प्रचारयन्ति ते धर्ममार्गं प्रचारयितुं शक्नुवन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (विश्वे) सब (नरः) व्यवहारों की प्राप्ति कराने वाले मनुष्यो तुम (हृषीवतः) जो बहुत आनन्द से भरा (हर्षतः) और जिस से सब प्रकार का आनन्द प्राप्त हुआ (अस्य) इस (यज्ञस्य) संग करने अर्थात् पाने योग्य व्यवहार की(शुभे) उत्तमता के लिये (न) जैसे हो वैसे (पन्थाम्) धर्म

युक्त मार्ग का (नुपन्त) सेवन करो (अध) इस के अनन्तर जो (केतुः) ज्ञानवान् (आददिः) ग्रहण करने हारा (अर्हणा) सत्कार किये अर्थात् नम्रता के साथ हुए (हव्यानि) भोजन के योग्य पदार्थों को (आदत्) खावे वा (मारुतम्) पवनों के (शर्धः) बल के (न) समान (अप्रस्वतीषु) जिन के प्रशंसित सन्तान विद्यमान उन (उर्वरासु) सुन्दरी (आर्त्तनासु) सत्य आचरण करने वाली स्त्रियों के समीप (सुविश्वणिः) जिस की बहुत उत्तम निरन्तर बोल चाल (इष्टनिः) और जो सत्कार करने योग्य है (सः, स्म) वही विद्वान् (इष्टनिः) इच्छा करने वाला (हि) निश्चय के साथ (पन्थाम्) न्याय मार्ग को प्राप्त होने योग्य होता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में दो उपमालं०—जो मनुष्य धर्म से इकठ्ठे किये हुए पदार्थों का भोग करते हुए प्रजाजनों में धर्म और विद्या आदि गुणों का प्रचार करते हैं वे दूसरों से धर्ममार्ग का प्रचार करा सकते हैं

अथाऽध्यापकाऽध्येतारः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब पढ़ाने पढ़ने वाले कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

द्विता यदीं कीस्तासों अभिद्यवो नमस्यन्तं उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तों दाशा भृगवः। अग्निरीशे वसूनां शुचियों धर्णिरेषाम्। प्रियाँ अपिधींर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

द्विता । यत् । ईम् । कीस्तासः । अभिऽद्यवः । नमस्यन्तः । उपऽवोचन्त । भृगवः । मथ्नन्तः । दाशा । भृगवः । अग्निः । ईशे । वसूनाम् । शुचिः । यः । धर्णिः । एषाम् । प्रियान् । अपिऽधीन् । वनिषीष्ट । मेधिरः । आ । वनिषीष्ट । मेधिरः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(द्विता) द्वयोर्भावः (यत्) ये (ईम्) आभिगताम् (कीस्तासः) मेधाविनः । कीस्तास इति मेधाविना० निघं०३। १५ (अभिद्यवः) अभिगता द्यवो दीप्तयो येषां ते (नमस्यन्तः) धर्मं परिचरन्तः (उपवोचन्त) उपगतमुपादिशन्तु (भृगवः) अविद्याऽधर्मनाशनशीलाः (मथ्नन्तः) मन्थनं कुर्वन्तः (दाशा) दानाय । अत्र सुपांसुलुगित्याकारादेशः(भृगवः)दुःखभर्जकाः(अग्निः) विद्युत् (ईशे) ईष्टे। अत्र लोपस्तआत्मनेपदेष्विति तलोपः (वसूनाम्) पृथिव्यादीनां मध्ये (शुचिः) पवित्रः शुद्धिकरः (यः) (धर्णिः) यो धरति सः (एषाम्) प्रत्यक्षाणाम् (प्रियान्) प्रसन्नान् (अपिधीन्) सद्गुणधारकान् दुःखाच्छादकान् (वनिषीष्ट) याचेत (मेधिरः) मेधावी (आ) समन्तात् (वनिषीष्ट) (मेधिरः) सङ्गमकः ॥ ७ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या यत् कीस्तासोऽभिद्यवो नमस्यन्तो भृगवो ज्ञानं मथ्नन्तो भृगवश्च दाशा विद्यादानाय विद्यार्थिने द्वितेमुपवोचन्त । यथैषां वसूनां मध्ये यो धर्णिः शुचिरग्निरस्ति यथा मेधिरः प्रियानपिधीन् वनिषीष्ट यथा मेधिरो दातॄनावनिषीष्ट विद्यामीशे तथैव तं तान् सेवध्वम् ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये विद्यार्थिनो विद्वद्भ्यो नित्यं विद्या याचेरन् विद्वांसश्च तेभ्यो नित्यमेव विद्यां दद्युर्नैतेन दानेन ग्रहणेन वा तुल्यं किंचिदप्युत्तमं कर्म विद्यते ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (कीस्तासः) उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् (अभिद्यवः) जिन के आगे विद्या आदि गुणों के प्रकाश (नमस्यन्तः) जो धर्म का सेवन (भृगवः) तथा अविद्या और अधर्म के नाश करते ज्ञान को

(मथ्नन्तः) मथते हुए (भृगवः) और दुःख मिटाते हैं वे (दाशा) विद्यादान के लिये विद्यार्थियों को (द्विता) जैसे दो का होना हो वैसे अर्थात् एक पर एक (ईम्) सन्मुख प्राप्त हुई विद्या (उपवोचन्त) और गुण का उपदेश करें वा जैसे (एषाम्) इन (वसूनाम्) पृथिवी आदि लोकों के बीच (यः) जो (धर्णिः) शिल्पविद्या विषयिक कामों का धारण करने हारा (शुचिः) पवित्र और दूसरों को शुद्ध करने हारा (अग्निः) अग्नि है वा जैसे (मेधिरः) उत्तम बुद्धि वाला (प्रियान्) प्रसन्न चित्त और (अपिधीन्) श्रेष्ठ गुणों का धारण करने और दुःखों को ढांपने वाले विद्वानों को (वनिषीष्ट) याचे अर्थात् उन से किसी पदार्थ को मागे वा (मेधिरः) संग करने वाला पुरुष देने वालों को (आ, वनिषीष्ट) अच्छे प्रकार याचे वा विद्या की (ईशे) ईश्वरता प्रगट करे अर्थात् विद्या के अधिकार को प्रकाशित करे वैसे ही तुम उक्त विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों का सेवन करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो विद्यार्थी विद्वानों से नित्य विद्या मांगें उन के लिये विद्वान् भी नित्य ही विद्या को अच्छेप्रकार देवें क्योंकि इस देने लेने के तुल्य कुछ भी उत्तम काम नहीं है ॥ ७ ॥

अथ कथं राजप्रजाजनोन्नतिः स्यादित्याह ॥

अब कैसे राजा और प्रजाजनों की उन्नति हो इस वि० ॥

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे । अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया । अमी च विश्वे अमृतास आवयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८ ॥

विश्वासाम् । त्वा । विशाम् । पतिम् । हवामहे । सर्वासाम् । समानम् । दम्ऽपतिम् । भुजे । सत्यऽगिर्वाहसम् ।

भुजे । अतिथिम् । मानुषाणाम् । पितुः । न । यस्य । आसया । अमीइति । च । विश्वे । अमृतासः । आ । वयः । हव्या । देवेषु । आ । वयः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(विश्वासाम्) सर्वासाम् (त्वा) त्वाम् (विशाम्) प्रजानाम् (पतिम्) स्वामिनम् (हवामहे) स्वीकुर्महे (सर्वासाम्) समग्राणां क्रियाणाम् (समानम्) पक्षपातरहितम् (दम्पतिम्) स्त्रीपुरुषाख्यं द्वन्द्वम् (भुजे) शरीरे विद्यानन्दभोगाय (सत्यगिर्वाहसम्) सत्याया गिरः प्रापकम् (भुजे) विद्यानन्दभोगाय (अतिथिम्) अतिथिमिव पूजनीयम् (मानुषाणाम्) नराणाम् (पितुः) अन्नम् (न)(यस्य) (आसया) उपवेशनेन (अमी) (च) (विश्वे) सर्वे (अमृतासः) मृत्युरहिताः (आ) अभितः (वयः) विद्याः कामयमानाः (हव्या) होतुमादातुमर्हाणि ज्ञानानि (देवेषु) विद्वत्सु (आ) समन्तात् (वयः) प्राप्तविद्याः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य यथा वयं भुजे विश्वासां विशां सर्वासां प्रजानां पतिं त्वा हवामहे । यथा चामी देवेष्वा वयो हव्या गृहीतवन्त आवयो विश्वेऽमृतासस्सन्तो वयं यस्यासया पितुर्न भुजे मानुषाणां समानमतिथिं सत्यगिर्वाहसं त्वां पतिं हवामहे तथा दम्पतिं भजामः ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यावत्पक्षपातरहिता आप्ता विद्वांसो राज्याऽधिकारिणो न भवन्ति तावद्राजप्रजयोरुन्नतिरपि न भवति॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे हम लोग (भुजे) शरीर में विद्या का आनन्द भोगने के लिये (विश्वासाम्) सब (विशाम्) प्रजा जनों के वा (सर्वासाम्) समस्त क्रियाओं के (पतिम्)पालने हारे अधिपति (त्वा) तुभ्क को (हवामहे) स्वीकार करते हैं(च) और जैसे (अमी) वे (देवेषु) (आ) अच्छे प्रकार (वयः) विद्यादि गुणों को चाहने वाले (हव्या) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों का ग्रहण किये और (आ, वयः) अच्छे प्रकार विद्या आदि गुणों को पाये हुए (विश्वे) सब (अमृतासः) अमर अर्थात् विद्या प्रकाश से मृत्यु दुःख से रहितहुए हमलोग (यस्य) जिस की (आसया) बैठक के (पितुः) अन्न के (न) समान (भुजे) विद्यानन्द भोगने के लिये (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (समानम्) पक्षपात रहित (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य सत्कार करने योग्य (सत्यगिर्वाहसम्) सत्यवाणी की प्राप्ति कराने वाले तुभ्क पालनेहारे को स्वीकार करते वैसे (दम्पतिम्) स्त्री पुरुष का सेवन करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जब तक पक्षपात रहित समग्र विद्या को जाने हुए धर्मात्मा विद्वान् राज्य के अधिकारी नहीं होते हैं तब तक राजा और प्रजा जनों की उन्नति भी नहीं होती है ॥ ८ ॥

पुनः राजादयो जनाः कीदृशा जायन्त इत्याह ॥

फिर राजा आदि कैसे होते इस वि० ॥

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये । शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः । अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥

त्वम् । अग्ने । सहसा । सहन्ऽतमः । शुष्मिन्ऽतमः । जायसे । देवऽतातये । रयिः । न । देवऽतातये । शुष्मिन्ऽतमः ।

हि । ते । मदः । द्युम्निन्ऽतमः । उत । क्रतुः । अध । स्म ।
ते । परि । चरन्ति । अजर । श्रुष्टीऽवानः । न । अजर ॥९॥

पदार्थः—(त्वम्)(अग्ने)शूर वीर विद्वन्(सहसा)बलेन(सहन्तमः) अतिशयेन सहाइति सहन्तमः (शुष्मिन्तमः) प्रशंसितं बलं विद्यते यस्य स शुष्मी सोऽतिशयितः(जायसे) (देवतातये) देवाय विदुषे (रयिः) श्रीः (न) इव (देवतातये) देवानां विदुषामेव सत्काराय (शुष्मिन्तमः) अतिशयेन बलवान् (हि) खलु (ते) तव (मदः) हर्षः (द्युम्निन्तमः) बहूनि द्युम्नानि धनानि विद्यन्ते यस्य स द्युम्नी अतिशयेन द्युम्नी इति द्युम्निन्तमः । अत्र सर्वत्र नाद्घस्येतिनुट् (उत) अपि (क्रतुः) (अध) आनन्तर्ये (स्म) एव । अत्र निपातस्यचेति दीर्घः (ते) तव (परि) सर्वतः (चरन्ति) (अजर) जरादोषरहित (श्रुष्टीवानः) शीघ्रक्रियायुक्ताः (न) इव (अजर) योऽजे जन्मरहित ईश्वरे रमते तत्सम्बुद्धौ । अत्र वाच्छन्दसीत्यविहितो डः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे अजर नेवाजराग्ने विद्वन् देवतातये रयिर्नेव देवतातये सहन्तमः शुष्मिन्तमस्त्वं सहसा जायसे यस्य ते तव शुष्मिन्तमो द्युम्निन्तमो मद उतापि क्रतुर्हि विद्यते।अध ते तव श्रुष्टीवानः स्म परिचरन्ति तं त्वां सर्वे वयमाश्रयेम ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये मनुष्याः सशरीरात्मबलाः प्राज्ञाः श्रीमत्प्रजा जायन्ते ते सुखकारका भवन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (अजर) तरुण अवस्था वाले के (न) समान (अजर) अजन्मा परमेश्वर में रमते हुए (अग्ने) शूरवीर विद्वान् (देवतातये) विद्वान्

रसीद मूल्य वेदभाष्य

वृन्दावनदास काशीपुर	३।)
बाबू आनन्दीप्रसाद बांदीकुई	४)
मुं० रूपकिशोर जी बस्ती	३२)
गंगाराम	४)
रंगापामंगेश्वर	७८।)

जनवरी सं० ८६

पं० श्यामनारायण जयपुर	८)
लाला सोनीलाल जी आगरा	८)
सरदार बहादुर मुन्शी अमीनचन्द जी	४६)
पं० केशवराम विष्णु लाल पंड्या जी गोरखपुर	८)
ला० किशनचन्द पिशावर	८॥)
पं० शिवदुलारे कुमिल्ला	८)
कुमर शेरसिंह नुनारी	४)

फरवरी ८६

पं० वामन बालकृष्ण शास्त्री	गाडरवाड़ा	४।/)
बा० रामकृष्ण मुकुर जी	सैदपुर	२५)
„ आनन्दी प्रसाद	बांदीकुई	४)

यह पुस्तक मुंशी समर्थदान प्रबंधकर्त्ता के द्वारा वैदिकयंत्रालय प्रयाग में छप कर प्रतिमास की पहिली तारीख को प्रकाशित होता है ॥

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।≈) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥≋).
एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इसग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।≈) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥≋) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रिताबङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय मेनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (९२, ९३) अंक (७६, ७७)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः

संवत् १९४२ चैत्र कृष्ण पक्ष

१—४—८६

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" की भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान आठवें वर्ष के कि जो ६६ । ६७ अङ्क से प्रारंभ हो कर ७६ । ७७ पर पूरा होगा । एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के सात वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है ॥

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ५।॥)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ६)

[ख] एक वेद के ६५ अङ्क तक २१॥ⅉ) और दोनों वेदों के ४३।॥)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की प्रथम तारीख को डाक में डाला जाता है । जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे । परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा । इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे, एक अङ्क ।॥) दो अङ्क ॥ⅉ) तीन अङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्रों में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपने ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करदें । जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायं गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पत्ते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित कर दिया करें । जिस में पुस्तक ठीक २ पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

के लिये (रयिः) धन जैसे (न) वैसे (देवतातये) विद्वानों के सत्कार के लिये (सहन्तमः) अतीव सहनशील (शुष्मिन्तमः) अत्यन्त प्रशंसित बलवान् (त्वम्) आप (सहसा) बल से (जायसे) प्रगट होते हो जिन (ते) आप का (शुष्मिन्तमः) अत्यन्त बलयुक्त (द्युम्निन्तमः) जिस के संबन्ध में बहुत धन विद्यमान वह अत्यन्त धनी (मदः) हर्ष (उत) और (क्रतुः) यज्ञ (हि) ही है (अध) अनन्तर (ते) आप के (श्रुष्टीवानः) शीघ्र क्रिया वाले (स्म) ही (परि, चरन्ति) सब ओर से चलते वा आप की परिचर्या करते उन आप का हमलोग आश्रय करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त अच्छे प्रकार ज्ञाता विद्या आदि धन प्रकाश युक्त संग्रामों वाले होते हैं वे सुख करने वाले होते हैं ॥ ९ ॥

पुनरखिलैर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर समस्त मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

प्र वो मुहे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये । प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे । अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥ १० ॥

प्र । वः । महे । सहसा । सहस्वते । उषःऽबुधे । पशुऽसे । न । अग्नये । स्तोमः । बभूतु । अग्नये । प्रति । यत् । ईम् । हविष्मान् । विश्वासु । क्षासु । जोगुवे । अग्रे । रेभः । न । जरते । ऋषूणाम् । जूर्णिः । होता । ऋषूणाम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(प्र) (वः) युष्माकम् (महे) महते (सहसा) बलेन (सहस्वते) बहुबलयुक्ताय (उषर्बुधे) प्रत्युषःकालजागरकाय (पशुसे) बन्धकाय (न) इव (अग्नये) प्रकाशमानाय (स्तोमः) स्तुतिः (बभूतु) भवतु । अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः । (अग्नये) विद्युतइव (प्रति) प्रत्यक्षे (यत्) (ईम्) सर्वतः(हविष्मान्) प्रशस्तानि हवींषि गृहीतानि विद्यन्ते यस्य सः (विश्वासु) सर्वासु (क्षासु) भूमिषु । क्षेति पृथिवीना० निघं० १ । १(जोगुवे) भृशमुपदेकाय (अग्रे) प्रथमतः (रेभः) उपदेशकः (न) इव (जरते)स्तौति(ऋपूणाम्) प्राप्तविद्यानां जिज्ञासूनां वा (जूर्णिः) रोगवान् (होता) अत्ता (ऋषूणाम्) प्राप्तवैद्यकविद्यानाम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या वः सहस्वत उषर्बुधे पशुषे महे जोगुवेऽग्नये नाग्नये विश्वासु क्षासु हविष्मान् स्तोमः सहसा प्रबभूतु रेभो नाग्रे ऋपूणां विद्या ईम् प्रति जरते यद्यो होता जूर्णिर्भवेत् स ऋषूणां सामीप्यं गत्वाऽरोगी भवेत् ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः—यथा विद्वांसो विद्याप्राप्तये प्रयतन्ते तथेह सर्वैर्मनुष्यैः प्रयतितव्यम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (वः) तुम लोगों के (सहस्वते) बहुत बल युक्त (उषर्बुधे)प्रत्येक प्रभात समय में जागने और (पशुषे) प्रबन्ध बांधने हारे (महे) बड़े(जोगुवे) निरन्तर उपदेशक (अग्नये) बिजुली के(न) समान(अग्नये) प्रकाशमान के लिये (विश्वासु) सब (क्षासु) भूमियों में (हविष्मान्) प्रशंसित ग्रहण किये हुए व्यवहार जिस में विद्यमान वह (स्तोमः) प्रशंसा (सहसा) बल के साथ (प्र, बभूतु) समर्थ हो (रेभः) उपदेश करने वाले के (न)

समान (अग्रे) आगे (ऋपूणाम्) जिन्हों ने विद्या पाई वा जो विद्या को जाना चाहते उन की विद्याओं की (ईम्) सब ओर से (प्राति, जग्ने) प्रत्यक्ष में स्तुति करता (यत्) जो (होता) भोजन करने वाला (जूर्णिः) जूड़ी आदि रोग से रोगी हो वह (ऋपूणाम्) जिन्होंने वैद्य विद्या पाई अर्थात् उत्तम वैद्य हैं उन के समीप जा कर रोग रहित हो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे विद्वान् जन विद्या प्राप्ति के लिये अच्छा यत्न करते हैं वैसे इस संसार में सब मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये॥ १०॥

पुनर्विद्यार्थिभिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर विद्यार्थियों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना। महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै। महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा॥ ११ ॥ १३ ॥

सः । नः । नेदिष्ठम् । ददृशानः । आ । भर । अग्ने । देवेभिः । सऽचनाः । सुऽचेतुना । महः । रायः । सुऽचेतुना । महि । शविष्ठ । नः । कृधि । सम्ऽचक्षे । भुजे । अस्यै । महि । स्तोतृभ्यः । मघवन् । सुऽवीर्यम् । मथीः । उग्रः । न । शवसा ॥ ११ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(सः) विद्वान् (नः) अस्मभ्यम् (नेदिष्ठम्) अतिशयेनान्तिकम् (ददृशानः) दृष्टवान् सन् (आ) समन्तात् (भर) धर (अग्ने) पावक इव वर्त्तमान (देवेभिः) विद्वद्भिः सह

(सचनाः) समवैतुं योग्याः (सुचेतुना) सुष्ठुविज्ञात्रा (महः) महतः (रायः) धनानि (सुचेतुना) सुष्ठु चेतयित्रा (महि) महत् (शविष्ठ) अतिशयेन बलवन् प्राप्तविद्य (नः) अस्मान् (कृधि) कुरु (संचक्षे) सम्यगाख्यानाय (भुजे) पालनाय (अस्यै) प्रजायै (महि) महद्भ्यः (स्तोतृभ्यः) (मघवन्) पूजितधनयुक्त (सुवीर्यम्) शोभनं पराक्रमम् (मथीः) यो दुष्टान् मथ्नाति सः (उग्रः) तेजस्वी (न) इव (शवसा) बलेन॥११॥

अन्वयः—हे मघवन् शविष्ठाग्ने स ददृशानस्त्वं सुचेतुना देवेभिश्च सह नो महः सचना रायआभरास्यै प्रजायै संचक्षे भुजे शवसोग्रो न मथीस्त्वं नेदिष्ठं महि सुवीर्यमाभराऽनेन सुचेतुना महि स्तोतृभ्यो नोऽस्मान्विद्यावतः कृधिः ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—विद्यार्थिभिराप्तानध्यापकान् संप्रार्थ्य संसेव्य पूर्णा विद्याः प्रापणीयाः । येन राजप्रजाजना विद्यावन्तो भूत्वा सततं धर्ममाचरेयुः ॥ ११ ॥

अत्र विद्वद्राजधर्मवर्णनादेतदुक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति सप्तविंशत्युत्तरं शततमं सूक्तं त्रयोदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त (शविष्ठ) अतीव बलवान् विद्यादि गुणों को पाये हुए (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (सः) वह (ददृशानः) देखे हुए विद्वान् आप (सुचेतुना) सुन्दर समझने वाले और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (नः) हमलोगों के लिये (महः) बहुत (सचनाः)

संबन्ध रकने योग्य (रायः) धनों को (आ,भर) अच्छे प्रकार धारण करें (अस्यै) इस प्रजा के लिये (संचक्षे) उत्तमता से कहने उपदेश देने और (भुजे) इस की पालना करने के लिये (शवसा) अपने पराक्रम से (उग्रः) प्रचंड प्रतापवान् (न) के समान (मथीः) दुष्टों को मथने वाले आप (नेदिष्ठम्) अत्यन्त समीप (महि) बहुत (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को अच्छे प्रकार धारण करो और इस (सुचेतुना) सुन्दर ज्ञान देने वाले गुण से (महि) अधिकता से जैसे हो वैसे (स्तोतृभ्यः) स्तुति प्रशंसा करने वालों से (नः) हमलोगों को विद्यावान् (कृधि) करो ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—विद्यार्थियों को चाहिये कि सकल शास्त्र पढ़े हुए धार्मिक विद्वानों की प्रार्थना और सेवा कर पूरी विद्याओं को पावें जिस से राजा और प्रजाजन विद्यावान् हो कर निरन्तर धर्म का आचरण करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और राज धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये ।

यह एकसौ सत्ताईश का सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अयमित्यस्याऽष्टर्चस्याऽष्टविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । अग्निर्देवता । १ निचृदत्यष्टिः । ३ । ४ । ६ । ८ । विराडत्यष्टिश्छन्दः । गांधारः स्वरः । २ । भुरिगष्टिः ५ । ७ निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनर्विद्यार्थिनः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

फिर विद्यार्थी लोग कैसे होवें इस वि० ॥

अयं जा॑यत॒ मनु॑षो॒ धरी॑मणि॒ होता॒ यजि॑ष्ठ
उ॒शिजा॒मनु॑ व्र॒तम॒ग्निः स्वमनु॑ व्र॒तम् । वि॒श्वश्रु॑ष्टिः

सखीयते रयिरिव श्रवस्यते । अदब्धो होता नि षददिडस्पदे परिवीत इडस्पदे ॥ १ ॥

अयम् । जायत । मनुषः । धरीमणि । होता । यजिष्ठः । उशिजाम् । अनु । व्रतम् । अग्निः । स्वम् । अनु । व्रतम् । विश्वऽश्रुष्टिः । सखिऽयते । रयिःऽइव । श्रवस्यते । अदब्धः । होता । नि । सदत् । इळः । पदे । परिऽवीतः । इळः । पदे ॥ १ ॥

पदार्थः–(अयम्) (जायत) जायते (मनुषः) विद्वान् (धरीमणि) धरन्ति सुखानि यस्मिँस्तस्मिन्व्यवहारे (होता) आदाता (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा संगन्ता (उशिजाम्) कामयमानानां जनानाम् (अनु) आनुकूल्ये (व्रतम्) शीलम् (अग्निः) पावकइव (स्वम्) स्वकीयम् (अनु) (व्रतम्) (विश्वश्रुष्टिः) विश्वाः श्रुष्टयस्त्वरिता गतयो यस्य सः । अत्र श्रुधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्तिन्प्रत्ययः । (सखीयते) सखेवाचरति (रयिरिव) श्रीरिव (श्रवस्यते) श्रोष्यमाणाय (अदब्धः) अहिंसितः (होता) दाता (नि) नितराम् (सदत्) सीदति (इळः) स्तोतुमर्हस्य जगदीश्वरस्य (पदे) प्राप्तव्ये विज्ञाने (परिवीतः) परितः सर्वतो वीतं प्राप्तं विज्ञानं येन सः (इळः) प्रशंसितस्य धर्मस्य (पदे) पदनीये ॥ १ ॥

अन्वयः-योऽयमिडस्पदइवेडस्पदेऽदब्धो होता परिवीतस्सन् निषदद्रयिरिव विश्वश्रुष्टिः सन् श्रवस्यतेऽग्निरिवोशिजामनुव्रतमिवाऽनुव्रतं स्वं प्राप्तो धरीमणि होता यजिष्ठः सन् जायत स मनुषो सर्वैः सह सखीयते पूज्यश्च स्यात् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यो विद्यां कामयमानानामनुगामिसुशीलो धर्म्ये व्यवहारे सुनिष्ठः सर्वस्य सुहृत् शुभगुणादाता स्यात् सएव मनुष्यमुकुटमणिर्भवेत् ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (अयम्) यह मनुष्य (इळः) स्तुति के योग्य जगदीश्वर के (पदे) प्राप्त होने योग्य विशेष ज्ञान में जैसे वैसे (इळः) प्रशंसित धर्म के (पदे) पाने योग्य व्यवहार में (अद्रुध:) हिंसा आदि दोष रहित (होता) उत्तमगुणों का ग्रहण करने हारा (परिवीतः) जिस ने सबओर से ज्ञान पाया ऐसा हुआ(नि,षदत्) स्थिर होता (रयिरिव) वा धन के समान(विश्वश्रुष्टिः) जिस की समस्त शीघ्र चालें ऐसा हुआ (श्रवस्यते) सुन ने वाले के लिये (अग्निः) आग के समान वा (उशिजाम्) कामना करने वाले मनुष्यों के (अनु) अनुकूल (व्रतम्) स्वभाव के तुल्य (अनु, व्रतं, स्वम्) अनुकूल ही अपने आचरण को प्राप्त वा (धरीमणि) जिस में सुखों का धारण करने उस व्यवहार में (होता) देने हारा (यजिष्ठः) और अत्यन्त संग करता हुआ (जायत) प्रगट होता वह (मनुषः) मननशील विद्वान् सब के साथ (सखीयते) मित्र के समान आचरण करने वाला और सब को सत्कार करने योग्य होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो विद्या की इच्छा करने वालों के अनुकूल चाल चलन चलने वाला सुशील धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छी नेष्ठा रखने वाला सब का मित्र शुभगुणों का ग्रहण करने वाला हो वही मनुष्यों का मुकुटमणि अर्थात् अति श्रेष्ठशिरधरा होवे ॥ १ ॥

पुनर्विद्वान् किं करोतीत्याह ॥

फिर विद्वान् क्या करता है इस वि० ॥

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता।स नं ऊर्जामुपाभृत्यया

कृपा न जूर्यति । यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥

तम् । यज्ञऽसाधम् । अपि । वातयामसि । ऋतस्य । पथा । नमसा। हविष्मता । देवऽताता । हविष्मता । सः। नः । ऊर्जाम् ।उपऽआभृति। अया। कृपा। न। जूर्यति। यम् । मातरिश्वा । मनवे । पराऽवतः । देवम् । भारिति भाः । पराऽवतः ॥ २ ॥

पदार्थः—(तम्)अग्निमिव विद्वांसम्(यज्ञसाधम्)यज्ञं साध्नुवन्तम् (अपि) (वातयामसि) वातइव प्रेरयेम (ऋतस्य) सत्यस्य (पथा) मार्गेण (नमसा) सत्कारेण (हविष्मता) बहुदानयुक्तेन (देवताता) देवेनेव (हविष्मता) बहुग्रहणं कुर्वता (सः) (नः) अस्मान् (ऊर्जाम्) पराक्रमवताम् (उपाभृति)उपगतमाभृत्या-भूषणं च तत् (अया) अनया। अत्र पृषोदरादिना नलोपः (कृपा) कल्पनया (न) निषेधे (जूर्यति) ज्वरति (यम्) (मातरिश्वा) वायुः (मनवे) मनुष्याय (परावतः) दूरदेशात् (देवम्) दातारम् (भाः) सूर्यदीप्तिरिव (परावतः) दूरदेशात् ॥२॥

अन्वयः—यथा यं देवं परावतो भारिव मनवे मातरिश्वा परावतो देशाद्दधाति सोऽया कृपा न ऊर्जामुपाभृति न जूर्यति यथा च स देवताता हविष्मता ऋतस्य पथा गच्छति तथा हविष्मता नमसा तं यज्ञसाधमपि वयं वातयामसि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्वान् मनुष्यो यथा वायुः सर्वान् मूर्त्तिमतः पदार्थान् धृत्वा प्राणिनः सुखयति तथैव विद्याधर्मौ धृत्वा सर्वान्मनुष्यान्सुखयतु ॥ २ ॥

पदार्थः—जैसे (यम्) जिस (देवम्) गुण देने वाले को (परावतः) दूर से जो (भाः) सूर्य की कान्ति उस के समान (मनवे) मनुष्य के लिये (मातरिश्वा) पवन (परावतः) दूर से धारण करता (सः) वह देने वाला विद्वान् (अया) इस (कृपा) कल्पना से (नः) हम लोगों को (ऊर्जाम्) पराक्रम वाले पदार्थों का (उपाभृति) समीप आये हुआ आभूषण अर्थात् सुन्दर पन जैसे हो वैसे (न) नहीं (जूर्यति) रोगी करता और जैसे वह (देवताता) विद्वान् के समान (हविष्मता) बहुत देने वाले (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से चलता है वैसे (हविष्मता) बहुत ग्रहण करने वाले (नमसा) सत्कार के साथ (तम्) उस अग्नि के समान प्रतापी (यज्ञसाधम्) यज्ञ साधने वाले विद्वान् को (अपि) निश्चय के साथ हम लोग (वातयामसि) पवन के समान सब कार्यों में प्रेरणा देवें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—विद्वान् मनुष्य जैसे पवन सब मूर्त्तिमान् पदार्थों को धारण करके प्राणियों को सुखी करता वैसे ही विद्या और धर्म को धारण कर सब मनुष्यों को सुख देवे ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एवेन सद्यः पर्यैति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत् । शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः । सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥

एवेन । सद्यः । परि । एति । पार्थिवम् । मुहुःऽगीः । रेतः । वृषभः । कनिक्रदत् । दधत् । रेतः । कनिक्रदत् । शतम् । चक्षाणः । अक्षऽभिः । देवः । वनेषु । तुर्वणिः । सदः । दधानः । उपरेषु । सानुषु । अग्निः । परेषु । सानुषु ॥ ३ ॥

पदार्थः—(एवेन) गमनेन (सद्यः) शीघ्रम् (परि) सर्वतः (एति) प्राप्नोति (पार्थिवम्) पृथिव्यां विदितम् (मुहुर्गीः) मुहुर्मुहुर्गिरं प्राप्तः (रेतः) जलम् (वृषभः) वर्षकः (कनिक्रदत्) भृशं शब्दयन् (दधत्) धरन् (रेतः) वीर्यम् (कनिक्रदत्) अत्यन्तं शब्दयन् (शतम्) असंख्यातानुपदेशान् (चक्षाणः) उपदिशन् (अक्षभिः) इन्द्रियैः (देवः) देदीप्यमानः (वनेषु) रश्मिषु (तुर्वणिः) तमः शीतं हिंसन् (सदः) सीदन्ति येषु तान् (दधानः) धरन् (उपरेषु) मेघेषु (सानुषु) विभक्तेषु शिखरेषु (अग्निः) विद्युत्सूर्यरूपः (परेषु) उत्कृष्टेषु (सानुषु) शैलशिखरेषु ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं यथा मुहुर्गी रेतः कनिक्रददिव रेतः कनिक्रदद्दधद्वृषभो वनेषु तुर्वणिर्देव उपरेषु सानुषु परेषु सानुषु च सदो दधानोऽग्निरेवेन पार्थिवं सद्यः पर्येति तथाऽक्षभिः शतं चक्षाणो भव ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यो वायुश्च सर्वं धृत्वा मेघं वर्षयित्वा सर्वं जगदानन्दयति तथा विद्वांसो वेदविद्यां धृत्वाऽन्येषामात्मसूपदेशान् वर्षयित्वा सर्वान् मनुष्यान् सुखयन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् आप जैसे (मुहुर्गीः) वार २ वाणी को प्राप्त (रेनः) जल को (कनिक्रदत्) निरन्तर गर्जाता सा (रेनः) पराक्रम को (कनिक्रदत्) अतीव शब्दायमान करता और (दधत्) धारण करता हुआ (वृषभः) वर्षा करने और (वनेषु) किरणों में (तुर्वणिः) अन्धकार और शीत का विनाश करता हुआ (देवः) निरन्तर प्रकाशमान (उपरेषु) मेघों और (सानुषु) अलग २ पर्वत के शिखरों वा (परेषु) उत्तम (सानुषु) पर्वतों के शिखरोंमें (सदः) जिन में जन बैठते हैं उन स्थानों को (दधानः) धारण करता हुआ (अग्निः) बिजुली तथा सूर्यरूप अग्नि (एवेन) अपनी लपट झपट चाल से (पार्थिवम्) पृथिवी में जाने हुए पदार्थ को (सद्यः) शीघ्र (पर्येति) सब ओर से प्राप्त होता वैसे (अक्षभिः) इन्द्रियों से (शतम्) सैकड़ों उपदेशों को (चक्षाणः) करने वाले होते हुए प्रसिद्ध हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य और वायु सब को धारण और मेघ को वर्षा कर सब जगत् का आनन्द करते वैसे विद्वान् जन वेद विद्या को धारण कर औरों के आत्माओं में अपने उपदेशों को वर्षा कर सब मनुष्यों को सुख देते हैं ॥ ३ ॥

पुनः के विद्वांसोऽर्चनीया भवन्तीत्याह ॥

फिर कौन विद्वान् सत्कार के योग होते हैं इस वि० ॥

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति । क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे । यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

सः । सुऽक्रतुः । पुरःऽहितः । दमेऽदमे । अग्निः । यज्ञस्य । अध्वरस्य । चेतति । क्रत्वा । यज्ञस्य । चेतति । क्रत्वा ।

वे॒धाः । इ॒षु॒ऽयते । विश्वा॑ । जा॒तानि॑ । प॒स्प॒शे । यतः॑ ।
घृ॒त॒ऽश्रीः । अति॑थिः । अजा॑यत । वह्नि॑ः । वे॒धाः । अजा॑यत ॥४॥

पदार्थः—(सः) विद्वान् (सुक्रतुः) सुष्ठुकर्मप्रज्ञः (पुरोहितः) संपादितहितपुरस्सरः (दमेदमे) गृहे २ (अग्निः) पावकइव वर्त्तमानः (यज्ञस्य) विद्वत्सत्काराऽभिधस्य (अध्वरस्य) हिंसितुमनर्हस्य (चेतति) संज्ञापयाति (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वा (यज्ञस्य) संगन्तुमर्हस्य (चेतति) ज्ञापयाति (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वा (वेधाः) मेधावी (इषूयते) इषुरिवाचरति (विश्वा) सर्वाणि (जातानि) उत्पन्नानि (पस्पशे) प्रबध्नाति (यतः) (घृतश्रीः) घृतमाज्यं सेवमानः (अतिथिः) पूजनीयोऽविद्यमान तिथिः (अजायत) जायेत (वह्निः) वोढेव (वेधाः) मेधावी (अजायत) जायेत ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः सुक्रतुः पुरोहितोऽग्निरिव दमेदमे क्रत्वा यज्ञस्य चेततीवाऽध्वरस्य चेतति क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निरिव वेधा अजायत सएव सर्वैर्विद्योपदेशाय समाश्रयितव्यः ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये विद्वांसो देशे देशे नगरे नगरे द्वीपे द्वीपे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे च सत्यमुपदिशन्ति ते सर्वैः सत्कर्त्तव्या भवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और कर्म वाला (पुरोहितः) प्रथम जिस ने हित सिद्ध किया और (अग्निः) आग के समान प्रतापी

वर्त्तमान (दमे दमे) घर २ में (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि वा कर्म से (यज्ञस्य) विद्वानों के सत्कार रूप कर्म की (चेतति) अच्छी चितौनी देनेहुए के समान (अध्वरस्य) न छोडने (यज्ञस्य) किन्तु संग करने योग्य उत्तम यज्ञ आदि काम का (चेतति) विज्ञान कराता वा जो (क्रत्वा) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्म से (वेधाः) धीर बुद्धि वाला (इषूयते) वाण के समान विषयों में प्रवेश करता और (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पस्पशे) प्रबन्ध करता वा (यतः) जिस से (घृतश्रीः) घी का सेवन करता हुआ (अतिथिः) जिस की कोई कहीं ठहरने की तिथि निश्चत नहीं वह सत्कार के योग्य विद्वान् (अजायत) प्रसिद्ध होवे और (वह्निः) वस्तु के गुणादि कों की प्राप्ति कराने वाले अग्नि के समान (वेधाः) धीर बुद्धि पुरुष (अजायत) प्रसिद्ध होवें (सः) वही विद्वान् विद्या के उपदेश के लिये सब को अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो विद्वान् देश२नगर२ द्वीप२गांव२ और घर २ में सत्य का उपदेश करते वे सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

केऽत्र कल्याणविधायका भवन्तीत्याह ॥

इस संसार में उत्तम सुख का विधान करने वाले कौन होते हैं इस वि० ॥

क्रत्वा यद॑स्य तवि॑षीषु पृञ्चतेऽग्नेरवे॑ण म॒रुतां॒ न भो॒ज्ये॑षि॒राय॒ न भो॒ज्या॑ । स हि ष्मा॒ दान॒मिन्व॑ति॒ वसू॑नां॒ च म॒ज्मना॑ । स न॑स्त्रासते दु॒रिता॑द॑भि॒ह्रुत॒ः शंसा॑द॒घाद॑भि॒ह्रुत॑ः ॥ ५ ॥ १४ ॥

क्रत्वा॑ । यत् । अ॒स्य॒ । तवि॑षीषु । पृ॒ञ्चते॑ । अ॒ग्नेः । अवे॑न । म॒रुता॑म् । न । भो॒ज्या॑ । इ॒षि॒राय॑ । न । भो॒ज्या॑ । सः॒ । हि । स्म॒ । दान॑म् । इन्व॑ति । वसू॑नाम् । च॒ । म॒ज्मना॑ ।

सः । नः । त्रासते । दुःऽइतात् । अभिऽह्रुतः । शंसात् । अघात् । अभिऽह्रुतः । ५ । १४ ॥

पदार्थः—(क्रत्वा) प्रज्ञया (यत्) यः (अस्य) सेनेशस्य (तविषीषु) प्रशस्तबलयुक्तासु सेनासु (पृञ्चते) सम्बध्नाति (अग्नेः) विद्युतः (अवेन) रक्षणाद्येन (मरुताम्) वायूनाम् (न) इव (भोज्या) भोक्तुं योग्यानि (इषिराय) प्राप्तविद्याय (न) इव (भोज्या) पालयितुं योग्यानि (सः) (हि) (स्म) एव । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (दानम्) दीयते यत्तत् (इन्वति) प्राप्नोति (वसूनाम्) प्रथमकोटिप्रविष्टानां विदुषाम् (च) पृथिव्यादीनां वा (मज्मना) बलेन (सः) (नः) अस्मान् (त्रासते) उद्वेजयति (दुरितात्) दुःखप्रदायिनः (अभिह्रुतः) आभिमुख्यं प्राप्तात् कुटिलात् (शंसात्) प्रशंसनात् (अघात्) पापात् (अभिह्रुतः) अभितः सर्वतो वक्रात् ॥ ५ ॥

अन्वयः—यदस्य क्रत्वाऽवेन मरुतामग्नेरिषिराय भोज्या नेव भोज्या न तविषीषु पृञ्चते यो हि मज्मना वसूनां च दानमिन्वति यो नोऽभिह्रुतो दुरितादभिह्रुतोऽघात् त्रासते शंसात् संयोजयति स स्म सुखं प्राप्नोति स च सुखकारी जायते स स्म विद्वान् पूज्यः स सर्वोऽभिरक्षको भवति ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये सुशिक्षाविद्यादानेन दुष्टस्वभाव गुणेभ्योऽधर्माचरणेभ्यश्च निवर्त्य शुभगुणेषु प्रवर्त्तयन्ति तेऽत्र कल्याणकारका आप्ता भवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (अस्य) इस सेनापति की (क्रत्वा) बुद्धि और (अवेन) रक्षा आदि काम से (मरुताम्) पवनों और (अग्नेः) बिजुली आग की (इषिराय) विद्या को प्राप्त हुए पुरुष के लिये (भोज्या) भोजन करने योग्य पदार्थों के (न) समान वा (भोज्या) पालने योग्य पदार्थों के (न) समान पदार्थों का (तविषीषु) प्रशंसित बलयुक्त सेनाओं में (पृञ्चने) सम्बन्ध करना वा जो (हि) ठीक २ (मज्मना) बल से (वसूनाम्) प्रथम कक्षा वाले विद्वानों तथा (च) पृथिव्यादि लोकों का (दानम्) जो दिया जाता पदार्थ उस को (इन्वति) प्राप्त होना वा जो (नः) हम लोगों को (अभिह्रुतः) आगे आये हुए कुटिल (दुरितात्) दुःखदायी (आभिह्रुतः) सब ओर से टेढ़े बेड़े छोटे बड़े (अघात्) पाप से (त्रासते) उद्वेग करना अर्थात् उठाता वा (शंसात्) प्रशंसा से संयोग कराता (सः, स्म) वही सुख को प्राप्त होता और (सः) वह सुख करने वाला होता तथा वही विद्वान् सब के सत्कार करने योग्य और वह सभों की ओर से रक्षा करने हारा होता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो उत्तम शिक्षा और विद्या के दान से दुष्टस्वभावी प्राणियों और अधर्म के आचरणों से निवृत्त कराके अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराते वे इस संसार में कल्याण करने वाले धर्मात्मा विद्वान् होते हैं ॥ ५ ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस वि० ॥

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत् । विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे । विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६ ॥

विश्वः । विऽहायाः । अरतिः । वसुः । दधे । हस्ते । दक्षिणे । तरणिः । न । शिश्रथत् । श्रवस्यया । न । शिश्रथत् विश्वस्मै । इत् । इषुध्यते । देवऽत्रा । हव्यम् । आ । ऊहिषे । विश्वस्मै । इत् । सुऽकृते । वारम् । ऋण्वति । अग्निः । द्वारा । वि । ऋण्वति ॥ ६ ॥

पदार्थः—(विश्वः) सर्वः (विहायाः) शुभगुणव्याप्तः (अरतिः) प्रापकः (वसुः) प्रथमकल्पब्रह्मचर्यः (दधे) धरामि (हस्ते) (दक्षिणे) (तरणिः) तारकः (न) निषेधे (शिश्रथत्) श्रथयेत् (श्रवस्यया) आत्मनः श्रव इच्छया (न) निषेधे (शिश्रथत्) श्रथयेत् । अत्रोभयत्राऽडभावः (विश्वस्मै) सर्वस्मै (इत्) एव (इषुध्यते) इषुध इवाचरति तस्मै (देवत्रा) देवेष्विति (हव्यम्) दातुमर्हम् (आ) (ऊहिषे) वितर्कयसि (विश्वस्मै) (इत्) इव (सुकृते) सुष्ठु कर्त्रे (वारम्) पुनः पुनर्वर्त्तुम् (ऋण्वति) प्राप्नोति (अग्निः) विद्युदिव (द्वारा) द्वाराणि (वि) विशेषाऽर्थे (ऋण्वति) प्राप्नोति ॥ ६ ॥

अन्वयः—विश्वो विहाया अरतिस्तरणिर्वसुः श्रवस्ययाऽग्निर्न शिश्रथदिव न शिश्रथद्दक्षिणे हस्ते आमलकइव देवत्राहं विद्या दधे विश्वस्मा इषुध्यते त्वं हव्यमोहिषे तथेद्यो विश्वस्मै सुकृते द्वारा ऋण्वति स सुखमिद्वारं व्यृण्वति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा सूर्यः सर्वान् व्यक्तान् पदार्थान् प्रकाश्य सर्वेभ्यः सर्वाणि सुखानि जनयति तथाऽहिंसका विद्वांसो विद्याः प्रकाश्य सर्वानानन्दयन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—(विश्वः) समग्र (विहायाः) विद्या आदि शुभगुणों में व्याप्त (अरतिः) उत्तम व्यवहारों की प्राप्ति कराता और (तरणिः) तारने हारा (वसुः) प्रथम श्रेणी का ब्रह्मचारी विद्वान्(अवस्यया)अपनी उत्तम उपदेश सुनने की इच्छा से जैसे (अग्निः) विजुली न (शिश्रथत्) शिथिल हो वैसे(न) नहीं (शिश्रथत्)शिथिल होवा(दक्षिणे) दाहिने(हस्ते)हाथ में जैसे आमलक धरें वैसे (देवत्रा) विद्वानों में मैं विद्या को (दधे) धारण करूं वा (विश्वस्मै) सब (इषुध्यते) धनुष् के समान आचरण करते हुए जनसमूह के लिये तूं (हव्यम्) देने योग्य पदार्थ का (आ, ऊहिषे) तर्कवितर्क करता (इत्) वैसे ही जो (विश्वस्मै) सब (सुक्रते) सुकर्म करने वाले जनसमूह के लिये (द्वारा) उत्तम व्यवहारों के द्वारों को (ऋण्वति) प्राप्त होता वह सुख (इत्) ही के (वारम्) स्वीकार करने को (वि, ऋण्वति) विशेषता से प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे सूर्य सब व्यक्तपदार्थों को प्रकाशित कर सब के लिये सब सुखों को उत्पन्न करता वैसे हिंसा आदि दोषों से रहित विद्वान् जन विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्दित करते हैं ॥ ६ ॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्याह ॥

फिर वे क्या करें इस वि० ॥

स मानुषे वृजने शंतमो हितो३ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः । स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते । स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥

सः । मानुषे । वृजने । शम्ऽतमः । हितः । अग्निः । यज्ञेषु । जेन्यः । न । विश्पतिः । प्रियः । यज्ञेषु । विश्पतिः । सः । हव्या । मानुषाणाम् । इळा । कृतानि । पत्यते । सः । नः । त्रासते । वरुणस्य । धूर्तेः । महः । देवस्य । धूर्तेः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(सः) विद्वान् (मानुषे) मानुषाणामस्मिन् (वृजने) व्रजन्ति यस्मिन्मार्गे तस्मिन् पृषोदरादिनास्य सिद्धिः (शंतमः) अतिशयेन सुखकारी (हितः) हितसंपादकः (अग्निः) पावक इव (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादिषु (ज्येन्यः) जेतुं शीलः (न) इव (विश्पतिः) विशां पालको राजा (प्रियः) प्रीणाति सः (यज्ञेषु) सङ्गन्तव्येषु व्यवहारेषु (विश्पतिः) विशां प्रजानां पालयिता (सः) (हव्या) हव्यान्यादातुमर्हाणि (मानुषाणाम्) (इळा) सुसंस्कृतानि वचनानि (कृतानि) निष्पन्नानि (पत्यते) प्राप्यते (सः) (नः) अस्मान् (त्रासते) उद्वेजयति (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (धूर्त्तः) हिंसकस्य सकाशात् (महः) महतः (देवस्य) विद्याप्रदस्य (धूर्त्तेः) अविद्याहिंसकस्य ॥ ७ ॥

अन्वयः-यः प्रियोविश्पतिर्नोऽस्मान् धूर्त्तस्त्रासते स धूर्त्तेर्महो देवस्य वरुणस्य सकाशात् यज्ञेषु मानुषाणामिळा कृतानि हव्या स्थिरीकरोति स सर्वैः पत्यते यो यज्ञेष्वग्निरिव जेन्यो न विश्पतिर्मानुषे वृजने हितश्शन्तमो भवति स सर्वैः सत्कर्त्तव्यो भवति॥७॥

भावार्थः—अत्रोपमाल०—ये धर्ममार्गे जनानुपदेशेन प्रवर्त्तयन्ति न्यायेशो राजेव प्रजापालका दस्य्वादिभयनिवारकाः विदुषां मित्राणि जनाः सन्ति त एवान्धपरंपरानिरोधका भवितुमर्हन्ति॥७॥

पदार्थः—जो (प्रियः) तृप्ति करने वाला है वह (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक राजा (नः) हम लोगों को (धूर्त्तः) हिंसक से (त्रासते) वेमन कराता और (सः) वह (धूर्त्तेः) अविद्या को नाशने और (महः) बड़े

(देवस्य) विद्या देने वाले (वरुणस्य) उत्तम विद्वान् के पास से जो (यज्ञेषु) संग करने योग्य व्यवहारों में (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (इळा) अच्छे संस्कारों से युक्त (कृतानि) सिद्ध किये शुद्ध वचन (हव्या) जो कि ग्रहण करने योग्य हों उन को स्थिर करता तथा (सः) वह सब को (पत्यते) प्राप्त होता वा (यज्ञेषु) अग्निहोत्र आदि यज्ञों में (अग्निः) अग्नि के समान वा (जेन्यः) विजयशील के (न) समान (विश्पतिः) प्रजाजनों का पालने वाला (मानुषे) मनुष्यों के (वृजने) उस मार्ग में कि जिस में गमन करते (हितः) हित सिद्ध करने वाला (शंतमः) अतीव सुखकारी होता (सः) वह विद्वान् सब को सत्कार करने योग्य होता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो धर्म मार्ग में मनुष्यों को उपदेश से प्रवृत्त कराते न्यायाधीश राजा के समान प्रजाजनों को पालने डांकू आदि दुष्ट प्राणियों से जो डर उस को निवृत्त कराने वाले विद्वानों के मित्रजन हैं वे ही अन्धपरंपरा अर्थात् कुमार्ग के रोकने वाले होने को योग्य होते हैं ॥ ७॥

कस्य समागमेन किं प्राप्तव्यमित्याह ॥

किस के मिलाप से क्या पाने योग्य है इस वि० ॥

अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे । विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् । देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥ ८ ॥

अग्निम् । होतारम् । ईळते । वसुऽधितिम् । प्रियम् । चेतिष्ठम् । अरतिम् । नि । एरिरे । हव्यऽवाहम् । नि ।

एरिरे । विश्वऽआयुम् । विश्वऽवेदसम् । होतारम् । यजतम् । कविम् । देवासः । रण्वम् । अवसे । वसुऽयवः । गीःऽभिः । रण्वम् । वसुऽयवः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावकमिव वर्त्तमानम् (होतारम्) दातारम् (ईळते) स्तुवन्ति (वसुधितिम्) वसूनां धितयो यस्य तम् (प्रियम्) प्रीतिकारकम् (चेतिष्ठम्) अतिशयेन चेतितारम् (अरतिम्) प्राप्तविद्यम् (नि) (एरिरे) प्रेरयन्ति (हव्यवाहम्) हव्यानां वोढारम् (नि) (एरिरे) प्राप्नुवन्ति (विश्वायुम्) यो विश्वं सर्वं बोधमेति तम् (विश्ववेदसम्) विश्वं समग्रं वेदो धनं यस्य तम् (होतारम्) आदातारम् (यजतम्) पूजितुमर्हम् (कविम्) पूर्णविद्यम् (देवासः) विद्वांसः (रण्वम्) सत्योपदेशकम् (अवसे) रक्षणाद्याय (वसूयवः) य आत्मनोवसूनि द्रव्याणीच्छन्ति ते (गीर्भिः) सुसंस्कृताभिर्वाग्भिः (रण्वम्) सत्यवादिनम् (वसूयवः) अत्रोभयत्र वसुशब्दात्सुपआत्मनः क्यजिति क्यच् प्रत्ययः। क्याच्छन्दसीत्युः प्रत्ययः । अन्येषामपीति दीर्घः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये देवासो यमग्निमिव होतारं वसुधितिमरतिं हव्यवाहं चेतिष्ठं प्रियं विद्वांसं जिज्ञासवो न्येरिरे विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविं रण्वं वसूयवइव न्येरिरे वसूयवोऽवसे गीर्भी रण्वमीळते तान् यूयमपीळिध्वम् ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या विद्वांसो यस्य सेवासंगेन विद्याः प्राप्नुवन्ति तस्यैव सेवासङ्गेन युष्माभिरप्येता आप्तव्याः ॥८॥

अत्र विद्वद्गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इत्यष्टाविंशत्युत्तरं शततमं सूक्तं पंचदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (देवासः) विद्वान् जन जिस (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान (होतारम्) देने वाले (वसुधितिम्) जिस के कि धनों की धारणा हैं (अरतिम्) और जो विद्या पाये हुए है उस (हव्यवाहम्) देने लेने योग्य व्यवहार की प्राप्ति कराने (चेतिष्ठम्) चिताने और (प्रियम्) प्रीति उत्पन्न कराने हारे विद्वान् के जानने की इच्छा किये हुए (न्येरिरे) निरन्तर प्रेरणा देते वा (विश्वायुम्) जो सब विद्यादि गुणों के बोध को प्राप्त होना (विश्ववेदसम्) जिस का समग्र वेद धन उस (होतारम्) ग्रहण करने वाले (यजतम्) सत्कार करने योग्य (कविम्) पूर्णविद्यायुक्त और (रण्वम्) सत्योपदेशक सत्यवादी पुरुष को (वसूयवः) जो धन आदि पदार्थों की इच्छा करते हैं उन के समान (न्येरिरे) निरन्तर प्राप्त होते हैं वा जो (वसूयवः) धन आदि पदार्थों को चाहने वाले (अवसे) रक्षा आदि के लिये (गीर्भिः) अच्छी संस्कार किई हुई वाणियों से (रण्वम्) सत्य बोलने वाले की (ईळते) स्तुति करते हैं उन सभों की तुम भी स्तुति करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो विद्वान् लोग जिस की सेवा और संग से विद्यादिगुणों को पाते हैं उसी की सेवा और संग से तुम लोगों को चाहिये कि इन को पाओ ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह एक सौ १२८ अट्ठाईश का सूक्त और पंद्रहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

अथ यं त्वमित्यस्यैकादशर्चस्यैकोनत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता १ । २ निचृदत्यष्टिः ३ । विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ४ अष्टिः ६ । ११ भुरिगष्टिः । १० निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ५ भुरिगतिशक्करी । ७ स्वराडतिशक्करी। पंचमः स्वरः। ८ । ९ स्वराट् शक्करी । धैवतः स्वरः ॥

विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले एक सौ उनतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में विद्वान् जन क्या करें उस विषय को कहते हैं ॥

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि । सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् । सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

यम् । त्वम् । रथम् । इन्द्र । मेधऽसातये । अपाका । सन्तम् । इषिर । प्रऽनयसि।प्र । अनवद्य । नयसि । सद्यः। चित् । तम् । अभिष्टये । करः । वशः । च । वाजिनम् । सः । अस्माकम् । अनवद्य । तूतुजान । वेधसाम् । इमाम् । वाचम् । न । वेधसाम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(यम्) (त्वम्) (रथम्) रमणीयम् (इन्द्र) विद्वन् सभेश(मेधसातये)मेधानां पवित्राणां संविभागाय(अपाका)

अपगतमविद्याजन्यंदुःखंयस्यतम् (सन्तम्) विद्यमानम् (इषिर) इच्छो (प्रणयसि) (प्र) (अनवद्य) प्रशंसित (नयसि) प्रापयसि (सद्यः) (चित्) इव (तम्) (अभिष्टये) इष्टप्राप्तये (करः) कुर्य्याः । अत्र लेट् (वशः) कामयमानः (च) (वाजिनम्) प्रशस्तज्ञानवन्तम् (सः) (अस्माकम्) (अनवद्य) प्रशंसितगुणयुक्त (तूतुजान) क्षिप्रकारिन् (वेधसाम्) मेधाविनाम् (इमाम्) (वाचम्) सुशिक्षितां वाणीम् (न) इव (वेधसाम्) मेधाविनाम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इषिरेन्द्र त्वं मेधसातये यमपाका सन्तं रथं प्रणयसीव विद्यां प्रणयसि च हे अनवद्य वशस्त्वमभिष्टये च वाजिनं चित्तं सद्यः करः । हे तूतुजानानवद्य सत्वमस्माकं वेधसान्न वेधसामिमां वाचं करः ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये विद्वांसः सर्वान्मनुष्यान् विद्याविनयेषु प्रवर्त्तयन्ति तेऽभीष्टानि साद्धुं शक्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इषिर) इच्छा करने वाले (इन्द्र) विद्वान् सभापति (त्वम्) आप (मेधसातये) पवित्र पदार्थों के अच्छे प्रकार विभाग करने के लिये (यम्) जिस (अपाका) पूर्ण ज्ञान वाले (सन्तम्) विद्यमान (रथम्) विद्वान् को रमण करने योग्य रथ को (प्रणयसि) प्राप्त कराने के समान विद्या को (प्रणयसि) प्राप्त करते हो (च) और हे (अनवद्य) प्रशंसा युक्त (वशः) कामना करते हुए आप (अभिष्टये) चांहे हुए पदार्थ की प्राप्ति के लिये (वाजिनम्) प्रशंसित ज्ञानवान् के (चित्) समान (तम्) उस को (सद्यः) शीघ्र (करः) सिद्ध करें वा हे (तूतुजान) शीघ्र कार्यों के कर्ता (अनवद्य) प्रशंसित गुणों से युक्त (सः) सो आप (अस्माकम्) हम (वेधसाम्) धीर बुद्धि वालों के (न) समान (वेधसाम्) बुद्धिमानों की (इमाम्) इस (वाचम्) उत्तम शिक्षा युक्त वाणी को सिद्ध करें अर्थात् उस का उपदेश करें ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—जो विद्वान् जन सब मनुष्यों को विद्या और विनय आदि गुणों में प्रवृत्त कराते हैं वे सब ओर से चाहे हुए पदार्थों की सिद्धि कर सकते हैं ॥ १ ॥

पुनर्विद्वांसः कीदृशा भवन्तीत्याह ॥

फिर विद्वान् कैसे होते हैं इस वि० ॥

स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्यं इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्त्तये नृभिः । यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता । तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥

सः । श्रुधि । यः । स्म । पृतनासु । कासु । चित् । दक्षाय्यः । इन्द्र । भरऽहूतये । नृऽभिः । असि । प्रऽतूर्त्तये । नृभिः । यः । शूरैः । स्वरिति स्वः । सनिता । यः । विप्रैः । वाजम् । तरुता । तम् । ईशानासः । इरधन्त । वाजिनम् । पृक्षम् । अत्यम् । न । वाजिनम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(सः) सेनेशः (श्रुधि) शृणु (यः) (स्म) एव । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (पृतनासु) सेनासु (कासु) (चित्) अपि (दक्षाय्यः) यो राजकर्मसु प्रवीणः (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (भरहूतये) भराणां पालकानां हूतये स्पर्द्धायै (नृभिः) नायकैः (असि) (प्रतूर्त्तये) सद्योऽनुष्ठानाय (नृभिः) नायकैः (यः) (शूरैः) निर्भयैः (स्वः) सुखम् (सनिता) संविभाजकः

(यः) (विप्रैः) मेधाविभिः (वाजम्) विज्ञानम् (तरुता) प्लविता (तम्) (ईशानासः) समर्थाः (इरधन्त) ये इरान् इलान् प्रेरकान् दधति ते इरधास्त इवाचरन्तु (वाजिनम्)विज्ञानवन्तम् (पृक्षम्) सुखैः सेचकम् (अत्यम्) व्याप्तिशीलम् (न) इव (वाजिनम्) अश्वम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र सेनेश यस्त्वं प्रतूर्त्तये नृभिरिव नृभिर्भरहूतये कासु चित्पृतनासु दक्षाय्योऽसि यस्त्वं शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता वाजिनमत्यं नेव पृक्षं वाजिनं धरसि तं त्वामीशानास इरधन्त सस्मैव सर्वस्य न्यायं श्रुधि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०— ये विद्वद्भिर्न्यायाऽधीशैः सह राजधर्मं नयन्ति ते प्रजास्वानन्दप्रदा भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य युक्त सेनापति (यः) जो आप (प्रतूर्त्तये) शीघ्र आरम्भ करने के लिये (नृभिः) मुख्य अग्रगन्ता मनुष्यों के समान (नृभिः) अपने अधिकारी कामचारी मनुष्यों से (भरहूतये) दूसरों की पालना करने वाले राजजनों की स्पर्द्धा अर्थात् उन की हार करने के लिये (कासु, चित्) किन्हीं (पृतनासु) सेनाओं में और (दक्षाय्यः) राजकामों में अति चतुर (असि) हो वा (यः) जो आप (शूरैः) निडर शूर वीरों के साथ (स्वः) सुख को (सनिता) अच्छे बांटने वाले वा (यः) जो (विप्रैः) धीर बुद्धि वालों के साथ (वाजम्) विशेष ज्ञान को (तरुता) पार होने वाले (वाजिनम्) विशेष ज्ञानवान् (अत्यम्) व्याप्त होने वाले के (न) समान (पृक्षम्) सुखों से सींचने वाले (वाजिनम्) घोड़े को धारण करते हो (तम्) उन आप को (ईशानासः) समर्थ जन (इरधन्त) जो प्रेरणा करने वालों को धारण करते उन के जैसा आचरण करें अर्थात् प्रेरणा दें और (सः, स्म) वही आप सब के न्याय को (श्रुधि) सुनें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो विद्वान् और न्यायाधीशों के साथ राजधर्म को प्राप्त करते वे प्रजाजनों में आनन्द को अच्छे प्रकार देने वाले होते हैं ॥ २ ॥

पुनः के जगदुपकारका भवन्तीत्याह ॥

फिर कौन संसार का उपकार करने वाले होते हैं इस वि० ॥

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीर-ररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् । इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे । मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

दस्मः । हि । स्म । वृषणम् । पिन्वसि । त्वचम् । कम् । चित् । यावीः । अररुम् । शूर । मर्त्यम् । परिऽवृणक्षि । मर्त्यम् । इन्द्र । उत । तुभ्यम् । तत् । दिवे । तत् । रुद्राय । स्वऽयशसे । मित्राय । वोचम् । वरुणाय । सऽप्रथः । सुऽमृळीकाय । सऽप्रथः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(दस्मः) शत्रूणामुपक्षयिता (हि) यतः (स्म) एव । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (वृषणम्) विद्यावर्षकम् (पिन्वसि) सेवसे (त्वचम्) आच्छादकम् (कम्) (चित्) अपि (यावीः) अयावीः पृथक्करोषि (अररुम्) प्रापकम् (शूर) शत्रुहिंसक (मर्त्यम्) मनुष्यम् । (परिवृणक्षि) सर्वतस्त्यजसि (मर्त्यम्) मनुष्यमिव (इन्द्र) सभेश (उत) अपि (तुभ्यम्)

(तत्) (दिवे) कामयमानाय (तत्) (रुद्राय) दुष्टानाम् रोदयित्रे (स्वयशसे) स्वकीयं यशः कीर्तिर्यस्य तस्मै (मित्राय) सुहृदे (वोचम्) उच्याम् (वरुणाय) वराय (सप्रथः) प्रथसा विस्तारेण युक्तम् (सुमृळीकाय) सुष्ठु सुखकराय (सप्रथः) सप्रसिद्धि ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे शूरेन्द्र हि यतो दस्मस्त्वं यं कंचित् त्वचं यावीर्वृषणमररुं मर्त्यामिव मर्त्यम् परिवृणक्षि पिन्वस्यतस्तस्मै स्वयशसे मित्राय तुभ्यं च तद्वोचं दिवे रुद्राय वरुणाय सुमृळीकाय सप्रथइव सप्रथोऽहं तदुत स्म वोचम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो मित्रभावेन सत्यमुपदिशन्ति धर्मं सेवन्ते ते परमसुखप्रदा भवन्ति॥ ३॥

पदार्थः—हे (शूर) शत्रुओं को मारने वाले (इन्द्र) सभापति (हि) जिस कारण (दस्मः) शत्रुओं को विनाशने हारे आप जिस (कंचित्) किसी (त्वचम्) धर्म के ढांपने वाले को (यावीः) पृथक् करते और (वृषणम्) विद्यादि गुणों के वर्षाने (अररुम्) वा दूसरे को उन की प्राप्ति कराने वाले (मर्त्यम्) मनुष्य के समान (मर्त्यम्) मनुष्य को (परिवृणक्षि) सब ओर से छोड़ते स्वतंत्रता देने वा (पिन्वसि) उस का सेवन करते हैं इस कारण उस (स्वयशसे)स्वकीर्ति से युक्त(मित्राय)सब के मित्र के लिये वा(तुभ्यम्)आप के लिये (तत्) उस व्यवहार को (वोचम्) मैं कहूं वा (दिवे) कामना करने (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने (वरुणाय) श्रेष्ठ धर्म आचरण करने (सुमृळीकाय) और उत्तम सुख करने वाले के लिये (सप्रथः) सब प्रकार के विस्तार से युक्त मनुष्य के समान (सप्रथः) प्रसिद्धि अर्थात् उत्तमकीर्त्तियुक्त (तत्) उस उक्त आप के उत्तम व्यवहार को (उत) तर्क वितर्क से (स्म) ही कहूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें वाचकलु०—जो मनुष्य सब मनुष्यों के लिये मित्र भाव से सत्य का उपदेश करते वा धर्म का सेवन करते वे परम सुख के देने वाले होते हैं ॥ ३ ॥

पुनर्मनुष्यैः कैः सह किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को किन के साथ क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् । अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् । नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥४॥

अस्माकम् । वः । इन्द्रम् । उश्मसि । इष्टये । सखायम् । विश्वऽआयुम् । प्रऽसहम् । युजम् । वाजेषु । प्रऽसहम् । युजम् । अस्माकम् । ब्रह्म । ऊतये । अव । पृत्सुषु । कासु । चित् । नहि । त्वा । शत्रुः । स्तरते । स्तृणोषि । यम् । विश्वम् । शत्रुम् । स्तृणोषि । यम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अस्माकम्) (वः) युष्माकम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (उश्मसि) कामयेमहि (इष्टये) इष्टप्राप्तये (सखायम्) मित्रम् (विश्वायुम्) प्राप्तसमग्रशुभगुणम् (प्रासहम्) प्रकृष्टतया सहनशीलम् (युजम्) योगयुक्तम् (वाजेषु) राजजनैः प्राप्तव्येषु (प्रासहम्) अतीवसोढारम् (युजम्) योक्तारम् (अस्माकम्) (ब्रह्म) वेदम् (ऊतये) रक्षाद्याय (अव) रक्ष ।

अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (पृत्सुषु) संग्रामेषु पृत्सुरिति संग्रामना० निघं० २ । १७ (कासु) (चित्) (नहि) (त्वा) त्वाम् (शत्रुः) (स्तरते) स्तृणोत्याच्छादयति । अत्र व्यत्ययेन शप् (स्तृणोपि) आच्छादयासि (यम्) (विश्वम्) समग्रम् (शत्रुम्) विरोधिनम् (स्तृणोषि) आच्छादयासि(यम्) ॥४॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयमस्माकं वो युष्माकं चेन्द्रं परमैश्वर्ययुक्तं वाजेषु पृत्सुषु कासु चित् प्रासहं युजमिव प्रासहं युजं विश्वायुं सखायमिष्टय उश्मसि तथा यूयमपि कामयध्वम् । हे विद्वन्नस्माकमूतये त्वं ब्रह्माऽव । एवं सति यं विश्वं शत्रुं स्तृणोपि यं च विरोधिनं स्तृणोपि स शत्रुस्त्वा नहि स्तरते ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्यावच्छक्यं तावद्बहुमित्राणि कर्त्तुं प्रयतितव्यम् । परन्तु नाऽधार्मिकाः सखायः कार्य्याः न च दुष्टेषु मित्रता समाचरणीया । एवं सति शत्रूणां बलं नैव वर्द्धते ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (अस्माकम्) हमारे और (वः) तुम्हारे (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य युक्त वा (वाजेषु) राज जनों को प्राप्त होने योग्य (पृत्सुषु , कासु, चित्) किन्हीं सेनाओं में (प्रासहम्) उत्तमता से सहन शील (युजम्) और योगाभ्यासयुक्त धर्मात्मा पुरुष के समान (प्रासहम्) अतीव सहने (युजम्) और योग करने वाले (विश्वायुम्) समग्र शुभगुणों को पाये हुए (सखायम्) मित्र जन की (इष्टये) चांहे हुए पदार्थ की प्राप्ति के लिये (उश्मसि) कामना करते हैं वैसे तुम भी कामना करो । हे विद्वन् ! (अस्माकम्) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि होने के लिये आप (ब्रह्म) वेद की (अव) रक्षा करो ऐसे हुए पर (यम्) जिस (विश्वम्) समग्र(शत्रुम्) शत्रुगण को (स्तृणोषि) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रताप से ढांपते और

(यम्) जिस विरोध करने वाले को (स्तृणोषि) ढांपते अर्थात् अपने प्रचण्डप्रताप से रोकते वह (शत्रुः) शत्रु (त्वा) आप को (नहि) नहीं (स्तरते) ढांपता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो सके उतने से बहुत मित्र करने को उत्तम यत्न करें परन्तु अधर्मी दुष्ट जन मित्र न करने चाहिये और न दुष्टों में मित्र पन का आचरण करना चाहिये ऐसे हुए पर शत्रुओं का बल नहीं बढ़ता है ॥ ४ ॥

कोऽत्र सुखदायी भवतीत्याह ॥

इस संसार में कौन सुख का देने वाला होता है वि० ॥

नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः। नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे। विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥ १६ ॥

नि । सु । नम । अतिमतिम् । कयस्य । चित् । तेजिष्ठाऽभिः । अरणिभिः । न । ऊतिऽभिः । उग्राभिः । उग्र । ऊतिऽभिः । नेषि । नः । यथा । पुरा । अनेनाः । शूर । मन्यसे । विश्वानि । पूरोः । अप । पर्षि । वह्निः । आसा । वह्निः। नः । अच्छ ॥ ५ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(नि) (सु) शोभने (नम) नम्रो भव (अतिमतिम्) अतिशयिता चासौ मतिश्च ताम् (कयस्य) विज्ञातुः (चित्) अपि (तेजिष्ठाभिः) अतिशयेन तेजस्विनीभिः

(अरणिभिः) सुखप्रापिकाभिः (न) इव (ऊतिभिः) रक्षणाद्याभिः (उग्राभिः) तीव्राभिः (उग्र) तेजस्विन् (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः (नेषि) (नः) अस्मान् (यथा) येन प्रकारेण (पुरा) पूर्वम् (अनेनाः) अविद्यमानमेनः पापं यस्य सः (शूर) दुष्टहिंसक (मन्यसे) जानासि (विश्वानि) सर्वाणि (पूरोः) विदुषो मनुष्यस्य पूरवइति मनुष्यना० निघं० । २ । ३ (अप) (पर्षि) सिञ्चसि (बन्हिः) वोढ़ा (आसा) अन्तिके (वन्हिः) वोढ़ा (नः) अस्मान् (अच्छ) शोभने ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे उग्र शूर विद्वंस्त्वं तेजिष्ठाभिररणिभिरुग्राभिरूतिभिर्नोतिभिरतिमतिं विनम । यथाऽनेनाः पुरा नयति तथा नो मन्यसे सुनेष्यासा वन्हिरिव नोऽच्छ पर्षि कयस्य पूरोश्चित् वन्हिस्त्वं विश्वानि दुःखान्यपनेषि सत्वमस्माभिः सेवनीयोऽसि ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यो मनुष्याणां बुद्धिं सुरक्षयावर्द्धयित्वा पापेष्वश्रद्धां जनयति सएव सर्वान् सुखानि नेतुं शक्नोति॥५॥

पदार्थः—हे (उग्र) तेजस्वी (शूर) दुष्टों को मारने वाले विद्वान् (तेजिष्ठाभिः) अतीव प्रतापयुक्त (अरणिभिः) सुख देने वाली (उग्राभिः) तीव्र (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं (न) के समान (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अतिथिम्) अत्यन्त विचार वाली बुद्धि को (नि,नम) नमो अर्थात् नम्रता के साथ वर्त्तो वा (यथा) जैसे (अनेनाः) पापरहित मनुष्य (पुरा) पहिले उत्तम कामों की प्राप्ति करता वैसे (नः) हमलोगों को आप (मन्यसे) जानते और (सु, नेषि) सुन्दरता से अच्छे कामों को प्राप्त कराते वा (आसा) अपने पास (वन्हिः) पहुंचाने वाले के समान(नः) हम को (अच्छ,पर्षि) अच्छे सींचते

वा (कयस्य) विशेष ज्ञान देने और (पुरोः) पूरे विद्वान् मनुष्य के (चित्) भी (वन्हिः) पहुंचाने वाले आप (विश्वानि) समग्र दुःखों को (अप) दूर करते हो सो आप हम लोगों के सेवन करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो मनुष्यों की बुद्धि को उत्तम रक्षा से बढ़ा कर पाप कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न करता वही सभों को सुखों को पहुंचा सकता है ॥ ५ ॥

केभ्यो विद्यादेयेत्याह ॥

किनके लिये विद्या देनी चाहिये इस वि० ॥

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति। स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् । अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥

प्र । तत् । वोचेयम् । भव्याय । इन्दवे । हव्यः । न । यः । इषऽवान् । मन्म । रेजति । रक्षःऽहा । मन्म । रेजति । स्वयम् । सः । अस्मत् । आ । निदः । वधैः । अजेत । दुःऽमतिम् । अव । स्रवेत् । अघऽशंसः । अवऽतरम् । अव । क्षुद्रम् ऽइव । स्रवेत् ॥ ६ ॥

पदार्थः-(प्र) (तत्) उपदेश्यं ज्ञानम् (वोचेयम्) उपदिशेयम् (भव्याय) यो विद्याग्रहणेच्छुर्भवति तस्मै (इन्दवे) आर्द्राय (हव्यः) होतुमादातुमर्हः (न) इव (यः) (इषवान्) ज्ञानवान् (मन्म) मन्तुं योग्यं ज्ञानम् (रेजाति) उपार्जाति (रक्षोहा)

दुष्टगुणकर्मस्वभावहन्ता (मन्म) ज्ञातुं योग्यम् (रेजति) उपार्जति (स्वयम्) (सः) (अस्मत्) (आ) (निदः) निन्दकान् (वधैः) हननैः (अजेत) प्रक्षिपेत् । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (दुर्मतिम्) दुष्टा चासौ मतिश्च ताम् (अव) वैपरीत्ये (स्रवेत्) गमयेत् (अघशंसः) योऽघं पापं शंसति सः (अवतरम्) अवाङ्मुखम् (अव) (क्षुद्रमिव) यथा क्षुद्राऽऽशयम् (स्रवेत्) दण्डयेत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—अहं स्वयं यथा हव्यो रक्षोहा मन्म रेजति न य इषवान् मन्म रेजति तद्भव्यायेन्दवे प्रवोचेयम् । योऽस्मत् शिक्षां प्राप्य वधैर्निदो दुर्मतिं चाजेत सोऽवतरं क्षुद्रमिवावस्रवेत् । योऽघशंसोवास्रवेत् तं वाढं दण्डयेत् ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—विद्वान् ये शुभगुणकर्मस्वभावा विद्यार्थिनः सन्ति तेभ्यः प्रीत्या विद्याः प्रदद्यात् । निन्दकान् चोरान् निस्सारयेत् स्वयमपि सदा धार्मिकः स्यात् ॥ ६ ॥

पदार्थः—मैं (स्वयम्) आप जैसे (हव्यः) स्वीकार करने योग्य (रक्षोहा) दुष्टगुण कर्म स्वभाव वालों को मारने वाला (मन्म) विचार करने योग्य ज्ञान का (रेजति) संग्रह करते हुए के (न) समान (यः) जो (इषवान्) ज्ञानवान् (मन्म) जानने योग्य व्यवहार को (रेजति) संग्रह करता है (तत्) उस उपदेश करने योग्य ज्ञान को (भव्याय) जो विद्याग्रहण की इच्छा करने वाला होता है उस(इन्दवे)आर्द्र अर्थात् कोमल हृदय वाले के लिये (प्र, वोचेयम्) उत्तमता से कहूं जो (अस्मत्) हम से शिक्षा पाकर (वधैः) मारने के उपायों से (निदः) निन्दा करनेहारों और (दुर्मतिम्) दुष्टमति वाले जन को (अजेत) दूर करे (सः) वह (अवतरम्) अधोमुखी लज्जित मुख

वाले पुरुष को (क्षुद्रमिव) तुच्छ आशय वाले के समान (अव, स्रवेत्) उस के स्वभाव से विपरीत दण्ड देवे और (अघशंसः) जो पाप की प्रशंसा करता वह चोर डांकू लंपट लबाड़ आदि जन (अव, आ, स्रवेत्) अपने स्वभाव से अच्छे प्रकार उलटी चाल चले ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—अध्यापक विद्वान् जो शुभगुण कर्म स्वभाव वाले विद्यार्थी हैं उन के लिये प्रीति से विद्याओं को देवे और निन्दा करने हारे चोरों को निकाल देवें और आप भी सदैव धर्मात्मा हो ॥ ६ ॥

पुनर्मात्रादिभिः सन्तानाः कथमुपदेष्टव्याइत्याह ॥

फिर माता आदि को सन्तान कैसे उपदेशों से समझाने चाहिये इस वि० ॥

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् । दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि । आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥

वनेम । तत् । होत्रया । चितन्त्या । वनेम । रयिम् । रयिऽवः । सुऽवीर्यम् । रण्वम् । सन्तम् । सुऽवीर्यम् । दुःऽमन्मानम् । सुमन्तुऽभिः । आ । ईम् । इषा । पृचीमहि । आ । सत्याभिः । इन्द्रम् । द्युम्नहूतिऽभिः । यजत्रम् । द्युम्नहूतिऽभिः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(वनेम) संभजेम (तत्) विज्ञानम् (होत्रया) आदातुमर्हया (चितन्त्या) बुद्धिमत्या (वनेम) विभज्यदद्याम

(रयिम्) श्रियम् (रयिवः) श्रीमन् (सुवीर्यम्) श्रेष्ठपराक्रमम् (रण्वम्) उपदेशकम् (सन्तम्) वर्त्तमानम् ((सुवीर्यम्) विद्याधर्माभ्यां सुष्ठ्वात्मावलम् (दुर्मन्मानम्) यो दुष्टं मन्यते स दुर्मन् यस्तं मिनाति तम् (सुमन्तुभिः) शोभनविद्यायुक्तैः (आ) समन्तात् (ईम्) प्राप्तव्यया (इषा) इच्छया (पृचीमहि) सम्बन्धीयाम (आ) (सत्याभिः) सत्याचरणान्विताभिः (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (द्युम्नहूतिभिः) द्युम्नस्य धनस्य यशसो वाऽऽह्वानैः (यजत्रम्) संगन्तव्यम् (द्युम्नहूतिभिः) ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे रयिवो यथा वयं होत्रया चितन्त्या यद् ज्ञानं वनेम सुवीर्यं रयिं सन्तं रण्वं सुवीर्यं च वनेम सुमन्तुभिरीमिषा च दुर्मन्मानमापृचीमहि द्युम्नहूतिभिर्यजत्रमिव सत्याभिर्द्युम्नहूतिभिरिन्द्रमापृचीमहि तथा तदेतत्सर्वं त्वं वन पृङ्क्ष्व ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मातापित्रादिभिर्विद्वद्भिर्वा स्वसन्ताना इत्थमुपदेष्टव्या यान्यस्माकं धर्म्याणि कर्माणि तान्याचरणीयानि नो इराणि एवं सत्याचरणैः परोपकारैरैश्वर्यं सततमुन्नेयम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (रयिवः) धनवान् जैसे हम लोग (होत्रया) ग्रहण करने योग्य (चितन्त्या) चेताने वाली बुद्धिमती से जिस ज्ञान का (वनेम) अच्छे प्रकार सेवन करें वा (सुवीर्यम्) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त (रयिम्) धन तथा (सन्तम्) वर्त्तमान (रण्वम्) उपदेश करने वाले (सुवीर्यम्) विद्या और धर्म से उत्तम आत्मा के बल का (वनेम) सेवन करें वा (सुमन्तुभिः) उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों और (ईम्) पाने योग्य (इषा) इच्छा से (दुर्मन्मानम्) दुष्ट जन का मान करने हारे को जो मारने वाला उस का (आ,पृचीमहि)

अच्छे प्रकार संबन्ध करें तथा (द्युम्नहूतिभिः) धन वा यश की बात चीतों से (यजत्रम्) अच्छे प्रकार संग करने योग्य व्यवहार के समान (सत्याभिः) सत्य आचरण युक्त (द्युम्नहूतिभिः) धनविषयक वातों से (इन्द्रम्) परमऐश्वर्य का (आ) अच्छे प्रकार संबन्ध करें वैसे (तत्) उक्त समस्त व्यवहार को आप भजो और उस से संबन्ध करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलु०—माता और पिता आदि को वा विद्वानों को चाहिये कि अपने सन्तानों को इस प्रकार उपदेश करें कि जो हमारे धर्म के अनुकूल काम हैं वे आचरण करने योग्य किन्तु और काम आचरण करने योग्य नहीं ऐसे सत्याचरणों और परोपकार से निरंतर ऐश्वर्य्य की उन्नति करनी चाहिये ॥ ७ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कृत्वा कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या कर के कैसे हों इस वि० ॥

प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम्। स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः। हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥

प्रऽप्र। वः। अस्मे इति। स्वयशःऽभिः। ऊती। परिऽवर्गे। इन्द्रः। दुःऽमतीनाम्। दरीमन्। दुःऽमतीनाम्। स्वयम्। सा। रिषयध्यै। या। नः। उपऽईषे। अत्रैः। हता। ईम्। असत्। न। वक्षति। क्षिप्ता। जूर्णिः। न। वक्षति ॥ ८ ॥

पदार्थः—(प्रप्रा)अत्र पादपूरणाय द्वित्वम् । निपातस्य चेति दीर्घः (वः) युष्मभ्यम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (स्वयशोभिः) स्वकीयाभिः प्रशंसाभिः (ऊती) ऊत्या रक्षया (परिवर्गे) परितः सर्वतः सम्बन्धे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (दुर्मतीनाम्) दुष्टानां मनुष्याणाम् (दरीमन्) अतिशयेन विदारणे । अत्रान्येषामपि दृश्यत इत्युपधादीर्घः सुपामिति सप्तम्या लुक् (दुर्मतीनाम्) दुष्टाचारिणां मनुष्याणाम् (स्वयम्) (सा) (रिषयध्यै) रिषयितुम् (या) सेना (नः) अस्मान् (उपेषे) (अत्रैः) अतन्तीत्याततायिनस्तान् गच्छन्तीत्यत्राः शत्रवस्तैः (हता) (ईम्) सर्वतः (असत्)भवेत् (न) निषेधे (वक्षति) उच्यात् (क्षिप्ता) प्रेरिता (जूर्णिः) शीघ्रकारिणी (न) इव (वक्षति) प्राप्ता भवतु ॥८॥

अन्वयः—हे मित्राणि वोऽस्मे इन्द्रो दुर्मतीनां परिवर्गे दुर्मतीनां दरीमंश्च स्वयशोभिरूती प्रप्र वक्षति या सेना न उपेषेऽत्रैः क्षिप्तासा रिषयध्यै प्रवृत्ता स्वयमीं हतासत् किन्तु सा जूर्णिर्न वक्षति ॥८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये दुष्टसंगं विहाय सत्सङ्गेन कीर्त्तिमन्तो भूत्वाऽतिप्रशंसितसेनया प्रजा रक्षन्ति ते स्वैश्वर्य्याजायन्ते॥८॥

पदार्थः—हे मित्रो (वः) तुम लोगों के लिये (अस्मे) और हमारे लिये (इन्द्रः)ऐश्वर्यवान् विद्वान् (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले दुष्ट मनुष्यों के(परिवर्गे) सब ओर से सम्बन्ध में और (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले दुराचारी मनुष्यों के (दरीमन्) अतिशय कर विदारने में (स्वयशोभिः) अपनी प्रशंसाओं और (ऊती) रक्षा से (प्रप्र, वक्षति) उत्तमता से उपदेश करे (या) जो सेना (नः) हमलोगों के (उपेषे) समीप आने के लिये (अत्रैः) आततायी शत्रु

जनों ने (क्षिपा) प्रेरित किई अर्थात् पठाई हो (सा) वह (रिषयध्यै) दूसरों को हनन कराने के लिये प्रवृत्त हुई (स्वयम्) आप (ईम्) सब ओर से (हता) नष्ट(असत्) हो किन्तु वह (तूर्णिः) शीघ्रता करने वाली के (न)समान (न) न (वक्षति)प्राप्त हो अर्थात् शीघ्रता करने ही न पावे किन्तु तावत् नष्ट हो जावे॥८॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो दुष्टों के संग को छोड़ सत्संग से कीर्त्तिमान् हो कर अतीव प्रशंसित सेना से प्रजा की रक्षा करते हैं वे उत्तम ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ ८ ॥

पुनरुपदेशकैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर उपदेश करने वालों को कैसे वर्त्ताव रखना चाहिये इस वि०॥

त्वं न॑ इन्द्र रा॒या परी॑णसा या॒हि प॒थाँ अ॒ने॒हसा॑ पु॒रो या॑ह्यर॒क्षसा॑। सच॑स्व नः परा॒क आ सच॑स्वास्तमी॒क आ। पा॒हि नो॑ दू॒रादा॒राद॒भिष्टि॑भि॒ः सदा॑ पाह्य॒भिष्टि॑भिः ॥ ९ ॥

त्वम् । नः॒ । इ॒न्द्र॒ । रा॒या । परी॑णसा । या॒हि । प॒था । अ॒ने॒हसा॑ । पु॒रः । या॒हि॒ । अ॒र॒क्षसा॑। सच॑स्व । नः॒ । प॒रा॒के। आ । सच॑स्व । अ॒स्त॒म्ऽई॒के । आ । पा॒हि । नः॒ । दू॒रात् । आ॒रात् । अ॒भिष्टि॑ऽभिः । सदा॑ । पा॒हि॒ । अ॒भिष्टि॑ऽभिः ॥९॥

पदार्थः-(त्वम्) (नः) अस्मान् (इन्द्र) विद्यैश्वर्यवन् (राया) श्रिया (परीणसा) बहुना । परीणसइति बहुना० निघं० ३ । १ (याहि) प्राप्नुहि (पथा) मार्गेण (अनेहसा) अहिंसामयेन धर्मेण (पुरः) पुरो वर्त्तमानान् (याहि) प्राप्नुहि

(अरक्षसा) अविद्यमानानि दुष्टानि रक्षांसि यस्मिँस्तेन (सचस्व) समवेहि (नः) अस्मान् (पराके) पराकइति दूरना० निघं । ३ । २६ । (आ) समन्तात् (सचस्व) समवेहि प्राप्नुहि (अस्तमीके) समीपे (आ) समन्तात् (पाहि) (नः) अस्मान् (दूरात्) (आरात्) समीपात् (अभिष्टिभिः) अभितः सर्वतो यजन्ति संगच्छन्ति याभिस्ताभिः (सदा) सर्वस्मिन् काले (पाहि) रक्ष (अभिष्टिभिः) अभीष्टाभिः क्रियाभिः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र विद्वँस्त्वं परीणसा राया नोऽस्मान् याह्यनेहसाऽरक्षसा पथा पुरो याहि । नः पराके आसचस्व। अस्तमीके समीपेऽस्मानासचस्व । अभिष्टिभिर्दूरादाराच्च नः पाहि । सदाऽभिष्टिभिरस्मान्पाहि ॥ ९ ॥

भावार्थः—उपदेशकैर्धर्म्ये मार्गे प्रवृत्य सर्वान् प्रवर्त्त्योपदेशद्वारा समीपस्थान्दूरस्थाँश्च संगत्य भ्रमोच्छेदनेन सत्यविज्ञानप्रापणेन च सर्वे सततं संरक्षणीयाः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या वा ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वान् (त्वम्) आप (परीणसा) बहुत (राया) धन से (नः) हम लोगों को (याहि) प्राप्त हो और (अनेहसा) रक्षामय जो धर्म उस से (अरक्षसा) और जिस में दुष्ट प्राणी विद्यमान नहीं उस (पथा) मार्ग से (पुरः) प्रथम जो वर्त्तमान उन को (याहि) प्राप्त हो और (नः) हम को (पराके) दूरदेश में (आ, सचस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ मिलो और (अस्तमीके) समीप में हम लोगों को (आ,सचस्व) अच्छे प्रकार मिलो और जो (अभिष्टिभिः) सब ओर से क्रियाओं से संग करते उन से (दूरात्) दूर और (आरात्) समीप से (नः) हमलोगों की (पाहि) रक्षाकरो और (सदा) सब कभी (अभिष्टिभिः) सबओर से चाही हुई क्रियाओं से हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—उपदेशकों को चाहिये कि धर्म के अनुकूल मार्ग से आप प्रवृत्त हों और सब को प्रवृत्त करा कर अपने उपदेश के द्वारा समीपस्थ और दूरस्थ पदार्थों का संग कर भ्रम मिटाने और सत्यविज्ञान की प्राप्ति कराने से सब की निरंतर अच्छी रक्षा करें ॥ ९ ॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस वि० ॥

त्वं नं इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे। ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य। अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । राया । तरूषसा । उग्रम् । चित् । त्वा । महिमा । सक्षत् । अवसे । महे । मित्रम् । न । अवसे । ओजिष्ठ । त्रातः । अवितरिति । रथम् । कम् । चित् । अमर्त्य । अन्यम् । अस्मत् । रिरिषेः । कम् । चित् । अद्रिऽवः । रिरिक्षन्तम् । चित् । अद्रिऽवः ॥ १० ॥

पदार्थः—(त्वम्) (नः) (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्तराजन् (राया) परमलक्ष्म्या (तरूषसा) तरन्ति शत्रुबलानि येन तत्तरुषस्तेन (उग्रम्) तीव्रम् (चित्) अपि (त्वा) त्वाम् (महिमा) महतो भावः प्रतापः (सक्षत्) संबध्नीयात् (अवसे) रक्षणाद्याय (महे) महते (मित्रम्) सखायम् (न) इव (अवसे) रक्षणाद्याय

(ओजिष्ठ) अतिशयेनौजस्विन् (त्रातः) रक्षितः (अवितः) रक्षक (रथम्) रमणीयम् (कम्) सुखकरम् (चित्) अपि (अमर्त्य) कीर्त्या मरणधर्मरहित (अन्यम्) भिन्नम् (अस्मत्) (रिरिषेः) हिन्धि । अत्र बहुलं छन्दसीति शस्य श्लुः (कम्) (चित्) अपि (अद्रिवः) अद्रयो बहवो मेघा विद्यन्ते यस्मिन् सूर्ये तदिव तेजस्विन् (रिरिक्षन्तम्) रेष्टुं हिंसितुमिच्छन्तम् (चित) इव (अद्रिवः) बहुशैलराज्ययुक्त ॥ १० ॥

अन्वयः—हे इन्द्र तरूपसा राया महेऽवसे मित्रं नेवावसे यं त्वा महिमा सक्षत् स त्वं चिन्नोऽस्मान्पाहि।हे ओजिष्ठावितरमर्त्य त्रातस्त्वं कं चिद्रथं प्राप्नुहि । हे अद्रिवस्त्वमस्मत्कन्नूचिदन्यं रिरिषेः । हे अद्रिवस्त्वं रिरिक्षन्तमुग्रं चिद्रिरिषेः ॥ १० ॥

भावार्थः—अयमेव मनुष्याणां महिमा यच्छ्रेष्ठपालनं दुष्टहिंसनं चेति ॥ १० ॥

पदार्थः-हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् (त्वम्) आप (तरूपसा) जिस से शत्रुओं के बलों को पार होते उस काल और (राया) उत्तम लक्ष्मी से (महे) अत्यन्त (अवसे) रक्षा आदि सुख के लिये वा (मित्रम) मित्र के (न) समान (अवसे) रक्षा आदि व्यवहार के लिये जिन (त्वा) आप को (महिमा) बड़प्पन प्रताप (सक्षत्) संबन्धे अर्थात् मिले सो आप (चित्) भी (नः) हम लोगों की रक्षा करो । हे (ओजिष्ठ) अतीव प्रतापी (अवितः) रक्षा करने वाले (अमर्त्य) अपनी कीर्त्ति कलाप से मरण धर्म रहित (त्रातः) राज्य पालने हारे आप (कं, चित्) किसी (रथम्) रमण करने योग्य रथ को प्राप्त होओ । हे (अद्रिवः) बहुत मेघों वाले सूर्य के समान तेजस्वी आप (अस्मत्) हम लोगों से (कं,चित्) किसी (अन्यम्) और ही को

(गिरिपे:) मारो हे (अद्रिवः) पर्वत भूमियों के राज्य से युक्त आप (गिरिक्षन्तम्) हिंसा करने की इच्छा करते हुए (उग्रम्) तीव्र प्राणी को (चित्) भी मारो ताड़ना देओ ॥ १० ॥

भावार्थः-मनुष्यों की यही महिमा है जो श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की हिंसा करना ॥ १० ॥

पुनर्विदुषां किं कर्त्तव्यमस्तीत्याह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

पाहि नं इन्द्र सुष्टुत स्त्रिधोऽवयाता सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् । हन्ता पापस्य रक्षसंस्त्राता विप्रस्य मावंतः । अधा हि त्वां जनिता जीजंनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजंनद्वसो ॥ ११ ॥ १७ ॥

पाहि । नः । इन्द्र । सुऽस्तुत । स्त्रिधः । अवऽयाता । सदम् । इत् । दुःऽमतीनाम् । देवः । सन् । दुःऽमतीनाम् । हन्ता । पापस्य । रक्षसः । त्राता । विप्रस्य । माऽवंतः । अध । हि । त्वा । जनिता । जीजनत् । वसो इति । रक्षःऽहनंम् । त्वा । जीजनत् । वसो इति ॥ ११ ॥ १७ ॥

पदार्थः-(पाहि) (नः) अस्मान् (इन्द्र) सभेश (सुष्टुत) सुष्ठुप्रशंसित (स्त्रिधः) दुःखनिमित्तात् पापात् (अवयाता) विरुद्धं गन्ता (सदम्) स्थानम् (इत्) इव (दुर्मतीनाम्) दुष्टानां मनुष्याणाम् (देवः) सत्यं न्यायं कामयमानः (सन्) (दुर्मतीनाम्) दुष्टधियां मनुष्याणाम् (हन्ता) (पापस्य)

पापाचारस्य (रक्षसः) परपीडकस्य (त्राता) रक्षकः (विप्रस्य) मेधाविनो धार्मिकस्य (मावतः) मच्छदृशस्य (अध) आनन्तर्ये (हि) खलु (त्वा) त्वाम् (जनिता) (जीजनत्) जनयेत् । अत्र लुङ्यडभावः (वसो) यः सज्जनेषु वसति तत्संबुद्धौ (रक्षोहणम्) (त्वा) त्वाम् (जीजनत्) जनयेत् (वसो) विद्यासु वासयितः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे सुष्टुतेन्द्रावयाता देवः सन् दुर्मतीनां सदामिव दुर्मतीनां प्रचारं हत्वा स्रिधोनोऽस्मान् पाहि। हे वसो जनिता यं रक्षोहणं त्वा जीजनत् । हे वसो यं त्वा रक्षकं जीजनत् स हि त्वमध पापस्य रक्षसो हन्ता मावतो विप्रस्य त्राता भव ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—इदमेव विदुषां प्रशंसनीयं कर्माऽस्ति यत् पापस्य खण्डनं धर्मस्य मण्डनमिति न केनाऽपि दुष्टस्य संगः श्रेष्ठसंगत्यागश्च कर्त्तव्य इति ॥ ११ ॥

अत्र विद्वद्राजधर्मवर्णनादेतत्सूक्तोक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इत्येकोनत्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (सुष्टुत) उत्तम प्रशंसा को प्राप्त (इन्द्र) सभापति (अवयाता) विरुद्ध मार्ग को जाते और (देवः) सत्य न्याय की कामना अर्थात् खोज करते (सन्) हुए (दुर्मतीनाम्) दुष्ट मनुष्यों के (सदम्) स्थान के (इव) समान (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्यों के प्रचार का विनाश कर (स्रिधः) दुःख के हेतु पाप से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो । हे (वसो) सज्जनों में वसने हारे (जनिता) उत्पन्न करने हारा पिता गुरु

जिस (रक्षोहणम्) दुष्टों के नाश करने हारे (त्वा) आप को (जीजनत्) उत्पन्न करे। वा हे (वसो) विद्याओं में वास अर्थात् प्रवेश कराने हारे जिन रक्षा करने वाले (त्वा) आप को (जीजनत्) उत्पन्न करे सो (हि) ही आप (अध) इस के अनन्तर (पापस्य) पाप आचरण करने वाले (रक्षसः) राक्षस अर्थात् औरों को पीड़ा देने हारे के (हन्ता) मारने वाले तथा (मावतः) मेरे समान (विप्रस्य) बुद्धिमान् धर्मात्मा पुरुष की (त्राता) रक्षा करने वाले हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—यही विद्वानों का प्रशंसा करने योग्य काम है जो पाप का खण्डन और धर्म का मण्डन करना किसी को दुष्ट का संग और श्रेष्ठजन का त्याग न करना चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों और राजजनों के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ ऊनतीश का सूक्त और सत्रहका वर्ग समाप्त हुआ ॥

ऐन्द्रेत्यस्य दशर्चस्य त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेपऋषिः। इन्द्रो देवता १। ५ भुरिगष्टिः २। ३। ६। ९ स्वराडष्टिः ४। ८ अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः।७ निचृदत्यष्टिश्छन्दः।गान्धारः स्वरः। १० विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः।

अथ राजप्रजाजनाः परस्परं प्रीत्या वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब दश ऋचा वाले एकसौ तीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में राजा और प्रजा जन आपस में प्रीति के साथ वर्त्तें इस वि० ॥

एन्द्र॑ याह्युप॑ नः परा॒वतो॒ नायमच्छा॑ वि॒दथा॑-नीव॒ सत्प॑ति॒रस्तं॒ राजे॑व॒ सत्प॑तिः। हवा॑महे त्वा

वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा । पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥

आ । इन्द्र । याहि । उप । नः । पराऽवतः । न । अयम् । अच्छ । विदथानिऽइव । सत्ऽपतिः । अस्तम् । राजाऽइव । सत्ऽपतिः । हवामहे । त्वा । वयम् । प्रयस्वन्तः । सुते । सचा । पुत्रासः । न । पितरम् । वाजऽसातये । मंहिष्ठम् । वाजऽसातये ॥ १ ॥

पदार्थः--(आ) (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् (याहि) प्राप्नुहि (उप) (नः) अस्मानस्माकं वा(परावतः) दूरदेशात् (न) निषेधे (अयम्) (अच्छा) निश्शेषार्थे (विदथानीव) संग्रामानिव (सत्पतिः) सतां धार्मिकाणां पतिः। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (अस्तम्) गृहम् (राजेव) (सत्पतिः) सत्याचाररक्षकः (हवामहे) स्तुमः (त्वा) त्वाम् (वयम्) (प्रयस्वन्तः) बहुप्रयत्नशीलाः (सुते) निष्पन्ने (सचा) समवायेन (पुत्रासः) (न) इव (पितरम्) जनकम् (वाजसातये) युद्धविभागाय (मंहिष्ठम्) अतिशयेन पूजितम् (वाजसातये) पदार्थविभागाय ॥ १ ॥

अन्वयः--हे इन्द्र अयं विदथानीवायात्यतस्त्वं नोऽस्मान् परावते नोपायाहि सत्पती राजेव सत्पतिस्त्वं नोऽस्माकमस्तमुपायाहि । प्रयस्वन्तो वयं सचा सुते वाजसातये वाजसातये च पुत्रासः पितरं नेव मंहिष्ठं त्वाच्छ हवामहे ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—सर्वे राजप्रजाजनाः पितापुत्रवदिह वर्त्तित्वा पुरुषार्थिनः स्युः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् राजन् (अयम्) यह शत्रुजन (विदथानीव) संग्रामों को जैसे वैसे आ कर प्राप्त होता इस से आप (नः) हम लोगों के समीप (परावतः) दूर देश से (न) मत (उपायाहि) आइये किन्तु निकट से आइये (सत्पतिः) धार्मिक सज्जनों का पति (राजेव) जो प्रकाशमान उस के समान (सत्पतिः) सत्याचरण की रक्षा करने वाले आप हमारे (अस्तम्) घर को प्राप्त हो (प्रयस्वन्तः) अत्यन्त प्रयत्न शील (वयम्) हम लोग (सचा) सम्बन्ध से (सुते) उत्पन्न हुए संसार में (वाजसातये) युद्ध के विभाग के लिये और (वाजसातये) पदार्थों के विभाग के लिये (पुत्रासः) पुत्रजन जैसे (पितरम्) पिता को (न) वैसे (मंहिष्ठम्) अतिसत्कारयुक्त (त्वा) आप की (अच्छ) अच्छे प्रकार (हवामहे) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—समस्त राजप्रजाजन पिता और पुत्र के समान इस संसार में वर्त्ति कर पुरुषार्थी हों ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः। मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे। आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥

पिब । सोमम् । इन्द्र । सुवानम् । अद्रिभिः । कोशेन । सिक्तम् । अवतम् । न । वंसगः । ततृषाणः । न । वंसगः ।

मदा॑य । ह॒र्य॒ता॑य॒ । ते॒ । तु॒वि॒ऽत॑माय । धाय॑से । आ । त्वा॒ । य॒च्छ॒न्तु॒ । ह॒रित॑ः । न । सूर्य॑म् । अहा॑ । विश्वा॑ऽइव । सूर्य॑म् ॥ २ ॥

पदार्थः—(पिब) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (सोमम्) दिव्यौषधिरसम् (इन्द्र) सभेश (सुवानम्) सोतुमर्हम् (अद्रिभिः) शिलाखण्डादिभिः (कोशेन) मेघेन (सिक्तम्) संयुक्तम् (अवतम्) वृद्धम् (न) इव (वंसगः) संभक्ता (तातृषाणः) अतिशयेन पिपासितः (न) इव (वंसगः) वृषभः (मदाय) आनन्दाय (हर्यताय) कामिताय (ते) तुभ्यम् (तुविष्टमाय) अतिशयेन तुविर्बहुस्तस्मै । तुविरिति बहुना० निघं० ३ । १ (धायसे) धर्त्रे (आ)(त्वा)(यच्छन्तु) निगृह्णन्तु (हारितः) (न) इव (सूर्यम्) (अहा) अहानि (विश्वेव) विश्वानीव (सूर्यम्) ॥ २ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र वंसगो न वंसगस्त्वमद्रिभिः सुवानं कोशेनाऽवतं सिक्तं नेव सोमं पिब । तुविष्टमाय धायसे मदाय हर्य्यताय ते तुभ्यमयं सोम आप्नोतु सूर्यमहा विश्वेव सूर्यं हारितो न त्वा य आयच्छन्तु ते सुखमाप्नुवन्तु ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये साधनोपसाधनैरायुर्वेदरीत्या महौषधिरसान् निर्माय सेवन्ते तेऽरोगा भूत्वा प्रयतितुं शक्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभापति (तातृषाणः) अतीव पियासे (वंसगः) बैल के (न) समान बलिष्ठ (वंसगः) अच्छे विभाग करने वाले आप

(अद्रिभिः) शिलाखण्डों से (सुवानम्) निकालने के योग्य (कोशेन) मेघ से (अवतम्) बढ़े (सिक्तम्) और संयुक्त किये हुए के (न) समान (सोमम्) सुन्दर ओषधियों के रस को (पिब) अच्छे प्रकार पिओ (तुविष्टमाय) अतीव बहुत प्रकार (धायसे) धारण करने वाले (मदाय) आनन्द के लिये (हर्य्यताय) और कामना किये हुए (ते) आप के लिये यह दिव्य ओषधियों का रस प्राप्त होवे अर्थात् चाहे हुए (सूर्यम्) सूर्य को (अहा) (विश्वेव) सब दिन जैसे वा (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (हरितः) दिशा विदिशा (न) जैसे वैसे (त्वा) आप को जो लोग (आ, यच्छन्तु) अच्छे प्रकार निरन्तर ग्रहण करें वे सुख को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—जो बड़े साधन और छोटे साधनों और आयुर्वेद अर्थात् वैद्यविद्या की रीति से बड़ी २ ओषधियों के रसों को बना कर उन का सेवन करते वे आरोग्यवान् होकर प्रयत्न कर सकते हैं॥२॥

पुनः के परमात्मानं ज्ञातुं शक्नुवन्तीत्याह ॥

फिर कौन परमात्मा को जान सकते हैं इस वि० ॥

अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि । व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः। अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥

अविन्दत् । दिवः । निऽहितम् । गुहा । निऽधिम् । वेः । न । गर्भम् । परिऽवीतम् । अश्मनि । अनन्ते । अन्तः । अश्मनि । व्रजम् । वज्री । गवाम्ऽइव । सिसासन् । अङ्गिरःऽतमः । अप । अवृणोत् । इषः । इन्द्रः । परिऽवृताः । द्वारः । इषः । परिऽवृताः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अविन्दत्) प्राप्नोति (दिवः) विज्ञानप्रकाशात् (निहितम्) स्थितम् (गुहा) गुहायां बुद्धौ (निधिम्) निधीयन्ते पदार्था यस्मिँस्तम् (वेः) पक्षिणः (न) इव (गर्भम्) (परिवीतम्) परितः सर्वतो वीतं व्याप्तं कमनीयं च जलम् (अश्मनि) मेधमण्डले (अनन्ते) देशकालवस्त्वपरिछिन्ने (अन्तः) मध्ये (अश्मनि) मेघे (व्रजम्) व्रजन्ति गावो यस्मिन्, तम् (वज्री) वज्रो दण्डः शासनार्थो यस्य सः (गवामिव) (सिषासन्) ताडयितुं दण्डयितुमिच्छन् (अङ्गिरस्तमः) अतिप्रशस्तः (अप) (अवृणोत्) वृणोति (इषः) एष्टव्यारथ्याः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्यः (परीवृताः) परितोऽन्धकारेणावृताः (द्वारः) द्वाराणि (इषः) (परीवृताः) ॥ ३ ॥

अन्वयः—यो वज्री व्रजं गवामिव सिषासन्नंगिरस्तम इन्द्र इषः परीवृता इव परीवृता इषो द्वारश्चापावृणोदनन्तेऽश्मन्यश्मन्यन्तः परिवीतं वेर्गर्भं न गुहा निहितं निधिं परमात्मानं दिवोऽविन्दत्सोऽतुलं सुखमाप्नोति ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये योगाङ्गधर्मविद्यासत्सङ्गानुष्ठानेन स्वात्मनि स्थितं परमात्मानं विजानीयुस्ते सूर्यस्तमइव स्वसङ्गिनामविद्यां निवार्य विद्याप्रकाशं जनयित्वा सर्वान् मोक्षमार्गे प्रवर्त्याऽऽनन्दितान् कर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (वज्री) शासना के लिये दण्ड धारण किये हुए(व्रजं,गवामिव) जैसे गौओं के समूह गोशाला में गमन करते जाते आते वैसे (सिषासन्) जनों को ताड़ना देने अर्थात् दण्ड देने की इच्छा करता हुआ अथवा जैसे

(अङ्गिरस्तमः) अतिश्रेष्ठ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्य (इषः) इच्छा करने योग्य (परीवृताः) अन्धकार से ढपी हुई वीथियों को खोले वैसे (परीवृताः) ढपी हुई (इषः) इच्छाओं और (द्वारः) द्वारों को (अपावृणोत्) खोले तथा (अनन्ते) देश काल वस्तु भेद से न प्रतीत होते हुए (अश्मनि) आकाश में (अश्मनि) वर्त्तमान मेघ के (अन्तः) बीच (परिवीतम्) सब ओर से व्याप्त और अतिमनोहर जल वा (वेः) पक्षी के (गर्भम्) गर्भ के (न) समान (गुहा) बुद्धि में (निहितम्) स्थित (निधिम्) जिस में निरन्तर पदार्थ धरे जायं उस निधि रूप परमात्मा को (दिवः) विज्ञान के प्रकाश से (अविन्दत्) प्राप्त होता है वह अतुल सुख को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो योग के अङ्ग धर्म विद्या और सत्संग के अनुष्ठान से अपनी आत्मा में स्थित परमात्मा को जानें वे सूर्य जैसे अन्धकार को वैसे अपने सङ्गियों की अविद्या छुड़ा विद्या के प्रकाश को उत्पन्न कर सब को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त करा के उन्हें आनन्दित कर सकते हैं ॥ ३ ॥

केऽत्र सुशोभन्त इत्याह ॥

इस संसार में कौन अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं इस विषय० ॥

दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् । संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना । तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

दादृहाणः । वज्रम् । इन्द्रः । गभस्त्योः । क्षद्मऽइव । तिग्मम् । असनाय । सम् । श्यत् । अहिऽहत्याय । सम् । श्यत् । सम्ऽविव्यानः । ओजसा । शवःऽभिः । इन्द्र । मज्मना । तष्टाऽइव । वृक्षम् । वनिनः । नि । वृश्चसि । परश्वाऽइव । नि । वृश्चसि ॥ ४ ॥

पदार्थः—(दार्दहाणः) दोषान् हिंसन् । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं तुजादित्वाद्दैघर्य्यं बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः (वज्रम्) तीव्रं शस्त्रं गृहीत्वा (इन्द्रः) विद्वान् (गभस्त्योः) बाह्वोः । गभस्तीति बाहुना० २ । ४ (क्षद्मेव) उदकमिव (तिग्मम्) तीव्रम् (असनाय) प्रक्षेपणाय (सम्) सम्यक् (श्यत्) तनूकरोति (अहिहत्याय) मेघहननाय (सम्) (श्यत्) (संविव्यानः) सम्यक् प्राप्नुवन् (ओजसा) पराक्रमेण (शवोभिः) सेनाद्यैर्बलैः (इन्द्र) दुष्टदोषविदारक (मज्मना) बलेन (तष्टेव) यथा छेत्ता (वृक्षम्) (वनिनः) वनानि बहवो रश्मयो विद्यन्ते येषां त इव (नि) (वृश्चसि) छिनत्सि (परश्वेव) यथा परशुना (नि) नितराम् (वृश्चसि) छिनत्सि ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् भवान् यथा सूर्योऽहिहत्याय तिग्मं वज्रं संश्यत् तथा गभस्त्योः क्षद्मेवासनाय तिग्मं वज्रं निधाय दार्दहाण इन्द्रस्सन् शत्रून् संश्यत् । हे इन्द्र त्वं वृक्षं मज्मना तष्टेवौजसा शवोभिः सह संविव्यानस्सन् वनिन इव दोषान् निवृश्चसि परश्वेवाविद्यां निवृश्चसि तथा वयमपि कुर्याम ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये मनुष्याः प्रमादालस्यादीन् दोषान् पृथक् कृत्य जगति गुणान्निदधति ते सूर्यरश्मयइवेह संशोभन्ते॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् आप जैसे सूर्य (अहिहत्याय) मेघ के मारने को (तिग्मम्) तीव्र अपने किरणरूपी वज्र को (सं, श्यत्) तीक्ष्ण करता वैसे (गभस्त्योः) अपनी भुजाओं के (क्षद्मेव) जल के समान (असनाय) फेंकने के लिये तीव्र (वज्रम्) शस्त्र को निरन्तर धारण करके (दार्दहाणः)

दोषों का विनाश करने (इन्द्रः) और विद्वान् होते हुए शत्रुओं को (सं, श्यत्) अतिसूक्ष्म करते अर्थात् उन का विनाश करते वा हे (इन्द्र) दुष्टों का दोष नाशने वाले आप (वृक्षम्) वृक्ष को (मज्मना) बल से (तष्टेव) जैसे बढ़ई आदि काटने हारा वैसे (ओजसा) पराक्रम और (शवोभिः) सेना आदि बलों के साथ (संविव्यानः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (वनिनः) वन वा बहुत किरणें जिन के विद्यमान उन के समान दोषों को (नि, वृश्चसि) निरन्तर काटते वा (परश्वेव) जैसे फरसा से कोई पदार्थ काटना वैसे अविद्या अर्थात् मूर्खपन को अपने ज्ञान से (नि, वृश्चसि) काटते हो वैसे हम लोग भी करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो मनुष्य प्रमाद और आलस्य आदि दोषों को अलग कर संसार में गुणों को निरन्तर धारण करते हैं वे सूर्य की किरणों के समान यहां अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

पुनः केऽत्र प्रकाशिता जायन्त इत्याह ॥

फिर इस संसार में कौन प्रकाशित होते हैं इस वि० ॥

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव । इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् । धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥ १८ ॥

त्वम् । वृथा । नद्यः । इन्द्र । सर्तवे । अच्छ । समुद्रम् । असृजः । रथान्ऽइव । वाजऽयतः । रथान्ऽइव । इतः । ऊतीः । अयुञ्जत । समानम् । अर्थम् । अक्षितम् । धेनूःऽइव । मनवे । विश्वऽदोहसः । जनाय । विश्वऽदोहसः ॥ ५ ॥ १८ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (वृथा) निष्प्रयोजनाय (नद्यः) (इन्द्र) विद्येश (सर्त्तवे) सर्त्तुं गन्तुम् (अच्छ) उत्तमरीत्या (समुद्रम्) सागरम् (असृजः) सृजेः (रथाँइव) यथा रथानधिष्ठाय (वाजयतः) सङ्ग्रामयतः (रथाँइव) (इतः) प्राप्ताः (ऊतीः) रक्षाद्याः क्रियाः (अयुञ्जत) युञ्जते (समानम्) तुल्यम् (अर्थम्) द्रव्यम् (अक्षितम्) क्षयरहितम् (धेनूरिव) यथा दुग्धदात्रीर्गाः (मनवे) मननशीलाय मनुष्याय (विश्वदोहसः) विश्वं सर्वं जगद्गुणैर्दुहन्ति पिपुरति ते (जनाय) धर्म्ये प्रसिद्धाय (विश्वदोहसः) विश्वस्मिन् सुखप्रपूरकाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं यथा नद्यः समुद्रं वृथा सृजन्ति तथा रथानिव वाजयतो रथानिव सर्त्तवे अच्छासृजः । जनाय विश्वदोहसइव ये मनवे विश्वदोहसस्सन्तो भवन्तो धेनूरिवेत ऊती रक्षितं समानमर्थं चायुञ्जत तेऽत्यन्तमानन्दं प्राप्नुवन्ति ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकाराः—ये धेनुवत्सुखं रथवद्धर्म्यमार्गमवलम्ब्य धार्मिकन्यायाधीशवद्भूत्वा सर्वान् स्वसदृशान् कुर्वन्ति तेऽत्र प्रशंसिता जायन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या के अधिपति (त्वम्) आप जैसे (नद्यः) नदी (समुद्रम्) समुद्र को (वृथा) निष्प्रयोजन भर देती वैसे (रथानिव) रथों पर बैठने हारों के समान (वाजयतः) संग्राम करते हुओं को (रथानिव) रथों के समान हीं (सर्त्तवे) जाने को (अच्छ, असृजः) उत्तम रीति से कलायन्त्रों से युक्त मार्गों को बनावें वा (जनाय) धर्मयुक्त व्यवहार में प्रसिद्ध मनुष्य के लिये जो (विश्वदोहसः) समस्त जगत् को अपने गुणों से परिपूर्ण

करते उन के समान (मनवे) विचार शील पुरुष के लिये (विश्वदोहसः) संसार सुख को परिपूर्ण करने वाले होते हुए आप (धेनूरिव) दूध देने वाली गौओं के समान (इतः) प्राप्त हुई (ऊतीः) रक्षादि क्रियाओं और (अच्छिनम्) अक्षय (समानम्) समान अर्थात् काम के तुल्य (अर्थम्) पदार्थ का (अयुयुञ्जत) योग करते हैं वे अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार हैं—जो पुरुष गौओं के समान सुख रथ के समान धर्म के अनकूल मार्ग का अवलम्ब कर धार्मिक न्यायाधीश के समान होकर सब को अपने समान करते हैं वे इस संसार में प्रशंसित होते हैं ॥ ५ ॥

पुनर्मनुष्याः कस्मात्किं प्राप्य कीदृशा भवन्तीत्याह ॥

फिर मनुष्य किस से क्या पाकर कैसे होते हैं इस वि० ॥

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः । शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् । अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥

इमाम् । ते । वाचम् । वसुऽयन्तः । आयवः । रथम् । न । धीरः । सुऽअपाः । अतक्षिषुः । सुम्नाय । त्वाम् । अतक्षिषुः । शुम्भन्तः । जेन्यम् । यथा । वाजेषु । विप्र । वाजिनम् । अत्यम्ऽइव । शवसे । सातये । धना । विश्वा । धनानि । सातये ॥ ६ ॥

पदार्थः—(इमाम्) (ते) तव सकाशात् (वाचम्) विद्याधर्मसत्याऽन्वितां वाणीम् (वसूयन्तः) आत्मनो वसूनि विज्ञानादीनि धनानीच्छन्तः (आयवः) विद्वांसः (रथम्) प्रशस्तं रमणीयं

यानम् (न) इव (धीरः) ध्यानयुक्तः (स्वपाः) शोभनानि धर्म्याण्यपांसि कर्माणि यस्य सः (अतत्तिषुः) संवृणुयुः । तत्तत्वचने त्वचनं संवरणमिति (सुम्नाय) सुखाय (त्वा) त्वाम् (अतत्तिषुः) सूक्ष्माधियं संपादयन्तु (शुम्भन्तः) प्राप्तशोभाः (जेन्यम्) जयति येन तम् (यथा) येन प्रकारेण (वाजेषु) संग्रामेषु (विप्र) मेधाविन् (वाजिनम्) (अत्यमिव) यथाऽश्वम् (शवसे) बलाय (सातये) संविभक्तये (धना) द्रव्याणि (विश्वा) सर्वाणि (धनानि) (सातये) संभोगाय ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे विप्र यस्य ते तव सकाशादिमां वाचं प्राप्ता आयवो वसूयन्तः स्वपा धीरो रथं नातत्तिषुः शुम्भन्तो यथा वाजेषु जेन्यं वाजिनमत्यमिव शवसे सातये धनानीव विश्वा धना प्राप्य सुम्नाय सातये त्वामतत्तिषुस्ते सुखिनो जायन्ते ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—येऽनूचानादाप्ताद्विदुषोऽखिला विद्याः प्राप्य विस्तृतधियो जायन्ते ते समग्रमैश्वर्य्यं प्राप्य रथवदश्ववद्वीरवद्धर्म्यमार्गं गत्वा कृतकृत्या जायन्ते ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (विप्र) मेधावी धीर बुद्धि वाले जन जिन (ते) आप के निकट से (इमाम्) इस (वाचम्)विद्या धर्म और सत्य युक्त वाणी को प्राप्त (आयवः) विद्वान् जन (वसूयन्तः) अपने को विज्ञान आदि धन चाहते हुए (स्वपाः) जिस के उत्तम धर्म के अनुकूल काम वह (धीरः) धीरपुरुष (रथम्) प्रशंसित रमण करने योग्य रथ को (न) जैसे वैसे (अतत्तिषुः) सूक्ष्मबुद्धि को स्वीकार करें वा (शुम्भन्तः) शोभा को प्राप्त हुए (यथा) जैसे (वाजेषु) संग्रामों में (जेन्यम्) जिस से शत्रुओं को जीतते उस (वाजिनम्) अतिचतुर वा संग्रामयुक्त पुरुष को (अत्यमिव) घोड़ा के समान (शवसे) बल के

लिये और (सातये) अच्छे प्रकार विभाग करने के लिये (धनानि) द्रव्य आदि पदार्थों के समान (विश्वा) समस्त (धना) विद्या आदि पदार्थों को प्राप्त हो कर (सुम्नाय) सुख और (सातये) संभोग के लिये (त्वाम्) आप को (अतक्षिषुः) उत्तमता से स्वीकार करे वा अपने गुणों से ढांपें वे सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो उपदेश करने वाले धर्मात्मा विद्वान् जन से समस्त विद्याओं को पा कर विस्तारयुक्तबुद्धि अर्थात् सब विषयों में बुद्धि फैलाने हारे होते हैं वे समग्र ऐश्वर्य को पा कर घोड़ा और धीर पुरुष के समान धर्म के अनुकूल मार्ग को प्राप्त हो कर कृतकृत्य होते हैं ॥ ६ ॥

केऽत्रैश्वर्यमुन्नयन्तीत्याह ॥

इस संसार में कौन ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं इस वि० ॥

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो । अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् । महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥

भिनत् । पुरः । नवतिम् । इन्द्र । पूरवे । दिवःऽदासाय । महि । दाशुषे । नृतोइति । वज्रेण । दाशुषे । नृतोइति । अतिथिऽग्वाय । शम्बरम् । गिरेः । उग्रः । अव । अभरत् । महः । धनानि । दयमानः । ओजसा । विश्वा । धनानि । ओजसा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(भिनत्) विदृणाति (पुरः) पुराणि (नवतिम्) एतत्संख्याकानि (इन्द्र) दुष्टविदारक (पूरवे) अलं साधनाय मनुष्याय । पूरव इति मनुष्यनामसु पठितम् निघं० २ । ३

(दिवोदासाय) कमितस्य प्रदात्रे (महि) महते पूजिताय (दाशुषे) विद्यादत्तवते (नृतो) विद्याप्राप्तयेऽगानां प्रक्षेप्तः (वज्रेण) शस्त्रेणेवोपदेशेन (दाशुषे) दानं कुर्वते (नृतो) स्वगात्राणां विक्षेप्तः (अतिथिग्वाय) अतिथीन् गच्छते (शम्बरम्) मेघम् (गिरेः) शैलस्याग्रे (उग्रः) तीक्ष्णस्वभावः सूर्यः (अव) (अभरत्) विभर्त्ति (महः) महान्ति (धनानि) (दयमानः) दाता (ओजसा) पराक्रमेण (विश्वा) सर्वाणि (धनानि) (ओजसा) पराक्रमेण ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे नृतो नृतविन्द्र यो भवान् वज्रेण शत्रूणां नवतिं पुरोभिनत् महि दिवोदासाय दाशुषे पूरवे सुखमवाभरत् हे नृतो भवान् अतिथिग्वाय दाशुषउग्रो गिरेः शम्बरमिवोजसा महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्यवाभरत् स किंचिदपि दुःखं कथं प्राप्नुयात् ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—नवतिमिति पदं वहूपलक्षणार्थम् ये शत्रून् विजयमाना अतिथीन् सत्कुर्वन्तः धार्मिकान् विद्या ददमाना वर्त्तन्ते ते सूर्यो मेघमिवाऽखिलमैश्वर्यं बिभ्रति ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (नृतो) अपने अंगों को युद्ध आदि में चलाने वा (नृतो) विद्या की प्राप्ति के लिये अपने शरीर की चेष्टा करने (इन्द्र) और दुष्टों का विनाश करने वाले जो आप (वज्रेण) शस्त्र वा उपदेश से शत्रुओं की (नवतिम्) नब्बे (पुरः) नगरियों को (भिनत्) विदारने नष्ट भ्रष्ट करने वा (महि) बड़प्पन पाये हुए सत्कार युक्त (दिवोदासाय) चहीते पदार्थ को अच्छे प्रकार देने वाले और (दाशुषे) विद्यादान किये हुए (पूरवे)

पूरे साधनों से युक्त मनुष्य के लिये सुख को धारण करते तथा (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होने और (दाशुषे) दान करने वाले के लिये (उग्रः) तीक्ष्ण स्वभाव अर्थात् प्रचण्ड प्रतापवान् सूर्य (गिरेः) पर्वत के आगे (शम्बरम्) मेघ को जैसे वैसे (ओजसा) अपने पराक्रम से (महः) बड़े २ (धनानि) धन आदि पदार्थों के (दयमानः) देने वाले (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा) समस्त (धनानि) धनों को (अवाभरत्) धारण करते सो आप किंचित् भी दुःख को कैसे प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—इस मंत्र में "नवानिम्" यह पद बहुतों का बोध कराने के लिये है जो शत्रुओं को जीतते अतिथियों का सत्कार करते और धार्मिकों को विद्या आदि गुण देते हुए वर्त्तमान हैं वे सूर्य जैसे मेघ को वैसे समस्त ऐश्वर्य धारण करते हैं ॥ ७ ॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशैर्भवितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

इन्द्रः॑ स॒मत्सु॒ यज॑मान॒मार्यं॒ प्राव॒द्विश्वे॑षु श॒तमू॑तिरा॒जिषु॒ स्व॑र्मीळ्हेष्वा॒जिषु॑ । मन॑वे॒ शास॑दव्र॒तान् त्वचं॑ कृ॒ष्णाम॑रन्धयत् । दक्ष॒न्न विश्वं॑ ततृ॒षाण॑मोषति॒ न्य॑र्श॒साान॑मोषति ॥ ८ ॥

इन्द्रः॑ । स॒मत्ऽसु॑ । यज॑मानम् । आर्य॑म् । प्र । आ॒व॒त् । विश्वे॑षु । श॒तम्ऽऊ॑तिः । आ॒जिषु॑ । स्वः॑ऽमीळ्हेषु । आ॒जिषु॑ । मन॑वे । शास॑त् । अ॒व्र॒तान् । त्वच॑म् । कृ॒ष्णाम् । अ॒र॒न्ध॒य॒त् । धक्ष॑त् । न । विश्व॑म् । त॒तृ॒षाण॑म् । ओ॒ष॒ति॒ । नि । अ॒र्श॒सा॒नम् । ओ॒ष॒ति॒ ॥ ८ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (समत्सु) संग्रामेषु (यजमानम्) अभयस्य दातारम् (आर्यम्) उत्तमगुणकर्मस्वभावम् (प्र) प्रकृष्टे (आवत्) रक्षेत् (विश्वेषु) समग्रेषु (शतमूतिः) शतमसंख्याता ऊतयो रक्षा यस्मात् सः (आजिषु) प्राप्तेषु (स्वर्मीढेषु) स्वः सुखं मिह्यते सिच्यते येषु तेषु (आजिषु) संग्रामेषु (मनवे) मननशीलधार्मिकमनुष्यरक्षणाय (शासत्) शिष्यात् (अव्रतान्) दुष्टाचारान् दस्यून् (त्वचम्) सम्पर्कमिन्द्रियम् (कृष्णाम्) कर्षिताम् (अरन्धयत्) हिंस्यात् (दक्षन्) दहेत् अत्र वाच्छन्दसीति भस्त्वं न (न) इव (विश्वम्) सर्वम् (ततृषाणम्) प्राप्ततृषम् (ओषति) (नि) (अर्शसानम्) प्राप्तं सत् (ओषाति) दहेत् ॥ ८ ॥

अन्वयः—यश्शतमूतिरिन्द्रः स्वर्मीढेष्वाजिष्वाजिषु धार्मिकाः शूरा इव विश्वेषु समत्सु यजमानमार्य्यं प्रावत् मनवेऽव्रतान् शासदेषां त्वचं कृष्णां कुर्वन्नरन्धयदग्निर्विश्वं दक्षंस्ततृषाणमोषति नार्शसानं न्योषति स एव साम्राज्यं कर्त्तुमर्हति ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०— मनुष्यैरार्यगुणकर्मस्वभावान् स्वीकृत्य दस्युगुणकर्मस्वभावान् विहाय श्रेष्ठान् संरक्ष्य दुष्टान् संदण्ड्य धर्मेण राज्यं शासनीयम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—जो (शतमूतिः) अर्थात् जिस से असंख्यात रक्षा होती वह (इन्द्रः) परमऐश्वर्यवान् राजा (स्वर्मीढेषु) जिन में सुख सिञ्चन किया जाता उन (आजिषु) प्राप्त हुए (आजिषु) संग्रामों में धार्मिक शूरवीरों के समान (विश्वेषु) समग्र (समत्सु) संग्रामों में (यजमानम्) अभय के

देने वाले (आर्यम्) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष को (प्रावन्) अच्छे प्रकार पाले वा (मनवे) विचारशील धार्मिक मनुष्य की रक्षा के लिये(अव्रतान्) दुष्ट आचरण करनेवाले डाकुओं को(शासन्)शिक्षा देवे और इन की (त्वचम्) सम्बन्ध करने वाली खाल को (कृष्णाम्) खैंचता हुआ (अरन्धयत्) नष्ट करे वा अग्नि जैसे (विश्वम्) सब पदार्थ मात्र को (दक्षन्) जलावे और (ततृषाणम्) पिया से प्राणी को (ओषति) दाहे अति जलन देवे (न) वैसे (अर्शसानम्) प्राप्त हुये शत्रुगण को (न्योषति) निरन्तर जलावे वही चक्रवर्त्ति राज्य करने को योग्य होता है ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालं०—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावों को स्वीकार और दुष्टों के गुण कर्म स्वभावों का त्याग कर श्रेष्ठों को रक्षा और दुष्टों को ताड़ना दे कर धर्म में राज्य की शासना करें ॥ ८ ॥

पुनर्विद्वद्भिरत्र कथं भवितव्यमित्याह ॥

फिर इस संसार में विद्वानों को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति । उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे । सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥

सूरः । चक्रम् । प्र । वृहत् । जातः । ओजसा । प्रऽपित्वे । वाचम् । अरुणः । मुषायति । ईशानः । आ । मुषायति । उशना । यत् । पराऽवतः । अजगन् । ऊतये । कवे । सुम्नानि । विश्वा । मनुषाऽइव । तुर्वणिः । अहा । विश्वाऽइव । तुर्वणिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(सूरः) सूर्यः (चक्रम्) चक्रवद्वर्त्तमानं जगत् पृथिव्यादिकम् (प्र) (वृहत्) (जातः) प्रकटः सन् (ओजसा) स्वबलेन (प्रपित्वे) उत्तरस्मिन् (वाचम्) (अरुणः) रक्तवर्णः (मुपायति) मुषः खण्डक इवाचरति (ईशानः) शक्तिमान् सन् (आ) (मुषायति) (उशना) (यत्) यः (परावतः) दूरतः (अजगन्) गच्छेत् अत्र लङि तिपि बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः मो नो धातोरिति मस्य नः (ऊतये) रक्षाणाद्याय (कवे) विद्वन् (सुम्नानि) सुखानि (विश्वा) सर्वाणि (मनुषेव) मनुष्यवत् (तुर्वणिः) हिंसकः (अहा) दिनानि (विश्वेव) यथा सर्वाणि (तुर्वणिः) हिंसन् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे कवे यद्य ओजसाऽरुणस्तुर्वाणिर्जातः सूरो विश्वेवाहा प्रपित्वे वृहच्चक्रं प्रजनयतीव तुर्वणिर्मनुषेव विश्वा सुम्नानि वाचमाजनयतु मुषायतीव वशान उशना भवानूतये परावतोऽजगत् दुष्टान् मुषायति स सर्वैः सत्कर्त्तव्यः ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये सूर्यवद्विद्याविनयधर्मप्रकाशकाः सर्वेषामुन्नतये प्रयतन्ते ते स्वयमप्युन्नता भवन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (कवे) विद्वान् (यत्) जो (ओजसा) अपने बल से (अरुणः) लालरंग युक्त (तुर्वणिः) मेघ को छिन्न भिन्न करता और (जातः) प्रगट होता हुआ (सूरः) सूर्यमण्डल जैसे (विश्वेवाहा) सब दिनों को वा (प्रपित्वे) उत्तरायण में (बृहत्) महान् (चक्रम्) चाक के समान वर्तमान जगत् को (प्र) प्रगट करता वैसे और (तुर्वणिः) दुष्टों की हिंसा करने वाले उत्तमोत्तम (मनुषेव) मनुष्य के समान (विश्वा) समस्त (सुम्नानि) सुखों और

(वाचम्) वाणी को (आ) अच्छे प्रकार प्रगट करें वा सूर्य जैसे (मुषायति) खण्डन करने वाले के समान आचरण करता वैसे (ईशानः) समर्थ होते हुए (उशना) विद्यादि गुणों से कान्ति युक्त आप (ऊतये) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (परावतः) परे अर्थात् दूर से (अजगन्) प्राप्त हों और दुष्टों को (मुषायति) खण्ड खण्ड करें सो सब को सत्कार करने योग्य हैं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमालंकार हैं जो सूर्य के तुल्य विद्या विनय और धर्म का प्रकाश करने वाले सब की उन्नति के लिये अच्छा यत्न करते हैं वे आप भी उन्नति युक्त होते हैं ॥ ९ ॥

पुना राजप्रजाजनैः परस्परं कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥
फिर राजा और प्रजाजनों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्त्तः पायुभिः पाहि शग्मैः । दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥ १० ॥

सः । नः । नव्येभिः । वृषऽकर्मन् । उक्थैः । पुराम् । दर्त्तरिति दर्त्तः । पायुऽभिः । पाहि । शग्मैः । दिवःऽदासेभिः । इन्द्र । स्तवानः । ववृधीथाः । अहोभिःऽइव । द्यौः ॥ १० ॥

पदार्थः—(सः) (नः) अस्मान् (नव्येभिः) नवीनैः (वृषकर्मन्) वृषस्य मेघस्य कर्माणीव कर्माणि यस्य तत्सम्बुद्धौ (उक्थैः) प्रशंसनीयैः (पुराम्) शत्रुनगराणाम् (दर्त्तः) विदारक (पायुभिः) रक्षणैः (पाहि) रक्ष (शग्मैः) सुखैः शग्ममिति सुखना० निघं० ३।६ (दिवोदासेभिः) प्रकाशस्य दातृभिः (इन्द्र) सर्वरक्षक सभेश (स्तवानः) स्तूयमानः । अत्र कर्मणि शानच् (वावृधीथाः) वर्धेथाः

अत्र वाच्छन्दसीति शपः श्लुः तुजादीनामित्यभ्यासस्य दैर्घ्यम् वाच्छन्दसीत्युपधागुणो न (अहोभिरिव) यथा दिवसैः (द्यौः) सूर्य्यः॥१०॥

अन्वयः—हे वृषकर्मन् पुरां दर्त्तरिन्द्र यो दिवोदासेभिः स्तवानःसत्वं नव्येभिरुक्थैश्शग्मैः। पायुभिर्द्यौरहोभिरिव नः पाहि वावृधीथाः॥१०॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—राजपुरुषैः सूर्यवत् विद्यासुशिक्षाधर्मोपदेशैः प्रजाउत्साहनीयाः प्रशंनीयाश्चैवं प्रजाजनैः राजजनाश्चेति॥१०॥

अत्र राजप्रजाकर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति त्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—(वृषकर्मन्) जिन के वर्षने वाले मेघ के कामों के समान काम वह (पुराम्) शत्रुनगरों को (दर्त्तः) दरने विदारने विनाशने (इन्द्र) और सब की रक्षा करने वाले हे सभापति (दिवोदासेभिः) जो प्रकाश देने वाली (स्तवानः) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त हुए हैं (सः) वह आप (नव्येभिः) नवीन (उक्थैः) प्रशंसा करने योग्य (शग्मैः) सुखों और (पायुभिः) रक्षाओं से (द्यौः) जैसे सूर्य (अहोभिरिव) दिनों से वैसे (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करें और (वावृधीथाः) वृद्धि को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं० राजपुरुषों को सूर्य के समान विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म के उपदेश से प्रजाजनों को उत्साह देना और उन की प्रशंसा करनी चाहिये और वैसे ही प्रजाजनों को राजजन वर्त्तने चाहियें॥१०॥

इस सूक्त में राजा और प्रजाजन के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जाननी चाहिये ॥

यह एक सौ १३० तीसवां सूक्त और १९ उन्नीसवां वर्ग पूरा हुआ ॥

इन्द्रायेत्यस्य सप्तर्चस्य एकत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य। परुच्छेपऋषिः । इन्द्रो देवता १।२ निचृदत्यष्टिः ४ । विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः३।५।६।७भुरिगष्टिश्छन्दः।मध्यमः स्वरः॥

अथेदं कस्य राज्यमस्तीत्याह ॥

अब सात ऋचा वाले एक सौ एकतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में यह किस का राज्य है इस वि० ॥

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः। इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः। इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥ १ ॥

इन्द्राय । हि । द्यौः । असुरः । अनम्नत । इन्द्राय । मही । पृथिवी । वरीमऽभिः । द्युम्नऽसाता । वरीमऽभिः । इन्द्रम् । विश्वे । सऽजोषसः । देवासः । दधिरे । पुरः । इन्द्राय । विश्वा । सवनानि । मानुषा । रातानि । सन्तु । मानुषा ॥ १ ॥

पदार्थः—(इन्द्राय) परमैश्वर्याय (हि) किल (द्यौः) सूर्यः (असुरः) मेघः (अनम्नत) (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (मही) प्रकृतिः (पृथिवी) भूमिः (वरीमभिः) वर्त्तुं स्वीकर्त्तुमर्हैः (द्युम्नसाता) द्युम्नस्य प्रशंसाया विभागे (वरीमभिः) वरणीयैः (इन्द्रम्) सर्वदुःखविदारकम् (विश्वे) सर्वे (सजोषसः) समानप्रीतिसेवनाः (देवासः) विद्वांसः (दधिरे) दध्युः

रसीद मूल्य वेदभाष्य

मार्च सन् १८८६ ई०

८) लाला भगतराम जी पोस्टमास्टर जनरल स्टेट नाभा

८) मथुराप्रसाद दफ्तर डाकखाने करब जिला शाहाबाद

८) बाबू खेमकरनदास जी करवी

विज्ञापन

सब ग्राहक महाशयों को विदित हो कि अब दोनों वेदों का आठवां वर्ष पूरा हुआ इस से आगे नवम वर्ष का आरम्भ होगा सो अब कृपा कर पिछला आठ वर्ष तक का हिसाब चुका देवें। जब बहुत तगाजे कराने उस में अधिक व्यय व्यर्थ कराने में आप को कुछ भी लाभ नहीं है तो इसी को बड़ा तकाजा समझ कर शीघ्र दाम भेज कर हिसाब चुकता कर लीजिये।

आप का

भीमसेन शर्मा

स्थानापन्न प्रबन्धकर्त्ता

वैदिकयंत्रालय

प्रयाग

यह पुस्तक प्रबंधकर्त्ता के द्वारा वैदिकयंत्रालय प्रयाग में छप कर प्रतिमास की पहिली तारीख को प्रकाशित होता है॥

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।≈) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥≈)

एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इसग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।≈) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥≈) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय मेनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

(१) (९४, ९५) अंक (७७, ७८)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४३ वैशाख शुक्ल पक्ष

१—५—८६

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान नवें वर्ष के कि जो ७८। ७९ अङ्क से प्रारंभ होकर ७६। ७७ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के आठ वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है ॥

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ५।=)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ६)

[ख] एक वेद के ७७ अङ्क तक २५॥=) और दोनों वेदों के ५१।=)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की प्रथम तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा। इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे, एक अङ्क।=) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करदें। जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायं गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जावें वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित कर दिया करें। जिस में पुस्तक ठीक २ पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

(पुरः) सत्कारपुरःसरम् (इन्द्राय) परमेश्वराय (विश्वा) सर्वाणि (सवनानि) ऐश्वर्याणि (मानुषा) मानुषाणामिमानि (रातानि) दत्तानि (सन्तु) भवन्तु (मानुषा) मानुषाणामिमानीव ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्मा इन्द्राय द्यौरसुरः यस्मा इन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसातानम्नत यमिन्द्रं सजोषसो विश्वे देवासः पुरो दधिरे तस्मा इन्द्राय हि मानुषेव वरीमभिर्धर्मैर्विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्त्विति विजानीत ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैः यावत् किंचिदत्र कार्यकारणात्मकं जगत् यावन्तो जीवाश्च वर्त्तन्ते एतत् सर्वं परमेश्वरस्य राज्यमस्तीति बोध्यम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिये (द्यौः) सूर्य (असुरः) और मेघ वा जिस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिये (मही) बड़ी प्रकृति और (पृथिवी) भूमि (वरीमभिः) स्वीकार करने योग्य व्यवहारों से (द्युम्नसाता) प्रशंसा के विभाग अर्थात् अलग २ प्रतीति होने के निमित्त (अनम्नत) नमे नम्रता को धारण करे वा जिस (इन्द्रम्) सर्वदुःख विनाशने वाले परमेश्वर को (सजोषसः) एक सी प्रीति करने हारे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् जन (पुरः) सत्कार पूर्वक (दधिरे) धारण करें उस (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (हि) ही (मानुषा) मनुष्यों के इन व्यवहारों के समान (वरीमभिः) स्वीकार करने योग्य धर्मों से (विश्वा) समस्त (सवनानि) ऐश्वर्य जो (मानुषा) मनुष्य सम्बन्धी हैं वे (रातानि) दिये हुए (सन्तु) होवें इस को जानो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जितना कुछ यहां कार्य कारणात्मक जगत् और जितने जीव वर्त्तमान हैं यह सब परमेश्वर का राज्य है ॥ १ ॥

पुनर्मनुष्यैः परमात्मैवोपासनीय इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को परमात्मा की ही उपासना करना चाहिये इस वि० ॥

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् । तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि । इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥

विश्वेषु । हि । त्वा । सवनेषु । तुञ्जते । समानम् । एकम् । वृषऽमन्यवः । पृथक् । स्वः१रिति स्वः । सनिष्यवः । पृथक् । तम् । त्वा । नावम् । न । पर्षणिम् । शूषस्य । धुरि । धीमहि । इन्द्रम् । न । यज्ञैः । चितयन्तः । आयवः । स्तोमेभिः । इन्द्रम् । आयवः ॥ २ ॥

पदार्थः—(विश्वेषु) सर्वेषु (हि) खलु (त्वा) त्वाम् (सवनेषु) ऐश्वर्येषु (तुञ्जते) तुञ्जन्ति पालयन्ति । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदमेकवचनं च (समानम्) सर्वत्रैव स्वव्याप्त्यैकरसम् (एकम्) अद्वितीयमसहायम् (वृषमण्यवः) वृषस्य मन्युरिव मन्युर्येषां ते (पृथक्) (स्वः) सुखस्वरूपम् (सनिष्यवः) संभजमानाः (पृथक्) (तम्) (त्वा) त्वाम् (नावम्) (न) इव (पर्षणिम्)

सेचनीयाम् (शूषस्य) बलवतः (धुरि) धारके काष्ठे (धीमहि) धरेम । अत्र डुधाञ् धातोर्लिङि छन्दस्युभयथेति शप्भाव आर्द्धधातुकत्वादीत्वम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (न) इव (यज्ञैः) विद्वत्संगसेवनैः (चितयन्तः) संचेतयन्तः । अत्र वाच्छन्दसीत्युपधागुणो न (आयवः) ये पुरुषार्थयन्ति ते मनुष्याः (स्तोमेभिः) स्तुतिभिः (इन्द्रम्) परमैश्वर्यकारकं सूर्यम् (आयवः) ये सूर्यमभितोयन्ति ते लोकाः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर पृथक् पृथक् सनिष्यवो वृषमण्यवो वयं यं समानमेकं स्वस्त्वा विश्वेषु सवनेषु विद्वांसो यथा तुत्रुजते पालयन्ति तथा हि तं त्वा शूषस्य धुरि पर्षणिं नावं न धीमहि इन्द्रमायव इव यज्ञैरिन्द्रं न चितयन्त आयवो वयं स्तोमेभिश्च प्रशंसेम ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—मनुष्यैर्विद्वांसोयं सच्चिदानन्दं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं सर्वत्रैकरसव्यापिनं सर्वाधारं सर्वैश्वर्यप्रदमेकमद्वितं परमात्मानमुपासते स एव निरन्तरमुपासनीयः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर (पृथक् पृथक्) अलग२(सनिष्यवः)उत्तमता से सेवने वाले (वृषमण्यवः) जिन का बैल के क्रोध के समान क्रोध वे हम लोग जिन (समानम्) सर्वत्र एक रस व्याप्त (एकम्) जिन का दूसरा कोई सहायक नहीं उन (स्वः) सुखस्वरूप (त्वा) आप को (विश्वेषु) समग्र (सवनेषु) ऐश्वर्य आदि पदार्थों में विद्वान् लोग जैसे (तुत्रुजते) राखते अर्थात् मानते जानते हैं वैसे (हि) ही (तम्) उन (त्वा) आप को (शूषस्य) बलवान् पुरुष के (धुरि) धारण करने वाले काठ पर (पर्षणिम्) सींचने योग्य (नावम्) नाव के (न) समान (धीमहि) धारण करें वा (इन्द्रम्)

परमऐश्वर्य कराने वाले सूर्यमंडल को जैसे उस के (आयवः) चारों ओर घूमते हुए लोक वैसे वा जैसे (यज्ञैः) विद्वानों के संग और सेवनों से (इन्द्रम्) परमऐश्वर्य को (न) वैसे (चितयन्तः) अच्छे प्रकार चिन्तवन करते हुए (आयवः) पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले हम लोग (स्तोमेभिः) स्तुतियों से आप की प्रशंसा करें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् जन जिस सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्त स्वभाव सर्वत्र एक रस व्यापी सब का आधार सब ऐश्वर्य देने वाले एक अद्वैत कि जिस की तुल्यता का दूसरा नहीं परमात्मा की उपासना करते वही निरन्तर सब को उपासना करने योग्य है ॥ २ ॥

पुनः सर्वैः क उपासनीय इत्याह ॥

फिर सब को किस की उपासना करनी चाहिये इस वि० ॥

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि । आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥

वि । त्वा । ततस्रे । मिथुना । अवस्यवः । व्रजस्य । साता । गव्यस्य । निःऽसृजः । सक्षन्तः । इन्द्र । निःऽसृजः । यत् । गव्यन्ता । द्वा । जना । स्वः । यन्ता । सम्ऽऊहसि । आविः । करिक्रत् । वृषणम् । सचाऽभुवम् । वज्रम् । इन्द्र । सचाऽभुवम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(वि) (त्वा) त्वां जगदीश्वरम् (ततस्रे) तस्यन्ति दुःखान्युपक्षयन्ति (मिथुना) मिथुनानि स्त्रीपुरुषाख्यद्वन्द्वानि (अवस्यवः) आत्मनोवमिच्छवः (व्रजस्य) व्रजितुं गन्तुं योग्यस्य (साता) सम्यक् सेवने (गव्यस्य) गोभ्यो हितस्य (निःसृजः) नितरां सृजन्तः निष्पादयन्तः (सक्षन्तः) सहन्तः अत्र सह धातोः पृषोदरादिवत्सकारागमः (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद (निःसृजः) नितरां संपन्नाः (यत्) यौ (गव्यन्ता) गौरिवाचरन्तौ (द्वा) द्वौ (जना) जनौ (स्वः) सुखस्वरूपम् (यन्ता) यन्तौ प्राप्नुवन्तौ (समूहसि) सम्यक्चेतयासि (आविः) प्राकट्ये (करिक्रत्) भृशंकुर्वन् (वृषणम्) सेचकम् (सचाभुवम्) यः समवाये भवति तम् (वज्रम्) दुष्टानां वज्रमिव दंडप्रदम् (इन्द्र) दुःखविदारक (सचाभुवम्) सत्यंभावुकम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र सक्षन्तो निःसृजोवस्यवो निःसृजो मिथुना त्वा प्राप्य व्रजस्य गव्यस्य सातेव दुःखानि विततस्रे।हे इन्द्र यद्यौ गव्यन्ता द्वा स्वर्यन्ता जना आविष्करिक्रत्संस्त्वं समूहसि तं सचाभुवं वज्रं वृषणं सचाभुवं त्वा तौ नित्यमुपासेताम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये पुरुषाः स्त्रियश्च सर्वस्य जगतः प्रकाशकं कर्त्तारं धर्त्तारं दातारं सर्वान्तर्यामिजगदीश्वरमेव सेवन्ते ते सततं सुखिनो भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमऐश्वर्य्य के देने हारे जगदीश्वर (सक्षन्तः) सहते हुए (निःसृजः) निरन्तर अनेकानेक व्यवहारों को उत्पन्न करने (अवस्यवः) और अपनी रक्षा चाहने वाले (निःसृजः) अतीव संपन्न (मिथुना) स्त्री

और पुरुष दो दो जने (त्वा) आप को प्राप्त हो के (व्रजस्य) जाने योग्य (गव्यस्य) गौओं के लिये हित करने वाले अर्थात् जिस में आराम पाने को गौएं जातीं उस गोड़ा आदि स्थान के (साता) सेवन में जैसे दुःख छुटें वैसे दुःखों को (वितितस्त्रे) छोड़ते हैं । हे (इन्द्र) दुःखों का विनाश करने वाले (यत्) जो (गव्यन्ता) गौओं के समान आचरण करते (द्वा) दो (स्वः) सुख स्वरूप आप को (यन्ता) प्राप्त होते हुए (जना) स्त्री पुरुषों को (आविष्करिक्रत्) प्रगट करते हुए आप (समूहसि) उन को अच्छे प्रकार चेतना देते हो उन (सचाभुवम्) समवाय सम्बन्ध में प्रसिद्ध होते हुए(वज्रम्) दुष्टों को वज्र के समान दण्ड देने (वृषणम्) सब को सींचने (सचाभुवम्) और सत्य की भावना कराने वाले आप की वे दोनों नित्य उपासना करें ॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो पुरुष और स्त्री सब जगत् को प्रकाशित करने उत्पन्न करने धारण करने और देने वाले सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ही का सेवन करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

पुनः के किं कृत्वा किं कुर्युरित्याह ॥

फिर कौन क्या करके क्या करें इस वि० ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः । शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते । महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

विदुः । ते । अस्य । वीर्यस्य । पूरवः । पुरः । यत् । इन्द्र । शारदीः । अव॒ऽआतिरः । ससहानः । अव॒ऽआतिरः । शासः । तम् । इन्द्र । मर्त्यम् । अयज्युम् । शवसः । पते । महीम् । अमुष्णाः । पृथिवीम् । इमाः । अपः । मन्दसानः । इमाः । अपः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(विदुः) जानीयुः (ते) तव (अस्य) (वीर्यस्य) पराक्रमस्य (पूरवः) मनुष्याः (पुरः) पूर्वम् (यत्) यः (इन्द्र) सर्वेषां धर्त्ता (शारदीः) शरदः इमाः (अवातिरः) अवतरेत् (सासहानः) सहमानः (अवातिरः) अवतरेत् (शासः) शिष्याः (तम्) (इन्द्र) सर्वाभिरक्षक (मर्त्यम्) मनुष्यम् (अयज्युम्) अयजमानम् (शवसः) बलस्य (पते) स्वामिन् (महीम्) महतीम् (अमुष्णाः) मुष्णीयाः (पृथिवीम्) (इमाः) प्रजाः (अपः) जलानि (मन्दसानः) कामयमानः (इमाः) प्रजाः (अपः) प्राणाइव वर्त्तमानाः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यथा पूरवस्ते तवाऽस्य वीर्यस्य पुरः प्रभावं विदुस्तथाऽन्येऽपि जानन्तु । यद्यः सासहानो जन इमाः शारदीरपोऽवातिरस्तथा त्वमपि जानीह्यवातिरश्च । हे शवसस्पत इन्द्र यथा त्वं यमयज्युं मर्त्यं शासः । यो मन्दसानो महीं पृथिवीं प्राप्य इमा अपः प्राणिनः पीडयेत्तं त्वममुष्णा वयमपि च शिष्याम ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तो०—य आप्तानां प्रभावं विदित्वा धर्ममाचरन्ति ते दुष्टान् शासितुं शक्नुवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब के धारण करने हारे जैसे (पूरवः) मनुष्य (ते) आप के (अस्य) इस (वीर्य्यस्य) पराक्रम के (पुरः) प्रथम प्रभाव को (विदुः) जानें वैसे और भी जानें और (यत्) जो (सासहानः) सहन करता हुआ जन (इमाः) इन प्रजा और (शारदीः) शरद् ऋतुसंबन्धी (अपः) जलों को (अवातिरः) प्रगट करे वैसे आप भी जानो और (अवातिरः) प्रगट करो हे (शवसः) बल के (पते) स्वामी (इन्द्र) सब की रक्षा करने हारे जैसे आप जिस (अयज्युम्) यज्ञ करने हारे (मर्त्यम्) मनुष्य को

(शासः) शिखाओ वा जो (मन्दसानः) कामना करता हुआ (महीम्) बड़ी (पृथिवीम्) पृथिवी को पाकर (इमाः) इन (अपः) प्राणों के समान वर्त्तमान प्रजाजनों को पीड़ा देवे (तम्) उस को आप (अमुष्णाः) चुराओ छिपाओ और हम भी शिखावें ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचक लुप्तोपमालंकार है०—जो धर्मात्मा सज्जनों के प्रभाव को जान कर धर्माचरण करते हैं वे दुष्टों को शिखला सकते हैं अर्थात् उन की दुष्टता दूर होने को अच्छी शिक्षा दे सकते हैं ॥ ४ ॥

पुनः प्रजारक्षकाः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर प्रजा की रक्षा करने हारे क्या करें इस वि० ॥

आदित्ते अस्य वीर्य्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ । चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे । ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

आत् । इत् । ते । अस्य । वीर्य्यस्य । चर्किरन् । मदेषु । वृषन् । उशिजः । यत् । आविथ । सखिऽयतः । यत् । आविथ । चकर्थ । कारम् । एभ्यः । पृतनासु । प्रऽवन्तवे । ते । अन्याम्ऽअन्याम् । नद्यम् । सनिष्णत । श्रवस्यन्तः । सनिष्णत ॥ ५ ॥

पदार्थः—(आत्) (इत्) एव (ते) तव (अस्य) (वीर्यस्य) पराक्रमस्य (चर्किरन्) भृशं विक्षिप्येयुः (मदेषु) हर्षेषु (वृषन्) आनन्दं वर्षयन् (उशिजः) धर्मं कामयमानाः

(यत्) ये (आविथ) रक्षेः (सखीयतः) सखेवाचरतः (यत्) यतः (आविथ) पालय (चकर्थ) कुरु (कारम्) क्रियते यस्तम् (एभ्यः) धार्मिकेभ्यः (पृतनासु) मनुष्येषु पृतना इति मनुष्यना० निघं०२ । ३ (प्रवन्तवे) प्रविभागं कर्त्तुम् (ते) (अन्यामन्याम्) भिन्नाम् २ (नद्यम्) नदीम् (सनिष्णत) संभजेयुः (श्रवस्यन्तः) आत्मनः श्रवोऽन्नमिच्छन्तः (सनिष्णत) संभजन्तु ॥ ५ ॥

अन्वयः--हे वृषन् विद्वन् यद्यआसास्ते तवास्य वीर्यस्य प्रभावेण मदेषु वर्त्तमाना उशिजो धर्मं कामयमाना जना दुष्टांश्चर्किरन् श्रवस्यन्तः सन्तः प्रवन्तवे पृतनासु सनिष्णत। अन्यामन्यां नद्यं मेघइव कारं सनिष्णत तान् सखीयतो जनांस्त्वमाविथ यद्यतो यानाविथ तान्पुरुषार्थवतश्चकर्थैभ्यः सर्वं राज्यमाविथ यद्ये च ते भृत्यास्तेऽपि धर्म्मेणादित् प्रजाः पालयेयुः ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः प्रजारक्षणेऽधिकृतास्ते धर्मेण प्रजापालनं चिकीर्षन्तः प्रयतेरन् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (वृषन्) आनन्द को वर्षाते हुए विद्वान् (यत्) जो धर्मात्मा जन (ते) आप के (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रम के प्रभाव से (मदेषु) आनन्दों में वर्त्तमान(उशिजः)धर्म की कामना करते हुए जन(चर्किरन्)दुष्टों को निरन्तर दूर करें वा (श्रवस्यन्तः) अपने को अन्न की इच्छा करते हुए(प्रवन्तवे) अच्छे विभाग करने को (पृतनासु) मनुष्यों में (सनिष्णत) सेवन करें अर्थात् (अन्यामन्याम्) अलग २ (नद्यम्) नदी को जैसे मेघ वैसे (कारम्) जो किया जाता उस कार का (सनिष्णत) सेवन करें उन (सखीयतः) मित्र के समान आचरण करते हुए जनों को आप (आविथ) पालो (यत्)जिस

कारण जिन को (आविथ) पालो इस से उन को पुरुषार्थ वाले (चकर्थ) करो (एभ्यः) इन धार्मिक सज्जनों से सब राज्य की पालना करो और जो आप के कर्मचारी पुरुष हों (ते) वे भी धर्म से (आदिन्) ही प्रजाजनों की पालना करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य प्रजा की रक्षा करने में अधिकार पाये हुए हैं वे धर्म के साथ प्रजा पालने की इच्छा करते हुए उत्तम यत्नवान् हों ॥ ५ ॥

पुनर्मनुष्याः केन किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य किस से क्या करें इस वि० ॥

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः।यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिन् चिकेतसि। आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥

उतो इति । नः । अस्याः । उषसः। जुषेत । हि । अर्कस्य । बोधि । हविषः । हवीमऽभिः । स्वःऽसाता । हवीमऽभिः । यत् । इन्द्र। हन्तवे । मृधः । वृषा। वज्रिन्। चिकेतसि । आ । मे । अस्य । वेधसः । नवीयसः । मन्म । श्रुधि । नवीयसः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(उतो) अपि (नः) अस्मान् (अस्याः) (उषसः) प्रातःकालस्य मध्ये (जुषेत) सेवेत (हि) खलु

(अर्कस्य) सूर्यस्य (बोधि) बोधय (हविषः) दातुमर्हस्य (हवीमभिः) आह्वातुमर्हैः कर्मभिः (स्वर्षाता) सुखानां विभागे । अत्र सुपां सुलुगिति डेर्डा (हवीमभिः) स्तोस्तुमर्हैः (यत्) ये (इन्द्र) दुष्टविदारक (हन्तवे) हन्तुम् । अत्र तवेन् प्रत्ययः (मृधः) संग्रामस्थान् शत्रून् मृध इति संग्रामना० निघं० २ । १७ (वृषा) वृषेव बलिष्ठः (वज्रिन्) प्रशस्तशस्त्रयुक्त (चिकेतसि) जानीयाः (आ) (मे) मम (अस्य) (वेधसः) मेधाविनः (नवीयसः) अतिशयेन नवस्य नवीनविद्याध्येतुः (मन्म) विज्ञानजनकं शास्त्रम् (श्रुधि) शृणु (नवीयसः) अतिशयेन नवाऽध्यापकस्य ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे वज्रिन्निन्द्र भवान् यथाऽर्कस्यास्या उपसश्च प्रभावेण जना बुद्ध्यन्ते तथा नोऽस्मान् बोधि हि किलोतो स्वर्षाता हवीमभिर्हवीमाभिर्हविषो जुषेत यद्यो वृषा त्वं मृधो हन्तवे चिकेतसि नवीयसो वेधसो मेस्य नवीयसो मन्माश्रुधि ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्योत्पन्नयोपसा प्रबुद्धजनाः प्रकाशे स्वान् २ व्यवहाराननुतिष्ठन्ति तथा विद्वद्भिस्सुबोधिता नरा विज्ञानप्रकाशे स्वानि २ कर्माणि कुर्वन्ति ये दुष्टान्निवार्य श्रेष्ठान्संसेव्य नूतनाऽधीतविदुषां सकाशाद्विद्या गृह्णन्ति तेऽभीष्टप्राप्तौ सिद्धा जायन्ते ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) प्रशंसित शस्त्रयुक्त विद्वान् (इन्द्र) दुष्टों का संहार करने वाले आप जैसे (अर्कस्य) सूर्य और (अस्याः) इस (उपसः)

प्रभात वेला के प्रभाव से जन सचेत होते जागते हैं वैसे (नः) हम लोगों को (बोधि) सचेत करो (उ,उतो) और निश्चय से (स्वर्षाता) सुखों के अलग २ करने में (हवीमभिः)स्पर्द्धा करने योग्य कामों के समान (हवीमभिः) प्रशंसा के योग्य कामों से (हविषः) देने योग्य पदार्थ का (जुषेन) सेवन करो (यत्) जो (वृषा) बैल के समान बलवान् आप (मृधः) संग्रामों में स्थित शत्रुओं को (हन्तवे) मारने को (चिकेतसि) जानो (नवीयसः) अतीव नवीन विद्या पढ़ने वाले (वेधसः) बुद्धिमान् (मे) मुझ विद्यार्थी और (अस्य) इस (नवीयसः) अत्यन्तनवीन पढ़ाने वाले विद्वान् के (मन्म) विज्ञान उत्पन्न करने वाले शास्त्र को (आश्रुधि) अच्छे प्रकार सुनो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है जैसे सूर्य से प्रगट हुई प्रभात वेला से जागे हुए जन सूर्य के उजेले में अपने २ व्यवहारों का आरम्भ करते हैं वैसे विद्वानों ने सुबोध किये मनुष्य विशेष ज्ञान के प्रकाश में अपने २ कामों को करते हैं। जो दुष्टों की निवृत्ति और श्रेष्ठों की उत्तम सेवा वा नवीन पढ़े हुए विद्वानों के निकट से विद्या का ग्रहण करते हैं वे चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति में सिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

पुना राजप्रजाजनैः किं निवार्य्य किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर राजा और प्रजाजनों को किस को छोड़ क्या करना चाहिये इस वि० ॥

त्वं तमि॑न्द्र वावृधा॒नो अ॑स्म॒युर॑मित्र॒यन्तं॑ तुविजात॒ मर्त्यं॒ वज्रे॑ण शूर॒ मर्त्य॑म् । ज॒हि यो नो॑ अ॒घाय॑ति शृणु॒ष्व सु॒श्रव॑स्तमः । रि॒ष्टं न याम॒न्नप॑ भूतु दु॒र्म॒तिर्विश्वाप॑ भूतु दुर्म॒तिः ॥ ७ ॥ २० ॥

त्वम् । तम् । इन्द्र । वृवृधानः । अस्मऽयुः । अमित्रऽयनतम् । तुविजात । मर्त्यम् । वज्रेण । शूर । मर्त्यम् । जहि । यः । नः । अघऽयति । शृणुष्व । सुश्रवःऽतमः ।

रि॒ष्टम् । न । याम॑न् । अप॑ । भू॒तु॒ । दुः॒ऽम॒तिः । विश्वा॑ । अप॑ । भू॒तु॒ । दुः॒ऽम॒तिः ॥ ७ ॥ २० ॥

पदार्थः-(त्वम्) (तम्) जनम् (इन्द्र) विद्यैश्वर्य्याढ्य (वावृधानः) वर्धमानः (अस्मयुः) अस्मास्वात्मानमिच्छुः (अमित्रयन्तम्) शत्रूयन्तम् (तुविजात) तुविषु बहुषु प्रसिद्ध (मर्त्यम्) मनुष्यम् (वज्रेण) शस्त्रेण (शूर) शत्रूणां हिंसक (मर्त्यम्) मनुष्यम् (जहि) (यः) (नः) अस्मभ्यम् (अघायति) आत्मनोऽघमिच्छति (शृणुष्व) (सुश्रवस्तमः) अतिशयेन सुष्ठु शृणोति सः(रिष्टम्)हिंसितम्(न)इव(यामन्)यामनि (अप) (भूतु) भवतु (दुर्मतिः)दुष्टा मतिर्यस्य सः (विश्वा) अखिला (अप) (भूतु) (दुर्मतिः) दुष्टा चासौ मतिश्च दुर्मतिः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे तुविजात शूरेन्द्र सुश्रवस्तमो वावृधानोऽस्मयुस्त्वं वज्रेणामित्रयन्तं मर्त्यं जहि । यो नोऽघायति तं मर्त्यं जहि । यो यामन् दुर्मतिरपभूतु तं रिष्टन्नेव जहि । या दुर्मतिः स्यात्सा विश्वाऽस्मत्तोऽपभूत्विति शृणुष्व ॥ ७ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०-ये धार्मिका राजप्रजाजनास्ते सर्वाभिश्वातुर्य्यैर्दुष्टोपकारिपरस्वापहारिणो हत्वा धर्म्यं राज्यं प्रशास्य निर्भयान् मार्गान् कृत्वा विद्यावृद्धिं कुर्य्युः ॥ ७ ॥

अत्र श्रेष्ठाऽश्रेष्ठमनुष्यसत्कारताडनवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् । इत्येकत्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध (शूर) शत्रुओं को मारने वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (सुश्रवस्तमः) अतीव सुन्दरता से सुनने हारे और (वावृधानः) बढ़ते हुए (अस्मयुः) हम लोगों में अपनी इच्छा करने वाले (त्वम्) आप (वज्रेण) शस्त्र से (अमित्रयन्तम्) शत्रुता करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्य को (जहि) मारो (यः) जो (नः) हम लोगों के लिये (अघायति) अपना दुष्कर्म चाहता है (तम्) उस (मर्त्यम्) मनुष्य को मारो और जो (यामन्) रात्रि में (दुर्मतिः) दुष्टमति वाला मनुष्य (अप, भूत्) अप्रसिद्ध हो छिपे उस को (रिषम्) दो मारने वाले (न) जैसे मारें वैसे (जहि) मारो अर्थात् अत्यन्त दण्ड देओ जो (दुर्मतिः) दुष्टमति हो वह (विश्वा) समस्त हम लोगों से (अप, भूत्) छिपे दूर हो यह आप (शृणुध्व) सुनो॥७

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो धार्मिक राजा और प्रजाजन हों वे सब चतुराइयों से द्वेष वैर करने और पराया माल हरने वाले दुष्टों को मार धर्म के अनुकूल राज्य की शिक्षा और वे खटक मार्ग कर विद्या की वृद्धि करें ७

इस सूक्त में श्रेष्ठ और दुष्ट मनुष्यों का सत्कार और ताड़ना के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये

यह एक सौ १३१ इकतीसवां सूक्त और वीश का वर्ग समाप्त हुआ॥

अथत्वयेत्यस्य षडर्चस्य द्वात्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता १।३। ६ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः।२ भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ४ निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्युद्धसमये सेनेशः किं कुर्यादित्याह॥

फिर युद्ध समय में सेनापति क्या करे इस वि०॥

त्वया॑ व॒यं म॑घवन् पू॒र्व्ये धन॒ इन्द्र॑त्वोताः सास-ह्याम॑ पृतन्य॒तो व॑नु॒याम॑ वनु॒ष्य॒तः। नेदि॑ष्ठे अ॒स्मि-

अहुन्यधि वोचा नु सुन्वते । अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥

त्वया । वयम् । मघऽवन् । पूर्व्ये । धने । इन्द्रत्वाऽऊताः । ससह्याम । पृतन्यतः । वनुयाम । वनुष्यतः । नेदिष्ठे । अस्मिन् । अहनि । अधि । वोच । नु । सुन्वते । अस्मिन् । यज्ञे । वि । चयेम । भरे । कृतम् । वाजऽयन्तः । भरे । कृतम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(त्वया) (वयम्) (मघवन्) परमपूजितबहुधनयुक्त (पूर्व्ये) पूर्वैः कृते (धने) (इन्द्रत्वोताः) इन्द्रेण त्वया पालिताः (सासह्याम) भृशं सहेम (पृतन्यतः) पृतना मनुष्या तानिवाचरतः (वनुयाम) संभजेम (वनुष्यतः) संभक्तान् (नेदिष्ठे) अतिशयेन निकटे (अस्मिन्) (अहनि) (अधि) उपरिभावे (वोच) उपदिश । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (नु) शीघ्रम् (सुन्वते) निष्पादयते (अस्मिन्) (यज्ञे) (वि) (चयेम) चिनुयाम। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (भरे) पालने (कृतम्) निष्पन्नम् (वाजयन्तः) ज्ञापयन्तः (भरे)संग्रामे भरइति संग्रामनाम निरु० ४ । २४ (कृतम्) निष्पन्नम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मघवन् इन्द्रत्वोता वय त्वया सह पूर्व्ये धने पृतन्यतः सासह्याम । वनुष्यतो वनुयाम भरे कृतं विचयेम नेदिष्टेऽस्मिन्नहनि सुन्वते त्वं सत्योपदेशं न्वधिवोच ॥ १ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैर्धार्मिकेण सेनेशेन सह प्रीतिं विधायोत्साहेन शत्रून्विजित्य परश्रीनिचयः संपादनीयः सेनापतिश्च तात्कालीनवक्तृत्वेन शौर्यादिगुणानुपदिश्य शत्रुभिः सह सैन्यान् योधयेत् ॥१॥

पदार्थः—हे (मघवन्) परम प्रशंसित बहुत धन वाले (इन्द्रत्वोताः) अतिउत्तम ऐश्वर्य युक्त जो आप उन्हों ने पाले हुए (वयम्) हमलोग (त्वया) आप के साथ (पूर्व्ये)अगले महाशयों ने किये (धने) धन के निमित्त (पृतन्यतः) मनुष्यों के समान आचरण करते हुए मनुष्यों को (सासह्याम) निरन्तर सहैं (वनुष्यतः) और सेवन करने वालों का (वनुयाम) सेवन करें तथा (भरे) रक्षा में (कृतम्) प्रसिद्ध हुए को (वाजयन्तः) समझाते हुए हम लोग (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में तथा (भरे) संग्राम में (कृतम्) उत्पन्न हुए व्यवहार को (विचयेम) विशेष कर खोजें और (नेदिष्ठे) अति निकट (अस्मिन्) इस (अहनि) आज के दिन (सुन्वते) व्यवहारों की सिद्धि करते हुए के लिये आप सत्य उपदेश (नु) शीघ्र (अधिवोच) सब के उपरान्त करो ॥ १ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि धार्मिक सेनापति के साथ प्रीति और उत्साह कर शत्रुओं को जीत के अति उत्तम धन का समूह सिद्ध करें और सेनापति समय २ पर अपनी वक्तृता से शूरता आदि गुणों का उपदेश कर शत्रुओं के साथ अपने सैनिकजनों का युद्ध करावे ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वर्जेषे भरं आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि । अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः । अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २ ॥

स्वःऽजेषे । भरे । आप्रस्य । वक्मनि । उषःऽबुधः । स्वस्मिन् । अञ्जसि । क्राणस्य । स्वस्मिन् । अञ्जसि । अहन् । इन्द्रः । यथा । विदे । शीर्ष्णाऽशीर्ष्णा । उपऽवाच्यः । अस्मऽत्रा । ते । सध्र्यक् । सन्तु । रातयः । भद्राः । भद्रस्य । रातयः ॥ २ ॥

पदार्थः—(स्वर्जेषे) सुखेन जयशीलाय (भरे) संग्रामे (आप्रस्य) पूर्णबलस्य (वक्मनि) उपदेशे (उषर्बुधः) रात्रिचतुर्थप्रहरे जागृताः (स्वस्मिन्) (अञ्जसि) प्रकटे (क्राणस्य) कुर्वाणस्य । अत्र वाछन्दसीति शपो लुक् (स्वस्मिन्) (अञ्जसि) कामयमाने (अहन्) हन्ति (इन्द्रः) सूर्यः (यथा) (विदे) ज्ञानवते (शीर्ष्णा शीर्ष्णा) शिरसा २ (उपवाच्यः) उपवक्तुं योग्यः (अस्मत्रा) अस्मासु (ते) तव (सध्र्यक्) सहाऽञ्चतीति (सन्तु) भवन्तु (रातयः) दानानि (भद्राः) कल्याणकराः (भद्रस्य) कल्याणकरस्य (रातयः) दानानि ॥२॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा सध्र्यगिन्द्रो स्वर्जेषे विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यस्तथा भरे आप्रस्य क्राणस्योषर्बुधो वक्मनि स्वस्मिन्नञ्जसीव स्वस्मिन्नञ्जसि मेघं सूर्योऽहन्निव शत्रून् घ्नन्तु या अस्मत्रा भद्रा रातयस्ते भद्रस्य रातयइव स्युस्तास्ते सन्तु॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यस्सभेशः सर्वान् शूरवीरान् स्ववत्सत्करोति स शत्रून् जित्वा सर्वेभ्यः सुखं दातुं शक्नोति संग्रामे स्वकीयाः पदार्था अन्यार्था अन्येषां च स्वार्थाः कर्त्तव्या एवं परस्परस्मिन् प्रीत्या विरोधं विहाय विजयः प्राप्तव्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे (सध्र्यक्) साथ जाने वाला (इन्द्रः) सूर्य्यमण्डल (स्वर्जेषे) सुख से जीतने वाले (विदे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (शीर्ष्णाशीर्ष्णा) शिर माथे (उपवाच्यः) समीप कहने योग्य है वैसे (भरे) संग्राम में (आप्रस्य) पूर्ण बल (क्राणस्य) करते हुए समय के

विभाग (उषर्बुधः) उषःकाल अर्थात् रात्रि के चौथे प्रहर में जागे हुए तुम लोग (वक्मनि) उपदेश में जैसे (स्वास्मिन्) अपने (अञ्जसि) प्रसिद्ध व्यवहार के निमित्त वैसे (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) चाहे हुए व्यवहार में जैसे मेघ को सूर्य्य (अहन्) मारता वैसे शत्रुओं को मारो जो (अस्मत्रा) हम लोगों के बीच (भद्राः) कल्याण करने वाले (रातयः) दान आदि काम (ते) तुम (भद्रस्य) कल्याण करने वाले के (रातयः) दानों के समान हों वे (ते) तेरे (सन्तु) हों ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो सभापति सब शूर वीरों का अपने समान सत्कार करता है वह शत्रुओं को जीत कर सब के लिये सुख दे सकता है संग्राम में अपने पदार्थ औरों के लिये और औरों के अपने लिये करने चाहिये ऐसे एक दूसरे में प्रीति के साथ विरोध को छोड़ उत्तम जय प्राप्त करना चाहिये ॥ २ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कृत्वा कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों इस वि० ॥

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् । वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः । स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

तत् । तु । प्रयः । प्रत्नऽथा । ते । शुशुक्वनम् । यस्मिन् । यज्ञे । वारम् । अकृण्वत । क्षयम् । ऋतस्य । वाः । असि । क्षयम् । वि । तत् । वोचेः । अध । द्विता । अन्तरिति । पश्यन्ति । रश्मिऽभिः । सः । घ । विदे । अनु । इन्द्रः । गोऽएषणः । बन्धुक्षित्ऽभ्यः । गोऽएषणः ॥ ३ ॥

पदार्थः–(तत्) पूर्वोक्तम् (तु) (प्रयः) प्रीतिकारकं वचः (प्रत्नथा) प्राचीनम् (ते) तव (शुशुक्वनम्) अतिशयेन प्रदीप्तम् (यस्मिन्) (यज्ञे) व्यवहारे (वारम्) वर्त्तुम् (अकृण्वत) कुर्वन्तु (क्षयम्) निवासम् (ऋतस्य) सत्यस्य (वाः) जलमिव (असि) (क्षयम्) प्राप्तव्यम् (वि) (तत्) (वोचेः) ब्रूयाः (अध) अथ (द्विता) द्वयोर्भावः (अन्तः) आभ्यन्तरे (पश्यन्ति) प्रेक्षन्ते (रश्मिभिः) किरणैः (सः) (घ) एव । अत्र ऋचि-तुनुघेति दीर्घः(विदे)वेद्मि । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्(अनु)(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (गवेषणः) यो गां वाणीमिच्छति सः (बन्धुक्षिद्भ्यः) बन्धून् निवासयद्भ्यः (गवेषणः) गवां किरणानामिष्टः सूर्यइव॥३॥

अन्वयः—हे विद्वन् गवेषण इन्द्र इव ते तव प्रत्नथा यस्मिन् यज्ञ ऋतस्य शुशुक्वनं क्षयं वारं वाः क्षयमिव ये प्रयोऽकृण्वत तेषां तत्तु त्वं प्राप्तोऽसि। अधाथ द्विता रश्मिभिरन्तर्यत् पश्यन्ति तत्त्वं विवोचेः स बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषण इन्द्रोऽहं यदनुविदे घ तदेव त्वं जानीहि ॥ ३ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–ये सत्यगुणेषु प्रीतिं कुर्वन्ति ते विद्वांसो जायन्ते ये विद्वांसः स्युस्ते सूर्यप्रकाशेन सर्वान् पदार्थान् हस्तामलकवद्द्रष्टुं शक्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (गवेषणः) जो वाणी की इच्छा करता है उस(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् के समान (ते) आप का (प्रत्नथा) प्राचीन (यस्मिन्) जिस (यज्ञे) व्यवहार में (ऋतस्य) सत्य का (शुशुकनम्) अतिप्रकाशित (क्षयम्) निवास का (वारम्) स्वीकार करने को (वाः) जल और (क्षयम्) प्राप्त

होने योग्य पदार्थ के समान जो (प्रयः) प्रीति करने वाले वचन को (अकृण्वन्) उच्चारण करें उन के (तत्) उस पूर्वोक्त वचन को (नु) तो आप प्राप्त (आसि) हैं (अध) इस के अनन्तर (द्विता) दो का होना जैसे हो वैसे (रश्मिभिः) किरणों के साथ (अन्तः) भीतर जिस को (पश्यन्ति) देखते हैं (तत्) उस को तूं (वि,वोचेः) अच्छे कह और (सः) वह (बन्धुक्षिद्भ्यः) बन्धुओं को निवास कराते हुए पुरुषों के लिये (गवेषणः) किरणों को इष्ट सूर्य के समान ऐश्वर्यवान् मैं (अनु,विदे) अनुकूलता से जानता हूं (घ) उसी को आप भी जानो॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो सत्य गुणों में प्रीति करते हैं वे विद्वान् होते और जो विद्वान् हों वे सूर्य के प्रकाश से सब हाथ में आमले के समान पदार्थों को देख सकते हैं ॥ ३ ॥

पुनः के चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तुमर्हन्तीत्याह ॥

फिर कौन चक्रवर्त्ति राज्य करने को योग्य होते हैं इस वि० ॥

नू इ॒त्था ते॑ पू॒र्वथा॑ च प्र॒वाच्यं॒ यदङ्गि॑रो॒भ्योऽवृ॑णोरप॑ व्र॒जमि॑न्द्र शि॒क्षन्नप॑ व्र॒जम्। ऐभ्यः॑ स॒मान्या॑ दि॒शाऽस्मभ्यं॑ जेषि॒ योत्सि॑ च। सु॒न्वद्भ्यो॑ रन्धया॒ कं चि॑दव्र॒तं हृ॑णा॒यन्तं॑ चिदव्र॒तम् ॥ ४ ॥

नु। इ॒त्था। ते॒। पू॒र्वऽथा॑। च॒। प्र॒ऽवाच्य॑म्। यत्। अङ्गि॑रःऽभ्यः। अवृ॑णोः। अप॑। व्र॒जम्। इ॒न्द्र॒। शिक्ष॑न्। अप॑। व्र॒जम्। आ। ए॒भ्यः॒। स॒मान्या॑। दि॒शा। अ॒स्मभ्य॑म्। जे॒षि॒। योत्सि॑। च॒। सु॒न्वत्ऽभ्यः॑। र॒न्ध॒य॒। कम्। चि॒त्। अ॒व्र॒तम्। हृ॒णा॒यन्त॑म्। चि॒त्। अ॒व्र॒तम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(नु) शीघ्रम् (इत्था) अनेन प्रकारेण (ते) तव (पूर्वथा) पूर्वैः प्रकारैः (च) (प्रवाच्यम्) प्रवक्तुं योग्यम् (यत्) (अङ्गिरोभ्यः) प्राणेभ्य इव विद्वद्भ्यः (अवृणोः) वृणुयाः (अप) निषेधे (व्रजम्) ज्ञातव्यम् (इन्द्र) अध्यापनादविद्याच्छेत्तः (शिक्षन्) विद्यामुपादापयन् (अप) दूरीकरणे (वृजम्) अधर्ममार्गम् (आ) (एभ्यः) विद्वद्भ्यः (समान्या) समं वर्त्तमानया (दिशा) समन्तात् (अस्मभ्यम्) (जेषि) जयसि । अत्राऽडभावः (योत्सि) युध्यसे । अत्र बहुलं छन्दसीति श्यनभावः (च) (सुन्वद्भ्यः) अभिषवं कुर्वद्भ्यः (रन्धय) हिंद्धि । अत्राऽन्येषामपि दृश्यतइति दीर्घः (कम्) (चित्) (अव्रतम्) सत्यभाषणादिव्यवहाररहितम् (हृणायन्तम्) हरतीति हृणोहारिणस्तद्वदाचरन्तम् (चित्) इव (अव्रतम्) मिथ्याचारयुक्तम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं शिक्षन्सन्नप व्रजं कुटिलगामिनमिव वृजं जनमपावृणोः।अङ्गिरोभ्यो यत्पूर्वथा प्रवाच्यं तच्च नु गृहाण। यस्त्वमेभ्यः सुन्वद्भ्योऽस्मभ्यं समान्या दिशा शत्रूनायोत्सि जेषि च हृणायन्तमव्रतं चिदिव वर्तमानमव्रतं जनं रन्धय च तादृशं कंचिदपि दुष्टं दण्डदानेन विना मा त्यज।इत्था वर्तमानस्य ते तव इहामुत्रानन्दसिद्धिर्भविष्यतीति जानीहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—येषां राज्ये दुष्टवाचः स्तेना दुष्टवाचो व्यभिचारिणो न सन्ति ते साम्राज्यं कर्त्तुं प्रभवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) पढ़ाने से अज्ञान का विनाश करने वाले (शिश्वन्) विद्या का ग्रहण कराते हुए आप (अप, व्रजम्) न जानने योग्य कुटिलगामी के समान (व्रजम्) अधर्ममार्गी जन को (अपावृणोः) मत स्वीकार करो (अङ्गिरोभ्यः) प्राणों के समान विद्वान् जनों ने (यत्) जो (पूर्वथा) प्राचीन ढंगों से (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार कहने योग्य उस को (च) भी (नु) शीघ्र ग्रहण करो जो आप (एभ्यः) इन विद्वान् और (सुन्वद्भ्यः) पदार्थों के सार को खींचते हुए (अस्मभ्यम्) हमलोगों के लिये (समान्या) एक सी वर्त्तमान (दिशा) दिशा से शत्रुओं को (आ, योत्सि) अच्छे प्रकार लड़ते लड़ते (च) और (जेषि) जीतते वा (हणायन्तम्) हिरण के समान ऊलते फांदते हुए (अव्रतम्) सत्य भाषणादि व्यवहार रहित पुरुष के (चित्) समान (अव्रतम्) झूठे आचार से युक्त जन को (रन्धय) मारो (च) और वैसे (कं, चित्) किसी दुष्ट को दण्ड देने के विना मत छोड़ो (इत्था) ऐसे वर्त्तते हुए (ते) आप को इस जन्म और परजन्म में आनन्द की सिद्धि होगी इस को जानो ॥ ४ ॥

भावार्थः—जिन के राज्य में दुष्ट वचन कहने वाले चोर और व्यभिचारी नहीं हैं वे चक्रवर्त्ति राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कृत्वा किं कर्त्तुं शक्नुवन्तीत्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करके क्या कर सकते हैं इस वि० ॥

सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः । तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा । इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥

सम् । यत् । जनान् । क्रतुऽभिः । शूरः । ईक्षयत् । धने । हिते । तरुषन्त । श्रवस्यवः । प्र । यक्षन्त । श्रवस्यवः ।

तस्मै । आयुः।प्रजाऽवंत् । इत् । बाधे । अर्चन्ति । ओजसा । इन्द्रे । ओक्यम् । दिधिषन्त । धीतयः । देवान् । अच्छं । न । धीतयः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(सम्) सम्यक् (यत्) यान् (जनान्) धार्मिकान् (क्रतुभिः) प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा (शूरः) निर्भयः (ईक्षयत्) दर्शयेत् (धने) (हिते) सुखकारके (तरुषन्त) ये दुःखानि तरन्ति तद्वदाचरत (श्रवस्यवः) आत्मनः श्रवः श्रवणमिच्छवः (प्र) (यक्षन्त) रोषत हिंसत (श्रवस्यवः) आत्मनः श्रवणमिच्छव इव वर्त्तमानाः (तस्मै) (आयुः) जीवनम् (प्रजावत्) बह्व्यः प्रजा विद्यन्ते यस्मिंस्तत् (इत्) एव (बाधे) (अर्चन्ति) सत्कुर्वन्ति (ओजसा) पराक्रमेण (इन्द्रे) परमैश्वर्ययुक्ते (ओक्यम्) ओकेषु गृहेषु साधु (दिधिषन्त)उपदिशन्ति । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (धीतयः) धरन्तः (देवान्) विदुषः (अच्छ) उत्तमरीत्या (न) इव (धतियः) धरन्तः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः श्रवस्यव इव वर्त्तमानाः श्रवस्यवो यूयं क्रतुभिर्यज्जनाम् हिते धने तरुषन्त प्रयक्षन्त च । यः शूरः समीक्षयत् तस्मै प्रजावदायुर्भवतु हे विपश्चितो ये यूयं धीतयो न धीतयः सन्त इन्द्रे परमैश्वर्य्ययुक्त ओक्यं संपाद्य देवानच्छादिधिषन्त बाध ओजसाऽर्चन्तीव बाधइद्रक्षत ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये विद्वत्संगसेवाभ्यां विद्याः प्राप्य पुरुषार्थेन परमैश्वर्यमुन्नयन्ति ते सर्वान् प्राज्ञान्सुखिनः संपादयितुं शक्नुवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (श्रवस्यवः) अपने को सुनने में चाहना करने वालों के समान वर्त्तमान (श्रवस्यवः) अपने को सुनने की इच्छा करने वाले तुम जैसे (क्रतुभिः) बुद्धि वा कर्मों से (यत्) जिन (जनान्) धार्मिक जनों को (हिते) सुख करने हारे (धने) धन के निमित्त (तरुषन्त) पार करो उद्धार करो और (प्रयन्तन्त) दुष्टों को दण्ड देओ और जो (शूरः) निर्भय शूरवीर पुरुष (समीक्षयन्) ज्ञान करावे व्यवहार को दर्शावे (तस्मै) उस के लिये (प्रजावत्) जिस में बहुत संतान विद्यमान वह (आयुः) आयुर्दा हो। हे उत्तम विचारशील पुरुषो तुम (धीतयः) धारणा करते हुओं के (न) समान (धीतयः) धारणा करने वाले होते हुए परमऐश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर में (ओक्यम्) घरों में जो श्रेष्ठ व्यवहार उस को सिद्ध कर (देवान्) विद्वानों को (अच्छ) अच्छा (दिधिषन्त) उपदेश करते समझाते हो वे आप (बाधे) दुष्टव्यवहारों की बाधा के लिये (ओजसा) पराक्रम से (अर्चन्ति) सत्कार करने हुओं के समान कष्ट में (इत्) ही रक्षा करो॥ ५॥

भावार्थः—इस मंत्रमें उपमा और वाचकलु०—जो विद्वानों के संग और सेवामें विद्याओं को पाकर पुरुषार्थ से परम ऐश्वर्य्य की उन्नति करते हैं वे सब ज्ञानवान् पुरुषों को सुखयुक्त करसकते हैं॥ ५॥

पुनः सेनाजनाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर सेना जन परस्पर कैसे वर्त्तें इस वि०॥

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्। अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः॥ ६॥

युवम्। तम्। इन्द्रापर्वता। पुरःऽयुधा। यः। नः। पृतन्यात्। अप। तम्ऽतम्। इत्। हतम्। वज्रेण।

तम्ऽतम् । इत् । हतम् । दूरे । चत्ताय । छन्त्सत् । गहनम् । यत् । इनक्षत् । अस्माकम् । शत्रून् । परि । शूर । विश्वतः । दर्मा । दर्षीष्ट । विश्वतः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (तम्) (इन्द्रापर्वता (सूर्यमेघाविव वर्त्तमानौ सभासेनेशौ (पुरोयुधा)पुरः पूर्वं युध्येते यौ तौ(यः) (नः) अस्माकम् (पृतन्यात्) पृतनां सेनामिच्छेत् (अप) (तंतम्) (इत्) एव (हतम्) नाशयतम् (वज्रेण) तीव्रेण शस्त्राऽस्त्रेण (तंतम्) (इत्) एव (हतम्) (दूरे) (चत्ताय) याचिताय (छन्त्सत्) संवृणुयात् (गहनम्) कठिनम् (यत्) यः (इनक्षत्) व्याप्नुयात् (अस्माकम्) (शत्रून्) (परि) (शूर) (विश्वतः) सर्वतः (दर्मा) विदारकः सन् (दर्षीष्ट) दृणीहि (विश्वतः) अभितः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे पुरोयुधेन्द्रापर्वता युवं यो नः पृतन्यात् तं वज्रेणाऽप हतं यथा युवां यंयं हतं तंतमिद्वयमपि हन्याम । यं २ वयं हन्याम तंतमिद्युवामप हतम् । हे शूर दर्मा त्वं यानस्माकं शत्रून्विश्वतो दर्षीष्ट तान्वयमपि विश्वतो परि दर्षीष्महि यच्चत्ताय गहनं दूरे छन्त्सत् शत्रुसेनामिनक्षत् तं युवां सततं रक्षतम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—सेनापुरुषैर्ये सेनेशादीनां शत्रवस्सन्ति ते स्वेषामपि शत्रवो वेद्याः । शत्रुभिः परस्परं भेदमप्राप्ताः संतः शत्रून् विदीर्य प्रजाः संरक्षन्तु ॥ ६ ॥

अत्र राजधर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् । इति द्वात्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (पुरोयुधा) पहिले युद्ध करने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य और मेघ के समान वर्त्तमान सभासेनाधीशो (युवम्) तुम (यः) जो (नः) हम लोगों की(पृतन्यात्) सेना को चाहें (तम्) उस को (वज्रेण) पैने तीक्ष्ण शस्त्र वा अस्त्र अर्थात् कलाकौशलसे बने हुए शस्त्र से (अप,हतम्) अत्यन्त मारो जैसे तुम दोनों जिस २ को (हतम्) मारो (तंतम्) उस २ को (इत्) ही हम लोग भी मारें और जिस २ को हम लोग मारें (तंतम्) उस २ को (इत्) ही तुम मारो। हे (शूर) शूरवीर (दर्मा) शत्रुओं को विदीर्ण करते हुए आप जिन (अस्माकम्) हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब-ओर से (दर्षीष्ट) दरो विदीर्ण करो इन को हम लोग भी (विश्वतः) सब-ओर से (परि) सब प्रकार दरें विदीर्ण करें (यत्) जो (चत्ताय) मांगे हुए के लिये (गहनम्) कठिन व्यवहार को (दूरे) दूर में (छन्त्सत्) स्वीकार करे और शत्रुओं की सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो उस की तुम निरन्तर रक्षा करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—सेना पुरुषों को जो सेनापति आदि पुरुषों के शत्रु हैं वे अपने भी शत्रु जानने चाहिये शत्रुओं से परस्पर फूट को न प्राप्त हुए धार्मिक जन उन शत्रुओं को विदीर्ण कर प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजधर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ बत्तीस का सूक्त और इक्कीशवां वर्ग पूरा हुआ ॥

उभे इत्यस्य सप्तर्चस्य त्रयस्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ३ निचृदनुष्टुप् ४ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ आर्षी गायत्रीछन्दः । गान्धारः स्वरः । ६ स्वराड् ब्राह्मीजगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७ विराडष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

कथं स्थिरं राज्यं स्यादित्याह ॥

अब सात ऋचा वाले एकसौ तीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में कैसे स्थिर राज्य हो इस विषय का उपदेश किया है ॥

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः । अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृढा अशेरन् ॥ १ ॥

उभे इति । पुनामि । रोदसी इति । ऋतेन । द्रुहः । दहामि । सम् । महीः । अनिन्द्राः । अभिऽव्लग्य । यत्र । हताः । अमित्राः । वैलऽस्थानम् । परि । तृढाः । अशेरन् ॥ १ ॥

पदार्थः—(उभे) (पुनामि) पवित्रयामि (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (ऋतेन) सत्येन (द्रुहः) हन्तुमिच्छून् (दहामि) भस्मीकरोमि (सम्) सम्यक् (महीः) महीति पृथिवीना० निघं० १ । १ (अनिन्द्राः) अविद्यमाना इन्द्रा राजानो यासु ताः (अभिव्लग्य) अभितः सर्वतो लगित्वा । अत्र पृषोदरादिना वुगागमः (यत्र) यस्मिन् (हताः) विनाशिताः (अमित्राः) मित्रभाववर्जिताः (वैलस्थानम्) विलानामिदं वैलं तदेव स्थानं वैलस्थानम् (परि) सर्वतः (तृढाः) हिंसिताः (अशेरन्) शयीरन् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाहमनिन्द्रा महीरभिव्लग्यर्तेनोभे रोदसी पुनामि । द्रुहः सन्दहामि यत्र वैलस्थानं प्राप्ताः परि तृढा हताः सन्तोऽमित्राअशेरँस्तत्राऽहं प्रयते तथा यूयमप्याचरत ॥ १ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-मनुष्यैः सर्वैरिदं सततमेष्टव्यं येन सत्येन व्यवहारेण राज्योन्नतिः पवित्रता शत्रुनिवृत्तिर्निष्कंटकं राज्यं च स्यादिति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (अनिन्द्राः) जिन में अविद्यमान राजजन हैं उन (महीः) पृथिवी भूमियों का (अभिव्लग्य) सब ओर से संग कर अर्थात् उन को प्राप्त हो कर (ऋतेन) सत्य से (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (पुनामि) पवित्र कर्त्ता हूं और (द्रुहः) द्रोह करने वालों को (सं, दहामि) अच्छी प्रकार जलाता हूं (यत्र) जहां (वैलस्थानम्) बिल रूप स्थान को प्राप्त (परि, तृढाः) सब ओर से मारे (हताः) मरे हुए (अमित्राः) मित्रभाव रहित शत्रुजन (अशेरन्) सोवें वहां मैं यत्न करता हूं वैसा तुम भी आचरण करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—सब मनुष्यों को यह निरन्तर इच्छा करनी चाहिये कि जिस सत्यव्यवहार से राज्य की उन्नति पवित्रता शत्रुओं की निवृत्ति और निर्वैर निश्शत्रु राज्य हो ॥ १ ॥

पुनः शत्रवः कथं हन्तव्या इत्युपदिश्यते ॥

फिर शत्रुजन कैसे मारने चाहिये इस वि० ॥

अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

अभिऽव्लग्य । चित् । अद्रिऽवः । शीर्षा । यातुऽमतीनाम् ।
छिन्धि । वटूरिणा । पदा । महाऽवटूरिणा । पदा ॥ २ ॥

पदार्थः—(अभिव्लग्य) अभितः सर्वतः प्राप्य । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (चित्) इव (अद्रिवः) अद्रिवन्मेघ इव वर्त्तमान (शीर्षा) शीर्षाणि (यातुमतीनाम्) बहवो यातवो हिंसका विद्यन्ते यासु सेनासु तासाम् (छिन्धि) (वटूरिणा) वेष्टितेन। अत्र वट वेष्टन इति धातोर्बाहुलकादौणादिक ऊरिः प्रत्ययः (महावटूरिणा) महावर्णयुक्तेन (पदा) पादेन ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अद्रिवः शूर त्वं प्रशस्तं बलमभिव्लग्य यातुमतीनां महावटूरिणा पदा चिद्वटूरिणा पदा शीर्षा छिन्धि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यः स्वबलमुन्नीय शत्रुबलानि छित्वाऽरीन् पादाक्रान्तान् करोति स राज्यं कर्त्तुमर्हति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघ के समान वर्त्तमान शूर वीर तू प्रशंसित बल को (अभिव्लग्य) सब ओर से पा कर (यातुमतीनाम्) जिन में बहुत हिंसक मार धार करने हारे विद्यमान उन सेनाओं के (महावटूरिणा) बड़े २ रंग से युक्त (पदा) चौथे भाग से जैसे (चित्) वैसे (वटूरिणा) लपेटे हुए (पदा) शस्त्रों के चौथे भाग से वा अपने पैर से दबा के (शीर्षा) शत्रुओं के शिरों को (छिन्धि) छिन्न भिन्न कर ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो अपने बल की उन्नति कर शत्रुओं के बलों को छिन्न भिन्न कर उन को पैर से दबाता है वह राज्य करने को योग्य होता है ॥ २ ॥

पुनः शत्रुसेनाः कथं हन्तव्या इत्याह ॥

फिर शत्रुओं की सेना कैसे मारनी चाहिये इस वि० ॥

अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

अव । आसाम् । मघऽवन् । जहि । शर्धः । यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके । अर्मके । महाऽवैलस्थे । अर्मके ॥ ३ ॥

पदार्थः-(अव) (आसाम्) वक्ष्यमाणानाम् (मघवन्) परमधनयुक्त (जहि) (शर्धः) बलम् (यातुमतीनाम्) हिंस्राणां सेनानाम् । (वैलस्थानके) वैलानि विलयुक्तानि स्थानानि यस्मिँस्तँस्मिन् (अर्मके) दुःखप्रापके (महावैलस्थे) महागर्त्तयुक्ते (अर्मके) दुःखप्रापके ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मघवन् अर्मके वैलस्थानक इवार्मके महाबैलस्थ आसां यातुमतीनां शर्धोऽव जहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—सेनावीरैः शत्रुसेना अतिदुर्गे गर्तादियुक्ते स्थले निपात्य हन्तव्याः ॥ ३ ॥

पदार्थ:—हे (मघवन्) परम धन युक्त राजन् (अर्मके) जो दुःख पंहुचाने हारा और(वैलस्थानके)जिस में बिल युक्त स्थान हैं उन के समान (अर्मके) दुःख पहुंचाने हारे(महावैलस्थे)बड़े२गढेलों से युक्त स्थान में(आसाम्)इन(यातुमतीनाम्) हिंसक सेनाओं के (शर्धः) बल को (अव, जहि) छिन्न भिन्न करो ॥ ३ ॥

भावार्थ:—सेना वीरों को चाहिये कि शत्रुओं की सेनाओं को अतीव दुःख से जाने योग्य गढ़ेले आदि से युक्त स्थान में गिरा कर मारें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥

यासाम् । तिस्रः । पञ्चाशतः । अभिऽव्लङ्गैः । अपऽअवपः । तत् । सु । ते । मनायति । तकत् । सु । ते । मनायति ॥ ४ ॥

पदार्थः—(यासाम्) (तिस्रः) त्रित्वसंख्याताः (पञ्चाशतः) एतत्संख्याताः (अभिव्लङ्गैः) अभितो गमनागमनैः (अपावपः) दूरे प्रक्षिप (तत्) (सु) (ते) तुभ्यम् (मनायति) आत्मनो मनइवाचरति (तकत्) (सु) (ते) तुभ्यम् (मनायति) ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मघवन् यासां तिस्रः पञ्चाशतः सेना अभिव्लङ्गैरपावपस्तासां तत् ते सुमनायति तकत् ते सु मनायति ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरीदृशं बलं वर्द्धनीयं येनैकोऽपि दुष्टानां सार्धशतस्य विजयं कुर्यात् स्वकीयं बलं रक्षेत् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे परम उत्तम धनयुक्त राजन्(यासाम्)जिन शत्रुसेनाओंके बीच (तिस्रः) तीन वा (पंचाशतः) पचाश सेनाओं को (अभिव्लङ्गैः) चारोंओर से जाने आने आदि व्यवहारों से (अपावपः) दूर पहुंचाओ उन सेनाओं का वह पहुंचाना (ते) तेरेलिये (सुमनायति)अच्छे अपने मन के समान आचरण करता फिर भी (तकत्) वह (ते) तेरे लिये (सुमनायति) अच्छे अपने मन के समान आचरण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ऐसा बल बढ़ावें जिस से एकभी वीर पंचाश दुष्ट शत्रुओं को जीते और अपने बल की रक्षा करे ॥ ४ ॥

पुनाराजजनैः किं कृत्वा किं वर्द्धनीयमित्याह ॥

फिर राज जनों को क्या करके क्या बढ़ाना चाहिये इस वि० ॥

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।

सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

पिशङ्गऽभृष्टिम् । अम्भृणम् । पिशाचिम् । इन्द्र । सम् ।

मृण । सर्वम् । रक्षः । नि । बर्हय ॥ ५ ॥

पदार्थः-(पिशंगभृष्टिम्) पीतवर्णेन भृष्टिः पाको यस्य तम् (अम्भृणम्) शत्रुभ्यो भयंकरम् (पिशाचिम्) यः पिशति तम् (इन्द्र) दुष्टविदारक (सम्) (मृण) हिन्धि (सर्वम्) (रक्षः) दुष्टम् (नि) (बर्हय) निस्सारय ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं पिशंगभृष्टिमम्भृणं पिशाचिं संमृण सर्वं रक्षो निबर्हय ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैर्दुष्टान् निर्मूलीकृत्य सर्वे सज्जनाः सततं वर्द्धनीयाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टों को विदीर्ण करने हारे राजजन आप (पिशंगभृष्टिम्) अच्छे प्रकार पीलावर्ण होने से जिस का पाक होता (अम्भृणम्) उस निरंतर भयंकर (पिशाचिम्) पीसने दुःख देने हारे जन को (संमृण) अच्छे प्रकार मारो और (सर्वम्) समस्त (रक्षः) दुष्ट गण को (निबर्हय) निकालो ॥५॥

भावार्थः-राज पुरुषों को चाहिये कि दुष्ट शत्रुओं को निर्मूल कर सब सज्जनों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ५ ॥

पुनरुत्तमैर्नरैः किं निवार्य्यं किं प्रचारणीयमित्याह ॥

फिर उत्तम मनुष्यों को किस की निवृत्ति कर क्या प्रचार करना चाहिये इस वि० ॥

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः । शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे । अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

अवः । महः । इन्द्र । ददृहि । श्रुधि । नः । शुशोच । हि । द्यौः । क्षाः । न । भीषा । अद्रिऽवः । घृणात् । न । भीषा । अद्रिऽवः । शुष्मिन्ऽतमः । हि । शुष्मिऽभिः । वधैः । उग्रेभिः । ईयसे । अपुरुषऽघ्नः । अप्रतिऽइत । शूर । सत्वऽभिः । त्रिऽसप्तैः । शूर । सत्वऽभिः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(अवः) अधोमुखम् (महः) महत् (इन्द्र) (ददृहि) विदारय । अत्र श्नः श्लुः, तुजादीनामित्यभ्यासदीर्घः (श्रुधि) शृणु । अत्राऽन्येषामपि दृश्यतइति दीर्घः (नः) अस्मान् (शुशोच) शोच (हि) (द्यौः) प्रकाशइव (क्षाः) पृथिवीः (न) इव (भीषा) भयेन (अद्रिवः) प्रशस्तमेघयुक्त सूर्यवद्वर्त्तमान (घृणात्) दीप्तात् (न) इव (भीषा) भयेन (अद्रिवः) प्रशस्ताअद्रयः शैला विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ

(शुष्मिन्तमः) बहुविधं बलं विद्यते यस्य स शुष्मिः सोऽतिशयितः (हि) खलु (शुष्मिभिः) बलिष्ठैः (बधैः) हननैः (उग्रेभिः) तीक्ष्णस्वभावैः (ईयसे) गच्छसि (अपूरुषघ्नः) यः पुरुषान्न हन्ति सः (अप्रतीत) यो न प्रतीयते तत्संबुद्धौ (शूर) निर्भय (सत्वभिः) विज्ञानवद्भिः (त्रिसप्तैः) एकविंशत्या (शूर) दुष्टहिंसक (सत्वभिः) पदार्थैः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे अद्रिव इन्द्र त्वमवर्दादृहि नः शुशोच नोऽस्माकं न्यायं श्रुधि द्यौः क्षा नेव महो रक्ष । हे अद्रिवस्त्वं हि भीषा भयेन घृणान्नेव न्यायं द्योतयस्व भीषा दुष्टान् ताड़य । हे शूर यः शुष्मिन्तमोऽपूरुषघ्नस्त्वमुग्रेभिः शुष्मिभिः सह शत्रूणां बधैरीयसे स त्वं त्रिसप्तैः सत्वभिः सहैव वर्त्तस्व । हे अप्रतीत शूर त्वं हि सत्वभिः सम्पन्नो भव ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—धार्मिकैर्नीचतां निवार्य्य श्रेष्ठतां प्रचार्य्य प्रशस्तबलोन्नतये शूरवीरैः पुरुषैः प्रजाः संरक्ष्य दशप्राणैरेकेन जीवेन दशभिन्द्रियैरिव पुरुषार्थं कृत्वा यथायोग्या पदार्थवृद्धिः प्राप्तव्या ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) प्रशंसित मेघ युक्त सूर्य के समान वर्त्तमान (इन्द्र) उत्तम गुणों से प्रकाशित पुरुष आप (अवः) नीचे को मुख रखने वाले कुटिल को (दादृहि) विदारो मारो (नः) हम लोगों को (शुशोच) शोचो हमारे न्याय को (श्रुधि) सुनो और (द्यौः) प्रकाश जैसे (क्षाः) भूमियों को (न) वैसे (महः) अत्यन्त रक्षा करो हे (अद्रिवः) प्रशंसित पर्वतों वाले आप (हि) ही (भीषा) भय से (घृणात्) प्रकाशित के

समान न्याय को प्रकाश करो और (भीषा) भय से दुष्टों को दण्ड देओ। हे (शूर) निर्भय निडर शूरवीर पुरुष (शुष्मिन्तमः) जिन के अतीव बहुत बल विद्यमान (अपूरुषघ्नः) जो पुरुषों को न मारने वाले आप (उग्रेभिः) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (शुष्मिभिः) बली पुरुषों के साथ तीक्ष्ण शत्रुओं के (बधैः) मारने के उपायों से (ईयसे) जाते हो सो आप (त्रिसप्तैः) इक्कीश (सत्वभिः) विद्वानों के साथ ही वर्त्ताव रक्खो हे (अप्रतीत) न प्रतीत होने वाले गूढ विचार युक्त (शूर) दुष्टों को मारने वाले आप (हि) ही (सत्वभिः) पदार्थों से युक्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—धार्मिक पुरुषों को नीच पन की निवृत्ति और उत्तमता का प्रचार कर प्रशंसित बल की उन्नति के लिये शूरवीर पुरुषों से प्रजाजनों की अच्छे प्रकार रक्षा कर दशप्राण और एक जीव से दश इन्द्रियों के समान पुरुषार्थ कर यथायोग्य पदार्थों की वृद्धि प्राप्त करने योग्य है ॥ ६ ॥

पुनः किं कृत्वा किं निवार्य्य मनुष्याः समर्था जायन्तइत्याह ॥

फिर क्या कर के और किस की निवृत्ति कर मनुष्य समर्थ होते हैं इस वि० ॥

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ॥ सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ॥ सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥ २२ ॥ १९ ॥

वनोति । हि । सुन्वन् । क्षयम् । परीणसः । सुन्वानः । हि । स्म । यजति । अव । द्विषः । देवानाम् । अव । द्विषः । सुन्वानः । इत् । सिषासति । सहस्रा । वाजी । अवृतः । सुन्वानाय । इन्द्रः । ददाति । आऽभुवम् । रयिम् । ददाति । आऽभुवम् ॥ ७ ॥ २२ ॥ १९ ॥

पदार्थः—(वनोति) याचते । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (हि) खलु (सुन्वन्) निष्पादयन् (क्षयम्) गृहम् (परीणसः) बहून् (सुन्वानः) निष्पादयन् (हि) यतः (स्म) एव। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (यजति) संगच्छते (अव) (द्विषः) द्वेष्ट्रीन् (देवानाम्) विदुषाम् (अव) (द्विषः) शत्रून् (सुन्वानः) अभिषवान् कुर्वन् (इत्) एव (सिषासति) सनितुं विभक्तुमिच्छति (सहस्रा) सहस्राण्यसंख्यातानि (वाजी) प्रशस्तज्ञानवान् (अवृतः) अनावृतः (सुन्वानाय) अभिषवं कुर्वते (इन्द्रः) सुखप्रदाता (ददाति) (आभुवम्) यत्र समन्ताद्भवति सुखं तम् । अत्र घञर्थे कविधानमिति कः (रयिम्) द्रव्यम् (ददाति) (आभुवम्) ॥७॥

अन्वयः—य इन्द्रः सुन्वानायाभुवं रयिं ददाति स सुन्वानोऽवृतो वाजी सहस्रा देवानामवद्विष इत् सिषासति योऽवद्विषः सर्वस्मायाभुवं श्रियं ददाति यो हि सुन्वानो यजति स स्म परीणसः क्षयं सुन्वन् सन् हि सुखं वनोति ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये सर्वेषु मैत्रीं भावयित्वा सर्वेषां शत्रून्निवर्त्तन्ति ते सर्वेषां श्रेयस्करा भूत्वा सर्वेभ्यो बहूनि सुखानि दातुं शक्नुवन्ति॥७॥

अत्र श्रेष्ठपालनदुष्टनिवारणाभ्यां राज्यस्थिरतावर्णनमुक्तमत एतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति त्रयस्त्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं द्वाविंशो वर्ग एकोनविंशोऽनुवाकश्च समाप्तः ॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) सुख देने वाला (सुन्वानाय) पदार्थों का सार निकालते हुए पुरुष को (आभुवम्) जिस में अच्छे प्रकार सुख होता उस (रयिम्) धन को (ददाति) देता है वह (सुन्वानः) पदार्थों के सारों को

प्रगट करता हुआ (अवृतः) प्रगट (वाजी) प्रशस्त ज्ञानवान् पुरुष (सहस्रा) सहस्रों (देवानाम्) विद्वानों के (अव, द्विषः) अति शत्रुओं को (इत्) ही (सिषासति)अलग करने को चांहता है जो (अव,द्विषः)अत्यन्त वैर करने वालों को अलग करना चांहता है वह सब के लिये(आभुवम्)जिस में उत्तम सुख हो उस धन को (ददाति) देता है और जो (हि) निश्चय से (सुन्वानः) पदार्थों के सार को सिद्ध करता हुआ (यजति) संग करता है (स्म) वही (परीणसः) बहुत पदार्थों और (क्षयम्) घर को (सुन्वन्) सिद्ध करता हुआ (हि) ही सुख (वनोति) मांगता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो सब में मित्रता की भावना कराकर सब के शत्रुओं की निवृत्ति कराते हैं वे सब के सुख करने वाले हो कर सब के लिये बहुत सुख दे सकते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की निवृत्ति से राज्य की स्थिरता का वर्णन है इस से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एक सौ तेंतीसवां सूक्त बाईशवां वर्ग और उन्नीशवां अनुवाक पूरा हुआ ॥

आत्वेत्यस्य षड्टचस्य चतुस्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । वायुर्देवता १ । ३ । निचृदत्यष्टिः २ । ४ विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः। ५ अष्टिः । ६ विराडष्टिश्छन्दः मध्यमः स्वरः ॥

अथ विद्वांसः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

अब छः ऋचा वाले एकसौ चौंतीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में विद्वान् कैसे हों इस वि० ॥

आ त्वा जुवो॑ रारहा॒णा अ॒भि प्रयो॒ वायो॒ वह॑न्त्वि॒ह पू॒र्वपी॑तये॒ सोम॑स्य पू॒र्वपी॑तये । ऊ॒र्ध्वा

ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती । नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

आ । त्वा । जुवः । ररहाणाः । अभि । प्रयः । वायो इति । वहन्तु । इह । पूर्वऽपीतये । सोमस्य । पूर्वऽपीतये। ऊर्ध्वा । ते । अनु । सूनृता । मनः। तिष्ठतु । जानती । नियुत्वता । रथेन । आ । याहि । दावने । वायो इति । मखस्य । दावने ॥ १ ॥

पदार्थः–(आ) समन्तात् (त्वा) त्वाम् (जुवः) वेगवन्तः (ररहाणाः)त्यक्तारः। अत्र तुजादीनामित्यभ्यासदीर्घः(अभि)(प्रयः) प्रीतिम्(वायो)वायुरिव वर्त्तमान (वहन्तु) प्राप्नुवन्तु (इह) अस्मिन् संसारे (पूर्वपीतये) पूर्वेषां पीतिः पानं तस्यै(सोमस्य) ओषध्यादि-रसस्य (पूर्वपीतये) पूर्वेषां पानायेव (ऊर्ध्वा) उत्कृष्टा (ते) तव (अनु) (सूनृता) प्रिया वाक् (मनः) अतःकरणम् (तिष्ठतु) (जानती) या जानाति सा स्त्री (नियुत्वता) बहवो नियुतोऽश्वा विद्यन्ते यस्मिंस्तेन रथेन) रमणीयेन यानेन (आ) समन्तात् (याहि) गच्छ (दावने) दात्रे (वायो) ज्ञानवान् (मखस्य) यज्ञस्य (दावने) दात्रे ॥ १ ॥

अन्वयः—हे वायो विद्वन्निह सोमस्य पूर्वपीतयइव पूर्वपीतये जुवो ररहाणा वायवस्त्वा प्रयोभ्यावहन्तु। हे वायो यस्य ते ऊर्ध्वा सूनृता जानती मनोऽनुतिष्ठतु स त्वं मखस्य दावनइव दावने नियुत्वता रथेनायाहि ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्वांसः सर्वेषु प्राणिषु प्राणवत् प्रिया भूत्वाऽनेकाश्वयुक्तैर्यानैर्गच्छन्त्वागच्छन्तु च ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के समान वर्त्तमान विद्वान् (इह) इस संसार में (सोमस्य) ओषधि आदि पदार्थों के रस को (पूर्वपीतये) अगले सज्जनों के पीने के समान (पूर्वपीतये) जो पीना है उस के लिये (जुवः) वेगवान् (रारहाणाः) छोड़ने वाले पवन (त्वा) आप को (प्रयः) प्रीतिपूर्वक (अभि, आ, वहन्तु) चारो ओर से पहुंचावे हे (वायो) ज्ञानवान् पुरुष जिस (ते) आप की (ऊर्ध्वा) उन्नति युक्त अति उत्तम (सूनृता) प्रिय वाणी (जानती) और ज्ञानवती हुई स्त्री (मनः) मन के (अनु, तिष्ठतु) अनुकूल स्थित हो सो आप (मखस्य) यज्ञ के संबंध में(दावने) दान करने वाले के लिये जैसे वैसे (दावने) देने वाले के लिये (नियुत्वता) जिस में बहुत घोड़े विद्यमान हैं उस (रथेन) रमण करने योग्य यान से (आ, याहि) आओ ॥१॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वान् लोग सर्व प्राणियों में प्राण के समान प्रिय होकर अनेक घोड़ों से जुते हुए रथों से जावें आवें ॥ १ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं संसेव्य किं प्राप्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को किस का सेवन कर क्या प्राप्त करना चाहिये इस वि० ॥

मन्द॑न्तु त्वा म॒न्दिनो॑ वाय॒विन्द॑वोऽस्मत्क्रा॒णास॑ः सुकृ॑ता अ॒भिद्य॑वो॒ गोभि॑ः क्रा॒णा अ॒भिद्य॑वः । यद्ध॑ क्रा॒णा इ॒रध्यै॒ दक्षं॒ सच॑न्त ऊ॒तय॑ः । स॒ध्री॒ची॒ना नि॒युतो॑ दा॒वने॒ धिय॒ उप॑ ब्रुवत ईं॒ धिय॑ः ॥ २ ॥

मन्द॑न्तु । त्वा । म॒न्दिन॑ः । वा॒यो इति॑ । इन्द॑वः । अ॒स्मत् । क्रा॒णास॑ः । सु॒ऽकृ॑ताः । अ॒भिऽद्य॑वः । गोभि॑ः ।

क्राणाः । अभिऽद्यवः । यत् । ह । क्राणाः । इरध्यै । दक्षम् । सचन्ते । ऊतयः । सध्रीचीनाः । निऽयुतः । दावने । धियः । उप । ब्रुवते । ईम् । धियः ॥ २ ॥

पदार्थः—(मन्दन्तु) कामयन्तु (त्वा) त्वाम् (मन्दिनः) सुखं कामयमानाः (वायो) वायुरिव कमनीय (इन्द्रवः) आर्द्रीभूताः (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् (क्राणासः) उत्तमानि कर्माणि कुर्वन्तः (सुकृताः)सुष्ठु कर्म येषां ते(अभिद्यवः) अभितो द्यवो विद्याप्रकाशा येषान्ते (गोभिः) पृथिवीभिस्सह (क्राणाः) पुरुषार्थं कुर्वाणाः (अभिद्यवः) अभितो द्यवः सूर्यकिरणाइव देदीप्यमानाः (यत्) ये (ह) (क्राणाः) कर्तुं शीलाः (इरध्यै) ईरितुं प्राप्तुम् । अत्र वर्णव्यत्ययेन ईकारस्थानइः (दक्षम्) बलम् (सचन्ते) समवयन्ति (ऊतयः) रक्षादिक्रियावन्तः (सध्रीचीनाः) सहाञ्चन्तः (नियुतः) नियुक्ताः (दावने) दानाय (धियः) प्रज्ञाः (उप) (ब्रुवते) उपदिशन्ति (ईम्) सर्वतः (धियः) कर्माणि ॥ २ ॥

अन्वयः—हे वायो विद्वन्यद्येऽस्मत् क्राणासोऽभिद्यवः सुकृता अभिद्यवइवेन्दवः क्राणाइव मन्दिनस्त्वा मन्दन्तु ते ह ऊतयः क्राणा दक्षं गोभिरिरध्यै सचन्ते ये दावने सध्रीचीना नियुतो धिय उप ब्रुवते त ईं धियः प्राप्नुवन्ति ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या विदुषः सेवन्ते सत्यमुपदिशन्ति च ते शरीरात्मबलं कथन्नाप्नुयुः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के समान मनोहर विद्वान् (यत्) जो (अस्मत्) हम लोगों से (क्राणासः) उत्तम कर्म करते हुए (अभिद्यवः) जिन के चारों ओर से विद्या के प्रकाश विद्यमान(सुक्रताः)जो सुंदर उत्तम कर्म वाले (अभिद्यवः) और सब ओर से सूर्य की किरणों के समान अत्यन्त प्रकाशमान(इन्दवः)आर्द्रचित्त(क्राणाः)पुरुषार्थ करते हुए सज्जनों के समान (मन्दिनः)और सुख की कामना करते हुए(त्वा)आप को(मन्दन्तु)चाहें वे(ह) ही(ऊतयः) रक्षा आदि क्रियावान् (क्राणाः) कर्म करने वाले (दक्षम्) बल को (गोभिः) भूमियों के साथ (इरध्यै) प्राप्त होने को (सचन्त) युक्त होते अर्थात् संबंध करते हैं । जो (दावने) दान के लिये (सध्रीचीनाः) साथ सत्कार पाने वा जाने आने वाले (नियुतः) नियुक्त किई अर्थात् किसी विषय में लगाई हुई (धियः) बुद्धियों का (उप, ब्रुवते) उपदेश करते हैं वे (ईम्) सब ओर से (धियः) कर्मों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्वानों का सेवन करते और सत्य का उपदेश करते हैं वे शरीर और आत्मा के बल को कैसे न प्राप्त हों?॥२॥

पुनर्विद्वद्भिः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोढवे वहिष्ठा धुरि वोढवे। प्र बोधया पुरंन्धि जार आ संसतीमिव। प्र चंक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥

वायुः । युङ्क्ते । रोहिता । वायुः । अरुणा । वायुः । रथे । अजिरा । धुरि । वोढवे । वहिष्ठा । धुरि । वोढवे । प्र ।

बोधय । पुरंन्धिम् । जारः । आ । ससतीम्ऽइंव । प्र । चक्षय । रोदंसी इति । वासय । उषसंः । श्रवंसे । वासय । उषसंः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(वायुः) पवन इव (युङ्क्ते) कलाकौशलेन प्रेरितः संपर्चयति (रोहिता) रोहितानि रक्तगुणविशिष्टान्यग्न्यादीनि द्रव्याणि (वायुः) सूक्ष्मः (अरुणा) पदार्थप्रापणसमर्थानि (वायुः) स्थूलः पवनः (रथे) रमणीये याने (अजिरा) अजिराणि क्षेप्तुं गमयितुमनर्हाणि (धुरि) सर्वाधारे (वोढवे) वोढुम् । अत्र तुमर्थे तवेन्प्रत्ययः (वहिष्ठा) अतिशयेन वोढा । अत्राकारादेशः (धुरि) (वोढवे) वोढुं देशान्तरे वहनाय (प्र, बोधय) (पुरन्धिम्) बहुप्रज्ञम् (जारः) (आ) समन्तात् (ससतीमिव) यथा सुप्ताम् (प्र) (चक्षय) प्रख्यापय (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (वासय) कलायंत्रादिषु स्थापय (उषसः) दाहादिकर्तॄन् पदार्थान् (श्रवसे) संदेशादिश्रवणाय (वासय) विद्युद्विद्यया स्थापय (उषसः) दिनानि ॥ ३॥

अन्वयः—हे विद्वन् धुरि वोढवे वहिष्ठा वायुर्वोढवे धुरि रोहिता वायुररुणा वायुराजिरा रथे युङ्क्त इति त्वं जारः ससतीमिव पुरन्धिं प्राबोधय रोदसी प्रचक्षय तद्गुणानाख्यापयोषसो वासय श्रवसे चोषसो वासय ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये वायुवत्प्रयतन्त आप्तवज्जनान्प्रबोधयन्ति ते सूर्यवत्पृथिवीवच्च प्रकाशिता सोढारो जायन्ते॥३

पदार्थः—हे विद्वान् (धुरि) सब के आधारभूत जगत् में (वोढवे) पदार्थों के पहुंचाने को (वहिष्ठा) अतीव पहुंचाने वाला (वायुः) पवन (वोढवे) देशान्तर में पहुंचाने के लिये (धुरि) चलाने के मुख्य भाग में (रोहिता) लाल२ रंग के अग्नि आदि पदार्थों को वा (वायुः) पवन (अरुणा) पदार्थों को पहुंचाने में समर्थ जल धूंआं आदि पदार्थों को (वायुः) पवन (अजिरा) फेंकने योग्य पदार्थों को (रथे) रथ में (युङ्क्ते) जोड़ता है अर्थात् कला-कौशल से प्रेरणा को प्राप्त हुआ उन पदार्थों का संबंध करता है इस से आप (जारः) जाल्म पुरुष जैसे (ससन्तीमिव) सोती हुई स्त्री को जगावे वैसे पुरन्धिम्) बहुत उत्तम बुद्धिमती स्त्री को (प्राबोधय) भली भांति बोध कराओ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी का (प्र, चक्षय) उत्तम व्याख्यान करो अर्थात् उन के गुणों को कहो (उषसः) दाह आदि के करने वाले पदार्थों अर्थात् अग्नि आदि को कलायंत्रादिकों में (वासय) वसाओ स्थापन करो और (श्रवसे) संदेशादि सुनने के लिये (उषसः) दिनों को (वासय) तार बिजुली की विद्या से स्थिर करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो पवन के समान अच्छा यत्न करते और उत्तम धर्मात्मा के समान मनुष्यों को बोध कराते हैं वे सूर्य्य और पृथिवी के समान प्रकाश और सहनशीलता से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

पुनः के मनुष्याः कल्याणकरा भवन्तीत्याह ॥

फिर कौन मनुष्य कल्याण करने वाले होते हैं इस वि० ॥

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु । तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते । अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

तुभ्यम् । उषसः । शुचयः । पराऽवति । भद्रा । वस्त्रा । तन्वते । दम्ऽसु । रश्मिषु । चित्रा । नव्येषु । रश्मिषु । तुभ्यम् । धेनुः । सबःऽदुघा । विश्वा । वसूनि । दोहते । अजनयः । मरुतः । वक्षणाभ्यः । दिवः । आ । वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

पदार्थः–(तुभ्यम्) (उषासः) प्रभातवाताः। अत्रान्येषामपीति दीर्घः (शुचयः) पवित्राः (परावति) दूरदेशे (भद्रा) कल्याणकराणि (वस्त्रा) वस्त्राण्याच्छादनानि (तन्वते) विस्तृणन्ति (दंसु) दाम्यन्ति जना येषु (रश्मिषु) किरणेषु (चित्रा) चित्राण्यद्भुतानि (नव्येषु) नवीनेषु (रश्मिषु) किरणेषु (तुभ्यम्) (धेनुः) वाणी (सबर्दुघा) सर्वान् कामान् पूरयन्ती (विश्वा) सर्वाणि (वसूनि) धनानि (दोहते) प्रपिपर्त्ति (अजनयः) अजायमानाः (मरुतः) वायवः (वक्षणाभ्यः) वोढ्रीभ्यो नदीभ्यः (दिवः) प्रकाशस्य मध्ये (आ) समन्तात् (वक्षणाभ्यः) वहमानाभ्यः॥४॥

अन्वयः–हे मनुष्य यथा शुचय उषासः परावति दंसु रश्मिषु नव्येषु रश्मिष्विव तुभ्यं चित्रा भद्रा वस्त्रा तन्वते । यथा सबर्दुघा धेनुर्वाक् तुभ्यं विश्वा वसूनि दोहते यथाऽजनयो मरुतो वक्षणाभ्य इव दिवो वक्षणाभ्यो जलमा तन्वते तथा त्वं भव ॥ ४ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–ये मनुष्या रश्मिवन्न्यायप्रकाशं सुशिक्षितवाणीवहक्तृत्वं नदीवत् शुभगुणवहनं कुर्वन्ति ते समग्रं कल्याणमश्नुवते ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे (शुचयः) शुद्ध (उषासः) प्रातः समय के पवन (परावति) दूर देश में (दंसु) जिन में मनुष्य मन का दमन करते उन (रश्मिषु) किरणों में और (नव्येषु) नवीन (रश्मिषु) किरणों में वैसे (तुभ्यम्) तेरे लिये (चित्रा) चित्र विचित्र अद्भुत (भद्रा) सुख करने वाले (वस्त्रा) वस्त्र वा ढांपने के अन्य पदार्थों का (तन्वते) विस्तार करते वा जैसे (सबर्दुघा) सब कामों को पूरण करती हुई (धेनुः) वाणी (तुभ्यम्) तेरे लिये (विश्वा) समस्त (वसूनि) धनों को (दोहते) पूरा करतां वा जैसे (अजनयः) न उत्पन्न होने वाले (मरुतः) पवन (वक्षणाभ्यः) जो जलादि पदार्थों को वहाने वाली नदियों में (दिवः) प्रकाश के बीच (वक्षणाभ्यः) वहाने वाली किरणों से जल का (आ) अच्छे प्रकार विस्तार करते वैसा तू हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य किरणों के समान न्याय के प्रकाश और अच्छी शिक्षा युक्त वाणी के समान वक्तृता बोल चाल और नदी के समान अच्छे गुणों की प्राप्ति करते वे समग्र सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते इस वि० ॥

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि । त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये । त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

तुभ्यम् । शुक्रासः । शुचयः । तुरण्यवः । मदेषु । उग्राः । इषणन्त । भुर्वणि । अपाम् । इषन्त । भुर्वणि । त्वाम् । त्सारी । दसमानः । भगम् । ईट्टे । तक्वऽवीये । त्वम् ।

विश्वस्मात् । भुवनात् । पासि । धर्मणा । असुर्यात् । पासि । धर्मणा ॥ ५ ॥

पदार्थः—(तुभ्यम्) (शुक्रासः) शुद्धवीर्य्याः (शुचयः) पवित्रकारकाः (तुरण्यवः) पालकाः (मदेषु) हर्षेषु (उग्राः) तीव्राः (इषणन्त) इच्छन्तु (भुर्वणि) धारणवति (अपाम्) (इषन्त) प्राप्नुवन्तु (भुर्वणि) पोषणवति (त्वाम्) (त्सारी) कुटिलगामी (दसमानः) शत्रूनुपक्षयन् (भगम्) ऐश्वर्य्यम् (ईट्टे) स्तौति (तक्कवीये) तक्वनां स्तेनानामसंबन्धे मार्गे (त्वम्) (विश्वस्मात्) सर्वस्मात् (भुवनात्) संसारात् (पासि) रक्षसि (धर्मणा) (असुर्यात्) असुराणां दुष्टानां निजव्यवहारात् (पासि) (धर्मणा) धर्मेण ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यस्त्वं धर्मणाऽसुर्यात्पासि धर्मणा विश्वस्माद्भुवनात्पासि त्सारी दसमानोभवान् तक्कवीये भगमीट्टे तं त्वां येऽपांभुर्वणीषन्त । तुरण्यवः शुचयः शुक्रास उग्रा मदेषु भुर्वणि तुभ्यमिषणन्त ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्याणां योग्यताऽस्ति ये यान् रक्षेयुस्तांस्तेपि रक्षेयुर्दुष्टानां निवारणेनैश्वर्यमिच्छन्तु न कदाचिद्दुष्टेषु विश्वासं कुर्युः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (त्वम्) आप (धर्मणा) धर्म से (असुर्यात्) दुष्टों के निज व्यवहार से (पासि) रक्षा करते हो वा (धर्मणा) धर्म के साथ (विश्वस्मात्) समग्र (भुवनात्) संसार से (पासि) रक्षा करते हो तथा

(त्सारी) तिरछे बांके चलते और (दस्मानः) शत्रुओं का संहार करते हुए आप (तक्कवीये)जिस में चोरों का संबन्ध नहीं उस मार्ग में(भगम्)ऐश्वर्य्य की (ईट्टे)प्रशंसा करते उन(त्वाम्)आप को जो (अपाम्)जल वा कर्मों की(भुर्वणि) धारणा वाले व्यवहार में (इषन्त) चाहते हैं वे (तुरण्यवः) पालना और (शुचयः) पवित्रता करने वाले (शुक्रासः) शुद्धवीर्य (उग्राः) तीव्र जन (मदेषु) आनन्दों में(भुर्वणि)और पालन पोषण करने वाले व्यवहार में(तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (इषणन्त) इच्छा करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों की योग्यता है कि जो जिन की रक्षा करें उनकी वे भी रक्षा करें दुष्टों की निवृत्ति से ऐश्वर्य को चाहें और कभी दुष्टों में विश्वास न करें ॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वन्नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि । उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् । विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

त्वम् । नः । वायो इति । एषाम् । अपूर्व्यः । सोमानाम् । प्रथमः । पीतिम् । अर्हसि । सुतानाम् । पीतिम् । अर्हसि । उतो इति । विहुत्मतीनाम् । विशाम् । ववर्जुषीणाम् । विश्वाः । इत् । ते । धेनवः । दुह्रे । आऽशिरम् । घृतम् । दुह्रते । आऽशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (नः) अस्माकम् (वायो) प्राणइव वर्त्तमान (एषाम्) (अपूर्व्यः) पूर्वैः कृतः पूर्व्यो न पूर्व्योऽपूर्व्यः (सोमानाम्) ऐश्वर्यकारकाणां महौषधिरसानाम् (प्रथमः) आदिमः प्रख्याता वा (पीतिम्) पानम् (अर्हसि) कर्तुं योग्योऽसि (सुतानाम्) सुक्रियया निष्पादितानाम् (पीतिम्) पानम् (अर्हसि) (उतो) अपि (विहुत्मतीनाम्) जुह्वति स्वीकुर्वन्ति याभिस्ता विहुतो विहुतो मतयो यासु तासाम् (विशाम्) प्रजानाम् (ववर्जुषीणाम्) भृशं दोषान्वर्जयन्तीनाम्। अत्र यङ्लुगन्ताद्वृजेः क्विबन्तं रूपम् (विश्वाः) सर्वाः (इत्) एव (ते) तव (धेनवः) गावः (दुह्रे) पिपुरति (आशिरम्) भोगम् (घृतम्) प्रदीप्तम् (दुह्रते) प्रपूरयन्ति (आशिरम्) समन्ताद्भोग्यम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे वायो परमबलवन् अपूर्व्यस्त्वं नः सुतानां सोमानां पीतिमर्हसि प्रथमस्त्वमेषां पीतिमर्हसि यास्ते विश्वा धेनवइदेवाशिरं घृतं दुह्रतआशिरं दुह्रे तासां ववर्जुषीणां विहुत्मतीनां विशामुतो रक्षणं सततं कुरु ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—राजपुरुषैर्ब्रह्मचर्यस्वौषधसेवनयुक्ताहाराविहारैः शरीरात्मबलमुन्नीय धर्मेण प्रजापालने स्थिरैर्भवितव्यम् ॥ ६ ॥

अत्र वायुदृष्टान्तेन शूरन्यायेषु प्रजाकर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीत्यवगन्तव्यम् ॥

इति चतुस्त्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (वायो) प्राण के समान वर्त्तमान परम बलवान् (अपूर्व्यः) जो अगलों ने नहीं प्रसिद्ध किये वे अपूर्व गुणी (त्वम्) आप (नः) हमारे (सुतानाम्) उत्तम क्रिया से निकाले हुए (सोमानाम्) ऐश्वर्य्य करने वाले बड़ी २ ओषधियों के रसों के (पीतिम्) पीने को (अर्हसि) योग्य हो और (प्रथमः) प्रथम विख्यात आप (एषाम्) इन उक्त पदार्थों के रसों के (पीतिमर्हसि) पीने को योग्य हो जो (ते) आप की (विश्वाः) समस्त (धेनवः) गौएं (इत्) ही (आशिरम्) भोगने के (घृतम्) कान्तियुक्त घृत को (दुह्रते)पूरा करतीं और(आशिरम्) अच्छे प्रकार भोजन करने योग्य दुग्ध आदि पदार्थ को (दुह्रे) पूरा करती उन की और (ववर्जुषीणाम्) निरन्तर दोषों को त्याग कराती हुई (विद्युत्मतीनाम्) जिन में विशेषता से होम करने वाला विचारशील मनुष्य विद्यमान उन (विशाम्) प्रजाओं की (ऊती) निश्चय से पालना कीजिये॥६॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—राजपुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य और उत्तम औषध के सेवन और योग्य आहार विहारों से शरीर और आत्मा के बल की उन्नति कर धर्म से प्रजा की पालना करने में स्थिर हों ॥ ६ ॥

इस सूक्त में पवन के दृष्टान्त से शूरवीरों के न्यायविषयकों में प्रजा कर्म के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ चौंतीशवां सूक्त और तेईशवां वर्ग पूरा हुआ ॥

स्तीर्णमित्यस्य नवर्चस्य पञ्चत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेपऋषिः। वायुर्देवता। १। ३। निचृदत्यष्टिः। २। ४। विराडत्यष्टिश्छन्दः। गांधारः स्वरः ५। ९। भुरिगष्टिः। ६। ८। निचृदष्टिः। ७। अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः के केषां केन किं प्राप्नुयुरित्याह॥

अब नव ऋचा वाले एकसौ पैंतीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में कौन किन के किस से किस को प्राप्त हों इस वि०॥

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते। तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे। प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन्॥ १॥

स्तीर्णम्। बर्हिः। उप। नः। याहि। वीतये। सहस्रेण। निऽयुता। निऽयुत्वते। शतिनीभिः। नियुत्वते। तुभ्यम्। हि। पूर्वऽपीतये। देवाः। देवाय। येमिरे। प्र। ते। सुतासः। मधुऽमन्तः। अस्थिरन्। मदाय। क्रत्वे। अस्थिरन्॥ १॥

पदार्थः—(स्तीर्णम्) आच्छादितम् (बर्हिः) उत्तमं विशालं गृहम् (उप) सामीप्ये (नः) अस्माकम् (याहि) प्राप्नुहि (वीतये) सुखप्राप्तये (सहस्रेण) असंख्यातेन (नियुता)

निश्चितेन (नियुत्वते) नियुतो बहवोऽश्वा विद्यन्ते यस्य तस्मै (शतिनीभिः) शतानि बहवो वीरा विद्यन्ते यासु सेनासु ताभिः (नियुत्वते) बहुबलमिश्रिताय (तुभ्यम्) (हि) खलु (पूर्वपीतये) पूर्वस्य पानाय (देवाः) विद्वांसः (देवाय) दिव्यगुणाय (येमिरे) यच्छेयुः (प्र) (ते) तव (सुतासः) निष्पादिताः (मधुमन्तः) प्रशस्तमधुरगुणयुक्ताः (अस्थिरन्) स्थिराः स्युः (मदाय) हर्षाय (क्रत्वे) प्रज्ञायै (अस्थिरन्) स्थिराइवाचरेयुः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्यस्मै देवाय तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा येमिरे यस्य ते तव मदाय क्रत्वे मधुमन्तः सुतासः प्राऽस्थिरन् भद्राऽस्थिरन् स त्वं नः स्तीर्णं बर्हिर्वीतय उप याहि नियुत्वते सहस्रेण नियुता उपयाहि शतिनीभिस्सह नियुत्वते उपयाहि ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्याधर्मजिज्ञासुभिर्मनुष्यैः विदुषामाह्वानं सर्वदा कार्य्यं तेषां सेवासङ्गाभ्यां विज्ञानमुन्नीय नित्यमानन्दितव्यम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जिस (देवाय) दिव्य गुणा के लिये (तुभ्यम्) (हि) आप को ही (पूर्वपीतये) प्रथम रस आदि पीने को (देवाः) विद्वान् जन (येमिरे) नियम करें उन (ते) आप के (मदाय) आनन्द और (क्रत्वे) उत्तम बुद्धि के लिये (मधुमन्तः) प्रशंसित मधुर गुण युक्त (सुतासः) उत्पन्न किये हुए पदार्थ (प्रास्थिरन्) अच्छे प्रकार स्थिर हों और सुखरूप (अस्थिरन्) स्थिर हों वैसे सो आप (नः) हमारे (स्तीर्णम्) ढंपे हुए (बर्हिः) उत्तम विशाल घर को (वीतये) सुख पाने के लिये (उप, याहि) पास पहुंचो (नियुत्वते) जिस के बहुत घोड़े विद्यमान उस के लिये (सहस्रेण) हजारों

(नियुता) निश्चित व्यवहार से पास पहुंचो और (शतिनीभिः) जिन में सैकड़ों वीर विद्यमान उन सेनाओं के साथ (नियुत्वते) बहुत बल से मिले हुए के लिये अर्थात् अत्यन्त बलवान् के लिये पास पहुंचो ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्या और धर्म को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों का बुलाना सब कभी करें उन की सेवा और सङ्ग से विशेष ज्ञान की उन्नति कर नित्य आनन्दयुक्त हों ॥ १ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कृत्वा किं प्राप्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या पाना चाहिये इस वि० ॥

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति । तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते । वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥

तुभ्य । अयम् । सोमः । परिऽपूतः । अद्रिऽभिः । स्पार्हा । वसानः । परि । कोशम् । अर्षति । शुक्रा । वसानः । अर्षति । तव । अयम् । भागः । आयुषु । सोमः । देवेषु । हूयते । वह । वायो इति । निऽयुतः । याहि । अस्मऽयुः । जुषाणः । याहि । अस्मऽयुः ॥ २ ॥

पदार्थः—(तुभ्य) तुभ्यम् । अत्र छान्दसोवर्णलोपइति मकारलोपः (अयम्) सोमः ओषधिगणइव (परिपूतः) सर्वतः पवित्रः (अद्रिभिः) मेघैः (स्पार्हा) ईप्सितव्यानि वस्त्राणि (वसानः) आच्छादयन् (परि) (कोशम्) मेघम् (अर्षति) गच्छति

(शुक्रा) शुद्धानि (वसानः) धरन् (अर्षति) प्राप्नुयात्। ऋधातोर्लेट्प्रयोगोऽयम् (तव) (अयम्) (भागः) भजनीयः (आयुषु) जीवनेषु (सोमः) चन्द्रइव (देवेषु) विद्वत्सु (हूयते) स्तूयते (वह) (वायो) पवनइव (नियुतः) नियुक्तानश्वान् (याहि) (अस्मयुः) अहमिवाचरन् (जुषाणः) प्रीतः (याहि) (अस्मयुः) ॥ २ ॥

अन्वयः—हे वायो त्वं नियुतः पवनइव स्वयानानि देशान्तरं वह जुषाणोऽस्मयुर्याहि। अस्मयुस्सन्नायाहि यस्य तवऽयमायुषु देवेषु सोमो भागोऽस्ति यो भवान् हूयते स वसानः सन् शुक्राऽ-र्षति योऽयमद्रिभिः परिपूतः सोमो हूयते कोशं पर्य्यर्षति तद्वत्स्पार्हो वसानस्त्वं याहि तस्य तुभ्य तत्सर्वमाप्नोतु ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः प्रशस्तवस्त्राभरणवेशाः शुभमाचरन्ति ते सर्वत्र प्रशंसां प्राप्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (वायो) विद्वान् आप (नियुतः) कला कौशल से नियत किये हुए घोड़ों को जैसे पवन वैसे अपने यानों को एक देश से दूसरे देश को (वह) पहुंचाओ और (जुषाणः) प्रसन्नचित्त (अस्मयुः) मेरे समान आचरण करते हुए (याहि) पहुंचो (अस्मयुः) मेरे समान आचरण करते हुए आओ जिस (तव) आप का (अयम्) यह (आयुषु) जीवनों और (देवेषु) विद्वानों में (सोमः) ओषधिगण के समान (भागः) सेवन करने योग्य भाग है वा जो आप (हूयते) स्तुति किये जाते हैं सो (वसानः) वस्त्र आदि ओढ़े हुए (शुक्रा) शुद्ध व्यवहारों को (अर्षति) प्राप्त होते हैं जो (अयम्) यह (अद्रिभिः) मेघों से (परिपूतः) सब ओर से पवित्र हुआ

(सोमः) चन्द्रमा के समान प्रशंसा किया जाता वा (कोशम्) मेघ को (पर्य्यर्षति) सब ओर से प्राप्त होता उस के समान (स्पार्हा) चाहे हुए वस्त्रों को (वसानः) धारण किये हुए आप प्राप्त होवें उन (तुभ्य) आप के लिये उक्त सब वस्तु प्राप्त हों ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य प्रशंसित कपड़े गहने पहिने हुए सुन्दर रूपवान् अच्छे आचरण करते हैं वे सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनाराज्ञा प्रजाभ्यः किं ग्राह्यमित्याह ॥

फिर राजा को प्रजाजनों से क्या लेना चाहिये इस वि० ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि वीतये वायो हव्यानि वीतये। तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्य्ये सचा। अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥

आ । नः । नियुत्ऽभिः । शतिनीभिः । अध्वरम् । सहस्रिणीभिः । उप । याहि । वीतये । वायोइति । हव्यानि । वीतये । तव । अयम् । भागः । ऋत्वियः । सऽरश्मिः । सूर्य्ये । सचा । अध्वर्युऽभिः । भरमाणाः । अयंसत । वायोइति । शुक्राः । अयंसत ॥ ३ ॥

पदार्थः—(आ) (नः) अस्माकम् (नियुद्भिः) वायुगुणवद्वर्त्तमानैरश्वैः (शतिनीभिः) प्रशस्तासंख्यातसेनांगयुक्ताभिश्चमूभिः (अध्वरम्) राज्यपालनाख्यं यज्ञम् (सहस्रिणीभिः) बहूनि

सहस्राणि शूरवीरसंघा यासु ताभिः (उप) (याहि) (वीतये) कामनायै (वायो) विद्वन् (हव्यानि) आदातुमर्हाणि (वीतये) व्याप्तये (तव) (अयम्) (भागः) (ऋत्वियः) ऋतुः प्राप्तोऽस्य स ऋत्वियः (सरश्मिः) रश्मिभिः प्रकाशैः सह वर्तमानः (सूर्ये) (सचा) समवेताः (अध्वर्य्युभिः) य आत्मानमध्वरमिच्छन्ति तैः (भरमाणाः) धरमाणाः (अयंसत) उपयच्छेयुः (वायो) प्रशस्तबलयुक्त (शुक्राः) शुद्धाः (अयंसत) ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे वायो तव येऽध्वर्य्युभिर्भरमाणा जना अयंसत ते सुखमयंसत यस्य तव सूर्ये सचा शुक्राः किरणाइव सरश्मिर्ऋत्वियोयं भागोऽस्ति स त्वं वीतये हव्यान्युपयाहि हे वायो ये शतिनीभिस्सहस्रिणीभिर्नियुद्भिर्वीतये नोऽध्वरमुपयान्ति तांस्त्वमुपायाहि॥३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—राजपुरुषैः शत्रोर्बलाच्चतुर्गुणं वाऽधिकं बलं कृत्वाऽधार्मिकैः शत्रुभिस्सह योद्धव्यम् । ते प्रतिवर्षं प्रजाभ्यो गृहीतव्यो यावान्करो भवेत् तावन्तमेव गृह्णीयुः सदैव धार्मिकान् विदुष उपसेवेरन् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (वायो) विद्वान् (तव) आप के जो (अध्वर्य्युभिः) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वालों ने (भरमाणाः) धारण किये मनुष्य (अयंसत) निवृत्त होवें सुख जैसे हो वैसे (अयंसत) निवृत्त हों अर्थात् सांसारिक सुख को छोड़ें जिन आप का (सूर्ये) सूर्य्य के बीच (सचा) अच्छे प्रकार संयोग किये हुई (शुक्राः) शुद्ध किरणों के समान (सरश्मिः) प्रकाशों के साथ वर्त्तमान (ऋत्वियः) जिस का ऋतु समय प्राप्त हुआ वह (अयम्) यह (भागः) भाग है सो आप (वीतये) व्याप्त होने के लिये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य

पदार्थों को (उपयाहि) समीप पहुंचें प्राप्त हों हे (वायो) प्रशंसित बलयुक्त जो (शतिनीभिः) प्रशंसित सैकड़ों अङ्गों से युक्त सेनाओं के साथ वा (सहस्रिणीभिः) जिन में बहुत हजार शूरवीरों के समूह उन सेनाओं के साथ वा (नियुद्भिः) पवन के गुण के समान घोड़ों से (वीतये) कामना के लिये (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) राज्यपालन रूप यज्ञ को प्राप्त होते उन को आप (आ) आकर प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचक लुप्तोपमालं०—राजपुरुषों को चाहिये कि शत्रुओं के बल से चौगुना वा अधिक बल कर दुष्ट शत्रुओं के साथ युद्ध करें और वे प्रतिवर्ष प्रजाजनों से जितना कर लेना योग्य हो उतना ही लेवें तथा सदैव धर्मात्मा विद्वानों की सेवा करें ॥ ३ ॥

पुनर्मनुष्यैः किंवद्भवितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को किस के समान होना चाहिये इस वि० ॥

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये । पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् । वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥

आ । वाम् । रथः । नियुत्वान् । वक्षत् । अवसे । अभि । प्रयांसि । सुऽधितानि । वीतये । वायो इति । हव्यानि । वीतये । पिबतम् । मध्वः । अन्धसः । पूर्वऽपेयम् । हि । वाम् । हितम् । वायोइति । आ । चन्द्रेण । राधसा । आ । गतम् । इन्द्रः । च । राधसा । आ । गतम् ॥ ४ ॥

पदार्थः-(आ) (वाम्) युवयोः (रथः) (नियुत्वान्) वायुवद्वेगवान् (वक्षत्) वहेत् (अवसे) विजयाऽगमाय (अभि) आभिमुख्ये (प्रयांसि) प्रीतानि (सुधितानि) सुष्ठु धृतानि (वीतये) आनन्दप्राप्तये (वायो) वायुवत्प्रिय (हव्यानि) दातुमर्हाणि (वीतये) धर्मप्रवेशाय (पिबतम्) (मध्वः) मधुरगुणयुक्तस्य (अन्धसः) अन्नस्य (पूर्वपेयम्) पूर्वैः पातुं योग्यम् (हि) खलु (वाम्) युवाभ्याम् (हितम्) (वायो) दुष्टानां हिंसक (आ) समन्तात् (चन्द्रेण) सुवर्णेन । चन्द्रमिति हिरण्यना० निघं० १। २ (राधसा) राध्नुवन्ति संसिद्धिं प्राप्नुवन्ति येन तेन (आ) (गतम्) गच्छतं प्राप्नुतम् (इन्द्रः) विद्युत् (च) चकाराद्वायुः (राधसा) (आ) संसिद्धिकरेण साधनेन सह (गतम्) प्राप्नुतम् । अत्रोभयत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् ॥४॥

अन्वयः-हे सभासेनेशौ यो वां नियुत्वान्रथो वीतये सुधितानि प्रयांस्यभ्यावक्षदवसे वीतये हव्यानि च तौ युवां यथेन्द्रो वायुश्च तथा राधसा गतम् । वां हि यन्मध्वोऽन्धसः पूर्वपेयं वां हितमस्ति तत्पिबतं चन्द्रेण राधसाऽऽगतम् । हे वायो त्वं चन्द्रेण राधसा हितमायाहि हे वायो हव्यानि चायाहि ॥ ४ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-यथा वायुविद्युतौ सर्वाऽभिव्याप्ते भूत्वा सर्वाणि वस्तूनि सेवेते तथा सज्जनैरैश्वर्यप्राप्तये सर्वाणि साधनानि सेवनीयानि ॥ ४॥

पदार्थः—हे सभासेनाधीशो जो (वाम्) तुम्हारा (नियुत्वान्) पवन के समान वेगवान् (रथः) रथ (वीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिये (सुधितानि)

अच्छे प्रकार धारण किये हुए (प्रयांसि) प्रीति के अनुकूल पदार्थों को (अभ्यावक्षत्) चारोंओर से अच्छे प्रकार पहुंचे और (अवसे) विजय की प्राप्ति वा (वीतये) धर्म की प्रवृत्ति के लिये (हव्यानि) देने योग्य पदार्थों को चारोंओर भली भांति पहुंचावे वे तुम जैसे (इन्द्रः) बिजुली रूप आग (च) और पवन आवें वैसे (राधसा) जिस से सिद्धि को प्राप्त होते उस पदार्थ के साथ (आ, गतम्) आओ जो (मध्वः) मीठे (अन्धसः) अन्न का (पूर्वपेयम्) अगले मनुष्यों के पीने योग्य (वाम्) और तुम दोनों के लिये (हितम्) सुख रूप भाग है उस को (पिबतम्) पिओ और (चन्द्रेण) सुवर्ण रूप (राधसा) उत्तम सिद्धि करने वाले धन के साथ (आगतम्) आओ हे (वायो) पवन के समान प्रिय आप उत्तम सिद्धि करने वाले सुवर्ण के साथ सुखभोग को (आ) प्राप्त होओ और हे (वायो) दुष्टों की हिंसा करने वाले लेने देने योग्य पदार्थों को भी (आ) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे पवन और बिजुली सब में अभिव्याप्त होकर सब वस्तुओं का सेवन करते वैसे सज्जनों को चाहिये कि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये सब साधनों का सेवन करें ॥ ४ ॥

पुनर्विद्वद्भिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् । तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या । इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥ २४ ॥

आ । वाम् । धियः । ववृत्युः । अध्वरान् । उप । इमम् । इन्दुम् । मर्मृजन्त । वाजिनम् । आशुम् । अत्यम् । न ।

वाजिनम् । तेषाम् । पिबतम् । अस्मयू इत्यस्मऽयू । आ ।
नः । गन्तम् । इह । ऊत्या । इन्द्रवायू इति । सुतानाम् ।
अद्रिऽभिः । युवम् । मदाय । वाजऽदा । युवम् ॥५॥२४॥

पदार्थः–(आ) (वाम्) युवयोः (धियः) प्रज्ञाः कर्माणि वा (ववृत्युः) वर्त्तेरन् । अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुर्व्यत्ययेन परस्मैपदम् (अध्वरान्) अहिंसकान् जनान् (उप) (इमम्) (इन्दुम्) परमैश्वर्यम् । अतेदिधातोर्बाहुलकादुः प्रत्ययः (मर्मृजन्त) अत्यन्तं मार्जयन्तु शोधयन्तु (वाजिनम्) प्रशस्तवेगम् (आशुम्) शीघ्रकारिणम् (अत्यम्) अतन्तमश्वम् (न) इव (वाजिनम्) बहुशुभलक्षणाऽन्वितम् (तेषाम्) (पिबतम्) (अस्मयू) आवामिवाचरन्तौ (आ) (नः) अस्मान् (गन्तम्) गच्छतम् । अत्राडभावो बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (इह) अस्मिन्संसारे (ऊत्या) रक्षणादिसत्क्रियया (इन्द्रवायू) सूर्य्यपवनाविव (सुतानाम्) संसिद्धानाम् (अद्रिभिः) शैलाऽवयवैरुलूखलादिभिः (युवम्) (मदाय) आनन्दाय (वाजदा) विज्ञानप्रदौ (युवम्) युवाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः–हे इन्द्रवायू ये वां धियोऽध्वरानिममिन्दुं वाजिनं चाशु वाजिनमत्यं नेवा ववृत्युरिममिंदुमुपमर्मृजन्त तेषामद्रिभिः सुतानां रसं मदाय युवं पिबतमस्मयू वाजदा युवमिहोत्या नोऽस्माना गन्तम् ॥ ५ ॥

भावार्थः–अत्रोपमालं०–य उपदेशका अध्यापकाश्च जनानां बुद्धीः शोधयित्वा सुशिक्षिताऽश्ववत्पराक्रमयन्ति तत्रानन्दभागिनो भवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) सूर्य्य और पवन के समान सभा सेनाधीशो ओ उपदेश करने वा पढ़ाने वाले विद्वान् जन (वाम्) तुम्हारे (धियः) बुद्धि और कर्मों वा (अध्वरान्) हिंसा न करने वाले जनों (इमम्) इस (इन्दुम्) परमऐश्वर्य और (वाजिनम्) प्रशंसित वेग युक्त (आशुम्) काम में शीघ्रता करने वाले (वाजिनम्) अनेक शुभ लक्षणों से युक्त (अत्यम्) निरन्तर गमन करते हुए घोड़े के (न) समान (आ, ववृत्युः) अच्छे प्रकार वर्त्तें कार्य्य में लावें और इस परम ऐश्वर्य्य को (उप,मर्मृजन्त) समीप में अत्यन्त शुद्ध करें (तेषाम्) उन के (अद्रिभिः) अच्छे प्रकार पर्वत के टूक वा उखली मूशलों से (सुतानाम्) सिद्ध किये अर्थात् कूट पीट बनाए हुए पदार्थों के रस को (मदाय) आनन्द के लिये (युवम्) तुम (पिबतम्) पीओ तथा (अस्मयू) हम लोगों के समान आचरण करते हुए (वाजदा) विशेष ज्ञान देने वाले (युवम्) तुम दोनों इस संसार में (ऊत्या) रक्षा आदि उत्तमक्रिया से (नः) हम लोगों को (आगन्तम्) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो उपदेश करने और पढ़ाने वाले मनुष्यों की बुद्धियों को शुद्ध कर अच्छे शिखाये हुए घोड़े के समान पराक्रम युक्त कराते वे आनन्द सेवने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत । एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः । युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

इमे । वाम् । सोमाः । अप्सु । आ । सुताः । इह । अध्वर्युऽभिः । भरमाणाः । अयंसत । वायोइति । शुक्राः ।

अयंसत । एते । वाम् । अभि । असृक्षत । तिरः । पवित्रम् । आशवः । युवाऽयवः । अति । रोमाणि । अव्यया । सोमासः । अति । अव्यया ॥ ६ ॥

पदार्थः—(इमे) (वाम्) (सोमाः) महौषधयः (अप्सु) जलेषु (आ) (सुताः) (इह) अस्मिँल्लोके (अध्वर्युभिः) अध्वरं यज्ञमिच्छद्भिः (भरमाणाः) (अयंसत) यच्छेयुः (वायो) वायुवद्बलिष्ठ (शुक्राः) शुद्धाः (अयंसत) गृह्णीयुः (एते) (वाम्) युवाम् (अभि) आभिमुख्ये (असृक्षत) सृजेयुः (तिरः) तिरश्चीनम् (पवित्रम्) शुद्धिकरम् (आशवः) ये अश्नुवन्ति ते (युवायवः) युवामिच्छवः (अति) रोमाणि लोमानि (अव्यया) व्ययरहितानि (सोमासः) ऐश्वर्य्ययुक्ताः (अति) (अव्यया) नाशरहितानि सुखानि ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र वायो य इम इहाध्वर्युभिरप्सु सुताः सोमा भरमाणा वामयंसत शुक्रा अयंसत य एते आशवो युवायवः सोमासोऽव्ययाऽतिरोमाण्यत्यव्ययेव तिरः पवित्रं वामभ्यसृक्षत तान् युवां पिबतं संगच्छेतां च ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या येषां सेवनेन दृढाऽऽरोग्ययुक्ता देहात्मानो भवन्ति येऽन्तःकरणं शोधयन्ति तान् यूयं नित्यं सेवध्वम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे परमऐश्वर्य्य युक्त और (वायो) पवन के समान बलवान् पुरुष जो (इमे) ये (इह) इस संसार में (अध्वर्युभिः) यज्ञ की चाहना करने वालों ने (अप्सु) जलों में (सुताः) उत्पन्न किई (सोमाः) बड़ी २

ओषधि (भरमाणाः) पुष्टि करती हुई तुम दोनों को (अयंसत) देवें और (शुक्राः) शुद्ध वे (अयंसत) लेवें वा जो (एते) ये (आशवः) इकट्ठे होते और (युवायवः) तुम दोनों की इच्छा करते हुए (सोमासः) ऐश्वर्य्य युक्त (अव्यया) नाशरहित (अति, रोमाणि) अतीव रोमा अर्थात् नारीयल की जटाओं के आकार (अति, अव्यया) सनातन सुखों के समान (तिरः) औरों से तिरछे (पवित्रम्) शुद्धि करने वाले पदार्थों और (वाम्) तुम दोनों को (अभि, असृक्षत) चारों ओर से सिद्ध करें उन को तुम पीओ और अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिन के सेवन से दृढ़ और आरोग्य युक्त देह और आत्मा होते हैं तथा जो अन्तःकरण को शुद्ध करते उन का तुम नित्य सेवन करो ॥ ६ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अति॑ वायो सस॒तो या॑हि॒ शश्व॑तो॒ यत्र॒ ग्रावा॒ वद॑ति॒ तत्र॑ गच्छतं गृ॒हमिन्द्र॑श्च॒ गच्छतम् । वि सू॒नृता॒ ददृ॑शे॒ रीय॑ते घृ॒तमा पू॒र्णया॑ नि॒युता॑ याथो अध्व॒रमिन्द्र॑श्च याथो अध्व॒रम् ॥ ७ ॥

अति॑ । वा॒यो इति॑ । स॒स॒तः । या॒हि॒ । शश्व॑तः । यत्र॑ । ग्रावा॑ । वद॑ति । तत्र॑ । ग॒च्छ॒त॒म् । गृ॒हम् । इन्द्रः॑ । च॒ । ग॒च्छ॒तम् । वि । सू॒नृता॑ । ददृ॑शे । रीय॑ते । घृ॒तम् । आ । पू॒र्णया॑ । नि॒ऽयुता॑ । या॒थः॒ । अ॒ध्व॒रम् । इन्द्रः॑ । च॒ । या॒थः॒ । अ॒ध्व॒रम् ॥ ७ ॥

पदार्थः-(अति) अतिशये (वायो) वायुवद्बलवन् (ससतः) अविद्यामुल्लंघमानान् (याहि) (शश्वतः) सनातनाविद्यायुक्तान् (यत्र) (ग्रावा) मेधावी (वदति) उपदिशाति (तत्र) (गच्छतम्) प्राप्नुतम् (गृहम्) (इन्द्रः) (च) (गच्छतम्) (वि) (सूनृता) सुशिक्षिता सत्यप्रिया वाक् (ददृशे) दृश्यते (रीयते) श्लिष्यते सम्बध्यते (घृतम्) प्रदीप्तविज्ञानम् (आ) (पूर्णया) (नियुता) अखिलांगयुक्तया वायोर्गतिवद्गत्या (याथः) प्राप्नुथः (अध्वरम्) अहिंसादिलक्षणं धर्मम् (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्तः (च) (याथः) गच्छथः (अध्वरम्) यज्ञम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे वायो विद्वँस्त्वं ससतः शश्वतो याहि यत्र ग्रावा वदति तत्र त्वमिन्द्रश्च गच्छतं गृहं गच्छतं यत्र सूनृता विददृशे घृतमारीयते तत्र पूर्णया नियुता यौ त्वमिन्द्रश्चाध्वरं याथस्तौ युवामध्वरं याथः ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्या यस्मिन्देशे स्थले वाऽऽप्ता विद्वांसः सत्यमुपदिशेयुस्तत्स्थानं गत्वा तदुपदेशं नित्यं शृणुयुः । येन विद्यावाणीं सत्यं विज्ञानं धर्मज्ञानं च प्राप्नुयुः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के समान बलवान् विद्वान् आप (ससतः) अविद्या को उल्लंघन किये और (शश्वतः) सनातन विद्या से युक्त पुरुषों को (याहि) प्राप्त होओ (यत्र) जहां (ग्रावा) धीर बुद्धि पुरुष (अति,वदति) अत्यन्त उपदेश करता (तत्र) वहां आप (च) और (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त मनुष्य (गच्छतम्) जाओ और (गृहम्) घर (गच्छतम्) जाओ जहां (सूनृता) उत्तमशिक्षा युक्त सत्याप्रियवाणी (वि, ददृशे) विशेषता से देखी जाती और (घृतम्)

प्रकाशित विज्ञान (आ, रीयते) अच्छे प्रकार संबद्ध होता अर्थात् मिलता वहां (पूर्णया) पूरी (नियुता) पवन की चाल के समान चाल से जो आप (इन्द्रः, च) और ऐश्वर्ययुक्त जन (अध्वरम्) अहिंसादि लक्षण धर्म को (याथः) प्राप्त होते हो वे तुम दोनों (अध्वरम्) यज्ञ को (याथः) प्राप्त होते हो ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग जिस देश वा स्थान में शास्त्रवेत्ता आप्त विद्वान् सत्य का उपदेश करें उन के स्थान पर जा के उन के उपदेश को नित्य सुना करें। जिस से विद्या युक्त वाणी और सत्य विज्ञान और धर्मज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः । साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

अत्र । अह । तत् । वहेथे इति । मध्वः । आहुतिम् । यम् । अश्वत्थम् । उपऽतिष्ठन्त । जायवः । अस्मे इति । ते । सन्तु । जायवः । साकम् । गावः । सुवते । पच्यते । यवः । न । ते । वायो इति । उप । दस्यन्ति । धेनवः । न । अप । दस्यन्ति । धेनवः ॥ ८ ॥

रसीद मूल्य वेदभाष्य

मास अप्रेल सन् ८६

मुं० हरनाम सिंहजी सब ओवरसियर पञ्चभद्रा इलाका जोधपुर	२४)
पं० बद्रीदीनजी अकबरपुर जिला कानपुर	१०)
बाबू श्यामल प्रसाद जी गुप्त हेडक्लर्क रायबरेली	४)
भगवन्तसिंह जी ओवरसियर पबलिक वर्क्स रियासत टोंक	८)
लाला मथुरादास जी सुपर वाईजर पी० डब्ल्यू० डी० फीरोजपुर	४२)
गुरुदत्तामल पटवारी मौजे कालूखां इलाके मरदान जि० पेशावर	२४॥)
बा० नन्दकिशोर जी बर्म्मा आर्य्यसमाज जयपुर	५)
चौबे कन्हैयालाल जी आर्यसमाज जलालाबाद जि० फर्रुखाबाद	७।≈)
पं० युगलकिशोरशर्मा जी तहसीलदार बल्लभगढ़ जि० दिल्ली	२॥≈)
बा० कपूर सिंह जी परवेयर डिपटी हास्पिटल मियामीर	८)
केशवप्रसाद जी तिवारी डिपटी इन्स्पेक्टर स्कूल उन्नाव	८/)

ओ३म्

विज्ञापन

जो इस यंत्रालय से पुस्तक वा वेदभाष्य लेते हैं वा पहिले लेते रहे हैं उन सब महाशयों से नम्रता पूर्वक प्रार्थना है :-इस यंत्रालय में पहिले से कई मेनेजरों के बदलने आदि कारणों से अनेक महाशयों का हिसाब ठीक २ नहीं है सो कृपा करके अपने २ हिसाब के विषय में जो २ निश्चय किया हो सो २ यहां को लिख के हिसाब साफ करें वा कुछ निश्चय न हो तो यहां को लिखें कि हमारा हिसाब व्योरेवार भेजो। और जिन महाशयों को धर्मानुसार ठीक२ ज्ञात होवे कि हम पर वैदिकयंत्रालय का इतनाही दाम चाहिये उन का उतना ही दाम धर्मपूर्वक भेज देने से स्वीकार किया जायगा और हिसाब चुकता होगा।

वेदभाष्य के ग्राहकों से विशेष प्रार्थना है कि आठवां वर्ष ७६ । ७७ । अङ्क तक समाप्त होगया और इस अङ्क से नवएं वर्ष का आरम्भ है अब कृपा कर पिछले वर्षों का दाम भेज के हिसाब चुकता कर देवें।

और जिन महाशयों के पत्रों के उत्तर वा पुस्तक न पहुंचें वे फिर भी लिखा करें क्योंकि कभी २ पत्र मारे भी जाते हैं। और अपना नाम गाम ठाम साफ२ स्मरण रख के अवश्य लिख दिया करें। कभी२ कोई२ महाशय पुस्तक मगाने आदि की कई आवश्यकता लिख के भी अपना पता लिखना भूल जाते हैं तो हम किन के पास पुस्तक वा उत्तर भेजें। जैसे अभी थोड़े दिन हुए कि एक पत्र वेलूपेयेविल पार्सल द्वारा पुस्तक मगाने के लिये हमारे पास आया था पर उस में मगाने वाले ने पता नहीं लिखा इस कारण पुस्तक वा उत्तर नहीं भेज सके॥

आप का

भीमसेनशर्मा

स्थानापन्न प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय

प्रयाग

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)

एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥=) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालय मैनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (९६, ९७) अंक (८०, ८१)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४३ आषाढ़ कृष्ण पक्ष

१—७—८६

रसीद मूल्य वेदभाष्य

जून सन् १८८६

पं० जगत्नारायण जी दशाश्वमेध बनारस	६)
पं० मोहनलालजी मिश्र बांसबरेली	८)
डाक्टर सवायाराम जी हास्पिटल असिस्टेंटतरनतारनजि० अमृतसर	१०)
वैजनाथ जी वकील मुरादाबाद	४)
पं० सूर्यनारायण जी मिश्र छावनी अम्बाला	४)
सीतारामजी हमीम छिड़ावली जि० अलीगढ़	४)
शङ्करलाल जी मिश्र वालीदीवानगंज	३१)
सुर्जनमल मन्त्री आर्यसमाज पेशावर	८)
भवानीसिंह नेटिव डाक्टर करोली राजपुताना	८)
	८३)

पदार्थः—(अत्र) (अह) किल (तत्) (वहेथे) प्रापयतः (मध्वः) मधुरस्य विज्ञानस्य (आहुतिम्) समन्ताद्ग्रहणम् (यम्) (अश्वत्थम्) पिप्पलमिव (उपतिष्ठन्त) उपतिष्ठन्तु (जायवः) जयशीलाः (अस्मे) अस्माकम् (ते) (सन्तु) (जायवः) जेतारः शूराः (साकम्) सह (गावः) धेनवः (सुवते) गर्भान् विमुञ्चन्ति (पच्यते) परिपक्वो भवति (यवः) मिश्रामिश्रव्यवहारः (न) इव (ते) तव (वायो) वायुवद्बलयुक्त (उप) (दस्यन्ति) क्षयन्ति (धेनवः) (न) निषेधे (अप) (दस्यन्ति) (धेनवः) वाण्यः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे वायो विद्वन् यावध्यापकोपदेशकावत्राऽह तद्वहेथे अश्वत्थं पक्षिण इव जायवो यं त्वामुपतिष्ठन्त मध्व आहुतिं चोपतिष्ठन्त तेऽस्मे जायवः सन्तु । एवं समाचरतस्ते गावः साकं सुवते यवः साकं पच्यते धेनवो नापदस्यन्ति धेनवो नोपदस्यन्ति॥८॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यदि सर्वैर्मनुष्यैः श्रेष्ठमनुष्याणां संगस्थकामना परस्परस्मिन्प्रीतिः क्रियेत तर्हि तेषां विद्याबलह्रासो भेदबुद्धिश्च नोपजायेत ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के समान विद्वान् जो पढ़ाने और उपदेश करने वाले (अत्राह) यहीं निश्चय से (तत्) उस विषय को (वहेथे) प्राप्त कराते वा (अश्वत्थम्) जैसे पीपलवृक्ष को पखेरू वैसे (जायवः) जीतने हारे (यम्) जिन आप के (उपतिष्ठन्त) समीपस्थित हों और (मध्वः) मधुर विज्ञान के (आहुतिम्) सब प्रकार ग्रहण करने को उपस्थित हों (ते) वे (अस्मे) हम लोगों के बीच (जायवः) जीतने हारे शूर (सन्तु) हों

ऐसे अच्छे प्रकार आचरण करते हुए (ते) आप की (गावः) गौयें (साकम्) साथ (सुवते) वियाती (यवः) मिला वा पृथक् २ व्यवहार साथ (पच्यते) सिद्ध होता तथा (धेनवः) गौयें जैसे (अप, दस्यन्ति) नष्ट नहीं होतीं (न) वैसे (धेनवः) वाणी (न, उप, दस्यन्ति) नहीं नष्ट होतीं ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो सब मनुष्यों से श्रेष्ठ मनुष्यों के संग की कामना और आपस में प्रीति किई जाय तो उन की विद्या बल की हानि और भेद बुद्धि न उत्पन्न हो ॥ ८ ॥

पुना राज्ञा युद्धाय के प्रेषणीया इत्याह ॥

फिर राजा को युद्ध के लिये कौन पठाने योग्य हैं इस वि० ॥

इमे ये ते सुवायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः । धन्वन् चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः । सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥ २५ ॥

इमे । ये । ते । सु । वायो इति । बाहुऽओजसः । अन्तः । नदी इति । ते । पतयन्ति । उक्षणः । महि । व्राधन्त । उक्षणः । धन्वन् । चित् । ये । अनाशवः । जीराः । चित् । अगिराऽओकसः । सूर्यस्य इव । रश्मयः । दुःऽनियन्तवः । हस्तयोः । दुःऽनियन्तवः ॥ ९ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(इमे) (ये) (ते) तव (सु) (वायो) विद्वन् (बाह्वोजसः) भुजबलस्य (अन्तः) मध्ये (नदी) नदीइव

वर्त्तमानौ (ते) तव (पतयन्ति) पतिरिवाचरन्ति (उक्षणः) सेचनसमर्थान् (महि) महतः (व्राधन्तः) वर्धमानाः । अत्र पृषोदरादिना पूर्वस्याऽऽकारादेशो व्यत्ययेन परस्मैपदं च (उक्षणः) बलप्रदान् (धन्वन्) धन्वन्यन्तरिक्षे (चित्) (ये) (अनाशवः) अव्याप्ताः (जीराः) वेगवन्तः (चित्)(अगिरौकसः) अविद्यमानया गिरा सहौको गृहं येषां ते । अत्र तृतीयाया अलुक् (सूर्यस्येव) यथा सवितुः (रश्मयः) किरणाः (दुर्नियन्तवः) दुःखेन नियन्तुं निग्रहीतुं योग्याः (हस्तयोः) भुजयोः (दुर्नियन्तवः) ॥९॥

अन्वयः—हे वायो य इमे ते तव सहायेन बाह्वोजसोऽन्तः सुपतयन्ति तानुक्षणः संपादय य इमे ते तवोपदेशेन महि व्राधन्तः सुपतयन्ति तानुक्षणः कुरु । ये धन्वन्नदी चिदिवानाशवो जीरा अगिरौकसो दुर्नियन्तवो रश्मयः सूर्यस्येव चिद्धस्तयोः प्रतापेन शत्रुभिर्दुर्नियन्तवः सुपतयन्ति तान् सततं सत्कुरु ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—राजपुरुषैर्बाहुबलयुक्ताः शत्रुभिरधृष्यमाणा वीराः पुरुषाः सेनायां सदैव रक्षणीया येन राजप्रतापः सदा वर्द्धेतेति ॥ ९ ॥

अत्र मनुष्याणां परस्परवर्त्तमानोक्तत्वादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति पंचत्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं पंचविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (वायो) विद्वन् (ये) जो (इमे) ये योद्धा लोग (ते) आप के सहाय से (बाह्वोजसः) भुजाओं के बल के (अन्तः) बीच (सु, पतयन्ति) पालने वाले के समान आचरण करते उन को (उक्षणः) सींचने में समर्थ कीजिये (ये) जो (ते) आप के उपदेश से (महि) बहुत (व्राधन्तः) बढ़ते हुए अच्छे प्रकार पालने वाले के समान आचरण करते हैं उन को (उक्षणः) बल देने वाले कीजिये जो (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (नदी) नदी के (चित्) समान वर्त्तमान (अनाशवः) किसी में व्याप्त नहीं (जीराः) वेगवान् (अगिरौकसः) जिन का अविद्यमान वाणी के साथ ठहरने का स्थान (दुर्नियन्तवः) जो दुःख से ग्रहण करने के योग्य वे (रश्मयः) किरण जैसे (सूर्यस्येव) सूर्य को वैसे (चित्) और (हस्तयोः) अपनी भुजाओं के प्रताप से शत्रुओं ने (दुर्नियन्तवः) दुःख से ग्रहण करने योग्य अच्छी पालना करने वाले के समान आचरण करें उन वीरों का निरन्तर सत्कार करो ॥९॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—राजपुरुषों को चाहिये कि बहुबल युक्त शत्रुओं से न डरने वाले वीर पुरुषों को सेना में सदैव रक्खें जिस से राज्य का प्रताप सदा बढ़े ॥ ९ ॥

इस सूक्त में मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव कहने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पैंतीस १३५ का सूक्त और पच्चीशवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ प्रस्वित्यस्य सप्तर्चस्य षट्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । षष्ठसप्तमयोर्मन्त्रोक्ता देवताः । १ । ३ । ५ । ६ । स्वराडत्यष्टिः । गान्धारः स्वरः । २ निचृदष्टिश्छन्दः । ४ । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ७ । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ के केभ्यः किं गृहीत्वा कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

अब सात ऋचा वाले एक सौ छत्तीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में कौन किन से कया लेकर कैसे हों इस वि० ॥

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् । ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता । अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

प्र । सु । ज्येष्ठम् । निऽचिराभ्याम् । बृहत् । नमः । हव्यम् । मतिम् । भरत । मृळयत्ऽभ्याम् । स्वादिष्ठम् । मृळयत्ऽभ्याम् । ता । सम्ऽराजा । घृतऽआसुती । यज्ञेऽयज्ञे । उपऽस्तुता । अथ । एनोः । क्षत्रम् । न । कुतः । चन । आऽधृषे । देवऽत्वम् । नु । चित् । आऽधृषे ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्र) प्रकर्षे (सु) शोभने (ज्येष्ठम्) अतिशयेन प्रशस्यम् (निचिराभ्याम्) नितरां सनातनाभ्याम् (बृहत्) महत्

(नमः) अन्नम् (हव्यम्) ग्रहीतुं योग्यम् (मतिम्) प्रज्ञाम् (भरत) स्वीकुरुत (मृळयद्भ्याम्) सुखयद्भ्याम् (स्वादिष्ठम्) अतिशयेन स्वादु (मृळयद्भ्याम्) सुखकारकाभ्यां मातापितृभ्यां सह (ता) तौ (सम्राजा) सम्यग्राजेते (घृतासुती) घृतेनासुतिः सवनं ययोस्तौ (यज्ञेयज्ञे) प्रतियज्ञम् (उपस्तुता) उपगतैर्गुणैः प्रशंसितौ (अथ) अनन्तरम् (एनोः) एनयोः। अत्र छान्दसो वर्ण लोप इत्यकारलोपः (क्षत्रम्) राज्यम् (न) निषेधे (कुतः) कस्मादपि (चन) (आधृषे) आधर्षितुम् (देवत्वम्) विदुषां भावम् (नु) शीघ्रम् (चित्) अपि (आधृषे) आधर्षितुम्॥१॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं मृळयद्भ्यामिव निचिराभ्यां मृळयद्भ्यां सह ज्येष्ठं स्वादिष्ठ हव्यं बृहन्नमो मतिं च नु प्रसुभरत यज्ञेयज्ञ उपस्तुता घृतासुती सम्राजा ता प्रसुभरत । अथैनोः क्षत्रमाधृषे चिदपि देवत्वमाधृषे कुतश्चन न क्षीयेत ॥ १ ॥

भावार्थः—ये बहुकालात्प्रवृत्तानामध्यापकोपदेशकानां सकाशाद्विद्यां सुशिक्षाश्च सद्यो गृह्णन्ति ते चक्रवर्त्तिराजानो भवितुमर्हन्ति नात्रैषामैश्वर्यं कदाचित्क्षीयते ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (मृडयद्भ्याम्) सुख देते हुओं के समान (निचिराभ्याम्) निरन्तर सनातन (मृडयद्भ्याम्) सुख करने वाले अध्यापक उपदेशक के साथ (ज्येष्ठम्) अतीव प्रशंसा करने योग्य (स्वादिष्ठम्) अत्यन्त स्वादु (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (बृहत्) बहुतसा (नमः) अन्न और (मतिम्) बुद्धि को (नु) शीघ्र (प्र, सु, भरत) अच्छे प्रकार सुन्दरता से स्वीकार करो और (यज्ञे यज्ञे) प्रत्येक यज्ञ में (उपस्तुता) प्राप्त हुए

गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (घृतासुती) जिन का घी के साथ पदार्थों का सार निकालना (सम्राजा) जो अच्छी प्रकार प्रकाशमान (ता) उन उक्त महाशयों को भली भांति ग्रहण करो (अथ) इस के अनन्तर (एनोः) इन दोनों का (क्षत्रम्) राज्य (आधृषे) ढिठाई देने को (चित्) और (देवत्वम्) विद्वान् पन (आधृषे) ढिठाई देने को (कुतश्चन) कहीं से (न) न नष्ट हो ॥१॥

भावार्थः—जो बहुत काल से प्रवृत्त पढ़ाने और उपदेश करने वालों के समीप से विद्या और अच्छे उपदेशों को शीघ्र ग्रहण करते वे चक्रवर्त्ति राजा होने को योग्य होते हैं और न इनका ऐश्वर्य्य कभी नष्ट होता है ॥ १ ॥

पुनर्मनुष्याः किं प्राप्य कीदृशा भवन्तीत्याह ॥

फिर मनुष्य क्या पाकर कैसे होते हैं इस वि० ॥

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः । द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च । अथा दधाते बृहदुक्थ्यं१ वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥

अदर्शि । गातुः । उरवे । वरीयसी । पन्थाः । ऋतस्य । सम् । अयंस्त । रश्मिऽभिः । चक्षुः । भगस्य । रश्मिऽभिः । द्युक्षम् । मित्रस्य । सदनम् । अर्य्यम्णः । वरुणस्य । च । अथ । दधाते इति । बृहत् । उक्थ्यम् । वयः । उपऽस्तुत्यम् । बृहत् । वयः ॥ २ ॥

पदार्थः—(अदर्शि) (गातुः) भूमिः (उरवे) विस्तृताय (वरीयसी) अतिशयेन वरा (पन्थाः) मार्गः (ऋतस्य)

जलस्य (सम्) (अयंस्त) उपयच्छति (रश्मिभिः) किरणैः (चक्षुः) नेत्रम् (भगस्य) सूर्यस्येव धनस्य भगइति धनना० निघं० २ । १० । (रश्मिभिः) किरणैः (द्युक्षम्) द्युलोकस्थम् (मित्रस्य) सुहृदः (सादनम्) सीदन्ति यस्मिँस्तत् । अत्राऽन्येषामपि दृश्यतइति दीर्घः (अर्यम्णः) न्यायाधीशस्य (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (च) (अथ) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (दधाते) (बृहत्) महत् (उक्थ्यम्) वक्तुं योग्यम् (वयः) पक्षिणः (उपस्तुत्यम्) (बृहत्) (वयः) कमितारः ॥ २ ॥

अन्वयः—येनोरवे वरीयसी गातुरदर्शि यत्र सूर्य्यस्य रश्मिभिरिव रश्मिभिस्सह चक्षुर्ऋतस्य भगस्य पन्थाः समयंस्त मित्रस्यार्य्यम्णो वरुणस्य द्युक्षं सादनं समयंस्ताथ वयो बृहदिव ये वय उपस्तुत्यं बृहदुक्थ्यं दधति यौ दधाते ते सुखं प्राप्नुवन्ति ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यप्रकाशेन पृथिव्यां मार्गा दृश्यन्ते तथैवोत्तमानां विदुषां संगेन सत्या विद्याः प्रकाश्यन्ते यथा पक्षिण उत्तममाश्रयं प्राप्यानन्दन्ति तथा सद्विद्याः प्राप्य जनाः सदा सुखयन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—जिस से (उरवे) बहुत बड़े के लिये (वरीयसी) अतीवश्रेष्ठ (गातुः) भूमि (अदर्शि) दीखती वा जहां सूर्य के (रश्मिभिः) किरणों के समान (रश्मिभिः) किरणों के साथ (चक्षुः) नेत्र (ऋतस्य) जल और (भगस्य) सूर्य के समान धन का (पन्थाः) मार्ग (समयंस्त) मिलता वा (मित्रस्य) मित्र (अर्यम्णः) न्यायाधीश और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष का (द्युक्षम्) प्रकाश लोकस्थ(सादनम्) जिस में स्थिर होते वह घर प्राप्त होता

(अथ) अथवा जैसे (वयः) बहुत पखेरू (बृहत्) एक बड़े काम को वैसे जो (वयः) मनोहर जन (उपस्तुत्यम्) समीप में प्रशंसनीय (बृहत्) बड़े (उक्थ्यम्) और कहने योग्य काम को धारण करते (च) और जो दो मिल कर किसी काम को (दधाते) धारण करते वे सब सुख पाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य के प्रकाश से भूमि पर मार्ग दीखते हैं वैसे ही उत्तम विद्वानों के संग से सत्य विद्याओं का प्रकाश होता है वा जैसे पखेरू उत्तम आश्रय स्थान पा कर आनन्द पाते हैं वैसे उत्तम विद्याओं को पा कर मनुष्य सब कभी सुख पाते हैं ॥ २ ॥

पुनर्विद्वद्भिः किंवत्किं प्राप्तव्यमित्याह ॥

फिर विद्वानों को किस के समान क्या पाना चाहिये इस वि० ॥

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे । ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती । मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

ज्योतिष्मतीम् । अदितिम् । धारयत्ऽक्षितिम् । स्वःऽवतीम् । आ । सचेते इति । दिवेदिवे । जागृऽवांसा । दिवेदिवे । ज्योतिष्मत् । क्षत्रम् । आशाते इति । आदित्या । दानुनः । पती इति । मित्रः । तयोः । वरुणः । यातयत्ऽजनः । अर्यमा । यातयत्ऽजनः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(ज्योतिष्मतीम्) बहुतेजोयुक्ताम् (अदितिम्) दिवम् (धारयत्क्षितिम्) भूमिं धरन्तीम् (स्वर्वतीम्) बहुसुखकारिकाम्

(आ) (सचेते) समवेतः (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (जागृवांसा) जागृतौ (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (ज्योतिष्मत्) बहुन्याययुक्तम् (क्षत्रम्) राज्यम् (आशाते) प्राप्नुतः (आदित्या) सूर्यप्राणौ (दानुनः) दानस्य (पती) पालयितारौ (मित्रः) सर्वप्राणः (तयोः) (वरुणः) वरः (यातयज्जनः) यातयन्तः प्रयत्नकारयितारो जना यस्य सः (अर्यमा) न्यायेशः (यातयज्जनः) पुरुषार्थवत्पुरुषः ॥ ३ ॥

अन्वयः—यथाऽऽदित्या दिवेदिवे स्ववर्त्तीं धारयत्क्षितिं ज्योतिष्मतीमदितिमासचेते तथा यातयज्जनोऽर्यमा वरुणो यातयज्जनो मित्रश्च दानुनस्पती जागृवांसा सभासेनेशौ दिवेदिवे ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते तयोः प्रभावेण सर्वाः प्रजाः सेनाश्चाऽत्यन्तं सुखं प्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये सूर्यप्राणवद्योगिवच्च सचेतना भूत्वा विद्याविनयधर्मैः सेनाः प्रजाश्च रञ्जयन्ति तेऽत्यन्तं यशः प्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—जैसे (आदित्या) सूर्य और प्राण (दिवेदिवे) प्रतिदिन (स्ववर्तीम्) बहुत सुख करने वाले (धारयत्क्षितिम्) और भूमि को धारण करते हुए (ज्योतिष्मतीम्) प्रकाशवान् (अदितिम्) द्युलोक का (आसचेते) सब ओर से संबंध करते हैं वैसे (यातयज्जनः) जिस के अच्छे प्रयत्न कराने वाले मनुष्य हैं वह (अर्यमा) न्यायाधीश (वरुणः) श्रेष्ठ प्राण तथा (यातयज्जनः) पुरुषार्थवान् पुरुष (मित्रः) सब का प्राण और (दानुनः) दान की (पती) पालना करने वाले (जागृवांसा) सब काम में जगे हुए सभा सेनाधीश

(दिवेदिवे) प्रतिदिन (ज्योतिष्मत्) बहुत न्याय युक्त (क्षत्रम्) राज्य को (आशाते) प्राप्त होते (तयोः) उन के प्रभाव से समस्त प्रजा और सेना जन अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो सूर्य प्राण और योगीजन के समान सचेत हो कर विद्या विनय और धर्म से सेना और प्रजाजनों को प्रसन्न करते हैं वे अत्यन्त यश पाते हैं ॥ ३ ॥

पुनरत्र मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर इस संसार में मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः । तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः । तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

अयम् । मित्राय । वरुणाय । शंऽतमः । सोमः । भूतु । अवऽपानेषु । आऽभगः । देवः । देवेषु । आऽभगः । तम् । देवासः । जुषेरत । विश्वे । अद्य । सऽजोषसः । तथा । राजाना । करथः । यत् । ईमहे । ऋतऽवाना । यत् । ईमहे ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अयम्) (मित्राय) सर्वसुहृदे (वरुणाय) सर्वोत्कृष्टाय (शंतमः) अतिशयेन सुखकारी (सोमः) सुखैश्वर्यकारको न्यायः (भूतु) भवतु । अत्र शपो लुक् भूसुवोस्तिङीति गुणप्रतिषेधः (अवपानेषु) अत्यन्तेषु रक्षणेषु (आभगः) समस्तैश्वर्यः (देवः) सुखप्रदाता (देवेषु) दिव्येषु विद्वत्सु गुणेषु

वा (आभगः) समस्तसौभाग्यः (तम्) (देवासः) विद्वांसः (जुषेरत) सेवेरन्प्रीणन्तु वा । अत्र बहुलं छन्दसीति रुडागमः (विश्वे) सर्वे (अद्य) (सजोषसः) समानं धर्मं सेवमानाः (तथा) (राजाना) प्रकाशमानौ सभासेनेशौ (करथः) कुर्य्याताम् (यत्) यम् (ईमहे) याचामहे (ऋतावाना) ऋतस्य सत्यस्य सम्बन्धिनौ । अत्रान्येषामपि दृश्यतइति दीर्घः (यत्) यम् (ईमहे) ॥ ४ ॥

अन्वयः—यथाऽयमवपानेषु मित्राय वरुणायाभगः शंतमः सोमो भूतु तथा यो देवो देवेष्वाभगो भवतु तमद्य सजोषसो विश्वे देवासो जुषेरत यथा यद्यं राजाना करथस्तथा तं वयमीमहे यथा ऋतावाना यद्यं करथस्तथा तं वयमीमहे ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—इह संसारे यथाऽऽप्ता धर्म्येण व्यवहारेणैश्वर्यमुन्नीय सर्वेषामुपकारके कर्मणि व्ययन्ति यथा सत्यं जिज्ञासवो धार्मिकान् विदुषो याचते तथा सर्वे मनुष्याः स्वमैश्वर्यं सत्कर्मणि व्ययेयुः । विद्वद्भ्यो विद्याश्च याचेरन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—जैसे (अयम्) यह (अवपानेषु) अत्यन्त रक्षा आदि व्यवहारों में (मित्राय) सब के मित्र और (वरुणाय) सब से उत्तम के लिये (आभगः) समस्त ऐश्वर्य (शन्तमः) अतीव सुख (सोमः) और सुखयुक्त ऐश्वर्य्य करने वाला न्याय (भूतु) हो वैसे जो (देवः) सुख अच्छे प्रकार देने वाला (देवेषु) दिव्य विद्वानों और दिव्यगुणों में (आभगः) समस्त सौभाग्य हो (तम्) उस को (अद्य) आज (सजोषसः) समान धर्म का सेवन करने वाले (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् जन (जुषेरत) सेवन करें वा उस से प्रीति करें

और जैसे (यत्) जिस व्यवहार को (राजाना) प्रकाशमान सभा सेनापति (करथः) करें (तथा) वैसे उस व्यवहार को हम लोग (ईमहे) मांगते और जैसे (ऋतावाना) सत्य का सम्बन्ध करने वाले (यत्) जिस काम को करें वैसे उस को हम लोग भी (ईमहे) याचें मागें ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—इस संसार में जैसे शास्त्र वेत्ता विद्वान् धर्म के अनुकूल व्यवहार ऐश्वर्य्य की उन्नति कर सब के उपकार करने हारे काम में खर्च करते वा जैसे सत्य व्यवहार को जानने की इच्छा करने वाले धार्मिक विद्वानों को याचते अर्थात् उन से अपने प्रिय पदार्थ को मांगते वैसे सब मनुष्य अपने ऐश्वर्य को अच्छे काम में खरच करें और विद्वान् महाशयों से विद्याओं की याचना करें ॥ ४ ॥

पुनर्विद्वांसः कस्मै किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् किस के लिये क्या करें इस वि० ॥

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः । तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् । उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥

यः । मित्राय । वरुणाय । अविधत् । जनः । अनर्वाणम् । तम् । परि । पातः । अंहसः । दाश्वांसम् । मर्तम् । अंहसः । तम् । अर्यमा । अभि । रक्षति । ऋजुऽयन्तम् । अनु । व्रतम् । उक्थैः । यः । एनोः । परिऽभूषति । व्रतम् । स्तोमैः । आऽभूषति । व्रतम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(यः) (मित्राय) सर्वोपकारकाय (वरुणाय) सर्वोत्तमस्वभावाय (अविधत्) परिचरेत् (जनः) यशसा प्रादुर्भूतः

(अनर्वाणम्) द्वेषादिदोषरहितम् (तम्) (परि) सर्वतः (पातः) रक्षतः (अंहसः) दुष्टाचारात् (दाश्वांसम्) विद्यादातारम् (मर्त्तम्) मनुष्यम् (अंहसः) पापात् (तम्) (अर्यमा) न्यायकारी (अभि) (रक्षति) (ऋजूयन्तम्) आत्मन ऋजुभावमिच्छन्तम् (अनु) (व्रतम्) सत्याचारशीलम् (उक्थैः) वक्तुमर्हैरुपदेशैः (यः) (एनोः) एनयोः (परिभूषति) सर्वतोऽलंकरोति(व्रतम्) सुशीलम् (स्तोमैः) स्तोतुमर्हैः (आभूषति) समन्तादाप्नोति (व्रतम्) सुशीलताम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे सभासेनेशौ यो जनो मित्राय वरुणाय युवाभ्यामविधत् तमनर्वाणं मर्त्तमंहसो युवां परिपातस्तं दाश्वांसं मर्त्तमंहसः परि पातः योऽर्यमा व्रतमृजूयन्तमभिरक्षति तं युवामनुरक्षथो यएनोरुक्थैर्व्रतं परिभूषति स्तोमैर्व्रतमाभूषति तं सर्वे विद्वांसः सततमारक्षन्तु ॥ ५ ॥

भावार्थः—विद्वांसो ये धर्माऽधर्मौ विविदिषेयुर्धर्मस्य ग्रहणमधर्मस्य त्यागं च चिकीर्षेयुस्तानध्याप्योपदिश्य विद्याधर्मादिशुभगुणकर्मस्वभावैः सर्वतआभूषयेयुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे सभासेनाधीशो (यः) जो (जनः) यश से प्रसिद्ध हुआ (मित्राय) सर्वोपकार करने (वरुणाय) और सब से उत्तम स्वभाव वाले मनुष्य के लिये तुम दोनों से (अविधत्) सेवा करे (तम्) उस (अनर्वाणम्) वैर आदि दोषों से रहित (मर्त्तम्) मनुष्य को (अंहसः) दुष्ट आचरण से तुम दोनों (परिपातः) सब ओर से बचाओ तथा (तम्) उस (दाश्वांसम्) विद्या देने वाले मनुष्य को (अंहसः) पाप से बचाओ

(यः) जो (अर्यमा) न्याय करने वाला सज्जन (व्रतम्) सत्य आचरण करने और (ऋजूयन्तम्) अपने को कोमलपन चांहते हुए मनुष्य की (अभिरक्षति)सब ओर से रक्षा करता उस की तुम दोनो (अनु) पीछे रक्षा करो जो (एनोः) इन दोनों के (उक्थैः) कहने योग्य उपदेशों से (व्रतम्) सुन्दर शील को (परिभूषति) सब ओर से सुशोभित करता वा (स्तोमैः) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों से (व्रतम्) सुन्दर शील को (आभूषति) अच्छे प्रकार शोभित करता उस को सब विद्वान् निरन्तर पालें ॥ ५ ॥

भावार्थः—विद्वान् जन जो लोग धर्म और अधर्म को जाना चाहें तथा धर्म का ग्रहण और अधर्म का त्याग करना चाहें उन को पढ़ा और उपदेश कर विद्या और धर्म आदि शुभ गुण कर्म और स्वभाव से सब ओर से सुशोभित करें ॥ ५ ॥

पुनर्मनुष्यैः किंवत्किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्यों को किस के समान क्या करना चाहिये इस वि० ॥

नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते रोद॑सीभ्यां मि॒त्राय॑ वोचं॒ वरु॑णाय मी॒ळ्हुषे॑ सुमृ॒ळीकाय॑ मी॒ळ्हुषे॑ । इन्द्र॑म॒ग्निमुप॑ स्तुहि द्यु॒क्षम॑र्य॒मणं॒ भग॑म् । ज्योग्जीव॑न्तः प्र॒जया॑ सचेमहि॒ सोम॑स्यो॒ती स॑चेमहि ॥ ६ ॥

नम॑ः । दि॒वे । बृ॒ह॒ते । रोद॑सीभ्याम् । मि॒त्राय॑ । वो॒च॒म् । वरु॑णाय । मी॒ळ्हुषे॑ । सु॒ऽमृ॒ळीका॑य । मी॒ळ्हुषे॑ । इन्द्र॑म् । अ॒ग्निम् । उप॑ । स्तु॒हि॒ । द्यु॒क्षम् । अ॒र्य॒मण॑म् । भग॑म् । ज्योक् । जीव॑न्तः । प्र॒ऽजया॑ । स॒चे॒म॒हि॒ । सोम॑स्य । ऊ॒ती । स॒चे॒म॒हि॒ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(नमः) सत्करणम् (दिवे) द्योतकाय (बृहते) महते (रोदसीभ्याम्) द्यावापृथिवीभ्याम् (मित्राय) सर्वसुहृदे (वोचम्) उच्याम् । अत्राडभावः (वरुणाय) वराय (मीढुषे) शुभगुणसेचकाय (सुमृळीकाय) सुखकारकाय (मीढुषे) सुखप्रदाय (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (अग्निम्) पावकवद्वर्त्तमानम् (उप) (स्तुहि) प्रशंस (द्युक्षम्) द्योतमानम् (अर्यमणम्) न्यायाधीशम् (भगम्) धर्मं सेवमानम् (ज्योक्) निरन्तरम् (जीवन्तः) प्राणान्धरन्तः (प्रजया) सुसन्तानाद्यया सह (सचेमहि) समवयेम (सोमस्य) ऐश्वर्यस्य (ऊती) ऊत्या रक्षणाद्यया क्रियया साकम् (सचेमहि) व्याप्नुयाम ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्यथाऽहं बृहते दिवे रोदसीभ्यां मित्राय वरुणाय मीढुषे सुमृळीकाय मीढुषे नमो वोचं तथा त्वं वदेथाः । यथाऽहमिन्द्रमग्निं द्युक्षमर्य्यमणं भगं वोचं तथात्वमुपस्तुहि । यथा जीवन्तो वयं प्रजया सह ज्योक् सचेमहि सोमस्योती सह सचेमहि तथा त्वमपि सचस्व ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकाराः—मनुष्यैर्विदुषामनुकरणं कृत्वा पदार्थविद्यायै प्रवर्त्य प्रजैश्वर्यं प्राप्य सततं मोदितव्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे मैं (बृहते) बहुत (दिवे) प्रकाश करने वाले के लिये वा (रोदसीभ्याम्) प्रकाश और पृथिवी से (मित्राय) सब के मित्र (वरुणाय) श्रेष्ठ (मीढुषे) शुभ गुणों से सींचने (सुमृळीकाय) सुख करने और (मीढुषे) अच्छे प्रकार सुख देने वाले जन के लिये (नमः) सत्कार

वचन (वोचम्) कहूं वैसे आप कहो । वा जैसे मैं (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान(युक्तम्) प्रकाश युक्त (अर्यमणम्) न्यायाधीश और (भगम्) धर्म सेवने वाले को कहूं वैसे आप (उप, स्तुहि) उस के समीप प्रशंसा करो वा जैसे (जीवन्तः) प्राण धारण किये जीवते हुए हम लोग (प्रजया) अच्छे सन्मान आदि सहित प्रजा के साथ (ज्योक्) निरन्तर (सचेमहि) संबद्ध हों और (सोमस्य) ऐश्वर्य्य की (ऊती) रक्षा आदि क्रिया के साथ (सचेमहि) संबद्ध हों वैसे आप भी संबद्ध होओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में अनेक वाचकलुप्तोपमालं०—मनुष्यों को विद्वानों के समान चाल चलन कर पदार्थविद्या के लिये प्रवृत्त हों तथा प्रजा और ऐश्वर्य को पा कर निरन्तर आनन्द युक्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

पुनर्विद्वांसोऽत्र जगति किंवद्वर्त्तेरन्नित्याह ॥

फिर विद्वान् जन इस संसार में किस के समान वर्त्तें इस वि० ॥

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः । अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥ २६ । १॥

ऊती । देवानाम् । वयम् । इन्द्रऽवन्तः । मंसीमहि । स्वऽयशसः । मरुत्ऽभिः । अग्निः । मित्रः । वरुणः । शर्म । यंसन् । तत् । अश्याम । मघऽवानः । वयम् । च॥७॥२६।१॥

पदार्थः—(ऊती) रक्षणाद्यया क्रियया । अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णः (देवानाम्) सत्यं कामयमानानां विदुषाम् (वयम्) (इन्द्रवन्तः) बह्वैश्वर्ययुक्ताः (मंसीमहि) जानीयाम (स्वयशसः) स्वकीयं यशो येषान्ते (मरुद्भिः) प्राणैरिव वर्त्तमानैः श्रेष्ठैर्जनैः सह

(अग्निः) विद्युदादिस्वरूपः (मित्रः) सूर्यः (वरुणः) चन्द्रः (शर्म्म) सुखम् (यंसन्) प्रयच्छन्ति । अत्र वाच्छन्दसीत्युसभावः। लुङ्यडभावश्च (तत्) (अश्याम) भुंजीमहि (मघवानः) परमपूजितैश्वर्ययुक्ताः (वयम्) (च) ॥ ७ ॥

अन्वयः—यथा मरुद्भिः सहाग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसँस्तथा तदिन्द्रवन्तः स्वयशसो वयं देवानामूती मंसीमहि । अनेन च वयं मघवानो भद्रमश्याम ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽत्र जगति पृथिव्यादयः पदार्थाः सुखैश्वर्यकारकाः सन्ति तथैव विदुषां शिक्षासंगाः सन्त्येतैर्वयं सुखैश्वर्या भूत्वा सततं मोदेमहीति ॥ ७ ॥

अत्र वाय्विन्द्रादिपदार्थदृष्टान्तैर्मनुष्येभ्यो विद्याशिक्षावर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

अस्मिन्नध्याये क्रोधादिनिवारणाऽन्नादिरक्षणादयः परमैश्वर्यप्राप्त्यन्ताश्चार्था उक्ता अतएतदध्यायोक्तार्थानां पूर्वाऽध्यायोक्तार्थैः सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इत्यृग्वेदे द्वितीयाऽष्टके प्रथमोऽध्यायः षड्विंशो वर्गः प्रथमे मण्डले षट्त्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं च समाप्तम् ॥

पदार्थः—जैसे (मरुद्भिः) प्राणों के समान श्रेष्ठ जनों के साथ (अग्निः) बिजुली आदि रूप वाला अग्नि (मित्रः) सूर्य (वरुणः) चन्द्रमा (शर्म) सुख को(यंसन्) देते हैं वैसे (तत्) उस सुख को (इन्द्रवन्तः) बहुत ऐश्वर्य

युक्त (स्वयशसः) जिन के अपना यश विद्यमान वे (वयम्) हम लोग (देवानाम्) सत्य की कामना करने वाले विद्वानों की (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (मंसीमहि) जानें (च) और इस से (वयम्) हमलोग (मघवानः) परम ऐश्वर्य युक्त हुए कल्याण को (अश्याम) भोगें॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे इस संसार में पृथिवी आदि पदार्थ सुख और ऐश्वर्य करने वाले हैं वैसे ही विद्वानों की शिखावट और उन के संग हैं इन से हमलोग सुख और ऐश्वर्य वाले हो कर निरन्तर आनन्द युक्त हों ॥ ७ ॥

इस सूक्त में वायु और इन्द्र आदि पदार्थों के दृष्टान्तों से मनुष्यों के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

इस अध्याय में क्रोध आदि का निवारण अन्न आदि की रक्षा और परम ऐश्वर्य की प्राप्ति पर्यन्त अर्थ कहे हैं इस से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पिछिले अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह ऋग्वेद में दूसरे अष्टक में पहिला अध्याय और छब्बीशवां वर्ग तथा प्रथम मंडल में एकसौ छत्तीशवां सूक्त पूरा हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

ओ३म्

अथ द्वितीयाष्टके द्वितीयाध्यायारम्भः ॥

विश्वानिदेवसवितर्दुरितानिपरासुव। यद्भद्रंतन्नआसुव॥१॥

सुषुमेत्यस्य त्रिऋचस्य सप्तत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेपऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। १ निचृच्छक्वरी-छन्दः। २ विराट्शक्वरी छन्दः। गान्धारः स्वरः ३ भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पंचमः स्वरः॥

अथमनुष्याः किंवदत्र वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब दूसरे अष्टक में प्रथम अध्याय का आरम्भ और तीन ऋचा वाले एकसौ सैंतीश वें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में मनुष्य इस संसार में किस के समान वर्तें इस वि० ॥

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे। आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नइमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ १ ॥

सुसुम। आ। यातम्। अद्रिऽभिः। गोऽश्रीताः। मत्सराः। इमे। सोमासः। मत्सराः। इमे। आ। राजाना। दिविऽस्पृशा। अस्मऽत्रा। गन्तम्। उप। नः। इमे। वाम्। मित्रावरुणा। गोऽआशिरः। सोमाः। शुक्राः। गोऽआशिरः॥ १ ॥

पदार्थः—(सुषुम) निष्पादयेम । (आ) (यातम्) समन्तात् प्राप्नुतम् (अद्रिभिः) मेघैः । अद्रिभिरिति मेघना० निघं० । १ । १० । (गोश्रीताः) गाः किरणान् श्रीताः प्राप्ताः (मत्सराः) आनन्दप्रापकाः (इमे) (सोमासः) सोमाद्योषधिसमूहाः (मत्सराः) आनन्दयुक्ताः (इमे) (आ) (राजाना) प्रकाशमानौ (दिविस्पृशा) यौ दिवि शुद्धे व्यवहारे स्पृशतस्तौ (अस्मत्रा) अस्मासु मध्ये (गन्तम्) प्राप्नुतम् (उप) (नः) अस्मान् (इमे) (वाम्) युवाम् (मित्रावरुणा) प्राणोदानाविव वर्त्तमानौ (गवाशिरः) ये गोभिरिन्द्रियैर्वाऽश्यन्ते (सोमाः) ऐश्वर्ययुक्ताः पदार्थाः (शुक्राः) शुद्धाः (गवाशिरः) ये गोभिः किरणैरश्यन्ते ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा दिविस्पृशा राजाना यइमेऽद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा वयं सुषुम तान्वां युवामायातम् । य इमे मत्सराः सोमासः सन्ति तानस्मत्राऽऽयातं य इमे गवाशिरइव शुक्राः सोमा गवाशिरस्तान्नोऽस्मांश्चोपागन्तम् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—अस्मिञ्जगति यथा पृथिव्यादयः पदार्था जीवनहेतवः सन्ति तथा मेघा अतीवप्राणप्रदास्सन्ति यथेमे वर्त्तन्ते तथैव मनुष्या वर्तेरन् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान (दिविस्पृशा) शुद्ध व्यवहार में स्पर्श करने वाले (राजाना) प्रकाशमान सभासेनाधीशो जो (इमे) ये (अद्रिभिः) मेघों से (गोश्रीताः) किरणों को प्राप्त (मत्सराः) आनन्दप्रापक हम लोग (सुषुम) किसी व्यवहार को सिद्ध करें उन को (वाम्)

तुम दोनों (आयातम्) आओ अच्छे प्रकार प्राप्त होओ जो (इमे) ये (मत्सराः) आनन्द पहुंचाने हारी (सोमासः) सोमवल्ली आदि ओषधि हैं उन को (अस्मत्रा) हम लोगों में अच्छी प्रकार पहुंचाओ जो (इमे) ये (गवाशिरः) गौएं वा इन्द्रियों से व्याप्त होते उन के समान (शुक्राः) शुद्ध (सोमाः) ऐश्वर्य्ययुक्त पदार्थ और (गवाशिरः) गौएं वा किरणों से व्याप्त होते उन को और (नः) हम लोगों के (उपागन्तम्) समीप पहुंचो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—इस जगत् में जैसे पृथिवी आदि पदार्थ जीवन के हेतु हैं वैसे मेघ अतीव जीवन देने वाले हैं जैसे ये सब वर्त्त रहे हैं वैसे मनुष्य वर्त्तें ॥ १ ॥

अथौषध्यादिरसपानविषयमाह ॥

अब ओषधि आदि पदार्थों के रस के पीने आदि के वि० ॥

इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः । उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः । सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

इमे । आ । यातम् । इन्दवः । सोमासः । दधिऽआशिरः । सुतासः । दधिऽआशिरः । उत । वाम् । उषसः । बुधि । साकम् । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः । सुतः । मित्राय । वरुणाय । पीतये । चारुः । ऋताय । पीतये ॥ २ ॥

पदार्थः—(इमे) (आ) (यातम्) (इन्दवः) आर्द्रीभूताः (सोमासः) दिव्यौषधिरसाः (दध्याशिरः) ये दध्ना अश्यन्ते ते (सुतासः) संपादिताः (दध्याशिरः) (उत) अपि

(वाम्) युवाभ्याम् (उषसः)(बुधि) बोधे । अत्र संपदादिलक्षणः क्विप् (साकम्) सह (सूर्य्यस्य) (रश्मिभिः) किरणैः (सुतः) अभिनिष्पादितः (मित्राय) सुहृदे (वरुणाय) वराय (पीतये) पानाय (चारुः) सुन्दरः (ऋताय) सत्याचाराय (पीतये) पानाय ॥ २ ॥

अन्वयः—हेऽध्यापकाऽध्येतारौ यश्चारुर्मित्राय पीतये वरुणायर्ताय पीतये चोषसो बुधि सूर्यस्य रश्मिभिः साकं सोमस्सुतस्तं युवामायातम् । वां य इम इन्दवः सोमासो दध्याशिरइव दध्याशिरस्सुतासः सन्ति तानुताप्यायातम् ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैरस्मिन्संसारे यावन्तो रसा ओषधयश्च निर्मातव्यास्तावन्तः सर्वे सौहार्दोत्तमकर्मसेवनायालस्यादिनाशाय च समर्पणीयाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे पढ़ाने वा पढ़ने वाले जो(चारुः)सुन्दर (मित्राय)मित्र के लिये (पीतये) पीने को और (वरुणाय) उत्तम जन के लिये (ऋताय) सत्याचरण और (पीतये)पीने को (उषसः) प्रभात वेला के (बुधि) प्रबोध में सूर्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के (साकम्) साथ ओषधियों का रस (सुतः) सब ओर से सिद्ध किया गया है उस को तुम(आयातम्) प्राप्त होओ तथा (वाम्) तुम्हारे लिये (इमे) ये (इन्दवः) गीले वा टपकते हुए (सोमासः) दिव्य ओषधियों के रस और (दध्याशिरः)जो पदार्थ दही के साथ भोजन किये जाते उन के समान (दध्याशिरः) दही से मिले हुए भोजन (सुतासः) सिद्ध किये गये हैं (उत) उन्हें भी प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि इस संसार में जितने रस वा ओषधियों को सिद्ध करें उन सब को मित्रपन और उत्तम कर्म सेवने को तथा आलस्यादि दोषों के नाश करने को समर्पण करें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः । अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये । अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

ताम् । वाम् । धेनुम् । न । वासरीम् । अंशुम् । दुहन्ति । अद्रिऽभिः । सोमम् । दुहन्ति । अद्रिऽभिः । अस्मऽत्रा । गन्तम् । उप । नः । अर्वाञ्चा । सोमऽपीतये । अयम् । वाम् । मित्रावरुणा । नृऽभिः । सुतः । सोमः । आ । पीतये । सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

पदार्थः—(ताम्) (वाम्) युवयोः (धेनुम्) (न) इव (वासरीम्)निवासयित्रीम् (अंशुम्) विभक्तां सोमवल्लीम् (दुहन्ति) प्रपिपुरति (अद्रिभिः) मेघैः (सोमम्) ऐश्वर्यम् (दुहन्ति) प्रपूरयन्ति (अद्रिभिः) प्रस्तरैः (अस्मत्रा) अस्मासु (गन्तम्) गमयतम् (उप) (नः) अस्माकम् (अर्वाञ्चा) अर्वागञ्चतौ (सोमपीतये) सोमा ओषधिरसाः पीयन्ते यस्मिँस्तस्मै (अयम्) (वाम्) युवाभ्याम् (मित्रावरुणा) प्राणोदानाविव (नृभिः) नायकैः सह (सुतः) संपादितः (सोमः) सोमलतादिरसः (आ) समन्तात् (पतिये) पानाय (सुतः) निष्पादितः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा नोऽर्वाञ्चा सन्तौ युवां वां यां वासरीं धेनुं नेवाऽद्रिभिरंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमपीतये सोमं दुहन्ति तामस्मत्रोपागन्तं योऽयं नृभिः सोमः सुतः स वामापीतये सुतोऽस्ति ॥३॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा दुग्धदा गावः सुखान्यलङ्कुर्वन्ति तथा युक्त्या निर्मितः सोमलतादिरसः सर्वान्रोगान् निहन्ति॥३॥

अत्र सोमगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति सप्तत्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं प्रथमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान सर्वमित्र और सर्वोत्तम सज्जनो (नः) हमारे (अर्वाञ्चा) अभिमुख होते हुए तुम (वाम्) तुम्हारी जिस (वासरीम्) निवास कराने वाली (धेनुम्) धेनु के (न) समान (अद्रिभिः) पत्थरों से (अंशुम्) बढ़ी हुई सोमवल्ली को (दुहन्ति) दुहते जलादि से पूर्ण करते वा (अद्रिभिः) मेघों से (सोमपीतये) उत्तम ओषधि रस जिस में पिये जाते उस के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य को (दुहन्ति) परि पूर्ण करते (ताम्) उस को (अस्मत्रा) हमारे (उपागन्तम्) समीप पहुंचाओ जो (अयम्) यह (नृभिः) मनुष्यों ने (सोमः) सोमवल्ली आदि लताओं का रस (सुतः) सिद्ध किया है वह (वाम्) तुम्हारे लिये (आपीतये) अच्छे प्रकार पीने को (सुतः) सिद्ध किया गया है ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे दूध देने वाली गौयें सुखों को पूरा करती हैं वैसे युक्ति से सिद्ध किया हुआ सोमवल्ली आदि का रस सब रोगों का नाश करता है ॥ ३ ॥

इस सूक्त में सोमलता के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ सैंतीसवां सूक्त और पहिला वर्ग पूरा हुआ ॥

प्रप्रेत्यस्य चतुर्ऋचस्याष्टात्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेपऋषिः। पूषा देवता १।३ । निचृदत्यष्टिः। २ विराडत्यष्टिश्छन्दः । गांधारः स्वरः। ४ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ पुष्टिकर्त्तुः प्रशंसामाह ॥

अब चार ऋचा वाले एक सौ अड़तीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में पुष्टि करने हारे की प्रशंसा वि० ॥

प्रप्र॑ पू॒ष्णस्तु॑विजा॒तस्य॑ शस्यते महि॒त्वम॑स्य त॒वसो॒ न त॑न्दते स्तो॒त्रम॑स्य॒ न त॑न्दते । अर्चा॑मि सु॒म्नय॑न्न॒हम॒न्त्यू॑तिं म॒यो॒भुव॑म् । विश्व॑स्य॒ यो मन॑ आयुयु॒वे म॒खो दे॒व आ॑युयु॒वे म॒खः ॥ १ ॥

प्रऽप्र॑ । पू॒ष्णः । तु॒वि॒ऽजा॒तस्य॑ । श॒स्य॒ते । म॒हि॒ऽत्वम् । अ॒स्य॒ । त॒वसः॑ । न । त॒न्द॒ते । स्तो॒त्रम् । अ॒स्य॒ । न । त॒न्द॒ते । अर्चा॑मि । सु॒म्न॒ऽयन् । अ॒हम् । अ॒न्तिऽऊ॑तिम् । म॒यः॒ऽभुव॑म् । विश्व॑स्य । यः । मनः॑ । आ॒ऽयु॒यु॒वे । म॒खः । दे॒वः । आ॒ऽयु॒यु॒वे । म॒खः ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्रप्र) अतिप्रकृष्टे (पूष्णः) प्रजापोषकस्य (तुविजातस्य) बहुषु प्रसिद्धस्य (शस्यते) (महित्वम्) महिमा (अस्य) (तवसः) बलस्य (न) निषेधे (तन्दते) हिनस्ति

(स्तोत्रम्) (अस्य) (न) (तन्दते) (अर्चामि) (सुम्नयन्) सुखमिच्छन् (अहम्) (अन्त्यूतिम्) अन्ति निकटऊतीरक्षणाद्या क्रिया यस्य तम् (मयोभुवम्) सुखंभावुकम् (विश्वस्य) संसारस्य (यः) (मनः) अन्तःकरणम् (आयुयुवे) समन्ताद्बध्नाति (मखः) प्राप्तविद्यः (देवः) विद्वान् (आयुयुवे)(मखः) यज्ञइव वर्त्तमानः ॥ १ ॥

अन्वयः—यस्याऽस्य तुविजातस्य पूष्णो महित्वं प्रप्र शस्यते यस्याऽस्य तवसः स्तोत्रं न तन्दते विद्यां च न तन्दते यो मखो देवो विश्वस्य मन आयुयुवे यश्च मखः सुखमायुयुवे तमन्त्यूतिं मयोभुवं पूष्णं सुम्नयन्नहमर्चामि ॥ १ ॥

भावार्थः—ये शुभानि कर्माण्याचरन्ति तेऽतिप्रशंसिता भवन्ति ये सुशीलताविनयाभ्यां सर्वेषां चित्तं धर्म्येषु बध्नन्ति तएव सर्वैः सत्कर्त्तव्याः ॥ १ ॥

पदार्थः—जिस (अस्य) इस (तुविजातस्य) बहुतों में प्रसिद्ध (पूष्णः) प्रजाकी रक्षा करने वाले राजपुरुष का (महित्वम्) बड़प्पन (प्रप्र, शस्यते) अतीव प्रशंसित किया जाता वा जिस (अस्य) इस के (तवसः) बल की (स्तोत्रम्) स्तुति (न) (तन्दते) प्रशंसक जन न नष्ट करते अर्थात् न छोड़ते और विद्या को (न) (तन्दते) न नष्ट करते हैं वा (यः) जो (मखः) विद्या पाये हुए (देवः) विद्वान् (विश्वस्य) संसार के (मनः) अन्तःकरण को (आयुयुवे) सब ओर से बांधता अर्थात् अपनी ओर खींचता वा जो (मखः) यज्ञ के समान वर्त्तमान सुख का (आयुयुवे) प्रबंध बांधता है उस (अन्त्यूतिम्) अपने निकट रक्षा आदि क्रिया रखने और (मयोभुवम्) सुख की भावना कराने वाले प्रजा पोषक का (सुम्नयन्) सुख चाहता हुआ (अहम्) मैं (अर्चामि) सत्कार करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—जो शुभ अच्छे कर्मों का आचरण करते हैं वे अत्यन्त प्रशंसित होते हैं जो सुशीलता और नम्रता से सब के चित्त को धर्मयुक्त व्यवहारों में बांधते हैं वेही सब को सत्कार करने के योग्य हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः । हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः । अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥२॥

प्र । हि । त्वा । पूषन् । अजिरम् । न । यामनि । स्तोमेभिः । कृण्वे । ऋणवः । यथा । मृधः । उष्ट्रः । न । पीपरः । मृधः । हुवे । यत् । त्वा । मयःऽभुवम् । देवम् । सख्याय । मर्त्यः । अस्माकम् । आङ्गूषान् । द्युम्निनः । कृधि । वाजेषु । द्युम्निनः । कृधि ॥ २ ॥

पदार्थः—(प्र) प्रकर्षे (हि) (त्वा) त्वाम् (पूषन्) पुष्टिकर्त्तः (अजिरम्) ज्ञानवन्तम् (न) इव (यामनि) यातरि (स्तोमेभिः) स्तुतिभिः (कृण्वे) करोमि (ऋणवः) प्राप्नुयाः (यथा) (मृधः) संग्रामान् (उष्ट्रः) (न) इव (पीपरः) पारये । अत्र लुङि बहुलं छन्दसीत्यडभावः (मृधः) संग्रामान् (हुवे) स्पर्द्धे (यत्) यतः (त्वा) त्वाम् (मयोभुवम्)

सुखकारकम् (देवम्) कान्तारम् (सख्याय) सखित्वाय (मर्त्यः) मनुष्यः (अस्माकम्) (आङ्गूषान्) प्राप्तविद्यान् (द्युम्निनः) यशस्विनः (कृधि) कुरु (वाजेषु) संग्रामेषु (द्युम्निनः) प्रशस्तकीर्त्तिमतः (कृधि) ॥ २ ॥

अन्वयः—हे पूषन् यथा त्वं मृध ऋणव उष्ट्रो न मृधः पीपरस्तथा स्तोमेभिर्यामन्यजिरं न त्वा प्रकृण्वे त्वामहं हुवे यत् सख्याय मयोभुवं देवं त्वा मर्त्योऽहं हुवे ततोऽस्माकमाङ्गूषान् वीरान् द्युम्निनः कृधि । वाजेषु द्युम्निनो हि कृधि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये मनुष्या धीमतो विद्यार्थिनो विद्यावतः कुर्युः शत्रून् विजयेरन् ते कीर्त्या माननीयाः स्युः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले (यथा) जैसे आप (मृधः) संग्रामों को (ऋणवः) प्राप्त करो अर्थात् हम लोगों को पहुंचाओ वा (उष्ट्रः) उष्ट्र के (न) समान (मृधः) संग्रामों को (पीपरः) पार कराओ अर्थात् उन से उद्धार करो वैसे (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (यामनि) पहुंचाने वाले व्यवहार में (अजिरम्) ज्ञानवान् अर्थात् अतिप्रवीण के (न) समान (त्वा) आप को (प्र, कृण्वे) प्रशंसित करता हूं और आप को मैं (हुवे) हठ से बुलाता हूं (यत्) जिस कारण (सख्याय) मित्रपन के लिये (मयोभुवम्) सुख करने वाले (देवम्) मनोहर (त्वा) आप को (मर्त्यः) मरण धर्म मनुष्य मैं हठ से बुलाता हूं इस कारण (अस्माकम्) हमारे (आङ्गूषान्) विद्या पाए हुए वीरों को (द्युम्निनः) यशस्वी (कृधि) करो और (वाजेषु) संग्रामों में (द्युम्निनः) प्रशंसित कीर्ति वाले (हि) ही (कृधि) करो ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य बुद्धिमान् विद्यार्थियों को विद्यावान् करें शत्रुओं को जीतें वे अच्छी कीर्ति के साथ माननीय हों ॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यस्य॑ ते पूषन्त्सख्ये॑ विप॒न्यव॒: क्रत्वा॑ चि॒त्सन्तो॑ऽवसा बुभुजि॒र इति॒ क्रत्वा॑ बुभु॒जि॒रे । ताम॑नु त्वा॒ नवी॑यसीं नि॒युतं॑ रा॒य ई॑महे । अहे॑ळमान उरुशंस॒ सरी॑ भव॒ वाजे॑वाजे॒ सरी॑ भव ॥ ३ ॥

यस्य॑ । ते॒ । पू॒ष॒न् । स॒ख्ये । वि॒प॒न्यव॑: । क्रत्वा॑ । चि॒त् । सन्त॑: । अव॑सा । बु॒भु॒जि॒रे । इति॑ । क्रत्वा॑ । बु॒भु॒जि॒रे । ताम् । अनु॑ । त्वा॒ । नवी॑यसीम् । नि॒ऽयुत॑म् । रा॒य॒: । ई॒म॒हे॒ । अहे॑ळमानः । उ॒रु॒ऽशं॒स॒ । सरी॑ । भ॒व॒ । वाजे॑ऽवाजे । सरी॑ । भ॒व॒ ॥ ३ ॥

पदार्थः-(यस्य) (ते) तव (पूषन्) पुष्टिकारक (सख्ये) (विपन्यवः) विशेषेणात्मनः पनं स्तवनमिच्छवः । विपन्यवइति मेधाविना० निघं० । ३।१५। (क्रत्वा) प्रज्ञया (चित्) (सन्तः) (अवसा) रक्षणाद्येन (बुभुजिरे) (इति) अनेन प्रकारेण (क्रत्वा) (बुभुजिरे) भुञ्जते (ताम्) (अनु) (त्वा) त्वाम् (नवीयसीम्) अतिशयेन नूतनाम् (नियुतम्) असंख्यातम् (रायः) राज्यश्रियः (ईमहे) याचामहे (अहेळमानः) अनादृतः सन् (उरुशंस) उरु बहु शंसः प्रशंसा यस्य तत्संबुद्धौ (सरी) सरति जानाति यः स प्रशस्तो विद्यते यस्य सः (भव) (वाजेवाजे) संग्रामे २ (सरी) (भव) ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे पूषन् विद्वन् यस्य ते तव सख्ये क्रत्वाऽवसा सह विपन्यवो नियुतं रायो बुभुज्रिरे इति चित्सन्तः क्रत्वा यां नियुतं रायो बुभुज्रिरे तां नवीयसीं नियुतं रायोऽनु त्वा वयमीमहे । हे उरुशंस अस्माभिरहेडमानस्त्वं वाजेवाजे सरी भव धर्म्ये व्यवहारे च सरी भव ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये धीमतां संगमित्रत्वाभ्यां नूतनां २ विद्यां प्राप्नुवन्ति ते प्राज्ञा भूत्वा विजयिनो भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले विद्वान् (यस्य) जिस (ते) आप की (सख्ये) मित्रता में (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से (अवसा) रक्षा आदि के साथ (विपन्यवः) विशेषता से अपनी प्रशंसा चाहने वाले जन (नियुतम्) असंख्यात (रायः) राज्यलक्ष्मियों को (बुभुज्रिरे) भोगते हैं (इति) इस प्रकार (चित्) ही (सन्तः) होते हुए (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से जिस असंख्यात राज्य श्री को (बुभुज्रिरे) भोगते हैं (ताम्) उस (नवीयसीम्) अतीव नवीन उक्त श्री को और(अनु) अनुकूलता से (त्वा) आप को हम लोग (ईमहे) मांगते हैं । हे (उरुशंस) बहुत प्रशंसायुक्त विद्वान् हमलोगों से (अहेडमानः) अनादर को न प्राप्त होते हुए आप (वाजेवाजे) प्रत्येक संग्राम में (सरी) प्रशंसित ज्ञाता जन जिस के विद्यमान ऐसे (भव) हूजिये और धर्मयुक्त व्यवहार में भी (सरी) उक्त गुणी (भव) हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो बुद्धिमानों के संग और मित्रपन से नवीन २ विद्या को प्राप्त होते हैं वे प्राज्ञ उत्तम ज्ञानवान् होकर विजयी होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अस्या ऊ षू ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व । ओ षू त्वा

वव॒र्तीमहि॒ स्तोमे॑भिर्दस्म सा॒धुभिः॑ । न॒हि त्वा॑ पूषन्नति॒मन्य॑ आघृणे॒ न ते॑ स॒ख्यम॑पह्नु॒वे ॥४॥२॥

अ॒स्याः । ऊँइति॑ । सु । नः॒ । उप॑ । सा॒तये॑ । भु॒वः॒ । अहे॑ळमानः । र॒रि॒ऽवान् । अ॒जा॒ऽअ॒श्व॒ । श्र॒व॒स्य॒ताम् । अ॒जा॒ऽअ॒श्व॒ । ओइति॑ । सु । त्वा॒ । व॒वृ॒तीम॒हि॒ । स्तोमे॑भिः । द॒स्म॒ । सा॒धु॒ऽभिः॑ । न॒हि । त्वा॒ । पू॒ष॒न् । अ॒ति॒ऽमन्ये॑ । आघृ॒णे॒ । न । ते॒ । स॒ख्यम् । अ॒प॒ऽह्नु॒वे ॥ ४ ॥ २ ॥

पदार्थः—(अस्याः) प्रज्ञायाः (उ) वितर्के (सु) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (नः) अस्मभ्यम् (उप) (सातये) विभागाय (भुवः) भव । अत्र लुङि विकरणव्यत्ययेन शः प्रत्ययोऽडभावश्च (अहेळमानः) सत्कृतः सन् (ररिवान्) दाता (अजाश्व) अजाअश्वाश्च विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (श्रवस्यताम्) आत्मनः श्रवो धनमिच्छताम् (अजाश्व) (ओ) सम्बोधने (सु) (त्वा) त्वाम् (ववृतीमहि) भृशं वर्त्तेमहि (स्तोमेभिः) स्तुतिभिः (दस्म) दुःखोपक्षयितः (साधुभिः) सज्जनैः सह (नहि) (त्वा) त्वाम् (पूषन्) (अतिमन्ये) अतिमानं कुर्याम् (आघृणे) समन्ताद्देदीप्यमान (न) (ते) तव (सख्यम्) मित्रस्य भावं कर्म वा (अपह्नुवे) आच्छादयेयम् ॥४॥

अन्वयः—हे पूषन्नजाश्व श्रवस्यतामजाश्वेव त्वं नोऽस्याः प्रज्ञायाः सातये ररिवानहेडमानःसूपभुवः। हे आघृणे पूषन्नहं ते तव सख्यं

नापह्नुवे त्वा नह्यतिमन्ये ओ दस्म स्तोमेभिः साधुभिः सह वर्त्तमाना वयमु त्वा त्वां सुवर्त्तीमहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—धार्मिकैर्विद्वद्भिः सह प्रसिद्धं मित्रभावं वर्त्तित्वा बहुविधाः प्रज्ञाः सर्वैर्मनुष्यैः प्राप्तव्याः । नकदाचित् कस्यचिच्छिष्टस्य तिरस्कारः कर्त्तव्यः ॥ ४ ॥

अत्र पुष्टिकर्त्तॄणां धार्मिकाणां च प्रशंसावर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥

इत्यष्टत्रिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले (अजाश्व) जिन के छेरी और घोड़े विद्यमान हैं ऐसे (अवस्यताम्) अपने को धन चाहने वालों में (अजाश्व) जिन की छेरी घोडों के तुल्य उन के समान हे विद्वन् आप (नः) हमारे लिये (अस्याः) इस उत्तम बुद्धि के (सातये) बांटने को (ररिवान्) देने वाले और (अहेडमानः) सत्कारयुक्त (सूप, भुवः) उत्तमता से समीप में हूजिये हे (आघृणे) सब ओर से प्रकाशमान पुष्टि करने वाले पुरुष मैं (ते) आप के (सख्यम्) मित्रपन और मित्रता के काम को (न) न (अपह्नुवे) छिपाऊं (त्वा) आप का (नहि, अतिमन्ये) अत्यन्त मान्य न करूं किन्तु यथायोग्य आप को मानूं (उ) और (ओ) हे (दस्म) दुःख मिटाने वाले (स्तोमेभिः) स्तुतियों से युक्त (साधुभिः) सज्जनों के साथ वर्त्तमान हम लोग (त्वा) आप को (सु, वर्त्तीमहि) अच्छे प्रकार निरन्तर वर्त्तें अर्थात् आप के अनुकूल रहें ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—धार्मिक विद्वानों के साथ प्रसिद्धमित्रभाव को वर्त्तिकर सब मनुष्यों को चाहिये कि बहुत प्रकार की उत्तम २ बुद्धियों को प्राप्त होवें और कभी किसी शिष्ट पुरुष का तिरस्कार न करें ॥४॥

इस सूक्त में पुष्टि करने वाले विद्वान् वा धार्मिक सामान्य जन की प्रशंसा के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ अड़तीसवां सूक्त और दूसरा वर्ग पूरा हुआ ॥

अस्तिवत्यस्यैकादशर्चस्यैकोनचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः । विश्वे देवा देवताः (विभागश्च) १ विश्वेदेवाः २ मित्रावरुणौ ३—५ अश्विनौ ६ इन्द्रः ७ अग्निः ८ मरुतः ९ इन्द्राग्नी १० बृहस्पतिः ११ विश्वेदेवाः । १ । १० निचृदष्टिः २ । ३ विराडष्टिः ६ अष्टिश्छन्दः । गांधारः स्वरः । ७ । ८ स्वराडत्यष्टिः ४ । ९ भुरिगत्यष्टिः ७ अत्यष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ५ निचृद्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ११ भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अथ पुरुषार्थप्रशंसामाह ॥

अब एकसौ उनतालीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में पुरुषार्थ की प्रशंसा का वर्णन करते हैं ॥

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी । अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥

अस्तु । श्रौषट् । पुरः । अग्निम् । धिया । दधे । आ । नु । तत् । शर्धः । दिव्यम् । वृणीमहे । इन्द्रवायू इति । वृणीमहे । यत् । ह । क्राणा । विवस्वति । नाभा । सम्ऽदायि । नव्यसी । अध । प्र । सु । नः । उप । यन्तु । धीतयः । देवान् । अच्छ । न । धीतयः ॥ १ ॥

पदार्थः—(अस्तु) (श्रौषट्) हविर्दात्रीम् (पुरः) पूर्णम् (अग्निम्) विद्युतम् (धिया) कर्मणा (दधे) दधीय (आ) (नु) (तत्) (शर्द्धः) बलम् (दिव्यम्) दिवि शुद्धे भवम् (वृणीमहे) संभरेमहि (इन्द्रवायू) विद्युत्प्राणौ (वृणीमहे) (यत्) यौ (ह) किल (क्राणा) कुर्वाणौ (विवस्वति) सूर्ये (नाभा) मध्यभागाऽऽकर्षणे (संदायि) सम्प्रदीयते (नव्यसी) अतीवनूतनाप्रज्ञा कर्म वा (अध) आनन्तर्य्ये (प्र) (सु) अत्रान्येषामपीति दीर्घः (नः) अस्मान् (उप) (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (धीतयः) (देवान्) विदुषः (अच्छ) अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (न) (धीतयः) अङ्गुलयः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या धीतयो नेव धीतयो भवन्तो धिया नोदेवानच्छोप यन्तु याभ्यां विवस्वति नाभा नव्यसी संदायि तौ क्राणा इन्द्रवायू ह वयं सुवृणीमहे। यदहं श्रौषट् पुरोऽग्निं दिव्यं शर्धआदधे यद्वयं प्रवृणीमहेऽध तत्सर्वेषां न्वस्तु ॥ १ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०—हे मनुष्या यथाऽङ्गुलयः सर्वेषु कर्मसूपयुक्ता भवन्ति तथा यूयमपि पुरुषार्थे भवत । यतो युष्मासु बलं वर्धेत ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (धीतयः) अंगुलियों के (न) समान (धीतयः) धारणा करने वाले आप (धिया) कर्म से (नः) हम (देवान्) विद्वान् जनों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (उप,यन्तु) समीप में प्राप्त होओ जिन्हों ने (विवस्वति) सूर्यमण्डल में (नाभा) मध्यभाग की आकर्षण विद्या अर्थात् सूर्यमंडल के प्रकाश में बहुत से प्रकाश को यंत्रकलाओं से खींच के एकत्र

उस की उष्णता करने में(नव्यसी)अतीव नवीन उत्तम बुद्धि वा कर्म (संदायि) सम्यक् दिया उन (कारणा) कर्म करने के हेतु (इन्द्रवायू) बिजुली और प्राण (ह) ही को हमलोग (सु, वृणीमहे) सुन्दर प्रकार से धारण करें मैं जिस (श्रौषट्) हविष् पदार्थ को देने वाली विद्या बुद्धि(पुरः) पूर्ण (अग्निम्) विद्युत् और (दिव्यम्) शुद्ध प्राणि में हुए (शर्धः) बल को (आ, दधे) अच्छे प्रकार धारण करूं (यत्) जिन प्राण विद्युत् जन्य सुख को हमलोग (प्र, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करें (अध) इस के अनन्तर (तत्) वह सुख सब को (नु, अस्तु) शीघ्र प्राप्त हो॥ १॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—हे मनुष्यो जैसे अंगुली सब कर्मों में उपयुक्त होती हैं वैसे तुम लोग भी पुरुषार्थ में युक्त होओ जिस से तुम में बल बढ़े॥ १॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्या ददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना। युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम्। धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः॥ २॥

यत्। ह। त्यत्। मित्रावरुणौ। ऋता। अधि। आ ददाथे इत्याऽददाथे। अनृतम्। स्वेन। मन्युना। दक्षस्य। स्वेन। मन्युना। युवोः। इत्था। अधि। सद्मऽसु। अपश्याम। हिरण्ययम्। धीभिः। चन। मनसा। स्वेभिः। अक्षऽभिः। सोमस्य। स्वेभिः। अक्षऽभिः॥ २॥

पदार्थः-(यत्) (ह) (त्यत्) अदः (मित्रावरुणौ) प्राणोदानवद्वर्त्तमानौ (ऋतात्) सत्याद्धर्म्याद्व्यवहारात् (अधि) (आददाथे) (अनृतम्) मिथ्याव्यवहारम् (स्वेन) स्वकीयेन (मन्युना) (दक्षस्य) बलस्य (स्वेन) स्वात्मभावेन (मन्युना) क्रोधेन (युवोः) युवयोः (इत्था) अनेन प्रकारेण (अधि) (सद्मसु) गृहेषु (अपश्याम) संप्रेक्षेमहि (हिरण्ययम्) हिरण्यप्रभूतं धनम् (धीभिः) कर्मभिः (चन) अपि (मनसा) प्रज्ञया (स्वेभिः) स्वकीयैः (अक्षभिः) इन्द्रियैः (सोमस्य) ऐश्वर्यस्य (स्वेभिः) स्वकीयैः प्रज्ञानैः (अक्षभिः) प्राणैः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणौ सद्मसु मनसा धीभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिरिव स्वेभिरक्षभिः सह वर्त्तमाना वयं युवोः सद्मसु हिरण्ययमध्यपश्याम चनापि यत्सत्यं त्यद्ध ऋतादगृह्णीयाम । स्वेन मन्युना दक्षस्य ग्रहणेनाऽनृतं त्यजेम युवामपि स्वेन मन्युना त्यजेतं यथा युवामृतात्सत्यमध्याददाथे इत्था वयमप्यध्याददेमहि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैः सत्यग्रहणमसत्यत्यागं च कृत्वा स्वपुरुषार्थेन पूर्णं बलैश्वर्यं विधाय स्वमन्तःकरणं स्वानीन्द्रियाणि च सत्ये कर्मणि प्रवर्त्तनीयानि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान सभासेनाधीश पुरुषो (सद्मसु) घरों में (मनसा) उत्तम बुद्धि के साथ (धीभिः) कामों से (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के (स्वेभिः) निज उत्तमोत्तमज्ञान वा (अक्षभिः) प्राणों के समान (स्वेभिः) अपनी (अक्षभिः) इन्द्रियों के साथ वर्त्ताव रखते हुए हम लोग (युवोः) तुम्हारे घरों में (हिरण्ययम्) सुवर्णमय धन को

(अधि, अपश्याम) अधिकता से देखें (च न) और भी (यत्) जो सत्य है (त्यत्, ह) उसी को (ऋतात्) सत्य जो धर्म के अनुकूल व्यवहार उस से ग्रहण करें (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोध के व्यवहार से (दक्षस्य) बल के साथ (अनृतम्) मिथ्या व्यवहार को छोड़ें तुम भी (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोध रूपी व्यवहार से मिथ्या व्यवहार को छोड़ो जैसे आप सत्यव्यवहार से सत्य (अभि, आ ददाथे) अधिकता से ग्रहण करो (इत्था) इस प्रकार हम लोग भी ग्रहण करें ॥ २ ॥

भावार्थः–इस मंत्र में वाचकलु०—मनुष्यों को सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर अपने पुषार्थ से पूरा बल और ऐश्वर्य्य सिद्ध कर अपना अन्तःकरण और अपने इन्द्रियों को सत्य काम में प्रवृत्त करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वानों के वि० ॥

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्तइव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः । युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा । प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥

युवाम् । स्तोमेभिः । देवऽयन्तः । अश्विना । आश्रवयन्तःऽइव । श्लोकम् । आयवः । युवाम् । हव्या । अभि । आयवः । युवोः । विश्वाः । अधि । श्रियः । पृक्षः । च । विश्वऽवेदसा । प्रुषायन्ते । वाम् । पवयः । हिरण्यये । रथे । दस्रा । हिरण्यये ॥ ३ ॥

पदार्थः–(युवाम्) (स्तोमेभिः) स्तुतिभिः (देवयन्तः) कामयमानाः (अश्विना) विद्यान्यायप्रकाशकौ (आश्रावयन्तइव)

समन्तात् श्रवणं कारयन्त इव (श्लोकम्) युवयोर्यशः (आयवः) प्राप्नुवन्तः (युवाम्) (हव्या) आदातुमर्हाणि होमद्रव्याणि (अभि) (आयवः) (युवोः) युवयोः (विश्वाः) अखिलाः (अधि) अधिकाः (श्रियः) लक्ष्म्यः (पृक्षः) अन्नम् (च) (विश्ववेदसा) विश्वं वेदो ज्ञानं ययोस्तौ (प्रुषायन्ते) मधूनि स्रवन्ति (वाम्) युवयोः (पवयः) चक्राणि (हिरण्यये) सुवर्णमये (रथे) रमणसाधने याने (दस्रा) दुःखोपक्षेतारौ (हिरण्यये) सुवर्णमये ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अश्विना श्लोकमाश्रावयन्तइव स्तोमेभिर्युवां देवयन्तो जना युवामभि हव्यायवो न केवलमेतदेवापि तु हे दस्रा विश्ववेदसा यथा वां हिरण्यये रथे पवयः प्रुषायन्ते तथा युवोः सहायेन हिरण्यये रथे विश्वा अधिश्रियः पृक्षश्चायवोऽभूवन् ॥३॥

भावार्थः—ये पूर्णविद्यावाप्तौ विद्वांसावाश्रयन्ति ते धनधान्यैश्वर्यैः पूर्णा जायन्ते ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) विद्या और न्याय का प्रकाश करने वाले विद्वानो (श्लोकम्) तुम्हारे यश का (आश्रावयन्तइव) सब ओर से श्रवण करते हुए से (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (युवाम्) तुम्हारी (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (युवाम्) तुम्हारे (अभि) सन्मुख (हव्या) लेने योग्य होम के पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए फिर केवल इतना ही नहीं किन्तु हे (दस्रा) दुःख दूर करने हारे (विश्ववेदसा) समग्र ज्ञान युक्त उक्त विद्वानो जैसे (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमय (रथे) विहार की सिद्धि करने वाले रथ में (पवयः) चाक वा पहिये के समान (प्रुषायन्ते) मधुरपने आदि को झरते

हैं वैसे (युवोः) तुम्हारे सहाय से (हिरण्यये) सुवर्णमय रथ में (विश्वाः) समग्र (अधि) अधिक (श्रियः) सम्पत्तियों को (च) और (पृक्षः) अन्नादि पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो पूर्ण विद्या की प्राप्ति निमित्त विद्वानों का आश्रय करते हैं वे धनधान्य और ऐश्वर्य आदि पदार्थों से पूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अचेति दस्रा व्यू१ नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम बन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये । पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥

अचेति । दस्रा । वि । ऊम्ऽइति । नाकम् । ऋण्वथः । युञ्जते । वाम् । रथऽयुजः । दिविष्टिषु । अध्वस्मानः । दिविष्टिषु । अधि । वाम् । स्थाम । बन्धुरे । रथे । दस्रा । हिरण्यये । पथाऽइव । यन्तौ । अनुऽशासता । रजः । अञ्जसा । शासता । रजः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अचेति) संज्ञायते (दस्रा) (वि) (उ) (नाकम्) अविद्यमानदुःखम् (ऋण्वथः) (युञ्जते) (वाम्) युवयोः (रथयुजः) ये रथं युञ्जते ते (दिविष्टिषु) आकाशमार्गेषु (अध्वस्मानः) ये नाधः पतन्ति । ध्वसु, अधःपतने (दिविष्टिषु)

दिव्येषु व्यवहारेषु (अधि) (वाम्) युवयोः (स्थाम) तिष्ठेम (बन्धुरे) दृढबन्धनयुक्ते (रथे) (दस्रा) (हिरण्यये) प्रभूतसुवर्णमये (पथेव) पथा मार्गेण (यन्तौ) गमयन्तौ (अनुशासता) अनुशासितारौ (रजः) लोकम् (अञ्जसा) शीघ्रम् (शासता) (रजः) ऐश्वर्यम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे दस्रा युवां यं नाकं व्यृण्वथो दिविष्टिषु वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो रथं युञ्जते सोऽचेत्यतउ हे दस्रा रजोऽनुशासताऽञ्जसा रजः शासता पथेव यन्तौ वां हिरण्यये बन्धुरे रथे वयमधिष्ठाम ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये विद्वांसं प्राप्य शिल्पविद्यामधीत्य विमानं यानं निर्मायाऽन्तरिक्षे गच्छन्ति ते सुखमाप्नुवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (दस्रा) दुःख दूर करने हारे विद्वानो आप जिस (नाकम्) दुःखरहित व्यवहार को (व्यृण्वथः) प्राप्त कराते हो तथा (दिविष्टिषु) आकाशमार्गों में (वाम्) तुम्हारे (रथयुजः) रथों को युक्त करने वाले अग्नि आदि पदार्थ वा (दिविष्टिषु) दिव्य व्यवहारों में (अध्वस्मानः) न नीच दशा में गिरने वाले जन (युञ्जते) रथ को युक्त करते हैं सो (अचेति) ज्ञान होता है जाना जाता है इस से (उ) ही हे (दस्रा) दुःख दूर करने (रजः) लोक को (अनुशासता) अनुकूल शिक्षा देने (अञ्जसा) साक्षात् (रजः) ऐश्वर्य्य की (शासता) शिक्षा देने (पथेव) जैसे मार्ग से वैसे आकाशमार्ग में (यन्तौ) चलाने हारो (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमय (बन्धुरे) दृढबन्धनों से युक्त (रथे) विमान आदि रथ में हम लोग (अधि, स्थाम) अधिष्ठित हों बैठें ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—जो विद्वानों को प्राप्त हो शिल्प विद्या पढ़ और विमानादि रथ को सिद्ध कर अन्तरिक्ष में जाते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

शचीभिः । नः । शचीवसू इति शचीऽवसू । दिवा । नक्तम् । दशस्यतम् । मा । वाम् । रातिः । उप । दसत् । कदा । चन । अस्मत् । रातिः । कदा । चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(शचीभिः) (नः) अस्मभ्यम् (शचीवसू) शचीं प्रज्ञां वासयितारौ (दिवा) दिवसे (नक्तम्) रात्रौ (दशस्यतम्) दद्यातम् । अयं दशस् शब्दः कण्ड्वादिषु द्रष्टव्यः (मा) निषेधे (वाम्) युवयोः (रातिः) दानम् (उप) (दसत्) नश्येत् (कदा) (चन) (अस्मत्) (रातिः) दानम् (कदा) (चन) ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे शचीवसू युवां दिवा नक्तं शचीभिर्नो विद्यां दशस्यतं वां रातिः कदा चन मोपदसत् । अस्मद्रातिः कदा चन मोपदसत् ॥ ५ ॥

भावार्थः—इहाध्यापकोपदेशकौ सुशिक्षितया वाचाऽहर्निशं विद्या उपदिशेताम् । यतः कस्याऽप्यौदार्यं न नश्येत् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (शचीवसू) उत्तम बुद्धि का वास कराने हारे विद्वानो तुम (दिवा) दिन वा (नक्तम्) रात्रि में (शचीभिः) कर्मों से (नः) हमलोगों को विद्या (दशस्यतम्) देओ (वाम्) तुम्हारा (रातिः) देना (कदा, चन) कभी (मा) मत (उप, दसन्) नष्ट हो (अस्मत्) हमलोगों से (रातिः) देना (कदा, चन) कभी मत नष्ट हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस संसार में अध्यापक और उपदेशक अच्छी शिक्षायुक्त वाणी से दिन रात विद्या का उपदेश करें जिस से किसी की उदारता न नष्ट हो ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः । ते त्वा मदन्तु दावने महे चित्राय राधसे । गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥

वृषन् । इन्द्र । वृषऽपानासः । इन्दवः । इमे । सुताः । अद्रिऽसुतासः । उत्ऽभिदः । तुभ्यम् । सुतासः । उत्ऽभिदः । ते । त्वा । मदन्तु । दावने । महे । चित्राय । राधसे । गीःऽभिः । गिर्वाहः । स्तवमानः । आ । गहि । सुऽमृळीकः । नः । आ । गहि ॥ ६ ॥

पदार्थः—(वृषन्) सेचनसमर्थ वीर्योपेत (इन्द्र) परमैश्वर्य-युक्त (वृषपाणासः) वर्षन्ति यैस्तानि वृषाणि वृषाणि पानानि येषां ते (इन्दवः) रसवन्तः (इमे) (सुताः) निर्मिताः (अद्रि-सुतासः) अद्रिणा मेघेन सुताउत्पन्नाः (उद्भिदः) ये पृथिवीमुद्भिद्य जायन्ते (तुभ्यम्) (सुतासः) निर्मिताः (उद्भिदः) उद्भेदं विदारणं प्राप्ताः (ते) (त्वा) त्वाम् (मदन्तु) आनन्दयन्तु (दावने) सुखं दात्रे (महे) महते (चित्राय) अद्भुताय (रा-धसे) धनाय (गीर्भिः) शास्त्रयुक्ताभिर्वाग्भिः (गिर्वाहः) उप-देशगिरां प्रापक (स्तवमानः) गुणकीर्त्तनं कुर्वन् (आ)(गहि) (सुमृळीकः) सुष्ठुसुखप्रदः (नः) अस्मान् (आ) (गहि) समंतात्प्राप्नुहि ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे वृषन्निन्द्र इमे तुभ्यं वृषपाणासोऽद्रिषुतास उद्भिद इन्दवः सुता उद्भिदः सुतासश्च सन्ति ते दानवे महे चित्राय राधसे त्वा मदन्तु हे गिर्वाहस्त्वं गीर्भिः स्तवमानो न आगहि सुमृळीकः सन्नस्मानागहि ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यैस्तएव ओषधिरसाओषधयश्च सेवनीया ये प्रमादं न जनयेयुर्यत ऐश्वर्य्योन्नतिस्स्यादिति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (वृषन्) सेचन समर्थ अति बलवान् (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त जन जो (इमे) ये (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (वृषपाणासः) मेघ जिन से वर्षते वे वर्षा विन्दु जिन के पान ऐसे (अद्रिषुतासः) जो मेघ से उत्पन्न (उद्भिदः) पृथिवी को विदारण कर के प्रसिद्ध होते (इन्दवः) और रसवान् वृक्ष (सुताः)

उत्पन्न हुए तथा (उद्भिदः) जो विदारण भाव को प्राप्त अर्थात् कूट पीट बनाये हुए औषध आदि पदार्थ (सुतासः) उत्पन्न हुए हैं (ते) वे (दावने) सुख देने वाले (महे) बड़े (चित्राय) अद्भुत (राधसे) धन के लिये (त्वा) आप को (मदन्तु) आनन्दित करें हे (गिर्वाहः) उपदेश रूपी वाणियों की प्राप्ति कराने हारे आप (गीर्भिः) शास्त्र युक्त वाणियों से (स्तवमानः) गुणों का कीर्त्तन करते हुए (नः) हम लोगों के प्रति (आ, गहि) आओ तथा (सुमृडीकः) उत्तम सुख देने वाले होते हुए हम लोगों के प्रति (आ, गहि) आओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि उन्हीं ओषधि और औषधिरसों का सेवन करें कि जो प्रमाद न उत्पन्न करें जिस से ऐश्वर्य की उन्नति हो ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः । यद्ध त्यामंगिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन । वि तां दुह्रे अर्यमा कर्त्तरि सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥

ओइति । सु । नः । अग्ने । शृणुहि । त्वम् । ईळितः । देवेभ्यः । ब्रवसि । यज्ञियेभ्यः । राजऽभ्यः । यज्ञियेभ्यः । यत् । ह । त्याम् । अङ्गिरःऽभ्यः । धेनुम् । देवाः । अदत्तन । वि । ताम् । दुह्रे । अर्यमा । कर्त्तरि । सचा । एषः । ताम् । वेद । मे । सचा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(ओ) अवधारणे (सु) (नः) अस्माकम् (अग्ने) विद्वन् (शृणुहि) (त्वम्) (ईळितः) स्तुतः (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (ब्रवसि) ब्रूयाः (यज्ञियेभ्यः) यज्ञमनुष्ठातुं योग्येभ्यः (राजभ्यः) न्यायाऽधीशेभ्यः (यज्ञियेभ्यः) यज्ञमर्हेभ्यः (यत्) याम् (ह) खलु (त्याम्) ताम् (अङ्गिरोभ्यः) प्राणविद्याविद्भ्यः (धेनुम्) दोग्ध्रीं वाचम् (देवाः) विद्वांसः (अदत्तन) दद्यात (वि) (ताम्)(दुह्रे) प्रपिपार्त्ति (अर्यमा) न्यायेशः (कर्त्तरि) कारके (सचा) सहार्थे । अत्र संहितायामिति दीर्घः (एषः) (ताम्) (वेद) जानाति (मे) मम (सचा) ॥७॥

अन्वयः—हे अग्ने अस्माभिरीडितस्त्वं यज्ञियेभ्यो देवेभ्यो यज्ञियेभ्यो राजभ्यश्च ब्रवस्यतस्त्वं नो वच ओषु शृणुहि । हे देवा यद्ध त्यां धेनुं यूयमङ्गिरोभ्योऽदत्तन तां यां च कर्त्तरि सचार्यमा विदुह्रे तां धेनुं मे सचैष वेद ॥ ७ ॥

भावार्थः—अध्यापकानां योग्यताऽस्ति सर्वेभ्यो विद्यार्थिभ्यो निष्कपटतयाऽखिला विद्याः प्रत्यहमध्याप्य परीक्षायै तदधीतं शृणुयुः। यतोऽधीतं विद्यार्थिनो न विस्मरेयुः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् हम लोगों ने (ईडितः) स्तुति प्रशंसा युक्त किये हुए (त्वम्) आप (यज्ञियेभ्यः) यज्ञानुष्ठान करने को योग्य (देवेभ्यः) विद्वानों और (यज्ञियेभ्यः) अश्वमेधादि यज्ञ करने को योग्य (राजभ्यः) राज्य करने वाले न्यायाधीशों के लिये (ब्रवसि) कहते हो इस कारण आप (नः) हमारे वचन को (ओ, षु, शृणुहि) शोभनता जैसे हो वैसे ही सुनिये

हे (देवाः) विद्वानो (यत्) (ह, त्याम्) जिस प्रसिद्ध ही (धेनुम्) गुणों की परिपूर्ण करने वाली वाणी को तुम (अङ्गिरोभ्यः) प्राण विद्या के जानने वालों के लिये (अदुग्धन) देओ (ताम्) उस को और जिस को (कर्त्तरि) कर्म करने वाले के निमित्त (सचा) सहानुभूति करने वाला (अर्यमा) न्यायाधीश (वि, दुह्रे) पूरण करता है (ताम्) उस वाणी को (मे) मेरा (सचा) सहायी (एष) यह न्यायाधीश (वेद) जानता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—अध्यापकों को योग्यता यह है कि सब विद्यार्थियों को निष्कपटता से समस्त विद्या प्रतिदिन पढ़ा के परीक्षा के लिये उनका पढ़ा हुआ सुनें जिस से पढ़े हुए को विद्यार्थी जन न भूलें ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः । यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् । अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥

मो इति । सु । वः । अस्मत् । अभि । तानि । पौंस्या । सना । भूवन् । द्युम्नानि । मा । उत । जारिषुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिषुः । यत् । वः । चित्रम् । युगेयुगे । नव्यम् । घोषात् । अमर्त्यम् । अस्मासु । तत् । मरुतः । यत् । च । दुस्तरम् । दिधृत । यत् । च । दुस्तरम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(मो) निषेधे (सु) शोभने (वः) (अस्मत्) (अभि) (तानि) (पौंस्या) पुंसु साधूनि बलानि । पुंस्यानीति

बलना० निघं० २ । ९ । (सना) सनातनानि (भूवन्) अभूवन् भवन्तु । अत्राडभावः (द्युम्नानि) यशांसि धनानि वा (मा) (उत) अपि (जारिषुः) जरन्तु । अत्राप्यडभावः (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् (पुरा) (उत) अपि (जारिषुः) जीर्णानि भवन्तु (यत्) (वः) (चित्रम्) अद्भुतम् (युगेयुगे) वर्षे२ (नव्यम्) नवेषु नवीनेषु भवम् (घोषात्) वाचः।घोषइति वाङ्ना० निघं० १ । ११ । (अमर्त्यम्) नाशरहितम् (अस्मासु) (तत्) (मरुतः) ऋत्विजः।मरुतइति ऋत्विङ्ना० निघं० ।२। १४ । (यत्) (च) (दुस्तरम्) दुःखेन तरितुं योग्यं बलम् (दिधृत) धरत।अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः । अन्येषामपीति दीर्घश्च (यत्) (च) (दुस्तरम्) ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मरुतो वस्तानि सना पौंस्याऽस्मन्मो अभिभूवन्। यानि पुरोत जारिषुस्तान्युत द्युम्नान्यस्मन्मा जारिषुः। यद्वो युगेयुगे चित्रममर्त्यं नव्यं यशो यच्च दुस्तरं यच्च दुस्तरं घोषाद् यूयं दिधृत तदस्मासु सुदिधृत ॥ ८ ॥

भावार्थः-मनुष्यैरेवमाशंसितव्यं प्रयतितव्यं च यतो बलं यशो धनमायू राज्यं च नित्यं वर्द्धेत ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो (वः) तुम्हारे (तानि) वे (सना) सनातन (पौंस्या) पुरुषों में उत्तम बल (अस्मत्) हम लोगों से (मो, अभि, भूवन्) मत तिरस्कृत हों जो (पुरा, उत) पहिले भी (जारिषुः) नष्ट हुए (उत) वे भी (द्युम्नानि) यश वा धन (अस्मत्) हम लोगों से (मा, जारिषुः) फिर नष्ट न होवें (यत्) जो (वः) तुम्हारा

(युगेयुगे) युग २ में (चित्रम्) अद्भुत (अमर्त्यम्) अविनाशी (नव्यम्) नवीनों में हुआ यश (यत्, च) और जो (दुस्तरम्) शत्रुओं को दुःख से पार होने योग्य बल (यत्,च) और जो (दुस्तरम्) शत्रुओं को दुःख से पार होने योग्य काम (घोषात्) वाणी से तुम (दिधृत) धारण करो (तत्) वह समस्त (अस्मासु) हम लोगों में (सु) अच्छापन जैसे हो वैसे धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को इस प्रकार आशंसा इच्छा और प्रयत्न करना चाहिये कि जिस से बल यश धन आयु और राज्य नित्य बढ़े ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः । तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः । तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥

दध्यङ् । ह । मे । जनुषम् । पूर्वः । अङ्गिराः । प्रियऽमेधः । कण्वः । अत्रिः । मनुः । विदुः । ते । मे । पूर्वे । मनुः । विदुः । तेषाम् । देवेषु । आऽयतिः । अस्माकम् । तेषु । नाभयः । तेषाम् । पदेन । महि । आ । नमे । गिरा । इन्द्राग्नी इति । आ । नमे । गिरा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(दध्यङ्) दधीन् धारकानञ्चति (ह) (मे) मम (जनुषम्) विद्याजन्म (पूर्वः) शुभगुणैः पूर्णः (आंगिराः)

प्राणविद्यावित् (प्रियमेधः) प्रिया मेधा प्रज्ञा यस्य सः (कण्वः) मेधावी (अत्रिः) सुखानामत्ता भोक्ता । अदधातोरौणादिकस्त्रिः प्रत्ययः (मनुः) मननशीलः (विदुः) जानन्ति (ते) (मे) मम (पूर्वे) शुभगुणैः पूर्णाः (मनुः) ज्ञाता (विदुः) (तेषाम्) (देवेषु) विद्वत्सु (आयतिः) समन्ताद् विस्तृतिः (अस्माकम्) (तेषु) (नाभयः) संबन्धिनः (तेषाम्) (पदेन) प्राप्तव्येन विज्ञानेन (महि) महत् (आ) (नमे) नमामि (गिरा) वाण्या (इन्द्राऽग्नी) प्राणविद्युताविव (आ) (नमे) (गिरा) ॥१॥

अन्वयः—यो दध्यङ् पूर्वोऽङ्गिराः प्रियमेधोऽत्रिर्मनुः कण्वो मे महि जनुषं विदुस्ते मे पूर्वे यं मनुरिति विदुः । तेषां देवेष्वायतिरस्ति । अस्माकं तेषु नाभयः सन्ति तेषां पदेन गिरा चाहमानमे याविन्द्राग्नी इवाप्तावध्यापकोपदेशकौ स्यातां तावहं गिरा नमे॥१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—जगति ये विद्वांसस्सन्ति तएव विदुषां प्रभावं ज्ञातुमर्हन्ति न क्षुद्राऽशयाः । ये यस्माद्विद्या आददीरन् । ते तेषां प्रियाचरणं सदानुतिष्ठन्तु ।सर्वैरितरैर्जनैराप्तानां विदुषां मार्गेणैव गन्तव्यं नेतरेषां मूर्खाणाम् ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (दध्यङ्) धारण करने वालों को प्राप्त होने वाला (पूर्वः) शुभगुणों से परिपूर्ण (अङ्गिराः) प्राण विद्या का जानने वाला (प्रियमेधः) धारणावती बुद्धि जिस को प्रिय वह (अत्रिः) सुखों का भोगने वाला (मनुः) विचारशील और (कण्वः) मेधावीजन (मे) मेरे (महि) महान् (जनुषम्) विद्यारूप जन्म को (ह) प्रसिद्ध (विदुः) जानते हैं (ते) वे (मे) मेरे

(पूर्वे) शुभ गुणों से परिपूर्ण पिछिले जन यह (मनुः) ज्ञानवान् है यह भी (विदुः) जानते हैं (तेषाम्) उन का (देवेषु) विद्वानों में (आयतिः) अच्छा विस्तार है (अस्माकम्) हमारे (तेषु) उन में (नाभयः) सम्बन्ध हैं (तेषाम्) उन के (पदेन) पाने योग्य विज्ञान और (गिरा) वाणी से मैं (आ, नमे) अच्छे प्रकार नम्र होता हूं जो (इन्द्राग्नी) प्राण और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशक हों उन को मैं (गिरा) वाणी से (आ, नमे) नमस्कार करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जगत् में जो विद्वान् हैं वे ही विद्वान् के प्रभाव को जानने योग्य होते हैं किन्तु क्षुद्राशय नहीं जो जिन से विद्या ग्रहण करें वे उन के प्रियाचरण का सदा अनुष्ठान करें सब इतर जनों को आप्त विद्वानों के मार्ग ही से चलना चाहिये किन्तु और मूर्खों के मार्ग से नहीं ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्य्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः । जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना । अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥ १० ॥

होता । यक्षत् । वनिनः । वन्त । वार्य्यम् । बृहस्पतिः । यजति । वेनः । उक्षऽभिः । पुरुवारेभिः । उक्षऽभिः । जगृभ्म । दूरेऽआदिशम् । श्लोकम् । अद्रेः । अध । त्मना । अधारयत् । अररिन्दानि । सुऽक्रतुः । पुरु । सद्मानि । सुऽक्रतुः ॥ १० ॥

पदार्थः-(होता) गृहीता (यक्षत्) यजेत् (वनिनः) वनानि प्रशस्तविद्यारश्मयो विद्यन्ते येषां ते (वन्त) संभजत । अत्र बहुलं

छन्दसीति शपो लुक् (वार्यम्) वर्त्तुमर्हम् (बृहस्पतिः) बृहत्या वाचः पालकः (यजति) यजेत । लेट्प्रयोगोऽयम् (वेनः) कामयमानः (उत्तभिः) महद्भिः। उत्तेति महन्ना० निघं०।३। ३ (पुरुवारेभिः) पुरवो बहवो वारा वरितव्या गुणा येषां तैः (उत्ताभिः) महद्भिरिव (जगृभ्म) गृह्णीयाम। अत्रान्येषामपीति दीर्घः (दूरआादिशम्) दूरे य आदिश्यते तम् (श्लोकम्) वाचम् (अद्रेः) मेघात् (अध) अथ (त्मना) आत्मना (अधारयत्) धारयेत् (अररिन्दानि) उदकानि। अररिन्दानीत्युदकना० निघं० १।१२। (सुक्रतुः) शोभनप्रज्ञः (पुरु) बहूनि (सद्मानि) प्राप्तव्यानि (सुक्रतुः) शोभनकर्मा ॥ १० ॥

अन्वयः—होता पुरुवारेभिरुत्तभिर्यद्वार्य्यं यक्षत् पुरुवारेभिरुत्तभिस्सह वर्त्तमानो वेनो बृहस्पतिर्यद्वार्य्यं यजति सुक्रतुस्त्मना यानि पुरु सद्मान्यधारयत्सुक्रतुरद्रेरररिन्दानीव दूरआादिशं श्लोकमधारयत् तत्सर्वं वनिनो वन्ताऽधैतत्सर्वं वयमपि जगृभ्म ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा मेघाच्चयुतानि जलानि सर्वान् प्राण्यप्राणिनो जीवयन्ति तथा वेदादिविद्यानामध्यापकाऽध्येतृभ्यः प्राप्ता विद्याः सर्वान्मनुष्यान् वर्धयन्ति यथा महद्भिराप्तैः सह संप्रयोगेण सज्जना वेदितव्यं विदन्ति तथा विद्यासंप्रयोगेण मनुष्याः कमनीयं प्राप्नुवन्ति ॥ १० ॥

पदार्थः—(होता) सद्गुणों का ग्रहण करने वाला जन (पुरुवारेभिः) जिन के स्वीकार करने योग्य गुण हैं उन (उत्तभिः) महात्माजनों के साथ

जिस (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य जन का (यक्षन्) संग करे वा जिन के स्वीकार करने योग्य गुण उन (उक्षभिः) महात्माजनों के साथ वर्त्तमान (वेनः) कामना करने और (बृहस्पतिः) बड़ी वाणी की पालना करने वाला विद्वान् जिस स्वीकार करने योग्य का (यजति) संग करता है वा (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धि वाला जन (त्मना) आप से जिन (पुरु) बहुत (सद्मानि) प्राप्त होने योग्य पदार्थों को (अधारयत्) धारण करावे वा (सुक्रतुः) उत्तम काम करने वाला जन (अद्रेः) मेघ से (अररिन्दानि) जलों को जैसे वैसे (दूरआदिशम्) दूर में जो कहा जाय उस विषय और (श्लोकम्) वाणी को धारण करावे उस सब को (वनिनः) प्रशंसनीय विद्या किरणें जिन के विद्यमान हैं वे सज्जन (वन्त) अच्छे प्रकार सेवें (अध) इस के अनन्तर इस उक्त समस्त विषय को हम लोग भी (जगृभ्म) ग्रहण करें ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे मेघ से छुटे हुए जल समस्त प्राणी अप्राणियों अर्थात् जड चेतनों को जिलाते उन की पालना करते हैं वैसे वेदादि विद्याओं के पढ़ाने पढ़ने वालों से प्राप्त हुई विद्या सब मनुष्यों को वृद्धि देती हैं और जैसे महात्मा शास्त्रवेत्ता विद्वानों के साथ सम्बन्ध से सज्जन लोग जानने योग्य विषय को जानते हैं वैसे विद्या के उत्तम सम्बन्ध से मनुष्य चाहे हुए विषय को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ये दे॑वासो दि॒व्येका॑दश॒ स्थ पृ॑थि॒व्यामध्येका॑दश॒ स्थ । अ॒प्सुक्षितो॑ महि॒नैका॑दश॒ स्थ ते दे॑वासो य॒ज्ञमि॒मं जु॑षध्वम् ॥ ११ ॥ ४ । २० ॥

ये । दे॒वा॒सः॒ । दि॒वि । एका॑दश । स्थ । पृ॒थि॒व्याम् । अधि॑ । एका॑दश । स्थ । अ॒प्सु॒ऽक्षितः॑ । म॒हि॒ना । एका॑दश । स्थ । ते । दे॒वा॒सः॒ । य॒ज्ञम् । इ॒मम् । जु॒ष॒ध्व॒म् ॥ ११ ॥ ४ । २० ॥

पदार्थः—(ये) (देवासः) विद्वांसः (दिवि) सूर्यादिलोके (एकादश) दश प्राणा जीवात्मा च (स्थ) सन्ति (पृथिव्याम्) भूमौ (अधि) उपरि (एकादश) (स्थ) (अप्सुक्षितः) येऽप्सु क्षियन्ति निवसन्ति ते (महिना) महिम्ना (एकादश) दशेन्द्रियाणि मनश्चेति (स्थ) (ते) (देवासः) विद्वांसः (यज्ञम्) संगन्तव्यम् (इमम्) (जुषध्वम्) सेवध्वम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे देवासो विद्वांसो यूयं ये दिवि एकादश स्थ ये पृथिव्यामेकादशाधिष्ठ ये महिनाऽप्सुक्षित एकादश स्थ ते यथाविधाः सन्ति तथा तान् विज्ञाय हे देवासो यूयमिमं यज्ञं जुषध्वम्॥११॥

भावार्थः—इहेश्वरसृष्टौ ये पदार्थाः सूर्यादिलोके सन्त्यर्थाद्येन्यत्र वर्त्तन्ते तएवाऽत्र यावन्तोऽत्र सन्ति तावन्तएव तत्र सन्ति तान् यथावद्विदित्वा मनुष्यैर्योगक्षेमः सततं कर्त्तव्य इति ॥ ११ ॥

अत्र विदुषां शीलवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्भवतीति बोध्यम् ॥

इत्येकोनचत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं चतुर्थो वर्गो विंशोऽनुवाकश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (देवासः) विद्वानो तुम (ये) जो (दिवि) सूर्यादि लोक में (एकादश) दश प्राण और ग्यारहवां जीव (स्थ) हैं वा जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (एकादश) उक्त एकादश गण के (अधि, स्थ) अधिष्ठित हैं वा जो (महिना) महत्त्व के साथ (अप्सुक्षितः) अन्तरिक्ष वा जलों में निवास करने हारे (एकादश) दशेन्द्रिय और एक मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे हैं वैसे उन को जान के हे (देवासः) विद्वानो तुम (इमम्) इस (यज्ञम्) संग करने योग्य व्यवहार रूप यज्ञ को (जुषध्वम्) प्रीति पूर्वक सेवन करो ॥ ११ ॥

भावार्थः—ईश्वर की इस सृष्टि में जो पदार्थ सूर्यादि लोकों में हैं अर्थात् जो अन्तहां वर्त्तमान हैं वे ही यहां और जितने यहां हैं उतने ही वहां और लोकों में हैं उन को यथावत् जान के मनुष्यों को योगक्षेम निरन्तर करना चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के शील का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥ ११ ॥

यह एकसौ उनतालीशवां सूक्त चौथावर्ग और वीशवां अनुवाक समाप्त हुआ ॥

वेदिषदइत्यस्यैकादशर्चस्य चत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य
सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ ।
८ । जगती । २ । ७ । ११ । विराड्जगती ।
३ । ४ । ९ । निचृज्जगती च छन्दः । निषादः
स्वरः । ६ । भुरिक्त्रिष्टुप् । १० । १२ ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
१३ । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ विद्वत्पुरुषार्थगुणविषयः प्रोच्यते ॥

अब एकसौ चालीसवें १४० सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में विद्वानों के पुरुषार्थ और गुणों का विषय कहा है ॥

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये । वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

वेदि॒ऽसदे॑ । प्रि॒यऽधा॑माय। सु॒ऽद्यु॑ते । धा॒सिम्॒ऽइ॑व । प्र ।
भ॒र । योनि॑म् । अ॒ग्नये॑ । वस्त्रे॑णऽइव । वा॒स॒य । मन्म॑ना ।
शुचि॑म् । ज्यो॒तिः॒ऽरथम् । शु॒क्रऽव॑र्णम् । त॒मः॒ऽहन॑म् ॥१ ॥

पदार्थः—(वेदिषदे) यो वेदौ सीदति तस्मै (प्रियधामाय) प्रियं धाम यस्य तस्मै (सुद्युते) शोभना द्युतिर्यस्य तत्सम्बुद्धौ (धासिमिव) दधति प्राणान् येन तमिव धासिरित्यन्नना० निघं० २ । ७ । (प्र) (भर) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङइति दीर्घः (योनिम्) गृहम् (अग्नये) पावकाय (वस्त्रेणेव) यथापटेन (वासय) आच्छादय । अतान्येषामपीति दीर्घः (मन्मना) मन्यते जानाति येन तेन (शुचिम्) पवित्रम् (ज्योतीरथम्) प्रकाशयुक्तं रमणीयं यानम् (शुक्रवर्णम्) शुद्धस्वरूपम् (तमोहनम्) यस्तमो हन्ति तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्त्वं मन्मना वेदिषदेऽग्नये धासिमिव प्रियधामाय सुद्युते विदुषे योनिं प्रभर तं ज्योतीरथं तमोहनं शुक्रवर्णं रथं शुचिं वस्त्रेणेव वासय ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा होतारो वन्हौ काष्ठानि संस्थाप्य घृतादिहविर्हुत्वेमं वर्धयन्ति तथा पवित्रं जनं भोजनाऽऽच्छादनैर्विद्वांसो वर्द्धयेयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् आप (मन्मना) जिस से मानते जानते उस विचार से (वेदिषदे) जो वेदी में स्थिर होता उस (अग्नये) अग्नि के लिये

(धासिमिव) जिस से प्राणों को धारण करने उस अन्न के समान हवन करने योग्य पदार्थ को जैसे वैसे (प्रियधामाय) जिस को स्थान पियारा उस (सुद्युते) सुन्दर कान्ति वाले विद्वान् के लिये (योनिम्) घर का (प्र, भर) अच्छे प्रकार धारण कर और उस (ज्योतीरथम्) ज्योति के समान (तमोहनम्)अन्धकार का विनाश करने वाले (शुक्रवर्णम्) शुद्धस्वरूप (शुचिम्) पवित्र मनोहर यान को (वस्त्रेणेव) पट वस्त्र से जैसे वैसे (वासय) ढांपो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे होता जन आग में समिधरूप काष्ठों को अच्छे प्रकार स्थिर कर और उस में घृत आदि हवि का हवन कर इस आग को बढ़ाते हैं वैसे शुद्ध जन को भोजन और आच्छादन अर्थात् वस्त्र आदि से विद्वान् जन बढ़ावें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमीं पुनः। अन्यस्यासा जिव्हया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥ २ ॥

अभि । द्विऽजन्मा । त्रिवृत् । अन्नम् । ऋज्यते । संवत्सरे वावृधे । जग्धम् । ईम्ऽइति । पुनरिति । अन्यस्य । आसा । जिह्वया । जेन्यः । वृषा । नि । अन्येन । वनिनः । मृष्ट । वारणः ॥ २ ॥

पदार्थः—(अभि) (द्विजन्मा) विद्याजन्मद्वितीयः (त्रिवृत्) यत् कर्मोपासनाज्ञानेषु साधकत्वेन वर्त्तते (अन्नम्) अत्तव्यम्

(ऋज्यते) उपार्ज्यते (संवत्सरे) (वावृधे) वर्द्धते । अत्र तुजादीनामभ्यासदीर्घत्वम् (जग्धम्) भक्तम् (ईम्) सर्वतः (पुनः) (अन्यस्य) (आसा) आस्येन (जिह्वया) (जेन्यः) जेतुं शीलः (वृषा) वृषेव बलिष्ठः (नि) (अन्येन) (वनिनः) वनानि जलानि । वनमित्युदकना० निघं०१ । १२ (मृष्ट) मार्जय (वारणः) सर्वदोषनिवारकः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो येन संवत्सरे पूर्णे त्रिवृदन्नमृज्यतेऽन्यस्यासा जिह्वया तदन्नमीं पुनर्जग्धं स द्विजन्माऽभिवावृधे जेन्यो वृषा च भवत्यतोऽन्येन वारणो वनिनो निमृष्ट ॥ २ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या अन्नादीन्पदार्थान् पुष्कलान् संचित्य सुसंस्कृत्य भुञ्जतेऽन्यान्भोजयन्ति तथा हवनादिना वृष्टिशुद्धिं कुर्वन्ति ते बलिष्ठा जायन्ते ॥ २ ॥

पदार्थः—जिस ने (संवत्सरे) संवत्सर पूरे हुए पर (त्रिवृत्) कर्म उपासना और ज्ञानविषय में जो साधनरूप से वर्त्तमान उस (अन्नम्) भोगने योग्य पदार्थ का (ऋज्यते) उपार्जन किया वा (अन्यस्य) और के (आसा) मुख और (जिह्वया) जीभ के साथ (ईम्) वही अन्न (पुनः) वार २ (जग्धम्) खाया हो वह (द्विजन्मा) विद्या में द्वितयि जन्म वाला ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुल का जन (अभि, वावृधे) सब ओर से बढ़ता (जेन्यः) विजयशील और (वृषा) वैल के समान अत्यन्तबली होता है इस से (अन्येन) और मित्रवर्ग के साथ (वारणः) समस्त दोषों की निवृत्ति करने वाला तूं (वनिनः) जलों को (नि, मृष्ट) निरन्तर शुद्ध कर ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अन्नआदि बहुत पदार्थ इकट्ठे कर उन को बना और भोजन करते वा दूसरों को कराते तथा हवन आदि उत्तम कामों से वर्षा की शुद्धि करते हैं वे अत्यन्त बली होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् । प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥

कृष्णऽप्रुतौ । वेविजे इति । अस्य । सऽक्षितौ । उभा । तरेते इति । अभि । मातरा । शिशुम् । प्राचाऽजिह्वम् । ध्वसयन्तम् । तृषुऽच्युतम् । आ । साच्यम् । कुपयम् । वर्धनम् । पितुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(कृष्णप्रुतौ) विद्वदुपदेशेन चित्ताकर्षणशक्तिं प्राप्नुवत्यौ (वेविजे) भृशं बिभीतः । ओविजीभयचलनयोरित्यस्माद्यङ्लुगन्ताद्व्यत्ययेनात्मनेपदमेकवचनं च (अस्य) (सक्षितौ) सह निवसन्त्यौ (उभा) उभे (तरेते) (अभि) (मातरा) मातरौ धात्रीजनन्यौ (शिशुम्) बालकम् (प्राचाजिह्वम्) प्राक्दुग्धप्रदानादितः पूर्वं समन्ताज्जिह्वा यस्य तम् (ध्वसयन्तम्) चाञ्चल्येनाधःपतन्तं ध्वसुध्वंसु अधः पतनइत्यस्मात् स्वार्थे णिच् (तृषुच्युतम्) क्षिप्रं पतितम् । तृष्विति क्षिप्रना० निघं० २ । १५ (आ) (साच्यम्) साचितुं समवेतुं योग्यम् (कुपयम्) गोपनीयम् (वर्धनम्) वर्द्धयितारम् (पितुः) जनकस्य ॥ ३ ॥

अन्वयः—यं प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमासाच्यं कुपयं पितुर्वर्द्धनं शिशुं सचितौ मातराभितरेते अस्य तावुभा मातरा कृष्णप्रुतौ वेविजे ॥ ३ ॥

भावार्थः—सदसद्ज्ञानवर्द्धकं रोगादिक्लेशनिवारकं प्रेमोत्पादकं विद्वदुपदेशं प्राप्ते अपि वालकस्य जनन्यौ निजप्रेम्णा सर्वदा बिभीतः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जिस (प्राचाजिह्वम्) दुग्धआदि के देने से पहिले अच्छे प्रकार जीभ निकालने (ध्वसयन्तम्) गोदी से नीचे गिरने (तृषुच्युतम्) वा शीघ्र गिरे हुए (आ, साच्यम्) अच्छे प्रकार संबन्ध करने अर्थात् उठा लेने (कुपयम्) गोपिन रख ने योग्य और (पितुः) पिता का (वर्द्धनम्) यश वा प्रेम बढ़ाने वाले (शिशुम्) वालक को (सचितौ) एक साथ रहने वाली (मातरा) धायी और माता (अभि, तरेते) दुःख से उत्तीर्ण करती (अस्य) इस वालक की वे (उभा) दोनों मातायें (कृष्णप्रुतौ) विद्वानों के उपदेश से चित्त के आकर्षण धर्म को प्राप्त हुई (वेविजे) निरन्तर कपती हैं अर्थात् डरती हैं कि कथंचित् वालक को दुःख न हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—भले बुरे का ज्ञान का बढ़ाने रोग आदि बड़े क्लेशों को दूर करने और प्रेम उत्पन्न कराने वाले विद्वानों के उपदेश को पाये हुए भी वालक की माता अर्थात् दूध पिलाने वाली धाय और उत्पन्न करने वाली निज माता अपने प्रेम से सर्वदा डरती हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

**मुमुक्ष्वो॒३ मन॑वे मान॒वस्य॒ते र॑घु॒द्रुव॑ः कृ॒ष्णसी॑-
तास ऊ॒ जुव॑ः । अ॒सम॒ना अ॑जि॒रासो॑ रघु॒ष्यदो॒
वात॑जूता॒ उप॑ युज्यन्त आ॒शव॑ः ॥ ४ ॥**

मुमुक्षवः । मनवे । मानवस्यते । रघुऽद्रुवः । कृष्णऽसीतासः । ऊँ इति । जुवः । असमनाः । अजिरासः । रघुऽस्यदः । वातऽजूताः । उप । युज्यन्ते । आशवः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(मुमुक्षवः) मोक्तुमिच्छन्तः । अत्र जसादिषु वा वचनमिति गुणाभावः (मनवे) (मानवस्यते) मानवान् आत्मन इच्छते (रघुद्रुवः) ये रघून्यास्वादनीयान्यन्नानि द्रवन्ति (कृष्णसीतासः) कृष्णा कृषिसाधिनी सीता येषां ते (उ) (जुवः) जववन्तः (असमनाः) असमानमनस्काः (अजिरासः) प्राप्तशीलाः (रघुस्यदः) ये रघूषु स्यन्दन्ते (वातजूताः) वातइव जूतं शीघ्रगमनं येषान्ते (उप) (युज्यन्ते) अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (आशवः) शुभगुणव्यापिनः ॥ ४ ॥

अन्वयः—ये मुमुक्षवस्ते यथा रघुद्रुवो जुवोऽसमना अजिरासो रघुस्यदो वातजूता आशवः कृष्णसीतासः कृषीवलाः कृषिकर्मण्युउपयुज्यन्ते तथा मानवस्यते मनवे विदुषे योगिन उपयुज्यन्ताम्॥४॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा कृषीवलाः क्षेत्राणि सम्यक् कर्षित्वा सुसंपाद्य वीजानि उप्त्वा फलवन्तो जायन्ते तथा मुमुक्षवो दमेनेन्द्रियाण्याकृष्य शमेन मनउपशाम्य स्वात्मानं पवित्रीकृत्य ब्रह्मविदो जनान् सेवेरन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (मुमुक्षवः) संसार से छूटने की इच्छा करने वाले हैं वे जैसे (रघुद्रुवः) स्वादिष्ठ अन्नों को प्राप्त होने वाले (जुवः) वेगवान् (असमनाः) एकसा जिन का मन न हो (अजिरासः) जिन को शील प्राप्त है (रघुस्यदः) जो

सन्मार्गों में चलने वाले (वातजूताः) और पवन के समान वेग युक्त (आशवः) शुभ गुणों में व्याप्त (कृष्णसीतासः) जिन के कि खेती का काम निकालने वाली हर की यष्टि विद्यमान वे खेतीहर खेती के कामों का (उ) तर्क वितर्क के साथ (उप, युञ्जते) उपयोग करते हैं वैसे (मानवस्यते) अपने को मनुष्यों की इच्छा करने वाले (मनवे) मननशील विद्वान् योगी पुरुष के लिये उपयोग करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे खेती करने वाले जन खेतों को अच्छे प्रकार जोत बोने के योग्य भली भांति करके और उस में बीज बोय फलवान् होते हैं वैसे मुमुक्षु पुरुष दम नियम से इन्द्रियों को खैंच और शम अर्थात् शान्तिभाव से मन को शान्त कर अपने आत्मा को पवित्र कर ब्रह्म-वेत्ता जनों की सेवा करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः । यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशद-भिश्वसन्स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

आत् । अस्य । ते । ध्वसयन्तः । वृथा । ईरते । कृष्णम् । अभ्वम् । महि । वर्पः । करिक्रतः । यत् । सीम् । महीम् । अवनिम् । प्र । अभि । मर्मृशत् । अभिऽश्वसन् । स्तनयन् । एति । नानदत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

पदार्थः—(आत्) आनन्तर्ये (अस्य) (ते) (ध्वसयन्तः) ध्वसमिवाचरन्तः (वृथा) मिथ्या (ईरते) (कृष्णम्) वर्णम्

(अभ्वम्) अभवन्तम् (महि) महत् (वर्पः) (करिक्रतः) येऽतिशयेन कुर्वन्ति (यत्) ये (सीम्) सर्वतः (महीम्) महतीम् (अवनिम्) पृथिवीम् (प्र) (अभि) (मर्मृशत्) अतिशयेन सहमानः (अभिश्वसन्) सर्वतः श्वसन्प्राणं धरन् (स्तनयन्) विद्युदिव शब्दयन् (एति) गच्छति (नानदत्) अतिशयेन नादं कुर्वन् ॥ ५ ॥

अन्वयः—यद्ये कृष्णमभ्वं महि वर्पो ध्वसयन्तः करिक्रतो वृथा प्रेरते तेऽस्य मोक्षस्य प्राप्तिं नार्हन्ति यो महीमवनिमभिमर्मृशदभिश्वसन् नानदत् स्तनयन् शुभान् गुणान् सीमेति आत् स मुक्तिमाप्नोति ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या इह शरीरमवलंब्याधर्ममाचरन्ति ते दृढं बन्धमाप्नुवन्ति ये च शास्त्राण्यधीत्य योगमभ्यस्य धर्ममनुतिष्ठन्ते तेषामेव मुक्तिर्जायतइति ॥ ५ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (कृष्णम्) काले वर्ण के (अभ्वम्) न होने वाले (महि) बड़े (वर्पः) रूप को (ध्वसयन्तः) विनाश करने हुए से (करिक्रतः) अत्यन्त कार्य करने वाले जन (वृथा) मिथ्या (प्रेरते) प्रेरणा करते हैं (ते) वे (अस्य) इस मोक्ष की प्राप्ति को नहीं योग्य हैं जो (महीम्) बड़ी (अवनिम्) पृथिवी को (अभि, मर्मृशत्) सब ओर से अत्यन्त सहता (अभिश्वसन्) सब ओर से श्वास लेता (नानदत्) अत्यन्त बोलता और (स्तनयन्) बिजुली के समान गर्जना करता हुआ अच्छे गुणों को (सीम्) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है (आत्) इस के अनन्तर वह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस संसार में शरीर का आश्रय कर अधर्म करते हैं वे दृढ बंधन को पाते हैं और जो शास्त्रों को पढ़ योगाभ्यास कर धर्म का अनुष्ठान करते उन्हीं की मुक्ति होती है ॥ ५ ॥

के जना इह शोभन्तइत्याह ॥
कौन मनुष्य इस जगत् में शोभायमान होते हैं इस वि० ॥

भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत्। ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥

भूषन्। न। यः। अधि। बभ्रूषु। नम्नते। वृषाऽइव। पत्नीः। अभि। एति। रोरुवत्। ओजायमानः। तन्वः। च। शुम्भते। भीमः। न। शृंगा। दविधाव। दुःऽगृभिः॥६॥

पदार्थः—(भूषन्) अलंकुर्वन् (न) इव (यः) (अधि) (बभ्रूषु) धर्म धरन्तीषु (नम्नते) (वृषेव) यथा वृषा (पत्नीः) यज्ञसम्बन्धिनीः स्त्रियः (अभि) (एति) प्राप्नोति (रोरुवत्) अतिशयेन शब्दयन् (ओजायमानः) ओजइवाचरन् (तन्वः) तनूः शरीराणि (च) (शुम्भते) सुशोभते। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (भीमः) भयंकरः (न) इव (शृङ्गा) शृङ्गाणि (दविधाव) भृशं चालयति (दुर्गृभिः) दुःखेन ग्रहीतुं योग्यैः॥६॥

अन्वयः—यो भूषन्नेव बभ्रूष्वधिनम्नते पत्नीरोरुवद्वृषेव बलं दुर्गृभिर्भीमः सिंहः शृंगा नेवौजायमानस्तन्वश्च शुम्भते दविधाव सोऽत्यन्तं सुखमभ्येति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये सिंहवच्छत्रुदुर्ग्राह्या वृषभवद्बलिष्ठाः पुष्टाऽऽरोग्यशरीरा महौषधिसेविनः सर्वान् सज्जनान् भूषयेयुस्तेऽत्र सुशोभन्ते ॥ ६ ॥

विज्ञापनपत्र

श्रीमद्वैदिकमार्गमूलभवनं यज्जैनबौद्धादिनाम् ।
अन्येषां यवनादिदुर्मदभ्रमापन्नं विपन्नं भुवि ।
मग्नं जीर्णमभूत् निरंकुशमभितः कालप्रवाहेण तत्-
उद्धर्तुं यतमान एष पुरुषः स्वामी दयानन्दजित् ॥ १ ॥
येन स्वीयसमस्तसौख्यनिचयं संत्यज्य सांसारिकं—
स्वार्थं व्यर्थमिति प्रपद्य मनसा संस्थापितं जीवितम् ।
पुण्याः सूपक्ति यासु वेदविषयान्वेषे विशेषेण यो-
गर्हां चापि स्वकं विसृज्य सततं देशोपकारे स्थितम् ॥ २ ॥
ईदृक्पूज्यपवित्रचारुपुरुषार्थान् वीक्ष्य तत्प्रसृतौ—
विष्णोः पुत्रवरो हि मोहनसमाभिख्यः सुधीः सद्विधिः ।
आरभ्यापि तदीयजीवनचरित्रं पत्रमेतत्पुरः
प्रीत्या प्रेमिजनेषु तेषु विदधात्येतत्सहायार्थतः ॥ ३ ॥

आप को ज्ञात होगा कि मैंने श्रीमती परोपकारिणीसभा और समस्त आर्य्यसमाजों के आज्ञानुसार परमपद-प्राप्त श्रीमत्परमपूजनीय परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामी जी महाराज का सत्य जीवनचरित्र लिखना प्रारम्भ किया है और उक्त सभा और समाजों ने सर्वरीत्या मुझ को सहायता देना भी स्वीकार किया है अतएव आप को मैं इस पत्र द्वारा श्रम देकर निवेदन करता हूं कि नीचे लिखी सहायताओं में से जो आप स्वयं दे सकें अथवा दूसरे से दिलासकें वह तन मन और धन से उपार्जन कर मुझे देवें क्योंकि जो काम आप महाशयों ने मेरे सुपुर्द किया है वह मैं चाहता हूं कि आप सर्व साधारणों की सहायता से ऐसा प्रणीत हो कि मानो अपने सर्व साधारणों ने उसे सम्मत होकर संपादन किया है और जो आपलोग अन्तःकरण से प्रयत्न करके यह अथवा इस से भी कुछ विशेषसामग्री प्रदान कर मुझे सहायता देंगे तो यह जीवनचरित्र निःसंदेह बहुत ही अच्छा लिखा जावेगा और जो २ महाशय जो २ सहायता मुझ को देंगे उस के लिये मैं प्रस्तावनामें उन के अनेक धन्यवाद प्रकाश करूंगा इस सामग्री की सहायता के विना जो सामग्री कि मेरे पास है उस से मैंने बहुत कुछ तो लिख लिया है और लिखता जाता हूं परन्तु फिर भी मांगने से मेरा अभिप्राय यह है कि जो २ सहायता आप लोगों से मुझको मिलती जाय उस से मैं मेरे लेख को शोधता जाऊं — मेरा यह भी विचार है कि जब यह ग्रंथ पूरा होजावे गा तब मैं श्रीमती परोपकारिणी सभा और समस्त आर्यसमाजों के विद्वान् महाशयों में से चुन कर एक सभा एकत्र करूंगा और उस में यह ग्रन्थ पहिले पढ़ सुनाऊंगा कि यदि उस में कोई भूल जो मेरे से भी रह गई हो वह बिलकुल न रहै। इस नीचे लिखी सामग्री की सहायता आपलोगों से मुझको छः महिनों के भीतर मिल जानी चाहिये:—

१ आप के पास अथवा आप के किसी इष्ट मित्रादि के पास अथवा समाज के दफतर में जो स्वामी जी महाराज के लिखे कोई पत्र, तार, सार्टीफिकट, शास्त्रार्थ के विज्ञापनपत्र, वादविवाद प्रश्नोत्तर, और मुखतारनामे आदि चाहे जिस आशय के हों वह असल अथवा उन की नकल कराके आप मेरे पास भेज देवें और जो आप असल ही भेजें गे तो मैं उन की नकलें कराके आप के पास पीछे भेज दूंगा ॥

२ आप के नगर में स्वामी जी महाराज यावज्जीवन समय में जितनीवार पधारे हों और जितने दिन निवास किया हो और आप लोगों ने जो २ सहायता उन को दिई हो और जिन २ [illegible] में वे ठहरे हों और शास्त्रार्थ आदि के जो मारके गुजरे हों और उन के साथ आप का जो व्यवहार पड़ा हो और उस व्यवहार में जो २ आप के देखने और जानने में उन के गुण और स्वभाव आये हों वह आप सत्य २ संवत् मिति सहित लिख भेजें [illegible] जीवन चरित्र लिखा जाता है वे केवल सत्य पर [illegible] आसक्त थे ॥

३ आप जो स्वामी जी [illegible] नौकर रहे हों और उन के साथ में जहां २ भ्रमण किया हो और जो २ सेवा आपलोगों ने [illegible] हो उन के सब सत्य सत्य समाचार [illegible] मिती वार लिख भेजें ॥

४ आप ने जो स्वामी जी महाराज से कुछ पढ़ा लिखा हो और [illegible] विषय की प्रतिज्ञा [illegible] हो अथवा संन्यासादि ग्रहण किया हो तो तद्विषयिक सब समाचार [illegible] लिख भेजें ॥

५ स्वामी जी के साथ आप जोधपुर आदि में रहे हों और जो २ [illegible] वहां बरते हों [illegible] लिख भेजें ॥

६ स्वामी जी के पास परमपद प्राप्त होने के समय जो आप अजमेर में उपस्थित हों तो तद्विषयिक सब समाचार जैसे आप को ज्ञात हों लिख भेजें ॥

७ समस्त आर्य समाजों में से जिस २ में जो २ समाचार पत्र प्रकाशित होते हों [illegible] पिक पुस्तक अर्थात् आज तक के सब अङ्क विना मूल्य लिखे [illegible] देवें कि वे मेरे इस कार्य में सहायक हों और इस के सिवाय [illegible] पत्र के आरम्भ से प्रत्येक वर्ष के पुस्तक मेरे पास विना मूल्य के [illegible] आभारी हूंगा—और मेरा कार्य हो जाने पर मैं इन पुस्तकों को [illegible] के नाम से [illegible] पुस्तकालय [illegible] भेंट कर दूंगा ॥

८ जो २ महाशय स्वामी जी महाराज के प्रकाश किये सनातन वेद विद्यासम्बन्धी सिद्धान्तों को मानते हों अथवा उन को प्रसन्न करते हों वह अपने नाम पते सहित मुझ को लिख भेजें अथवा एक [illegible] पर अनेक अपने २ नाम लिख कर भेज देवें और जो वे किसी आर्यसमाज से संबन्ध रखते हों तो उस का भी नाम लिख भेजें ॥

९ समस्त आर्यसमाजें अपना नाम ग्राम प्रान्त स्थापन होने का संवत् और मिती प्रतिष्ठित [illegible] के नाम जो पाठशाला वा अनाथालयादि कोई हों तो उन के नाम, समाज का निज स्थान है अथवा वह भाड़े के स्थान में होता है और अपने आर्य सभासद और आर्यों की नामावली जातिसहित लिख भेजें तो अत्युत्तम है और आगे को नए स्थापन हुए समाज लिख भेजते रहें ॥

१० जो कोई बात मैं लिखते भूल गया होऊं और आप को स्मरण आ जावे तो उसे भी आप लिख भेजें ॥

११ इस निवेदन पत्र के आशय को जिस के पास यह हो वह प्रत्येक आर्य सभासद अथवा आप को ज्ञात कर दे कि जिस में सर्व साधारण मुझ को सहायता देने को प्रवृत्त हों ॥

अवदीय अकिंचन
ह० मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या
मंत्री
श्रीमती परोपकारिणी सभा
उदयपुर

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर

प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)

एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इसग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।॰) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥॰) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रिताङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालय मेनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (९८, ९९) अंक (८२, ८३)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४३ भाद्र शुक्ल पक्ष

१—९—८६

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान नववें वर्ष के कि जो ७८ । ७९ अङ्क से प्रारंभ हो कर ८८ । ८९ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के आठ वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है :-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" बिना जिल्द की ५।/)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ६)

[ख] एक वेद के ७७ अङ्क तक २५॥/) और दोनों वेदों के ५१।/)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को बिना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।/) दो अङ्क ॥/) तीनअङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६] दाम जिस कोजिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्रों में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायं गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पत्ते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीकठीक पंहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

पदार्थः—(यः) जो (भूषन्) अलंकृत करता हुआ (न) सा (वभ्रूषु) धर्म की धारणा करने वालियों में (अधि, नम्नते) अधिक नम्र होता वा (पत्नीः) यज्ञसंबंध करने वाली स्त्रियों को (रोरुवत्) अत्यन्त बातचीत कह सुनाता वा (वृषेव) बैल के समान बल को और (दुर्गृभिः) दुःख से पकड़ने योग्य (भीमः) भयंकर सिंह (शृंगा) सींगों को (न) जैसे वैसे (ओजायमानः) बल के समान आचरण करता हुआ (तन्वः)शरीर को(च) भी (शुम्भते) सुन्दर शोभायमान करता वा (दुविधत्व) निरन्तर चलाना अर्थात् उन से चेष्टा करता वह अत्यन्त सुख को (अभि, एति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य सिंह के तुल्य शत्रुओं से अग्राह्य बैल के तुल्य अति बली पुष्ट नीरोग शरीर वाले बड़ी ओषधियों के सेवक सब सज्जनों को शोभित करें वे इस जगत् में शोभायमान होते हैं ॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये । पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥

सः । सम्ऽस्तिरः । विऽस्तिरः । सम् । गृभायति । जानन् । एव । जानतीः । नित्यः । आ । शये । पुनः । वर्धन्ते । अपि । यन्ति । देव्यम् । अन्यत् । वर्पः । पित्रोः । कृण्वते । सचा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(सः) (संस्तिरः) सम्यगाच्छादकः (विस्तिरः) सुखविस्तारकः (सम्) (गृभायति) गृह्णाति । अत्र हस्य भः श्नः

शायच् (जानन्) (एव) (जानतीः) ज्ञानयुक्ताः (नित्यः) (आ) (शये) (पुनः) (वर्धन्ते) (अपि) (यन्ति) (देव्यम्) देवेषु विद्वत्सु भवम् (अन्यत्) (वर्पः) रूपम् (पित्रोः) जननीजनकयोः (कृण्वते) कुर्वन्ति (सचा) समवेतम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा स संस्तिरो विष्टिरो विद्वान् संगृभायति तथा जानन्नित्यो ऽहं जानतीरेवाशये । ये पित्रोरन्यद्देव्यं वर्पोऽपियन्ति ते पुनर्वर्धन्ते कृण्वते च तथा यूयमपि सचा कुरुत ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यैर्विद्यावद्भिः सह विदुषीणां विवाहो जायते ते नित्यं वर्धन्ते । ये सद्गुणान्गृह्णन्ति तेऽत्र पुरुषार्थिनो भूत्वा जन्मान्तरेऽपि सुखिनो जायन्ते ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सः) वह (संस्तिरः) अच्छा ढांपने (विष्टिरः) वा सुख फैलाने वाला विद्वान् (सं, गृभायति) सुन्दरता से अच्छे पदार्थों का ग्रहण करता वैसे (जानन्) जानता हुआ (नित्यः) नित्य मैं (जानतीः) ज्ञानवती उत्तम स्त्रियों के (एव) ही (आ, शये) पास सोता हूं । जो (पित्रोः) माता पिता के (अन्यत्) और (देव्यम्) विद्वानों में प्रसिद्ध (वर्पः) रूपको (अपि, यन्ति) निश्चय से प्राप्त होते हैं वे (पुनः) वार २ (वर्द्धन्ते) बढ़ते हैं और (कृण्वते) उत्तम २ कार्य्यों को भी करते हैं वैसे तुम भी (सचा) मिला हुआ काम किया करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जिन विद्वानोंके साथ विदुषी स्त्रियों का विवाह होता है वे विद्वान् जन नित्य बढ़ते हैं जो उत्तम गुणों का ग्रहण करते वे यहां पुरुषार्थी होकर जन्मान्तर में भी सुखयुक्त होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः। तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥

तम् । अग्रुवः । केशिनीः । सम् । हि । रेभिरे । ऊर्ध्वाः । तस्थुः । मम्रुषीः । प्र । आयवे । पुनरिति । तासाम् । जराम् । प्रऽमुञ्चन् । एति । नानदत् । असुम् । परम् । जनयन् । जीवम् । अस्तृतम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(तम्) विद्वांसं पतिम् (अग्रुवः) अग्रगण्याः (केशिनीः) प्रशंसनीयकेशाः (सम्) (हि) खलु (रेभिरे) (ऊर्ध्वाः) उच्चपदव्यः (तस्थुः) तिष्ठन्ति (मम्रुषीः) म्रियमाणाः (प्र,आयवे) प्रापणाय (पुनः) (तासाम्) (जराम्) वृद्धाऽवस्थाम् (प्रमुञ्चन्) हापयन् (एति) प्राप्नोति(नानदत्) (असुम्) प्राणम् (परम्) इष्टम् (जनयन्) प्रकाशयन् (जीवम्) जीवात्मानम् (अस्तृतम्) अहिंसितम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—या अग्रुवः केशिनीस्तं संरेभिरे ता हि प्रायवे मम्रुषीः पुनरूर्ध्वास्तस्थुः । योऽस्तृतं परमसुं जीवं नानदत् तासां जरां प्रमुंचन् विद्या जनयन् सुशिक्षाः प्रचारयति स उत्तमं जन्मैति ॥ ८ ॥

भावार्थः—याः कन्या ब्रह्मचर्य्येणाऽखिला विद्या अभ्यस्यन्ति ता इह प्रशंसिता भूत्वा बहु सुखं भुक्त्वा जन्मान्तरेऽपि श्रेष्ठं सुखं प्राप्नुवन्ति ये विद्वांसोपि शरीरात्मबलं न हिंसन्ति ते जरारोगरहिता जायन्ते ॥ ८ ॥

पदार्थः—जो (अग्रुवः) अग्रगण्य (केशिनीः) प्रशंसनीय केशों वाली युवावस्था को प्राप्त होती हुई कन्या (तम्) उस विद्वान् पति को (सं, रेभिरे) सुन्दरता से कहती हैं वे (हि) ही (प्रायवे) पठाने अर्थात् दूसरे देश उस पति के पहुंचाने को (मम्रुषीः) मरीसीं हों (पुनः) फिर उसी के घर आने समय (ऊर्ध्वाः) ऊंचीं पदवी पाये हुई सी (तस्थुः) स्थिर होती हैं जो (अस्तृतम्) नष्ट न किया गया (परम्) सब को इष्ट (असुम्) ऐसे प्राण को वा (जीवम्) जीवात्मा को (नानदत्) निरन्तर रटावे और (तासाम्) उक्त उन कन्याओं के (जराम्) बुढ़ापे को (प्रमुञ्चन्) अच्छे प्रकार छोड़ता और विद्याओं को (जनयन्) उत्पन्न कराता हुआ उत्तम शिक्षाओं का प्रचार कराता है वह उत्तम जन्म (एति) पाता है ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो कन्या जन ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं का अभ्यास करती हैं वे इस संसार में प्रशंसित हो और बहुत सुख भोग जन्मान्तर में भी उत्तम सुख को प्राप्त होती हैं और जो विद्वान् लोग भी शरीर और आत्मा के बल को नष्ट नहीं करते वे वृद्धावस्था और रोगों से रहित होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वऽभियाति वि ज्रयः । वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्त्तनीरह ॥ ९ ॥

अधीवासम् । परि । मातुः । रिहन् । अहं । तुविऽग्रेभिः।
सत्वऽभिः । याति । वि । ज्रयः । वयः । दधत् । पत्ऽवते ।
रेरिहत् । सदा । अनु । श्येनी । सचते । वर्त्तनिः । अहं ॥ ९ ॥

पदार्थः–(अधीवासम्) अधिवासमिव घासादिकम् (परि) (मातुः) मान्यप्रदायाः पृथिव्याः (रिहन्) परित्यजन् (अह) (तुविग्रेभिः) बहुशब्दवद्भिः (सत्वभिः) प्राणिभिः (याति) प्राप्नोति (वि) (ज्रयः) वेगयुक्तः (वयः) आयुः (दधत्) धरन् (पद्वते) पादौ विद्यते यस्य तस्मै (रेरिहत्) अतिशयेन त्यजेत् (सदा) (अनु) (श्येनी) शेनस्य स्त्री (सचते) प्राप्नोति (वर्त्तनिः) वर्त्तमानः (अह) निरोधे ॥ ९ ॥

अन्वयः–हे वीर यथा ज्रयोऽग्निर्मातुरधिवासं परिरिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्वियाति यथा च वर्त्तनिः श्येनी वयो दधत् पद्वते सचते तथा दुष्टाननु रेरिहत् सन् भवान् सदाह निगृह्णीयात् ॥९॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–हे मनुष्या यथाऽग्निर्जंगलानि दहति पर्वतान् त्रोटयति तथाऽन्यायमधार्मिकांश्च निवर्त्य दुष्टानामभिमानान् त्रोटयित्वा सत्यधर्मं यूयं प्रचारयत ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे वीर जैसे (ज्रयः) वेगयुक्त अग्नि (मातुः) मान देने वाली पृथिवी के(अधिवासम्) ऊपर से शरीर को जिस से ढांपते उस वस्त्र के समान घास आदि को (परि, रिहन्) परित्याग करता हुआ (अह) प्रसिद्ध में (तुविग्रेभिः) बहुत शब्दों वाले (सत्वभिः) प्राणियों के साथ (वि, याति) विविध प्रकार से प्राप्त होता है और जैसे (वर्त्तनिः) वर्त्तमान (श्येनी)

वाज पक्षी की स्त्री वाजिनी (वयः)अवस्था को (दधत्) धारण करती हुई (पद्वते) पगों वाले द्विपद चतुष्पद प्राणी के लिये (सचते) प्राप्त होती है वैसे दुष्टों को (अनु, रेरिहत्) अनुक्रम से वार २ छोड़ते हुए आप (सदा) सदा (अह) ही उन को निग्रह स्थान को पहुंचाओ ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे अग्नि जंगलादिकों को जलाता वा पर्वतों को तोड़ता वैसे अन्याय और अधर्मात्माओं की निवृत्ति कर और दुष्टों के अभिमानों को तोड़ के सत्य धर्म का तुम प्रचार करो ॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः । अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

अस्माकम् । अग्ने । मघवत्ऽसु । दीदिहि । अध । श्वसीवान् । वृषभः । दमूनाः । अवऽअस्य । शिशुऽमतीः । अदीदेः । वर्मऽइव । युत्ऽसु । परिऽजर्भुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

पदार्थः—(अस्माकम्) (अग्ने) पावकइव वर्त्तमान (मघवत्सु) बहुधनेषु (दीदिहि) प्रकाशय (अध) अनन्तरम् (श्वसीवान्) प्राणवान् (वृषभः) श्रेष्ठः (दमूनाः) दान्तः (अवास्य) विरुद्धतया प्रक्षिप्य । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (शिशुमतीः) प्रशस्ताः शिशवो बालका विद्यन्ते यासां ताः (अदीदेः) प्रकाशयेः (वर्मेव) कवचमिव (युत्सु) संग्रामेषु (परिजर्भुराणः) परितः सर्वतोऽतिशयेन पुष्यन् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे अग्ने वृषभो दमूनाः श्वसीवान् परिजर्भुराणस्त्वमस्माकं युत्सु मघवत्सु वर्मेव शिशुमतीर्दीदिहि। अध दुःखान्यवास्य सुखान्यदीदेः ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—हे विद्वन् संग्रामे यथा वर्म्मणा शरीरं रक्ष्यते तथा न्यायेन प्रजा रक्षेः संग्रामे स्त्रियो न हन्याः। यथा धनाढ्यानां स्त्रियो नित्यं मोदन्ते तथैव प्रजा मोदयेः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पावक के समान वर्त्तमान विद्वान् (वृषभः) श्रेष्ठ (दमूनाः) इन्द्रियों का दमन करने वाले (श्वसीवान्) प्राणवान् और (परिजर्भुराणः) सब ओर से पुष्ट होते हुए आप (अस्माकम्) हमारे (युत्सु) संग्राम और (मघवत्सु) बहुत हैं धन जिन में उन घरों वा मित्रवर्गों में (वर्मेव) कवच के समान (शिशुमतीः) प्रशंसित बालकों वाली स्त्री वा प्रजाओं को (दीदिहि) प्रकाशित करो (अध) इस के अनन्तर दुःखों को (अवास्य) विरुद्धता से दूर पहुंचा सुखों को (अदीदेः) प्रकाशित करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—हे विद्वान् संग्राम में जैसे कवच से शरीर संरक्षित किया जाता है वैसे न्याय से प्रजाजनों की रक्षा कीजिये और युद्ध में स्त्रियों को न मारिये जैसे धनी पुरुषों की स्त्रियां नित्य आनन्द भोगती हैं वैसे ही प्रजाजनों को आनन्दित कीजिये ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते। यत्ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥ ११ ॥

इदम् । अग्ने । सुऽधितम् । दुःऽधितात् । अधि । प्रियात् । ऊं इति । चित् । मन्मनः । प्रेयः । अस्तु । ते । यत् । ते । शुक्रम् । तन्वः । रोचते । शुचि । तेन । अस्मभ्यम् । वनसे । रत्नम् । आ । त्वम् ॥ ११ ॥

पदार्थः–(इदम्) (अग्ने) विद्वन् (सुधितम्) सुष्ठु धृतम् (दुर्धितात्) दुःखेन धृतात् (अधि) (प्रियात्) (उ) वितर्के (चित्) अपि (मन्मनः) मम मनः (प्रेयः) अतिशयेन प्रियम् (अस्तु) भवतु (ते) तुभ्यम् (यत्) (ते) तव (शुक्रम्) शुद्धम् (तन्वः) शरीरस्य (रोचते) (शुचि) पवित्रकारकम् (तेन) (अस्माकम्) (वनसे) संभजसि (रत्नम्) (आ) (त्वम्) ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अग्ने दुर्धितादु प्रियात्सुधितामिदं मन्मनस्ते प्रेयोऽस्तु यत्ते चित् तन्वः शुचि शुक्रमधिरोचते तेनास्मभ्यं त्वं रत्नमावनसे ॥ ११ ॥

भावार्थः–मनुष्यैर्दुःखान्न शोचितव्यं सुखाच्च न हर्षितव्यं यतः परस्परस्योपकाराय चित्तं संलग्येत यदैश्वर्यं तत्सर्वेषां सुखाय विभज्येत ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् (दुर्धितात्) दुःख के साथ धारण किये हुए व्यवहार (उ) वा तो (प्रियात्) प्रिय व्यवहार से (सुधितम्) सुन्दर धारण किया हुआ (इदम्) यह (मन्मनः) मेरा मन (ते) तुम्हारा (प्रेयः) अतीव पियार (अस्तु) हो और (यत्) जो (ते) तुम्हारा (चित्) निश्चय के साथ

(तन्वः) शरीर का (शुचि) पवित्र करने वाला (शुक्रम्) शुद्ध पराक्रम (अधिरोचते) अधिकतर प्रकाशमान होता है (तेन) उस से (अस्मभ्यम्) हमलोगों के लिये (त्वम्) आप (रत्नम्) मनोहर धन का (आ, वनसे) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को दुःख से शोच न करना चाहिये और न सुख से हर्ष मानना चाहिये जिस से एक दूसरे के उपकार के लिये चित्त अच्छे प्रकार लगाया जाय और जो ऐश्वर्य हो वह सब के सुख के लिये बांटा जाय ॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

रथा॑य॒ नाव॑मु॒त नो॑ गृ॒हाय॒ नित्या॑रित्रां प॒द्वतीं॑ रास्यग्ने । अ॒स्माकं॑ वी॒राँ उ॒त नो॑ म॒घोनो॒ जनाँ॑श्च॒ या पा॒रया॒च्छर्म॒ या च॑ ॥ १२ ॥

रथा॑य । नाव॑म् । उ॒त । नः॒ । गृ॒हाय॑ । नित्य॑ऽअरित्राम् । प॒त्ऽवती॑म् । रा॒सि॒ । अग्ने॑ । अ॒स्माक॑म् । वी॒रान् । उ॒त । नः॒ । म॒घोनः॑ । जना॑न् । च॒ । या । पा॒रया॑त् । शर्म॑ । या । च॒ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(रथाय) समुद्रादिषु रमणाय (नावम्) बृहतीं नौकाम् (उत) अपि (नः) अस्माकम् (गृहाय) निवासस्थानाय (नित्यारित्राम्) नित्यानि अरित्राणि स्नौतंभनानि जलगांभीर्य्यपरीक्षकाणि यस्यां ताम् (पद्वतीम्) पादाइव प्रशस्तानि चक्राणि विद्यन्ते यस्यां ताम् (रासि) ददासि (अग्ने) प्राप्तशिल्पविद्य

(अस्माकम्) (वीरान्) अतिरथान्योद्धॄन् (उत) अपि (नः) अस्मान् (मघोनः) धनाढ्यान् (जनान्) प्रसिद्धान् विदुषः (च) (या) (पारयात्) समुद्रपारं गमयेत् (शर्म) गृहम् (या) (च) ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वँस्त्वं या अस्माकं वीरानुत मघोनो जनाञ्जनोऽस्माँश्च समुद्रं पारयात् या च नः शर्मागमयेत् तां नित्यारित्रां पद्वतीं नावं नो रथायोत गृहाय रासि ॥ १२ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिर्यथा मनुष्या अश्वादयश्च पद्भ्यां गच्छन्ति तादृशीं बृहतीं नावं रचयित्वा द्वीपान्तरे समुद्रे युद्धाय,व्यवहाराय च गत्वाऽऽगत्य ऐश्वर्योन्नतिः सततं कार्य्या ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) शिल्पविद्या पाये हुए विद्वान् आप (या) जो (अस्माकम्) हमारे (वीरान्) वीरों (उत) और भी (मघोनः) धनवान् (जनान्) मनुष्यों और (नः) हम लोगों को (च) भी समुद्र के (पारयात्) पार उतारे (च) और (या) जो हम को (शर्म) सुख को अच्छे प्रकार प्राप्त करे उस (नित्यारित्राम्) नित्य दृढ बन्धन युक्त जल की गहराई की परीक्षा करते हुए स्तम्भों तथा (पद्वतीम्) पैरों के समान प्रशंसित पहियों से युक्त (नावम्) बड़ी नाव को (नः) हमारे (रथाय) समुद्र आदि में रमण के लिये (उत) वा (गृहाय) घर के लिये (रासि) देते हो ॥ १२ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जैसे मनुष्य और घोडे आदि पशु पैरों से चलते हैं वैसी चलने वाली बड़ी नाव रच के और एक द्वीप से दूसरे द्वीप वा समुद्र में युद्ध अथवा व्यवहार के लिये जाय आय करके ऐश्वर्य्य की उन्नति निरंतर करें ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्त्ताः। गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

अभि । नः । अग्ने । उक्थम् । इत् । जुगुर्याः । द्यावाक्षामा । सिन्धवः । च । स्वऽगूर्त्ताः । गव्यम् । यव्यम् । यन्तः । दीर्घा । अहा । इषम् । वरम् । अरुण्यः । वरन्त ॥ १३ ॥

पदार्थः—(अभि) आभिमुख्ये। अत्र संहितायामिति दीर्घः (नः) अस्मान् (अग्ने) विद्वन् (उक्थम्) प्रशंसनीयम् (इत्) (जुगुर्याः) उद्यच्छेः। उद्यमिनः कुर्याः (द्यावाक्षामा) अन्तरिक्षं भूमिश्च (सिन्धवः) समुद्रा नद्यश्च (च) (स्वगूर्त्ताः) स्वैरुद्यताः (गव्यम्) गोर्विकारं दुग्धादिकं सुवर्णादिकम्वा (यव्यम्) यवानां भवनं क्षेत्रम् (यन्तः) प्राप्नुवन्तः (दीर्घा) दीर्घाणि (अहा) दिनानि (इषम्) अन्नम् (वरम्) रत्नादिकम् (अरुण्यः) उषःकालाः (वरन्त) स्वीकुर्युः। अत्र व्यत्ययेन शप् ॥ १३ ॥

अन्वयः—यथा द्यावाक्षामा सिन्धवोऽरुण्यश्च वरमिषमुक्थं गव्यं यव्यं यन्तः स्वगूर्त्ताः सन्तः दीर्घाहा वरन्त तथाग्ने नोऽभीज्जुगुर्य्याः ॥ १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैः सदा पुरुषार्थिभिर्भवितव्यं यैर्यानैः भूम्यन्तरिक्षसमुद्रनदीषु सुखेन सद्यो गमनं स्यात्तानि

यानान्यारुह्य प्रतिदिनं रजन्याश्चतुर्थे प्रहर उत्थाय दिवसेऽसुप्त्वा सदा प्रयतितव्यं यतउद्यमिनऐश्वर्यमुपयन्त्यत इति ॥ १३ ॥

अत्र विद्वत्पुरुषार्थगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति चत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—जैसे (द्यावाक्षामा) अन्तरिक्ष और भूमि (सिन्धवः) समुद्र और नदी तथा (अरुण्यः) उषःकाल (च) और (वरम्) उत्तम रत्नादि पदार्थ (इषम्) अन्न (उक्थम्) प्रशंसनीय (गव्यम्) गौ का दूध आदि वा (यव्यम्) जौ के होने वाले खेत को (यन्तः) प्राप्त होते हुए (स्वगूर्त्ताः) अपने २ स्वाभाविक गुणों से उद्यत (दीर्घा) बहुत (अहा) दिनों को (वरन्त) स्वीकार करें वैसे हे (अग्ने) विद्वान् (नः) हमलोगों को (अभि, इन्, जुगुर्याः) सब ओर से उद्यम ही में लगाइये ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—मनुष्यों को सदा पुरुषार्थी होना चाहिये जिन यानों से भूमि अन्तरिक्ष समुद्र और नदियों में सुख से शीघ्र जाना हो उन यानों पर चढ़ कर प्रतिदिन रात्रि के चौथे पहर में उठ कर और दिन में न सोय कर सदा प्रयत्न करना चाहिये जिस से उद्यमी ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के पुरुषार्थ और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥ यह एकसौ चालीस का सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

बळित्थेत्यस्य त्रयोदशर्चस्यैकचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता १ । २ । ३ । ६ । ११ । जगती ४ । ७ । ९ ।१० निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः।५ स्वराट् त्रिष्टुप्८ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः।१२ भुरिक् पङ्क्तिः १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमःस्वरः॥

पुनर्विद्वद्गुणानुपदिशति ॥

अब एक सौ इकतालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि । यदीमुपह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥

बट् । इत्था । तत् । वपुषे । धायि । दर्शतम् । देवस्य । भर्गः । सहसः । यतः । जनि । यत् । ईम् । उप । ह्वरते । साधते । मतिः । ऋतस्य । धेनाः । अनयन्त । सस्रुतः ॥ १ ॥

पदार्थः—(बट्) सत्यम् (इत्था) अनेन प्रकारेण विदुषः (तत्) (वपुषे) सुरूपाय (धायि) ध्रियेत (दर्शतम्) द्रष्टव्यम् (देवस्य) विदुषः (भर्गः) शुद्धं तेजः (सहसः) विद्याबलवतः (यतः) (जनि) उत्पद्यते । अत्राऽडभावः (यत्) (ईम्) सर्वतः (उप) (ह्वरते) (साधते) (मतिः) प्रज्ञा (ऋतस्य) सत्यस्य (धेनाः) वाण्यः (अनयन्त) नयन्ति (सस्रुतः) याः समानं सत्यं मार्गं स्रुवन्ति गच्छन्ति ताः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यद् दर्शतं देवस्य भर्गः प्रति मम मतिरुपह्वरते साधते च सस्रुत ऋतस्य धेना ईमनयन्त यतस्तत् सहसो जनि ततस्तद् बडित्था वपुषे युष्माभिर्धायि ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यया प्रज्ञया वाचा सत्याचारेण च विद्यावतां द्रष्टव्यं स्वरूपं ध्रियते कामश्च साध्यते तां वाचं तत्सत्यं च यूयं नित्यं स्वीकुरुत ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जिस (दर्शतम्) देखने योग्य (देवस्य) विद्वान् के (भर्गः) शुद्ध तेज के प्रति मेरी (मतिः) बुद्धि (उपह्वरते) जाती कार्य सिद्धि करती और (सस्रुतः) जो समान सत्यमार्ग को प्राप्त होतीं वे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार की (धेनाः) वाणियोंको (ईम्) सब ओर से (अनयन्त) सत्यता को पहुचातीं तथा (यतः) जिस कारण (तत्) वह तेज (सहसः) विद्याबल से (जनि) उत्पन्न होता उस कारण (बडित्था) वह सत्य तेज अर्थात् विद्वानों के गुणों का प्रकाश इस प्रकार अर्थात् उक्त रीति से (वपुषे) अपने सुरूप के लिये तुमलोगों से (धायि) धारण किया जाय ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस उत्तम बुद्धि और सत्य आचरण से विद्यावानों का देखने योग्य स्वरूप धारण किया जाता और काम सिद्ध किया जाता उस वाणी और उस सत्य आचार को तुम नित्य स्वीकार करो ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु। तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

पृक्षः । वपुः । पितुऽमान् । नित्यः । आ । शये । द्वितीयम् । आ । सप्तऽशिवासु । मातृषु । तृतीयम् । अस्य । वृषभस्य । दोहसे । दशऽप्रमतिम् । जनयन्त । योषणः ॥ २ ॥

पदार्थः—(पृक्षः) प्रष्टव्यम् (वपुः) सुन्दरं रूपम् (पितुमान्) प्रशस्तान्नयुक्तः (नित्यः) नित्यस्स्वरूपः (आ) (शये) (द्वितीयम्) (आ) (सप्तशिवासु) सप्तविधासु कल्याणकारिणीषु (मातृषु) मान्यकारिकासु (तृतीयम्) (अस्य) (वृषभस्य) यज्ञादिकर्मद्वारा वृष्टिकरस्य (दोहसे) कामानां प्रपूरणाय (दशप्रमतिम्) दशधा प्रकृष्टा मतिर्यस्मिँस्तम् (जनयन्त) प्रकटयन्ति (योषणः) मिश्रणशीला युवतयः ॥ २ ॥

अन्वयः—नित्यः पितुमान् अहं प्रथमं पृक्षो वपुराशयेऽस्य वृषभस्य मम द्वितीयं सप्तशिवासु मातृष्वावर्त्तते तृतीयं दशप्रमतिं वपुर्दोहसे योषणो जनयन्त ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या अत्र सप्तविधेषु लोकेषु ब्रह्मचर्य्येणादिमं गृहाश्रमेण द्वितीयं वानप्रस्थसन्यासाभ्यां तृतीयं कर्मोपासनविज्ञानं लभन्ते ते दशानामिन्द्रियाणां प्राणानां च विषयमनोबुद्धिचित्ताऽहंकारजीवानां च ज्ञानं प्राप्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—(नित्यः) नित्य (पितुमान्) प्रशंसित अन्नयुक्त मैं पहिले (पृक्षः) पूंछने कहने योग्य (वपुः) सुन्दर रूप का (आशये) आशय लेता अर्थात् आश्रित होता हूं (अस्य) इस (वृषभस्य) यज्ञादि कर्म द्वारा जल वर्षाने वाले का मेरा (द्वितीयम्) दूसरा सुन्दर रूप (सप्तशिवासु) सात

प्रकार की कल्याण करने (मातृषु) और मान्य करने वाली माताओं के समीप (आ) अच्छे प्रकार वर्त्तमान और (तृतीयम्) तीसरा (दशप्रमतिम्) दश प्रकार की उत्तम मति जिस में होती उस सुन्दर रूप को (दोहसे) कामों की परि पूरणता के लिये (योषणः) प्रत्येक व्यवहारों को मिलाने वाली स्त्री (जनयन्त) प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—जो मनुष्य इस जगत् में सात प्रकार के लोकों में ब्रह्मचर्य से प्रथम गृहाश्रम से दूसरे और वानप्रस्थ वा संन्यास से तीसरे कर्म और उपासना के विज्ञान को प्राप्त होते वे दश इन्द्रियों दश प्राणों के विषयक मन बुद्धि चित्त अहंकार और जीव के ज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूर्यः । यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥

निः । यत् । ईम् । बुध्नात् । महिषस्य । वर्पसः । ईशानासः । शवसा । क्रन्त । सूर्यः । यत् । ईम् । अनु । प्रऽदिवः । मध्वः । आऽधवे । गुहा । सन्तम् । मातरिश्वा । मथायति ॥ ३ ॥

पदार्थः—(निः) नितराम् (यत्) यम् (ईम्) इमं प्रत्यक्षम् (बुध्नात्) अन्तरिक्षात् (महिषस्य) महतः । महिषइति महन्ना० निघं० ३ । ५ (वर्पसः) रूपस्य । वर्पइति रूपना० निघं० ३ । ७ ।

(ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्ताः (शवसा) बलेन (क्रन्त) क्रमन्तु (सूरयः) विद्वांसः (यत्) ये (ईम्) (अनु) (प्रदिवः) प्रकृष्टद्युतिमतः (मध्वः) विज्ञानयुक्तस्य (आधवे) समन्तात्प्रक्षेपणे (गुहा) बुद्धौ (सन्तम्) (मातरिश्वा) प्राणः (मथायति) मथ्नाति । अत्र छन्दसि शायजपीति शायच् ॥ ३ ॥

अन्वयः—यत् ईशानासः सूरयश्शवसा यथाधवे मातरिश्वाऽग्निं मथायति तथा महिषस्य वर्पसः सम्बन्धे स्थितं बुध्नादीमनुक्रन्त मध्वः प्रदिवो गुहा सन्तमीं यत् निष्क्रन्त ततस्ते सुखिनो जायन्ते ॥३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—तएव ब्रह्मविदो जायन्ते ये धर्माऽनुष्ठानयोगाभ्यासं सत्सङ्गं च कृत्वा स्वात्मानं विदित्वा परमात्मानं विदन्ति तएवमुमुक्षुभ्य एतं ज्ञापयितुमर्हन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्त (सूरयः) विद्वान् जन (शवसा) बल से जैसे (आधवे) सब ओर से अन्न आदि के अलग करने के निमित्त (मातरिश्वा) प्राण वायु जाठराग्नि को (मथायति) मथता है वैसे (महिषस्य) बड़े (वर्पसः) रूप अर्थात् सूर्यमण्डल के संबन्ध में स्थित (बुध्नात्) अन्तरिक्ष से (ईम्) इस प्रत्यक्ष व्यवहार को (अनुक्रन्त) अनुक्रम से प्राप्त हों वा (मध्वः) विशेषज्ञानयुक्त (प्रदिवः) कान्तिमान् आत्मा के (गुहा) गुहाशय में अर्थात् बुद्धि में (सन्तम्) वर्त्तमान (ईम्) प्रत्यक्ष (यत्) जिस ज्ञान को (निष्क्रन्त) निरन्तर क्रम से प्राप्त हों उस से वे सुखी होते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—वेही ब्रह्मवेत्ता विद्वान् होते हैं जो धर्मानुष्ठान योगाभ्यास और सत्संग कर के अपने आत्मा को जान परमात्मा को जानते हैं और वेही मुमुक्षु जनों के लिये इस ज्ञान को विदित कराने के योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र यत्पितुः पर॒मान्नीयते॒ पर्या पृ॒क्षुधो॒ वी॒रुधो॒ दंसु॑ रोहति । उभा यद॑स्य ज॒नुषं॒ यदिन्व॑त॒ आदिद्यवि॑ष्ठो अभवद्घृ॒णा शुचिः॑ ॥ ४ ॥

प्र । यत् । पि॒तुः । प॒र॒मात् । नी॒यते॑ । परि॑ । आ । पृ॒क्षुधः॑ । वी॒रुधः॑ । दम॑ऽसु । रो॒ह॒ति॒ । उ॒भा । यत् । अ॒स्य॒ । ज॒नुष॑म् । यत् । इन्व॑तः । आत् । इत् । यवि॑ष्ठः । अ॒भ॒व॒त् । घृ॒णा । शुचि॑ः ॥ ४ ॥

पदार्थः–(प्र) (यत्) (पितुः) अन्नम् (परमात्) उत्कृष्टात् प्रयत्नात् (नयिते) प्राप्यते (परि) (आ) (पृक्षुधः) प्रकर्षेण क्षोधितुं भोक्तुमिष्टाः । क्षुधबुभुक्षायाम् । अतः कर्मणि क्विप् पृषोदरादित्वात्पूर्वसंप्रसारणं च (वीरुधः) अतिविस्तृताल्लताः (दंसु) दमेषु (रोहति) वर्द्धते (उभा) उभौ (यत्) (अस्य) वृक्षजातेः (जनुषम्) जन्म (यत्) (इन्वतः) प्रियस्य (आत्) आनन्तर्य्ये (इत्) एव (यविष्ठः) अतिशयेन युवा यविष्ठः (अभवत्) भवेत् (घृणा) दीप्तिः (शुचिः) पवित्रा ॥ ४ ॥

अन्वयः—पुरुषेण परमात् यदस्य पितुः प्रणीयते यो दंसु पृक्षुधो वीरुधः पर्य्यारोहत्यादिन्वतो यज्जनुषमभवत् यद्यः शुचिर्घृणाऽभवत् तावुभाइदेव यविष्ठो जन प्राप्नुयात् ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरन्नमौषधं च सर्वतो ग्राह्यं तत्संस्कृतेन भुक्तेन सर्वं सुखं भवतीति मन्तव्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—पुरुष से (परमात्) उत्कृष्ट उत्तम यत्न के साथ (यत्) जो (अस्य) प्रत्यक्ष वृक्षजाति का संबन्धी (पितुः) अन्न (प्रणीयते) प्राप्त किया जाता है वा जो (दंसु) दूसरों के दबाने आदि के निमित्त में (पृक्षुधः) अत्यन्त भोगने को इष्ट (वीरुधः) अत्यन्त पौंड़ी हुई लताओं पर(पर्य्यारोहति) चारों ओर से पौंड़ता है (आत्) और (इन्वतः) प्रिय इस यजमान का(यत्)जो (जनुषम्) जन्म (अभवत्) हो तथा (यत्) जो (शुचिः) पवित्र (घृणा) चमक दमक हो उन (उभा) दोनों को (इत्) ही (यविष्ठः) अत्यन्त तरुण जन प्राप्त हो वे ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अन्न और औषध सब से लेवें और संस्कार किये अर्थात् बनाये हुए उस अन्न के भोजन से समस्त सुख होता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे । अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥ ८ ॥

आत् । इत् । मातॄः । आ । अविशत् । यासु । आ । शुचिः । अहिंस्यमानः । उर्विया । वि । ववृधे । अनु । यत् । पूर्वाः । अरुहत् । सनाऽजुवः । नि । नव्यसीषु । अवरासु । धावते ॥ ५ ॥ ८ ॥

पदार्थः–(आत्) आनन्तर्ये (इत्) एव (मातॄः) मातृवन्मान्यप्रदाओषधीः (आ) (अविशत्) विशति (यासु) (आ) (शुचिः) (अहिंस्यमानः) अहिंसितः सन् (उर्विया) बहुना (वि) (वावृधे) वर्द्धते । अत्र तुजादीनामित्यभ्यासदैर्घ्यम् (अनु) (यत्) यः (पूर्वाः) (अरुहत्) वर्धयति (सनाजुवः) सनातनी जूर्वेगो यासां ताः (नि) (नव्यसीषु) अतिशयेन नवीनासु (अवरासु) अर्वाचीनासु (धावते) सद्यो गच्छति ॥ ५ ॥

अन्वयः—ये यासु नव्यसीष्ववरास्वोषधीषु निधावते यद्यस्सनाजुवः पूर्वा ओषधीरन्वरुहत् स तास्वाशुचिरहिंस्यमानः सन् उर्विया विवावृध आदिन्मातॄराविशत् ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये पुरुषा वैद्यकविद्यामधीत्य महौषधानि युक्त्या सेवन्ते ते बहु वर्द्धन्ते । ओषधयो द्विविधा भवन्ति प्राकृतना नवीनाश्च तासु ये विचक्षणा भवन्ति तएवारोगा जायन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो (यासु) जिन (नव्यसीषु) अत्यन्त नवीन और (अवरासु) पिछिली ओषधियों के निमित्त (नि, धावते) निरन्तर शीघ्र जाता है वा (यत्) जो (सनाजुवः) सनातन वेग वाली (पूर्वाः) पिछिली ओषधियों को (अनु, अरुहत्) बढ़ाता है वह उन ओषधियों में (आशुचिः) अच्छे प्रकार पवित्र और (अहिंस्यमानः) विनाश को न प्राप्त होता हुआ (उर्विया) बहुत प्रकार (विवावृधे) विशेषता से बढ़ता है (आत्) इस के पीछे (इत्) ही (मातॄः) माता के समान मान करने वाली ओषधियों को (आ, अविशत्) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो पुरुष वैद्यक विद्या को पढ़ बड़ी २ ओषधियों का युक्ति के साथ सेवन करते हैं वे बहुत बढ़ते हैं ओषधी दो प्रकार की होती हैं अर्थात् पुरानी और नवीन उन में जो विचक्षण चतुर होते हैं वेही नीरोग होते हैं ॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते । देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्त्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥

आत् । इत् । होतारम् । वृणते । दिविष्टिषु । भगम्ऽइव । पपृचानासः । ऋञ्जते । देवान् । यत् । क्रत्वा । मज्मना । पुरुऽस्तुतः । मर्त्तम् । शंसम् । विश्वधा । वेति । धायसे ॥ ६ ॥

पदार्थः—(आत्) (इत्) (होतारम्) दातारम् (वृणते) संभजन्ति (दिविष्टिषु) दिव्यासु इष्टिषु (भगमिव) यथा धनैश्वर्यम् (पपृचानासः) संपर्कं कुर्वाणाः (ऋञ्जते) भृञ्जति (देवान्) दिव्यान्गुणान् (यत्) यः (क्रत्वा) कर्मणा प्रज्ञया वा (मज्मना) बलेन (पुरुष्टुतः) पुरुभिर्बहुभिः प्रशंसितः (मर्त्तम्) मनुष्यम् (शंसम्) प्रशंसितम् (विश्वधा) यो विश्वं दधाति सः (वेति) प्राप्नोति (धायसे) धारणाय ॥ ६ ॥

अन्वयः—यद्यः पुरुष्टुतो विश्वधा क्रत्वा मज्मना धायसे शंसं मर्त्तं देवाँश्च वेति तमाद्धोतारं ये पपृचानासो दिविष्टिषु भगमिव वृणते तद्दुःखान्यृञ्जते दहन्ति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकारः—ये सद्वैद्यं रत्नामिव सेवन्ते ते शरीरात्मबला भूत्वा सुखिनो जायन्ते ॥ ६ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (पुरुष्टुतः) बहुतों ने प्रशंसा किया हुआ (विश्वधा) विश्वको धारण करने वाला (क्रत्वा) कर्म वा विशेष बुद्धि से और (मज्मना) बल से (धायसे) धारणा के लिये (शंसम्) प्रशंसायुक्त (मर्त्तम्) मनुष्य को और (देवान्) दिव्यगुणों को (वेति) प्राप्त होता है उस को (आत्) और (होतारम्) देने वाले को जो (पपृचानासः) संबन्ध करते हुए जन (दिविष्टिषु) सुन्दर यज्ञों में (भगमिव) धन ऐश्वर्य्य के समान (वृणते) सेवते हैं वे (इत्) ही दुःखों को (ऋञ्जते) भूंजते हैं अर्थात् जलाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो अच्छे वैद्य का रत्न के समान सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा के बल वाले होकर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः । तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

वि । यत् । अस्थात् । यजतः । वातऽचोदितः । ह्वारः । न । वक्वा । जरणाः । अनाकृतः । तस्य । पत्मन् । धक्षुषः । कृष्णऽजंहसः । शुचिऽजन्मनः । रजः । आ । विऽअध्वनः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(वि) विशेषेण (यत्) यः (अस्थात्) तिष्ठेत् (यजतः) संगन्ता (वातचोदितः) वायुना प्राणेन वा प्रेरितः (ह्वारः) कुटिलतां कारयन् (न) इव (वक्वा) वक्ता (जरणाः)

स्तुतयः (अनाकृतः) न आकृतो न निवारितः (तस्य) (पत्मन्) (दक्षुषः) दहतः (कृष्णजंहसः) कृष्णानि जंहांसि हननानि यस्मिँस्तस्य (शुचिजन्मनः) शुचेः पवित्राज्जन्म यस्य तस्य (रजः) कणः (आ) (व्यध्वनः) विरुद्धोऽध्वा यस्य सः ॥ ७ ॥

अन्वयः—यद्यो यजतो वक्वा अनाकृतो वातचोदितो विद्वान् ह्वारोऽग्निर्न व्यस्थात् तस्य शुचिजन्मनः पत्मन्मार्गे कृष्णजंहसो धक्षुष आ व्यध्वनोऽग्ने रजइव जरणाः प्रशंसा जायन्ते ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये धर्ममातिष्ठन्ति ते सूर्यइव प्रसिद्धा जायन्ते तत्कृता कीर्त्तिः सर्वासु दिक्षु विराजते ॥ ७ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (यजतः) संग करने और (वक्वा) कहने वाला (अनाकृतः) रुकावट को न प्राप्त हुआ (वातचोदितः) प्राण वा पवन से प्रेरित विद्वान् (ह्वारः) कुटिलता करते हुए अग्नि के (न) समान (व्यस्थात्) विशेषता से स्थिर है (तस्य) उस (शुचिजन्मनः) पवित्र जन्मा विद्वान् के (पत्मन्) चाल चलन में (कृष्णजंहसः) काले मारने हैं जिस के उस (दक्षुषः) जलाते हुए (आ, व्यध्वनः) अच्छे प्रकार विरुद्ध मार्ग वाले अग्नि के (रजः) कण के समान (जरणाः) प्रशंसा स्तुति होती हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो धर्म में अच्छी स्थिरता रखते हैं वे सूर्य के समान प्रसिद्ध होते हैं और उन की किई हुई कीर्ति सब दिशाओं में विराजमान होती हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते । आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥

रथः । न । यातः । शिक्वऽभिः । कृतः । द्याम् । अङ्गेभिः । अरुषेभिः । ईयते । आत् । अस्य । ते । कृष्णासः । धक्षि । सूरयः । शूरस्यऽइव । त्वेषथात् । ईषते । वयः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(रथः) रमणीयं यानम् (न) इव (यातः) प्राप्तः (शिक्वभिः) कीलकबन्धनादिभिः (कृतः) संपादितः (द्याम्) आकाशम् (अङ्गेभिः) अङ्गैः (अरुषेभिः) रक्तैर्गुणैः (ईयते) गच्छति (आत्) आनन्तर्ये (अस्य) (ते) (कृष्णासः) ये कृषन्ति ते (धक्षि) दहसि । अत्र शपोलुक् (सूरयः) विद्वांसः (शूरस्येव) यथा शूरवीरस्य (त्वेषथात्) प्रदीप्तात् (ईषते) पश्यन्ति (वयः) पक्षिण इव ॥ ८ ॥

अन्वयः—कृष्णासः सूरयः शिक्वभिः कृतो द्यामरुषेभिरङ्गेभिस्सह यातो रथ ईयते नेव वयइव शूरस्येव त्वेषथाद् व्यवहारादिव कलाकौशलादीषते सुखमाप्नुवन्ति हे विद्वन्नाद्यस्त्वमग्निरिव पापानि धक्षि । अस्य ते सुखं जायते ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा शोभनेन विमानेनान्तरिक्षे गमनाऽऽगमने सुखेन जनाः कुर्वन्ति तथा विद्वांसो विद्यया धर्म्ये मार्गे विचरितुं शक्नुवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—(कृष्णासः) जो खींचते हैं वे (सूरयः) विद्वान् जन जैसे (शिक्वभिः) कीलें और बन्धनों से (कृतः) सिद्ध किया (द्याम्) आकाश को (अरुषेभिः) लाल रंग वाले (अङ्गेभिः) अङ्गों के साथ (यातः) प्राप्त हुआ (रथः) रथ (ईयते) चलता है (न) वैसे वा (वयः) पक्षि और

(शूरस्येव,त्वेषथात्) शूरवीर के प्रकाशित व्यवहार से जैसे वैसे कला कुशलता से (ईषते) देखते हैं वे सुख पाते हैं हे विद्वान् (आत्) इस के अनन्तर जो आप अग्नि के समान पापों को (धक्षि) जलाते हो (अस्य) इन (ते) आप को सुख होना है ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे उत्तम विमान से अन्तरिक्ष में आना जाना सुख से जन करते हैं वैसे विद्वान् जन विद्या से धर्म संबन्धी मार्ग में विचरने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः । यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥

त्वया । हि । अग्ने । वरुणः । धृतऽव्रतः । मित्रः । शाशद्रे । अर्य्यमा । सुऽदानवः । यत् । सीम् । अनु । क्रतुना । विश्वऽथा । विऽभुः । अरान् । न । नेमिः । परिऽभूः । अजायथाः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(त्वया) (हि) खलु (अग्ने) विद्वन् (वरुणः) श्रेष्ठः (धृतव्रतः) धृतसत्यः (मित्रः) (शाशद्रे) शातयेः (अर्यमा) न्यायाधीशः (सुदानवः) सुष्ठु दानं येषान्ते (यत्) ये (सीम्) सर्वतः (अनु) (क्रतुना) प्रज्ञया (विश्वथा) सर्वथा (विभुः) व्यापकईश्वरः(अरान्) चक्रस्याऽवयवान् (न) इव (नेमिः) चक्रम् (परिभूः) सर्वेषामुपरि भवतीति (अजायथाः) जायेथाः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यथा त्वया सह यये वरुणो धृतव्रतो मित्रोऽर्यमा च सुदानवो हि भवन्ति तथा तत्सङ्गेन त्वं नेमिरराँन्नेव विश्वथा विभुरीश्वरइव क्रतुना परिभूः सीमन्वजायथा यतो दुःखं शाशद्रे छिन्नं कुर्याः ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथेश्वरो न्यायकारी सर्वासु विद्यासु प्रवीणोऽस्ति तथा विदुषां सङ्गेन प्राज्ञो न्यायकारी पूर्णविद्यश्च स्यात् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने)विद्वान् जैसे(त्वया) तुम्हारे साथ (यन्) जो (वरुणः) श्रेष्ठ (धृतव्रतः) सत्यव्यवहार को धारण किये हुआ (मित्रः) सब का मित्र और (अर्यमा) न्यायाधीश (सुदानवः) अच्छे दानशील (हि) ही होते हैं वैसे उन के संग से आप (नेमिः) पहिआ (अरान्, न) अरों को जैसे वैसे (विश्वथा) वा जैसे सब प्रकार से (विभुः) ईश्वर व्यापक है वैसे (क्रतुना) उत्तम बुद्धि से (परिभूः) सर्वोपरि (सीम्) सब ओर से (अनु, अजायथाः) अनुक्रम से होओ जिस से दुःख को (शाशद्रे) नष्ट करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे ईश्वर न्यायकारी और सब विद्याओं में प्रवीण है वैसे विद्वानों के संग से बुद्धिमान् न्यायकारी और पूरी विद्या वाला हो ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि। तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥ १० ॥

त्वम् । अग्ने । शशमानाय । सुन्वते । रत्नम् । यविष्ठ । देवऽतातिम् । इन्वसि । तम् । त्वा । नु । नव्यम् । सहसः । युवन् । वयम् । भगम् । न । कारे । महिऽरत्न । धीमहि ॥ १० ॥

पदार्थः—(त्वम्) (अग्ने) अग्निरिव वर्त्तमान विद्वन् (शशमानाय) अधर्ममाप्लुत्य धर्मं प्राप्नुवते (सुन्वते) ऐश्वर्योत्पादकाय (रत्नम्) रमणीयं ज्ञानं साधनं वा (यविष्ठ) अतिशयेन युवन् (देवतातिम्) देवतामेव परमात्मानम् (इन्वसि) ध्यानयोगेन व्याप्नोषि (तम्) (त्वा) त्वाम् (नु) शीघ्रम् (नव्यम्) नवेषु विद्वत्सु भवम् (सहसः) बलस्य (युवन्) यौवनं प्राप्नुवन् (वयम्) (भगम्) (न) इव (कारे) कर्त्तव्ये व्यवहारे (महिरत्न) पूज्यैर्गुणैरमणीय (धीमहि) धरेमहि ॥ १० ॥

अन्वयः—हे सहसो युवन् यविष्ठ महिरत्नाऽग्ने यस्त्वं शशमानाय सुन्वते रत्नं देवतातिं चेन्वसि तं नव्यं त्वा कारे भगन्नेव वयन्नु धीमहि ॥ १० ॥

भावार्थः—येऽधर्मं विहाय धर्ममनुष्ठाय परमात्मानं प्राप्नुवन्ति तेऽतिरम्यमानन्दमाप्नुवन्ति ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलसंबन्धी (युवन्) यौवनभाव को प्राप्त (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण (महिरत्न) प्रशंसा करने योग्य गुणों से रमणीय (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् जो (त्वम्) आप (शशमानाय) अधर्म को उलंघ के धर्म को प्राप्त हुए (सुन्वते) और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले उत्तम जन के लिये (रत्नम्) रमणीय ज्ञान वा उस के साधन को और (देवतातिम्) परमेश्वर को (इन्वसि) ध्यान योग से व्याप्त होते हो (तम्) उन (नव्यम्) नवीन विद्वानों में प्रसिद्ध (त्वा) आप को (कारे) कर्त्तव्य व्यवहार में (भगम्) ऐश्वर्य के(न)समान (वयम्) हमलोग (नु) शीघ्र (धीमहि) धारण करें ॥१०॥

भावार्थः—जो अधर्म को छोड़ धर्म का अनुष्ठान कर परमात्मा को प्राप्त होते हैं वे अति रमणीय आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अस्मे र॒यिं न स्वर्थं॒ दमू॑नसं॒ भगं॒ दक्षं॒ न प॑पृ॒चासि धर्ण॒सिम् । र॒श्मीँरि॑व॒ यो यम॑ति॒ जन्म॑नी उ॒भे दे॒वानां॒ शंस॑मृ॒त आ च॑ सु॒क्रतुः॑ ॥ ११ ॥

अस्मेइति॑ । र॒यिम् । न । सु॒ऽअर्थ॑म् । दमू॑नसम् । भग॑म् । दक्ष॑म् । न । प॒पृ॒चा॒सि॒ । ध॒र्ण॒सिम् । र॒श्मीन्ऽइ॑व । यः । यम॑ति । जन्म॑नी॒ इति॑ । उ॒भे इति॑ । दे॒वाना॑म् । शंस॑म् । ऋ॒ते । आ । च॒ । सु॒ऽक्रतुः॑ ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अस्मे) अस्मभ्यम् (रयिम्) धनम् (न) इव (स्वर्थम्) सुष्ठ्वर्थः प्रयोजनं यस्माद्यद्वाऽनर्थसाधनराहितम् (दमूनसम्) दमनसाधकम् (भगम्) ऐश्वर्यं भजमानम् (दक्षम्) अतिचतुरम् (न) इव (पपृचासि) संबध्नाति । अत्र व्यत्ययेन युष्मत् (धर्णसिम्) धर्त्तारम् । अत्र बाहुलकादसिः प्रत्ययो नुडागमश्च (रश्मींरिव) यथा किरणान् तथा (यः) (यमति) यच्छेत् । अत्र लेटि बहुलं छन्दसीति शबभावः (जन्मनी) पूर्वापरे (उभे) द्वे (देवानाम्) विदुषाम् (शंसम्) प्रशंसाम् (ऋते) सत्ये (आ) (च) (सुक्रतुः) शोभनप्रज्ञः ॥ ११ ॥

अन्वयः—यः सुक्रतुर्विद्वानस्मे स्वर्थं रयिं न दमूनसं भगं दक्षं न धर्णसिं पपृचासि रश्मीनिव ऋते देवानामुभे जन्मनी शंसं च यत्र्यायमति सोऽस्माभिः सत्कर्त्तव्यो भवति ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकारः—ये सूर्यरश्मिवत्सर्वान् धर्म्ये पुरुषार्थे संयुञ्जन्ति स्वयं च तथैव वर्त्तन्ते ते गताऽगते जन्मनी पवित्रे कुर्वन्ति ॥ ११ ॥

पदार्थः—जो (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि वाला विद्वान् (अस्मे) हम लोगों के लिये (स्वर्थम्) जिस से अच्छा प्रयोजन हो वा जो अनर्थ साधनों से रहित उस (रयिम्) धन के (न) समान (दमूनसम्) इन्द्रियों को विषयों मे दवा देने के समानरूप (भगम्) ऐश्वर्य्य का और (दक्षम्) चतुर के (न) समान (धर्णसिम्) धारण करने वाले का (पपृचासि) संबन्ध करना वा (रश्मींरिव) जैसे किरणों को वैसे (ऋते) सत्य व्यवहार में (देवानाम्) विद्वानों के (उभे) दो (जन्मनी) अगले पिछिले जन्म (च) और (शंसम्) प्रशंसा को (यः) जो (आ, यमति) बढ़ाता है वह हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार हैं जो सूर्य की किरणों के समान सब को धर्मसंबंधी पुरुषार्थ में संयुक्त करते हैं और आप भी वैसे ही वर्त्तते हैं वे अगले पिछले जन्मों को पवित्र करते हैं ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः । स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥ १२ ॥

उत । नः । सुऽद्योत्मा । जीरऽअश्वः । होता । मन्द्रः । शृणवत् । चन्द्रऽरथः । सः । नः । नेषत् । नेषऽतमैः । अमूरः । अग्निः । वामम् । सुवितम् । वस्यः । अच्छ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(उत) (नः) अस्मान् (सुद्योत्मा) सुष्ठुप्रकाशः (जीराश्वः) जीरा वेगवन्तो बहवोऽश्वा यस्य सः (होता) दाता (मन्द्रः) प्रशंसितः (शृणवत्) शृणुयात् (चन्द्ररथः) चन्द्रं रजतं सुवर्णं वा रथे यस्य सः (सः) (नः) अस्माकम् (नेषत्) नयेत् (नेषतमैः) अतिशयेन प्राप्तिकारकैः (अमूरः) गन्ता (अग्निः) (वामम्) सुरूपम् (सुवितम्) उत्पादितम् (वस्यः) वस्तुं योग्यः (अच्छ) सम्यक् ॥ १२ ॥

अन्वयः—यो मन्द्रश्चन्द्ररथः सुद्योत्मा जीराश्वो होता नोऽस्मान् शृणवत् । उतापि योऽमूरो वस्योऽग्निरिव सुवितं वामं सुरूपं नेषतमैरच्छ नेषत् स नः प्रशंसितो भवति ॥ १२ ॥

भावार्थः—यः सर्वेषां न्यायस्य श्रोता साङ्गोपाङ्गसामग्र्या विद्या प्रकाशयुक्तः सर्वान् विद्योत्सुकान् विद्यायुक्तान् करोति स प्रकाशात्मा जायते ॥ १२ ॥

पदार्थः—जो (मन्द्रः) प्रशंसायुक्त (चन्द्ररथः) जिस के रथ में चांदी सोना विद्यमान जो (सुद्योत्मा) उत्तम प्रकाश वाला (जीराश्वः) जिस के वेगवान् बहुत घोड़े वह (होता) दानशील जन (नः) हम लोगों को (शृणवत्) सुने (उत) और जो (अमूरः) गमनशील (वस्यः) निवास करने योग्य (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान जन (सुवितम्) उत्पन्न किये हुए (वामम्) अच्छेरूप को (नेषतमैः) अतीव प्राप्ति कराने वाले गुणों से (अच्छ) अच्छा (नेषत्) प्राप्त करे (सः) वह (नः) हम लोगों के बीच प्रशंसित होता है ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो सब के न्याय का सुनने वाला सांगोपांग सामग्रीसहित विद्याप्रकाश युक्त सब विद्या के उत्साहियों को विद्यायुक्त करता है वह प्रकाशात्मा होता है ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः । अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥ १३ ॥ ९ ॥

अस्तावि । अग्निः । शिमीवत्ऽभिः । अर्कैः । साम्ऽराज्याय । प्रऽतरम् । दधानः । अमीइति । च । ये । मघवानः । वयम् । च । मिहम् । न । सूरः । अति । निः । ततन्युः ॥ १३ । ९ ॥

पदार्थः—(अस्तावि) स्तूयते (अग्निः) सूर्यइव सुशीलप्रकाशितः (शिमीवद्भिः) प्रशंसितकर्मयुक्तैः (अर्कैः) सत्कर्त्तव्यैर्विद्वद्भिः सह (साम्राज्याय) चक्रवर्त्तिनो भावाय (प्रतरम्) प्रतरति शत्रुबलानि येन तत् सैन्यम् (दधानः) (अमी) (च) (ये) (मघवानः) परमपूजितधनयुक्ताः (वयम्) (च) (मिहम्) वृष्टिम् (न) इव (सूरः) सूर्यः (अति) (निः) (ततन्युः) विस्तृणीयुः ॥ १३ ॥

अन्वयः—यः शिमीवद्भिरर्कैः प्रतरं दधानोऽग्निः साम्राज्यायास्तावि ये चामी मघवानः सूरो मिहन्नेव विद्यामतिनिष्टतन्युः तं तांश्च वयं प्रशंसेम ॥ १३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—मनुष्यैर्ये धार्मिकैर्विद्वद्भिः सुशिक्षिता धर्मेण राज्यं विस्तृणन्तः प्रयतन्तएव राज्ये विद्याधर्मोपदेशे च संस्थापनीया इति ॥ १३ ॥

अत्र विद्वद्गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्वर्त्ततइति वेद्यम् ॥

इत्येकचत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं नवमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—जो (शमीवद्भिः) प्रशंसित कर्मों से युक्त (अर्कैः) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ (प्रतरम्) शत्रुबलों को जिस से तरें उस सेना गण को (दधानः) धारण करता हुआ (अग्निः) सूर्य के समान सुशीलता से प्रकाशित (साम्राज्याय) चक्रवर्त्ती राज्य के लिये (अस्तावि) स्तुति पाता है (च) और (ये) जो (अमी) वे (मघवानः) परमपूजित धन युक्तजन (सूरः) सूर्य (मिहम्) वर्षा को (न) जैसे वैसे विद्या को (अति, निः, ततन्युः) अतीव निरन्तर विस्तारें उस पूर्वोक्त सज्जन (च) पीछे कहे हुए जनों की (वयम्) हम लोग प्रशंसा करें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—मनुष्यों को जो धार्मिक विद्वानों से अच्छी शिक्षा को पाये हुए धर्म से राज्य का विस्तार करते हुए प्रयत्न करते हैं वे ही राज्य,विद्या और धर्म के उपदेश में अच्छे प्रकार स्थापन करने योग्य हैं॥ १३॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के संगति वर्त्तमान है यह जानना चाहिये ॥

यह एक सौ इकतालीसवां सूक्त और नववां वर्ग पूरा हुआ ॥

समिद्धइत्यस्य त्रयोदशर्चस्य द्विचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । १ । २ । ३ । ४ । अग्निः । ५ बर्हिः । ६ देव्यो द्वारः । ७ उषासानक्ता । ८ दैव्यौ होतारौ । ९ सरस्वतीळाभारत्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतिः । १३ इन्द्रश्च देवताः १ । २ । ५ । ६ । ८ । ९ । निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडनुष्टुप् । ३ । ७ । १० । ११ । १२ । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १३ । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथाध्यापकाध्येतृविषयमाह ॥

अब तेरह ऋचावाले एकसौ व्यालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में अध्यापक और अध्येता के विषय को कहते हैं ॥

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

सम्ऽइद्धः । अग्ने । आ । वह । देवान् । अद्य । यतऽस्रुचे । तन्तुम् । तनुष्व । पूर्व्यम् । सुतऽसोमाय । दाशुषे ॥ १ ॥

पदार्थः–(समिद्धः) विद्यया प्रदीप्तोऽध्यापकः (अग्ने) अग्निरिव सुप्रकाश (आ) (वह) प्रापय (देवान्) विदुषः (अद्य) अस्मिन् दिने (यतस्रुचे) उद्यतयज्ञपात्राय यजमानाय (तन्तुम्) विस्तारम् (तनुष्व) विस्तृणीहि (पूर्व्यम्) पूर्वैः कृतम् (सुतसोमाय) निष्पादितमहौषधिरसाय (दाशुषे) दात्रे ॥ १ ॥

अन्वयः—हे अग्ने पावकइव समिद्धो विद्वांस्त्वमद्य यतस्रुचे सुतसोमाय दाशुषे देवानावह पूर्व्यं तन्तुं तनुष्व ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा बाल्ययुवावस्थायां मातापित्रादयः सन्तानान् सुखयेयुस्तथा पुत्रा ब्रह्मचर्येणाधीत्य विद्यां प्राप्तयौवनाः कृतविवाहाः सन्तः स्वान्मातापित्रादीनानन्दयेयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पावक के समान उत्तम प्रकाश वाले (समिद्धः) विद्या से प्रकाशित पढ़ाने वाले विद्वान् आप (अद्य) आज के दिन (सुतसोमाय) जिस ने बड़ी२ओषधियों के रस निकाले और (यतस्रुचे) यज्ञपात्र उठाये हैं उस यज्ञ करने वाले (दाशुषे) दानशील जन के लिये (देवान्) विद्वानों की (आ, वह) प्राप्ति करो और (पूर्व्यम्) प्राचीनों के किये हुए (तन्तुम्) विस्तार को (तनुष्व) विस्तारो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे बालकपन और तरुण अवस्था में माता और पिता आदि सन्तानों को सुखी करें वैसे पुत्रलोग ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़ युवावस्था को प्राप्त और विवाह किये हुए अपने मातापिता आदि को आनन्द देवें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् । यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥

घृतऽवन्तम् । उप । मासि । मधुऽमन्तम् । तनूऽनपात् । यज्ञम् । विप्रस्य । माऽवतः । शशमानस्य । दाशुषः ॥ २ ॥

पदार्थः-(घृतवन्तम्) बहुघृतयुक्तम् (उप) (मासि) परिमिमीषे(मधुमन्तम्) प्रशस्तमधुरादिगुणयुक्तम् (तनूनपात्) यस्तनूं शरीरं नपातयति तत्सम्बुद्धौ (यज्ञम्) (विप्रस्य) मेधाविनः (मावतः) मत्सदृशस्य (शशमानस्य) दुःखमुल्लङ्घतः (दाशुषः) दातुः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे तनूनपाद्विद्वँस्त्वं मावतो दाशुषः शशमानस्य विप्रस्य घृतवन्तं मधुमन्तं यज्ञमुपमासि ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्यार्थिभिर्विदुषां संगतिं कृत्वा विद्वदुपमया भवितव्यम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (तनूनपात्) शरीर को न नष्ट करने वाले विद्वान् आप (मावतः) मेरे सदृश (दाशुषः) दानशील (शशमानस्य) और दुःख उलंघन किये (विप्रस्य) मेधावी जन के (घृतवन्तम्) बहुत घृत और (मधुमन्तम्) प्रशंसित मधुरादि गुणों से युक्त (यज्ञम्) यज्ञ का (उप, मासि) परिमाण करने वाले हो ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्यार्थियों को विद्वानों की संगति कर विद्वानों के सदृश होना चाहिये ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

शुचिः । पावकः । अद्भुतः । मध्वा । यज्ञम् । मिमिक्षति । नराशंसः । त्रिः । आ । दिवः । देवः । देवेषु । यज्ञियः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(शुचिः) पवित्रः (पावकः) पवित्रकारकोऽग्निरिव (अद्भुतः) आश्चर्यगुणकर्मस्वभावः (मध्वा) मधुना सह (यज्ञम्) (मिमिक्षति) मेढुं सिञ्चितुमलंकर्त्तुमिच्छति (नराशंसः) नरैः प्रशंसितः (त्रिः) त्रिवारम् (आ) समन्तात् (दिवः) कामनातः (देवः) कामयमानः (देवेषु) विद्वत्सु (यज्ञियः) यज्ञं कर्त्तुमर्हः ॥ ३ ॥

अन्वयः—यः पावकइवाद्भुतः शुचिर्यज्ञियो नराशंसो देवो देवेषु दिवो मध्वा यज्ञं त्रिरामिमिक्षति स सुखमाप्नोति ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः कौमारयौवनवृद्धावस्थासु विद्याप्रचाराख्यं व्यवहारं कुर्युस्ते कायिकवाचिकमानसिकसुखानि प्राप्नुयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (पावकः) पवित्र करने वाले अग्नि के समान (अद्भुतः) आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला (शुचिः) पवित्र (यज्ञियः) यज्ञ करने योग्य (नराशंसः) नरों से प्रशंसा को प्राप्त और (देवः) कामना करता हुआ जन (देवेषु) विद्वानों में (दिवः) कामना से (मध्वा) मधुर शर्करा वा सहत से (यज्ञम्) यज्ञ को (त्रिः) तीन वार (आ, मिमिक्षति) अच्छे प्रकार सींचने वा पूरे करने की इच्छा करता है वह सुख पाता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य बालकाई ज्वानी और बुढ़ापे में विद्याप्रचाररूपी व्यवहार को करें वे कायिक वाचिक और मानसिक सुखों को प्राप्त होवें ॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ई॒ळि॒तो अ॑ग्न॒ आ व॒हेन्द्रं॑ चि॒त्रमि॒ह प्रि॒यम् ।
इ॒यं हि त्वा॑ म॒तिर्ममाच्छा॑ सुजिह्व व॒च्यते॑ ॥ ४ ॥

ईळितः । अग्ने । आ । वह । इन्द्रम् । चित्रम् । इह । प्रियम् । इयम् । हि । त्वा । मतिः । मम । अच्छ । सुऽजिह्व । वच्यते ॥ ४ ॥

पदार्थः—(ईळितः) प्रशंसितः (अग्ने) सूर्यइव प्रकाशात्मन् (आ) (वह) (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (चित्रम्) नानाविधम् (इह) अस्मिन् जन्मनि (प्रियम्) प्रीतिकरम् (इयम्) (हि) किल (त्वा) त्वाम् (मतिः) प्रज्ञा (मम) (अच्छ) (सुजिह्व) शोभना जिह्वा मधुरभाषिणी यस्य तत्सम्बुद्धौ (वच्यते) उच्यते॥४॥

अन्वयः—हे सुजिह्वाऽग्ने ईळितस्त्वमिह प्रियं चित्रमिन्द्रमावह या ममेयं मतिस्त्वयाच्छ वच्यते सा हि त्वा प्राप्नोतु ॥ ४ ॥

भावार्थः—सर्वैः पुरुषार्थेन विद्वत्प्रज्ञां प्राप्य महदैश्वर्यं संचेतव्यम्॥४॥

पदार्थः—हे (सुजिह्व) मधुरभाषिणी जिह्वा वाले (अग्ने) सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप विद्वान् (ईडितः) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (इह) इस जन्म में (प्रियम्) प्रीति करने वाले (चित्रम्) चित्र विचित्र नानाप्रकार के (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को (आ, वह) प्राप्त करो जो (मम) मेरी (इयम्) यह (मतिः) प्रज्ञा बुद्धि तुम से (अच्छ) अच्छी (वच्यते) कही जाती है (हि) वही (त्वा) आप को प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—सब को पुरुषार्थ से विद्वानों की बुद्धि पा कर महान् ऐश्वर्य का अच्छा संग्रह करना चाहिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे । वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥

स्तृणानासः। यतस्रुचः। बर्हिः। यज्ञे। सुऽअध्वरे। वृञ्जे। देवव्यचःऽतमम्। इन्द्राय। शर्म। सऽप्रथः॥ ५॥

पदार्थः—(स्तृणानासः) आच्छादकास्सन्तः (यतस्रुचः) प्राप्तोद्यमाः (बर्हिः) बृहत् (यज्ञे) विद्यादानाख्ये (स्वध्वरे) सुशोभमाने (वृञ्जे) वृञ्जते। अत्र लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपो व्यत्ययेनात्मनेपदं च (देवव्यचस्तमम्) देवैर्विद्वद्भिर्व्यचो व्याप्तं तदतिशयितम् (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (शर्म) गृहम् (सप्रथः) प्रख्यातगुणैस्सह वर्त्तमानम्॥ ५॥

अन्वयः—ये स्वध्वरे यज्ञ इन्द्राय सप्रथो बर्हिर्देवव्यचस्तमं शर्म स्तृणानासस्सन्तो यतस्रुचो भवन्ति ते दुःखदारिद्र्यं वृञ्जे त्यजन्ति॥ ५॥

भावार्थः—नह्युद्यमिनोऽन्तरा लक्ष्मीराज्यश्रियौ प्राप्नुतः। ये अत्युत्तमे विद्वन्निवासयुक्ते गृह आवसन्ति तेऽविद्यादारिद्र्ये निघ्नन्ति॥ ५॥

पदार्थः—जो (स्वध्वरे) उत्तम शोभायुक्त (यज्ञे) विद्यादान रूप यज्ञ में (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (सप्रथः) प्रख्यात गुणों के साथ वर्त्तमान (बर्हिः) बड़े (देवव्यचस्तमम्) विद्वानों से अतीव व्याप्त (शर्म) घर को (स्तृणानासः) ढांपते हुए (यतस्रुचः) उद्यम को प्राप्त होते हैं वे दुःख और दरिद्रपन का (वृञ्जे) त्याग कर देते हैं॥ ५॥

भावार्थः—उद्यम करने वालों के विना लक्ष्मी और राज्य श्री प्राप्त नहीं होती तथा जो अतीव उत्तम विद्वानों के निवास संयुक्त घर में अच्छे प्रकार वसते हैं वे अविद्या और दरिद्रता को निरन्तर नष्ट करते हैं॥ ५॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वि श्र॑यन्तामृता॒वृधः॑ प्र॒यै दे॒वेभ्यो॑ म॒हीः ।
पा॒व॒कासः॑ पुरु॒स्पृहो॒ द्वारो॑ दे॒वीर॑स॒श्चतः॑ ॥६॥१०॥

वि । श्र॒य॒न्ता॒म् । ऋ॒त॒ऽवृधः॑ । प्र॒ऽयै । दे॒वेभ्यः॑ । म॒हीः ।
पा॒व॒कासः॑ । पु॒रु॒ऽस्पृहः॑ । द्वारः॑ । दे॒वीः । अ॒स॒श्चतः॑ ॥६॥१०॥

पदार्थः—(वि) (श्रयन्ताम्) सेवन्ताम् (ऋतावृधः) ऋतेन सत्येनाचरणेन विज्ञानेन च वृद्धाः (प्रयै)प्रयितुम् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (महीः)पूज्यतमा वाचः पृथिवी वा। महीति पृथिवीना० निघं० १।१ महीति वाङ्ना० निघं० १ । ११ (पावकासः) पवित्रकारिकाः (पुरुस्पृहः) याः पुरुभिः स्पृह्यन्तईप्स्यन्ते ताः (द्वारः) द्वारइव सुशोभिताः (देवीः) कमनीयाः(असश्चतः) परस्परं विलक्षणाः ॥६॥

अन्वयः—हे मनुष्या देवेभ्यो याः पावकास ऋतावृधः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतो महीः प्रयै विद्वांसः कामयन्ते ता भवन्तो विश्रयन्ताम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वेषामुपकाराय विद्यासुशिक्षिता वाचो रत्नकर्यो भूमयश्च कमितव्याः । तदाश्रयेण पवित्रता संपादनीया ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये जो (पावकासः) पवित्र करने वाली (ऋतावृधः) सत्य आचरण और उत्तम ज्ञान से बढ़ाई हुई (पुरुस्पृहः) बहुतों से चाहीं जाती (द्वारः) द्वारों के समान (देवीः) मनोहर (असश्चतः) परस्पर एक दूसरे से विलक्षण (महीः) प्रशंसनीय वाणी वा पृथिवी जिन की (प्रयै) प्रीति के लिये विद्वान् जन कामना करते उन का आप लोग (विश्रयन्ताम्) वि,शेषता से आश्रय करें ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सब के उपकार के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा युक्त वाणी और रत्नों को प्रसिद्ध करने वाली भूमियों की कामना करनी चाहिये और उन के आश्रय से पवित्रता संपादन करनी चाहिये ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥७॥

आ । भन्दमाने इति । उपाकेइति । नक्तोषसा । सुऽपेशसा । यह्वी इति । ऋतस्य । मातरा । सीदताम् । बर्हिः । आ । सुऽमत् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(आ) (भन्दमाने) कल्याणकारके (उपाके) परस्परमसन्निहितवर्त्तमाने (नक्तोषासा) रात्रिदिने (सुपेशसा) सुरूपे।अत्र सर्वत्र विभक्तेराकारादेशः (यह्वी) कारणसूनू (ऋतस्य) सत्यस्य (मातरा) मानयित्र्यौ (सीदताम्) प्राप्नुतः (बर्हिः) उत्तमं गृहम् (आ) (सुमत्) सुष्ठु मायन्ति हृष्यन्ति यस्मिन् तत् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या भवन्तो यथा ऋतस्य मातरा यह्वी उपाके सुपेशसा भंदमाने नक्तोषासा आसीदतां तद्वदासुमद्बर्हिः प्राप्नुवन्तु॥७॥

भावार्थः—यथाऽहोरात्रः सर्वान् प्राण्यप्राणिनो नियमेन स्वस्व क्रियासु प्रवर्त्तयति तथा सर्वैर्विद्वद्भिः सर्वे मनुष्याः सत्क्रियासु प्रवर्त्तनीयाः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप जैसे (ऋतस्य) सत्यव्यवहार का (मातरा) मान कराने वालीं (यह्वी) कारण से उत्पन्न हुई (उपाके) एक दूसरे के साथ वर्त्तमान (सुपेशसा) उत्तमरूपयुक्त और (भन्दमाने) कल्याण करने वाली (नक्तोषसा) रात्रि और प्रभात वेला (आ, सीदताम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें वैसे (आ, सुमत्) जिस में बहुत आनन्द को प्राप्त होते हैं उस (बर्हिः) उत्तम घर को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे दिन रात्रि समस्त प्राणी अप्राणी को नियम से अपनी२ क्रियाओं में प्रवृत्त कराता है वैसे सब विद्वानों को सर्व साधारण मनुष्य उत्तम क्रियाओं में प्रवृत्त करने चाहियें ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥८॥

मन्द्रऽजिह्वा । जुगुर्वणी इति । होतारा । दैव्या । कवी इति । यज्ञम् । नः । यक्षताम् । इमम् । सिध्रम् । अद्य । दिविऽस्पृशम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(मन्द्रजिह्वा) मन्द्रा प्रशंसिता जिह्वा ययोस्तौ (जुगुर्वणी) अत्यन्तमुद्यमिनौ (होतारा) आदातारौ (दैव्या) देवेषु दिव्येषु गुणेषु भवौ (कवी) विक्रान्तप्रज्ञौ (यज्ञम्) विद्यादिप्राप्तिसाधकं व्यवहारम् (नः) अस्मभ्यम् (यक्षताम्) संयच्छेते (इमम्) (सिध्रम्) मङ्गलकरम् (अद्य) अस्मिन् दिने (दिविस्पृशम्) प्रकाशे स्पर्शनिमित्तम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽद्य मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी मेधाविनावध्यापकोपदेशकौ नो दिविस्पृशं सिध्रमिमं यज्ञं यक्षतां तथा यूयमपि सङ्गच्छध्वम् ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा विद्वांसो धर्म्येण व्यवहारेण सह सङ्गता भवन्ति तथेतरैरपि भवितव्यम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अद्य) आज (मन्द्रजिव्हा) जिन की प्रशंसित जिव्हा है वे (जुगुर्वणी) अत्यन्त उद्यमी (होतारा) ग्रहण करने वाले (दैव्या) दिव्य गुणों में प्रसिद्ध (कवी) प्रबल प्रज्ञा युक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (नः) हम लोगों के लिये (दिविस्पृशम्) प्रकाश में संलग्नता कराने तथा (सिध्रम्) मंगल करने वाले (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्यादि की प्राप्ति के साधक व्यवहार का(यक्षताम्)संग करते हैं वैसे तुम भी संग करो॥८॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहार के साथ परस्पर संग करते हैं वैसे साधारण मनुष्यों को भी होना चाहिये॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती । इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

शुचिः । देवेषु । अर्पिता । होत्रा । मरुत्ऽसु । भारती । इळा । सरस्वती । मही । बर्हिः । सीदन्तु । यज्ञियाः ॥९॥

पदार्थः—(शुचिः) पवित्रा (देवेषु) विद्वत्सु (अर्पिता) समर्पिता (होत्रा) दातुमादातुमर्हा (मरुत्सु) स्तावकेषु (भारती)

धारणपोषणकर्त्री (इळा) प्रशंसितुं योग्या (सरस्वती) प्रशस्तविज्ञानसम्बन्धिनी (मही) पूजितुं सत्कर्त्तुमर्हा (बर्हिः) उपगतं वृद्धम् (सीदन्तु) प्राप्नुवन्तु (यज्ञियाः) यज्ञसाधनाऽर्हाः ॥९॥

अन्वयः—या देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती शुचिरिळा सरस्वती मही च यज्ञिया बर्हिः सीदन्तु ताः सर्वे विद्यार्थिनः प्राप्नुवन्तु॥९॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्यार्थिभिरेवमाशंसितव्यं या विद्वत्सु विद्या वाणी वर्त्तते साऽस्मान्प्राप्नोतु ॥ ९ ॥

पदार्थः—जो (देवेषु) विद्वानों में (अर्पिता) समर्पण किई हुई (होत्रा) देने लेने योग्य क्रिया वा (मरुत्सु) स्तुति करने वालों में (भारती) धारण पोषण करने वाली (शुचिः) पवित्र (इळा) प्रशंसा के योग्य (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञान का संबन्ध रखने वाली (मही) और बड़ी (यज्ञियाः) यज्ञ सिद्ध कराने के योग्य क्रिया (बर्हिः) समीप प्राप्त बढ़े हुए व्यवहार को (सीदन्तु) प्राप्त होवें उन को समस्त विद्यार्थी प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्यार्थियों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि जो विद्वानों में विद्या वा वाणी वर्त्तमान है वह हम को प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना । त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥

तत् । नः । तुरीपम् । अद्भुतम् । पुरु । वा । अरम् ।

पुरु । त्मना॑ । त्वष्टा॑ । पोषा॑य । वि । स्यतु । राये । नाभा॑ ।
नः । अस्मऽयुः ॥ १० ॥

पदार्थः-(तत्) (नः) अस्मभ्यम् (तुरीपम्) तूर्णं रक्षकम् (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूपम् (पुरु) बहु (वा) (अरम्) अलम् (पुरु) बहु (त्मना) आत्मना (त्वष्टा) विद्याधर्मेण राजमानः (पोषाय) पुष्टिकराय (वि) (स्यतु) प्राप्नोतु (राये) धनाय (नाभा) नाभौ (नः) अस्माकम् (अस्मयुः) अस्मान्कामयमानः ॥१०॥

अन्वयः-हे विद्वन् अस्मयुस्त्वष्टा भवान् नः पुरु पोषाय राये नाभा प्राणइव विष्यतु त्मना आत्मना तुरीपमद्भुतं पुरु वारं धनमस्ति तन्न आवह ॥ १० ॥

भावार्थः-यो विद्वानस्मान्कामयेत तं वयमपि कामयेमहि योऽस्मान्नकामयेत तं वयमपि न कामयेमहि तस्मात् परस्परस्य विद्यासुखे कामयमानावाचार्य्यविद्यार्थिनौ विद्योन्नतिं कुर्याताम् ॥ १० ॥

पदार्थः-हे विद्वान् (अस्मयुः) हम लोगों की कामना करने वाले (त्वष्टा) विद्या और धर्म से प्रकाशमान आप (नः) हम लोगों के (पुरु) बहुत (पोषाय) पोषण करने के लिये और (राये) धन होने के लिये (नाभा) नाभि में प्राण के समान (वि,ष्यतु) प्राप्त होवें और (त्मना) आत्मा से जो (तुरीपम्) तुरन्त रक्षा करने वाला (अद्भुतम्) अद्भुत आश्चर्य्य रूप (पुरु, वा, अरम्) बहुत वा पूरा धन है (तत्) उस को (नः) हम लोगों के लिये प्राप्त कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—जो विद्वान् हम लोगों की कामना करे उस की हम लोग भी कामना करें । जो हम लोगों की न कामना करे उस की हम लोग भी कामना न करें इस से परस्पर विद्या और सुख की कामना करते हुए आचार्य्य और विद्यार्थी लोग विद्या की उन्नति करें ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥

अवऽसृजन् । उप । त्मना । देवान् । यक्षि । वनस्पते । अग्निः । हव्या । सुसूदति । देवः । देवेषु । मेधिरः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अवसृजन्) विविधया विद्ययाऽलंकुर्वन् (उप) (त्मना) आत्मना (देवान्) विद्यां कामयमानान् (यक्षि) संगच्छसे (वनस्पते) रश्मिपतिः सूर्य्यइव वर्त्तमान (अग्निः) पावकः (हव्या) दातुमर्हाणि (सुसूदति) सुष्ठुक्षरति वर्षति (देवः) देदीप्यमानः (देवेषु) द्योतमानेषु लोकेषु (मेधिरः) संगमयिता ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे वनस्पते त्वं यतस्त्मना आत्मना देवानुपावसृजन्सन् देवेषु देवो मेधिरोऽग्निर्हव्या सुषूदतीव विद्यां यक्षि तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यः पृथिव्यादिषु देवेषु दिव्येषु पदार्थेषु दिव्यस्वरूपस्सन् जलं वर्षयति तथा विद्वांसो जगति विद्यार्थिषु विद्यां वर्षयेयुः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) रश्मियों के पति सूर्य्य के समान वर्त्तमान आप जिस कारण (त्मना) आत्मा से (देवान्) विद्या की कामना करते हुओं को (उपावसृजन्) अपने समीप नाना प्रकार की विद्या से परिपूरित करते हुए (देवेषु) प्रकाशमान लोकों में (देवः) अत्यन्तदीपते हुए (मेधिरः) संग कराने वाले (अग्निः) जैसे अग्नि (हव्या) देने होम योग्य से पदार्थों को (सुषूदाति) सुन्दरता से ग्रहण कर परमाणु रूप करता है वैसे विद्या का (यक्षि) संग करते हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सूर्यमण्डल पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों में दिव्य रूप हुआ जल को वर्षाता है वैसे विद्वान् जन संसार में विद्यार्थियों में विद्या की वर्षा करावें ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्त्तन ॥ १२ ॥

पूषण्ऽवते । मरुत्वते । विश्वऽदेवाय । वायवे । स्वाहा । गायत्रऽवेपसे । हव्यम् । इन्द्राय । कर्त्तन ॥ १२ ॥

पदार्थः—(पूषण्वते) बहवः पूषणः पुष्टिकर्त्तारो गुणा विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मिन् (मरुत्वते) प्रशंसिता मरुतो विद्यास्तावकाः सन्ति यस्मिन् (विश्वदेवाय) विश्वेऽखिला देवा विद्वांसो यस्मिंस्तस्मिन् (वायवे) प्राप्तुं योग्याय (स्वाहा) सत्यया क्रियया (गायत्रवेपसे) गायत्रं गायन्तं त्रायमाणं वेपो रूपं यस्मात् तस्मै (हव्यम्) आदातुमर्हं कर्म (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (कर्त्तन) कुरुत ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं स्वाहा पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे गायत्रवेपस इन्द्राय हव्यं कर्त्तन ॥ १२ ॥

भावार्थः—येन धनेन पुष्टिर्विद्याविद्वत्सत्कारौ वेदविद्याप्रवृत्तिः सर्वोपकारश्च स्यात्तदेव धर्म्यं धनं भवति नेतरत् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (स्वाहा) सत्य क्रिया से (पूषण्वते) जिस के बहुत पुष्टि करने वाले गुण (मरुत्वते) जिस में प्रशंसायुक्त विद्या की स्तुति करने वाले (विश्वदेवाय) वा समस्त विद्वान् जन विद्यमान (वायवे) प्राप्त होने योग्य (गायत्रवेपसे) गाने वाले की रक्षा करता हुआ जिस से रूप प्रगट होता उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य कर्म को (कर्त्तन) करो ॥ १२ ॥

भावार्थः—जिस धन से पुष्टि विद्या विद्वानों का सत्कार वेदविद्या की प्रवृत्ति और सर्वोपकार हो वही धर्म संबन्धी धन है और नहीं ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये । इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११॥

स्वाहाऽकृतानि । आ । गहि । उप । हव्यानि । वीतये । इन्द्र । आ । गहि । श्रुधि । हवम् । त्वाम् । हवन्ते । अध्वरे ॥ १३ ॥

पदार्थः—(स्वाहाकृतानि) सत्यक्रियया निष्पादितानि (आ) (गहि) आगच्छ (उप) सामीप्ये (हव्यानि) आदातुमर्हाणि (वीतये) विद्याव्याप्तये (इन्द्र) परमैश्वर्ययोजक (आ) (गहि)

(श्रुधी) शृणु । अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (हवम्) स्तवनम् (त्वाम्) (हवन्ते) स्तुवन्ति (अध्वरे) अहिंसनीये व्यवहारे ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र विद्वन् अध्वरे वीतये स्वाहाकृतानि हव्यान्युपागहि यं त्वां विद्यां जिज्ञासवो हवन्ते स त्वमागहि हवं श्रुधि॥१३॥

भावार्थः—अध्यापको यावच्छास्त्रमध्यापयेत् तावत्प्रत्यहं प्रतिमासं वा परीक्षेत ।।विद्यार्थिषु ये येभ्यो विद्याः प्रदद्युस्ते तेषां शरीरेण मनसा धनेन सेवां कुर्युः ॥ १३ ॥

अत्राध्यापकाऽध्येतृविद्यागुणप्रशंसनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥

इति द्विचत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य को युक्त करने वाले विद्वान् आप (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य व्यवहार में (वीतये) विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहाकृतानि) सत्य क्रिया से (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (उपागहि) प्राप्त होओ जिन (त्वाम्) तुम्हारी (हवन्ते) विद्या का ज्ञान चाहते हुए विद्यार्थी जन स्तुति करते हैं सो आप (आ, गहि) आओ और (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) सुनो ॥ १३ ॥

भावार्थः—अध्यापक जितना शास्त्र विद्यार्थियों को पढ़ावे उस की प्रतिदिन वा प्रतिमास परीक्षा करे और विद्यार्थियों में जो जिन को विद्या देवें वे उन की तन मन धन से सेवा करें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में पढ़ने पढ़ाने वालों के गुणों और विद्या की प्रशंसा होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ बयालीश का सूक्त और ग्यारहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

अथ प्रतव्यसीमित्यस्याष्टर्चस्य त्रिचत्वारिंशदुत्तरशततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ७ । निचृज्जगती । २ । ३ । ५ । विराड्जगती । ४ । ६ । जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वानों के वि० ॥

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे । अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १ ॥

प्र । तव्यसीम् । नव्यसीम् । धीतिम् । अग्नये । वाचः । मतिम् । सहसः । सूनवे । भरे । अपाम् । नपात् । यः । वसुऽभिः । सह । प्रियः । होता । पृथिव्याम् । नि । असीदत् । ऋत्वियः ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्र) (तव्यसीम्) अतिशयेन बलवतीम् (नव्यसीम्) अतिशयेन नवीनाम् (धीतिम्) धियन्ति विजयं यया ताम् (अग्नये) अग्निवत्तीव्रबुद्धये (वाचः) वाण्याः (मतिम्) प्रज्ञाम् (सहसः) शरीरात्मबलवतः (सूनवे) (भरे) धरे (अपाम्) जलानाम् (नपात्) यो न पतति सः (यः) (वसुभिः) प्रथमकल्पैर्विद्वद्भिः (सह) (प्रियः) प्रीतः (होता) गृहीता (पृथिव्याम्) (नि) (असीदत्) सीदति (ऋत्वियः) य ऋतूनर्हति सः ॥ १ ॥

अन्वयः—अहमपांनपात् यः सूर्यः पृथिव्यामिव यो वसुभिः सह प्रियो होता ऋत्वियो न्यसीदत् तस्मात्सहसोऽग्नये सूनवे वाचः तव्यसीं नव्यसीं धीतिं मतिं प्रभरे ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विदुषां योग्यताऽस्ति यथा सूर्योऽपांधर्त्ताऽस्ति तथा पवित्रान् धीमतः प्रियाचरणान् सद्यो विद्यानां ग्रहीतॄन् विद्यार्थिनो गृहीत्वा विद्याविज्ञानं सद्यो जनयेयुरिति ॥ १ ॥

पदार्थः—मैं (अपां, नपात्) जलों के बीच (यः) जो न गिरता वह सूर्य (पृथिव्याम्) पृथिवी पर जैसे वैसे जो (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों के (सह) साथ (प्रियः) प्रीतियुक्त (होता) ग्रहण करने वाला (ऋत्वियः) ऋतुओं की योग्यता रखता हुआ (नि, असीदत्) निरन्तर स्थिर होता है उस (सहसः) शरीर और आत्मा के बलयुक्त अध्यापक के सकाश से (अग्नये) अग्नि के समान तीक्ष्ण बुद्धि (सूनवे) पुत्र वा शिष्य के लिये (वाचः) वाणी की (तव्यसीम्) अत्यन्त बलवती (नव्यसीम्) अतीव नवीन (धीतिम्)जिस से विजय को धारण करें उस धारणा और (मतिम्) उत्तम बुद्धि को (प्र,भरे) अच्छे प्रकार धारण करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वानों की योग्यता है कि जैसे सूर्य जलों की धारणा करने वाला है वैसे पवित्र बुद्धिमान् प्रिय आचरण करने और शीघ्र विद्याओं को ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को लेकर विद्या का विज्ञान शीघ्र उत्पन्न करावें ॥ १ ॥

अथेश्वरविषयमाह ॥

अब ईश्वरविषय अगले मंत्र में कहते हैं ॥

स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने । अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥

स॒ः । जाय॑मानः । प॒र॒मे । विऽओ॑मनि । आ॒विः । अ॒ग्निः । अ॒भ॒व॒त् । मा॒त॒रिश्व॑ने । अ॒स्य । क्रत्वा॑ । स॒म्ऽइ॒धा॒नस्य॑ । म॒ज्मना॑ । प्र । द्यावा॑ । शो॒चिः । पृ॒थि॒वीइति॑ । अ॒रो॒च॒य॒त् ॥२॥

पदार्थः—(सः) अधीयानः (जायमानः) उत्पद्यमानः (परमे) प्रकृष्टे (व्योमनि) व्योमवद्व्यापके सर्वरक्षादिगुणान्विते ब्रह्मणि (आविः) प्राकट्ये (अग्निः) पावक इव (अभवत्) भवेत् (मातरिश्वने) अन्तरिक्षस्थाय वायवे (अस्य) (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वा (समिधानस्य) सम्यक् प्रदीप्तस्य (मज्मना) बलेन (प्र) (द्यावा) (शोचिः) पवित्रः (पृथिवी) (अरोचयत्) प्रकाशयेत् ॥ २ ॥

अन्वयः—यो मातरिश्वनेऽग्निरिव परमे व्योमनि जायमानो न आविरभवत् । तस्यास्य समिधानस्य जनस्य शोचिः क्रत्वा मज्मना च द्यावा पृथिवी प्रारोचयत् । स सर्वेषां कल्याणकारी जायते ॥२॥

भावार्थः—यदि विद्वांसो विद्यार्थिनः प्रयत्नेन सुविद्यासुशिक्षाधर्मयुक्तान् कुर्युस्तर्हि सर्वदा कल्याणभाजो भवेयुः ॥ २ ॥

पदार्थः—जो (मातरिश्वने) अन्तरिक्षस्थ वायु के लिये (अग्निः) अग्नि के समान (परमे) उत्तम (व्योमनि) आकाश के तुल्य सब में व्याप्त सब की रक्षा करने आदि गुणों से युक्त ब्रह्म में (जायमानः) उत्पन्न हुआ हम लोगों के लिये (आविः) प्रगट (अभवत्) होवे उस (अस्य) प्रत्यक्ष (समिधानस्य) उत्तमता से प्रकाशमान जन का (शोचिः) पवित्रभाव (क्रत्वा) प्रज्ञा और कर्म वा (मज्मना) बल के साथ (द्यावा, पृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (प्रारोचयत्) प्रकाशित करावे (सः) वह पढ़ा हुआ जन सब का कल्याणकारी होता है ॥ २ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग विद्यार्थियों को प्रयत्न के साथ विद्या अच्छी शिक्षा और धर्म नीति युक्त करें तो वे सर्वदैव कल्याण का सेवन करने वाले होवें ॥२॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

फिर विद्वानों के वि० ॥

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः। भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥ ३ ॥

अस्य । त्वेषाः । अजराः । अस्य । भानवः । सुऽसंदृशः । सुऽप्रतीकस्य । सुऽद्युतः । भाऽत्वक्षसः । अति । अक्तुः । न । सिन्धवः । अग्ने । रेजन्ते । अससन्तः । अजराः ॥३॥

पदार्थः—(अस्य) (त्वेषाः) विद्यासुशीलप्रकाशाः (अजराः) हानिरहिताः (अस्य) सूर्यस्य (भानवः) किरणा इव (सुसंदृशः) सत्यासत्ययोः सुष्ठु सम्यग्द्रष्टुः (सुप्रतीकस्य) सुष्ठुप्रतीतियुक्तस्य (सुद्युतः) अभितः प्रकाशमानस्य (भात्वक्षसः) भाः विद्याप्रकाशस्त्वक्षं बलं यासां ताः। त्वक्ष इति बलना० निघं० २ । ९ (अति) (अक्तुः) रात्रिः (न) इव (सिन्धवः) प्रवाहरूपः (अग्नेः) सूर्यस्य (रेजन्ते) कम्पन्ते (अससन्तः) जागृताः (अजराः) हानिरहिताः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतोऽग्नेर्भानवोऽस्याध्यापकस्याजराः त्वेषा भवन्ति । अस्याजरा अससन्तो भात्वक्षसः सिन्धवोऽक्तुर्नाति रेजन्ते ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सूर्यवद्विद्याप्रकाशकाऽविद्याऽन्धकारनाशकाः सर्वेषामानन्दप्रदा भवन्ति तएव मनुष्यशिरोमणयो जायन्ते॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (सुसंदृशः) सत्य और असत्य को ज्ञानदृष्टि से देखने वाले (सुप्रतीकस्य) सुन्दर प्रतीति युक्त (सुद्युतः) सब ओर से प्रकाशमान (अग्नेः) सूर्य के (भानवः) किरणों के समान (अस्य) इस अध्यापक के (अजराः) विनाशरहित (त्वेषाः) विद्या और शील के प्रकाश होते हैं और वे (अस्य) इस महाशय के (अजराः) अजर अमर (असस्नन्तः) जागते हुए (भात्वक्षसः) विद्या प्रकाश रूपी बल वाले (सिन्धवः) प्रवाह रूप उक्त तेज (अक्तुः) रात्रि के (न) समान अविद्यान्धकार को (अति, रेजन्ते) अतिक्रमण करते हैं॥ ३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या के प्रकाश करने अविद्यान्धकार के विनाश करने और सब को आनन्द देने वाले होते हैं वेही मनुष्यों के शिरोमणि होते हैं॥ ३॥

पुनरीश्वरविषयमाह॥

फिर ईश्वर वि०॥

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना। अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति॥ ४॥

यम्। आऽईरिरे। भृगवः। विश्वऽवेदसम्। नाभा। पृथिव्याः। भुवनस्य। मज्मना। अग्निम्। तम्। गीःऽभिः। हिनुहि। स्वे। आ। दमे। यः। एकः। वस्वः। वरुणः। न। राजति॥ ४॥

पदार्थः—(यम्) परमात्मानम् (एरिरे) समन्ताज्जानीयुः (भृगवः) विद्ययाऽविद्याया भर्जका निवारका विद्वांसः । भृगवइति पदना० निघं० ५ । ५ (विश्ववेदसम्) समग्रस्य विदितारम् (नाभा) मध्ये (पृथिव्याः) अन्तरिक्षस्य (भुवनस्य) लोकजातस्य (मज्मना) अनन्तेन बलेन (अग्निम्) सूर्यमिव स्वप्रकाशम् (तम्) (गीर्भिः) प्रशंसिताभिर्वाग्भिः (हिनुहि) जानीहि (स्वे) स्वकीये (आ) समन्तात् (दमे) गृहरूपे हृदयाऽवकाशे (यः) (एकः) अद्वितीयः (वस्वः) वसोर्द्रव्यरूपस्य (वरुणः) अतिश्रेष्ठः (न) इव (राजति) प्रकाशते ॥४॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो यं विश्ववेदसं भृगव एरिरे य एको वरुणो मज्मना वरुणो नेव पृथिव्या भुवनस्य वस्वो नाभा मध्ये स्वव्याप्त्या राजति तमग्निं स्वे दमे वर्त्तमानस्त्वं गीर्भिराहिनुहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यो विद्वद्भिर्वेदितव्यः सर्वाऽभिव्यापी प्रशंसितुमर्हः सच्चिदानन्दादिलक्षणः सर्वशक्तिमानद्वितीयोऽतिसूक्ष्मः स्वप्रकाशोऽन्तर्यामी परमेश्वरोऽस्ति तं योगांगानुष्ठानसिद्ध्या स्वस्मिन्विजानीत ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु पुरुष (यम्) जिस (विश्ववेदसम्) अच्छे संसार के वेत्ता परमात्मा को (भृगवः) विद्या से अविद्या को भूंजने वाले (एरिरे) सब ओर से जाने वा (यः) जो (एकः) एक अतिश्रेष्ठ आप्त ईश्वर (मज्मना) अत्यन्त बल से (वरुणः) अतिश्रेष्ठ के (न) समान (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के वा (भुवनस्य) लोक में उत्पन्न हुए (वस्वः) धन रूप पदार्थ के (नाभा) बीच में अपनी व्याप्ति से (राजति) प्रकाशमान है (तम्) उस (अग्निम्) सूर्यके

समान ईश्वर जो कि (स्वे) अपने अर्थात् मेरे (दमे) घर रूप हृदयाकाश में वर्त्तमान है उस को (गीर्भिः) प्रशंसित वाणियों से (आ,हिनुहि) जानो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो विद्वानों से जानने योग्य सब में सब प्रकार व्याप्त प्रशंसा के योग्य सच्चिदानन्दादि लक्षण सर्वशक्तिमान् अद्वितीय अतिसूक्ष्म आप ही प्रकाशमान अन्तर्यामी परमेश्वर है उस को योग के अंगों के अनुष्ठान की सिद्धि से अपने हृदय में जानो ॥ ४ ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वान् के वि० ॥

न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः। अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वनान्यृञ्जते ॥ ५ ॥

न। यः। वराय। मरुताम्ऽइव। स्वनः। सेनाऽइव। सृष्टा। दिव्या। यथा। अशनिः। अग्निः। जम्भैः। तिगितैः। अत्ति। भर्वति। योधः। न। शत्रून्। सः। वना। नि। ऋञ्जते ॥ ५ ॥

पदार्थः—(न) निषेधे (यः) (वराय) स्वीकरणाय (मरुतामिव) यथा वायूनां विदुषां तथा (स्वनः) शब्दः (सेनेव) (सृष्टा) (दिव्या) दिवि कारणे वाय्वादिकार्ये च भवा (यथा) (अशनिः) विद्युत् (अग्निः) पावकः (जम्भैः) विस्फुरणैः (तिगितैः) तीक्ष्णैः (अत्ति) भक्षयति (भर्वति) हिनस्ति (योधः) प्रहर्त्ता (न) इव (शत्रून्) (सः) (वना) वनानि (नि) (ऋञ्जते) साध्नोति ॥ ५ ॥

अन्वयः—योऽग्निर्मरुतामिव स्वनो वा सृष्टा सेनेव वा यथा दिव्याऽशनिस्तथा वराय न शक्यः स तिगितैर्जम्भैरत्ति योधो न शत्रून् भर्वति वना निऋञ्जते ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—प्रचण्डवायुना प्रेरितोऽग्निः शत्रुहिंसनमिव पदार्थान् दहति नासौ सहसा निवारणीय इति ॥ ४ ॥

पदार्थः—(यः) जो (अग्निः) आग (मरुतामिव) पवन वा विद्वानों के (स्वनः) शब्द के समान वा (सृष्टा,सेनेव) शत्रुदल में चक्रव्यूहादि रचना से रची हुई सेना के समान वा (यथा) जैसे (दिव्या) कारण वा वायु आदि कार्य द्रव्य में उत्पन्न हुई (अशनिः) बिजुली के वैसे (वराय) स्वीकार करने के लिये (न) नहीं हो सकता अर्थात् तेजी के कारण रुक नहीं सकता (सः) वह (तिगितैः) तीक्ष्ण (जम्भैः) स्फूर्त्तियों से (अत्ति) भक्षण करना अर्थात् लकड़ी आदि को खाता है (योधः) योधा के (न) समान (शत्रून्) शत्रुओं को (भर्वति) नष्ट करता अर्थात् धनुर्विद्या में प्रविष्ट किया हुआ शत्रुदल को भूंजना है और (वना) वनों को (नि, ऋञ्जते) निरन्तर सिद्ध करता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—प्रचण्ड वायु से प्रेरित अति जलता हुआ अग्निः शत्रुओं को मारने के तुल्य पदार्थों को जलाता है वह सहसा नहीं रुक सकता ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् । चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥

कुवित् । नः । अग्निः । उचथस्य । वीः । असत् । वसुः ।
कुवित् । वसुऽभिः । कामम् । आऽवरत् । चोदः । कुवित् ।
तुतुज्यात् । सातये । धियः । शुचिऽप्रतीकम् । तम् । अया ।
धिया । गृणे ॥ ६ ॥

पदार्थः—(कुवित्) महान् (नः) अस्मभ्यम् (अग्निः) विद्युदादिस्वरूपः (उचथस्य) उचितस्य (वीः) व्यापकः (असत्) भवेत् (वसुः) वासयिता (कुवित्) महान् (वसुभिः) वासयितृभिः (कामम्) (आवरत्) आवृणुयात् (चोदः) चुद्यात् प्रेरयेत् (कुवित्) महान् (तुतुज्यात्) बलयेत् (सातये) विभागाय (धियः) प्रज्ञाः (शुचिप्रतीकम्) (तम्) (अया) अनया। अत्र वाच्छन्दसीत्येकारादेशाभावः (धिया) प्रज्ञया कर्मणा वा (गृणे) स्तौमि ॥ ६ ॥

अन्वयः—यः कुविदग्निर्न उचथस्य वीरसद्वसुभिस्सह कुविद्वसुः काममावरत्सातये कुविच्चोदो धियस्तुतुज्यात् तं शुचिप्रतीकमया धियाऽहं गृणे ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये विद्युद्वदुचितकामप्रापका बुद्धिबलप्रदायका महान्तो विद्वांसः स्वबुद्ध्या सर्वाञ्जनान् विदुषः कुर्वन्ति तान् सर्वे प्रशंसन्तु ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो (कुवित्) बड़ा (अग्निः) बिजुली आदि रूप वाला अग्नि (नः) हमारे लिये (उचथस्य) उचित पदार्थ का (वीः) व्यापक (असत्) हो वा (वसुभिः) वसाने वालों के साथ (कुवित्) बड़ा (वसुः) वसाने

वाला (कामम्) काम को (आवरन्) भली भांति स्वीकार करे वा (सानये) विभाग के लिये (कुविन्) बड़ा प्रशंसित जन (चोदः) प्रेरणा दे वा (धियः) बुद्धियों को (तुतुज्यात्) बलवती करे (तम्) उस (शुचिप्रतीकम्) पवित्र-प्रतीति देने वाले जन की (अया) इस (धिया) बुद्धि वा कर्म से (गृणे) मैं स्तुति करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो बिजुली के समान उचित काम प्राप्त कराने और बुद्धि बल अत्यन्त देने वाले बड़े प्रशंसित विद्वान् अपनी बुद्धि से सब मनुष्यों को विद्वान् करते हैं उन की सब लोग प्रशंसा करें ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते। इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥

घृतऽप्रतीकम् । वः । ऋतस्य । धूःऽसदम् । अग्निम् । मित्रम् । न । सम्ऽइधानः । ऋञ्जते । इन्धानः । अक्रः । विदथेषु । दीद्यत् । शुक्रऽवर्णाम् । उत् । ऊं इति । नः । यंसते । धियम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(घृतप्रतीकम्) यो घृतमाज्यं प्रत्येति तम् (वः) युष्मभ्यम् (ऋतस्य) सत्यस्य (धूर्षदम्) यो धूर्षु हिंसकेषु सीदति तम् (अग्निम्) पावकम् (मित्रम्) सखायम् (न) इव (समिधानः) सम्यक् प्रकाशमानः (ऋञ्जते) प्रसाध्नोति (इन्धानः)

प्रदीप्तस्सन् (अक्रः) अन्यैरक्रान्तः । अत्र पृषोदरादिनेष्टसिद्धिः । (विदथेषु) संग्रामेषु (दीद्यत्) देदीप्यमानः (शुक्रवर्णाम्) शुद्धस्वरूपाम् (उत्) (उ) इति वितर्के (नः) अस्माकम् (यंसते) रक्षति (धियम्) प्रज्ञाम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्समिधानो वो युष्मभ्यं धूर्षदं घृतप्रतीकमग्निमृतस्य मित्रन्नेव ऋञ्जते य उ इन्धानोऽक्रो विदथेषु दीद्यत्सन् नः शुक्रवर्णां धियमुद्यंसते तं यूयं वयं च पितृवत्सेवेमहि॥७॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यो विद्युद्वत्सर्वशुभगुणाकरो मित्रवत्सुखप्रदाता संग्रामेषु वीरइव शत्रुजेता दुःखप्रध्वंसको वर्त्तते तं विद्वांसमाश्रित्य सर्वे मनुष्या विद्याः प्राप्नुयुः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (समिधानः) अच्छे प्रकार प्रकाशमान विद्वान् (वः) तुम्हारे लिये (धूर्षदम्) हिंसकों में स्थिर होते हुए (घृतप्रतीकम्) जो घृत को प्राप्त होता उस (अग्निम्) आग को (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के वर्त्तने वाले (मित्रम्) मित्र के (न) समान (ऋञ्जते) प्रसिद्ध करता है (उ) और जो (इन्धानः) प्रकाशमान होता हुआ वा (अक्रः) औरों ने जिस को न दबा पाया वह (विदथेषु) संग्रामों में (दीद्यत्) निरन्तर प्रकाशित होता हुआ (नः) हम लोगों की (शुक्रवर्णाम्) शुद्ध स्वरूप (धियम्) प्रज्ञा को (उद्यंसते) उत्तम रखता है उस को तुम हम पिता के समान सेवें ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो बिजुली के समान समस्त शुभ गुणों की खान मित्र के समान सुख का देने संग्रामों में वीर के तुल्य शत्रुओं को जीतने और दुःख का विनाश करने वाला है उस विद्वान् का आश्रय कर सब मनुष्य विद्याओं को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः। अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ ॥ १२ ॥

अप्रऽयुच्छन् । अप्रयुच्छत्ऽभिः । अग्ने । शिवेभिः । नः । पायुऽभिः । पाहि । शग्मैः । अदब्धेभिः । अदृपितेभिः । इष्टे । अनिमिषत्ऽभिः । परि । पाहि । नः । जाः ॥ ८ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(अप्रयुच्छन्) प्रमादमकुर्वन् (अप्रयुच्छद्भिः) प्रमादरहितैर्विद्वद्भिस्सह (अग्ने) विद्याविज्ञानप्रकाशयुक्त (शिवेभिः) कल्याणकारिभिः (नः) अस्मान् (पायुभिः) रक्षकैः (पाहि) रक्ष (शग्मैः) सुखप्रापकैः (अदब्धेभिः) अहिंसकैः (अदृपितेभिः) मोहादिदोषरहितैः (इष्टे) पूजितुं योग्य । अत्र संज्ञायां क्तिच् (अनिमिषद्भिः) नैरंतर्येणालस्यरहितैः (परि) सर्वतः (पाहि) (नः) अस्मान् (जाः) यो जनयति सुखानि सः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे इष्टेऽग्ने अग्निवद् विद्वन् त्वमप्रयुच्छन्सन्नप्रयुच्छद्भिः शिवेभिः पायुभिः शग्मैर्विद्वद्भिस्सह नः पाहि यास्त्वमनिमिषद्भिरदब्धेभिरदृपितेभिराप्तैस्सह नः परिपाहि ॥ ८ ॥

भावार्थः-मनुष्यैस्सततमिदमेष्टव्यं प्रयतितव्यं च धार्मिकै-र्विद्वद्भिस्सह धार्मिका विद्वांसोऽस्मान् सततं रक्षेयुरिति ॥ ८ ॥

अत्र विद्वदीश्वरगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगति-रस्तीति वेद्यम् ॥

इति त्रिचत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं द्वादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इष्टे) सत्कार करने योग्य तथा (अग्ने) विद्या विज्ञान के प्रकाश से युक्त अग्नि के समान विद्वान् आप (अप्रयुच्छन्) प्रमाद को न करते हुए (अप्रयुच्छद्भिः) प्रमादरहित विद्वानों के साथ वा (शिवेभिः) कल्याण करने वाले (पायुभिः) रक्षक (शग्मैः) सुखप्रापक विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो तथा (जाः) सुखों की उत्पत्ति कराने वाले आप (अनिमिषद्भिः) निरन्तर आलस्यरहित (अदृब्धेभिः) हिंसा और (अदृपितेभिः) मोहादि दोष रहित विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को निरन्तर यह चाहना और ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि धार्मिक विद्वानों के साथ धार्मिक विद्वान् हमारी निरन्तर रक्षा करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जानना चाहिये ॥

यह एक सौ तेंतालीशवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

एतीत्यस्य सप्तर्चस्य चतुश्चत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता १। ३। ४। ५। ७। निचृज्जगती २। जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ६। भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथाध्यापकोपदेशकविषयमाह॥

अब एक सौ चवालीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में अध्यापक और उपदेश करने वालों के विषय को कहते हैं॥

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम्। अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते॥ १॥

एति। प्र। होता। व्रतम्। अस्य। मायया। ऊर्ध्वाम्। दधानः। शुचिऽपेशसम्। धियम्। अभि। स्रुचः। क्रमते। दक्षिणाऽआवृतः। याः। अस्य। धाम। प्रथमम्। ह। निंसते॥ १॥

पदार्थः—(एति) प्राप्नोति (प्र) (होता) सद्गुणग्रहीता (व्रतम्) सत्याचरणशीलम् (अस्य) शिक्षकस्य (मायया) प्रज्ञया (ऊर्ध्वाम्) उत्कृष्टाम् (दधानः) (शुचिपेशसम्) पवित्ररूपाम् (धियम्) प्रज्ञां कर्म वा (अभि) (स्रुचः) विज्ञानयुक्ताः (क्रमते) प्राप्नोति (दक्षिणावृतः) या दक्षिणां वृण्वन्ति (याः) (अस्य) (धाम) दधति यस्मिंस्तत् (प्रथमम्) (ह) (निंसते) चुम्बति॥ १॥

अन्वयः—यो होता माययाऽस्य व्रतमूर्ध्वां शुचिपेशसं धियं दधानः प्रक्रमते या अस्य स्रुचो दक्षिणावृतो धियः प्रथमं धाम निंसते ता अभ्येति स हं प्राज्ञतमो जायते ॥ १ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या आप्तस्य विदुष उपदेशाध्यापनाभ्यां विद्यायुक्तां बुद्धिमाप्नुवन्ति ते सुशीला जायन्ते ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (होता) सद्गुणों का ग्रहण करने वाला पुरुष (मायया) उत्तम बुद्धि से (अस्य) इस शिक्षा करने वाले के (व्रतम्) सत्याचरण शील को (ऊर्ध्वाम्) और उत्तम (शुचिपेशसम्) पवित्र (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (दधानः) धारण करता हुआ (प्र, क्रमते) व्यवहारों में चलता है वा (याः) जो (अस्य) इस की (स्रुचः) विज्ञान युक्त (दक्षिणावृतः) दक्षिणा का आच्छादन करने वाली बुद्धि हैं उन को और (प्रथमम्) प्रथम (धाम) धाम को (निंसते) जो प्रीति को पहुंचाता है (ह) वही अत्यन्त बुद्धिमान् होता है ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य शास्त्र वेत्ता विद्वान् के उपदेश और पढ़ाने से विद्या युक्त बुद्धि को प्राप्त होते हैं वे सुशील होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः । अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥

अभि । ईम् । ऋतस्य॑ । दो॒हनाः॑ । अ॒नू॒षत॒ । योनौ॑ ।
दे॒वस्य॑ । सद॑ने । परि॑ऽवृताः । अ॒पाम् । उ॒पऽस्थे॑ । विऽभृ॑तः ।
यत् । आ । अव॑सत् । अध॑ । स्व॒धाः । अ॒ध॒य॒त् । याभिः॑ ।
ईय॑ते ॥ २ ॥

पदार्थः-(अभि) आभिमुख्ये (ईम्) सर्वतः (ऋतस्य) सत्यस्य विज्ञानस्य (दोहनाः) पूरकाः (अनूषत) स्तुवन्ति । अत्रान्येषामिति दैर्घ्यं व्यत्ययेनात्मनेपदम् (योनौ) गृहे (देवस्य) विदुषः (सदने) स्थाने (परिवृताः) आच्छादिता विदुष्यः (अपाम्) (उपस्थे) समीपे (विभृतः) विशेषेण धृतः (यत्) यः (आ) (अवसत्) वसेत् (अध) आनन्तर्ये (स्वधाः) उदकानि स्वधेत्युदकना० निघं० १ । १२ (अधयत्) पिबति (याभिः) अद्भिः (ईयते) गच्छति ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथार्तस्य दोहना परिवृता देवस्य सदने योनावभ्यनूषत यद्यो वायुरपामुपस्थे विभृत आऽवसदध यथा विद्वान् स्वधा अधयद्याभिरीमीयते तथा तद्वद् यूयमपि वर्त्तध्वम् ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽकाशे जलं स्थिरीभूय ततो वर्षित्वा सर्वं जगत् पोषयति तथा विद्वान् चेतसि विद्यां स्थिरीकृत्य सर्वान् मनुष्यान् पोषयेत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (ऋतस्य) सत्य विज्ञान के (दोहनाः) पूरे करने वाली (परिवृताः) वस्त्रादि से ढपी हुई अर्थात् लज्जावती पण्डिता स्त्री (देवस्य) विद्वान् के (सदने) स्थान वा (योनौ) घर में (अभ्यनूषत)

रसीदमूल्यवेदभाष्य

मास अगस्त सन् १८८६ ई०

नन्दकिशोर जी वर्म्मा लाइब्रेरियन् जयपुर	३)
बाबू रामनारायण जी अलीगढ़	५।≠)।
लाला मूलराज जी एम० ए० झंग पंजाब	१६)
बाबू छेदीलाल जी कमसरियट गुमाश्ता छावनी मेरठ	८)
बा० देवीप्रसाद जी ओवरसियर बाराबंकी	४)
रा० रा० बस्तीसिंह जी बि० ए० बड़ोदा	८)
	४४।≠)।

इसको अवश्य देखिये !

☞ प्रथम से कई विज्ञापन दिये गये हैं परन्तु ग्राहक महाशय कुछ ध्यान नहीं देते बडे आश्चर्य तथा शोक का विषय है कि वेदभाष्य के अङ्क चुप चाप लेते जाते हैं पर चन्दा देने के लिये विज्ञापनों वा पत्र द्वारा तकाजा किया जाता है तो जवाब तक नहीं देते कि हम पर इतना दाम चाहिये वा नहीं, देंगे वा नहीं।

हम उन महाशयों से फिर भी प्रार्थना करते हैं कि आप ध्यान दृष्टि से देखिये कि इस के छपने आदि में खर्च लगता है वा बिना खर्च के हो जाता है! यदि लगता है और आप न देंगे तो कैसे काम चल सकेगा इस लिये आप को उचित है कि अपना २ हिसाब समझ के तकाजे के अनुसार दाम भेज देवें जिस से हिसाब साफ हो और यंत्रालय का कार्य भी चला जाय। यदि इस पर आप ध्यान न देंगे और तकाजा जाने पर दाम न भेजेंगे तो वेदभाष्य के टाइटिल पर वा किसी समाचार पत्र द्वारा नहीं देने वाले ग्राहकों के नाम लिख कर छपवाये जांयगे कि इतने२ महाशय वेदभाष्य लेते जाते और उनपर इतना२दाम चाहिये सो नहीं भेजते अतएव ये महाशय यंत्रालय के हानिकारक हैं और इस के उपरान्त अन्य भी जो २ उपाय दाम निकलने के होंगे क्रमशः किये जांयगे। अन्त में आप मूल्य देंगे ही इस लिये प्रार्थना है कि इन उपायों के होने से पहिले अपना २ हिसाब चुकता कीजिये तो अति उत्तम होगा। यह लेख उन ग्राहकों के लिये नहीं है जो दाम देते जाते हैं। किन्तु जिन पर अधिक दाम बाकी हैं उन के लिये है और उन से प्रार्थना है कि अनुचित हो सो क्षमा करें और ध्यान देवें।

आप का मित्र—भीमसेन शर्मा

स्थानापन्न प्रबंध कर्त्ता वैदिकयंत्रालय प्रयाग

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)

एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥=) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरस्थ वैदिकयन्त्रालय मेनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (१००, १०१) अंक (८४, ८५)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४३ कार्त्तिक शुक्ल पक्ष

१—११—८६

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान नववें वर्ष के कि जो ७८। ७९ अङ्क से प्रारंभ हो कर ८८। ८९ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के आठ वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है :—

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ५।=)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ६)

[ख] एक वेद के ७७ अङ्क तक २५॥=) और दोनों वेदों के ५१।=)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।=) दो अङ्क ॥=) तीनअङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६] दाम जिस कोजिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्रों में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायं गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहै ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

सन्मुख में प्रशंसा करती हैं वा (यत्) जो वायु (अपाम्) जलों के (उपस्थे) समीप में (विभृतः) विशेषता से धारण किया हुआ (आवसत्) अच्छे प्रकार वसे (अध) इस के अनन्तर जैसे विद्वान् (स्वधाः) जलों को (अधयत्) पिये वा (याभिः) जिन क्रियाओं से (ईम्) सब ओर से उन को (ईयते) प्राप्त होता है वैसे उन सभों के समान तुम भी वर्त्तो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे आकाश में जल स्थिर हो और वहां से वर्ष कर समस्त जगत् को पुष्ट करता है वैसे विद्वान् जन चित्त में विद्या को स्थिर कर सब मनुष्यों को पुष्ट करे ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः । आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोढुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥

युयूषतः । सऽवयसा । तत् । इत् । वपुः । समानम् । अर्थम् । विऽतरित्रता । मिथः । आत् । ईम् । भगः । न । हव्यः । सम् । अस्मत् । आ । वोढुः । न । रश्मीन् । सम् । अयंस्त । सारथिः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(युयूषतः) मिश्रयितुमिच्छतः (सवयसा) समानं वयो ययोस्तौ (तत्) (इत्) (वपुः) स्वरूपम् (समानम्) तुल्यम् (अर्थम्) (वितरित्रता) विविधतयाऽतिशयेन तरितुमिच्छन्तौ सम्पादयितुमिच्छन्तौ । अत्र सर्वत्र विभक्तेराकारादेशः

(मिथः) परस्परम् (आत्) आनन्तर्ये (ईम्) सर्वतः (भगः) ऐश्वर्य्यवान् (न) इव (हव्यः) होतुमादातुं स्वीकर्त्तुमर्हः (सम्) (अस्मत्) (आ) समन्तात् (वोढुः) वाहकस्याश्वादेः (न) इव (रश्मीन्) (सम्) (अयंस्त) यच्छतः (सारथिः)॥३॥

अन्वयः—यदा सवयसा शिष्यौ समानं वपुर्युयूषतस्तदिन्मिथोऽर्थं वितरित्रता भवतः। आदीं भगो न हव्यस्तयोः प्रत्येकः सारथिर्वोढूरश्मीन्नास्मदध्यापनान् समायंस्तोपदेशांश्च समयंस्त ॥ ३ ॥

भावार्थः—येऽध्यापकोपदेशका निष्कपटतयाऽन्यान् स्वतुल्यान् कर्त्तुमिच्छया विदुषः कुर्युस्त उत्तमैश्वर्यं प्राप्य जितेन्द्रियाः स्युः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जब (सवयसा) समान अवस्था वाले दो शिष्य (समानम्) तुल्य (वपुः) स्वरूप को (युयूषतः) मिलाने अर्थात् एक दूसरे की उन्नति करने को चाहते हैं (तदित्) तभी (वितरित्रता) अतीव अनेक प्रकार से (मिथः) परस्पर (अर्थम्) धनादि पदार्थ की सिद्धि करने की इच्छा करते हैं (आत्) इस के अनन्तर (ईम्) सब ओर से (भगः) ऐश्वर्य्य वाला पुरुष जैसे (हव्यः) स्वीकार करने योग्य हो (न) वैसे उक्त विद्यार्थियों में से प्रत्येक (सारथिः) सारथी जैसे (वोढुः) पदार्थ पहुंचाने वाले घोड़े आदि की (रश्मीन्) रश्मियों को (न) वैसे (अस्मत्) हम अध्यापक आदि जनों से पढाईओं को (समायंस्त) भलीभांति स्वीकार करता और उपदेशों को (सम्) भलीभांति स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो अध्यापक और उपदेशक कपट छल के विना औरों को अपने तुल्य करने की इच्छा से उन्हें विद्वान् करें वे उत्तम ऐश्वर्य्य को पाकर जितेन्द्रिय हों ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योनां मिथुना समोकसा । दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥

यम् । ईम् । द्वा । सऽवयसा । सपर्यतः । समाने । योनां । मिथुना । सम्ऽओकसा । दिवा । न । नक्तम् । पलितः । युवा । अजनि । पुरु । चरन् । अजरः । मानुषा । युगा ॥ ४ ॥

पदार्थः-(यम्) सन्तानम् (ईम्) (द्वा) द्वौ (सवयसा) समानवयसौ (सपर्यतः) परिचरतः (समाने) तुल्ये (योना) योनौ जन्मनिमित्ते (मिथुना) दम्पती (समोकसा) समानगृहेण सह वर्त्तमानौ (दिवा) दिवसे (न) इव (नक्तम्) रात्रौ (पलितः) जातश्वेतकेशः (युवा) युवावस्थास्थः (अजनि) जायेत (पुरु) बहु (चरन्) विचरन् (अजरः) जरारोगरहितः (मानुषा) मनुष्यसम्बन्धीनि (युगा) युगानि वर्षाणि ॥ ४ ॥

अन्वयः-सवयसा द्वा समाने योना मिथुना दम्पती समोकसा सह वर्त्तमानौ दिवा नक्तन्नेव यमीं बालं सपर्यतः सोऽजरो मानुषा युगा पुरु चरन् पलितोऽपि युवाऽजनि ॥ ४ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-यथा प्रीत्या सह वर्त्तमानौ स्त्रीपुरुषौ धर्म्येण सुतं जनयित्वा सुशिक्ष्य शीलेन संस्कृत्य भद्रं कुरुतस्तथा समानावध्यापकोपदेशकौ शिष्यान् सुशीलान्कुरुतः । यथा

वा दिनं राज्या सह वर्त्तमानमपि स्वस्थाने रात्रिं निवारयति तथाऽज्ञानिभिस्सह वर्त्तमानावध्यापकोपदेशकौ मोहे न संलगतः। यथा वा कृतपूर्णब्रह्मचर्यौ रूपलावण्यबलादिगुणयुक्तं सन्तानमुत्पादयतस्तथैतौ सत्याध्यापनोपदेशाभ्यां सर्वेषां पूर्णमात्मबलं जनयतः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(सवयसा) समान अवस्थायुक्त (द्वा) दो (समाने) तुल्य (योना) उत्पत्ति स्थान में (मिथुना) मैथुन कर्म करने वाले स्त्रीपुरुष (समोकसा) समान घर के साथ वर्त्तमान (दिवा) दिन (नक्तम्) रात्रि के (न) समान (यम्) जिस (ईम्) प्रत्यक्ष बालक का (सपर्यतः) सेवन करें उस को पालें वह (अजरः) जरा अवस्था रूपी रोगरहित (मानुषा) मनुष्य संबन्धी (युगा) वर्षों को (पुरु) बहुत (चरन्) चलना भोगता हुआ (पलितः) सुपेद बालों वाला भी हो तो (युवा) ज्वान तरुण अवस्था वाला (अजनि) प्रगट होता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे प्रीति के साथ वर्त्तमान स्त्री पुरुष धर्मसंबन्धी व्यवहार से पुत्र को उत्पन्न कर उसे अच्छी शिक्षा दे शीलवान् कर सुखी करते हैं वैसे समान पढ़ाने और उपदेश करने वाले दो विद्वान् शिष्यों को सुशील करते हैं । वा जैसे दिन, रात्रि के साथ वर्त्तमान भी अपने स्थान में रात्रि को निवृत्त करता है वैसे अज्ञानियों के साथ वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् मोह में नहीं लगते हैं वा जैसे किया है पूरा ब्रह्मचर्य जिन्हों ने वे रूपलावण्य और बलादि गुणों से युक्त सन्तान को उत्पन्न करते हैं वैसे ये सत्य पढ़ाने और उपदेश करने से सब का पूरा आत्मबल उत्पन्न करते हैं ॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्त्तास ऊतये हवामहे । धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥

तम् । ईम् । हिन्वन्ति । धीतयः । दश । व्रिशः । देवम् । मर्त्तासः । ऊतये । हवामहे । धनोः । अधि । प्रऽवतः । आ । सः । ऋण्वति । अभिव्रजंतऽभिः । वयुना । नवा । अधित ॥ ५ ॥

पदार्थः–(तम्) (ईम्) (हिन्वन्ति) हितं कुर्वन्ति प्राणयन्ति (धीतयः) करपादाङ्गुलयइव (दश) (व्रिशः) प्रजाः । अत्र वर्णव्यत्ययेन वस्य स्थाने व्रः (देवम्) विद्वांसम् (मर्त्तासः) मनुष्याः (ऊतये) रक्षणाद्याय (हवामहे) गृह्णीम (धनोः) धनुषः (अधि) उपरि (प्रवतः) प्रवणं प्राप्तान्वाणानिव (आ) समन्तात् (सः) (ऋण्वति) प्राप्नोति । अत्र विकारणद्वयम् (अभिव्रजद्भिः) अभितो गच्छद्भिः (वयुना) वयुनानि प्रज्ञानानि (नवा) नवानि (अधित) दधाति ॥ ५ ॥

अन्वय–हे मनुष्या मर्त्तासो वयमूतये यं देवं हवामहे दश धीतयो व्रिशो यं हिन्वन्ति तमीं यूयं स्वीकुरुत यो धनुर्विद्धनोरधिक्षिप्तान् प्रवतो गच्छतो वाणानाधित सोऽभिव्रजद्भिर्विद्वद्भिस्सह नवा वयुना आऋण्वति ॥ ५ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–यथा कराङ्गुलिभिर्भोजनादिक्रियया शरीराणि वर्द्धन्ते तथा विद्वदध्यापनोपदेशक्रियया प्रजा वर्धन्ते यथा च धनुर्वेदवित् शत्रून् जित्वा रत्नानि लभते तथा विद्वत्सङ्गफलविद्विज्ञानानि प्राप्नोति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (मर्त्तासः) मरणधर्मा मनुष्य हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (देवम्) विद्वान् को (हवामहे) स्वीकार करते वा (दश) दश (धीतयः) हांथ पैरों की अंगुलियों के समान (विशः) प्रजा जिस को (हिन्वन्ति) प्रसन्न करनी हैं (तम्, ईम्) उसी को तुम लोग ग्रहण करो जो धनुर्विद्या का जानने वाला (धनोः) धनुष् के (अधि) ऊपर आरोप कर छोड़े (प्रवतः) जाते हुए वाणों को(अधित)धारण करता अर्थात् उन का सन्धान करता है (सः) वह (अभिव्रजद्भिः) सब ओर से जाते हुए विद्वानों के साथ (नवा) नवीन (वयुना) उत्तम २ ज्ञानों को (आ, ऋण्वति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे हांथों की अंगुलियों से भोजन आदि की क्रिया करने से शरीरादि बढ़ते हैं वैसे विद्वानों के अध्यापन और उपदेशों की क्रिया से प्रजा जन वृद्धि पाते हैं वा जैसे धनुर्वेद का जानने वाला शत्रुओं को जीत कर रत्नों को प्राप्त होता है वैसे विद्वानों के संग के फल को जानने वाला जन उत्तम ज्ञानों को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना। एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥

त्वम्। हि। अग्ने। दिव्यस्य। राजसि। त्वम्। पार्थिवस्य। पशुपाःऽइव। त्मना। एनीइति। ते। एते इति। बृहती इति। अभिऽश्रिया। हिरण्ययी इति। वक्वरीइति। बर्हिः। आशाते इति ॥ ६ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (हि) किल (अग्ने) सूर्यइव प्रकाशमान (दिव्यस्य) दिवि भवस्य वृष्ट्यादिविज्ञानस्य (राजसि) प्रकाशयासि (त्वम्) (पार्थिवस्य) पृथिव्यां विदितस्य पदार्थविज्ञानस्य (पशुपाइव) यथा पशुपालकस्तथा (त्मना) आत्मना (एनी) येइतस्ते (ते) तव (एते) प्रत्यक्षे (बृहती) महत्यौ (अभिश्रिया) अभितः शोभायुक्ते (हिरण्ययी) प्रभूतहिरण्यमय्यौ (वक्करी) प्रशंसिते (बर्हिः) वर्द्धनम् (आशाते) व्याप्नुतः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं हि पशुपाइव त्मना दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य राजसि ये एते एनी बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्करी द्यावापृथिव्यौ ते विज्ञानानुकूलं बर्हिराशाते ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा ऋद्धिसिद्धयः पूर्णां श्रियं कुर्वन्ति तथात्मवान् पुरुषः परमेश्वरे भूराज्ये च सुप्रकाशते यथा वा पशुपालः स्वान्पशून् प्रीत्या रक्षति तथा सभापतिः स्वाः प्रजा रक्षेत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वान् (त्वं, हि) आप ही (पशुपाइव) पशुओं की पालना करने वाले के समान (त्मना) अपने से (दिव्यस्य) अन्तरिक्ष में हुई वृष्टि आदि के विज्ञान को (राजसि) प्रकाशित करते वा (त्वम्) आप (पार्थिवस्य) पृथिवी में जाने हुए पदार्थों के विज्ञान का प्रकाश करते हो (एते) ये प्रत्यक्ष (एनी) अपनी २ कक्षा में घूमने वाले (बृहती) अतीव विस्तार युक्त (अभिश्रिया) सब ओर से शोभायमान (हिरण्ययी) बहुत हिरण्य जिन में विद्यमान (वक्करी) प्रशंसित सूर्यमण्डल और भूमण्डल वा (ते) आप के ज्ञान के अनुकूल (बर्हिः) वृद्धि को (आशाते) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे ऋद्धि और सिद्धि पूरी लक्ष्मी को करती हैं वैसे आत्मवान् पुरुष परमेश्वर और पृथिवी के राज्य में अच्छे प्रकार प्रकाशित होता जैसे पशुओं का पालने वाला प्रीति से अपने पशुओं की रक्षा करता है वैसे सभापति अपने प्रजाजनों की रक्षा करे ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतंजात सुक्रतो । यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँइव क्षयः ॥ ७ ॥ १३ ॥

अग्ने । जुषस्व । प्रति । हर्य । तत् । वचः । मन्द्र । स्वधाऽवः । ऋतऽजात । सुक्रतोइति सुऽक्रतो । यः । विश्वतः । प्रत्यङ् । असि । दर्शतः । रण्वः । सम्ऽदृष्टौ । पितुमान्ऽइव । क्षयः ॥ ७ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(अग्ने) विद्युदिव वर्त्तमान (जुषस्व) (प्रति) (हर्य) कामयस्व (तत्) (वचः) (मन्द्र) प्रशंसनीय (स्वधावः) प्रशस्तं स्वधाऽन्नं विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ (ऋतजात) ऋतात्सत्यात्प्रादुर्भूत (सुक्रतो) सुकर्मन् (यः) (विश्वतः) (प्रत्यङ्) प्रत्यञ्चतीति (असि) (दर्शतः) द्रष्टव्यः (रण्वः) शब्दविद्यावित् (संदृष्टौ) सम्यक्दर्शने (पितुमानिव) यथाऽन्नादियुक्तः (क्षयः) निवासार्थः प्रासादः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतोऽग्ने यो विश्वतः प्रत्यङ् संदृष्टो दर्शतो रण्वो विद्वाँस्त्वं क्षयः पितुमानिवासि स त्वं यन्ममेप्सितं वचस्तज्जुषस्व प्रति हर्य ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये प्रशंसितबुद्धयो युक्ताहारविहाराः सत्ये व्यवहारे प्रसिद्धा धर्म्यकर्मप्रज्ञाः आप्तानां विदुषां सकाशाद्विद्या उपदेशाँश्च कामयन्ते सेवन्ते च ते सर्वोत्कृष्टा जायन्ते ॥ ७ ॥

अत्राऽध्यापकोपदेशकगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति चतुश्चत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं त्रयोदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (मन्द्र) प्रशंसनीय (स्वधावः) प्रशंसित अन्न वाले (ऋतजात) सत्य व्यवहार से उत्पन्न हुए (सुक्रतो) सुन्दर कर्मों से युक्त (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वान् (यः) जो (विश्वतः) सब के (प्रत्यङ्) प्रतिजाने वा सब से सत्कार लेने वाले (संदृष्टो) अच्छे दीखने में (दर्शतः) दर्शनीय (रण्वः) शब्द शास्त्र को जानने वाले विद्वान् आप (क्षयः) निवास के लिये घर (पितुमां इव) अन्नयुक्त जैसे हो वैसे (असि) हैं सो आप जो मेरी अभिलाषा का (वचः) वचन है (तत्) उस को (जुषस्व) सेवो और (प्रति, हर्य) मेरे प्रति कामना करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो प्रशंसितबुद्धि वाले यथायोग्य आहार विहार से रहते हुए सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध धर्म के अनुकूल कर्म और बुद्धि रखने हारे शास्त्रज्ञ विद्वानों के समीप से विद्या और उपदेशों को चाहते और सेवन करते हैं वे सब से उत्तम होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ चवालीश का सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

तं पृच्छतेत्यस्य पञ्चर्चस्य पंचचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराड्जगती २ । ५ निचृज्जगती चच्छन्दः । निषादः स्वरः । ३ । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथोपदेश्योपदेशकगुणानाह ॥

अब एकसौ पैंतालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में उपदेश करने योग्य और उपदेश करने वालों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सान्वीयते । तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥

तम् । पृच्छत । सः । जगाम । सः । वेद । सः । चिकित्वान् । ईयते । सः । नु । ईयते । तस्मिन् । सन्ति । प्रऽशिषः । तस्मिन् । इष्टयः । सः । वाजस्य । शवसः । शुष्मिणः । पतिः ॥ १ ॥

पदार्थः—तं पूर्वमन्त्रप्रतिपादितं विद्वांसम् (पृच्छत) अत्रान्येषामपीति दीर्घः (सः) (जगाम) गच्छति (सः) (वेद) जानाति (सः) (चिकित्वान्) विज्ञानयुक्तः (ईयते) प्राप्नोति (सः) (नु) सद्यः (ईयते) प्राप्नोति (तस्मिन्) (सन्ति) (प्रशिषः) प्रकृष्टानि शासनानि (तस्मिन्) (इष्टयः) सत्सङ्गतयः (सः) (वाजस्य) विज्ञानमयस्य (शवसः) बलस्य (शुष्मिणः) बहुबलयुक्तस्य सैन्यस्य राज्यस्य वा (पतिः) स्वामी ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः स सत्यमार्गे जगाम स ब्रह्म वेद स चिकित्वान् सुखानीयते सान्वीयते तस्मिन् प्रशिषः सन्ति तस्मिन्निष्टयः सन्ति स वाजस्य शवसः शुष्मिणः पतिरस्ति तं यूयं पृच्छत ॥१॥

भावार्थः—यो विद्यासुशिक्षायुक्तो धार्मिकः प्रयत्नशीलः सर्वोपकारी सत्यस्य पालक आप्तो विद्वान् भवेत् तदाश्रयाध्यापनोपदेशैः सर्वे मनुष्याः इष्टविनयप्राप्ताः सन्तु ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (सः) वह विद्वान् सत्य मार्ग में (जगाम) चलता है (सः) वह (वेद) ब्रह्म को जानता है (सः) वह (चिकित्वान्) विज्ञानयुक्त सुखों को (ईयते) प्राप्त होता (सः) वह (नु) शीघ्र अपने कर्त्तव्य को (ईयते) प्राप्त होता है (तस्मिन्) उस में (प्रशिषः) उत्तम २ शिक्षा (सन्ति) विद्यमान हैं (तस्मिन्) उस में (इष्टयः) सत्संग विद्यमान हैं (सः) वह (वाजस्य) विज्ञानमय (शवसः) बल वा (शुष्मिणः) बलयुक्त सेनासमूह वा राज्य का (पतिः) पालने वाला स्वामी है (तम्) उस को तुम (पृच्छत) पूछो ॥१॥

भावार्थः—जो विद्या और अच्छी शिक्षा युक्त धार्मिक और यत्नशील सब का उपकारी सत्य की पालना करने वाला विद्वान् हो उस के आश्रय जो पढ़ाना और उपदेश हैं उन से सब मनुष्य चाहे हुए काम और विनय को प्राप्त हों ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् । न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥

तम् । इत् । पृच्छन्ति । न । सिमः । वि । पृच्छति । स्वेनऽइव । धीरः । मनसा । यत् । अग्रभीत् । न । मृष्यते । प्रथमम् । न । अपरम् । वचः । अस्य । क्रत्वा । सचते । अप्रऽदृपितः ॥ २ ॥

पदार्थः—(तम्) (इत्) एव (पृच्छन्ति) (न) निषेधे (सिमः) सर्वो मनुष्यः (वि) (पृच्छति) (स्वेनेव) (धीरः) ध्यानवान् (मनसा) विज्ञानेन (यत्) (अग्रभीत्) गृह्णाति (न) निषेधे (मृष्यते) संशय्यते (प्रथमम्) आदिमम् (न) (अपरम्) (वचः) वचनम् (अस्य) आप्तस्य विदुषः (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वा (सचते) समवैति (अप्रदृपितः) न प्रमोहितः ॥ २ ॥

अन्वयः—अप्रदृपितो धीरः स्वेनेव मनसा यद्वचोऽग्रभीद्यदस्य क्रत्वा सह सचते तत् प्रथमं न मृष्यते तदपरं च न मृष्यते यं सिमो न विपृच्छति तमिदेव विद्वांसः पृच्छन्ति ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रो पमाल०—आप्ता मोहादिदोषरहिता विद्वांसो योगाभ्यासपवित्रीकृतेनात्मना यद्यत्सत्यमसत्यं वा निश्चिन्वन्ति तत्तत्सुनिश्चितं वर्त्ततइतीतरे मनुष्या मन्यन्ताम् । ये तेषां संगमं कृत्वा सत्यासत्यनिर्णयं जिज्ञासन्ते ते कदाचिदपि सत्याऽसत्यनिर्णयं कर्त्तुं न शक्नुवन्ति तस्मादाप्तोपदेशेन सत्याऽसत्यविनिर्णयः कर्त्तव्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—(अप्रदृपितः) जो अतीव मोह को नहीं प्राप्त हुआ वह (धीरः) ध्यानवान् विचारशील विद्वान् (स्वेनेव) अपने समान (मनसा) विज्ञान से (यत्) जिस (वचः) वचन को (अग्रभीत्) ग्रहण करता है वा जो (अस्य) इस शास्त्रज्ञ धर्म्मात्मा विद्वान् की (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म के साथ (सचते) सम्बन्ध करता है वह (प्रथमम्) प्रथम (न) नहीं (मृष्यते) संशय को प्राप्त होता और वह (अपरम्) पीछे भी (न) नहीं संशय को प्राप्त होता है जिस को (सिमः) सर्व मनुष्य मात्र (न) नहीं (वि,पृच्छति) विशेषता से पूछता है (तमित्) उसी को विद्वान् जन (पृच्छन्ति) पूछते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—आप्त साक्षात्कार जिन्हों ने धर्मादि पदार्थ किये वे शास्त्रवेत्ता मोहादि दोषरहित विद्वान् योगाभ्यास से पवित्र किये हुए आत्मा से जिस २ को सत्य वा असत्य निश्चय करें वह २ अच्छा निश्चय किया हुआ है यह और मनुष्य मानें जो उन का संग न कर के सत्य असत्य के निर्णय को जाना चाहते हैं वे कभी सत्य असत्य का निर्णय नहीं कर सकते इस से आप्त विद्वानों के उपदेश से सत्य असत्य का निर्णय करना चाहिये ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तमिद्गच्छन्ति जुह्व१स्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे । पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥

तम् । इत् । गच्छन्ति । जुह्वः । तम् । अर्वतीः । विश्वानि । एकः । शृणवत् । वचांसि । मे । पुरुऽप्रैषः । ततुरिः । यज्ञऽसाधनः । अच्छिद्रऽऊतिः । शिशुः । आ । अदत्त । सम् । रभः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(तम्) (इत्) एव (गच्छन्ति) प्राप्नुवन्ति (जुह्वः) विद्याविज्ञाने आददत्यः (तम्) (अर्वतीः) प्रशस्तबुद्धिमत्यः कन्याः (विश्वानि) अखिलानि (एकः) अद्वितीयः (शृणवत्) शृणुयात् (वचांसि) प्रश्नरूपाणि वचनानि (मे) मम (पुरुप्रैषः) पुरुभिर्बहुभिः सज्जनैः प्रैषः प्रेरितः (ततुरिः) दुःखात् सर्वान् सन्तारकः (यज्ञसाधनः) यज्ञस्य विद्वत्सत्कारस्य साधनानि यस्य (अच्छिद्रोतिः) अच्छिद्राऽप्रच्छिन्नाऽद्वैधीभूता ऊती रक्षणादि-क्रिया यस्मात् सः (शिशुः) अविद्यादिदोषाणां तनूकर्त्ता (आ) समन्तात् (अदत्त) गृह्णीयात् (सम्) (रभः) महान् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वान् भवानेको मे विश्वानि वचांसि शृणवद्यो रभः पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोऽतिः शिशुः सर्वोपकारं कर्त्तुं प्रयत्नं समादत्त यं धीमन्तो गच्छन्ति तमर्वतीर्गच्छन्ति तमिज्जुह्वो गच्छन्ति ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यद्यद्विदितं यद्यदधीतं तस्य २ परीक्षामाप्ताय विदुषे यथा प्रदद्युरेवं कन्या अपि स्वाध्यापिकायै परीक्षां प्रदद्युर्नैवं विना सत्याऽसत्ययोस्सम्यग् निर्णयो भवितुमर्हति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् आप (एकः) अकेले (मे) मेरे (विश्वानि) समस्त (वचांसि) वचनों को (शृणवत्) सुनें जो (रभः) बड़ा महात्मा (पुरुप्रैषः) जिस को बहुत सज्जनों ने प्रेरणा दिई हो (ततुरिः) जो दुःख से सभों को तारने वाला (यज्ञसाधनः) विद्वानों के सत्कार जिस के साधन अर्थात् जिस की प्राप्ति कराने वाले (अच्छिद्रोतिः) जिस से नहीं खण्डित हुई रक्षणादि क्रिया (शिशुः) और जो अविद्यादि दोषों को छिन्नभिन्न करे

सब के उपकार करने को अच्छा यत्न (समादत्त) भलीभांति ग्रहण करे (तम्) उस को (अर्वतीः) बुद्धिमती कन्या (गच्छन्ति) प्राप्त होती (तमित्) और उसी को (जुह्वः) विद्या विज्ञान की ग्रहण करने वाली कन्या प्राप्त होतीं हैं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों ने जो जाना और जो २ पढ़ा उस २ की परीक्षा जैसे अपने आप पढ़ाने वाले विद्वान् को देवें वैसे कन्या भी अपनी पढ़ाने वाली को अपने पढ़े हुए की परीक्षा देवें ऐसे करने के विना सत्याऽसत्य का सम्यक् निर्णय होने को योग्य नहीं है ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उपस्थायं॑ चरति॒ यत्स॒मार॑त स॒द्यो जा॒तस्त॑त्सार॒ युज्ये॑भिः । अ॒भि श्वा॒न्तं मृ॑शते॒ ना॒न्द्ये॑ मु॒दे यदीं॒ गच्छ॑न्त्युश॒तीर॑पि॒ष्ठितम् ॥ ४ ॥

उप॒ऽस्थाय॑म् । च॒र॒ति॒ । यत् । स॒म्ऽआर॑त । स॒द्यः । जा॒तः । त॒त्सा॒र॒ । युज्ये॑भिः । अ॒भि । श्वा॒न्तम् । मृ॒श॒ते॒ । ना॒न्द्ये॑ । मु॒दे । यत् । ई॒म् । गच्छ॑न्ति । उ॒श॒तीः । अ॒पि॒ऽस्थि॒तम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(उपस्थायम्) अभिक्षणमुपस्थातुम् (चरति) गच्छति (यत्) यः (समारत) सम्यक् प्राप्नुत (सद्यः) शीघ्रम् (जातः) प्रसिद्धः (तत्सार) तत्सरेत् (युज्येभिः) योजितुं योग्यैः सह (अभि) (श्वान्तम्) श्रान्तं परिपक्वज्ञानम् । अत्र वर्णव्यत्ययेन रेफस्य स्थाने वः (मृशते) (नान्द्ये) आनन्दाय (मुदे) मोदनाय (यत्) यम् (ईम्) सर्वतः (गच्छन्ति) (उशतीः) कामयमाना विदुषीः (अपिस्थितम्) ॥४॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवो जना यद्यो युज्येभिस्सह सद्यो जात उपस्थायं चरति तत्सार श्वान्तममिमृशते बुद्धिमन्तो यद्यं नान्धे मुदेऽपिस्थितमुशतीरीं गच्छन्ति तं यूयं समारत ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ये याश्च सद्यः पूर्णविद्या जायन्ते कुटिलतादिदोषान् विहाय शान्त्यादिगुणान् प्राप्य सर्वेषां विद्यासुखाय अभीक्ष्णं प्रयतन्ते ते जगदानन्ददायकाः सन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जनो (यत्) जो (युज्येभिः) युक्त करने योग्य पदार्थों के साथ (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुआ (उपस्थायम्) क्षण २ उपस्थान करने को (चरति) जाता है वा (तत्सार) कुटिलपन से जावे वा (श्वान्तम्) परिपक्क पूरे ज्ञान को (अभिमृशते) सब ओर से विचारता है वा बुद्धिमान् जन (यत्) जिस (नान्धे) अति आनन्द और (मुदे) सामान्य हर्ष होने के लिये (अपिस्थितम्) स्थिर हुए को और (उशतीः) कामना करती हुई पण्डिताओं को (ईम्) सब ओर से (गच्छन्ति) प्राप्त होवे उस को तुम (समारत) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो बालक और जो कन्या शीघ्र पूर्ण विद्या युक्त होते हैं और कुटिलतादि दोषों को छोड़ शान्ति आदि गुणों को प्राप्त हो कर सब को विद्या तथा सुख होने के लिये वार २ प्रयत्न करते हैं वे जगत् को आनन्द देने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स ईं मृगो अप्यो॑ वनर्गुरुप॑ त्वच्यु॑पमस्यां नि धा॑यि । व्य॑ब्रवीद्वयुना मर्त्ये॑भ्यो॒ऽग्निर्वि॒द्वाँ ऋ॑तचि॒द्धि स॒त्यः ॥ ५ ॥ १४ ॥

सः। ईम्। मृगः। अप्यः। वनर्गुः। उप। त्वचि। उपऽमस्याम्। नि। धायि। वि। अब्रवीत्। वयुना। मर्त्येभ्यः। अग्निः। विद्वान्। ऋतऽचित्। हि। सत्यः॥ ५॥ १४॥

पदार्थः-(सः) (ईम्) (मृगः) (अप्यः) योऽपोर्हति (वनर्गुः) वनगामी। अत्र वनोपपदाद्गजु धातोरौणादिक उप्रत्ययो बाहुलकात्कुत्वं च (उप) (त्वचि) त्वगिन्द्रिये (उपमस्याम्) उपमायाम्। अत्र वाच्छन्दसीति स्याडागमः (नि) (धायि) धीयते (वि) (अब्रवीत्) उपदिशति (वयुना) प्रज्ञानानि (मर्त्येभ्यः) मनुष्येभ्यः (अग्निः) अग्निरिव विद्यादिसद्गुणैः प्रकाशमानाः (विद्वान्) वेत्ति सर्वा विद्याः सः (ऋतचित्) य ऋतं सत्यं चिनोति (हि) किल (सत्यः) सत्सु पुरुषेषु साधुः॥ ५॥

अन्वयः—विद्वद्भिर्योऽप्यो वनर्गुर्मृगइव उपमस्यां त्वच्युपनिधायि य ऋतचिदग्निर्विद्वान् मर्त्येभ्यो वयुनं व्यब्रवीत् स हि सत्योऽस्ति॥ ५॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा तृषातुरो मृगो जलपानाय वने भ्रमित्वा जलं प्राप्य नन्दति तथा विद्वांसो शुभाचरितान् विद्यार्थिनः प्राप्याऽनन्दन्ति ये विद्याः प्राप्याऽन्येभ्यो न प्रयच्छन्ति ते क्षुद्राशयाः पापिष्ठाः सन्तीति॥ ५॥

अत्रोपदेशकोपदेश्यकर्त्तव्यकर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीत्यवगन्तव्यम्॥

इति पञ्चचत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं चतुर्दशो वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थः—विद्वानों से जो (अप्यः) जलों के योग्य (वनर्गुः) वनगामी (मृगः) हरिण के समान (उपमस्याम्) उपमा रूप (त्वचि) त्वगिन्द्रिय में (उप, नि, धायि) समीप निरन्तर धरा जाता है वा जो (ऋतचित्) सत्य व्यवहार को इकट्ठा करने वाला (अग्निः) अग्नि के समान विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान (विद्वान्) सब विद्याओं को जानने वाला पण्डित (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के लिये (वयुना) उत्तम २ ज्ञानों का (ईम्) ही (वि, अब्रवीत्) विशेष करके उपदेश देता है (सः,हि) वही (सत्यः) सज्जनों में साधु है ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे तृषातुर मृग जल पीने के लिये वन में डोलता २ जल को पा कर आनन्दित होता है वैसे विद्वान् जन शुभ आचरण करने वाले विद्यार्थियों को पाकर आनन्दित होते हैं और जो विद्या पा कर औरों को नहीं देते वे क्षुद्राशय और अत्यन्त पापी होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में उपदेश करने और उपदेश सुनने वालों के कर्त्तव्य कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एक सौ पैंतालीशवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

त्रिमूर्द्धानमित्यस्य पञ्चर्चस्य षट्चत्वारिंशदुत्तरस्य
शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्नि
र्देवता १ । २ विराट्त्रिष्टुप् ३ । ५
त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अथाग्निविद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते ॥

अब एक सौ छयालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में अग्नि और विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ॥

त्रिमूर्द्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे । निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥ १ ॥

त्रिऽमूर्द्धानम् । सप्तऽरश्मिम् । गृणीषे । अनूनम् । अग्निम् । पित्रोः । उपऽस्थे । निऽसत्तम् । अस्य । चरतः । ध्रुवस्य । विश्वा । दिवः । रोचना । आपप्रिऽवांसम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(त्रिमूर्द्धानम्) त्रिषु निकृष्टमध्यमोत्तमेषु पदार्थेषु मूर्द्धा यस्य तम् (सप्तरश्मिम्) सप्तसु छन्दस्सु लोकेषु वा रश्मयो यस्य तम् (गृणीषे) स्तौषि (अनूनम्) हीनतारहितम् (अग्निम्) विद्युतम् (पित्रोः) वाय्वाकाशयोः (उपस्थे) समीपे (निसत्तम्) नितरां प्राप्तम् (अस्य) (चरतः) स्वगत्या व्याप्तस्य (ध्रुवस्य) निश्चलस्य (विश्वा) सर्वाणि (दिवः) प्रकाशमानस्य (रोचना) प्रकाशनानि (आपप्रिवांसम्) समन्तात् पूर्णम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे धीमन् यतस्त्वं पित्रोरुपस्थे निसत्तं त्रिमूर्द्धानं सप्तरश्मिमनूनमस्य चरतो ध्रुवस्य चराऽचरस्य दिवश्च विश्वा रोचनापप्रिवांसमग्निमिव वर्त्तमानं विद्वांसं गृणीषे स त्वं विद्यां प्राप्तुमर्हसि॥ १॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा त्रिभिर्विद्युत्सूर्यप्रसिद्धाग्निरूपैरग्निः चराऽचरस्य कार्यसाधको वर्त्तते तथा विद्वांसोऽखिलस्य विश्वस्योपकारका भवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे धारण शील उत्तम बुद्धि वाले जन जिस से तू (पित्रोः) पालने वाले पवन और आकाश के (उपस्थे) समीप में (निसत्तम्) निरन्तर प्राप्त (त्रिमूर्द्धानम्) तीनों निकृष्ट मध्यम और उत्तम पदार्थों में शिर रखने वाले (सप्तरश्मिम्) सात गायत्री आदि छन्दों वा भूरादि सात लोकों में जिस की प्रकाश रूप किरणें हों ऐसे (अनूनम्) हीन पने से रहित और (अस्य) इस (चरतः) अपनी गति से व्याप्त (ध्रुवस्य) निश्चल (दिवः) सूर्यमण्डल के (विश्वा) समस्त (रोचना) प्रकाशों को (आपप्रिवांसम्) जिसने सब ओर से पूर्ण किया उस (अग्निम्) बिजुली रूप आग के समान वर्त्तमान विद्वान् की (गृणीषे) स्तुति करता है सो तूं विद्या पाने योग्य होता है ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे तीन बिजुली सूर्य और प्रसिद्ध अग्नि रूपों से अग्नि चराचर जगत् के कार्यों को सिद्ध करने वाला है वैसे विद्वान् जन समस्त विश्व का उपकार करने वाले होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उ॒क्षा म॒हाँ अ॒भि व॑वक्ष ए॑ने अ॒जर॑स्तस्थावि॒त ऊ॒तिर्ऋष्वः॑ । उ॒र्व्याः प॒दो नि द॑धाति॒ सानौ॑ रि॒हन्त्यूधो॑ अरु॒षासो॑ अस्य ॥ २ ॥

उक्षा । महान् । अभि । ववक्षे । एने इति । अजरः ।
तस्थौ । इतःऽऊतिः । ऋष्वः । उर्व्याः । पदः । नि । दधाति ।
सानौ । रिहन्ति । ऊधः । अरुषासः । अस्य ॥ २ ॥

पदार्थः—(उक्षा) सेचकः (महान्) (अभि) (ववक्षे) संहन्ति । अयं वक्षसङ्घातइत्यस्य प्रयोगः (एने) द्यावापृथिव्यौ (अजरः) हानिरहितः (तस्थौ) तिष्ठति (इतऊतिः) इतः ऊती रक्षणाद्या क्रिया यस्मात् सः (ऋष्वः) गतिमान् (उर्व्याः) पृथिव्याः (पदः) पदान् (नि) (दधाति) (सानौ) विभक्ते जगति (रिहन्ति) प्राप्नुवन्ति (ऊधः) जलस्थानम् (अरुषासः) अहिंसमानाः किरणाः (अस्य) मेघस्य ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा उर्व्या महानुक्षा अजर ऋष्वः सूर्य एने द्यावापृथिव्यावभि ववक्षे इतऊतिः सन् पदो निदधाति अस्यारुषासः सानावूधो रिहन्ति यो ब्रह्माण्डस्य मध्ये तस्थौ तद्वद्यूयं भवत ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्यथा सूत्रात्मा वायुर्भूमिं सूर्यं च धृत्वा जगद्रक्षति यथा वा सूर्यः पृथिव्या महान् वर्त्तते तथा वर्त्तितव्यम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (उर्व्याः) पृथिवी से (महान्) बड़ा (उक्षा) वर्षा जल से सींचने वाला (अजरः) हानिरहित (ऋष्वः) गतिमान् सूर्य (एने) इन अन्तरिक्ष और भूमिमण्डल को (अभि, ववक्षे) एकत्र करता है (इतऊतिः) वा जिस से रक्षा आदि क्रिया प्राप्त होतीं ऐसा होता हुआ

(पद्वः) अपने अंशों को (नि, दधाति) निरन्तर स्थापित करता है (अस्य) इस सूर्य की (अरुषासः) नष्ट होती हुई किरणें (सानौ) अलग २ विस्तृत जगत् में (ऊधः) जलस्थान को (रिहन्ति) प्राप्त होती हैं वा जो ब्रह्माण्ड के बीच में (तस्थौ) स्थित है उस के समान तुम लोग होओ॥ २॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—मनुष्यों को जैसे सूत्रात्मा वायु भूमि और सूर्यमण्डल को धारण करके संसार की रक्षा करता है वा जैसे सूर्य पृथिवी से बड़ा है वैसा वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये॥ २॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वंग्धेनू वि चरतः सुमेके। अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान् केताँ अधि महो दधाने॥ ३॥

समानम्। वत्सम्। अभि। संचरन्ती इति सम्ऽचरन्ती विष्वक्। धेनू इति। वि। चरतः। सुमेके इति सुऽमेके। अनपऽवृज्यान्। अध्वनः। मिमाने इति। विश्वान्। केतान्। अधि। महः। दधाने इति॥ ३॥

पदार्थः—(समानम्) तुल्यम् (वत्सम्) वत्सवद्वर्त्तमानोऽहोरात्रः (अभि) अभितः (संचरन्ती) सम्यग् गच्छन्ती (विष्वक्) विषुं व्याप्तिमञ्चति (धेनू) धेनुरिव वर्त्तमाने (वि) (चरतः) (सुमेके) सुष्ठु मेकः प्रक्षेपो ययोस्तौ (अनपवृज्यान्) अपवर्जितुमनर्हान् (अध्वनः) मार्गस्य (मिमाने) निर्माणकर्तृणी (विश्वान्) समग्रान् (केतान्) बोधान् (अधि) (महः) महतः (दधाने)॥ ३॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं यथा द्यावापृथिव्यौ समानं वत्समभिसंचरन्ती सुमेकेऽध्वनोऽनपवृज्यान् मिमाने महो विश्वान् केतानधि दधाने धेनूइव विष्वग् विचरतः तथेमे विदित्वा पक्षपातं विहाय सर्वेषां कामान् पूरयत ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः सूर्यवत् न्यायगुणाकर्षकप्रकाशका नानाविधमार्गान् निर्मिमाणा धेनुवत् सर्वान्पुष्यन्तः समग्रा विद्या धरन्ति ते दुःखरहिताः स्युः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जैसे सूर्य लोक और भूमण्डल दोनों (समानम्) तुल्य (वत्सम्) बछड़े के समान वर्त्तमान दिनरात्रि को (अभि, सं, चरन्ती) सब ओर से अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (सुमेके) सुन्दर जिन का त्याग करना (अध्वनः) मार्ग से (अनपवृज्यान्) न दूर करने योग्य पदार्थों को (मिमाने) बनावट करने वाले (महः) बड़े २ (विश्वान्) समग्र (केतान्) बोधों को (अधि, दधाने) अधिकता से धारण करते हुए (धेनू) गौओं के समान (विष्वक्, वि, चरतः) सब ओर से विचर रहे हैं वैसे इन्हें जान पक्षपात को छोड़ सब कामों को पूरा करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय गुणों के आकर्षण करने वालों का प्रकाश करने वाले नानाविध मार्गों का निर्माण करते हुए धेनु के समान सब की पुष्टि करते हुए समग्र विद्याओं को धारण करते हैं वे दुःखरहित होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

धीरा॑सः प॒दं क॒वयो॑ नयन्ति॒ नाना॑ हृ॒दा रक्ष॑माणा अजु॒र्यम् । सिषा॑सन्तः॒ पर्य॑पश्यन्त॒ सिन्धु॑मा॒विर्ऽभ्यो अभव॒त् सूर्यो॒ नॄन् ॥ ४ ॥

धीरा॑सः । प॒दम् । क॒वयः॑ । न॒य॒न्ति॒ । नाना॑ । हृ॒दा । रक्ष॑माणाः । अ॒जु॒र्यम् । सिसा॑सन्तः । परि॑ । अ॒प॒श्य॒न्त॒ । सिन्धु॑म् । आ॒विः । ए॒भ्यः॒ । अ॒भ॒व॒त् । सूर्यः॑ । नॄन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(धीरासः) ध्यानवन्तो विद्वांसः (पदम्) पदनीयम् (कवयः) विक्रान्तप्रज्ञाः शास्त्रविदो विद्वांसः (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति (नाना) अनेकान् (हृदा) हृदयेन (रक्षमाणाः) ये रक्षन्ति ते अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (अजुर्यम्) यदजूर्षु हानिरहितेषु साधु (सिषासन्तः) संभक्तुमिच्छन्तः (परि) सर्वतः (अपश्यन्त) पश्यन्ति (सिन्धुम्) नदीम् (आविः) प्राकट्ये (एभ्यः) (अभवत्) भवति (सूर्य्यः) सवितेव (नॄन्) नायकान् मनुष्यान् ॥ ४ ॥

अन्वयः—ये धीरासः कवयो हृदा नाना नॄन् रक्षमाणा सिषासन्तः सिन्धुं सूर्यइवाजुर्यं पदं नयन्ति ते परमात्मानं पर्यपश्यन्त य एभ्यो विद्याभिशिक्षे प्राप्याविरभवत् सोऽपि तत्पदमाप्नोति ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये सर्वानात्मवत्सुखदुःखव्यवस्थायां विदित्वा न्यायमेवाश्रयन्ति तेऽव्ययं पदमाप्नुवन्ति यथा सूर्यो जलं वर्षयित्वा नदीः पिपर्त्ति तथा विद्वांसो सत्यवचांसि वर्षयित्वा मनुष्यात्मनः पिपुरति ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (धीरासः) ध्यानवान् (कवयः) विविध प्रकार के पदार्थों में आक्रमण करने वाली बुद्धि युक्त विद्वान् (हृदा) हृदय से (नाना) अनेक

(नून्) सुखियों की (रक्षमाणाः) रक्षा करते और (सिषासन्तः) अच्छे प्रकार विभाग करने की इच्छा करते हुए (सूर्यः) सूर्य के समान अर्थात् जैसे सूर्य-मण्डल (सिन्धुम्) नदी के जल को स्वीकार करता वैसे (अजुर्यम्) हानिरहित (पदम्) प्राप्त करने योग्य पद को (नयन्ति) प्राप्त होते हैं वे परमात्मा को (परि, अपश्यन्त) सब ओर से देखने अर्थात् सब पदार्थों में विचारते हैं जो (एभ्यः) इन से विद्या और उत्तम शिक्षा को पा के (आविः) प्रगट (अभवत्) होता है वह भी उस पद को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो सब को आत्मा के समान सुख दुःख की व्यवस्था में जान न्याय का ही आश्रय करते हैं वे अव्यय पद को प्राप्त होते हैं जैसे सूर्य जल को वर्षा कर नदियों को भरना पूरी करता है वैसे विद्वान् जन सत्य वचनों को वर्षा कर मनुष्यों के आत्माओं को पूर्ण करते हैं ॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे । पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥ १५ ॥

दिदृक्षेण्यः । परि । काष्ठासु । जेन्यः । ईळेन्यः । महः । अर्भाय । जीवसे । पुरुऽत्रा । यत् । अभवत् । सूः । अह । एभ्यः । गर्भेभ्यः । मघऽवा । विश्वऽदर्शतः ॥ ५ ॥ १५ ॥

पदार्थः—(दिदृक्षेण्यः) द्रष्टुमिच्छयैष्टव्यः (परि) सर्वतः (काष्ठासु) दिक्षु (जेन्यः) जेतुं शीलः (ईळेन्यः) स्तोतुमर्हः (महः) महते (अर्भाय) अल्पाय (जीवसे) जीवितुम् (पुरुत्रा) पुरुषु बहुष्विति (यत्) यः (अभवत्) भवेत् (सूः) यः सूते सः (अह) विनिग्रहे (एभ्यः) (गर्भेभ्यः) गर्त्तुं स्तोतुं योग्येभ्यः (मघवा) परमपूजितधनयुक्तः (विश्वदर्शतः) विश्वैरखिलैर्विद्वद्भिर्द्रष्टुं योग्यः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यद्योऽर्हेभ्यो गर्भेभ्यो विद्वत्तमेभ्यो महोऽर्भाय जीवसे पुरुत्रा मघवा विश्वदर्शतो दिदृक्षेण्यः काष्ठासु जेन्य ईळेन्यस्सूः पर्यभवत्स सर्वैः सत्कर्त्तव्यः ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये दिक्षु व्याप्तकीर्त्तयः शत्रूणां जेतारो विद्वत्तमेभ्यः प्राप्तविद्यासुशिक्षाः शुभगुणैर्दर्शनीया जनाः सन्ति ते जगन्मङ्गलाय प्रभवन्ति ॥ ५ ॥

अस्मिन् सूक्तेऽग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन साकं सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति षट्चत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं पञ्चदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (अह) ही (एभ्यः) इन (गर्भेभ्यः) स्तुति करने के योग्य उत्तम विद्वानों से (महः) बहुत और (अर्भाय) अल्प (जीवसे) जीवने के लिये (पुरुत्रा) बहुतों में (मघवा) परम प्रतिष्ठित धन युक्त (विश्वदर्शतः) समस्त विद्वानों से देखने के योग्य (दिदृक्षेण्यः) वा देखने की इच्छा से चांहने योग्य (काष्ठासु) दिशाओं में (जेन्यः) जीतने वाला अर्थात् दिग्विजयी (ईळेन्यः) और स्तुति प्रशंसा करने के योग्य (सूः) सब ओर से उत्पन्न (परि,अभवत्) हो सो सब को सत्कार करने के योग्य है ॥५॥

भावार्थः—जो दिशाओं में व्याप्त कीर्त्ति अर्थात् दिग्विजयी प्रसिद्ध शत्रुओं को जीतने वाले उत्तम विद्वानों से विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाये हुए शुभगुणों से दर्शनीय जन हैं वे संसार के मंगल के लिये समर्थ होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ छयालीशवां सूक्त और पंद्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

कथेत्यस्य पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता १ । ३ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ मित्राऽमित्रयोर्गुणानाह ॥

अब एकसौ सैंतालीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में मित्र और अमित्र के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः । उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥

कथा । ते । अग्ने । शुचयन्तः । आयोः । ददाशुः । वाजेभिः । आशुषाणाः । उभे इति । यत् । तोके इति । तनये । दधानाः । ऋतस्य । सामन् । रणयन्त । देवाः ॥ १ ॥

पदार्थः—(कथा) कथम् (ते) तव (अग्ने) विद्वन् (शुचयन्तः) ये शुचीनात्मनइच्छन्ति ते (आयोः) विदुषः (ददाशुः) दातुः (वाजेभिः) विज्ञानादिभिर्गुणैः सह (आशुषाणाः) आशुविभाजकाः (उभे) द्वे वृत्ते (यत्) (तोके) अपत्ये (तनये) पुत्रे (दधानाः) (ऋतस्य) सत्यस्य (सामन्) सामनि वेदे (रणयन्त) शब्दयेयुः । अत्राऽडभावः (देवाः) विद्वांसः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ददाशुरायोस्ते यद्ये वाजेभिः सह आशुषाणास्तनये तोके उभे दधानाः शुचयन्तो देवाः सन्ति ते सामन्नृतस्य कथा रणयन्त ॥ १ ॥

भावार्थः—सर्वे अध्यापका विद्वांसोऽनूचानमाप्तं विद्वांसं प्रति पृच्छेयुर्वयं कथमध्यापयेम स तान् सम्यक् शिक्षेत यथैते प्राप्तविद्यासुशिक्षा जितेन्द्रिया धार्मिकाःस्युस्तथा भवन्तोऽध्यापयन्त्वित्युत्तरम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् (ददाशुः) देने वाले (आयोः) विद्वान् जो आप (ते) उन तुम्हारे (यत्) जो (वाजेभिः) विज्ञानादिगुणों के साथ (आशुषाणाः) शीघ्र विभाग करने वाले (तनये) पुत्र और (तोके) पौत्र आदि के निमित्त (उभे) दो प्रकार के चरित्रों को (दधानाः) धारण किये हुए (शुचयन्तः) पवित्र व्यवहार अपने को चाहते हुए (देवाः) विद्वान् जन हैं वे (सामन्) सामवेद में (ऋतस्य) सत्य व्यवहार का (कथा) कैसे (रणयन्त) वाद विवाद करें ॥ १ ॥

भावार्थः—सब अध्यापक विद्वान् जन उपदेशक शास्त्रवेत्ता धर्मज्ञ विद्वान् को पूछें कि हम लोग कैसे पढ़ावें वह उन्हें अच्छे प्रकार शिखावे क्या शिखावे कि जैसे ये विद्या तथा उत्तम शिक्षा को प्राप्त इन्द्रियों को जीतने वाले धार्मिक पढ़ने वाले हों वैसे आप लोग पढ़ावें यह उत्तर है ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः । पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

बोर्ध । मे । अस्य । वचसः । यविष्ठ । मंहिष्ठस्य । प्रऽभृतस्य । स्वधाऽवः । पीयति । त्वः । अनु । त्वः । गृणाति । वन्दारुः । ते । तन्वम् । वन्दे । अग्ने ॥ २ ॥

पदार्थः—(बोध) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (मे) मम (अस्य) (वचसः) वचनस्य (यविष्ठ) अतिशयेन युवा (मंहिष्ठस्य) अतिशयेनोरोर्बहुप्रज्ञस्य (प्रभृतस्य) प्रकर्षेण धृतस्य (स्वधावः) प्रशस्तमन्नं विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ (पीयति) पिबति (त्वः) अन्यः (अनु) आनुकूल्ये (त्वः) द्वितीयः (गृणाति) स्तौति (वन्दारुः) अभिवादनशीलः (ते) तव (तन्वम्) शरीरम् (वन्दे) अभिवादये (अग्ने) विद्वत्तम ॥ २ ॥

अन्वयः—हे स्वधावो यविष्ठ त्वं मेऽस्य मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य वचसो बोध । हे अग्ने यथा वन्दारुरहं ते तन्वं वन्दे तथा त्वः पीयति यथा त्वोऽनुगृणाति तथाऽहमपि भवेयम् ॥ २ ॥

भावार्थः—यदाऽऽचार्यस्य समीपे शिष्योऽधीयेत तदा पूर्वस्याऽधीतस्य परीक्षां दद्यात् । अध्ययनात्प्रागाचार्यं नमस्कुर्याद्यथाऽन्ये मेधाविनो युक्त्याधीयेरन् तथा स्वयमपि पठेत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) प्रशंसित अन्न वाले (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण तू (मे) मेरे (अस्य) इस (मंहिष्ठस्य) अतीव बुद्धि युक्त (प्रभृतस्य) उत्तमता से धारण किये हुए (वचसः) वचन को (बोध) जान । हे (अग्ने) विद्वानों में उत्तम विद्वान् जैसे (वन्दारुः) वन्दना करने वाला मैं (ते) तेरे (तन्वम्) शरीर को (वन्दे) अभिवादन करता हूं वा जैसे (त्वः) दूसरा

कोई जन (पीयति) जल आदि को पीता है वा जैसे (त्वः) दूसरा कोई और जन (अनुगृणाति) अनुकूलता से स्तुति प्रशंसा करता है वैसे मैं भी होऊं ॥२॥

भावार्थः—जब आचार्य के समीप शिष्य पढ़े तब पिछिले पढ़े हुए की परीक्षा देवे पढ़ने से पहिले आचार्य को नमस्कार उस की वन्दना करे और जैसे अन्य धीर बुद्धि वाले पढ़ें वैसे आप भी पढ़े ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् । ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥

ये । पायवः । मामतेयम् । ते । अग्ने । पश्यन्तः । अन्धम् । दुःऽइतात् । अरक्षन् । ररक्ष । तान् । सुऽकृतः । विश्वऽवेदाः । दिप्सन्तः । इत् । रिपवः । न । अह । देभुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(ये) (पायवः) रक्षकाः (मामतेयम्) ममतायाः प्रजाया अपत्यम् (ते) तव (अग्ने) विद्वन् (पश्यन्तः) संप्रेक्षमाणाः (अन्धम्) अविद्यायुक्तम् (दुरितात्) दुष्टाचारात् (अरक्षन्) रक्षन्ति (ररक्ष) रक्षेत् (तान्) (सुकृतः) सुष्ठुकर्मकारिणः (विश्ववेदाः) यो विश्वं विज्ञानं वेत्ति सः (दिप्सन्तः) अस्मान् दम्भितुं हिंसितुमिच्छन्तः (इत्) अपि (रिपवः) अरयः (न) निषेधे (अह) विनिग्रहे (देभुः) दभ्नुयुः ॥३॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ते ये पश्यन्तः पायवो मामतेयमन्धं दुरितादरक्षन् तान् सुकृतो विश्ववदाभवान् रक्ष यतो दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये विद्याचक्षुषोऽन्धं कूपादिव जनानविद्याधर्माचरणाद्रक्षेयुस्तान्पितृवत्सत्कुर्युः । ये च व्यसनेषु निपातयेयुस्तान् दूरतो वर्जयेयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् (ते) आप के (ये) जो (पश्यन्तः) अच्छे देखने वाले (पायवः) रक्षा करने वाले (मामतेयम्) प्रजा का अपत्य जो कि (अन्धम्) अविद्या युक्त हो उस को (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (अरक्षन्) बचाते हैं (तान्) उन (सुकृतः) सुकृती उत्तम कर्म करने वाले जनों को (विश्ववेदाः) समस्त विज्ञान के जानने वाले आप (ररक्ष) पालें जिस से (दिप्सन्तः) हम लोगों को मारने की इच्छा करते हुए (इत्) भी (रिपवः) शत्रुजन (न, अह) नहीं (देभुः) मार सकें ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो विद्याचक्षु जन अन्धे को कूप से जैसे वैसे मनुष्यों को अविद्या और अधर्म के आचरण से बचावें उन का पितरों के समान सत्कार करें और जो दुष्ट आचरणों में गिरावें उन का दूर से त्याग करे रहें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन । मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥

यः । नः । अग्ने । अररिऽवान् । अघऽयुः । अरातिऽवा । मर्चयति । द्वयेन । मन्तः । गुरुः । पुनः । अस्तु । सः । अस्मै । अनु । मृक्षीष्ट । तन्वम् । दुःऽउक्तैः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(यः) (नः) अस्मानस्माकं वा (अग्ने) विद्वन् (अररिवान्) प्राप्नुवन् (अघायुः) आत्मनोऽघमिच्छुः (अरातीवा) यो अरातिरिवाचरति (मर्चयति) उच्चरति (द्वयेन) द्विविधेन कर्मणा (मन्तः) विचारवान् (गुरुः) उपदेष्टा (पुनः) (अस्तु) भवतु (सः) (अस्मै) (अनु) (मृक्षीष्ट) शोधयतु (तन्वम्) शरीरम् (दुरुक्तैः) दुष्टैरुक्तैः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यो अररिवानघायुररातिवा द्वयेन दुरुक्तैर्नोऽस्मान्मर्चयति ततो यो नस्तन्वमनुमृक्षीष्ट सोऽस्माकमस्मै पुनर्मन्त्रो गुरुरस्तु ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याणां मध्ये दुष्टं शिक्षन्ते ते त्याज्याः । ये सत्यं शिक्षन्ते ते माननीयास्सन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् (यः) जो (अररिवान्) दुःखी को प्राप्त करता हुआ (अघायुः) अपने को अपराध की इच्छा करने वाला (अरातीवा) न देने वाले जन के समान आचरण करता (द्वयेन) दो प्रकार के कर्म से वा (दुरुक्तैः) दुष्ट उक्तियों से (नः) हम लोगों को (मर्चयति) कहता है उस से जो हमारे (तन्वम्) शरीर को (अनु, मृक्षीष्ट) पीछे शोधे (सः) वह हमारा और (अस्मै) उक्त व्यवहार के लिये (पुनः) बार २ (मन्त्रः) विचारशील (गुरुः) उपदेश करने वाला (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्यों के बीच दुष्ट शिक्षा देने वा दुष्टों को शिखाते हैं वे छोड़ने योग्य और जो सत्य शिक्षा देते वा सत्य वर्त्ताव वर्त्तने वाले को शिखाते वे मानने के योग्य होवें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उत वा यः संहस्य प्रविद्वान्मर्त्तो मर्त्तं मर्चयति द्वयेन । अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरितार्य धायीः ॥ ५ ॥ १६ ॥

उत । वा । यः । सहस्य । प्रऽविद्वान् । मर्त्तः । मर्त्तम् । मर्चयति । द्वयेन । अतः । पाहि । स्तवमान । स्तुवन्तम् । अग्ने । माकिः । नः । दुःऽइताय । धायीः ॥ ५ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(उत) अपि (वा) पक्षान्तरे (यः) (सहस्य) सहसि भव (प्रविद्वान्) प्रकर्षेण वेत्तीति प्रविद्वान् (मर्त्तः) मनुष्यः (मर्त्तम्) मनुष्यम् (मर्चयति) शब्दयति (द्वयेन) अध्यापनोपदेशरूपेण (अतः) (पाहि) (स्तवमान) स्तुतिकर्त्तः (स्तुवन्तम्) स्तुतिकर्त्तारम् (अग्ने) विद्वन् (माकिः) निषेधे (नः) अस्मान् (दुरिताय) दुष्टाचाराय (धायीः) धायये: ॥५॥

अन्वयः—हे सहस्य स्तवमानाग्ने त्वं यः प्रविद्वान् मर्त्तो द्वयेन मर्त्तं मर्चयत्यतस्तं स्तुवन्तं पाहि । उत वा नोऽस्मान् दुरिताय माकिर्धायीः ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसः सुशिक्षाध्यापनाभ्यां मनुष्याणामात्मशरीर बलं वर्धयित्वाऽविद्यापापाचरणात् पृथक् कुर्वन्ति ते विश्वशोधका भवन्ति ॥ ५ ॥

अस्मिन् सूक्ते मित्राऽमित्रगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति सप्तचत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं षोडशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (सहस्य) बलादिक में प्रसिद्ध होने (स्तवमान) और सज्जनों की प्रशंसा करने वाले (अग्ने) विद्वान् तू (यः) जो (प्रविद्वान्) उत्तमता से जानने वाला (मर्त्तः) मनुष्य (द्वयेन) अध्यापन और उपदेश रूप से (मर्त्तम्) मनुष्य को (मर्चयति) कहता है अर्थात् प्रशंसित करता है (अतः) इस से (स्तुवन्तम्) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हुए जन को (पाहि) पालो (उत, वा) अथवा (नः) हम लोगों को (दुरिताय) दुष्ट आचरण के लिये (माकिः) मत कभी (धायीः) धायिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् उत्तम शिक्षा और पढ़ाने से मनुष्यों के आत्मिक और शारीरक बल को बढ़ा के और उन को अविद्या और पाप के आचरण से अलग करते हैं वे सब की शुद्धि करने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में मित्र और अमित्रों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ सैंतालीशवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

मथीदित्यस्य पञ्चर्चस्याष्टचत्वारिंशदुत्तरस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता १ । २ पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ३ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ विद्वदग्निगुणानुपदिशति ॥

अब एकसौ अड़तालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में विद्वान् और अग्नि के गुणों का उपदेश० ॥

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् । नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्णं चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥

मथीत् । यत् । ईम् । विष्टः । मातरिश्वा । होतारम् । विश्वऽअप्सुम् । विश्वऽदेव्यम् । नि । यम् । दधुः । मनुष्यासु । विक्षु । स्वः । न । चित्रम् । वपुषे । विऽभावम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(मथीत्) मथ्नाति (यत्) यः (ईम्) सर्वतः (विष्टः) प्रविष्टः (मातरिश्वा) अन्तरिक्षे शयानो वायुः (होतारम्) आदातारम् (विश्वाप्सुम्) विश्वं समग्रं रूपं गुणो यस्य तम् (विश्वदेव्यम्) विश्वेषु देवेषु पृथिव्यादिषु भवम् (नि) (यम्) (दधुः) दधाति (मनुष्यासु) मनुष्यसम्बन्धिनीषु (विक्षु) प्रजासु (स्वः) सूर्य्यम् (न) इव (चित्रम्) अद्भुतम् (वपुषे) रूपाय (विभावम्) विशेषेण भावुकम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथो विष्टो मातरिश्वा विश्वदेव्यं विश्वाप्सुं होतारमग्निं मथीत् विद्वांसो मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावं यमीं निदधुस्तं यूयं धरत ॥ १ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या वायुवद् व्यापिकां विद्युतं मथित्वा कार्याणि साध्नुवन्ति ते अद्भुतानि कर्माणि कर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (विष्टः) प्रविष्ट (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोने वाला पवन (विश्वदेव्यम्) समस्त पृथिव्यादि पदार्थों में हुए (विश्वाप्सुम्) समग्र रूप ही जिस का गुण उस (होतारम्) सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले अग्नि को (मथीत्) मथता है वा विद्वान् जन (मनुष्यासु) मनुष्यसम्बन्धिनी (विक्षु) प्रजाओं में (स्वः) सूर्य के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत और (वपुषे) रूप के लिये (विभावम्) विशेषता से भावना करने वाले (यम्) जिस अग्नि को (ईम्) सब ओर से (नि,दधुः) निरन्तर धरण करते हैं उस अग्नि को तुम लोग धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पवन के समान व्याप्त होने वाली बिजुली रूप आग को मथ के कार्य्यों की सिद्धि करते हैं वे अद्भुत कार्यों को कर सकते हैं॥ १॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् । जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

ददानम् । इत् । न । ददभन्त । मन्म । अग्निः । वरूथम् । मम । तस्य । चाकन् । जुषन्त । विश्वानि । अस्य । कर्म । उपऽस्तुतिम् । भरमाणस्य । कारोः ॥ २ ॥

पदार्थः—(ददानम्) दातारम् (इत्) (न) निषेधे (ददभन्त) दभ्नुयुः (मन्म) विज्ञानम् (अग्निः) (वरूथम्) श्रेष्ठम् (मम) (तस्य) (चाकन्) कामयते (जुषन्त) सेवन्ताम् (विश्वानि) सर्वाणि (अस्य) (कर्म) कर्माणि (उपस्तुतिम्) उपगतां प्रशंसाम् (भरमाणस्य) (कारोः) शिल्पविद्यासाध्यकर्त्तुः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या भवन्तो योऽग्निर्विद्वान् मम तस्य च वरूथं मन्म ददानं चाकन् तन्नेद् ददभन्त। अस्य भरमाणस्य कारोर्विश्वानि कर्मोपस्तुतिं च भवन्तो जुषन्त ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यो येभ्यो विद्या दद्यात् ते तस्य सेवां सततं कुर्युः । अवश्यं सर्वे वेदाभ्यासं च कुर्य्युः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप जो (अग्निः) विद्वान् (मम) मेरे और (तस्य) उस के (वरूथम्) उत्तम (मन्म) विज्ञान को (ददानम्) देते हुए उन की (चाकन्) कामना करता है उस को (नेत्) नहीं (ददभन्त) मारो (अस्य) इस (भरमाणस्य) भरण पोषण करते हुए (कारोः) शिल्प विद्या से सिद्ध होने योग्य कामों को करने वाले उन के (विश्वानि) समस्त (कर्म) कर्मों की (उपस्तुतिम्) समीप प्राप्त हुई प्रशंसा को आप (जुषन्त) सेवो ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो जिन के लिये विद्या दें वे उस की सेवा निरन्तर करें और अवश्य सब लोग वेद का अभ्यास करें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः । प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥

नित्ये । चित् । नु । यम् । सदने । जगृभ्रे । प्रशस्तिऽभिः । दधिरे । यज्ञियासः । प्र । सु । नयन्त । गृभयन्तः । इष्टौ । अश्वासः । न । रथ्यः । ररहाणाः ॥ ३ ॥

पदार्थः-(नित्ये) नाशरहिते (चित्) अपि (नु) सद्यः (यम्) पावकम् (सदने) सीदन्ति यस्मिन्नाकाशे तस्मिन् (जगृभ्रे) गृह्णीयुः (प्रशस्तिभिः) प्रशंसिताभिः क्रियाभिः (दधिरे) धरेयुः (यज्ञियासः) ये शिल्पाख्यं यज्ञमर्हन्ति ते (प्र) (सु) अत्र संहितायामिति दीर्घः (नयन्त) प्राप्नुयुः (गृभयन्तः) ग्रहीता इवाचरन्तः (इष्टौ) गन्तव्यायाम् (अश्वासः) सुशिक्षितास्तुरङ्गाः (न) इव (रथ्यः) रथेषु साधवः (ररहाणाः) गच्छन्तः । अत्र तुजादीनामित्यभ्यासदीर्घः ॥ ३ ॥

अन्वयः-ये यज्ञियासो जनाः प्रशस्तिभिर्नित्य इष्टौ सदने यं जगृभ्रे चिन्नु दधिरे तस्यालम्बेन ररहाणा रथ्योऽश्वासो न गृभयन्तः सन्तो यानानि सुप्रणयन्त ॥ ३ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०-ये नित्ये आकाशे स्थितान् वाय्वग्न्यादिपदार्थानुत्तमाभिः क्रियाभिः कार्येषु योजयन्ति ते विमानादीनि यानानि रचयितुं शक्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः-(यज्ञियासः) शिल्प यज्ञ के योग्य सज्जन (प्रशस्तिभिः) प्रशंसित क्रियाओं से (नित्ये) नित्य नाशरहित (सदने) बैठें जिस आकाश में और (इष्टौ) प्राप्त होने योग्य क्रिया में (यम्) जिस अग्नि का (जगृभ्रे) ग्रहण करें (चित्) और (नु) शीघ्र (दधिरे) धरें उस के आश्रय से (ररहाणाः)

जाते हुए जो कि (रथ्यः) रथों में उत्तम प्रशंसा वाले (अश्वासः) अच्छे शिक्षित घोड़े हैं उन के (न) समान और (गृभयन्तः) पदार्थों को ग्रहण करने वालों के समान आचरण करते हुए रथों को (सु, प्र, नयन्त) उत्तम प्रीति से प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो नित्य आकाश में स्थित वायु और अग्नि आदि पदार्थों को उत्तम क्रियाओं से कार्यों में युक्त करते हैं वे विमान आदि यानों को बना सकते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पुरूणि दस्मो निरिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा । आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४ ॥

पुरूणि । दस्मः । नि । रिणाति । जम्भैः । आत् । रोचते । वने । आ । विभाऽवा । आत् । अस्य । वातः । अनु । वाति । शोचिः । अस्तुः । न । शर्याम् । असनाम् । अनु । द्यून् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(पुरूणि) बहूनि (दस्मः) दुःखोपक्षेता (नि) (रिणाति) प्राप्नोति (जम्भैः) चालनादिभिः स्वगुणैः (आत्) अनन्तरे (रोचते) (वने) जंगले (आ) समन्तात् (विभावा) यो विभाति सः (आत्) अनन्तरम् (अस्य) (वातः) वायुः (अनु) (वाति) गच्छति (शोचिः) दीप्तिः (अस्तुः) प्रक्षेप्तुः (न) इव (शर्याम्) वायुताड़नाख्यां क्रियाम् (असनाम्) प्रक्षेपणाम् (अनु) (द्यून्) दिनानि ॥ ४ ॥

अन्वयः—यो विभावा दस्मोऽग्निर्जम्भैः पुरूणि वस्तून्यनुद्यून् नि रिणाति आह्ने आ रोचते आदस्य वातोऽनुवाति यस्य शोचिरस्तुरसनां न शर्यां रिणाति तेनोत्तमानि कार्याणि मनुष्यैः साधनीयानि ॥४॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये विद्योत्पादनताडनादिक्रियाभिस्तडिद्विद्यां साध्नुवन्ति ते प्रतिदिनमुन्नतिं लभन्ते ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (विभावा) विशेषता से दीप्ति करने तथा (दस्मः) दुःख का नाश करने वाला अग्नि (जम्भैः) चलाने आदि अपने गुणों से (पुरूणि) बहुत वस्तुओं को (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (नि, रिणाति) निरन्तर पहुंचाता है (आत्) इस के अनन्तर (वने) जंगल में (आ, रोचते) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होता है (आत्) और (अस्य) इस का सम्बन्धी (वातः) पवन (अनु, वाति) इस के पीछे वहता है जिस की (शोचिः) दीप्ति प्रकाशमान (अस्तुः) प्रेरणा देने वाले शिल्पी जन की (असनाम्) प्रेरणा के (न) समान (शर्याम्) पवन की ताड़ना को प्राप्त होता है उस से उत्तम काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो विद्या से उत्पन्न किई हुई ताड़नादि क्रियाओं से बिजुली की विद्या को सिद्ध करते हैं वे प्रति दिन उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति । अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

न । यम् । रिपवः । न । रिषण्यवः । गर्भे । सन्तम् । रेषणाः । रेषयन्ति । अन्धाः । अपश्याः । न । दभन् । अभिऽख्या । नित्यासः । ईम् । प्रेतारः । अरक्षन् ॥५॥१७॥

पदार्थः—(न) (यम्) (रिपवः) शत्रवः (न) (रिषण्यवः) आत्मनो रेषणमिच्छवः (गर्भे) मध्ये (सन्तम्) वर्त्तमानम् (रेषणाः) हिंसकाः (रेषयन्ति) हिंसयन्ति (अन्धाः) ज्ञानदृष्टिरहिताः (अपश्याः) ये न पश्यन्ति ते (न) इव (दभन्) दभ्नुयुः (अभिख्या) ये आभितः ख्यान्ति ते (नित्यासः) अविनाशिनः (ईम्) सर्वतः (प्रेतारः) प्रीतिकर्त्तारः (अरक्षन्) रक्षेयुः ॥५॥

अन्वयः—यं रिपवो न रेषयन्ति यं गर्भे सन्तं रेषणा रिषण्यवो न रेषयन्ति नित्यासोऽभिख्याऽपश्यानेवान्धा न दभन् ये प्रेतार ईम रक्षन् तं तान् सर्वे सत्कुर्वन्तु ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यं रिपवो हन्तुं न शक्नुवन्ति यो गर्भेपि न क्षीयते स आत्मा वेदितव्यः ॥ ५ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदग्न्यादिगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्बोध्या ॥ ५ ॥

इत्यष्टचत्वारिंशदुत्तरं शततमं सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—(यम्) जिस को (रिपवः) शत्रुजन (न) नहीं (रेषयन्ति) नष्ट करा सकते वा (गर्भे, सन्तम्) मध्य में वर्त्तमान जिस को (रेषणाः) हिंसक (रिषण्यवः) अपने को नष्ट होने की इच्छा करने वाले (न) नष्ट नहीं

करा सकते वा (नित्यासः) नित्य अविनाशी (अभिख्या) सब ओर से ख्याति करने और (अपश्याः) न देखने वालों के (न) समान (अन्धाः) ज्ञान दृष्टिरहित न (दभन्) नष्ट कर सकें जो (प्रेतारः) प्रीति करने वाले (ईम्) सब ओर से (अरक्षन्) रक्षा करें उस अग्नि को और उस को सब सत्कार युक्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस को रिपु जन नष्ट नहीं कर सकते हैं जो गर्भ में भी नष्ट नहीं होता है वह आत्मा जानने योग्य है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानने योग्य है ॥

यह एकसौ अड़तालीशवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

महरित्यस्य पञ्चर्चस्य एकोनपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ भुरिगनुष्टुप् २ । ४ निचृदनुष्टुप् ५ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

अथ पुनर्विद्वदग्न्यादिगुणानाह ॥

अब एक सौ उनचाशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् और अग्न्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन करते हैं

म॒हः स रा॒य एष॑ते॒ पति॒र्दन्नि॒न इ॒नस्य॒ वसु॑नः प॒द आ । उप॒ ध्रज॑न्त॒मद्र॑यो वि॒धन्नित् ॥ १ ॥

म॒हः । सः । रा॒यः । आ । ई॒ष॒ते । पतिः॑ । दन् । इ॒नः । इ॒नस्य॑ । व॒सुनः॑ । प॒दे । आ । उप॑ । ध्रजन्त॑म् । अद्र॑यः । वि॒धन् । इ॒त् ॥ १ ॥

पदार्थः—(महः) महतः (सः) (रायः) धनस्य (आ) (ईषते) प्राप्नोति (पतिः) स्वामी (दन्) दाता। अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (इनः) ईश्वरः (इनस्य) महदैश्वर्यस्य स्वामिनः (वसुनः) धनस्य (पदे) प्रापणे (आ) (उप) (ध्रजन्तम्) गच्छन्तम् (अद्रयः) मेघाः (विधन्) विदधतु (इत्) इव ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं य इनस्येनो वसुनो महो रायो दन् पतिरेषते यएतस्य पदे ध्रजन्तमद्रय इदिव उपाविधन् स सर्वैः सत्कर्त्तव्यः स्यात् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—इह यथा सुपात्रदानेन कीर्त्तिर्भवति न तथाऽन्योपायेन यः पुरुषार्थमाश्रित्य प्रयतते सोऽखिलं धनमाप्नोति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जो (इनस्य) महान् ऐश्वर्य के स्वामी का (इनः) ईश्वर (वसुनः) सामान्य धन का और (महः) अत्यन्त (रायः) धन का (दन्) देने वाला (पतिः) स्वामी (आ, ईषते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वा जो विद्वान् जन इस की (पदे) प्राप्ति के निमित्त (ध्रजन्तम्) पहुंचते हुए को (अद्रयः) मेघों के (इत्) समान (उपाविधन्) निकट हो कर अच्छे प्रकार विधान करें (सः) वह सब को सत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—इस संसार में जैसे सुपात्र को देने से कीर्ति होती है वैसे और उपाय से नहीं जो पुरुषार्थ का आश्रय कर अच्छा यत्न करता है वह पूर्ण धन को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स यो वृषा॒ न॒रां न रोद॑स्यो॒ः श्रवो॑भि॒रस्ति॑ जी॒वपी॑तसर्गः । प्र यः स॑स्रा॒णः शि॑श्री॒त योनौ॑ ॥२॥

सः । यः । वृषा॑ । न॒राम् । न । रोद॑स्योः । श्रवः॑ऽभिः । अस्ति॑ । जी॒वपी॑तऽसर्गः । प्र । यः । स॒स्रा॒णः । शि॒श्री॒त । योनौ॑ ॥२॥

पदार्थः—(सः) (यः) (वृषा) श्रेष्ठो बलिष्ठः (नराम्) नृणाम् (न) इव (रोदस्योः) द्यावापृथिव्योः (श्रवोभिः) सह (अस्ति) (जीवपीतसर्गः) जीवैः सह पीतः सर्गो येन (प्र) (यः) (सस्राणः) सर्वगुणदोषान् प्राप्नुवन् (शिश्रीत) श्रयेत (योनौ) कारणे ॥ २ ॥

अन्वयः—यः श्रवोभिर्नरां न रोदस्योर्जीवपीतसर्गोऽस्ति यश्च सस्राणो योनौ प्रशिश्रीत स वृषास्ति ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यो नायकेषु नायकः पृथिव्यादिकार्यकारणविद्यामाश्रयति सएव सुखी जायते ॥ २ ॥

पदार्थः—(यः) जो (श्रवोभिः) अन्नआदि पदार्थों के साथ (नराम्) मनुष्यों के बीच (न) जैसे वैसे (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच

(जीवपीतसर्गः) जीवों के साथ पिया है सृष्टिक्रम जिन से अर्थात् विद्या बल से प्रत्येक जीव के गुण दोषों को उन की उत्पत्ति के साथ जाना वा (यः) जो (सस्राणः) सब पदार्थों के गुण दोषों को प्राप्त होता हुआ (योनौ) कारण में अर्थात् सृष्टि के निमित्त में (प्र, शिश्रीत) आश्रय करे उस में आरूढ़ हो (सः) वह (वृषा) श्रेष्ठ बलवान् (अस्ति) है ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो नायकों में नायक पृथिवी आदि पदार्थों के कार्य कारण को जानने वालों की विद्या का आश्रय करता है वही सुखी होता है ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा । सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥

आ । यः । पुरम् । नार्मिणीम् । अदीदेत् । अत्यः । कविः । नभन्यः । न । अर्वा । सूरः । न । रुरुक्वान् । शतऽआत्मा ॥ ३ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (यः, पुरम्) (नार्मिणीम्) नर्माणि क्रीडाविलासा विद्यन्ते येषां तेषामिमाम् (अदीदेत्) (अत्यः) अतति व्याप्नोतीति (कविः) क्रान्तप्रज्ञः (नभन्यः) नभासि भवो नभन्यो वायुः । अत्र वर्णव्यत्ययेन नकारादेशः । नभ इति साधारणना० निघं० १ । ४ (न) इव (अर्वा) अश्वः (सूरः) सूर्यः (न) इव (रुरुक्वान्) रुचिमान् (शतात्मा) शतेष्वसंख्यातेषु पदार्थेष्वात्मा विज्ञानं यस्य सः ॥ ३ ॥

अन्वयः—योऽत्यो नभन्यो न कविरर्वा सूरो न रुरुक्वान् शतात्मा जनो नार्मिणीं पुरमादीदेत् प्रकाशयेत् स न्यायं कर्त्तुमर्हति ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—योऽसंख्यातपदार्थविद्यावित् सुशोभितां नगरीं वासयेत् स ऐश्वर्यैः सवितेव प्रकाशमानःस्यात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यः) जो (अत्यः) व्याप्त होने वाला (नभन्यः) आकाश में प्रसिद्ध पवन उस के (न) समान (कविः) क्रम २ से पदार्थों में व्याप्त होने वाली बुद्धि वाला वा (अर्वा) घोड़ा और (सूरः) सूर्य के (न) समान (रुरुक्वान्) रुचिमान् (शतात्मा) असंख्यात पदार्थों में विशेष ज्ञान रखने वाला जन (नार्मिणीम्) क्रीडाविलासी आनन्द भोगने वाले जनों की (पुरम्) पुरी को (आदीदेत्) अच्छे प्रकार प्रकाशित करे वह न्याय करने योग्य होता है॥३॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालं०—जो असंख्यात पदार्थों की विद्याओं को जानने वाला अच्छी शोभा युक्त नगरी को वसावे वह ऐश्वर्यों से सूर्य के समान प्रकाशमान हो ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि
शुशुचानो अस्थात्। होता यजिष्ठो अपां सधस्थे॥४॥

अभि। द्विऽजन्मा। त्री। रोचनानि। विश्वा। रजांसि। शुशुचानः। अस्थात्। होता। यजिष्ठः। अपाम्। सधऽस्थे ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अभि) आभिमुख्ये (द्विजन्मा) द्वाभ्यामाकाशवायुभ्यां जन्म प्रादुर्भावो यस्य (त्री) त्रीणि (रोचनानि) सूर्यविद्युद्भूमिसम्बन्धीनि तेजांसि (विश्वा) सर्वाणि (रजांसि)

लोकान् (शुशुचानः) प्रकाशयन् (अस्थात्) तिष्ठति (होता) आकर्षणेनादाता (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा सङ्गन्ता (अपाम्) जलानाम् (सधस्थे) सहस्थाने ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा द्विजन्मा होता यजिष्ठोऽग्निरपां सधस्थे त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानः सन्नभ्यस्थात्तथा त्वं भव॥४॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये विद्याधर्म्ये विद्वत्सङ्गप्रकाशिते स्थानेऽनुतिष्ठन्ति ते सर्वान् शुभगुणकर्मस्वभावानादातुमर्हन्ति ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (द्विजन्मा) दो अर्थात् आकाश और वायु से प्रसिद्ध जिस का जन्म ऐसा (होता) आकर्षण शक्ति से पदार्थों को ग्रहण करने और (यजिष्ठः) अतिशय करके संगत होने वाला अग्नि (अपाम्) जलों के (सधस्थे) साथ के स्थान में (त्री) तीन (रोचनानि) अर्थात् सूर्य बिजुली और भूमि के प्रकाशों को और (विश्वा) समस्त (रजांसि) लोकों को (शुशुचानः) प्रकाशित करता हुआ (अभ्यस्थात्) सब ओर से स्थित हो रहा है वैसे तुम होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलु०—जो विद्या और धर्मसंयुक्त व्यवहार में विद्वानों के संग से प्रकाशित हुए स्थान के निमित्त अनुष्ठान करते हैं वे समस्त अच्छे गुण कर्म और स्वभावों के ग्रहण करने को योग्य होते हैं ॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या। मर्त्तो यो अस्मै सुतुको ददाश॥५॥१८॥

अयम्। सः। होता। यः। द्विऽजन्मा। विश्वा। दधे। वार्याणि। श्रवस्या। मर्त्तः। यः। अस्मै। सुऽतुकः। ददाश॥५॥१८॥

पदार्थः—(अयम्) (सः) (होता) ग्रहीता (यः) (द्विजन्मा) गर्भविद्याशिक्षाभ्यां जातः (विश्वा) सर्वाणि (दधे)धत्ते (वार्याणि) वर्त्तुं स्वीकर्त्तुमर्हाणि (श्रवस्या) श्रवसि श्रवणे भवानि (मर्त्तः) मनुष्यः (यः) (अस्मै) विद्यार्थिने (सुतुकः) सुष्ठुविद्यावृद्धः (ददाश) ददाति ॥ ५ ॥

अन्वयः—यः सुतुको मर्त्तोऽस्मै विद्यां ददाश यो द्विजन्मा होता विश्वा श्रवस्या वार्य्याणि दधे सोऽयं पुण्यवान् भवति ॥ ५ ॥

भावार्थः—यस्य विद्यासुशिक्षायुक्तयोर्मातापित्रोः सकाशादेकं जन्माऽचार्यविद्याभ्यां द्वितीयं च स द्विजः सन् विद्वान् स्यात्॥५॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदग्न्यादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्येकोनपञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तमष्टादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—(यः) जो (सुतुकः) सुन्दर विद्या से बढ़ा उन्नति को प्राप्त हुआ (मर्त्तः) मनुष्य (अस्मै) इस विद्यार्थी के लिये विद्या को (ददाश) देता है वा (यः) जो (द्विजन्मा) गर्भ और विद्या शिक्षा से उत्पन्न हुआ (होता) उत्तमगुणग्राही (विश्वा) समस्त (श्रवस्या) सुनने में प्रसिद्ध हुए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य विषयों को (दधे) धारण करता है (सः) (अयम्) सो यह पुण्यवान् होता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—जिस का विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त माता पिताओं से एक जन्म और दूसरा जन्म आचार्य और विद्या से हो वह द्विज होता हुआ विद्वान् हो॥५॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्न्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ उनचाशवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

पुरुत्वेत्यस्य त्रिऋचस्य पञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ ३ । भुरिग्गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः २ । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ विद्वद्गुणानाह ॥

अब एकसौ पञ्चाशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

पुरु त्वा दाश्वान् वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

पुरु । त्वा । दाश्वान् । वोचे । अरिः । अग्ने । तव । स्वित् । आ । तोदस्यऽइव । शरणे । आ । महस्य ॥ १ ॥

पदार्थः—(पुरु) बहु (त्वा) त्वाम् (दाश्वान्) दाता (वोचे) वदेयम् (अरिः) प्रापकः (अग्ने) विद्वन् (तव) (स्वित्) एव (आ) (तोदस्येव) व्यथकस्येव (शरणे) गृहे (आ) (महस्य) महतः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे अग्ने दाश्वानरिरहं महस्य तोदस्येव तव स्विदा शरणे त्वा पुर्वा वोचे ॥ १ ॥

भावार्थः—यो यस्य भृत्यो भवेत् स तस्याऽऽज्ञां पालयित्वा कृतार्थो भवेत् ॥ १ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) विद्वान् (दाश्वान्) दान देने और (अरिः) व्यवहारों की प्राप्ति कराने वाला मैं (महस्य) महान् (तोदस्येव) व्यथा देने वाले के जैसे वैसे (तव) आप के (स्वित्) ही (आ, शरणे) अच्छे प्रकार घर में (त्वा) आप को (पुरु, आ, वोचे) बहुत भली भांति से कहूं ॥ १ ॥

भावार्थः-जो जिस का रक्खा हुआ सेवक हो वह उस की आज्ञा का पालन कर के कृतार्थ होवे ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः । कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥

वि । अनिनस्य । धनिनः । प्रऽहोषे । चित् । अररुषः । कदा । चन । प्रऽजिगतः । अदेवऽयोः ॥ २ ॥

पदार्थः-(वि) (अनिनस्य) यत्प्रशस्तं प्राणनिमित्तं तस्य (धनिनः) बहुधनयुक्तस्य (प्रहोषे) यो जुहोति तस्मै (चित्) अपि (अररुषः) अहिंसकस्य (कदा) (चन) (प्रजिगतः) प्रकर्षेण भृशं प्राप्नुतः । अत्र यङन्तात् परस्य लटः शतृयङो लुक् वाच्छन्दसीति अभ्यासस्येत्वम् (अदेवयोः) न देवौ अदेवौ तयोरदेवयोः ॥ २ ॥

अन्वयः-अहमदेवयोः प्रजिगतो अररुषो व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे कदा चनाऽप्रियं न वोचे । एवं चिदपि त्वं मा वोचेः ॥ २ ॥

भावार्थः-योऽविदुषोरध्यापकोपदेशकयोः संगं त्यक्त्वा विदुषोः सङ्गं करोति स सुखाढ्यो जायते ॥ २ ॥

पदार्थः—मैं (अदेवयोः) जो नहीं विद्वान् हैं उन को (प्रजिगतः) जो उत्तमता से निरन्तर प्राप्त होता हुआ (अरुषः) अहिंसक (व्यनिनस्य) विशेषता से प्रशंसित प्राण का निमित्त (धनिनः) बहुतधनयुक्त जन है उस के (प्रहोषे) उस को अच्छे ग्रहण करने वाले के लिये (कदा, चन) कभी प्रिय वचन न कहूं ऐसे (चित्) तूं भी मत बोल ॥ २ ॥

भावार्थः—जो अविद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने वालों के संग को छोड़ विद्वानों का संग करता है वह सुखों से युक्त होता है ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।
प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

सः । चन्द्रः । विप्र । मर्त्यः । महः । व्राधन्ऽतमः । दिवि ।
प्रऽप्र । इत् । ते । अग्ने । वनुषः । स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

पदार्थः—(सः) (चन्द्रः) आह्लादकारकः (विप्र) मेधाविन् (मर्त्यः) मनुष्यः (महः) महान् (व्राधन्तमः) अतिशयेन वर्द्धमानः (दिवि) (प्रप्र) (इत्) एव (ते) तव (अग्ने) विद्वन् (वनुषः) संविभाजकस्य (स्याम) भवेम ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् यथा वयं वनुषस्ते तवोपकारकाः प्रप्रेत् स्याम । हे विप्र यथा स मर्त्यो व्राधन्तमो महश्चन्द्रो दिवीव वर्त्तते तथा त्वं वर्त्तस्व ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा पृथिव्यादिपदार्थज्ञा विद्वांसो विद्याप्रकाशे प्रवर्त्तन्ते तथेतरैरपि वर्त्तितव्यम् ॥ ३ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति पञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जैसे हम लोग (वनुषः) अलग सब को बांटने वाले (ते) आप के उपकार करने वाले (प्रप्र, इत्, स्याम) उत्तम ही प्रकार से होवें। वा हे (विप्र) धीर बुद्धि वाले जन जैसे (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (व्राधन्तमः) अतीव उन्नति को प्राप्त जैसे (महः) बड़ा (चन्द्रः) चन्द्रमा (दिवि) आकाश में वर्त्तमान है वैसे तू भी अपना वर्त्ताव रख ॥ ३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे पृथिव्यादि पदार्थों को जाने हुए विद्वान् जन विद्याप्रकाश में प्रवृत्त होते हैं वैसे और जनों को भी वर्त्ताव रखना चाहिये ॥ ३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पचाशवां सूक्त और उन्नीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ मित्रमित्यस्य नवर्चस्यैकपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। १ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः २ । ३ । ४ । ५ विराट् जगती । ६ । ७ जगती । ८ । ९ निचृज्जगती च छन्दः। निषादः स्वरः।

अथ मित्रावरुणयोर्लक्षणविशेषानाह ॥

अब नवऋचा वाले एकसौ इक्कावन सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में मित्रावरुण के विशेष लक्षणों को कहते हैं ॥

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन्। अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥

मित्रम्। न। यम्। शिम्या। गोषु। गव्यवः। सुऽआध्यः। विदथे। अप्ऽसु। जीजनन्। अरेजेताम्। रोदसी इति। पाजसा। गिरा। प्रति। प्रियम्। यजतम्। जनुषाम्। अवः ॥ १ ॥

पदार्थः—(मित्रम्) सखायम् (न) इव (यम्) (शिम्या) कर्मणा। शिमीति कर्मना० निघं० २। १ (गोषु) धेनुषु (गव्यवः) गाइच्छवः (स्वाध्यः) सुष्ठु आधीयैषान्ते (विदथे) यज्ञे (अप्सु) प्राणेषु (जीजनन्) जनयेयुः । अत्राडभावः (अरेजेताम्) कंपेताम् (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (पाजसा) बलेन (गिरा) सुशिक्षितया वाण्या (प्रति) (प्रियम्) यः

प्रीणाति तम् (यजतम्) सङ्गन्तव्यम् (जनुषाम्) जनानाम् (अवः) रक्षणम् ॥ १ ॥

अन्वयः—प्रियं यजतं यमाग्निं जनुषामवः प्रति स्वाध्यो गोषु गव्यवो मित्रं न विदथे शिम्याऽप्सु जीजनन्तस्याग्नेः पाजसा गिरा रोदसी अरेजेताम् ॥ १ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसः प्रजापालनमिच्छवस्ते मित्रभावं कृत्वा सर्वं जगत् स्वात्मवत् रक्षेयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्रियम्) जो प्रसन्न करता वा (यजतम्) संग करने योग्य (यम्) जिस अग्नि को (जनुषाम्) मनुष्यों के (अवः) रक्षा आदि के (प्रति) वा प्रति (स्वाध्यः) जिन की उत्तम धीर बुद्धि वे (गोषु) गौओं में (गव्यवः) गौओं की इच्छा करने वाले जन (मित्रं, न) मित्र के समान (विदथे) यज्ञ में (शिम्या) कर्म से (अप्सु) प्राणियों के प्राणों में (जीजनन्) उत्पन्न कराते अर्थात् उस यज्ञ कर्म द्वारा वर्षा और वर्षा से अन्न होने और अन्नों से प्राणियों के जठराग्नि को बढ़ाते हैं उस अग्नि के (पाजसा) बल (गिरा) रूप उत्तम शिक्षित वाणी से (रोदसी) सूर्यमण्डल और पृथिवीमण्डल (अरेजेताम्) कम्पायमान होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् प्रजापालना किया चाहते हैं वे मित्रता कर समस्त जगत् की रक्षा करें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः । अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥

यत् । ह । त्यत् । वाम् । पुरुऽमीढस्य । सोमिनः । प्र । मित्रासः । न । दधिरे । सुऽआभुवः । अध । क्रतुम् । विदतम् । गातुम् । अर्चते । उत । श्रुतम् । वृषणा । पस्त्यऽवतः ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्) ये (ह) किल (त्यत्) तेषाम् (वाम्) युवाम् (पुरुमीढस्य) पुरुभिर्बहुभिर्गुणैः सिक्तस्य (सोमिनः) बह्वैश्वर्ययुक्तस्य (प्र) (मित्रासः) सखायः (न) इव (दधिरे) दधति (स्वाभुवः) सुष्ठु समन्तात् परोपकारे भवन्ति (अध) अनन्तरम् (क्रतुम्) प्रज्ञाम् (विदतम्) प्राप्नुतम् (गातुम्) स्तुतिम् (अर्चते) सत्कर्त्रे (उत) अपि (श्रुतम्) (वृषणा) यौ वर्षयतो दुष्टानां शक्तिं बंधयतस्तौ (पस्त्यावतः) प्रशस्तानि पस्त्यानि गृहाणि विद्यन्ते यस्य ॥ २ ॥

अन्वयः—हे वृषणाऽध्यापकोपदेशकौ युवां पुरुमीढस्य पस्त्यावतः सोमिनः क्रतुं वाचं यद्ध स्वाभुवो मित्रासो न प्रदधिरे त्यत् तेषां गातुं विदतमधोत वामर्चते श्रुतम् ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये मित्रवत् सर्वेषु जनेषु प्रज्ञां संस्थाप्य विद्या निदधति ते सौभाग्यवन्तो भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (वृषणा) शर आदि की वर्षा कराते दुष्टों की शक्ति को बांधते हुए अध्यापक और उपदेशको तुम दोनों (पुरुमीढस्य) बहुत गुणों से सींचे हुए (पस्त्यावतः) प्रशंसित घरों वाले (सोमिनः) बहुत ऐश्वर्ययुक्त सज्जन की (क्रतुम्) बुद्धि को (यत्, ह) जो निश्चय के साथ (स्वाभुवः) उत्तमता से परोपकार में प्रसिद्ध होने वाले जन (मित्रासः) मित्रों के (न)

समान (प्र, दधिरे) अच्छे प्रकार धारण करते (त्यत्) उन की (गातुम्) पृथिवी को (विदतम्) प्राप्त होओ (अधीत) इस के अनन्तर भी (वाम्) तुम दोनों का (अर्चते) सत्कार करते हुए जन की (श्रुतम्) सुनो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो मित्र के समान सब जनों में उत्तम बुद्धि को स्थापन कर विद्याओं का स्थापन करते हैं वे अच्छे भाग्यशाली होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे । यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥

आ । वाम् । भूषन् । क्षितयः । जन्म । रोदस्योः । प्रऽवाच्यम् । वृषणा । दक्षसे । महे । यत् । ईम् । ऋताय । भरथः । यत् । अर्वते । प्र । होत्रया । शिम्या । वीथः । अध्वरम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (वाम्) युवयोः (भूषन्) अलंकुर्युः (क्षितयः) मनुष्याः (जन्म) विद्याप्रादुर्भावम् (रोदस्योः) द्यावाभूम्योर्मध्ये (प्रवाच्यम्) प्रवक्तुमर्हम् (वृषणा) विद्यावर्षयितारौ (दक्षसे) आत्मबलाय (महे) महते (यत्) ये (ईम्) सर्वतः (ऋताय) सत्यविज्ञानाय (भरथः) धरथ (यत्) यतः (अर्वते) प्रशस्तविज्ञानवते (प्र) (होत्रया) आदातुमर्हया (शिम्या) सुकर्मयुक्तया (वीथः) व्याप्नुथ (अध्वरम्) अहिंसाधर्मयुक्तं व्यवहारम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे वृषणा यद्ये रोदस्योर्मध्ये वर्त्तमानाः क्षितयो महे दक्षसे वां युवयोः प्रवाच्यं जन्म भूषन् तत्सङ्गेन यद्यतोऽर्वत ऋताय होत्रया शिम्याऽध्वरं युवामाभरथः। ईं प्रवीथः । तस्माद्भवन्तौ प्रशंसनीयौ स्तः ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो बाल्यावस्थामारभ्य पुत्राणां कन्यानां च विद्याजन्म प्रवर्द्धयन्ति ते सत्यविद्यानां प्रचारेण सर्वान् विभूषयन्ति॥ ३॥

पदार्थः—हे (वृषणा) विद्या की वर्षा कराने वाले (यत्) जो (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के बीच वर्त्तमान (क्षितयः) मनुष्य (महे) अत्यन्त (दक्षसे) आत्म बल के लिये (वाम्) तुम दोनों का (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार कहने योग्य (जन्म) जन्म को (भूषन्) सुशोभित करें उन के संग से (यत्) जिस कारण (अर्वते) प्रशंसित विज्ञान वाले (ऋताय) सत्यविज्ञान युक्त सज्जन के लिये (होत्रया) ग्रहण करने योग्य (शिम्या) अच्छे कर्मों से युक्त क्रिया से (अध्वरम्) अहिंसा धर्म युक्त व्यवहार को तुम (आ,भरथः) अच्छे प्रकार धारण करते हो और (ईम्) सब ओर से उस को (प्र,वीथः) व्याप्त होते हो इस से आप प्रशंसा करने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थः-जो विद्वान् बाल्यावस्था को ले कर पुत्र और कन्याओं को विद्या जन्म की अति उन्नति दिलाते हैं वे सत्य के प्रचार से सब को विभूषित कराते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावाना-वृतमा घोषथो बृहत् । युवं दिवो बृहतो दक्षमा-भुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥

प्र । सा । क्षितिः । असुरा । या । महि । प्रिया । ऋतऽवानौ । ऋतम् । आ । घोषथः । बृहत् । युवम् । दिवः । बृहतः । दक्षम् । आऽभुवम् । गाम् । न । धुरि । उप । युञ्जाथेइति । अपः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(प्र) (सा) (क्षितिः) (असुर) प्राणवद्बलिष्ठौ। अत्राकारादेशो बहुलं छन्दसीति ह्रस्वश्च (या) (महि) महति (प्रिया) सुखकारिणी (ऋतावानौ) सत्याचारिणौ (ऋतम्) सत्यम् (आ) (घोषथः) विशेषेण शब्दयथः (बृहत्) महत् (युवम्) युवाम् (दिवः) राज्यप्रकाशस्य (बृहतः) अतिवृद्धस्य (दक्षम्) बलम् (आभुवम्) समन्ताद्भवनशीलम् (गाम्) बलीवर्दम् (न) इव (धुरि) शकटादिवाहने (उप) (युञ्जाथे) नियुक्तौ भवतः (अपः) कर्म ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे ऋतावानावसुर युवं यतो बृहतो दिवो दक्षमपश्च धुर्याभुवं गां नोपयुञ्जाथे बृहदृतमा घोषथस्तस्माद्युवां या महि प्रिया क्षितिस्सा प्राप्नोतु ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये सत्यमाचरन्त्युपदिशन्ति तेऽसंख्यं बलं प्राप्य महीराज्यं भुञ्जते ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (ऋतावाना) सत्य आचरण करने वाले (असुर) प्राण के समान बलवान् मित्र वरुण राज प्रजा जन (युवम्) तुम दोनों जिस कारण (बृहतः) अति उन्नति को प्राप्त (दिवः) प्रकाश (दक्षम्) बल और (अपः) कर्म को (धुरि) गाड़ी चलाने की धुरि के निमित्त (आभुवम्)

अच्छे प्रकार होने वाले (गाम्) प्रबल बल के (न) समान (उप,युञ्जाथे) उपयोग में लाते हो और (बृहत्) अत्यन्त (ऋतम्) सत्य व्यवहार को (आघोषथः) विशेषता से शब्दायमान कर प्रख्यात करते हो इस से तुम दोनों को (या) जो (महि) अत्यन्त (प्रिया) सुखकारिणी (क्षितिः) भूमि है (सा) वह (प्र) प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो सत्य का आचरण करते और उस का उपदेश करते हैं वे असंख्य बल को प्राप्त हो कर पृथिवी के राज्य को भोगते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

मही अत्र॑ महि॒ना वार॑मृण्वथोऽरे॒णव॒स्तुज॒ आ सद्म॒न्धेनवः॑ । स्वर॑न्ति ता उ॑प॒रता॑ति सूर्य॒मा निम्रुच॑ उ॒षस॑स्तक्व॒वीरि॑व ॥ ५ ॥ २० ॥

म॒ही इति॑ । अत्र॑ । म॒हि॒ना । वार॑म् । ऋ॒ण्व॒थः॒ । अ॒रे॒णवः॑ । तुजः॑ । आ । सद्म॑न् । धे॒नवः॑ । स्वर॑न्ति । ता । उ॒प॒रऽता॑ति । सूर्य॑म् । आ । नि॒ऽम्रुचः॑ । उ॒षसः॑ । त॒क्व॒वीःऽइ॑व ॥५॥ २०॥

पदार्थः—(मही) महत्यां मह्याम् (अत्र)(महिना) महिम्ना (वारम्) वर्त्तुमर्हम् (ऋण्वथः) प्राप्नुथः (अरेणवः) दुष्टानप्राप्ताः (तुजः) आदत्ताः (आ) (सद्मन्) सद्मनि गृहे (धेनवः) या धयन्ति पाययन्ति ताः (स्वरन्ति) (ताः) (उपरताति) उपराणां मेघानामवकाशवत्यन्तरिक्षे (सूर्यम्) (आ) (निम्रुचः) नितरां गच्छन्तीः (उषसः) प्रभातान् (तक्ववीरिव) यस्तक्वान् सेनाजनान् व्याप्नोति तद्वत् ॥ ५ ॥

अन्वयः-हे अध्यापकोपदेशकौ युवां तक्ववीरिवात्र मही महिना उपरताति । सूर्यमा निम्रुच उषस इव या अरेणवस्तुजो धेनवः सद्मन्वारमास्वरन्ति ता ऋण्वथः ॥ ५ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०-यथा दुग्धदाभ्यो गावः सर्वान् प्रीणयन्ति तथाऽध्यापकोपदेशका विद्यासुशिक्षाः प्रदाय सर्वान् सुखयेयुः ॥ ५ ॥

पदार्थः-हे पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जनो तुम दोनों (तक्ववीरिव) जो सेनाजनों को व्याप्त होना उस के समान (अत्र) इस (मही) पृथिवी में (महिना) बड़प्पन से (उपरताति) मेघों के अवकाश वाले अर्थात् मेघ जिस में आते जाते उस अन्तरिक्ष में (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (आ, निम्रुचः) मर्यादा माने निरन्तर गमन करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान (अरेणवः) जो दुष्टों को नहीं प्राप्त (तुजः) सज्जनों ने ग्रहण किई हुई (धेनवः) जो दुग्ध पिलाती हैं वे गौयें (सद्मन्) अपने गोठों में (वारम्) स्वीकार करने योग्य (आ, स्वरन्ति) सब ओर से शब्द करती हैं (ताः) उन को (ऋण्वथः) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे दूध देने वाली गौयें सब प्राणियों को प्रसन्न करती हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करने वाले जन विद्या और उत्तम शिक्षा को अच्छे प्रकार देकर सब मनुष्यों को सुखी करें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ वा॑मृ॒ताय॑ के॒शिनी॑रनूषत॒ मित्र॒ यत्र॒ वरु॑ण गा॒तुमर्च॑थः । अव॒ त्मना॑ सृ॒जतं॒ पिन्व॑तं॒ धियो॑ यु॒वं विप्र॑स्य॒ मन्म॑नामिरज्यथः ॥ ६ ॥

आ । वाम् । ऋताय । केशिनीः । अनूषत । मित्र । यत्र । वरुण । गातुम् । अर्चथः । अव । त्मना । सृजतम् । पिन्वतम् । धियः । युवम् । विप्रस्य । मन्मनाम् । इरज्यथः ॥६॥

पदार्थः—(आ) (वाम्) युवाम् (ऋताय) सत्याचाराय (केशिनीः) रश्मिमतीः (अनूषत) स्तुवत (मित्र) सखे (यत्र) (वरुण) वर (गातुम्) सत्यां स्तुतिम् (अर्चथः) सत्कुरुथः (अव) (त्मना) आत्मना (सृजतम्) निष्पादयतम् (पिन्वतम्) सिञ्चतम् (धियः) प्रज्ञाः (युवम्) युवाम् (विप्रस्य) मेधाविनः (मन्मनाम्) मन्यमानाम् (इरज्यथः) ऐश्वर्ययुक्तां कुरुथः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मित्र वरुण च विद्वांसौ यत्र ऋताय केशिनीः सुन्दरस्त्रियो वां युवामनूषत तत्र युवं गातुमार्चथः । त्मना विप्रस्य धियोवसृजतं पिन्वतं च मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥

भावार्थः—या इह प्रशंसिता स्त्रियो ये च पुरुषास्ते स्वसदृशैस्सह संयुज्यन्तां ब्रह्मचर्य्येण विद्यया विज्ञानमुन्नीयैश्वर्यं वर्द्धयन्तु॥६॥

पदार्थः—हे (मित्र) मित्र और (वरुण) श्रेष्ठ विद्वानो (यत्र) जहां (ऋताय) सत्याचरण के लिये (केशिनीः) चमक दमक वाली सुन्दरी स्त्री (वाम्) तुम दोनों की (अनूषत) स्तुति करें वहां (युवम्) तुम दोनों (गातुम्) सत्यस्तुति को (आ, अर्चथः) अच्छे प्रकार प्रशंसित करते हो (त्मना) अपने से (विप्रस्य) धीरबुद्धि युक्त सज्जन की (धियः) उत्तम बुद्धियों को (अव, सृजतम्) निरन्तर उत्पन्न करो और (पिन्वतम्) उपदेश द्वारा सींचो (मन्मनाम्) और मान करती हुई को (इरज्यथः) ऐश्वर्ययुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो यहां प्रशंसायुक्त स्त्रियां और जो पुरुष हैं वे अपने समान पुरुष स्त्रियों के साथ संयोग करें ब्रह्मचर्य से और विद्या से विशेष ज्ञान की उन्नति कर ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः । उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

यः । वाम् । यज्ञैः । शशमानः । ह । दाशति । कविः । होता । यजति । मन्मऽसाधनः । उप । अह । तम् । गच्छथः । वीथः । अध्वरम् । अच्छ । गिरः । सुऽमतिम् । गन्तम् । अस्मयू इत्यस्मऽयू ॥ ७ ॥

पदार्थः—(यः) (वाम्) युवाभ्याम् (यज्ञैः) सङ्गतैः कर्मभिः (शशमानः) प्लवमानः (ह) किल (दाशति) ददाति (कविः) महाप्रज्ञः (होता) आदाता (यजति) सत्करोति (मन्मसाधनः) मन्म विज्ञानं साधनं यस्य सः (उप) (अह) विनिग्रहे (तम्) (गच्छथः) प्राप्नुथः (वीथः) कामयेथाम् (अध्वरम्) अहिंसामयं व्यवहारम् (अच्छ) उत्तमरीत्या । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (गिरः) सुशिक्षिता वाणीः (सुमतिम्) शोभनां प्रज्ञाम् (गन्तम्) प्राप्नुतम् (अस्मयू) अस्मानिच्छन्तौ ॥७॥

अन्वयः—हे अध्यापकोपदेशकौ यः शशमानः कविर्होता मन्मसाधनो यज्ञैर्वां सुखं दाशाति यजति च तं हाऽस्मयू युवामुपागच्छथो तावह अध्वरं गन्तं गिरः सुमतिंचाच्छवीथः ॥ ७ ॥

भावार्थः—येऽत्र सत्यविद्याकामुकाः सर्वेभ्यो विद्यादानेन सुशीलतां सम्पादयन्तः सुखं प्रददति ते सर्वैः सत्कर्त्तव्याः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको (यः) जो (शशमानः) सब विषयों को पार होता हुआ (कविः) अत्यन्त बुद्धि युक्त (होता) सब विषयों को ग्रहण करने वाला (मन्मसाधनः) जिस का विज्ञान ही साधन वह सज्जन (यज्ञैः) मिल के किये हुए कर्मों से (वाम्) तुम दोनों को सुख (दाशति) देता है और (यजति) तुम्हारा सत्कार करता है (तं, ह) उसी के (अस्मयू) हमारी इच्छा करते हुए तुम (उप, गच्छथः) संग पहुंचे हो वे आप (अह) वे रोंक टोंक (अध्वरम्) हिंसा रहित व्यवहार को (गन्तम्) प्राप्त होओ और (गिरः) सुन्दर शिक्षा की हुई वाणी और (सुमतिम्) सुन्दर विशेष बुद्धि को (अच्छ) उत्तम रीति से (वीथः) चाहो ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो इस संसार में सत्य विद्या की कामना करने वाले सब के लिये विद्या दान से उत्तम शीलपन का संपादन करते हुए सुख देते हैं वे सब को सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु । भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥

युवाम् । यज्ञैः । प्रथमा । गोभिः । अञ्जते । ऋतऽवाना । मनसः । न । प्रऽयुक्तिषु । भरन्ति । वाम् । मन्मना । सम्ऽयता । गिरः । अदृप्यता । मनसा । रेवत् । आशाथेइति ॥८॥

पदार्थः—(युवाम्) (यज्ञैः) सत्करणैः (प्रथमा) आदिमौ (गोभिः) सुशिक्षिताभिर्वाणीभिः (अञ्जते) कामयन्ते (ऋतावाना) सत्याचारसंबन्धिनौ (मनसः) अन्तःकरणस्य (न) इव (प्रयुक्तिषु) प्रकृष्टेषु योजनेषु (भरन्ति) पुष्यन्ति (वाम्) युवयोः (मन्मना) विज्ञानेन (संयता) संयमयुक्तेन (गिरः) विद्यायुक्ता वाणी (अदृप्यता) हर्षमोहरहितेन (मनसा) अन्तःकरणेन (रेवत्) बहवो रायो विद्यन्ते यस्मिँस्तदैश्वर्यम् (आशाथे) प्राप्नुथः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे अध्यापकोपदेशकौ ये यज्ञैर्गोभिरञ्जते ऋतावाना प्रथमा युवां मनसः प्रयुक्तिषु नेव व्यवहारेषु भरन्ति वां युवयोः सकाशात् शिक्षाः प्राप्य संयता मन्मनादृप्यता मनसा गिरो रेवच्च भरन्ति युवामाशाथे तान् नित्यमध्यापयतं शिक्षेथां च ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकारः—हे विद्वांसो ये युष्मान् विद्याप्राप्तये श्रद्धयाप्नुयुः । ये च जितेन्द्रिया धार्मिकाः स्युस्तान् प्रयत्नेन विद्यावतो धार्मिकान् कुरुत ॥ ८ ॥

पदार्थ:—हे अध्यापकोपदेशक सज्जनो जो (यज्ञैः) यज्ञों से (गोभिः) और सुन्दरशिक्षितवाणियों से (अञ्जते) कामना करते हैं (ऋतावाना) और सत्य आचरण का संबन्ध रखने वाले (प्रथमा) आदि में होने वाले तुम

रसीद मूल्य वेदभाष्य अक्टूबर सन् ८६ की

पं० रामनारायण जी पोस्टइंस्पेक्टर	अलीगढ़	५।≠)।
बा० रामसिंह जी मुलतान		१०)
बा० सन्तराम जी डिपटीइंस्पेक्टर थाना बसन्त	दिल्ली	११॥)
ला० मुरलीलाल जी ओवरसियर पेशावर		३२)
सत्यधर्मप्रकाशिनी सभा नयनीताल		८)
पं० जगन्नारायण जी बनारस		५)
ठाकुर कृष्णलाल जी नागर मथुरा		८)
		७८॥।≠)।

विज्ञापन

सब ग्राहक महाशयों की सेवा में प्रार्थना पूर्वक निवेदन करता हूं कि जब मनीआडर भेजते हैं उस के साथ चिट्ठी अवश्य भेजा करें और जिस मध्य (पुस्तक वा वेदभाष्य आदि) का दाम भेजा करें सो साफ २ लिख दिया करें यदि पत्र भेजने से भी ८ वा १० दिन में पुस्तक वा उत्तर न पहुंचे तो फिर दूसरा पत्र लिखना चाहिये क्योंकि कभी २ पत्र मारे भी जाते हैं परन्तु यंत्रालय से उत्तर देने में अब देर नहीं होती तत्काल उत्तर दिया जाता है। किन्हीं महाशय ने ५॥) रुपये भेजे जो हमारे पास ता० १४। ७। ८६ को पहुंचे मैं ने पत्र आने के भरोसे मनीआर्डर से नाम भी न लिखा पीछे उन ५॥) रु० के विषय में आज तक कोई पत्र मेरे पास न आया कि ये दाम किस लिये किन महाशय ने भेजे हैं। तथा ता० १८। १। ८५ को ४।≈) ता० २२। ४। ८५ को १) का पोस्टल नोट कानपुर से और ता० २। १। ८५ को ४) रु० आये हुए विना नाम पते के यंत्रालय में जमा हैं सो जिन २ महाशयों के हों कृपा कर जिस मध्य में भेजे हों लिखें वा किसी पुस्तक मगाने को भेजे हों तो अभीष्ट पुस्तक लिख कर मगा लेवें। और बहुत ग्राहकों के नाम वार भी कुछ २ दाम जमा हैं उन को चाहिये पुस्तकादि मगा कर अपना २ हिसाब साफ कर देवें। अनेक महाशय जो उन को यंत्रालय का देना है जैसे उस पर ध्यान नहीं देते वैसे अपने लेने पर भी ध्यान नहीं देते। इस लिये प्रार्थना है कि देना लेना दोनों प्रकार का हिसाब चुकता कर देवें॥

आप का मित्र

ह०—भीमसेन शर्मा

स्थानापन्न प्रबन्धकर्त्ता

वैदिक यंत्रालय प्रयाग

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर
प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥=) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जन, हाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय मेनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है ,

पुस्तक (१०२, १०३) अंक (८६, ८७)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४३ पौष शुक्ल पक्ष

१—१—८७

दोनों को (मनसः) अन्तःकरण के (प्रयुक्तिषु) प्रयोगों को उल्लासों में जैसे (न) वैसे व्यवहारों में (भरन्ति) पुष्ट करते हैं तथा (वाम्) तुम दोनों की शिक्षाओं को पाकर (संयना) संयम युक्त (अदृप्यना) हर्ष मोहरहित (मन्मना) विज्ञानरूप (मनसा) मन से (गिरः) वाणियों और (रेवत्) बहुत धनों से भरे हुए ऐश्वर्य को पुष्ट करते हैं और तुम को (आशाथे) प्राप्त होते हैं उन को तुम नित्य पढ़ाओ और शिखाओ ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—हे विद्वानो जो तुम को विद्या प्राप्ति के लिये श्रद्धा से प्राप्त होवें और जो जितेन्द्रिय धार्मिक हों उन सभों को अच्छे यत्न के साथ विद्यावान् और धार्मिक करो ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् । न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥

रेवत् । वयः । दधाथे इति । रेवत् । आशाथे इति । नरा । मायाभिः । इतऽऊति । माहिनम् । न । वाम् । द्यावः । अहऽभिः । न । उत । सिन्धवः । न । देवऽत्वम् । पणयः । न । आनशुः । मघम् ॥ ९ ॥

पदार्थः-(रेवत्) प्रशस्तधनवत् (वयः) कमनीयम्(दधाथे)धरथः (रेवत्) बह्वैश्वर्ययुक्तम् (आशाथे) (नरा) नायकौ (मायाभिः) प्रज्ञाभिः (इतऊति) इतः ऊतिः रक्षा यस्मात् तत् (माहिनम्) अत्यन्तं पूज्यं महच्च । माहिन इति महन्ना० निघं० ३ । ३ (न) निषेधे (वाम्) युवयोः (द्यावः) प्रकाशाः(अहभिः) दिनैः (न) (उत) (सिन्धवः) नद्यः(न) (देवत्वम्) विद्वत्त्वम् (पणयः) व्यवहरमाणाः (न) (आनशुः) व्याप्नुवन्ति (मघम्) महदैश्वर्यम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे नरा यौ युवां मायाभिर्माहिनमितऊति वयो रेवद्दधाथे रेवदाशाथे च तयोर्वां देवत्वं द्यावो नाहभिरहानि नोत सिन्धवो नानशुः पणयो मघं चनानशुः ॥ ९ ॥

भावार्थः—यद्यद्विद्वांसः प्राप्नुवन्ति तत्तदितरे न यान्ति विदुषामुपमा विद्वांसएव भवन्ति नापरे इति ॥ ९ ॥

अस्मिन् सूक्ते मित्रावरुणलक्षणोक्तत्वादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्वेदितव्या ॥

इति एकपञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (नरा) अग्रगामी जनो जो तुम (मायाभिः) मानने योग्य बुद्धियों से (माहिनम्) अत्यन्त पूज्य और बड़ा भी (इतऊति) इधर से रक्षा जिस से उस (वयः) अतिरम्य मनोहर (रेवत्) प्रशंसित धनयुक्त ऐश्वर्य को (दधाथे) धारण करते हो और (रेवत्) बहुत ऐश्वर्य युक्त व्यवहार को (आशाथे) प्राप्त होते हो उन (वाम्) आप की (देवत्वम्) विद्वत्ता को (द्यावः) प्रकाश (न) नहीं (अहभिः) दिनों के साथ दिन अर्थात् एकता रसमय (न) नहीं (उत) और (सिन्धवः) बड़ी २ नदी नद (न) नहीं (आनशुः) व्याप्त होते अर्थात् अपने २ गुणों से तिरस्कार नहीं कर सकते जीत नहीं सकते अधिक नहीं होवे तथा (पणयः) व्यवहार करते हुए जन (मघम्) तुम्हारे महत् ऐश्वर्य को (न) नहीं व्याप्त होते जीति सकते ॥ ९ ॥

भावार्थः—जिस २ को विद्वान् प्राप्त करते हैं उस २ को इतर सामान्य जन प्राप्त नहीं होते विद्वानों के उपमा विद्वान् ही होते हैं और नहीं होते ॥९॥

इस सूक्त में मित्र वरुण के लक्षण अर्थात् मित्र वरुण शब्द से लक्षित अध्यापक और उपदेशक आदि का वर्णन किया इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ एकावनवां सूक्त और इक्कीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

युवमित्यस्य सप्तर्चस्य द्विपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ । ४ । ५ । ६ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् ७ । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथाध्यापकाध्याप्योपदेशकोपदेश्यविषयमाह ॥

अब एकसौ बावन के सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथममन्त्र में पढ़ाने पढ़ने और उपदेश करने उपदेश सुनने वालों के विषय को कहते हैं ॥

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः । अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥

युवम् । वस्त्राणि । पीवसा । वसाथेइति । युवोः । अच्छिद्राः । मन्तवः । ह । सर्गाः । अव । अतिरतम् । अनृतानि । विश्वा । ऋतेन । मित्रावरुणा । सचेथे इति ॥ १ ॥

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (वस्त्राणि) शरीराच्छादकानि (पीवसा) स्थूलानि (वसाथे) आच्छादयथः (युवोः) (अच्छिद्राः) छिद्ररहिताः (मन्तवः) ज्ञातुं योग्याः (ह) खलु (सर्गाः) स्रष्टुं योग्याः (अव) (अतिरतम्) उल्लङ्घयतम् (अनृतानि) मिथ्याभाषणादीनि कर्माणि (विश्वा) सर्वाणि (ऋतेन) सत्येन (मित्रावरुणा) प्राणोदानवत्वर्त्तमानावध्यापकोपदेशकौ (सचेथे) संगच्छेथे ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा यौ युवं पीवसा वस्त्राणि वसाथे ययोर्युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गास्सन्ति यौ युवां विश्वाऽनृतान्यवातिरतमृतेन सचेथे तावस्माभिः कुतो न सत्कर्त्तव्यौ भवथः ॥ १ ॥

भावार्थः-मनुष्यैः सदैव स्थूलान्यच्छिद्राणि वस्त्राणि परिधाय विज्ञातुं योग्या दोषरहिता वस्त्रादयः पदार्था निर्मातव्याः । सदैव धृतेन । सत्याचरणेनासत्याचरणानि त्यक्त्वा धर्मार्थकाममोक्षाः संसाधनीयाः ॥ १ ॥

पदार्थः-हे (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करने वालो जो (युवम्) तुम लोग (पीवसा) स्थूल (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसाथे) ओढ़ते हो वा जिन (युवोः) तुम्हारे (अच्छिद्राः) छेद भेदरहित (मन्तवः) जानने योग्य (ह) ही पदार्थ (सर्गाः) रचने योग्य हैं जो तुम (विश्वा) समस्त (अनृतानि) मिथ्याभाषण आदि कामों को (अवातिरतम्) उल्लङ्घते पार होते और (ऋतेन) सत्य से (सचेथे) संग करते हो वे तुम हम लोगों को क्यों न सत्कार करने योग्य होते हो ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदैव स्थूल छिद्ररहित वस्त्र पहिन कर जानने योग्य के दोषरहित वस्त्र आदि पदार्थ निर्माण करने चाहिये और सदैव धारण किये हुए सत्याचरण से असत्याचरणों को छोड़ धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष अच्छे प्रकार सिद्ध करने चाहिये ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् । त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥

एतत् । चन । त्वः । वि । चिकेतत् । एषाम् । सत्यः । मन्त्रः । कविऽशस्तः । ऋघावान् । त्रिःऽअश्रिम् । हन्ति । चतुःऽअश्रिः । उग्रः । देवऽनिदः । ह । प्रथमाः । अजूर्यन् ॥२॥

पदार्थः–(एतत्) (चन) अपि (त्वः) कश्चित् (वि) (चिकेतत्) विजानाति (एषाम्) (सत्यः) अव्यभिचारी (मन्त्रः) विचारः (कविशस्तः) कविभिः मेधाविभिः शस्तः प्रशंसितः (ऋघावान्) ऋघाः बह्व्यः स्तुतयो सत्यासत्यविवेचिका मतयो विद्यन्ते यस्मिन् सः (त्रिरश्रिम्) त्रिभिर्वाङ्मनःशरीरैर्योऽश्यते प्राप्यते तम् (हन्ति) (चतुरश्रिः) चतुरो वेदानश्नुते सः (उग्रः) तीव्रस्वभावः (देवनिदः) ये देवान्निन्दन्ति तान् (ह) खलु (प्रथमाः) आदिमाः (अजूर्यन्) वृद्धा जायन्ते ॥२॥

अन्वयः–त्वः कश्चिदेवैषां विदुषां य ऋघावान् कविशस्तः सत्यो मन्त्रोऽस्ति एतत् विचिकेतत् यश्चतुराश्रिरुग्रः देवनिदो हन्ति त्रिरश्रिं चिकेतत् ते प्रथमा ह खलु प्रथमाश्चनाजूर्यन् ॥ २ ॥

भावार्थः–ये मनुष्याः विद्वन्निन्दां विहाय निन्दकान् निवार्य सत्यं ज्ञानं प्राप्य सत्याः विद्या अध्यापयन्तः सत्यमुपदिशन्तश्च पृथुसुखा जायन्ते ते धन्याः सन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः–(त्वः) कोई ही (एषाम्) इन विद्वानों में जो ऐसा है कि (ऋघावान्) बहुत स्तुति और सत्य असत्य की विवेचना करने वाली मतियों से युक्त(कविशस्तः)मेधावी कवियों ने प्रशंसित किया(सत्यः)अव्यभिचारी(मंत्रः) विचार है(एतत्)इस को(विचिकेतत्)विशेषता से जानता है और जो(चतुरश्रिः)

चारों वेदों को प्राप्त होता वह (उग्रः) तीव्र स्वभाव वाला (देवनिदः) जो विद्वानों की निन्दा करते हैं उन को (हन्ति) मारता और (त्रिरश्रिम्) जो तीनों अर्थात् वाणी मन और शरीर से प्राप्त किया जाता है ऐसे उत्तम पदार्थ को जानता है उक्त वे सब (प्रथमाः) आदिम अर्थात् अग्रगामी अगुआ(ह) ही हैं और वे प्रथम (चन) ही (अजूर्यन्) बुड्ढे होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों की निन्दकों को छोड़ निन्दा को निवार के सत्य ज्ञान को प्राप्त हो सत्य विद्याओं को पढ़ाते हुए और सत्य का उपदेश करते हुए विस्तृत सुख को प्राप्त होते हैं वे धन्य हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत । गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥

अपात् । एति । प्रथमा । पत्ऽवतीनाम् । कः । तत् । वाम् । मित्रावरुणा । आ । चिकेत । गर्भः । भारम् । भरति । आ । चित् । अस्य । ऋतम् । पिपर्त्ति । अनृतम् । नि । तारीत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अपात्) अविद्यमाना पादा यस्याः सा विद्या (एति) प्राप्नोति (प्रथमा) आदिमा (पद्वतीनाम्) प्रशस्ताः पादा विभागा विद्यन्ते यासां तासाम् (कः) (तत्) ताम् (वाम्) युवाभ्याम् (मित्रावरुणा) सुहृद्वरावध्यापकोपदेशकौ (आ) (चिकेत) जानीयात् (गर्भः) यो गृह्णाति सः (भारम्) पोषम् (भरति)

धरति (आ) (चित्) अपि (अस्य) (ऋतम्) सत्यम् (पिपर्त्ति) पूर्णं करोति (अनृतम्) मिथ्याभाषणादिकं कर्म (नि) (तारीत्) उल्लङ्घते ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा या पद्वतीनां प्रथमाऽपादेति तत् वां क आ चिकेत यो गर्भो भारमाभरति चिदप्यस्य संसारस्य मध्ये ऋतं पिपर्त्ति सोऽनृतं नितारीत् ॥ ३ ॥

भावार्थः—येऽनृतं विहाय सत्यं धृत्वा संभारान् सञ्चिन्वन्ति ते सत्यां विद्यां प्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) श्रेष्ठ मित्र पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वानो जो (पद्वतीनाम्) प्रशंसित विभागों वाली क्रियाओं में (प्रथमा) प्रथम (अपात्) विना विभाग वाली विद्या (एति) प्राप्त होती है (तत्) उस को (वाम्) तुम से (कः) कौन (आ,चिकेत) जाने और जो (गर्भः) ग्रहण करने वाला जन (भारम्) पुष्टि को (आ,भरति) सुशोभित करता वा अच्छे प्रकार धारण करता है (चित्) और भी (अस्य) इस संसार के बीच (ऋतम्) सत्यव्यवहार को (पिपर्त्ति) पूर्ण करता है सो (अनृतम्) मिथ्या भाषण आदि काम को (नि, तारीत्) निरन्तर उल्लङ्घता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो झूठ को छोड़ सत्य को धारण कर अपने सब सामान इकट्ठे करते हैं वे सत्य विद्या को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् । अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥

प्रऽयन्तम् । इत् । परि । जारम् । कनीनाम् । पश्यामसि । न । उपऽनिपद्यमानम् । अनवऽपृग्णा । विऽतता । वसानम् । प्रियम् । मित्रस्य । वरुणस्य । धाम ॥ ४ ॥

पदार्थः—(प्रयन्तम्) प्रयत्नं कुर्वन्तम् (इत्) एव (परि) (जारम्) वयोहानिकारकम् (कनीनाम्) कामयमानानाम् (पश्यामसि) (न) (उपनिपद्यमानम्) समीपे प्राप्नुवन्तम् (अनवपृग्णा) संपर्करहितानि (वितता) विस्तृतानि तेजांसि (वसानम्) आच्छादयन्तम् (प्रियम्) (मित्रस्य) सुहृदः (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (धाम) सुखधारणसाधकं गृहम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं कनीनां जारं प्रयन्तमुपनिपद्यमानमनवपृग्णा वितता वसानं सूर्यमिव मित्रस्य वरुणस्येत्प्रियं धाम परि पश्यामसि । अस्माद्विरुद्धा न भवेम तथा यूयमप्येतत् प्राप्नुत॥४॥

भावार्थः—मनुष्या यथा रात्रीणां निहन्तारं स्वप्रकाशविस्तारकं सूर्यं दृष्ट्वा कार्य्याणि साध्नुवन्ति तथाऽविद्यान्धकारनाशकविद्याप्रकाशकमाप्ताऽध्यापकोपदेशकसंगं प्राप्य क्लेशान् हन्युः ॥ ४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (कनीनाम्) कामना करती हुई प्रजाओं की (जारम्) अवस्था हरने वाले (प्रयन्तम्) अच्छे यत्न करते (उपनिपद्यमानम्) समीप प्राप्त होने (अनवपृग्णा) सम्बन्ध रहित अर्थात् अलग के पदार्थ जो (वितता) विथरे हैं उन को (वसानम्) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हुए सूर्य के समान (मित्रस्य) मित्र वा (वरुणस्य) श्रेष्ठ विद्वान् के (इत्) ही (प्रियम्) प्रिय (धाम) सुख साधक घर को (परि,पश्यामसि) देखते हैं इस से विरुद्ध(न)न हों वैसे तुम भी इस को प्राप्त होओ ॥ ४

भावार्थः—मनुष्य लोग जैसे रात्रियों के निहन्ता अपने प्रकाश का विस्तार करते हुए सूर्य को देख कर कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे अविद्यान्धकार का नाश और विद्या का प्रकाश करने वाले आप्त अध्यापक और उपदेशक के संग को पाकर क्लेशों को नष्ट करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः । अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥

अनश्वः । जातः । अनभीशुः । अर्वा । कनिक्रदत् । पतयत् । ऊर्ध्वऽसानुः । अचित्तम् । ब्रह्म । जुजुषुः । युवानः । प्र । मित्रे । धाम । वरुणे । गृणन्तः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(अनश्वः) अविद्यमानतुरङ्गः (जातः) प्रकटः (अनभीशुः) नियामकरश्मिरहितः (अर्वा) प्रापकः (कनिक्रदत्) शब्दयन् (पतयत्) गच्छन् (ऊर्ध्वसानुः) ऊर्ध्वं सानवः शिखरा यस्य सः (अचित्तम्) चेतनतारहितम् (ब्रह्म) धनादियुक्तमन्नम् (जुजुषुः) सेवेरन् (युवानः) युवावस्थां प्राप्ताः (प्र) (मित्रे) सख्यौ (धाम) स्थानम् (वरुणे) उत्तमे (गृणन्तः) प्रशंसन्तः ॥५॥

अन्वयः—ये युवानोऽनभीशुरनश्वः कनिक्रदत्पतयज्जातऊर्ध्वसानुरर्वा सूर्य्यइव मित्रे वरुणे धाम गृणन्तः सन्तोऽचित्तं ब्रह्म प्रजुजुषुस्ते बलवन्तो जायन्ते ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽश्वयानादिरहितआकाशऊर्ध्वं स्थितः सूर्य्यईश्वराधारेण राजते तथा विद्वद्विद्याधारा मनुष्याः पुष्कलं धनमन्नं च प्राप्य धर्म्ये व्यवहारे विराजन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो (युवानः) युवावस्था को प्राप्त जन (अनभीशुः) नियम करने वाली किरणों से रहित (अनश्वः) जिस के जलदी चलने वाले घोड़े नहीं (कनिक्रदत्) और वार २ शब्द करता वा (पतयत्) गमन करता हुआ (जातः) प्रसिद्ध हुआ और (ऊर्ध्वसानुः) जिस के ऊपर को शिखा (अर्वा) प्राप्त होने वाले सूर्य्य के समान (मित्रे) मित्र वा (वरुणे) उत्तम जन के निमित्त (धाम) स्थान की (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए (अचित्तम्) चित्त रहित (ब्रह्म) वृद्धि को प्राप्त धन आदि पदार्थों से युक्त अन्न को (प्र, जुजुषुः) सेवें वे बलवान् होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे घोड़े वा रथ आदि सवारी से रहित आकाश के बीच ऊपर को स्थित सूर्य ईश्वर के अवलम्ब से प्रकाशमान होता है वैसे विद्वानों की विद्या के आधारभूत मनुष्य बहुत धन और अन्न को पा कर धर्मयुक्त व्यवहार में विराजमान होते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् । पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥

आ । धेनवः । मामतेयम् । अवन्तीः । ब्रह्मऽप्रियम् । पीपयन् । सस्मिन् । ऊधन् । पित्वः । भिक्षेत । वयुनानि । विद्वान् । आसा । आऽविवासन् । अदितिम् । उरुष्येत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(आ) (धेनवः) (मामतेयम्) ममताया अपत्यम् (अवन्तीः) रक्षन्त्यः (ब्रह्मप्रियम्) ब्रह्म, वेदाध्ययनं प्रियं यस्य तम् (पीपयन्) वर्द्धयेयुः (सस्मिन्) स्वस्मिन् । अत्र छान्दसोवर्णलोपोवेति वलोपः (ऊधन्) ऊधनि दुग्धाधारे (पित्वः) अन्नस्य (भिक्षेत) याचेत (वयुनानि) प्रज्ञानानि (विद्वान्) (आसा) आस्येन (आविवासन्) समन्तात् परिचरन् (अदितिम्) अविनाशिकां विद्याम् (उरुष्येत्) सेवेत ॥ ६ ॥

अन्वयः—यथा धेनवः सस्मिन्नूधन्भवेन दुग्धेन वत्सान् पुष्यन्ति तथा या स्त्रियो ब्रह्मप्रियं मामतेयमवन्तीः सत्य आपीपयन् यथा वा विद्वानासा पित्वो भिक्षेताऽदितिमाविवासन् वयुनान्युरुष्येत्तथाऽध्यापिका स्त्री पाठकाः पुरुषा अन्यान् विद्याशिक्षा ग्राहयेयुः ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा मातरः स्वापत्यानि दुग्धादिदानेन वर्द्धयन्ति तथा विदुष्यस्त्रियो विद्वांसः पुरुषाः कुमारीः कुमारांश्च विद्यासुशिक्षाभ्यां वर्द्धयेरन् ॥ ६ ॥

पदार्थः—जैसे (धेनवः) धेनु गौयें (सस्मिन्) अपने (ऊधन्) ऐन में हुए दूध से बछड़ों को पुष्ट करती हैं वैसे जो स्त्री (ब्रह्मप्रियम्) वेदाध्ययन जिस को प्रिय उस (मामतेयम्) ममत्व से माने हुए अपने पुत्र की (अवन्तीः) रक्षा करती हुई (आ,पीपयन्) उस की वृद्धि उन्नति करती हैं वा जैसे (विद्वान्) विद्यावान् जन (आसा) मुख से (पित्वः) अन्न की (भिक्षेत) याचना करे और (अदितिम्)न नष्ट होने वाली विद्या का(आविवासन्)सब ओर से सेवन करता हुआ (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों को (उरुष्येत्) सेवे वैसे पढ़ाने वाले पुरुष औरों को विद्या और शिखावट का ग्रहण करावें ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे माता जन अपने लड़कों को दूध आदि के देने से बढ़ाती हैं वैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष कुमार और कुमारियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से बढ़ावें उन्नति युक्त करें ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाव वसा ववृत्याम् । अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥ २२ ॥

आ । वाम् । मित्रावरुणा । हव्यऽजुष्टिम् । नमसा । देवौ । अवसा । ववृत्याम् । अस्माकम् । ब्रह्म । पृतनासु । सह्याः । अस्माकम् । वृष्टिः । दिव्या । सुऽपारा ॥ ७ ॥ २२ ॥

पदार्थः—(आ) (वाम्) युवाभ्याम् (मित्रावरुणा) सुहृद्वरौ (हव्यजुष्टिम्) आदातव्यसेवाम् (नमसा) अन्नेन (देवौ) दिव्यस्वभावौ (अवसा) रक्षणाद्येन कर्मणा (ववृत्याम्) वर्त्तयेयम् । अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः (अस्माकम्) (ब्रह्म) धनम् (पृतनासु) मनुष्येषु (सह्याः) सहनं कुर्य्याः (अस्माकम्) (वृष्टिः) दुष्टानां शक्तिबन्धिका शक्तिः (दिव्या) शुद्धा (सुपारा) सुखेन पारः पूर्तिर्यस्याः सा ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे देवौ मित्रावरुणा यथाहं वां नमसा हव्यजुष्टिमाववृत्यां तथा युवामवसाऽस्माकं पृतनासु ब्रह्म वर्द्धयेतम् । हे विद्वन् याऽस्माकं दिव्या सुपारा वृष्टिरस्ति तां त्वं सह्याः ॥ ७ ॥

भावार्थः—यथा विद्वांसोऽतिप्रीत्याऽस्मभ्यं विद्याः प्रदद्युस्तथा वयमेतानति श्रद्धया सेवेमहि यतोऽस्माकं शुद्धा प्रशंसा सर्वत्र विदिता स्यादिति ॥ ७ ॥

अत्राध्यापकोपदेशकशिष्यक्रमवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्बोध्या ॥

इति द्विपञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तं द्वाविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (देवौ) दिव्य स्वभाव वाले (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन जैसे मैं (वाम्) तुम दोनों की (नमसा) अन्न से (हव्यजुष्टिम्) ग्रहण करने योग्य सेवा को (आ, ववृत्याम्) अच्छे प्रकार वर्त्तूं वैसे तुम दोनों (अवसा) रक्षा आदि काम से (अस्माकम्) हमारे (पृतनासु) मनुष्यों में (ब्रह्म) धन की वृद्धि कराइये । हे विद्वान् जो (अस्माकम्) हमारी (दिव्या) शुद्ध (सुपारा) जिस से कि सुख के साथ सब कामों की परि पूर्णता हो ऐसी (वृष्टिः) दुष्टों की शक्ति बंधाने वाली शक्ति है उस को (सह्याः) सहो ॥ ७ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् जन अति प्रीति से हमारे लिये विद्याओं को देवें वैसे हम लोग इन को अत्यन्त श्रद्धा से सेवें जिस से हमारी शुद्ध प्रशंसा सर्वत्र विदित हो ॥ ७ ॥

इस मन्त्र में पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा उन शिष्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ बावन का सूक्त और बाईशवां वर्ग पूरा हुआ ॥

यजामहइत्यस्य चतुर्ऋचस्यत्रिपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमाऋषिः । मित्रावरुणौ देवते १ । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनर्मित्रावरुणगुणानाह ॥

अब एकसौ त्रेपन के सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में फिर मित्र वरुण के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः । घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥

यजामहे । वाम् । महः । सऽजोषाः । हव्येभिः । मित्रावरुणा । नमःऽभिः । घृतैः । घृतस्नूइति घृतऽस्नू । अध । यत् । वाम् । अस्मेइति । अध्वर्यवः । न । धीतिऽभिः । भरन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—(यजामहे) सत्कुर्महे (वाम्) युवाभ्याम् (महः) महत् (सजोषाः) समानप्रीताः (हव्येभिः) दातुमर्हैः (मित्रावरुणा) सुहृद्वरौ (नमोभिः) अन्नादिभिः (घृतैः) आज्यादिभीरसैः (घृतस्नू) घृतस्य स्रावकौ (अध) अनन्तरम् (यत्) (वाम्) युवाभ्याम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (अध्वर्यवः) अध्वरं अहिंसाधर्मकाममिच्छवः (न) इव (धीतिभिः) अङ्गुलिभिः (भरन्ति) धरन्ति ॥ १ ॥

अन्वयः—हे घृतस्नू मित्रावरुणा वां सजोषा वयं धीतिभिरध्वर्यवो न हव्येभिर्नमोभिर्घृतैर्महो यजामहेऽध यद् वामस्मे च विद्वांसो भरन्ति तं धरतां च ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यजमाना अग्निहोत्राद्यनुष्ठानैः सर्वस्य सुखं वर्द्धयन्ति तथा सर्वे विद्वांसोऽनुतिष्ठन्तु ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (घृतस्नू) घृतफैलाने (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जनो (वाम्) तुम दोनों का (सजोषाः)समान प्रीति किये हुए हम लोग (धीतिभिः) अङ्गुलियों से (अध्वर्यवः) अहिंसा धर्म की कामना वालों के (न) समान (हव्येभिः) देने योग्य (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से (घृतैः) और घी आदि रसों से (महः) अत्यन्त (यजामहे) सत्कार करते हैं (अध) इस के अनन्तर (यत्) जिस व्यवहार को(वाम्) तुम दोनों के लिये और(अस्मे) हमारे लिये विद्वान् जन(भरन्ति)धारण करते हैं उस व्यवहार को धारण करो॥ १॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे यजमान अग्निहोत्र आदि अनुष्ठानों से सब के सुख को बढ़ाते हैं वैसे समस्त विद्वान् जन अनुष्ठान करें ॥ १॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः । अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥

प्रऽस्तुतिः । वाम् । धाम । न । प्रऽयुक्तिः । अयामि । मित्रावरुणा । सुऽवृक्तिः । अनक्ति । यत् । वाम् । विदथेषु । होता । सुम्नम् । वाम् । सूरिः । वृषणौ । इयक्षन् ॥ २ ॥

पदार्थः—(प्रस्तुतिः) प्रकृष्टा स्तुतिर्यस्य सः (वाम्) युवाभ्याम् (धाम) (न) इव (प्रयुक्तिः) प्रकृष्टा युक्तिर्यस्य सः (अयामि) एमि प्राप्नोमि (मित्रावरुणा) सुहृद्वरावध्यापकोपदेष्टारौ (सुवृक्तिः) शोभना वृक्तिर्वर्जनं यस्य सः (अनक्ति) कामयते (यत्) (वाम्) युवाभ्याम् (विदथेषु) विज्ञानेषु (होता) दाता (सुम्नम्) सुखम् (वाम्) युवाभ्याम् (सूरिः) विद्वान् (वृषणौ) सुखवर्षकौ (इयक्षन्) प्राप्तुमिच्छन् ॥ २ ॥

अन्वयः-वृषणौ मित्रावरुणेयक्षन् सूरिः सुवृक्तिः प्रस्तुतिर्होता प्रयुक्तिरहं धाम न वामयामि यद्यः सूरिर्वां विदथेष्वनक्ति वां सुम्नं वां प्रयच्छति तमप्यहमयामि ॥ २ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०—ये मनुष्या पापहारकाः प्रशंसितगुणग्राहका विद्वत्सङ्गप्रियाः सर्वेभ्यः सुखप्रदा भवन्ति ते कल्याणभाजो भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः-हे (वृषणौ) सुख वृष्टि करने हारे (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठजन (इयक्षन्) प्राप्त होने की इच्छा करता हुआ (सूरिः) विद्वान् (सुवृक्तिः) जिस का सुन्दर रोकना (प्रस्तुतिः) और उत्तम स्तुति (होता) वह ग्रहण करने वाला (प्रयुक्तिः) उत्तम युक्ति मैं (धाम) स्थान के (न) समान (वाम्) तुम दोनों को (अयामि) प्राप्त होता हूं । वा (यत्) जो विद्वान् (वाम्) तुम दोनों से (विदथेषु) विज्ञानों में (अनक्ति) कामना करता है वा (वाम्) तुम दोनों के लिये (सुम्नम्) सुख देता है उस को मैं प्राप्त होता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य पाप हरने और प्रशंसित गुणों को ग्रहण करने वाले जिन को विद्वानों का संग पियारा है और सब के लिये सुख देने वाले होते हैं वे कल्याण को सेवने वाले होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पीपायं धेनुरदितिर्ऋतायु जनाय मित्रावरुणा हविर्दे । हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥

पीपाय । धेनुः । अदितिः । ऋताय । जनाय । मित्रावरुणा । हविःऽदे । हिनोति । यत् । वाम् । विदथे । सपर्यन् । सः । रातऽहव्यः । मानुषः । न । होता ॥ ३ ॥

पदार्थः—(पीपाय) वर्द्धयति (धेनुः) दुग्धप्रदा गौरिव (अदितिः) अखण्डिता (ऋताय) सत्यं प्राप्ताय (जनाय) प्रसिद्धविदुषे (मित्रावरुणा) सत्योपदेशकौ (हविर्दे) यो हवींषि ददाति तस्मै (हिनोति) वर्द्धयति (यत्) यः (वाम्) युवाम् (विदथे) विज्ञाने (सपर्यन्) सेवमानः (सः) (रातहव्यः) रातानि दत्तानि हव्यानि येन सः (मानुषः) मनुष्यः (न) इव (होता) ग्रहीता ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा यद्योऽदितिर्धेनुरिव हविर्दे ऋताय जनाय सुम्नं पीपाय विदथे वां सपर्यन् रातहव्यो होता मानुषो न हिनोति स जन उत्तमो भवति ॥ ३ ॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलु०—ये विद्यादानग्रहणकुशला अध्यापकोपदेशकाः सर्वान् वर्द्धयन्ति ते शुभगुणैः सर्वतो वर्द्धन्ते ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) सत्य उपदेश करने वाले मित्रावरुणो (यत्) जो (अदितिः) अखण्डित विनाश को नहीं प्राप्त हुई (धेनुः) दूध देने वाली गौ के समान (हविर्दे) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को देता उस (ऋतनाय) सत्य व्यवहार को प्राप्त हुए (जनाय) प्रसिद्ध विद्वान् के लिये (सुम्नम्) सुख को (पीपाय) बढ़ाना और (विदथे) विज्ञान के निमित्त (वाम्) तुम दोनों की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (रातहव्यः) जिस ने ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिये वह (होता) लेने वाले (मानुषः) मनुष्य के (न) समान (हिनोति) वृद्धि को प्राप्त कराता है और (सः) वह जन उत्तम होता है॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो विद्या देने लेने में कुशल पढ़ाने और उपदेश करने वाले सब को उन्नति देते हैं वे शुभ गुणों से सब से अधिक उन्नति को पाते हैं॥ ३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः। उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः॥ ४॥२३॥

उत। वाम्। विक्षु। मद्यासु। अन्धः। गावः। आपः। च। पीपयन्त। देवीः। उतो इति। नः। अस्य। पूर्व्यः। पतिः। दन्। वीतम्। पातम्। पयसः। उस्रियायाः॥४॥२३॥

पदार्थः—(उत) (वाम्) युवाम् (विक्षु) प्रजासु (मद्यासु) हर्षणीयासु (अन्धः) अन्नम् (गावः) वाण्यः (आपः) जलानि (च) (पीपयन्त) वर्द्धयन्ति (देवीः) दिव्याः (उतो)

(नः) अस्माकम् (अस्य) अध्यापनकर्मणः (पूर्व्यः) पूर्वैः कृतः (पतिः) पालयिता (दन्) ददन् । अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (वीतम्) व्याप्नुतम् (पातम्) पिबतम् (पयसः) दुग्धस्य (उस्रियायाः) दुग्धदाया धेनोः। उस्रियेति गोना०निघं० २।११॥४॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणौ यथा देवीर्गाव आपश्च मद्यासु विक्षु वां पीपयन्तोताऽन्धः प्रदद्युः। उतो पूर्व्यः पतिः नोऽस्माकमस्योस्रियायाः पयसो दन् वर्त्तते तथा युवां विद्या वीतं दुग्धं च पातम्॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-येऽत्र गोवत्सुखप्रदाः प्राणवत् प्रियाः प्रजासु वर्त्तन्ते तेऽतुलमानन्दमाप्नुवन्ति ॥ ४ ॥

अत्र मित्रावरुणगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति त्रिपंचाशदुत्तरं शततमं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मित्र और वरुण श्रेष्ठ जन जैसे (देवीः) दिव्य (गावः) वाणी (आपः, च) और जल (मद्यासु) हर्षित करने योग्य (विक्षु) प्रजाजनों में (वाम्) तुम दोनों को (पीपयन्त) उन्नति देते हैं (उत) और (अन्धः) अन्न अच्छे प्रकार देवें (उतो) और (पूर्व्यः) पूर्वजों ने नियत किया हुआ (पतिः) पालना करने वाला (नः) हमारे (अस्य) पढ़ाने के काम सम्बन्धी (उस्रियायाः) दुग्धदेने वाली गौ के (पयसः) दूध को (दन्) देता हुआ वर्त्तमान है वैसे तुम दोनों विद्या को (वीतम्) व्याप्त होओ और दुग्ध (पातम्) पिओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो यहां गौओं के समान सुख देने वाले और प्राण के समान प्रिय प्रजाजनों में वर्त्तमान हैं वे इस संसार में अतुल आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में मित्र और वरुण के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ त्रेपन का सूक्त और तेईशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

विष्णोरित्यस्य षडर्चस्य चतुःपंचाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । १ । २ विराट्त्रिष्टुप् ३ । ४ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथेश्वरमुक्तिपदवर्णनमाह ॥

अब छः ऋचा वाले १५४ के सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में ईश्वर और मुक्तिपद का वर्णन करते हैं ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि । यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

विष्णोः । नु । कम् । वीर्याणि । प्र । वोचम् । यः । पार्थिवानि । विऽममे । रजांसि । यः । अस्कभायत् । उत्ऽतरम् । सधऽस्थम् । विचक्रमाणः । त्रेधा । उरुगायः ॥ १ ॥

पदार्थः—(विष्णोः) वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वत्र स विष्णुस्तस्य (नु) सद्यः (कम्) सुखम् (वीर्याणि) पराक्रमान् (प्र)

(वोचम्) वदेयम् (यः) (पार्थिवानि) पृथिव्यां विदितानि (विममे) (रजांसि) लोकान् (यः) (अस्कभायत्) स्तभ्नाति (उत्तरम्) प्रलयादनन्तरं कारणाख्यम् (सधस्थम्) सहस्थानम् (विचक्रमाणः) विशेषेण प्रचालयन् (त्रेधा) त्रिभिः प्रकारैः (उरुगायः) य ऊरुभिर्बहुभिर्मन्त्रैर्गीयते स्तूयते वा ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः पार्थिवानि रजांसि नु विममे य उरुगाय उत्तरं सधस्थं त्रेधा विचक्रमाणोऽस्कभायत्तस्य विष्णोर्वीर्याणि प्रवोचमनेन कं प्राप्नुयां तथा यूयमपि कुरुत ॥ १ ॥

भावार्थः—यथा सूर्यः स्वाकर्षणेन सर्वान् भूगोलान् धरति तथा सूर्यादींल्लोकान् कारणं जीवांश्च जगदीश्वरो धत्ते यइमानसंख्यलोकान् सद्यो निर्ममे यस्मिन्निमे प्रलीयन्ते च सएव सर्वैरुपास्यः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित (रजांसि) लोकों को अर्थात् पृथिवी में विख्यात सब स्थलों को (नु) शीघ्र (विममे) अनेक प्रकार से यांचना वा (यः) जो (उरुगायः) बहुत वेद मन्त्रों से गाया जाता वा स्तुति किया जाता (उत्तरम्) प्रलय से अनन्तर (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (त्रेधा) तीन प्रकार से (विचक्रमाणः) विशेषकर कंपाता हुआ (अस्कभायत्) रोकता है उस (विष्णोः) सर्वत्र व्याप्त होने वाले परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रमों को (प्रवोचम्) अच्छे प्रकार कहूं और उस से (कम्) सुख पाऊं वैसे तुम करो ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से सब भूगोलों को धारण करता है वैसे सूर्य्यादि लोक कारण और जीवों को जगदीश्वर धारण कर रहा है जो इन असङ्ख्य लोकों को शीघ्र निर्माण करता और जिस में प्रलय को प्राप्त होते हैं वही सब को उपासना करने योग्य है ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

प्र । तत् । विष्णुः । स्तवते । वीर्येण । मृगः । न । भीमः । कुचरः । गिरिऽस्थाः । यस्य । उरुषु । त्रिषु । विऽक्रमणेषु । अधिऽक्षियन्ति । भुवनानि । विश्वा ॥ २ ॥

पदार्थः—(प्र) (तत्) सः (विष्णुः) सर्वव्यापीश्वरः (स्तवते) स्तौति (वीर्येण) स्वपराक्रमेण (मृगः) (न) इव (भीमः) भयङ्करः (कुचरः) यः कुत्सितं चरति सः (गिरिष्ठाः) यो गिरौ तिष्ठति (यस्य) (उरुषु) विस्तीर्णेषु (त्रिषु) नामस्थानजन्मसु (विक्रमणेषु) विविधेषु सृष्टिक्रमेषु (अधिक्षियन्ति) आधाररूपेण निवसन्ति (भुवनानि) भवन्ति भूतानि येषु तानि लोकजातानि (विश्वा) सर्वाणि ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्य निर्मितेषूरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनान्यधिक्षियन्ति तत् स विष्णुः स्ववीर्येण कुचरो गिरिष्ठा मृगो भीमो नेव विश्वाँल्लोकान् प्रस्तवते ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—नहि कश्चिदपि पदार्थ ईश्वरसृष्टिनियमक्रममुल्लङ्घितुं शक्नोति यो धार्मिकाणां मित्रइवाह्लादप्रदो दुष्टानां

सिंहइव भयप्रदो न्यायादिगुणधर्त्ता परमात्माऽस्ति सएव सर्वेषामधिष्ठाता न्यायाधीशोऽस्तीति वेदितव्यम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिस जगदीश्वर के निर्माण किये हुए (त्रिषु) जन्म नाम और स्थान इन तीन (विक्रमणेषु) विविध प्रकार के सृष्टि क्रमों में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक लोकान्तर (अधिक्षियन्ति) आधार रूप से निवास करते हैं (तत्) वह (विष्णुः) सर्व व्यापी परमात्मा अपने (वीर्येण) पराक्रम से (कुचरः) कुटिलगामी अर्थात् ऊंचे नीचे नाना प्रकार विषय स्थलों में चलने और (गिरिष्ठाः) पर्वत कन्दराओं में स्थिर होने वाले (मृगः) हरिण के (न) समान (भीमः) भयंकर समस्त लोकलोकान्तरों को (प्रस्तवते) प्रशंसित करता है ॥ २ ॥

भावार्थः—कोई भी पदार्थ ईश्वर और सृष्टि के नियम को उल्लङ्घ सकता है जो धार्मिक जनों को मित्र के समान आनन्द देने दुष्टों को सिंह के समान भय देने और न्यायादि गुणों का धारण करने वाला परमात्मा है वही सब का अधिष्ठाता और न्यायाधीश है यह जानना चाहिये ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे । य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥

प्र । विष्णवे । शूषम् । एतु । मन्म । गिरिऽक्षिते । उरुऽगायाय । वृष्णे । य । इदम् । दीर्घम् । प्रऽयतम् । सधऽस्थम् । एकः । विऽममे । त्रिऽभिः । इत् । पदेभिः ॥ ३ ॥

पदार्थः-(प्र) (विष्णवे) न्यायकाय (शूषम्) बलम् (एतु) प्राप्नोतु (मन्म) विज्ञानम् (गिरिक्षिते) गिरयो मेघा शैलावाक्षितोऽध्युष्टायस्मिँस्तस्मै (उरुगायाय) बहुभिः प्रशंसिताय (वृष्णे) अनन्तवीर्याय (यः) (इदम्) (दीर्घम्) बृहत् (प्रयतम्) प्रयत्नसाध्यम् (सधस्थम्) तत्त्वावयवैः सह स्थानम् (एकः) असहायोऽद्वितीयः (विममे) विशेषेण रचयति (त्रिभिः) स्थूलसूक्ष्मातिसूक्ष्मैरवयवैः (इत्) एव (पदेभिः) ज्ञातुमर्हैः ॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्या य एक इत् त्रिभिः पदेभिरिदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं प्रविममे तस्मै वृष्णे गिरिक्षित उरुगायाय विष्णवे मन्म शूषमेतु ॥ ३ ॥

भावार्थः-न खलु कश्चिदप्यनन्तबलं जगदीश्वरमन्तरेदं विचित्रं जगत्स्रष्टुं धर्त्तुं प्रलापयितुं च शक्नोति तस्मादेतं विहायान्यस्योपासनं केन चिदपि नैव कार्य्यम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (एकः) एक (इत्) ही परमात्मा (त्रिभिः) तीन अर्थात् स्थूल सूक्ष्म अतिसूक्ष्म (पदेभिः) जानने योग्य अंशो से (इदम्) इस (दीर्घम्) बढ़े हुए (प्रयतम्) उत्तम यत्न साध्य (सधस्थम्) सिद्धान्तावयवों से एक साथ के स्थान को (प्रविममे) विशेषता से रचना है उस (वृष्णे) अनन्त पराक्रमी (गिरिक्षिते) मेघ वा पर्वतों को अपने २ में स्थिर रखने वाले (उरुगायाय) बहुत प्राणियों से वा बहुत प्रकारों से प्रशंसित (विष्णवे) व्यापक परमात्मा के लिये (मन्म) विज्ञान (शूषम्) और बल (एतु) प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—कोई भी अनन्त पराक्रमी जगदीश्वर के विना इस विचित्र जगत् के रचने धारण करने और प्रलय करने को समर्थ नहीं हो सकता इस से इस को छोड़ और की उपासना किसी को न करनी चाहिये ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति । य उं त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

यस्य । त्री । पूर्णा । मधुना । पदानि । अक्षीयमाणा । स्वधया । मदन्ति । यः । ॐ इति । त्रिऽधातु । पृथिवीम् । उत । द्याम् । एकः । दाधार । भुवनानि । विश्वा ॥ ४ ॥

पदार्थः-(यस्य) जगदीश्वरस्य मध्ये (त्री) त्रीणि (पूर्णा) पूर्णानि (मधुना) मधुराद्येन गुणेन (पदानि) प्राप्तुमर्हाणि (अक्षीयमाणा) क्षयरहितानि (स्वधया) स्वस्वरूपधारणया क्रियया (मदन्ति) (यः) (उ) (त्रिधातु) त्रयः सत्वरजस्तमआदिधातवो येषु तानि (पृथिवीम्) भूमिम् (उत) अपि (द्याम्) सूर्य्यम् (एकः) अद्वैतः (दाधार) धरति पोषयाति वा (भुवनानि) (विश्वा) सर्वाणि ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्य रचनायां मधुना पूर्णाऽक्षीयमाणा त्री पदानि स्वधया मदन्ति य एक उ पृथिवीमुत द्यां त्रिधातु विश्वा भुवनानि दाधार सएव परमात्मा सर्वैर्वेदितव्यः ॥ ४ ॥

भावार्थः-योऽनादिकारणात् सूर्यादिप्रकाशवत् क्षितीरुत्पाद्य सर्वैर्भोग्यैः पदार्थैः सह संयोज्याऽऽनन्दयति तद्गुणकर्मोपासनेनानन्दो हि सर्वैर्वर्द्धनीयः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिस ईश्वर के बीच (मधुना) मधुरादि गुण से (पूर्णा) पूर्ण (अक्षीयमाणा) विनाशरहित (त्री) तीन (पदानि) प्राप्त होने योग्य पद अर्थात् लोक (स्वधया) अपने २ रूप के धारण करने रूपक्रिया से (मदन्ति) आनन्द को प्राप्त होते हैं (यः) और जो (एकः) (उ) एक अर्थात् अद्वैत परमात्मा (पृथिवीम्) पृथिवीमण्डल (उत) और (द्याम्) सूर्यमण्डल तथा (त्रिधातु) जिन में सत्व रजस् तमस् ये तीनों धातु विद्यमान उन (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक लोकान्तरों को (दाधार) धारण करता है वही परमात्मा सब को मानने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो अनादि कारण से सूर्य आदि के तुल्य प्रकाशमान पृथिवियों को उत्पन्न कर समस्त भोग्य पदार्थों के साथ उन का संयोग करा उन को आनन्दित करता है उस के गुण कर्म की उपासना से आनन्द ही सब को बढ़ाना चाहिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तद॑स्य प्रि॒यम॒भि पाथो॑ अ॒श्यां नरो॒ यत्र॑ दे॒व॒यवो॒ मद॑न्ति । उ॒रु॒क्र॒मस्य॒ स हि बन्धु॑रि॒त्था विष्णोः॑ प॒दे प॑र॒मे मध्व॒ उत्सः॑ ॥ ५ ॥

तत् । अ॒स्य । प्रि॒यम् । अ॒भि । पाथः॑ । अ॒श्याम् । नरः॑ । यत्र॑ । दे॒व॒ऽयवः॑ । मद॑न्ति । उ॒रु॒ऽक्र॒मस्य॑ । सः । हि । बन्धुः॑ । इ॒त्था । विष्णोः॑ । प॒दे । प॒र॒मे । मध्वः॑ । उत्सः॑ ॥ ५ ॥

पदार्थः—(तत्) (अस्य) (प्रियम्) येन प्रीणाति तत् (अभि) (पाथः) वर्त्म (अश्याम्) प्राप्नुयाम् (नरः) नेतारः

(यत्र) यस्मिन् (देवयवः) ये देवान् दिव्यान् भोगान् कामयन्ते (मदन्ति) आनन्दयन्ति (उरुक्रमस्य) बहुपराक्रमस्य (सः)(हि) खलु (बन्धुः) दुःखविनाशकत्वेन सुखप्रदः (इत्था) अनेन प्रकारेण (विष्णोः) व्यापकस्य (पदे) प्राप्तव्ये (परमे) अत्युत्तमे मोक्षे पदे (मध्वः) मधुरादिरसयुक्तस्य (उत्सः) कूपइव तृप्तिकरः ॥ ५ ॥

अन्वयः—अहं यत्र देवयवो नरो मदन्ति तदस्योरुक्रमस्य विष्णोः प्रियं पाथोऽभ्यश्यां यस्य परमे पदे मध्व उत्सइव तृप्तिकरो गुणो वर्त्तते सहि इत्था नो बन्धुरिवाऽस्ति ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये परमेश्वरेण वेदद्वारा दत्तामाज्ञामनुगच्छन्ति ते मोक्षसुखमश्नुवते। यथा जना बन्धुं प्राप्य सहायं लभन्ते तृषिता वा मधुरजलं कूपं प्राप्य तृप्यन्ति तथा परमेश्वरं प्राप्य पूर्णाऽऽनन्दा जायन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—मैं (यत्र) जिस में (देवयवः) दिव्य भोगों की कामना करने वाले (नरः) अग्रगन्ता उत्तम जन (मदन्ति) आनन्दित होते हैं (तत्) उस (अस्य) इस (उरुक्रमस्य) अनन्त पराक्रम युक्त (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (प्रियम्) प्रिय (पाथः) मार्ग को (अभ्यश्याम्) सब ओर से प्राप्त होऊं जिस परमात्मा के (परमे) अत्युत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद में (मध्वः) मधुरादि गुण युक्त पदार्थ का (उत्सः) कूपसा तृप्ति करने वाला गुण वर्त्तमान है (सः, हि) वही (इत्था) इस प्रकार से हमारा (बन्धुः) भाई के समान दुःख विनाश करने से सुख देने वाला है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो परमेश्वर ने वेदद्वारा दिई हुई आज्ञा के अनुकूल चलते हैं वे मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं। जैसे जन

बन्धु को प्राप्त हो कर सहायता को पाते हैं वा प्यासे जन मीठे जल से पूर्ण कुये को पाकर तृप्त होते हैं वैसे परमेश्वर को प्राप्त हो कर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः । अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ ॥ २४ ॥

ता । वाम् । वास्तूनि । उश्मसि । गमध्यै । यत्र । गावः । भूरिऽशृङ्गाः । अयासः । अत्र । अह । तत् । उरुऽगायस्य । वृष्णः । परमम् । पदम् । अव । भाति । भूरि ॥ ६ ॥ २४ ॥

पदार्थः—(ता) तानि (वाम्) युवयोरध्यापकोपदेशकयोः परमयोगिनोः (वास्तूनि) वासाऽधिकरणानि (उश्मसि) कामयेमहि (गमध्यै) गन्तुम् (यत्र) यस्मिन् (गावः) किरणाः (भूरिशृङ्गाः) भूरिबहुशृङ्गाणीवोत्कृष्टानि तेजांसि येषु ते (अयासः) प्राप्ताः (अत्र) (अह) (तत्) (उरुगायस्य) बहुधा प्रशंसितस्य (वृष्णः) सुखवर्षकस्य (परमम्) प्रकृष्टम् (पदम्) प्राप्तुमर्हम् (अव)(भाति) प्रकाशते (भूरि) बहु ॥ इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं व्याचष्टे:—तानि वां वास्तूनि कामयामहे गमनाय यत्र गावो भूरिशृङ्गा बहुशृङ्गा भूरीति बहुनोनामधेयं प्रभवतीति सतः शृङ्गं श्रयतेर्वा शृणातेर्वा शम्नातेर्वा शरणायोद्गतमिति वा शिरसो

निर्गतमिति वाऽयासोऽयनाः । तत्र तदुरुगायस्य विष्णोर्महागतेः परमं पदं पराध्यस्थमवभाति भूरि। पादः पद्यतेस्तन्निधानात्पदं पशुपादप्रकृतिः प्रभागपादः प्रभागपादसामान्यादितराणि पदानीति निरु० २ । ७ ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे आप्तौ विद्वांसौ यत्रायासो भूरिशृङ्गा गावः सन्ति ता तानि वास्तूनि वां युवयोर्गमध्यै वयमुश्मसि। यदुरुगायस्य वृष्णः परमेश्वरस्य परमं पदं भूर्यवभाति तदत्राह वयमुश्मसि ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यत्र विद्वांसो मुक्तिं प्राप्नुवन्ति तत्र किञ्चिदप्यन्धकारो नास्ति प्राप्तमोक्षाश्च भास्वरा भवन्ति तदेवाप्तानां मुक्तिपदं तद् ब्रह्म सर्वप्रकाशकमस्तीति ॥ ६ ॥

अत्र परमेश्वरमुक्तिपदवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्बोध्या ॥

इति चतुःपञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तं चतुर्विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे शास्त्रवेत्ता विद्वानो (यत्र) जहां (अयासः) प्राप्त हुए (भूरिशृंगाः) बहुत शींगों के समान उत्तम तेजों वाले (गावः) किरण हैं (ता) उन (वास्तूनि) स्थानों को (वाम्) तुम अध्यापक और उपदेशक परमयोगी जनों के (गमध्यै) जाने को हम लोग (उश्मसि) चाहते हैं। जो (उरुगायस्य) बहुत प्रकारों से प्रशंसित (वृष्णः) सुख वर्षाने वाले परमेश्वर को (परमम्) प्राप्त होने योग्य (पदम्) मोक्ष पद (भूरि) अत्यन्त (अव, भाति) उत्कृष्टता से प्रकाशमान है (तत्) उस को (अत्राह) यहां ही हमलोग चाहते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जहां विद्वान् जन मुक्ति पाते हैं वहां कुछ भी अन्धकार नहीं है और वे मोक्ष को प्राप्त हुए प्रकाशमान होते हैं वही आप्त विद्वानों का मुक्तिपद है सो ब्रह्म सब का प्रकाश करने वाला है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में परमेश्वर और मुक्ति का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एक सौ चौवन का सूक्त और चौवीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

प्रवइत्यस्य षडृचस्य पंचपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता १ । ३ । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथाध्यापकोपदेशकब्रह्मचर्यफलविषयमाह ॥

अब एकसौ पचपनवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मंत्र में पढ़ाने उपदेश करने वाले और ब्रह्मचर्य सेवने का फल कहते हैं ॥

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत । या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥

प्र । वः । पान्तम् । अन्धसः । धियाऽयते । महे । शूराय । विष्णवे । च । अर्चत । या । सानुनि । पर्वतानाम् । अदाभ्या । महः । तस्थतुः । अर्वताऽइव । साधुना ॥ १ ॥

पदार्थः-(प्र) (वः) युष्माकम् (पान्तम्) (अन्धसः) द्रवीभूतस्यान्नादेः (धियायते) प्रज्ञां धारणमिच्छते (महे) महते (शूराय) शौर्यादिगुणोपेताय (विष्णवे) शुभगुणव्याप्ताय (च) (अर्चत) सत्कुरुत (या) यौ (सानुनि) शिखरे (पर्वतानाम्) मेघानां शैलानां वा (अदाभ्या) हिंसितुमयोग्यौ (महः) महद्यथा-स्यात्तथा (तस्थतुः) तिष्ठतः (अर्वतेव) य ऋच्छति तेनाऽश्वेनेव (साधुना) सुशिक्षितेन ॥ १ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या धियायते महे शूराय विष्णवे च वोऽन्धसः पान्तं यूयं प्रार्चत याऽदाभ्या मित्रावरुणौ पर्वतानां सानुन्यर्वतेव साधुना महस्तस्थतुस्तावपि प्रार्चत ॥ १ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०-ये विद्यादानेन सुशिक्षया जनान् विज्ञानेन वर्द्धयन्ति ते महान्तो भवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (धियायते) प्रज्ञा और धारण की इच्छा करने वाले (महे) बड़े और (शूराय) शूरता आदि गुणों से युक्त (विष्णवे, च) और शुभ गुणों में व्याप्त महात्मा के लिये (वः) तुम्हारे (अन्धसः) गीले अन्न आदि पदार्थ के (पान्तम्) पान को तुम (प्र, अर्चत) उत्तमता से सत्कार के साथ देओ। तथा (या) जो (अदाभ्या) हिंसा न करने योग्य मित्र और वरुण अर्थात् अध्यापक और उपदेशक (पर्वतानाम्) पर्वतों के (सानुनि) शिखर पर (अर्वतेव) जाने वाले घोड़े के समान (साधुना) उत्तम शिखाये हुए शिष्य से (महः) बड़ा जैसे हो वैसे (तस्थतुः) स्थित होते अर्थात् जैसे घोड़ा से ऊंचे स्थान पर पहुंच जावें वैसे विद्या पढाकर कीर्ति के शिखर पर चढ़ जाते हैं उनका भी उत्तम सत्कार करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो विद्यादान उत्तम शिक्षा और विज्ञान से जनों को वृद्धि देते हैं वे महात्मा होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति। या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥

त्वेषम् । इत्था । सम्ऽअरणम् । शिमीऽवतोः । इन्द्राविष्णू इति । सुतऽपाः । वाम् । उरुष्यति । या । मर्त्याय । प्रतिऽधीयमानम् । इत् । कृशानोः । अस्तुः । असनाम् । उरुष्यथः ॥ २ ॥

पदार्थः—(त्वेषम्) प्रकाशम् (इत्था) अनेन प्रकारेण (समरणम्) सम्यक् प्रापकम् (शिमीवतोः) प्रशस्तकर्मयुक्तयोः (इन्द्राविष्णू) विद्युत्सूर्याविव (सुतपाः) सुतं पाति रक्षति सः (वाम्) युवाम् (उरुष्यति) वर्द्धयति (या) यौ (मर्त्याय) मनुष्याय (प्रतिधीयमानम्) सम्यक् ध्रियमाणम् (इत्) (कृशानोः) विद्युतः (अस्तुः) प्रक्षेप्तुः (असनाम्) प्रक्षेपणां क्रियाम् (उरुष्यथः) सेवेथाम् ॥ २ ॥

अन्वयः—यः शिमीवतोरध्यापकोपदेशकयोः सकाशात् समरणं त्वेषं प्राप्य मर्त्याय प्रतिधीयमानमुरुष्यति स सुतपा याइन्द्राविष्णू

इवाध्यापकोपदेशकौ युवामस्तुः कृशानोरसनां यथेदुरुष्यथइत्था वां सेवताम् ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये तपस्विनो जितेन्द्रियाः सन्तो विद्यामभ्यस्यन्ति ते सूर्यविद्युत्प्रकाशितात्मानो भवंति ॥ २ ॥

पदार्थः—जो (शिमीवतोः) प्रशस्त कर्मयुक्त अध्यापक और उपदेशक की उत्तेजना से (समरणम्) अच्छे प्रकार प्राप्ति कराने वाले (त्वेषम्) प्रकाश को प्राप्त होकर (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (प्रतिधीयमानम्) अच्छे प्रकार धारण किये हुए व्यवहार को (उरुष्यति) बढ़ाता है वह (सुतपाः) सुन्दर तपस्या वाला सज्जन पुरुष (या) जो (इन्द्राविष्णू) विजुली और सूर्य के समान पढ़ाने और उपदेश करने वाले तुम दोनों (अस्तुः) एक देश से दूसरे देश को पदार्थ पहुंचा देने वाले (कृशानोः) विजुली रूप आग की (असनाम्) पहुंचाने की क्रिया को जैसे (इत्) ही (उरुष्यथः) सेवते हो (इत्था) इसी प्रकार से (वाम्) तुम दोनों को सेवें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो तपस्वी जितेन्द्रिय होते हुए विद्या का अभ्यास करते हैं वे सूर्य और विजुली के समान प्रकाशितात्मा होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ता ईं वर्द्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे । दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

ताः । ईम् । वर्द्धन्ति । महि । अस्य । पौंस्यम् । नि । मातरा । नयति । रेतसे । भुजे । दधाति । पुत्रः । अवरम् । परम् । पितुः । नाम । तृतीयम् । अधि । रोचने । दिवः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(ताः) विदुष्यः स्त्रियः (ईम्) सर्वतः (वर्द्धन्ति) वर्द्धयन्ति (महि) महत् (अस्य) अपत्यस्य (पौंस्यम्) पुंसो भावम् (नि) नितराम् (मातरा) मान्यकर्त्तारौ मातापितरौ (नयति) प्राप्नोति (रेतसे) वीर्यस्य वर्द्धनाय (भुजे) भोगाय (दधाति) (पुत्रः) जनकपालकः (अवरम्) अर्वाचीनम् (परम्) प्रकृष्टम् (पितुः) जनकस्य सकाशात् (नाम) आख्याम् (तृतीयम्) तयाणां पूरकम् (अधि) उपरि (रोचने) प्रकाशे (दिवः) द्योतमानस्य सूर्यस्य ॥ ३ ॥

अन्वयः—या विदुष्योऽस्य रेतसे भुजे महि पौंस्यमीं वर्द्धन्ति स ता नयति यतः पुत्रः पितुर्मातुश्च सकाशात्प्राप्तशिक्षो दिवोऽधिरोचनेऽवरं परं तृतीयं च नाम निमातरा च दधाति ॥ ३ ॥

भावार्थः—तएव मातापितरौ हितैषिणौ ये स्वाऽपत्यानि दीर्घब्रह्मचर्येण पूर्णा विद्याः सुशिक्षा युवावस्थाञ्च प्रापय्य विवाहयन्ति तएव प्रथमं द्वितीयं तृतीयं च पदार्थं प्राप्य सूर्यवत् सुप्रकाशात्मानो भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो विदुषी स्त्रियां (अस्य) इस लड़के के (रेतसे) वीर्य बढ़ाने और (भुजे) भोगादि पदार्थ प्राप्त होने के लिये (महि) अत्यन्त (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को (ईम्) सब ओर से (वर्द्धन्ति) बढ़ाती हैं वह (ताः) उन को (नयति) प्राप्त होता है इस में कारण यह है कि जिस से (पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता और माता की उत्तेजना से शिक्षा को प्राप्त हुआ (दिवः) प्रकाशमान सूर्य मण्डल के (अधि, रोचने) ऊपरी प्रकाश में (अवरम्) निकृष्ट (परम्) उत्कृष्ट वा पिछिले अगले वा उरले और (तृतीयम्) तीसरे (नाम) नाम को तथा (नि,मातरा) निरन्तर मान करने वाले माता पिता को (दधाति) धारण करता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—वेही माता पिता हितैषी होते हैं जो अपने सन्तानों को दीर्घ ब्रह्मचर्य से पूरी विद्या उत्तम शिक्षा और युवावस्था को प्राप्त करा विवाह कराते हैं वेही प्रथम ब्रह्मचर्य दूसरी पूरी विद्या उत्तम शिक्षा और तृतीय युवावस्था को प्राप्त हो कर सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीढुषः । यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥

तत्ऽतत् । इत् । अस्य । पौंस्यम् । गृणीमसि । इनस्य । त्रातुः । अवृकस्य । मीढुषः । यः । पार्थिवानि । त्रिऽभिः । इत् । विगामऽभिः । उरु । क्रमिष्ट । उरुगायाय । जीवसे ॥ ४ ॥

पदार्थः–(तत्तत्) (इत्) एव (अस्य) कृतब्रह्मचर्यस्य जितेन्द्रियस्य (पौंस्यम्) पुरुषार्थस्य भावम् (गृणीमसि) स्तुमः (इनस्य) समर्थस्येश्वरस्य (त्रातुः) रक्षकस्य (अवृकस्य) चौर्यादिदोषरहितस्य (मीढुषः) वीर्यसेचकस्य (यः) (पार्थिवानि) पृथिवीविकारजातानि (त्रिभिः) सत्वादिगुणैः (इत्) एव (विगामभिः) विविधप्रशंसायुक्तैः (उरु) बहु (क्रमिष्ट) क्रमते (उरुगायाय) बहुप्रशंसिताय (जीवसे) जीवनाय प्राणधारणाय ॥ ४ ॥

अन्वयः—यो विगामभिस्त्रिभिरुरुगायाय जीवसे यद्यत् पार्थिवानीदुरु क्रमिष्ट तत्तत् त्रातुरिनस्येवास्यावृकस्य मीढुषः पौंस्यमिद्वयं गृणीमसि ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैः सुखेन चिरंजीवनाय दीर्घं ब्रह्मचर्यं संसेव्यारोग्येण धातुसाम्यवर्द्धनेन शरीरबलं विद्याधर्मयोगाभ्यासवर्द्धनेनाऽऽत्मबलमुन्नीय सदैवसुखे स्थातव्यम् । यइमामीश्वराज्ञां पालयन्ति ते बाल्यावस्थायां स्वयंवरविवाहं कदाचिन्न कुर्वन्ति नैतेन विना पूर्णा पुरुषार्थवृद्धिः संभवति ॥ ४ ॥

पदार्थः—(यः) जो (विगामभिः) विविध प्रशंसायुक्त (त्रिभिः) तीन सत्व रजस् तमो गुणों के साथ (उरुगायाय) बहुत प्रशंसित (जीवसे) जीवन के लिये (पार्थिवानि) पृथिवी के किरणों से उत्पन्न हुए (इत्) ही पदार्थों को (उरु, क्रमिष्ट) क्रम से अत्यन्त प्राप्त होता है (तत्तत्) उस २ (त्रातुः) रक्षा करने वाले (इनस्य) समर्थ ईश्वर के समान (अस्य) किये हुए ब्रह्मचर्य जितेन्द्रिय इस (अवृकस्य) चोरी आदि दोषरहित (मीढुषः) वीर्य सेचन समर्थ पुरुष के (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को (इत्) ही हम लोग (गृणीमसि) प्रंशसा करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि सुख से चिर काल तक जीवने के लिये दीर्घ ब्रह्मचर्य का अच्छे प्रकार सेवन कर आरोग्य और धातुओं की समता बढ़ाने से शरीर के बल और विद्या धर्म तथा योगाभ्यास के बढ़ाने से आत्मबल की उन्नति कर सदैव सुख में रहें । जो लोग इस ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं वे बाल्यावस्था में स्वयंवर विवाह कभी नहीं करते इस के विना पूर्ण पुरुषार्थ की वृद्धि की संभावना नहीं है ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति । तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥

द्वे इति॑ । इत् । अ॒स्य॒ । क्रम॑णे॒ इति॑ । स्व॒ःऽदृशः॑ । अ॒भि॒ऽख्याय॑ । मर्त्यः॑ । भु॒र॒ण्य॒ति॒ । तृ॒तीय॑म् । अ॒स्य॒ । नकिः॑ । आ । द॒ध॒र्ष॒ति॒ । वयः॑ । च॒न । प॒तय॑न्तः । प॒त॒त्रिणः॑ ॥५॥

पदार्थः—(द्वे) शरीरात्मबले (इत्) इव (अस्य) ब्रह्मचारिणः (क्रमणे) अनुक्रमेण गमने (स्वर्दृशः) यः सुखं पश्यति तस्य (अभिख्याय) अभितः प्रख्यातुम् (मर्त्यः) मनुष्यः (भुरण्यति) धरति (तृतीयम्) त्रित्वसंख्याकं विद्याजन्म (अस्य) (नकिः) निषेधे (आ) समन्तात् (दधर्षति) धर्षितुमिच्छति (वयः) (चन) अपि (पतयन्तः) ऊर्ध्वमधोगच्छन्तः (पतत्रिणः) पक्षिणः ॥ ५ ॥

अन्वयः—यो मर्त्यः स्वर्दृशोऽस्य द्वे क्रमणे अभिख्याय भुरण्यति स पतयन्तः पतत्रिणो वयश्चनेदिवास्य तृतीयं नकिरादधर्षति ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये मातापितरः स्वापत्यानां ब्रह्मचर्याऽनुक्रमेण विद्याजन्म वर्द्धयन्ति ते स्वापत्यानि दीर्घायूंषि बलिष्ठानि सुशीलानि कृत्वा नित्यं मोदन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो (मर्त्यः) मनुष्य (स्वर्दृशः) सुख देने वाले (अस्य) इस ब्रह्मचारी के (द्वे,क्रमणे) दो अनुक्रम से चलने वाले अर्थात् वर्त्ताव वर्त्तने वाले शरीर बल तथा आत्मबल को (अभिख्याय) सब ओर से प्रख्यात करने को (भुरण्यति) धारण करता है वह (पतयन्तः) ऊपर नीचे जाते हुए (पतत्रिणः) पंखों वाले (वयः) पखेरू (चन) भी (इत्) जैसे किसी

पदार्थ का तिरस्कार करें वैसे भी (अस्य) इस ब्रह्मचारी के (तृतीयम्) तीसरे विद्या जन्म का (नकिः, आ, दधर्षति) तिरस्कार नहीं करता है ॥५॥

भावार्थः—जो माता पिता अपने सन्तानों का ब्रह्मचर्य के अनुक्रम से विद्या जन्म को बढाते हैं वे अपने सन्तानों को दीर्घ आयु वाले बलवान् सुन्दर शीलयुक्त करके नित्य हर्षित होते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् । बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥ २५ ॥

चतुर्भिः । साकम् । नवतिम् । च । नामऽभिः । चक्रम् । न । वृत्तम् । व्यतीन् । अवीविपत् । बृहत्ऽशरीरः । विऽमिमानः । ऋक्वऽभिः । युवा । अकुमारः । प्रति । एति । आऽहवम् ॥ ६ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(चतुर्भिः) चतुष्टुसंख्याकैः (साकम्) सार्द्धम् (नवतिम्) (च) (नामभिः) आख्याभिः (चक्रम्) (न) इव (वृत्तम्) (व्यतीन्) विशेषेण प्राप्तवत्तान् (अवीविपत्) अतिशयेन भ्रामयति (बृहच्छरीरः) बृहत् महच्छरीरं यस्य (विमिमानः) विशेषेण धातूनां निर्माता (ऋक्वभिः) प्रशंसितैर्गुणकर्मस्वभावैः (युवा) प्राप्तयौवनावस्थः (अकुमारः)

पञ्चविंशतिवर्षातीतः (प्रति) (एति) प्राप्नोति (आहवम्) प्रतिष्ठाऽऽह्वानम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—यो विमिमानो बृहच्छरीरोऽकुमारो युवा वृत्तं चक्रं न चतुर्भिर्नामभिः साकं नवतिं च व्यतीनेकोऽप्यवीविपत् स ऋक्वभिराहवं प्रत्येति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—योऽष्टाचत्वारिंशद्वर्षप्रमिताखण्डितं ब्रह्मचर्यं सेवते स एकोऽसहायोऽपि गोलचक्रवच्चतुर्णवतिं योद्धॄन् भ्रामयितुं शक्नोति । मनुष्याणामादशमात्संवत्सराद्बाल्यावस्था । आपंचविंशतेःकुमारावस्था ततः षट्विंशवर्षारम्भाद्युवावस्थारम्भः पुरुषस्य सप्तदशाद्वर्षात्कन्यायाश्च युवावस्थारम्भोऽस्ति । अत ऊर्ध्वं ये स्वयंवरं विवाहं कुर्वन्ति कारयन्ति च ते महाभाग्यशालिनो जायन्ते ॥ ६ ॥

अत्राध्यापकोपदेशकब्रह्मचर्यफलवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इति पञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तं पंचविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—जो (विमिमानः) विशेषता से धातुओं की वृद्धि का निर्माण करता हुआ (बृहच्छरीरः) बली स्थूल शरीर वाला (अकुमारः) पचीश वर्ष की अवस्था से निकल गया (युवा) किन्तु युवावस्था को प्राप्त ब्रह्मचारी (वृत्तम्) गोल (चक्रम्) चक्र के (न) समान (चतुर्भिः) चार (नामभिः) नामों के (साकम्) साथ (नवतिं,च) और नब्बे अर्थात् चौरानवे नामों से (व्यतीन्) विशेषता से जिन को बल प्राप्त हुआ उन बलवान् योद्धाओं को एक भी (अवीविपत्)

अत्यन्त भ्रमाता है वह (ऋक्वभिः) प्रशंसित गुण कर्म स्वभावों से (आहवम्) प्रतिष्ठा के साथ बुलाने को (प्रति, एति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो अड़तालीश वर्ष भर अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन करता है वह इकेला भी गोलचक्र के समान चौरानवे योद्धाओं को भ्रमा सकता है मनुष्यों में दश वर्ष तक बाल्यावस्था पच्चीश वर्षतक कुमारावस्था तदनन्तर छब्बीशवें वर्ष के आरम्भ से युवावस्था पुरुष की होती है और सत्रहवें वर्ष से कन्या की युवावस्था का आरम्भ है इस के उपरान्त जो स्वयंवर विवाह को करते कराते हैं वे महाभाग्यशाली होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अध्यापकोपदेशक और ब्रह्मचर्य के फल के वर्णन से इस के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पचपन का सूक्त और पच्चीशवां वर्ग पूरा हुआ ॥

भवेत्यस्य पञ्चर्चस्य षट्पञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। १ निचृत्त्रिष्टुप् २ विराट् त्रिष्टुप् ५ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ निचृज्जगती ४ जगती छन्दः । निषादः स्वरः॥

अथ विद्वदध्यापकाध्येतृगुणानाह ॥

अब पांच ऋचा वाले एकसौ छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है उस में आरम्भ से विद्वान् अध्यापक अध्येताओं के गुणों को कहते हैं ॥

भवा॑ मि॒त्रो न शेव्यो॑ घृ॒तासु॑ति॒र्विभू॑तद्युम्न एव॒या उ॑ स॒प्रथा॑: । अधा॑ ते विष्णो वि॒दुषा॑ चि॒दर्ध्य॒: स्तोमो॑ य॒ज्ञश्च॒ राध्यो॑ ह॒विष्म॑ता ॥ १ ॥

भव॑ । मि॒त्रः । न । शेव्यः॑ । घृ॒तऽआ॑सुतिः । विभू॑तऽद्युम्न । ए॒व॒ऽयाः । ऊं॒इति॑ । स॒ऽप्रथाः॑ । अध॑ । ते॒ । वि॒ष्णो॒ इति॑ । वि॒दुषा॑ । चि॒त् । अर्ध्यः॑ । स्तोमः॑ । य॒ज्ञः । च॒ । राध्यः॑ । ह॒विष्म॑ता ॥ १ ॥

पदार्थः—(भव) अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (मित्रः) (न) इव (शेव्यः) सुखयितुं योग्यः (घृतासुतिः) घृतमासूयते येन सः (विभूतद्युम्नः) विशिष्टानि भूतानि द्युम्नानि धनानि यशांसि वा यस्य सः (एवयाः) एवान् रक्षकान् याति (उ) वितर्के (सप्रथाः) सप्रख्यातिः (अध) अनन्तरम् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (ते) तव (विष्णो) सर्वासु विद्यासु व्यापिन् (विदुषा) आप्तेन विपश्चिता (चित्) अपि (अर्ध्यः) वर्द्धितुं योग्यः (स्तोमः) स्तोतुमर्हो व्यवहारः (यज्ञः) सङ्गन्तुमर्हो ब्रह्मचर्याख्यः (च) (राध्यः) संशोधितुं योग्यः (हविष्मता) प्रशस्तविद्यादानग्रहणयुक्तेन व्यवहारेण ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विष्णो ते तव योऽर्द्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च हविष्मता राध्योऽस्ति तं चानुष्ठायाऽध शेव्यो मित्रो न एवया उ सप्रथा विदुषा चिदपि घृतासुतिर्विभूतद्युम्नस्त्वं भव ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्वांसो यस्य ब्रह्मचर्यानुष्ठानाख्ययज्ञस्य वृद्धिं स्तुतिं संसिद्धिं च चिकीर्षन्ति तं संसेव्य विद्वान् भूत्वा सर्वस्य मित्रं भवेत् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) समस्त विद्याओं में व्याप्त (ते) तुम्हारा जो (अर्द्धयः) बढ़ने (स्तोमः) और स्तुति करने योग्य व्यवहार (यज्ञः, च) और संगम करने योग्य ब्रह्मचर्य नाम वाला यज्ञ (हविष्मता) प्रशस्त विद्या देने और ग्रहण करने से युक्त व्यवहार (राध्यः) अच्छे प्रकार सिद्ध करने योग्य है उस का अनुष्ठान आरम्भ कर (अध) इस के अनन्तर (शंस्यः) सुखी करने योग्य (मित्रः) मित्र के (न) समान (एवयाः) रक्षा करने वालों को प्राप्त होने वाला (उ) तर्क वितर्क के साथ (सप्रथाः) उत्तम प्रसिद्धि युक्त (विदुषा) और आप्त उत्तम विद्वान् के साथ (चित्) भी (घृतासुतिः) जिस से घृत उत्पन्न होता (विभूतद्युम्नः) और जिस से विशेष धन वा यश हुए हों ऐसा तू (भव) हो॥ १॥

भावार्थः—विद्वान् जन जिस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप यज्ञ की वृद्धि स्तुति और उत्तमना से सिद्धि करने की इच्छा करते हैं उस का अच्छे प्रकार सेवन कर विद्वान् हो के सब का मित्र हो॥ १॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति। यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्॥ २॥

यः। पूर्व्याय। वेधसे। नवीयसे। सुमत्ऽजानये। विष्णवे। ददाशति। यः। जातम्। अस्य। महतः। महि। ब्रवत्। सः। इत्। ऊं इति। श्रवःऽभिः। युज्यम्। चित्। अभि। असत॥ २॥

पदार्थः—(यः) (पूर्व्याय) पूर्वैर्विद्वद्भिः सुशिक्षया निष्पादिताय (वेधसे) मेधाविने (नवीयसे) अतिशयेनाधीतविद्याय नूतनाय (सुमज्जानये) सुष्ठुप्राप्तविद्याय प्रसिद्धाय (विष्णवे) विद्याव्याप्तुं शीलाय (ददाशति) ददाति। अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः (यः) (जातम्) उत्पन्नं विज्ञानम् (अस्य) विद्याविषयस्य (महतः) पूजितव्यस्य (महि) महत् पूजितम् (ब्रवत्) ब्रूयात् (सः) (इत्) एव (उ) वितर्के (श्रवोभिः) श्रवणमनननिदिध्यासनैः (युज्यम्) समाधातुमर्हम् (चित्) अपि (अभि) आभिमुख्ये (असत्) अभ्यासं कुर्यात् ॥ २ ॥

अन्वयः—यो नवीयसे सुमज्जानये पूर्व्याय वेधसे विष्णवे ददाशति योऽस्य महतो महि जातं ब्रवत् यउ श्रवोभिर्जातमहि युज्यमभ्यसत् स चिद्विद्वान् जायेत स इदेवाऽध्यापयितुं योग्यो भवेत् ॥२॥

भावार्थः—ये निष्कपटतया धीमतो विद्यार्थिनोऽध्यापयन्त्युपदिशन्ति ये च धर्म्येणाऽधीयतेऽभ्यस्यन्ति च तेऽतिशयेन विद्वांसो धार्मिका भूत्वा महत्सुखं यान्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—(यः) जो (नवीयसे) अत्यन्त विद्या पढ़ा हुआ नवीन (सुमज्जानये) सुन्दरता से पाई हुई विद्या से प्रसिद्ध (पूर्व्याय) पूर्वज विद्वानों ने अच्छी शिखावटों से शिखाये हुए (वेधसे) मेधावी अर्थात् धीर (विष्णवे) विद्या में व्याप्त होने का स्वभाव रखने वाले के लिये विज्ञान (ददाशति) देता है वा (यः) जो (अस्य) इस (महतः) सत्कार करने योग्य जन के (महि) महान् प्रशंसित (जातम्) उत्पन्न हुए विज्ञान को (ब्रवत्) प्रगट कहे (उ) और (श्रवोभिः) श्रवण मनन और निदिध्यासन अर्थात् अत्यन्त

धारण करने विचारने से अत्यन्त उत्पन्न हुए (युज्यम्) समाधान के योग्य विज्ञान का (अभ्यसत्) अभ्यास करे (सः, चित्) वही विद्वान् हो और (इत्) वही पढ़ाने को योग्य हो ॥ २ ॥

भावार्थः—जो निष्कपटता से बुद्धिमान् विद्यार्थियों को पढ़ाते वा उन को उपदेश देते हैं और जो धर्मयुक्त व्यवहार से पढ़ते और अभ्यास करते हैं वे सब अतीव विद्वान् और धार्मिक हो कर बड़े सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्त्तन। आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥

तम्। ऊं इति। स्तोतारः। पूर्व्यम्। यथा। विद। ऋतस्य। गर्भम्। जनुषा। पिपर्त्तन। आ। अस्य। जानन्तः। नाम। चित्। विवक्तन। महः। ते। विष्णो इति। सुऽमतिम्। भजामहे ॥ ३ ॥

पदार्थः—(तम्) तमाप्तमध्यापकं विद्वांसम् (उ) वितर्के (स्तोतारः) सर्वविद्यास्तावकाः (पूर्व्यम्) पूर्वैः कृतम् (यथा) (विद) विजानीत (ऋतस्य) सत्यस्य (गर्भम्) विद्याजं बोधम् (जनुषा) विद्याजन्मना (पिपर्त्तन) पिपृत विद्याभिः सेवया वा पूर्णं कुरुत (आ) (अस्य) (जानन्तः) (नाम) प्रसिद्धिम् (चित्) अपि (विवक्तन) वदतोपदिशत (महः) महतीम् (ते) तव (विष्णो) सकलविद्याव्याप्त (सुमतिम्) शोभनां प्रज्ञाम् (भजामहे) सेवामहे ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे स्तोतारो यथा यूयं जनुषा पूर्व्यं तं विद। ऋतस्य गर्भमु पिपर्त्तन। अस्य चिन्नामाजानन्तो विवक्तन तथा वयमपि विजानीमः पिपृम च। हे विष्णो वयं यस्य ते महस्सुमतिं भजामहे स भवान् नोऽस्मान् सुशिक्षस्व ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—मनुष्या विद्यावृद्धयेऽनूचानमध्यापकं प्राप्य सुसेव्य सत्या विद्याः प्रयत्नेन गृहीत्वा पूर्णा विद्वांसः स्युः॥३॥

पदार्थः—हे (स्तोतारः) समस्त विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करने वाले सज्जनो (यथा) जैसे तुम (जनुषा) विद्या जन्म से (पूर्व्यम्) पूर्व विद्वानों ने किये हुए (तम्) उस आप्त अध्यापक विद्वान् को (विद) जानो और (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के (गर्भम्) विद्या सम्बन्धी बोध को (उ) तर्क वितर्क से (पिपर्त्तन) पालो वा विद्याओं से और सेवा से पूरा करो। तथा (अस्य) इस का (चित्) भी (नाम) नाम (आ, जानन्तः) अच्छे प्रकार जानते हुए (विवक्तन) कहो उपदेश करो वैसे हम लोग भी जानें पालें और पूरा करें। हे (विष्णो) सकल विद्याओं में व्याप्त विद्वान् हम जिन (ते) आप के (महः) महती (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को (भजामहे) भजते सेवते हैं सो आप हम लोगों को उत्तम शिक्षा देवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—मनुष्य विद्या की वृद्धि के लिये शास्त्रवक्ता अध्यापक को पा कर और उस की उत्तम सेवा कर सत्यविद्याओं को अच्छे यत्न से ग्रहण कर के पूरे विद्वान् हों ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः। दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥

तम्। अस्य। राजा। वरुणः। तम्। अश्विना। क्रतुम्। सचन्त। मारुतस्य। वेधसः। दाधार। दक्षम्। उत्ऽतमम्। अहःऽविदम्। व्रजम्। च। विष्णुः। सखिऽवान्। अपऽऊर्णुते ॥ ४ ॥

पदार्थः—(तम्) (अस्य) (राजा) प्रकाशमानः (वरुणः) वरः (तम्) (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (क्रतुम्) कर्म (सचन्त) प्राप्नुत (मारुतस्य) मरुतामयं तस्य (वेधसः) विधातुः (दाधार) धरतु (दक्षम्) बलम् (उत्तमम्) प्रशस्तम् (अहर्विदम्) योऽहानि विन्दति तम् (व्रजम्) प्राप्तं देशम् (च) (विष्णुः) स्वदीप्त्या व्यापकः सूर्य्यः (सखिवान्) बहवो मरुतः सखायो विद्यन्ते यस्य सः (अपोर्णुते) उद्घाटयति प्रकाशयति । आच्छादकमन्धकारं निवारयति ॥ ४ ॥

अन्वयः—यः सखिवान् विष्णुरुत्तमं दक्षं दाधाराहर्विदं व्रजं चापोर्णुते तस्यास्य मारुतस्य वेधसस्तं क्रतुं वरुणो राजा तमश्विना च सचन्त ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽन्ये सज्जना आप्ताद्विदुषो विद्या गृहीत्वा प्रज्ञामुन्नीय पूर्णं बलं प्राप्नुवन्ति । यथा यत्र यत्र सविताऽन्धकारं निवर्त्तयति तथा तत्र२तन्महत्त्वं दृष्ट्वा सर्वे मनुष्याः पूर्णविद्यात् विद्याशिक्षाः प्राप्याऽविद्यान्धकारं निवर्त्तयेयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (सखिवान्) बहुत पवनरूप मित्रों वाला (विष्णुः) अपनी दीप्ति से व्यापक सूर्यमण्डल (उत्तमम्) प्रशंसित (दक्षम्) बल को (दाधार)

धारण करे और (अहर्विदम्) जो दिनों को प्राप्त होता अर्थात् जहां दिन होता उस (व्रजं, च) प्राप्त हुए देश को (अपोर्णुते) प्रकाशित करता उस (अस्य) इस (मारुतस्य) पवनरूप सखायों वाले (वेधसः) विधाता सूर्यमण्डल के (तम्) उस (क्रतुम्) कर्म को (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान सज्जन और (तम्) उस कर्म को (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोग (सचन्त) प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

भावार्थः–इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे और सज्जन आप्त विद्वान् से विद्या ग्रहण कर उत्तम बुद्धि की उन्नति कर पूरे बल को प्राप्त होते हैं वा जैसे जहां २ सविता अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे वहां २ उस सवितृमण्डल के महत्त्व को देख के समस्त लटे मोटे धनी निर्धनी जन पूर्ण विद्या वाले से विद्या और शिक्षाओं को पाकर अविद्या रूपी अन्धकार को निवृत्त करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः । वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥ २६ । २१ ॥

आ । यः । विवाय । सचथाय । दैव्यः । इन्द्राय । विष्णुः । सुऽकृते । सुकृत्ऽतरः । वेधाः । अजिन्वत् । त्रिऽसधस्थः । आर्यम् । ऋतस्य । भागे । यजमानम् । आ । अभजत् ॥ ५ ॥ २६ । २१ ॥

पदार्थः–(आ) (यः) (विवाय) गच्छेत् (सचथाय) प्राप्तसम्बन्धाय (दैव्यः) विद्वत्सम्बन्धी (इन्द्राय) परमैश्वर्याय

(विष्णुः) प्राप्तविद्यः (सुकृते) धर्मात्मने (सुकृत्तरः) अतिशयेन सुष्ठु करोति यः (वेधाः) मेधावी (अजिन्वत्) जिन्वेत् (त्रिसधस्थः) त्रिषु यः कर्मोपासनाज्ञानेषु स्थितः (आर्यम्) सकलशुभगुणकर्मस्वभावेषु वर्त्तमानम् (ऋतस्य) सत्यस्य (भागे) सेवने (यजमानम्) विद्यादातारम् (आ)(अभजत्) सेवेत ॥५॥

अन्वयः—यो दैव्यस्त्रिसधस्थः सुकृत्तरो विष्णुर्वेधा सचथाय सुकृत इन्द्रायर्त्तस्य भाग आर्यं यजमानमाभजद्यश्च सर्वान् विद्याशिक्षादानेनाजिन्वत् स पूर्णं सुखमाविवाय ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये विद्वत्प्रियाः कृतज्ञाः सुकृतिनः सर्वविद्याविदः सत्यधर्मविद्याप्रापकत्वेन सर्वान् जनान् सुखयन्ति तेऽखिलसुखभाजो जायन्ते ॥ ५ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदध्यापकाऽध्येतृगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति षट्पञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तं षड्विंशो वर्ग एकविंशोऽनुवाकश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—(यः) जो (दैव्यः) विद्वानों का संबन्धी (त्रिसधस्थः) कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों में स्थित (सुकृत्तरः) अतीव उत्तम कर्म वाला (विष्णुः) विद्या को प्राप्त (वेधाः) मेधावी धीरबुद्धि सज्जन (सचथाय) धर्म सम्बन्ध को प्राप्त (सुकृते) धर्मात्मा (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् जन के लिये (ऋतस्य) सत्य के (भागे) सेवने के निमित्त (आर्य्यम्) समस्त शुभ गुण कर्म और स्वभावों में वर्त्तमान (यजमानम्) विद्या देने वाले को (आ, अभजत्) अच्छे प्रकार सेवे और जो सब को विद्या और शिक्षा देने से (अजिन्वत्) प्राण पोषण करे वह पूरे सुख को (आ,विवाय) अच्छे प्रकार प्राप्त हो॥५॥

भावार्थः—जो विद्वानों के प्रिय किये को जानने मानने वाले सुकृती सर्वविद्यावेत्ता जन सत्य धर्म विद्या पहुंचाने से सब जनों को सुख देते हैं वे अखिल सुख भोगने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् अध्यापक और अध्येताओं के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एक सौ छप्पन का सूक्त छब्बीशवां वर्ग और इक्कीशवां अनुवाक पूरा हुआ ॥

अबोधीत्यस्य षड्चस्य सप्तपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ४ जगती । ३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथाश्विगुणानाह ॥

अब छः ऋचा वाले एक सौ सत्तावनवें सूक्त का आरम्भ है उस में प्रथम मंत्र से ही अश्वि के गुणों को कहते हैं ॥

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा । आयुंक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ॥ १ ॥

अबोधि । अग्निः । ज्मः । उत् । एति । सूर्यः । वि । उषाः । चन्द्रा । मही । आवः । अर्चिषा । अयुंक्षाताम् । अश्विना । यातवे । रथम् । प्र । असावीत् । देवः । सविता । जगत् । पृथक् ॥ १ ॥

पदार्थः—(अबोधि) बुध्यते विज्ञायते (अग्निः) विद्युदादिः (ज्मः) पृथिव्याः (उत्) (एति) उदयं प्राप्नोति (सूर्यः) (वि) (उषाः) प्रभातः (चन्द्रा) आह्लादप्रदा (मही) महती (आवः) अवति (अर्चिषा) (अयुक्षाताम्) अयोजयताम्—युङ्क्थः (अश्विना) विद्वांसावाप्ताऽध्यापकोपदेशकौ (यातवे) यातुं गन्तुम् (रथम्) विमानादियानम् (प्र) (असावीत्) प्रसुवति (देवः) दिव्यगुणः (सविता) ऐश्वर्यकारकः (जगत्)(पृथक्) ॥१॥

अन्वयः—यथाऽग्निरबोधि ज्मः सूर्य्य उदेति मही चन्द्रोषा व्यावः सविता देवो वार्चिषा जगत् पृथक् प्रासावित् तथाऽश्विना यातवे रथमयुक्षाताम् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालं०—यथा विद्युत्सूर्योषसः स्वप्रकाशेन स्वयं प्रकाशिता भूत्वा सर्वं जगत् प्रकाश्यैश्वर्यं प्रापयन्ति तथैवाऽध्यापकोपदेशकाः पदार्थैश्वरविद्याः प्रकाश्याऽखिलमैश्वर्य्यं जनयेयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—जैसे (अग्निः) विद्युदादि अग्नि (अबोधि) जाना जाता है (ज्मः) पृथिवी से अलग (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदय होता है (मही) बड़ी (चन्द्रा) आनन्द देने वाली (उषाः) प्रभात वेला (व्यावः) फैलती उजेली देती है वा (सविता) ऐश्वर्य करने वाला (देवः) दिव्यगुणी सूर्यमण्डल (अर्चिषा) अपने किरण समूह से (जगत्) मनुष्यादि प्राणिमात्र जगत् को (पृथक्) अलग (प्रासावीत्) अच्छे प्रकार प्रेरणा देता है वैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् (यातवे) जाने के लिये (रथम्) विमानादि यान को (अयुक्षाताम्) युक्त करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं०—जैसे बिजुली सूर्य और प्रभात वेला अपने प्रकाश से आप प्रकाशित हो समस्त जगत् को प्रकाशित कर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशक लोग पदार्थ तथा ईश्वरसम्बन्धी विद्याओं को प्रकाशित कर समस्त ऐश्वर्य की उत्पत्ति करावें ॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् । अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥

यत् । युञ्जाथे इति । वृषणम् । अश्विना । रथम् । घृतेन । नः । मधुना । क्षत्रम् । उक्षतम् । अस्माकम् । ब्रह्म । पृतनासु । जिन्वतम् । वयम् । धना । शूरऽसाता । भजेमहि ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्) यतः (युञ्जाथे) (वृषणम्) परशक्तिप्रतिबन्धकम् (अश्विना) सभासेनेशौ (रथम्) विमानादियानम् (घृतेन) उदकेन (नः) अस्माकम् (मधुना) मधुरादिगुणयुक्तेन रसेन (क्षत्रम्) क्षत्रियकुलम् (उक्षतम्) सिञ्चतम् (अस्माकम्) (ब्रह्म) ब्राह्मणकुलम् (पृतनासु) सेनासु (जिन्वतम्) प्रीणीतम् (वयम्) प्रजासेनाजनाः (धना) धनानि (शूरसाता) शूरैः संभजनीये संग्रामे (भजेमहि) सेवेमहि ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अश्विना युवां यद्वृषणं रथं युञ्जाथे ततो घृतेन मधुना नः क्षत्रमुक्षतमस्माकं पृतनासु ब्रह्म जिन्वतं वयं शूरसाता धना भजेमहि ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यैराजनीत्यङ्गैराष्ट्रं रक्षित्वा धनादिकं वर्द्धयित्वा संग्रामाञ्जित्वा सर्वेभ्यः सुखोन्नतिः कार्य्या ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो तुम (यत्) जिस से (वृषणम्) शत्रुओं की शक्ति को रोकने वाले (रथम्) विमान आदि यान को (युञ्जाथे) युक्त करते हो इस से (घृतेन) जल और (मधुना) मधुरादि गुणयुक्त रस से (नः) हम लोगों के (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल को (उक्षतम्) सींचो (अस्माकम्) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (ब्रह्म) ब्राह्मणकुल को (जिन्वतम्) प्रसन्न करो और (वयम्) हम प्रजा सेना जन (शूरसाता) शूरों के सेवने योग्य संग्राम में (धना) धनों को (भजेमहि) सेवन करें ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को राजनीति के अङ्गों से राज्य को रख कर धनादि को बढ़ाय और संग्रामों को जीत कर सब के लिये सुख की उन्नति करनी चाहिये॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः । त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥

अर्वाङ् । त्रिऽचक्रः । मधुऽवाहनः । रथः । जीरऽअश्वः । अश्विनोः । यातु । सुऽस्तुतः । त्रिवन्धुरः । मघवा । विश्वऽसौभगः । शम् । नः । आ । वक्षत् । द्विऽपदे । चतुःऽपदे॥ ३॥

पदार्थः—(अर्वाङ्) अर्वाङधो देशमञ्चति गच्छति(त्रिचक्रः) त्रीणि चक्राणि यस्मिन् (मधुवाहनः) मधुना जलेन वाहनीयः । मध्विति उदकना० निघं० १ । १२ (रथः) (जीराश्वः) जीरा वेगा अश्वा यस्मिन् (अश्विनोः) विद्वत्क्रियाकुशलयोः सकाशात् प्राप्तः (यातु) प्राप्नोतु (सुष्टुतः) सुष्ठुप्रशंसितः (त्रिवन्धुरः) त्रयो वन्धुरा बन्धा यस्मिन् सः (मघवा) परमपूजितधनवान् (विश्वसौभगः) विश्वे सुभगाः शोभनैश्वर्य्या भोगा येन सः (शम्) सुखम् (नः) अस्माकम् (आ) (वक्षत्) वहेत् (द्विपदे) मनुष्याद्याय (चतुष्पदे) गवाद्याय ॥ ३ ॥

अन्वयः—योऽश्विनोः सुष्टुतो मधुवाहनस्त्रिचक्रो जीराश्वस्त्रिवन्धुरो विश्वसौभगोऽर्वाङ् मघवा रथो नो द्विपदे चतुष्पदे च शमावक्षत्सोऽस्मान्यातु प्राप्नोतु ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरित्थं प्रयतितव्यं येन पदार्थविद्यया प्रशंसितानि यानानि निर्मातुं शक्नुयुः । नैवं विनाऽखिलानि सुखानि भवितुमर्हन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (अश्विनोः) विद्वानों की क्रिया में कुशल सज्जनों की उत्तेजना से (सुष्टुतः) सुन्दर प्रशंसित (मधुवाहनः) जल से वहाने योग्य (त्रिचक्रः) जिस में तीन चक्कर (जीराश्वः) वेगरूप घोड़े और (त्रिवन्धुरः) तीन बन्धन विद्यमान वा (विश्वसौभगः) समस्त सुन्दर ऐश्वर्य्य भोग जिस से होते वह (अर्वाङ्) नीचले देश अर्थात् जल आदि में चलनेवाला (मघवा) प्रशंसित धनयुक्त (रथः) रथ (नः) हमारे (द्विपदे) द्विपाद मनुष्यादि वा (चतुष्पदे) चौपाद गौ आदि प्राणी के लिये (शम्) सुख का (आ, वक्षत्) आवाहन करावे और हम लोगों को (यातु) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये जिस से पदार्थ विद्या से प्रशंसायुक्त यानों को बनाने को समर्थ हों ऐसे करने के विना समस्त सुख होने को योग्य नहीं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् । प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥

आ । नः । ऊर्जम् । वहतम् । अश्विना । युवम् । मधुऽमत्या । नः । कशया । मिमिक्षतम् । प्र । आयुः । तारिष्टम् । निः । रपांसि । मृक्षतम् । सेधतम् । द्वेषः । भवतम् । सचाऽभुवा ॥ ४ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (नः) अस्मभ्यम् (ऊर्जम्) पराक्रमम् (वहतम्) प्रापयतम् (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (युवम्) युवाम् (मधुमत्या) बहुजलवाष्पवेगयुक्तया (नः) अस्माकम् (कशया) गत्या शिक्षया वा (मिमिक्षतम्) प्रापयितुमिच्छतम् (प्र) (आयुः) जीवनम् (तारिष्टम्) पारयतम् (निः) नितराम् (रपांसि) पापानि (मृक्षतम्) शोधयतम् (सेधतम्) दूरीकृतम् (द्वेषः) द्वेषयुक्तानि (भवतम्) (सचाभुवा) सहकारिणौ ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे अश्विना युवं मधुमत्या कशया न ऊर्जमावहतं मिमिक्षतं न आयुः प्रतारिष्टं द्वेषो रपांसि निःसेधतमस्मान् मृक्षतं सचाभुवा भवतम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अध्यापकोपदेशकावीदृशीं शिक्षां कुर्यातां यतो वयं सर्वेषां सखायो भूत्वा पक्षपातजन्यानि पापानि विहाय सिद्धाभीष्टा भवेम ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (युवम्) तुम दोनों (मधुमत्या) बहुत जल वाष्पों के वेगों से युक्त (कशया) गति वा शिक्षा से (नः) हम लोगों के लिये (ऊर्जम्) पराक्रम की (आ, वहतम्) प्राप्ति करो (मिमिक्षतम्) पराक्रम की प्राप्ति कराने की इच्छा (नः) हमारी (आयुः) उमर को (प्र, तारिष्टम्) अच्छे प्रकार पार पंहुचाओ (द्वेषः) वैरभावयुक्त (रपांसि) पापों को (निः, सेधतम्) दूर करो हम लोगों को (मृक्षतम्) शुद्ध करो और हमारे (सचाभुवा) सहकारी (भवतम्) होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक लोग ऐसी शिक्षा करें कि जिस से हम लोग सब के मित्र हो कर पक्षपात से उत्पन्न होने वाले पापों को छोड़ अभीष्ट सिद्धि पाने वाले हों ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः । युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतींरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥

युवम् । ह । गर्भम् । जगतीषु । धत्थः । युवम् । विश्वेषु । भुवनेषु । अन्तः । युवम् । अग्निम् । च । वृषणौ । अपः । च । वनस्पतीन् । अश्विनौ । ऐरयेथाम् ॥ ५ ॥

पदार्थः–(युवम्) (ह) किल (गर्भम्) गर्भमिव विद्याबोधम् (जगतीषु) विविधासु पृथिव्यादिषु सृष्टिषु (धत्थः) धरथः (युवम्) युवाम् (विश्वेषु) सर्वेषु (भुवनेषु) निवासाऽधिकरणेषु (अन्तः) मध्ये (युवम्) (अग्निम्) (च) (वृषणौ) वर्षयितारौ (अपः) (च) (वनस्पतीन्) (अश्विनौ) सूर्य्याचन्द्रमसाविवाध्यापकोपदेशकौ (ऐरयेथाम्) चालयेथाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः–हे वृषणावश्विनौ युवं जगतीषु गर्भं धत्थो युवं ह विश्वेषु भुवनेष्वन्तरग्निं चैरयेथाम् । युवमपो वनस्पतींश्चैरयेथाम् ॥५॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालं०—मनुष्या यथेह सूर्याचन्द्रमसौ विराजमानौ पृथिव्यां वृष्ट्या गर्भं धारयित्वा सर्वान् पदार्थान् जनयतस्तथा विद्यागर्भं धारयित्वा सर्वाणि सुखानि जनयेयुः ॥५॥

पदार्थः—हे (वृषणा) जल वर्षा कराने वाले (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक (युवम्) तुम दोनों (जगतीषु) विविध पृथिवी आदि सृष्टियों में (गर्भम्) गर्भ के समान विद्या के बोध को (धत्थः) धरते हो (युवं, ह) तुम्हीं (विश्वेषु) समस्त (भुवनेषु) लोक लोकान्तरों के (अन्तः) बीच (अग्निम्) अग्नि को (च) भी (ऐरयेथाम्) चलाओ तथा (युवम्) तुम (अपः) जलों और (वनस्पतीन्) वनस्पति आदि वृक्षों को (च) डुलाओ ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालं०—मनुष्य जैसे यहां सूर्य और चन्द्रमा विराजमान हुए पृथिवी में वर्षा से गर्भ धारण करा कर समस्त पदार्थों को उत्पन्न कराते हैं वैसे विद्यारूप गर्भ को धारण करा के समस्त सुखों को उत्पन्न करावें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या॒ राथ्येभिः । अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥ २७ । २ ॥

युवम् । ह । स्थः । भिषजा । भेषजेभिः । अथो इति । ह । स्थः । रथ्या । राथ्येभिरिति । अथो इति । ह । क्षत्रम् । अधि । धत्थः । उग्रा । यः । वाम् । हविष्मान् । मनसा । ददाश ॥ ६ ॥ २७ ॥ २ ॥

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (ह) प्रसिद्धम् (स्थः) (भिषजा) रोगनिवारकौ (भेषजेभिः) रोगापहन्तृभिर्वैद्यैः सह (अथो) अनन्तरम् (ह) खलु (स्थः) भवथः (रथ्या) रथे साधू (राथ्येभिः) रथवाहकैः । अत्रान्येषामपि दृश्यत इत्याद्यचो दीर्घः (अथो) (ह) (क्षत्रम्) राष्ट्रम् (अधि) (धत्थः) (उग्रा) उग्रौ तीव्रस्वभावौ (यः) (वाम्) युष्मभ्यम् (हविष्मान्) बहुदानयुक्तः (मनसा) विज्ञानेन (ददाश) दाशति ॥ ६ ॥

अन्वयः हे अश्विनौ युवं ह भेषजेभिर्भिषजा स्थः । अथो ह राथ्येभी रथ्या स्थः । अथो हे उग्रा यो हविष्मान् वां मनसा ददाश तस्मै ह क्षत्रमधि धत्थः ॥ ६ ॥

भावार्थः—यदा मनुष्या विदुषां वैद्यानां सङ्गं कुर्वन्ति तदा वैद्यकविद्यामाप्नुवन्ति यदा शूरा दातारो जायन्ते तदा राज्यं धृत्वा प्रशंसिता भूत्वा सततं सुखिनो भवन्ति ॥ ६ ॥

अस्मिन् सूक्तेऽश्विगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्बोध्या ॥

इति सप्तपञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तं सप्तविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

अस्मिन्नध्याये सोमादिपदार्थप्रतिपादनादेतद्दशमाध्यायोक्तार्थानां नवमाध्यायोक्तार्थैः सह सङ्गतिर्वेदितव्या ॥

पदार्थः—हे विद्यादि सद्गुणों में व्याप्त सज्जनो (युवं,ह) तुम्हीं (भेषजेभिः) रोग दूर करने वाले वैद्यों के साथ (भिषजा) रोग दूर करने वाले (स्थः) हो (अथो) इस के अनन्तर (ह) निश्चय से (राथ्येभिः) रथ पहुंचाने वाले अश्वादि कों के साथ (रथ्या) रथ में प्रवीण रथ वाले (स्थः) हो (अथो) इस के अनन्तर हे (उग्रा) तीव्र स्वभाव वाले सज्जनो (यः) जो (हविष्मान्) बहुदानयुक्त जन (वाम्) तुम दोनों के लिये (मनसा) विज्ञान से (ददाश) देता है अर्थात् पदार्थों का अर्पण करता है (ह) उसी के लिये (क्षत्रम्) राज्य को (अधि, धत्थः) अधिकता से धारण करते हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्वान् वैद्यों का सङ्ग करते हैं तब वैद्यक विद्या को प्राप्त होते हैं जब शूर दाता होते हैं तब राज्य धारण कर और प्रशंसित हो कर निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अश्वियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ सत्तावन का सूक्त और सत्ताईश का वर्ग पूरा हुआ ॥

इस अध्याय में सोम आदि पदार्थों के प्रतिपादन से इस दशवें अध्याय के अर्थों की नवम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

इति श्रीपरमहंस परिब्राजकाचार्याणां श्रीमत्परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिब्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तिमगमत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीयाष्टके तृतीयाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

वसू इति षडृचस्याष्टपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य
दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते १ । ४ । ५ निचृत्
त्रिष्टुप् २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ३ भुरिक्
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ निचृ
दनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ शिक्षकशिष्यकर्माण्याह ॥

अब द्वितीयाष्टक के तृतीय अध्याय का आरम्भ है उस में एकसौ अट्ठावनवें सूक्त के प्रथममन्त्र में शिक्षा करने वाले और शिष्य के कर्मों का वर्णन करते हैं ॥

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ । दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥

वसू इति । रुद्रा । पुरुमन्तू इति पुरुऽमन्तू । वृधन्ता । दशस्यतम् । नः । वृषणौ । अभिष्टौ । दस्रा । ह । यत् । रेक्णः । औचथ्यः । वाम् । प्र । यत् । सस्राथे इति । अकवाभिः । ऊती ॥ १ ॥

पदार्थः—(वसू) वासयितारौ (रुद्रा) चतुश्चत्वारिंशद्वर्षप्रमितब्रह्मचर्य्येणाधीतविद्यौ (पुरुमन्तू) पुरुभिर्बहुभिर्मन्तव्यौ (वृधन्ता) वर्द्धमानौ (दशस्यतम्) दत्तम् (नः) अस्मभ्यम् (वृषणौ) वीर्यवन्तौ (अभिष्टौ) इष्टासिद्धौ (दस्रा) दुःखोपक्षयितारौ (ह) (यत्) यः (रेक्णः) धनम् । रेक्ण इति धनना० निघं० २ । १० (औचथ्यः) प्रशंसितेषु भवः (वाम्) युवयोः (प्र) (यत्) यौ (सस्राथे) प्रापयतः (अकवाभिः) प्रशंसिताभिः (ऊती) रक्षाभिः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे सभाशालेशौ ययो वामौचथ्यो रेक्णोऽस्ति तं यद्यौ युवामकवाभिरूती नोऽस्मभ्यं सस्राथे तौ ह वृधन्ता पुरुमन्तू दस्रा वृषणौ वसू रुद्राऽभिष्टौ नः सुखं प्रदशस्यतम् ॥ १ ॥

भावार्थः—ये सूर्य्यवायुवत् सर्वानुपकुर्वन्ति ते श्रीमन्तो जायन्ते॥ १॥

पदार्थः—हे सभा और शालाधीशो (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों का (औचथ्यः) उचित अर्थात् प्रशंसितों में हुआ (रेक्णः) धन है उस धन को (यत्) जो तुम दोनों (अकवाभिः) प्रशंसित (ऊती) रक्षाओं से हम लोगों के लिये (सस्राथे) प्राप्त कराते हो वे (ह) ही (वृधन्ता) बढ़ते हुए (पुरुमन्तू) बहुतों से मानने योग्य (दस्रा) दुःख के नष्ट करने हारे (वृषणौ) बलवान् (वसू) निवास दिलाने वाले (रुद्रा) चवालीश वर्ष लों ब्रह्मचर्य से धर्मपूर्वक विद्या पढ़े हुए सज्जनो (अभिष्टौ) इष्ट सिद्धि के निमित्त (नः) हमारे लिये सुख (प्र, दशस्यतम्) उत्तमता से देओ ॥ १ ॥

भावार्थः—जो सूर्य्य और पवन के समान सब का उपकार करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः । जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥

कः । वाम् । दाशत् । सुऽमतये । चित् । अस्यै । वसू इति । यत् । धेथे इति । नमसा । पदे । गोः । जिगृतम् । अस्मे इति । रेवतीः । पुरम्ऽधीः । कामप्रेणऽइव । मनसा । चरन्ता ॥ २ ॥

पदार्थः—(कः) (वाम्) युवाभ्याम् (दाशत्) दद्यात् (सुमतये) सुष्ठुप्रज्ञायै (चित्) अपि (अस्यै) प्रत्यक्षायै (वसू) सुखेषु वासयितारौ (यत्) यौ (धेथे) धरथः (नमसा) अन्नाद्येन (पदे) प्राप्तव्ये (गोः) पृथिव्याः (जिगृतम्) जागृतौ भवतम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (रेवतीः) प्रशस्तश्रीयुक्ता (पुरन्धीः) पुरन्दधाति यास्ताः (कामप्रेणेव) यत्कामं प्राति पिपर्त्ति तेनेव (मनसा) विज्ञानवताऽन्तःकरणेन (चरन्ता) प्राप्नुवन्तौ गच्छन्तौ वा ॥ २ ॥

अन्वयः—ययो वसू युवामस्यै सुमतये नमसा गोः पदे पुरन्धी-रेवतीर्धेथे कामप्रेणेव मनसा चरन्ताऽस्मे जिगृतं ताभ्यां वामिमां मतिं चित्को दाशत् ॥ २ ॥

भावार्थः—ये पूर्णविद्याकामा मनुष्यान् सुधियः कर्त्तुं प्रयतन्ते ते पृथिव्यां पूजिता भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (वसू) सुखों में निवास कराने हारे सभाशालाधीशो तुम (अस्यै) इस प्रत्यक्ष (सुमतये) सुन्दर बुद्धि के लिये (नमसा) अन्न आदि से (गोः) पृथिवी के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान में (पुरन्धीः) पुरग्राम को धारण करती हुई (रेवतीः) प्रशंसित धनयुक्त नगरियों को (धेथे) धारण करते हो और (कामप्रेणेव) कामना पूरण करने वाले (मनसा) विज्ञानवान् अन्तःकरण से (चरन्ता) प्राप्त होते हुए तुम दोनों (अस्मे) हम लोगों के लिये (जिगृतम्) जागृत हो उन (वाम्) आप के लिये इस मति को (चित्) भी (कः) कौन (दाशत्) देवे ॥ २ ॥

भावार्थः—जो पूर्णविद्या और कामना वाले पुरुष मनुष्यों को सुन्दर बुद्धि वाले करने को प्रयत्न करते हैं वे पृथिवी में सत्कारयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पुज्रः । उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥

युक्तः । ह । यत् । वाम् । तौग्र्याय । पेरुः । वि । मध्ये । अर्णसः । धायि । पज्रः । उप । वाम् । अवः । शरणम् । गमेयम् । शूरः । न । अज्म । पतयत्ऽभिः । एवैः ॥ ३ ॥

रसीद मूल्य वेदभाष्य

श्रीयुत गुरुदत्तामल जी पटवारी मौजे कालूखां जि॰ पिशावर	* ४॥/)
„ शिवगोविन्द जी वाजपेयी टेढ़ा	५॥-)॥
„ पं॰ लक्ष्मीशङ्कर माहेश्वरी गाडर वाला	५।/)
„ लक्ष्मीनारायण कनोज	१।/॰
„ पं॰ अम्बिकादत्त जी भावर समाज	१६)
„ ठाकुर केहरीसिंह जी टिकायत एटा	५८।/)
„ पं॰ हृदयनारायण जी तहसीलदार दिपालपुर	५)
„ बा॰ जयजयराम जी सहारनपुर	८)
„ लाला सोनीलाल जी बेलनगंज आगरा मारफत जमुनादास चौवे	८)
	११२॥/)॥

* यह ४॥/) ता॰ १४। ७। ८६ के आये हैं पर पता न लगने के कारण अबतक न छपे थे।

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक सा लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान नववें वर्ष के कि जो ७८। ७९ अङ्क से प्रारंभ हो कर ८८। ८९ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के आठ वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है :—

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" बिना जिल्द की १।)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की १॥)

[ख] एक वेद के ७७ अङ्क तक २५॥=) और दोनों वेदों के ५१।=)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देंदेंगे तो उन को बिना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलेंगे एक अङ्क ।=) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्रों में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पत्ते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर

प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥≡)

एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इसग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।/) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥/) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तु: समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रिताङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय मैनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (१०४, १०५) अंक (८८, ८९)

अयं ग्रंथ: प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रित: ॥

संवत् १९४३ फाल्गुन शुक्ल पक्ष

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१]यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान नववें वर्ष के कि जो ७८। ७९ अङ्क से प्रारंभ हो कर ८८। ८९ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के आठ वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है :-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द को ५।≈)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द को ६)

[ख] एक वेद के ७७ अङ्क तक २५॥≶) और दोनों वेदों के ५१।≶)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।≶) दो अङ्क ॥≶) तीन अङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६]दाम जिस कोजिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने के अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायं गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पत्ते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य„संबन्धी रुपया, औरपत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

पदार्थः—(युक्तः) (ह) खलु (यत्) यः (वाम्) युवयोः (तौग्र्याय) बलेषु साधवे (पेरुः) पाता (वि) (मध्ये) (अर्णसः) उदकस्य (धायि) ध्रियते (पज्रः) बलिष्ठः (उप) (वाम्) युवयोः (अवः) रक्षणादिकम् (शरणम्) आश्रयम् (गमेयम्) प्राप्नुयाम् (शूरः) विक्रान्तः (न) इव (अज्म) बलम् (पतयद्भिः) इतस्ततो धावयद्भिः (एवैः) प्रापकैः ॥३॥

अन्वयः—हे सभाशालेशौ वां यद्यस्तौग्र्याय युक्तः पेरुः पज्रोऽहमर्णसो मध्ये वि धायि । अज्म शूरो न पतयद्भिरेवैः सह वामवः शरणमुपगमेयं तं मां ह युवां वर्द्धयतम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये जिज्ञासवः साधनोपसाधनैः सहाध्यापकानामाप्तानां विदुषामाश्रयमुपव्रजेयुस्ते विद्वांसो जायन्ते ये च संप्रीत्या विद्या सुशिक्षा वर्द्धयन्ति तेऽत्र पूज्या भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे सभाशालाधीशो (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (तौग्र्याय) बलों में उत्तम बल उस के लिये (युक्तः) युक्त (पेरुः) सभों की पालना करने वाला (पज्रः) बलवान् मैं (अर्णसः) जल के (मध्ये) बीच (वि, धायि) विधान किया जाता हूं अर्थात् जल सम्बन्धी काम के लिये युक्त किया जाता हूं तथा (अज्म) बल को (शूरः) शूर जैसे (न) वैसे (पतयद्भिः) इधर उधर दौड़ाते हुए (एवैः) पदार्थों की प्राप्ति कराने वालों के साथ (वाम्) तुम्हारे (अवः) रक्षा आदि काम को और (शरणम्) आश्रय को (उप, गमेयम्) निकट प्राप्त होऊं उस मुझ को (ह) ही तुम वृद्धि देओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो जिज्ञासु पुरुष साधन और उपसाधनों से अध्यापक आप्त विद्वानों के आश्रय को प्राप्त हों वे विद्वान् होते हैं और जो अच्छे प्रकार प्रीति के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ाते हैं वे इस संसार में पूज्य होते हैं ॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उप॑स्तुतिरौच॒थ्यमु॑रुष्ये॒न्मा मामि॒मे प॑त॒त्रिणी॒ वि दु॑ग्धाम् । मा मामेधो॒ दश॑तयश्चि॒तो धा॒क् प्र यद्वां॑ ब॒द्धस्त्मनि॒ खाद॑ति॒ क्षाम् ॥ ४ ॥

उप॑ऽस्तुतिः । औ॒च॒थ्यम् । उ॒रु॒ष्ये॒त् । मा । माम् । इ॒मे इति॑ । प॒त॒त्रिणी॒ इति॑ । वि । दु॒ग्धाम् । मा । माम् । एधः॑ । दश॑ऽतयः । चि॒तः । धा॒क् । प्र । यत् । वा॒म् । ब॒द्धः । त्मनि॑ । खाद॑ति । क्षाम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(उपस्तुतिः) उपगता चासौ स्तुतिः (औचथ्यम्) उचितेषूचितेषु कर्मसु साधुम् (उरुष्येत्) सेवेत (मा) निषेधे (माम्) (इमे) विद्याप्रशंसे (पतत्रिणी) पतितुं विनाशयितुं कुशिले (वि) (दुग्धाम्) प्रपिपूर्त्तम् (मा) (माम्) (एधः) इन्धनम् (दशतयः) दशगुणितः (चितः) संचितः (धाक्) दहेत् । अत्र मन्त्रे घसेत्यादिना लेर्लुग् बहुलं छन्दसीत्यडभावः (प्र) (यत्) यः (वाम्) युवयोः (बद्धः) नियुक्तः (त्मनि) आत्मनि (खादति) खादेत् (क्षाम्) भूमिम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे सभाशालेशौ वां यद्यो दशतय एधो बद्धश्चितोऽग्निः क्षां प्रधाक् तथा त्मनि मां मा खादति । इमे पतत्रिणी औचथ्यं मां मा विदुग्धामुपस्तुतिश्चोरुष्येत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालं०—यथा इन्धनैर्निर्वातस्थाने प्रवृद्धोऽग्निः पृथिवीं काष्ठादीनि वा दहति तथा मां शोकाग्निर्मा दहतु । अज्ञानकुशीले मा प्राप्नुतां किन्तु शान्तिर्विद्या च सततं वर्द्धताम् ॥४॥

पदार्थः—हे सभा शालाधीशो (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (दशतयः) दशगुणा (एधः) ईन्धन (बद्धः) निरन्तर युक्त किया और (चितः) संचित किया हुआ अग्नि (क्षाम्) भूमि को (प्र, धाक्) जलावे वैसे (त्मनि) अपने में (माम्) मुझ को (मा) मत (खादति) खावे (इमे) ये (पतत्रिणी) नष्ट कराने के लिये कुशिक्षा (औचथ्यम्) उचित २ कामों में उत्तम (माम्) मुझे (मा) मत (वि, दुग्धाम्) अपूर्ण करें मेरी परिपूर्णता को मत नष्ट करें और (उपस्तुतिः) समीप प्राप्त हुई स्तुति भी (उरुष्येत्) सेवें ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालं—जैसे इन्धनों से निर्वात स्थान में अच्छे प्रकार बढ़ा हुआ अग्नि पृथिवी और काष्ठ आदि पदार्थों को जलाता है वैसे मुझे शोकरूप अग्नि मत जलावे और अज्ञान वा कुशील मत प्राप्त हों किन्तु शान्ति और विद्या निरन्तर बढ़े ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसंमुब्धमवाधुः । शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥

न । मा । गरन् । नद्यः । मातृऽतमाः । दासाः । यत् । ईम् । सुऽसंमुब्धम् । अवऽअधुः । शिरः । यत् । अस्य । त्रैतनः । विऽतक्षत् । स्वयम् । दासः । उरः । अंसौ । अपि । ग्धेति ग्ध ॥ ५ ॥

पदार्थः—(न) (मा) माम् (गरन्) निगलेयुः (नद्यः) सरितः (मातृतमाः) अतिशयेन मातर इव वर्त्तमानाः (दासाः) सुखप्रदाः (यत्) यम् (ईम्) सर्वतः (सुसमुब्धम्) सुष्ठुसम्यग्ऋजुम् (अवाधुः) अधो धरन्तु (शिरः) (यत्) यः (अस्य) (त्रैतनः) यस्त्रीणि शरीरात्ममनोजानि सुखानि तनोति सएव (वितक्षत्) तक्षतु (स्वयम्) (दासः) सेवकः (उरः) वक्षस्थलम् (अंसौ) भुजमूले (अपि) (गध) हन्तु। हन्तेर्लुङि छान्दसमेतत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो दासाः सुसमुब्धं यन्मामीमवाधुस्तं मा मातृतमा नद्यो न गरन्। यद्यस्त्रैतनो दासोऽस्य मम शिरो वितक्षत् स स्वयं उरो अंसावपि गध ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरेवं प्रयतितव्यं यतो नदीसमुद्रा न निमज्जयेयुः। दासः शूद्रादिः सेवायां नियुक्तोप्यतिसरलस्वभावं पुरुषमालस्येन पीडयति ततस्तं सुशिक्षेतानुचितत्वे ताडयेच्च। स्वशरीराङ्गानि सदा पोषणीयानि च ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (दासाः) सुख देने वाले दास जन (सुसमुब्धम्) अतिसूधे स्वभाव वाले (यत्) जिस मुझे (ईम्) सब ओर से (अवाधुः) पीड़ित करें उस (मा) मुझे (मातृतमाः) माताओं के समान मान करने कराने वाली (नद्यः) नदियां (न) न (गरन्) निगलें न गलावें (यत्) जो (त्रैतनः) तीन अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुखों का विस्तार करने वाला (दासः) सेवक (अस्य) इस मेरे (शिरः) शिर को (वितक्षत्) विविध प्रकार से पीड़ा देवे वह (स्वयम्) आप अपने (उरः) वक्षस्थल और (अंसौ) स्कन्धों को (अपि, गध) काटे ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न करें जिस से नदी और समुद्र आदि न डुबा मारें । शूद्र आदि दास जन सेवा करने पर नियत हुआ भी आलस्य वश अतिसूधे स्वभाव वाले स्वामी को पीड़ा दिया करता अर्थात् उन का काम मन से नहीं करता इस से उस को अच्छी शिक्षा देवे और अनुचित करने में ताड़ना भी दे तथा अपने २ शरीर के अङ्गों की सदा पुष्टि करें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे । अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

दीर्घऽतमाः । मामतेयः । जुजुर्वान् । दशमे । युगे । अपाम् । अर्थम् । यतीनाम् । ब्रह्मा । भवति । सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

पदार्थः—(दीर्घतमाः) दीर्घं तमो यस्मात् सः (मामतेयः) ममतायां कुशलः (जुजुर्वान्) रोगापन्नः (दशमे) दशानां पूर्णे (युगे) वर्षे (अपाम्) विद्याविज्ञानयोगव्यापिनाम् (अर्थम्) प्रयोजनम् (यतीनाम्) संन्यासिनाम् (ब्रह्मा) सकलवेदवित् (भवति) (सारथिः) रथप्राजकः ॥ ६ ॥

अन्वयः—यो दीर्घतमा मामतेयो दशमे युगे जुजुर्वान् जायते । यश्च सारथिरिवाऽपां यतीनामर्थमाप्नोति स ब्रह्मा भवति ॥ ६ ॥

भावार्थः—येऽत्रात्यन्ताविद्यायुक्ता लोभातुरास्सन्ति ते सद्यो रुग्णा जायन्ते । ये पक्षपातरहितानां संन्यासिनां हर्षशोकनिन्दास्तुतिरहितं विज्ञानाऽऽनन्दमाप्नुवन्ति ते स्वयं दुःखपारगा भूत्वाऽन्यानपि दुःखसागरात् पारं नयन्ति ॥ ६ ॥

अस्मिन् सूक्ते शिष्यशासककर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्विज्ञेया ॥

इति अष्टपञ्चाशदुत्तरं शततमं सूक्तं प्रथमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—जो (दीर्घतमाः) जिस से दीर्घ अन्धकार प्रगट होता वह (मामतेयः) ममता में कुशल जन (दशमे) दशमे (युगे) वर्ष में (जुजुर्वान्) रोगी हो जाता है जो (सारथिः) रथ हांकने वाले जन के समान (अपाम्) विद्या विज्ञान और योगशास्त्र में व्याप्त (यतीनाम्) संन्यासियों के (अर्थम्) प्रयोजन को प्राप्त होता वह (ब्रह्मा) सकल वेद विद्या का जानने वाला (भवति) होता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो इस संसार में अत्यन्त अविद्या अज्ञानयुक्त लोभातुर हैं वे शीघ्र रोगी होते और जो पक्षपातरहित संन्यासियों के सकाश से हर्ष शोक तथा निन्दा स्तुति रहित, विज्ञान और आनन्द को प्राप्त होते हैं वे आप दुःख के पारगामी हो कर औरों को भी उस के पार करते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में शिष्य और शिक्षा देने वाले के काम का वर्णन होनेसे इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एक सौ अट्ठावन का सूक्त और प्रथम वर्ग समाप्त हुआ ॥

प्र द्यावेत्यस्य पञ्चर्चस्य एकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य
दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ विराट्
जगती २ । ३ । ५ निचृज्जगती । ४
जगती च छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ विद्युद्विषयमाह ॥

अब एक सौ उनसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में बिजुली के वि० ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा । देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥

प्र । द्यावा । यज्ञैः । पृथिवी इति । ऋतऽवृधा । मही इति । स्तुषे । विदथेषु । प्रऽचेतसा । देवेभिः । ये इति । देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे । सुऽदंससा । इत्था । धिया । वार्याणि । प्रऽभूषतः ॥ १ ॥

पदार्थः-(प्र) (द्यावा) द्यौः (यज्ञैः) सङ्गतैर्व्यवहारैः (पृथिवी) भूमिः (ऋतावृधा) कारणेन वर्द्धिते (मही) महत्यौ (स्तुषे) प्रशंससि (विदथेषु) वेदितव्येषु पदार्थेषु (प्रचेतसा) प्रकृष्टतया प्रज्ञाननिमित्ते (देवेभिः) दिव्यैरबादिभिः पदार्थैः सह (ये) (देवपुत्रे) देवैर्दिव्यैः प्रकृत्यंशैः पुत्रइव प्रजाते (सुदंससा) प्रशंसितकर्मणी (इत्था) अनेन प्रकारेण (धिया) कर्मणा (वार्याणि) वरितुमर्हाणि वस्तूनि (प्रभूषतः). प्रकृष्टतयाऽलंकृतः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ये ऋतावृधा प्रचेतसा देवपुत्रे सुदंससा मही द्यावापृथिवी यज्ञैर्विदथेषु देवेभिर्धिया च वार्य्याणि प्रभूषतः । त्वं च प्रस्तुष इत्था ते वयमपि नित्यं प्रशंसेम ॥ १ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः प्रयत्नेन क्षितिसूर्ययोर्गुणकर्मस्वभावान् यथावद्विजानीयुस्तेऽतुलेन सुखेनाऽलंकृताः स्युः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (ये) जो (ऋतावृधा) कारण से बढ़े हुए (प्रचेतसा) उत्तमता से प्रबल ज्ञान कराने हारे (देवपुत्रे) दिव्यप्रकृति के अंशों से पुत्रों के समान उत्पन्न हुए (सुदंससा) प्रशंसित कर्म वाले (मही) बड़े (द्यावापृथिवी) सूर्यमण्डल और भूमिमण्डल (यज्ञैः) मिले हुए व्यवहारों से (विदथेषु) जानने योग्य पदार्थों में (देवेभिः) दिव्य जलादि पदार्थों और (धिया) कर्म के साथ (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (प्रभूषतः) सुभूषित करते हैं और आप उन की (प्र, स्तुषे) प्रशंसा करते हैं (इत्था) इस प्रकार उन की हम लोग भी प्रशंसा करें ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम यत्न के साथ पृथिवी और सूर्यमण्डल के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् जानें वे अतुल सुख से भूषित हों ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः । सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥

उत । मन्ये । पितुः । अद्रुहः । मनः । मातुः । महि । स्वऽतवः । तत् । हवीमऽभिः । सुऽरेतसा । पितरा । भूम । चक्रतुः । उरु । प्रऽजायाः । अमृतम् । वरीमऽभिः ॥ २ ॥

पदार्थः-(उत) (मन्ये) विजानीयाम् (पितुः) जनकस्य (अद्रुहः) द्रोहरहितस्य (मनः) मननम् (मातुः) जनन्याः (महि) महत् (स्वतवः) स्वं स्वकीयं तवो बलं यस्मिँस्तत् (तत्) (हवीमभिः) स्तोतुमर्हैर्गुणैः (सुरेतसा) शोभनवीर्य्येण (पितरा) मातापितृवद्वर्त्तमाने (भूम) (चक्रतुः) कुरुतः (उरु) बहु (प्रजायाः) मनुष्यादिसृष्टये । अत्रचतुर्थ्यर्थेषष्ठी (अमृतम्) अमृतमिव वर्त्तमानम् (वरीमभिः) स्वीकर्त्तुमर्हैः ॥ २ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या अहमेकाकी हवीमभिर्यदद्रुहो मातुरुत पितुः स्वतवो महि मन उरु मन्ये तत् सुरेतसा पितरेव वर्त्तमानौ भूमिसूर्य्यौ वरीमभिः प्रजाया अमृतं भूम चक्रतुः ॥ २ ॥

भावार्थः-यथा मातापितरावपत्यानि संरक्ष्य वर्द्धयतस्तथा भूमिसूर्य्यौ प्रजाभ्यः सुखमुन्नयतः ॥ २ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो मैं अकेला (हवीमभिः) स्तुति करने योग्य गुणों के साथ जिस (अद्रुहः) द्रोहरहित (मातुः) माता (उत) और (पितुः) पिता के (स्वतवः) अपने बल वाले (महि) बड़े (मनः) मन को (उरु) बहुत (मन्ये) जानूं (तत्) उस को (सुरेतसा) सुन्दर पराक्रम वाले (पितरा) माता पिता के समान वर्त्तमान भूमि और सूर्य (वरीमभिः) स्वीकार करने योग्य गुणों से (प्रजायाः) मनुष्य आदि सृष्टि के लिये (अमृतम्) अमृत के समान वर्त्तमान (भूम) बड़ा उत्साहित (चक्रतुः) करते हैं अर्थात् शिल्पव्यवहारों से प्रोत्साहित करते मलीन नहीं रहने देते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे माता पिता लड़कों को अच्छे प्रकार पालन कर उन को बढ़ाते हैं वैसे भूमि और सूर्य्य प्रजाजनों के लिये सुख की उन्नति करते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ते सूनवः स्वपसः सुदंसो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये । स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्म्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥

ते । सूनवः । सुऽअपसः । सुऽदंससः । मही इति । जज्ञुः । मातरा । पूर्वऽचित्तये । स्थातुः । च । सत्यम् । जगतः । च । धर्म्मणि । पुत्रस्य । पाथः । पदम् । अद्वयाविनः ॥३॥

पदार्थः—(ते) (सूनवः) (स्वपसः) सुष्ठु अपांसि कर्म्माणि येभ्यस्ते (सुदंससः) शोभनानि दंसांसि कर्माणि व्यवहारेषु येषां ते (मही) महत्यौ (जज्ञुः) जायन्ते (मातरा) मान्यकारिण्यौ (पूर्वचित्तये) पूर्वा चासौ चित्तिश्चयनं च तस्यै (स्थातुः) अचरस्य (च) (सत्यम्) नाशरहितम् (जगतः) गच्छतः (च) (धर्म्मणि) साधर्म्ये (पुत्रस्य) सन्तानस्य (पाथः) रक्षथः (पदम्) प्राप्तव्यम् (अद्वयाविनः) न विद्यते द्वितीयो यस्मिँस्तस्य ॥३॥

अन्वयः—ये स्वपसः सुदंससः पूर्वचित्तये जज्ञुस्ते मही मातरा जानीयुः । हे पितरौ यौ युवां स्थातुश्च जगतश्च धर्मण्यद्वयाविनः पुत्रस्य सत्यं पदं पाथस्तौ सूनवः सततं सेवेरन् ॥ ३ ॥

भावार्थः—किं भूमिसूर्यौ सर्वेषां पालननिमित्ते न स्तः ? ये पितरश्चराचरस्य जगतो विज्ञानं पुत्रेभ्यो ग्राहयन्ति ते कृतकृत्या कुतो न स्युः ? ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (स्वपसः) सुन्दर कर्म और (सुदंससः) शोभन कर्मयुक्त व्यवहार वाले जन (पूर्वचित्तये) पूर्व पहिली जो चित्ति अर्थात् किन्हीं पदार्थों का इकट्ठा करना है उस के लिये (जज्ञुः) प्रसिद्ध होते हैं (ते) वे (मही) बड़ी (मातरा) मान करने वाली माताओं को जानें । हे माता पिताओ जो तुम (स्थातुः) स्थावर धर्म वाले (च) और (जगतः) जङ्गम जगत् के (च) भी (धर्मणि) साधर्म्य में (अद्वयाविनः) इकिले (पुत्रस्य) पुत्र के (सत्यम्) सत्य (पदम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ की (पाथः) रक्षा करते हो उन की (सूनवः) पुत्र जन निरन्तर सेवा करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—क्या भूमि और सूर्य सब के पालन के निमित्त नहीं हैं ? जो पिता माता चराचर जगत् का विज्ञान पुत्रों के लिये ग्रहण कराते हैं वे कृतकृत्य क्यों न हों ? ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा । नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥

ते । मायिनः । ममिरे सुऽप्रचेतसः । जामी इति । सयोनी इति सऽयोनी । मिथुना । सम्ऽओकसा । नव्यम्ऽनव्यम् । तन्तुम् । आ । तन्वते । दिवि । समुद्रे । अन्तरिति । कवयः । सुऽदीतयः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(ते) (मायिनः) प्रशंसिता मायाः प्रज्ञा विद्यन्ते येषान्ते (ममिरे) निर्मिमते (सुप्रचेतसः) शोभनं प्रगतं चेतो विज्ञानं येषां ते (जामी) सुखभोक्तारौ (सयोनी) समाना योनिर्विद्या निमित्तं वा ययोस्तौ (मिथुना) द्वौ (समोकसा) समीचीनमोको

निवसनं ययोस्तौ (नव्यंनव्यम्) नवीनंनवीनम् (तन्तुम्) विस्तृतं वस्तु विज्ञानं वा (आ, तन्वते) (दिवि) विद्युति सूर्ये वा (समुद्रे) अन्तरिक्षे सागरे वा (अन्तः) मध्ये (कवयः) विद्वांसः (सुदीतयः) शोभना दीतिर्विद्यादीप्तिर्येषां ते । अत्र छान्दसो वर्णलोपोवेति प्लोपः ॥ ४ ॥

अन्वयः-ये सुप्रचेतसो मायिनः सुदीतयः कवयः समोकसा मिथुना सयोनी जामी प्राप्य विदित्वा वा दिवि समुद्रेऽन्तर्नव्यंनव्यं तन्तुं ममिरे ते सर्वाणि विद्यासुखान्यातन्वते ॥ ४ ॥

भावार्थः-ये मनुष्या आप्तावध्यापकोपदेशकावुपेत्य विद्याः प्राप्य भूमिविद्युतौ वा विदित्वा सर्वाणि विद्याकृत्यानि हस्तामलकवत्साक्षात्कृत्यान्यानुपदिशन्ति ते जगद्भूषका भवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (सुप्रचेतसः) सुन्दर प्रसन्नचित्त (मायिनः) प्रशंसित बुद्धि वा (सुदीतयः) सुन्दर विद्या के प्रकाश वाले (कवयः) विद्वान् जन (समोकसा) समीचीन जिन का निवास (मिथुना) ऐसे दो (सयोनी) समान विद्या वा निमित्त (जामी) सुख भोगने वालों को प्राप्त हो वा जान कर (दिवि) विजुली और सूर्य के तथा (समुद्रे) अन्तरिक्ष वा समुद्र के (अन्तः) बीच (नव्यंनव्यम्) नवीन नवीन (तन्तुम्) विस्तृत वस्तु विज्ञान को (ममिरे) उत्पन्न करते हैं (ते) वे सब विद्या और सुखों का (आ,तन्वते) अच्छे प्रकार विस्तार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य आप्त अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त हो विद्याओं को प्राप्त हो वा भूमि और विजुली को जान समस्त विद्या के कामों को हाथ में आमले के समान साक्षात्कर औरों को उपदेश देते हैं वे संसार को शोभित करने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे । अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥ २ ॥

तत् । राधः । अद्य । सवितुः । वरेण्यम् । वयम् । देवस्य । प्रऽसवे । मनामहे । अस्मभ्यम् । द्यावापृथिवी इति । सुऽचेतुना । रयिम् । धत्तम् । वसुऽमन्तम् । शतऽग्विनम् ॥ ५ ॥ २ ॥

पदार्थः—(तत्) (राधः) द्रव्यम् (अद्य) इदानीम् (सवितुः) जगदुत्पादकस्य (वरेण्यम्) वर्त्तुमर्हम् (वयम्) (देवस्य) द्योतकस्य (प्रसवे) प्रसूतेऽस्मिञ्जगति (मनामहे) विजानीमः (अस्मभ्यम्) (द्यावापृथिवी) भूमिसूर्यौ (सुचेतुना) सुष्ठु संज्ञानेन (रयिम्) श्रियम् (धत्तम्) (वसुमन्तम्) बहुधनयुक्तम् (शतग्विनम्) शतानि गावो विद्यन्ते यस्मिँस्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अध्यापकोपदेशकौ वयमद्य सवितुर्देवस्य प्रसवे यद्वरेण्यं राधो मनामहे तच्छतग्विनं वसुमन्तं रयिं सुचेतुनाऽस्मभ्यं द्यावापृथिवी इव युवां धत्तम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्वांसो यथा द्यावापृथिव्यौ सर्वान् प्राणिनः सुखयन्ति । तथा सर्वान् विद्याधनोन्नत्या सुखयन्तु ॥ ५ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्युद्भूमिवद्विद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति एकोनषष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (सवितुः) जगत् के उत्पन्न करने (देवस्य) और प्रकाश करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (राधः) द्रव्य को (मनामहे) जानते हैं (तत्) उस (शतग्विनम्) सैकड़ों गौओं वाले (वसुमन्तम्) नाना प्रकार के धनों से युक्त (रयिम्) धन को (सुचेतुना) सुन्दर ज्ञान से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (द्यावापृथिवी) भूमिमण्डल और सूर्यमण्डल के समान तुम (धत्तम्) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वान् जन जैसे द्यावापृथिवी सब प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे सब को विद्या और धन की उन्नति से सुखी करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में बिजुली और भूमि के समान विद्वानों के गुणों के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एक सौ उनसठ का सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

ते हीत्यस्य पञ्चर्चस्य षष्ठ्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते।१ विराट् जगती।२।३।४।५ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः।

अथ द्यावापृथिव्योर्दृष्टान्तेन मनुष्याणामुपकारग्रहणमाह॥

अब पाञ्च ऋचा वाले एक सौ साठ के सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से मनुष्यों के उपकार ग्रहण करने का वर्णन करते हैं॥

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी। सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्म्मणा सूर्य्यः शुचिः॥ १॥

ते इति। हि। द्यावापृथिवी इति। विश्वऽशम्भुवा। ऋतावरी इत्यृतऽवरी। रजसः। धारयत्कवी इति धारयत्ऽकवी। सुजन्मनी इति सुऽजन्मनी। धिषणे इति। अन्तः। ईयते। देवः। देवी इति। धर्म्मणा। सूर्य्यः। शुचिः॥ १॥

पदार्थः—(ते) हे (हि) खलु (द्यावापृथिवी) विद्युदन्तरिक्षे (विश्वशम्भुवा) विश्वस्मिन् शं सुखं भावुकेन (ऋतावरी) सत्यकारणयुक्ते (रजसः) लोकान् (धारयत्कवी) धारयन्तौ कवी विक्रान्तदर्शनौ सूर्यविद्युतौ ययोस्तौ (सुजन्मनी) शोभनं जन्म ययोस्ते (धिषणे) प्रसोढ्र्यौ (अन्तः) मध्ये (ईयते) प्राप्नोति (देवः) दिव्यगुणः (देवी) देदीप्यमाने (धर्मणा) स्वधर्मेण (सूर्यः) (शुचिः) पवित्रः॥ १॥

अन्वयः—हे विद्वांसो ये विश्वशम्भुवा ऋतावरी धारयत्कवी सुजन्मनी धिषणे देवी द्यावापृथिवी धर्मणा रजसोऽन्तर्धरतः । ययोरन्तः शुचिर्देवः सूर्य्य ईयते ते हि यूयं सम्यग्विजानीत ॥ १ ॥

भावार्थः—यथा सर्वेषां लोकानां वायुविद्युदाकाशाऽधिकरणानि सन्ति तथेश्वरो वाय्वादीनामाधारोऽस्ति । अस्यां सृष्टावेकैकस्य ब्रह्माण्डस्य मध्य एकैकः सूर्यलोकोऽस्तीति सर्वे विद्युः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (विश्वशम्भुवा) संसार में सुख की भावना करने हारे करके (ऋतावरी) सत्य कारण से युक्त (धारयत्कवी) अनेक पदार्थों की धारणा कराते और प्रबल जिन का देखना (सुजन्मनी) सुन्दर जन्म वाले (धिषणे) उत्कट सहन शील (देवी) निरन्तर दीपते हुए (द्यावापृथिवी) बिजुली और अन्तरिक्ष लोक (धर्मणा) अपने धर्म्म से अर्थात् अपने भाव से (रजसः) लोकों को (अन्तः) अपने बीच में धरते हैं । जिन उक्त द्यावापृथिवियों में (शुचिः) पवित्र (देवः) दिव्य गुण वाला (सूर्य्यः) सूर्यलोक (ईयते) प्राप्त होता है (ते) उन दोनों को (हि) ही तुम अच्छे प्रकार जानो ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे सब लोकों के वायु बिजुली और आकाश ठहरने के स्थान हैं वैसे ईश्वर उन वायु आदि पदार्थों का आधार है । इस सृष्टि में एक २ ब्रह्माण्ड के बीच एक २ सूर्यलोक है यह सब जानें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः । सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥

उरुऽव्यचसा। महिनी इति। असश्चता। पिता। माता। च। भुवनानि। रक्षतः। सुधृष्टमे इतिसुऽधृष्टमे। वपुष्ये इति। न। रोदसीइति। पिता। यत्। सीम्। अभि। रूपैः। अवासयत्॥ २॥

पदार्थः-(उरुव्यचसा) बहुव्यापिनौ (महिनी) महत्यौ (असश्चता) विलक्षणस्वरूपे (पिता) (माता) (च) (भुवनानि) भवन्ति भूतानि येषु तानि (रक्षतः) (सुधृष्टमे) सुष्ठु अतिशयेन प्रसोढ्र्यौ (वपुष्ये) वपुषि रूपे भवे (न) इव (रोदसी) द्यावापृथिवी (पिता) पालकोऽग्निर्विद्युद्वा (यत्) ये (सीम्) सर्वतः (अभि) आभिमुख्ये (रूपैः) शुक्लादिभिः (अवासयत्) आच्छादयति॥ २॥

अन्वयः-हे मनुष्या पिता यद्ये रोदसी रूपैः सीमभ्यवासयत्तेऽसश्चता महिनी उरुव्यचसा सुधृष्टमे वपुष्ये नेव माता पिता च भुवनानि रक्षतः॥ २॥

भावार्थः-यथा सर्वाणि भूतानि भूमिसूर्यौ रक्षतो धरतश्च तथा मातापितरौ सन्तानान् पालयतो रक्षतश्च यदप्सु पृथिव्यामेतद्विकारेषु च रूपं दृश्यते तद्व्याप्तस्याऽग्नेरेवास्तीति वेदितव्यम्॥ २॥

पदार्थः-हे मनुष्यो (पिता) पालना करने वाला विद्युदग्नि (यत्) जिन (रोदसी) सूर्य और भूमि मण्डल को (रूपैः) शुक्ल,कृष्ण,हरित, पीतादि रूपों से (सीम्) सब ओर से (अभ्यवासयत्) ढांपता है उन (असश्चता) विलक्षण रूप वाले (महिनी) बड़े (उरुव्यचसा) बहुत व्याप्त होने वाले (सुधृष्टमे) सुन्दर अत्यन्त उत्कर्षता से सहने वाले (वपुष्ये) रूप में प्रसिद्ध हुए सूर्य

मण्डल और भूमिमण्डलों के (न) समान (माता) मान्य करने वाली स्त्री (पिता,च) और पालना करने वाला जन (भुवनानि) जिन में प्राणी होते हैं उन लोकों की (रक्षतः) रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे समस्त प्राणियों को भूमि और सूर्यमण्डल पालते और धारण करते हैं वैसे माता पिता सन्तानों की पालना और रक्षा करते हैं । जो जलों और पृथिवी वा इन के विकारों में रूप दिखाई देता है वह व्याप्त अग्नि ही का है यह समझना चाहिये ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स वन्हिः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया । धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥

सः । वन्हिः । पुत्रः । पित्रोः । पवित्रऽवान् । पुनाति । धीरः । भुवनानि । मायया । धेनुम् । च । पृश्निम् । वृषभम् । सुऽरेतसम् । विश्वाहा । शुक्रम् । पयः । अस्य । धुक्षत ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सः) (वन्हिः) वोढा (पुत्रः) अपत्यमिव (पित्रोः) वाय्वाकाशयोः (पवित्रवान्) बहूनि पवित्राणि कर्माणि विद्यन्ते यस्य सः (पुनाति) पवित्री करोति (धीरः) ध्यानवान् (भुवनानि) लोकान् (मायया) प्रज्ञया (धेनुम्) गामिव वर्त्तमानां वाणीम् (च) (पृश्निम्) सूर्यम् (वृषभम्) सर्वलोकस्तम्भकम् (सुरेतसम्) सुष्ठुबलम् (विश्वाहा) सर्वाणि दिनानि (शुक्रम्) आशुकरम् (पयः) दुग्धम् (अस्य) वन्हेः (धुक्षत) प्रदुहन्ति । अत्र वाच्छन्दसीति भष्भावः ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या पवित्रवान् पित्रोः पुत्र इव वर्त्तमानः स वन्हिर्भुवनानि पुनाति । यो धेनुं सुरेतसं वृषभं पृश्निं शुक्रम्पयश्च विश्वाहा पुनाति । यं धीरो मायया जानात्यस्य सकाशादभीष्टसिद्धिं यूयं दुग्धत ॥ ३ ॥

भावार्थः-यथा सूर्य्यः सर्वांल्लोकान् धरति पवित्रयति तथा सुपुत्राः कुलं शुन्धन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो (पवित्रवान्) जिस के बहुत शुद्ध कर्म वर्त्तमान (पित्रोः) तथा जो वायु और आकाश के (पुत्रः) सन्तान के समान वर्त्तमान है (सः) वह (वन्हिः) पदार्थों की प्राप्ति कराने वाला अग्नि (भुवनानि) लोकों को (पुनाति) पवित्र करता है । जो (धेनुम्) गौ के समान वर्त्तमान वाणी (सुरेतसम्) सुन्दर जिस का बल जो (वृषभम्) सब लोकों को रोकने वाला (पृश्निम्) सूर्य है उस (शुक्रम्) शीघ्रता करने वाले को और (पयः) दूध को (च) और (विश्वाहा) सब दिनों को पवित्र करता है जिस को (धीरः) ध्यानवान् पुरुष (मायया) उत्तम बुद्धि से जानता है (अस्य) उस अग्नि की उत्तेजना से अभीष्ट सिद्धि को तुम (धुक्षत) पूरी करो॥ ३ ॥

भावार्थः-जैसे सूर्य समस्त लोकों को धारण करता और पवित्र करता है वैसे सुपुत्र कुल को पवित्र करते हैं ॥ ३॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा । वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥

अयम्। देवानाम्। अपसाम्। अपःऽतमः। यः। जजान। रोदसी इति। विश्वऽशम्भुवा। वि। यः। ममे। रजसी इति। सुक्रतुऽयया। अजरेभिः। स्कम्भनेभिः। सम्। आनृचे ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अयम्) (देवानाम्) पृथिव्यादीनाम् (अपसाम्) कर्मणाम् (अपस्तमः) अतिशयेन क्रियावान् (यः) (जजान) प्रकटयति (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (विश्वशम्भुवा) विश्वस्मिन् शं सुखं भावुकेन (वि) (यः) (ममे) मापयति (रजसी) लोकौ (सुक्रतुयया) सुष्ठु प्रज्ञया कर्मणा वा (अजरेभिः) अजरैर्हानिरहितैः प्रबन्धैः (स्कम्भनेभिः) स्तम्भनैः (सम्) (आनृचे) स्तौमि ॥ ४ ॥

अन्वयः—योऽयं देवानामपसामपस्तमो यो विश्वशम्भुवा रोदसी जजान यःसुक्रतुयया स्कम्भनेभिरजरेभीरजसी विममे तमहं समानृचे॥४॥

भावार्थः—सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयकरणादीनि कर्माणि यस्य जगदीश्वरस्य भवन्ति यो हि कारणादखिलं विविधं कार्यं रचयित्वाऽनन्तबलेन धरति तमेव सर्वे सदा प्रशंसन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (अयम्) यह (देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अपसाम्) कर्मों के बीच (अपस्तमः) अतीव क्रियावान् है वा (यः) जो (विश्वशम्भुवा) सब में सुख की भावना कराने वाले कर्म से (रोदसी) सूर्यलोक और भूमिलोक को (जजान) प्रगट करता है वा (यः) जो (सुक्रतुयया) उत्तम बुद्धि कर्म और (स्कम्भनेभिः) रुकावटों से और (अजरेभिः) हानिरहित

प्रबन्धों के साथ (रजसी) भूमिलोक और सूर्यलोक का (वि, ममे) विविध प्रकार से मान करता उस की मैं (समानृचे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने आदि काम जिस जगदीश्वर के होते हैं जो निश्चय के साथ कारण से समस्त नाना प्रकार के कार्य को रच कर अनन्त बल से धारण करता है उसी को सब लोग सदैव प्रशंसित करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावा-पृथिवी धासथो बृहत् । येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥५॥३॥

ते इति । नः । गृणाने इति । महिनी इति । महि । श्रवः । क्षत्रम् । द्यावापृथिवी इति । धासथः । बृहत् । येन । अभि । कृष्टीः । ततनाम । विश्वहा । पनाय्यम् । ओजः । अस्मे इति । सम् । इन्वतम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(ते) उभे (नः) अस्मभ्यम् (गृणाने) स्तूयमाने । अत्र कृतोबहुलमिति कर्मणि शानच् (महिनी) महत्यौ (महि) पूज्यम् (श्रवः) अन्नम् (क्षत्रम्) राज्यम् (द्यावापृथिवी) भूमिसवितारौ (धासथः) दध्याताम् । अत्र व्यत्ययः (बृहत्) महत् (येन) (अभि) (कृष्टीः) मनुष्यान् (ततनाम) विस्तारयेम (विश्वहा) सर्वाणि दिनानि (पनाय्यम्) स्तोतुमर्हम् (ओजः) पराक्रमम् (अस्मे) अस्मासु (सम्) (इन्वतम्) वर्द्धयतम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—ये गृणाने महिनी द्यावापृथिवी स्तस्ते नो बृहन् महि श्रवः क्षत्रं धासथः । येन वयं विश्वहा कृष्टीरभिततनाम तत् पनाय्यमोजश्चास्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये भूमिगुणविद्विद्यां विदित्वा तयोपयोक्तुं जानन्ति ते महद्बलं प्राप्य सार्वभौमं राज्यं कर्त्तुं शक्नुवन्तीति ॥ ५ ॥

अत्र द्यावापृथिवीदृष्टान्तेन मनुष्याणामेतदुपकारग्रहणमुक्तमतएतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्बोध्या ॥

इति षष्ठ्युत्तरं शततमं सूक्तं तृतीयो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—जो (गृणाने) स्तुति किये जाते हुए (महिनी) बड़े (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्य लोक हैं (ते) वे (नः) हम लोगों के लिये (बृहन्) अत्यन्त (महि) प्रशंसनीय (श्रवः) अन्न और (क्षत्रम्) राज्य को (धासथः) धारण करें (येन) जिस से हम लोग (विश्वहा) सब दिनों (कृष्टीः) मनुष्यों का (अभि, ततनाम) सब ओर से विस्तार करें और उस (पनाय्यम्) प्रशंसा करने योग्य (ओजः) पराक्रम को (अस्मे) हम लोगों के लिये (समिन्वतम्) अच्छे प्रकार बढ़ावें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो जन भूमि के गुणों को जानने वालों की विद्या को जान के उस से उपयोग करना जानते हैं वे अत्यन्त बल को पा कर सब पृथिवी का राज्य कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से मनुष्यों का यह उपकार ग्रहण करना कहा इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संङ्गति है यह समझना चाहिये ॥

यह एक सौ साठ का सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

किम्वित्यस्य चतुर्दशर्चस्य एकषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ विराट् जगती २ । ५ । ६ । ८ । १२ निचृज्जगती । ७ । १० जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ । १३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ९ स्वराट् त्रिष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ मेधाविकर्म्माण्याह ॥

अब चौदह ऋचा वाले एक सौ इकसठ के सूक्त का आरम्भ है उस के आरम्भ से मेधावि अर्थात् धीरबुद्धि के कर्मों को कहते हैं ॥

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं१ कद्यदूचिम । न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥

किम् । ऊं इति । श्रेष्ठः । किम् । यविष्ठः । नः । आ । अजगन् । किम् । ईयते । दूत्यम् । कत् । यत् । ऊचिम । न । निन्दिम । चमसम् । यः । महाऽकुलः । अग्ने । भ्रातः । द्रुणः । इत् । भूतिम् । ऊदिम ॥ १ ॥

पदार्थः—(किम्) (उ) (श्रेष्ठः) (किम्) (यविष्ठः) अतिशयेन युवा (नः) अस्मान् (आ) (अजगन्) पुनःपुनः

प्राप्नोति । अत्र यङि लङि बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (किम्) (ईयते) प्राप्नोति (दूत्यम्) दूतस्य भावं कर्म वा (कत्) कदा (यत्) यम् (ऊचिम) उच्याम (न) (निन्दिम) निन्देम अत्र वा छन्दसीति लिटि द्विर्वचनाभावः (चमसम्) मेघम् (यः) (महाकुलः) महत् कुलं यस्य (अग्ने) विद्वन् (भ्रातः) बन्धो(द्रुणः) यो द्रवति सः (इत्) एव (भूतिम्) ऐश्वर्यम् (ऊदिम)वदेम ॥१॥

अन्वयः–हे भ्रातरग्ने यो महाकुलो द्रुणश्चमसमाप्नोति तं वयं न निन्दिम नोऽस्मान् किं श्रेष्ठः किमु यविष्ठ आऽजगन् यद्यं वयमूचिम स किं दूत्यमीयते ते प्राप्येत् कद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥

भावार्थः—जिज्ञासवो विदुष एवं पृच्छेयुरस्मान् कथमुत्तमविद्या प्राप्नुयात् कश्चास्मिन् विषये श्रेयान् बलिष्ठो दूतइव पदार्थोस्ति कं प्राप्य वयं सुखिनः स्यामेति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (भ्रातः) बन्धु (अग्ने) विद्वान् (यः) जो (महाकुलः) बड़े कुल वाला (द्रुणः) शीघ्रगामी पुरुष (चमसम्) मेघ को प्राप्त होता है उस की हम लोग (न) नहीं (निन्दिम) निन्दा करते (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (किम्) क्या (उ) तो (यविष्ठः) अतीव ज्वान पुरुष (आजगन्) वार वार प्राप्त होता है (यत्) जिस को हम लोग (ऊचिम) कहें सो (किम्) क्या (दूत्यम्) दूतपन वा दूत के काम को (ईयते) प्राप्त होता है उस को प्राप्त हो के (इत्) ही (कत्) कब (भूतिम्) ऐश्वर्य्य को (ऊदिम) कहें उपदेश करें ॥ १ ॥

भावार्थः—जिज्ञासु जन विद्वानों को ऐसा पूछें कि हम को उत्तम विद्या कैसे प्राप्त हो और कौन इस विद्या·विषय में श्रेष्ठ बलवान् दूत के समान पदार्थ है किस को पा कर हम लोग सुखी होवें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एकं॑ चम॒सं च॒तुर॑ः कृणोतन॒ तद्वो॑ दे॒वा अ॑ब्रुव॒न् तद्व॒ आग॑मम् । सौध॑न्वना॒ यद्ये॒वा क॑रि॒ष्यथ॑ सा॒कं दे॒वैर्य॒ज्ञिया॑सो भविष्यथ ॥ २ ॥

एक॑म् । च॒म॒सम् । च॒तुर॑ः । कृ॒णो॒त॒न॒ । तत् । वः॒ । दे॒वाः॒ । अ॒ब्रु॒व॒न् । तत् । वः॒ । आ । अ॒ग॒म॒म् । सौध॑न्वनाः । यदि॑ । ए॒व । क॒रि॒ष्यथ॑ । सा॒कम् । दे॒वैः । य॒ज्ञिया॑सः । भ॒वि॒ष्य॒थ॒ ॥ २ ॥

पदार्थः—(एकम्) असहायम् (चमसम्) मेघम् (चतुरः) वाय्वग्निजलभूमीः (कृणोतन) कुर्यात (तत्) (वः) युष्मान् (देवाः) विद्वांसः (अब्रुवन्) ब्रूयुरुपदिशेयुः (तत्) (वः) युष्माकं सकाशात् (आ) (अगमम्) प्राप्नुयाम् (सौधन्वनाः) शोभनेषु धनुष्षु कुशलाः (यदि) (एव) (करिष्यथ) (साकम्) (देवैः) विद्वद्भिस्सह (यज्ञियासः) यज्ञमनुष्ठातुमर्हाः (भविष्यथ) ॥२॥

अन्वयः—हे सौधन्वना यदेकं चमसं देवा वोऽब्रुवँस्तद्यूयं कृणोतन यद्वोऽहमागमं तत् कृणोतन यदि देवैः साकं चतुरः पृच्छत तर्हि स्वकार्यं सिद्धमेव करिष्यथ यज्ञियासश्च भविष्यथ ॥२॥

भावार्थः—ये विदुषां सकाशात् प्रश्नोत्तरैर्विद्याः प्राप्य तदुक्तानि कर्माणि कुर्वन्ति ते विद्वांसो जायन्ते । पूर्वोक्तप्रश्नानामेतान्युत्तराणि योऽस्मासु विद्याऽधिकः स श्रेष्ठः । यो जितेन्द्रियः स बलिष्ठः । योऽग्निः स दूतः । या पुरुषार्थसिद्धिः सा विभूतिश्च ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुषों में कुशल जिस (एकम्) इकेले (चमसम्) मेघ को (देवाः) विद्वान् जन (वः) तुम लोगों के प्रति (अब्रुवन्) कहें अर्थात् उस के गुणों का उपदेश करें (तत्) उस को तुम लोग (कृणोतन) करो और जिस को (वः) तुम लोगों की उत्तेजना से मैं (आगमम्) प्राप्त होऊं (तत्) उस को करो (यदि) जो (देवैः) विद्वानों के (साकम्) साथ (चतुरः) वायु, अग्नि, जल, भूमि, इन चारों को पूछो तो अपने काम को सिद्ध (एव) ही (करिष्यथ) करो और (यज्ञियासः) यज्ञ के अनुष्ठान के योग्य (भविष्यथ) होओ ॥ २ ॥

भावार्थः—जो विद्वानों की उत्तेजना से प्रश्नोत्तरों से विद्याओं को पा कर उस में कहे हुए कामों को करते हैं वे विद्वान् होते हैं। पिछिले प्रश्नों के यहां ये उत्तर हैं कि जो हम लोगों में विद्या में अधिक है वह श्रेष्ठ। जो जितेन्द्रिय है वह अत्यन्तबलवान्। जो अग्नि है वह दूत और जो पुरुषार्थ सिद्धि है वह विभूति है ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः । धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

अग्निम् । दूतम् । प्रति । यत् । अब्रवीतन । अश्वः । कर्त्वः । रथः । उत । इह । कर्त्वः । धेनुः । कर्त्वा । युवशा । कर्त्वा । द्वा । तानि । भ्रातः । अनु । वः । कृत्वी । आ । इमसि ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) विद्युदादिम् (दूतम्) यो दुनोति तम् (प्रति) (यत्) यः (अब्रवीतन) ब्रूयात् (अश्वः) आशुगामी (कर्त्वः) कर्त्तुमर्हः। अत्र सर्वत्र कृत्यार्थे त्वन् प्रत्ययः (रथः) रमणसाधनः (उत) अपि (इह) (कर्त्वः) कर्त्तुं योग्यः (धेनुः) वाणी (कर्त्वा) कर्त्तुं योग्या (युवशा) युवैर्मिश्रिताऽमिश्रितैस्तद्वत्कृतानि विस्तृतानि (कर्त्वा) कर्त्तव्यानि (द्वा) द्वौ (तानि) (भ्रातः) बन्धो (अनु) (वः) युष्माकं सकाशात् (कृत्वी) कृत्वा। अत्र स्नात्व्यादयश्चेति निपातितम् (आ) (इमसि) प्राप्नुमः॥ ३॥

अन्वय—हे भ्रातर्विद्वन् यद्योऽश्वः कर्त्वे उतेह रथः कर्त्वोऽस्ति तमग्निं दूतं प्रति योऽब्रवीतन तदुपदेशेन या कर्त्वा धेनुरस्ति यानि कर्त्वा युवशा सन्ति येऽग्निवाचौ द्वा स्तस्तानि वः सिद्धानि कृत्वी वयमन्वेमसि॥ ३॥

भावार्थः-यो यस्मै सत्यां विद्यां ब्रूयात्। अग्न्यादिकृत्यमुपदिशेच्च स तं बन्धुवद्विजानीयात् स कर्त्तव्यानि कार्याणि साधितुं शक्नुयात्॥ ३॥

पदार्थः—हे (भ्रातः) बन्धु विद्वान् (यत्) जो (अश्वः) शीघ्रगामी (कर्त्वः) करने योग्य अर्थात् कलायंत्रादि सिद्ध होने वाला नानाविध शिल्पक्रियाजन्य पदार्थ (उत) अथवा (इह) यहां (रथः) रमण करने का साधन (कर्त्वः) करने योग्य विमान आदि यान है उस को (अग्निम्) बिजुली आदि (दूतम्) दूतकर्मकारी अग्नि के (प्रति) प्रति जो (अब्रवीतन) कहे उस के उपदेश से जो (कर्त्वा) करने योग्य (धेनुः) वाणी है वा जो

(कर्त्वा) करने योग्य (युवशा) मिले अनमिले व्यवहारों से विस्तृत काम हैं वा जो अग्नि और वाणी (द्वा) दो हैं (तानि) उन सब को (वः) तुम्हारी उत्तेजना से सिद्ध (कृत्वी) कर हम लोग (अनु, आ, इमसि) अनुक्रम से उक्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो जिस के लिये सत्य विद्या को कहे और अग्नि आदि से कर्त्तव्य का उपदेश करे वह उस को बन्धु के समान जाने और वह करने योग्य कामों को सिद्ध कर सके ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

चकृवांसं ऋभवस्तदंपृच्छत क्वेदंभूद्यः स्य दूतो न आजंगन् । यदावाख्यंच्चमसाञ्चतुरंः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यांनजे ॥ ४ ॥

चकृऽवांसः । ऋभवः । तत् । अपृच्छत । क्वं । इत् । अभूत् । यः । स्यः । दूतः । नः । आ । अजंगन् । यदा । अवऽअख्यंत् । चमसान् । चतुरंः । कृतान् । आत् । इत् । त्वष्टां । ग्नासुं । अन्तः । नि । आनजे ॥ ४ ॥

पदार्थः—(चकृवांसः) कर्त्तारः (ऋभवः) मेधाविनः । ऋभुरिति मेधाविना० निघं० ३।१५ (तत्) (अपृच्छत) पृच्छन्तु (क्व) कस्मिन् (इत्) एव (अभूत्) भवति (यः) (स्यः) (दूतः) (नः) अस्मान् (आ) (अजगन्) पुनः२ प्राप्नोति (यदा) (अवाख्यत्) प्रख्यापयेत् (चमसान्) मेघान् (चतुरः) वाय्वग्निजलभूमीः (कृतान्) (आत्) (इत्) (त्वष्टा) तनूकर्त्ता (ग्नासु) गन्तुं योग्यासु भूमिषु (अन्तः) मध्ये (नि) (आनजे) अस्येच्चालयेत् ॥४॥

अन्वयः—हे चक्रवांस ऋभवो यो दूतो न आजगन् स्य सः काभूदिति तदित्तमेव विदुषः प्रति भवन्तोऽपृच्छत । यस्त्वष्टा यदा चमसानवाख्यत्तदा स चतुरः कृतान् विजानीयादात्स इत् ग्नास्वन्तर्यानानि न्यानजे ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये विद्वत्सनीडे सुशिक्षां विद्यां च प्राप्य सर्वसिद्धान्तोत्तराणि विज्ञाय कार्येषु संप्रयुञ्जते ते मेधाविनो जायन्ते ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (चक्रवांसः) कर्म करने वाले (ऋभवः) मेधावि सज्जनो (यः) जो (दूतः) दूत (नः) हमारे प्रति (आ, अजगन्) वार२ प्राप्त होवे (स्यः) वह (क) कहां (अभूत्) उत्पन्न हुआ है (तत्, इत्) उस ही को विद्वानों के प्रति आप लोग (अपृच्छत) पूछो । जो (त्वष्टा) सूक्ष्मता करने वाला (यदा) जब (चमसान्) मेघों को (अवाख्यत्) विख्यात करे तब वह (चतुरः) चार पदार्थों को अर्थात् वायु, अग्नि, जल, और भूमि को (कृतान्) किये हुए अर्थात् पदार्थ विद्या से उपयोग में लिये हुए जाने (आत्) और (इत्) वही (ग्नासु) गमन करने योग्य भूमियों के (अन्तः) बीच यानों को (नि, आनजे) चलावे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो विद्वानों के समीप में उत्तम शिक्षा और विद्या को पा कर समस्त सिद्धान्तों के उत्तरों को जान कार्यों में अत्युत्तम योग करते हैं वे बुद्धिमान् होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः । अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

हनाम । एनान् । इति । त्वष्टा । यत् । अब्रवीत् । चमसम् । ये । देवऽपानम् । अनिन्दिषुः । अन्या । नामानि । कृण्वते । सुते । सचान् । अन्यैः । एनान् । कन्या । नामऽभिः । स्परत् ॥५॥४॥

पदार्थः—(हनाम) हिंसेम (एनान्) दुष्टाचारिणः (इति) अनेन प्रकारेण (त्वष्टा) छेत्ता सूर्यइव विद्वान् (यत्) (अब्रवीत्) ब्रूते (चमसम्) मेघम् (ये) (देवपानम्) देवैः किरणैरिन्द्रियैर्वा पेयम् (अनिन्दिषुः) निन्देयुः (अन्या) अन्यानि (नामानि) (कृण्वते) कुर्वन्ति (सुते) निष्पादिते (सचान्) संयुक्तान् (अन्यैः) भिन्नैः (एनान्) जनान् (कन्या) कुमारिका (नामभिः) (स्परत्) प्रीणयेत् । अत्र लङ्यडभावः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या त्वष्टा यद्य देवपानं चमसमब्रवीद्य एवमनिन्दिषुस्तानेनान् वयं हनाम । ये सचानन्यैर्नामभिरन्या नामानि सुते कृण्वत एनान्कन्या स्परादित्येवं तान्प्रति यूयमपि वर्त्तध्वम्॥५॥

भावार्थः—ये विदुषो निन्देयुर्विद्वत्स्वविद्वद्बुद्धिमविद्वत्सु विद्वत्प्रज्ञां च कुर्युस्त एव खलास्सर्वैस्तिरस्करणीयाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (त्वष्टा) छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य के समान विद्वान् (यत्) जिस (देवपानम्) किरण वा इन्द्रियों से पीने योग्य (चमसम्) मेघ जल को (अब्रवीत्) कहता है (ये) जो इस की (अनिन्दिषुः) निन्दा करें उन (एनान्) इन को हम लोग (हनाम) मारें नष्ट करें । जो (सचान्) संयुक्त (अन्यैः) और (नामभिः) नामों से (अन्या) और (नामानि) नामों को (सुते) उत्पन्न किये हुए व्यवहार में (कृण्वते) प्रसिद्ध करते हैं (एनान्) इन जनों को (कन्या) कुमारी कन्या (स्परत्) प्रसन्न करे (इति) इस प्रकार से उन के प्रति तुम भी वर्त्तो ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो विद्वानों की निन्दा करें विद्वानों में मूर्ख बुद्धि और मूर्खों में विद्वद्बुद्धि करें वे ही खल सब को तिरस्कार करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत । ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

इन्द्रः । हरी इति । युयुजे । अश्विना । रथम् । बृहस्पतिः । विश्वरूपाम् । उप । आजत । ऋभुः । विभ्वा । वाजः । देवान् । अगच्छत । सुऽअपसः । यज्ञियम् । भागम् । ऐतन ॥ ६ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) विद्युदिव परमैश्वर्यकारकः सूर्यः (हरी) धारणाकर्षणविद्ये (युयुजे) युञ्जीत (अश्विना) शिल्पविद्याक्रियाशिक्षकौ (रथम्) रमणीयं यानम् (बृहस्पतिः) बृहतां पतिः सूर्यइव (विश्वरूपाम्) विश्वानि सर्वाणि रूपाणि यस्यां पृथिव्याम् (उप) (आजत) विजानीत (ऋभुः) धनंजयो सूत्रात्मा वायुरिव मेधावी (विभ्वा) विभुना (वाजः) अन्नम् (देवान्) विदुषः (अगच्छत) प्राप्नुत (स्वपसः) शोभनानि धर्म्याणि कर्माणि येषान्ते (यज्ञियम्) यो यज्ञमर्हति तम् (भागम्) भजनीयम् (ऐतन) विजानीत ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या इन्द्रो हरी युयुजेऽश्विना रथं युञ्जीयातां बृहस्पतिरिव यूयं विश्वरूपामुपाजत । ऋभुर्विभ्वा वाजइव देवानगच्छत स्वपसो यूयं यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

भावार्थः- अत्र वाचकलु०—ये विद्युद्वत्कार्ययोजकाः शिल्पविद्याइव सर्वकार्यप्रणेतारः सूर्यवद्राज्यभर्त्तारः प्राज्ञवद्विदुषां सङ्गन्तारो धार्मिकवत्कर्मकर्त्तारो मनुष्याः सन्ति ते सौभाग्यवन्तो जायन्ते॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (इन्द्रः) बिजुली के समान परमैश्वर्यकारक सूर्य (हरी) धारण आकर्षण कर्मों की विद्या को (युयुजे) युक्त करे (अश्विना) शिल्पविद्या वा उस की क्रिया हथोटी के शिखाने वाले विद्वान् जन (रथम्) रमण करने योग्य विमान आदि यान को जोड़ें (बृहस्पतिः) बड़े २ पदार्थों की पालना करने वाले सूर्य के समान तुम लोग (विश्वरूपाम्) जिस में समस्त अर्थात् छोटे,बड़े,मोटे, पतरे,टेढ़े,बकुचे,कारे,पीरे,रंगीले, चटकीले रूप विद्यमान हैं उस पृथिवी को (उप,आजत) उत्तमता से जानो (ऋभुः) धनंजय सूत्रात्मा वायु के समान (विभ्वा) अपने व्याप्ति बल से (वाजः) अन्न को जैसे वैसे (देवान्) विद्वानों को (अगच्छत) प्राप्त होओ और (स्वपसः) जिन के सुन्दर धर्मसम्बन्धी काम हैं ऐसे हुए तुम (यज्ञियम्) जो यज्ञ के योग्य (भागम्) सेवन करने योग्य भाग है उस को (ऐतन) जानो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो बिजुली के समान कार्य को युक्त करने शिल्प विद्या के समान सब कार्यों को यथायोग्य व्यवहारों में लगाने सूर्य के समान राज्य को पालने वाले, बुद्धिमानों के समान विद्वानों का सङ्ग करने और धार्मिक के समान कर्म करने वाले मनुष्य हैं वे सौभाग्यवान् होते हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

निश्चर्म्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ता कृणोतन । सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँऽअयातन ॥ ७ ॥

निः । चर्म्मणः । गाम् । अरिणीत । धीतिऽभिः । या । जरन्ता । युवशा । ता । अकृणोतन । सौधन्वनाः । अश्वात् । अश्वम् । अतक्षत । युक्त्वा । रथम् । उप । देवान् । अयातन ॥७॥

पदार्थः–(निः) नितराम् (चर्मणः) त्वग्वदुपरिभागस्य (गाम्) पृथिवीम् (अरिणीत) प्राप्नुत (धीतिभिः) अङ्गुलिभिरिव धारणाभिः (या) यौ (जरन्ता) स्तुवन्तौ (युवशा) युवानो विद्यन्ते ययोस्तौ । अत्र लोमादिपामादिना मत्वर्थीयः शः (ता) तौ (अकृणोतन) कुरुत (सौधन्वनाः) सुधन्वनि कुशलाः (अश्वात्) वेगवतः पदार्थात् (अश्वम्) वेगवन्तं पदार्थम् (अतक्षत) अवस्तृणीत (युक्त्वा) (रथम्) यानम् (उप) (देवान्) दिव्यान् भोगान् गुणान् वा (अयातन) प्राप्नुत ॥७॥

अन्वयः–हे मनुष्या यूयं धीतिभिश्चर्मणइव गामरिणीत । या जरन्ता युवशा शिल्पिनौ स्यातां ता शिल्पकर्मसु प्रवृत्तौ निरकृणोतन । सौधन्वनाः सन्तोऽश्वादश्वमतक्षत रथं युक्त्वा देवानुपायातन ॥७॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–ये मनुष्या अङ्गुलीवत्कर्मकारिणः शिल्पविद्याप्रियाः पदार्थात्पदार्थगुणान् विज्ञाय यानादिषु कार्येषूपयुञ्जते ते दिव्यान् भोगान् प्राप्नुवन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः–हे मनुष्यो तुम (धीतिभिः) अङ्गुलियों के समान धारणाओं से (चर्मणः) शरीर की त्वचा के समान शरीर के ऊपरी भाग का संबन्ध रखने वाली (गाम्) पृथिवी को (अरिणीत) प्राप्त होओ (या) जो (जरन्ता) स्तुति प्रशंसा करते हुए (युवशा) युवा विद्यार्थियों को समीप रखने वाले शिल्पी होवें (ता) वे कारीगरी के कामों में अच्छे प्रकार प्रवृत्त हुए (निरकृणोतन) निरन्तर उन शिल्प कार्यों को करें । (सौधन्वनाः) उत्तम धनुष् में कुशल

होते हुए सज्जन (अश्वात्) वेगवान् पदार्थ से (अश्वम्) वेग वाले पदार्थ को (अतक्षत) छांटो और वेग देने में ठीक करो । और (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोड़ के (देवान्) दिव्य भोग वा दिव्य गुणों को (उपायातन) उपगत होओ प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अङ्गुलियों के समान कर्म के करने और शिल्प विद्या में प्रीति रखने वाले पदार्थ से पदार्थ के गुणों को जान कर यान आदि कार्यों में उन का उपयोग करते हैं वे दिव्यभोगों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् । सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥

इदम् । उदकम् । पिबत । इति । अब्रवीतन । इदम् । वा । घ । पिबत । मुञ्जऽनेजनम् । सौधन्वनाः । यदि । तत् । नऽइव । हर्यथ । तृतीये । घ । सवने । मादयाध्वै ॥ ८ ॥

पदार्थः—(इदम्) (उदकम्) (पिबत) (इति) अनेन प्रकारेण (अब्रवीतन) ब्रूयुः (इदम्) (वा) पक्षान्तरे (घ) एव (पिबता) (मुञ्जनेजनम्) मुञ्जैर्नेजनं शुद्धीकृतम् (सौधन्वनाः) शोभनानि धनूंषि येषान्ते सुधन्वानस्तेषु कुशलाः (यदि) (तत्) (नेव) यथा न कामयते तथा (हर्यथ) कामयध्वम् (तृतीये) (घ) एव (सवने) ऐश्वर्ये (मादयाध्वै) आनन्दत ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे सौधन्वना: सद्द्या यूयं पथ्यार्थिभ्य इदमुदकं पिबत इदं मुञ्जनेजनं पिबत वा नेव पिबतेति घैवाब्रवीतन यदि तद्धर्यथ तर्हि तृतीये सवने घैव सततं मादयाध्वै ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—वैद्यैर्मातापितृभिर्वा सर्वे रोगिणः सन्तानाश्च युष्माभिः शरीरात्मसुखायेदं सेव्यमिदन्न सेव्यमिदमनुष्ठेयं नेदं चेति प्रथमत उपदेष्टव्याः । यत एते पूर्णशरीरात्मसुखाः सततं भवेयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुष् वालों में कुशल अच्छे वैद्यो तुम पथ्य भोजन चाहने वालों से (इदम्) इस (उदकम्) जल को (पिबत) पिओ (इदम्) इस (मुञ्जनेजनम्) मूंज के तृणों से शुद्ध किये हुए जल को पिओ (वा) अथवा (नेव) नहीं (पिबत) पिओ (इति) इस प्रकार से (घ) ही (अब्रवीतन) कहो औरों को उपदेश देओ (यदि) जो (तत्) उस को (हर्यथ) चाहो तो (तृतीये) तीसरे (सवने) ऐश्वर्य में (घ) ही निरन्तर (मादयाध्वै) आनन्दित होओ ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—वैद्य वा माता पिताओं को चाहिये कि समस्त रोगी और सन्तानों के लिये प्रथम ऐसा उपदेश करें कि तुम को शारीरिक और आत्मिक सुख के लिये यह सेवन करना चाहिये यह न सेवन करना चाहिये यह अनुष्ठान करना चाहिये यह नहीं । जिस कारण ये पूर्ण आत्मिक और शारीरिकसुखयुक्त निरन्तर हों ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् । वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥

आपः॑ । भूयि॑ष्ठाः । इति॑ । एकः॑ । अब्र॑वीत् । अ॒ग्निः । भूयि॑ष्ठः । इति॑ । अ॒न्यः । अ॒ब्रु॒वी॒त् । व॒धः॒ऽयन्ती॑म् । ब॒हु॒ऽभ्यः॑ । प्र । एकः॑ । अ॒ब्रु॒वी॒त् । ऋ॒ता । वद॑न्तः । च॒म॒सान् । अपिं॑श॒त ॥ १ ॥

पदार्थः—(आपः) जलानि (भूयिष्ठाः) अधिकाः (इति) एवम् (एकः) (अब्रवीत्) ब्रूते (अग्निः) पावकः (भूयिष्ठः) अधिकः (इति) (अन्यः) (अब्रवीत्) ब्रूते (वधर्यन्तीम्) भूमिम् (बहुभ्यः) पदार्थेभ्यः (प्र) (एकः) (अब्रवीत्) वदति (ऋता) ऋतानि सत्यानि (वदन्तः) उच्चरन्तः (चमसान्) मेघानिव (अपिंशत) विभक्तान् कुरुत ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं यथैकः संयुक्तेषु पृथिव्यादिषु पदार्थेष्वापो भूयिष्ठा इत्यब्रवीदन्योऽग्निर्भूयिष्ठ इति प्राब्रवीदेको बहुभ्यो वधर्यन्तीं भूमिं भूयिष्ठामब्रवीदेवमृता वदन्तः सन्तः चमसानिव पदार्थानपिंशत ॥ १ ॥

भावार्थः—अस्मिन् संसारे स्थूलेषु पदार्थेषु वा केचिदपोऽधिकाः केचिदग्निमधिकं केचिद्भूमिं पुष्कलां वदन्ति परन्तु स्थूलेषु पदार्थेषु भूमिरेवाधिकास्तीति । सत्येन विज्ञानेन मेघाऽवयवाविवेकवत् सर्वान् पदार्थान् विभक्तान् कृत्वा तत्त्वानि सर्वै सुपरीक्षेरन्नैतेन विना यथार्थां पदार्थविद्यां वेदितुं शक्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जैसे (एकः) एक पुरुष संयुक्त पृथिवी आदि पदार्थों में (आपः) जल (भूयिष्ठाः) अधिक हैं (इति) ऐसा (अब्रवीत्)

कहता है (अन्यः) और दूसरा (अग्निः) अग्नि (भूयिष्ठः) अधिक है (इति) ऐसा (प्राब्रवीत्) उत्तमता से कहता है तथा (एकः) कोई (बहुभ्यः) बहुत पदार्थों में (वधर्यन्तीम्) बढ़ती हुई भूमि को अधिक (अब्रवीत्) बतलाता है इसी प्रकार (ऋता) सत्य बातों को (वदन्तः) कहते हुए सज्जन (चमसान्) मेघों के समान पदार्थों को (अपिंशत) अलग २ करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस संसार में स्थूल पदार्थों के बीच कोई जल को अधिक कोई अग्नि को अधिक और कोई भूमि को बड़ी २ बतलाते हैं परन्तु स्थूल पदार्थों में भूमि ही अधिक है इस प्रकार सत्यविज्ञान से मेघ के अवयवों का जो ज्ञान उस के समान सब पदार्थों को अलग २ कर सिद्धान्तों की सब परीक्षा करें इस काम से विना यथार्थ पदार्थ विद्या को नहीं जान सकते ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

श्रोणामेकं उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् । आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥ ५ ॥

श्रोणाम् । एकः । उदकम् । गाम् । अव । अजति । मांसम् । एकः । पिंशति । सूनया । आऽभृतम् । आ । नि-ऽम्रुचः । शकृत् । एकः । अप । अभरत् । किम् । स्वित् । पुत्रेभ्यः । पितरौ । उप । अवतुः ॥ १० ॥ ५ ॥

पदार्थः-(श्रोणाम्) श्रोतव्याम् (एकः) विद्वान् (उदकम्) जलम् (गाम्) भूमिम् (अव) (अजति) जानाति प्रक्षिपति वा (मांसम्) मृतकशरीरावयवम् (एकः) असहायः (पिंशति)

पृथक् करोति (सूनया) हिंसया (आभृतम्) समन्ताद्धृतम् (आ) (निम्रुचः) नित्यं प्राप्तस्य (शकृत्) विष्ठेव (एकः) (अप) (अभरत्) भरति (किम्) (स्वित्) प्रश्ने (पुत्रेभ्यः) (पितरौ) मातापितरौ (उप) (आवतुः) कामयेताम् ॥ १० ॥

अन्वयः—यथैकः श्रोणाद्गामुदकञ्चावाजति यथैकः सूनयाभृतं मांसं पिंशति यथैको निम्रुचः शकृदपाभरत्तथा पितरौ पुत्रेभ्यः किं स्विदुपावतुः ॥ १० ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—ये पितरो यथा धेनुर्वत्समिव व्याधो मांसमिव वैद्यो रोगिणो मलनिवारणमिव पुत्रान् दुर्गुणेभ्यो निवर्त्य शिक्षाविद्याप्तान् कुर्वन्ति ते सन्तानसुखमाप्नुवते ॥ १० ॥

पदार्थः—जैसे (एकः) एक विद्वान् (श्रोणाम्) सुनने योग्य (गाम्) भूमि और (उदकम्) जल को (अवाजति) जानता कलायंत्रों से उस को प्रेरणा देता है। वा जैसे (एकः) इकेला (सूनया) हिंसा से (आभृतम्) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (मांसम्) मरे हुए के अंग के टूंक टेड़े को (पिंशति) अलग करता है । वा जैसे (एकः) एक (निम्रुचः) नित्य प्राप्त प्राणी (शकृत्)मल के समान (अप, आ, भरत्) पदार्थ को उठाता है वैसे (पितरौ) माता पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये (किं, स्वित्) क्या (उपावतुः) समीप में चाहैं ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो पिता माता जैसे गौएं बछड़े को सुख चाहती दुःख से बचाती वा बहेलिया मांस को लेके अनिष्ट को छोड़े वा वैद्य रोगी के मल को दूर करे वैसे पुत्रों को दुर्गुणों से पृथक् कर शिक्षा और विद्यायुक्त करते हैं वे सन्तान के सुख को पाते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः । अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥

उद्वत्ऽसु । अस्मै । अकृणोतन । तृणम् । निवत्ऽसु । अपः । सुऽअपस्यया । नरः । अगोह्यस्य । यत् । असस्तन । गृहे । तत् । अद्य । इदम् । ऋभवः । न । अनु । गच्छथ ॥ ११ ॥

पदार्थः-(उद्वत्सु) ऊर्ध्वेषूत्कृष्टेषु प्रदेशेषु (अस्मै) गवाद्याय पशवे (अकृणोतन) कुरुत । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (तृणम्) हिंसितव्यं घासम् (निवत्सु) निम्नप्रदेशेषु (अपः) जलानि (स्वपस्यया) आत्मनः सुष्ठु अपसः कर्मण इच्छया (नरः) नेतारः (अगोह्यस्य) गोहितुं रक्षितुमनर्हस्य (यत्) (असस्तन) हिंसत (गृहे) (तत्) (अद्य) (इदम्) (ऋभवः) मेधाविनः (न) (अनु) (गच्छथ) ॥ ११ ॥

अन्वयः-हे नरो यूयं स्वपस्ययाऽस्मै निवत्सूद्वत्सु तृणमपश्चाकृणोतन । हे ऋभवो यूयं यदगोह्यस्य गृहे वस्त्वऽस्ति तन्नासस्तनाद्येदमनुगच्छथ ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरुच्चनीचस्थलेषु पशुरक्षणाय जलानि घासाश्च संरक्षणीयाः । अरक्षितस्य परपदार्थस्याप्यन्यायेन ग्रहणेच्छा कदाचिन्नैव कार्य्या धर्मविद्यानां मेधाविनां च सङ्गः सदैव कर्त्तव्यः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (नरः) नेता अग्रगन्ता जनो तुम (स्वपस्यया) अपने को उत्तम काम की इच्छा से (अस्मै) इस गवादि पशु के लिये (निवत्सु) नीचे और (उद्वत्सु) ऊंचे प्रदेशों में (तृणम्)काटने योग्य घास को और (अपः) जलों को (अकृणोतन) उत्पन्न करो । हे (ऋभवः) मेधावी जनो तुम (यत्) जो (अगोह्यस्य) न लुकाय रखने योग्य के (गृहे) घर में वस्तु है (तत्) उस को (न) न (असस्नन) नष्ट करो (अद्य) इस उत्तम समय में (इदम्) इस के (अनु, गच्छथ) पीछे चलो ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ऊंचे नीचे स्थलों में पशुओं के राखने के लिये जल और घास आदि पदार्थों को राखें और अरक्षित अर्थात् गिरे पड़े वा प्रत्यक्ष में धरे हुए दूसरे के पदार्थ को भी अन्याय से लै लेने की इच्छा कभी न करें । धर्म, विद्या और बुद्धिमान् जनों का सङ्ग सदैव करें ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

संमील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः । अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥ १२ ॥

सम्ऽमील्य । यत् । भुवना । परि॒ऽअसर्पत । क्व । स्वित् । तात्या । पितरा । वः । आसतुः । अशपत । यः । करस्नम् । वः । आऽददे । यः । प्र । अब्रवीत् । प्रो इति । तस्मै । अब्रवीतन ॥ १२ ॥

पदार्थः—(संमील्य)सम्यक् निमेषणं कृत्वा (यत्) यदा (भुवना) भुवनानि लोकान् (पर्यसर्पत) परितः सर्वतो विजानीत (क्व)

कस्मिन् (स्वित्) प्रश्ने (तात्या) तस्मिन्नवसरे भवा। अत्र वाच्छन्द-
सीति तदव्ययात्त्यप् (पितरा) जननी जनकश्च (वः) युष्माकम्
(आसतुः) (अशपत) सत्यपराधे आक्रुश्यत (यः) (करस्नम्)
बाहुम् । करस्नाविति बाहुना० निघं० २ । ४ (वः) युष्माकम्
(आददे) गृह्णाति । अत्रात्मनेपदे तलोपः (यः) आचार्यः
(प्र) (अब्रवीत्) ब्रूयादुपदिशेत् (प्रो) प्रकृष्टार्थे (तस्मै)
(अब्रवीतन) उपदिशत ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिनो यूयं संमील्य यद्भुवना सन्ति तानि पर्य्यसर्पत तदा वस्तात्या पितरा क्व स्विदासतुर्निवसतः। यो वः करस्नमाददे यूयं यमशपत यो युष्मान् प्राब्रवीत् तस्मै प्रो अब्रवीतन ॥ १२ ॥

भावार्थः—यदाऽध्यापकानां समीपे विद्यार्थिन आगच्छेयुस्तदैते इदं प्रष्टव्याः। यूयं कुत्रत्या युष्माकं कुत्र निवासो मातापित्रोः किन्नाम किमध्येतुमिच्छथाखण्डितं ब्रह्मचर्यं करिष्यथ न वेत्यादि पृष्ट्वैतेभ्यो विद्याग्रहणाय ब्रह्मचर्यदीक्षां दद्युः शिष्याश्चाध्यापकानां निन्दामप्रियाचरणं च कदापि नैव कुर्य्युः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थि जनो तुम (संमील्य) आंखे मिलमिला के (यत्) जो (भुवना) भूमि आदि लोक हैं उन को (पर्यसर्पत) सब ओर से जानो तब (वः) तुम्हारे (तात्या) उस समय होने वाले (पितरा) माता पिता अर्थात् विद्याऽध्ययन समय के माता पिता (क्व) (स्वित्) कहीं (आसतुः) निरन्तर वसें (यः) और जो (वः) तुम्हारी (करस्नम्) भुजा को (आददे) पकड़ता है वा जिस को (अशपत) अपराध हुए पर कोशो (यः) जो आचार्य तुम को (प्र, अब्रवीत्) उपदेश सुनावे (तस्मै) उस के लिये (प्रो, अब्रवीतन) प्रिय वचन बोलो ॥ १२ ॥

भावार्थः—जब पढ़ाने वालों के समीप विद्यार्थी आवें तब ये यह पूछने योग्य हैं कि तुम कहां के हो तुम्हारा निवास कहां है तुम्हारे माता पिता का क्या नाम है क्या पढ़ना चाहते हो अखण्डितब्रह्मचर्य करो गे वा न करो गे इत्यादि पूछ करके ही इन को विद्या ग्रहण करने के लिये ब्रह्मचर्य की शिक्षा देवें और शिष्य जन पढ़ाने वालों की निन्दा और उन के प्रतिकूल आचरण कभी न करें ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सुषुप्वांसं ऋभवस्तदंपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् । श्वानं वस्तो बोधयितारंमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यंख्यत ॥ १३ ॥

सुसुप्वांसंः । ऋभवः । तत् । अपृच्छत । अगोह्य । कः । इदम् । नः । अबूबुधत् । श्वानंम् । वस्तः । बोधयितारंम् । अब्रवीत् । संवत्सरे । इदम् । अद्य । वि । अख्यत ॥ १३ ॥

पदार्थः—(सुसुप्वांसः) ये सुप्ताः (ऋभवः) मेधाविनः (तत्) (अपृच्छत) (अगोह्य) अरक्ष्य (कः) (इदम्) कर्म (नः) अस्मान् (अबूबुधत्) बोधयेत् (श्वानम्) प्रेरकम् (वस्तः) आच्छादकः (बोधयितारम्) ज्ञापयितारम् (अब्रवीत्) ब्रूयात् (संवत्सरे) (इदम्) प्रत्यक्षम् (अद्य) अस्मिन् दिने (वि) (अख्यत) प्रख्यापयत ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे सुसुप्वांस ऋभवो यूयं यदपृच्छत यच्च व्यख्यत तदिदं नः कोऽबूबुधत् । हे अगोह्य वस्तः श्वानं बोधयितारं यथा यदब्रवीत्तदिदं संवत्सरेऽद्य वा त्वं ब्रूहि ॥ १३ ॥

भावार्थः—धीमन्तो यद्यद्विदुषः पृष्ट्वा निश्चिनुयुः । तत्तन्न मूर्खा निश्चेतुं शक्नुयुः । जड़धीर्य्यावत् संवत्सरेऽधीते तावत् प्राज्ञ एकस्मिन् दिने ग्रहीतुं शक्नोति ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (सुसुप्वांसः) सोनेवाले (ऋभवः) बुद्धिमान् जनो तुम जिस काम को (अपृच्छत) पूछो और जिस को (वि, अख्यत) प्रसिद्ध कहो (तत्, इदम्) उस इस काम को (नः) हम लोगों को (कः) कौन (अबूबुधत्) जनावे । हे (अगोह्य) न गुप्त राखने योग्य (वस्तः) ढांपने छिपाने वाला (श्वानम्) कार्य्यों में प्रेरणा देने और (बोधयितारम्) शुभाशुभ विषय जनाने वाले को जैसे जिस विषय को (अब्रवीत्) कहै वैसे उस (इदम्) प्रत्यक्ष विषय को (संवत्सरे) एक वर्ष में वा (अद्य) आज तू कह ॥ १३ ॥

भावार्थः—बुद्धिमान् जन जिस२ विषय को विद्वानों को पूछ कर निश्चय करें उस२ को मूर्ख निर्बुद्धिजन निश्चय नहीं कर सकें जड़ मन्दमति जन जितना एक संवत्सर में पढ़ता है उतना बुद्धिमान् एक दिन में ग्रहण कर सकता है ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दि॒वा या॑न्ति म॒रुतो॒ भूम्या॒ग्निर॒यं वातो॑ अ॒न्तरि॑क्षेण याति । अ॒द्भिर्या॑ति॒ वरु॑णः समु॒द्रैर्यु॒ष्माँ इ॒च्छन्तः॑ शवसो नपातः ॥ १४ ॥ ६ ॥

दि॒वा । या॒न्ति॒ । म॒रुतः॑ । भूम्या॑ । अ॒ग्निः । अ॒यम् । वातः॑ । अ॒न्तरि॑क्षेण । या॒ति॒ । अ॒द्ऽभिः । या॒ति॒ । वरु॑णः । स॒मु॒द्रैः । यु॒ष्मान् । इ॒च्छन्तः॑ । श॒व॒सः॒ । न॒पा॒तः॒ ॥ १४ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(दिवा) सूर्येण सह (यान्ति) गच्छन्ति (मरुतः) सूक्ष्माऽवयवः (भूम्या) पृथिव्या (अग्निः) विद्युत् (अयम्) (वातः) मध्यो वायुः (अन्तरिक्षेण) (याति) (अद्भिः) जलैः (याति) (वरुणः) उदानः (समुद्रैः) सागरैः (युष्मान्) (इच्छन्तः) (शवसः) बलवतः (नपातः) न विद्यते पात् पतनं येषां ते ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे शवसो नपातो विद्वांसो यूयं यथा मरुतो दिवा सह यान्ति। अयमग्निर्भूम्या सह वातोऽन्तरिक्षेण च सह याति वरुणोऽद्भिः समुद्रैः सह याति तथा युष्मानिच्छन्तो जना यान्तु ॥ १४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यमरुतोर्भूम्यग्न्योर्वाय्वन्तरिक्षयोर्वरुणाऽपां सह वासोऽस्ति तथा मनुष्या विद्याविदुषां सह वासं कृत्वा नित्यसुखबलिष्ठा भवन्त्विति ॥ १४ ॥

अस्मिन् सूक्ते मेधाविकर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इति एकषष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (शवसः) बलवान् के सन्तान (नपातः) पतन नहीं होता जिन का वे विद्वानो तुम जैसे (मरुतः) पवन (दिवा) सूर्यमण्डल के साथ (यान्ति) जाते हैं (अयम्) यह (अग्निः) बिजुलीरूप अग्नि (भूम्या) पृथिवी के साथ और (वातः) लोकों के बीच का वायु (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष के साथ (याति) जाता है (वरुणः) उदान वायु (अद्भिः) जल और (समुद्रैः) सागरों के साथ (याति) जाता है वैसे (युष्मान्) तुम को (इच्छन्तः) चाहते हुए जन जावें ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य, पवन, भूमि, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष तथा वरुण और जलों का एक साथ निवास है वैसे मनुष्य विद्या और विद्वानों के साथ वास कर नित्य सुखयुक्त और बली होवें ॥ १४ ॥

इस सूक्त में मेधावि के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिये ॥

यह एक सौ एकसठ का सूक्त और छःठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

मानो मित्र इत्यस्य द्वाविंशर्चस्य द्विषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । १ । २ । ९ । १० । १७ । २० निचृत् त्रिष्टुप् । ४ । ७ । ८ । १८ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६ । ११ । २१ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ । १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५ । १९ । २२ स्वराट् पङ्क्तिः । १६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथाऽश्वस्य विद्युद्रूपेण व्याप्तस्याग्नेश्च विद्यामाह ॥

अब एक सौ बासठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में घोड़े और बिजुलीरूप से व्याप्त जो अग्नि है उस की विद्या का वर्णन करते हैं ॥

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒माऽऽयुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ ख्यन् । यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्तेः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॑णि ॥ १ ॥

मा । नः । मित्रः । वरुणः । अर्य्यमा । आयुः । इन्द्रः । ऋभुक्षाः । मरुतः । परि । ख्यन् । यत् । वाजिनः । देवऽजातस्य । सप्तेः । प्रऽवक्ष्यामः । विदथे । वीर्य्याणि ॥ १ ॥

पदार्थः—(मा) (नः) अस्माकम् (मित्रः) सखा (वरुणः) वरः (अर्य्यमा) न्यायाधीशः (आयुः) ज्ञाता (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (ऋभुक्षाः) मेधावी (मरुतः) ऋत्विजः (परि) वर्जने (ख्यन्) ख्यापयेयुः (यत्) यस्य (वाजिनः) वेगवतः (देवजातस्य) देवेभ्यो दिव्येभ्यो गुणेभ्यः प्रकटस्य (सप्तेः) अश्वस्य (प्रवक्ष्यामः) (विदथे) संग्रामे (वीर्य्याणि) पराक्रमान् ॥ १ ॥

अन्वयः—ऋत्विजो वयं विदथे यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेर्वीर्य्याणि प्रवक्ष्यामस्तस्य नस्तुरङ्गस्य वीर्य्याणि मित्रो वरुणोऽर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतश्च मा परिख्यन् ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः प्रशंसितबलवन्तः सुशिक्षिता अश्वा ग्राह्या येन सर्वत्र विजयैश्वर्य्याणि प्राप्नुयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—ऋतु२ में यज्ञ करने हारे हम लोग (विदथे) संग्राम में (यत्) जिस (वाजिनः) वेगवान् (देवजातस्य) विद्वानों से वा दिव्यगुणों से प्रकट हुए (सप्तेः) घोड़ा के (वीर्याणि) पराक्रमों को (प्रवक्ष्यामः) कहें गे उस (नः) हमारे घोड़े के पराक्रमों को (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (अर्यमा) न्यायाधीश (आयुः) ज्ञाता (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (ऋभुक्षा) बुद्धिमान् और (मरुतः) ऋत्विज् लोग (मा, परि, ख्यन्) छोड़ के मत कहें और उस के अनुकूल उस की प्रशंसा करें ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को प्रशंसित बलवान् अच्छे शिखे हुए घोड़े ग्रहण करने चाहिये जिस से सर्वत्र विजय और ऐश्वर्यों को प्राप्त हों ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥

यत् । निःऽनिजा । रेक्णसा । प्रावृतस्य । रातिम् । गृभीताम् । मुखतः । नयन्ति । सुऽप्राङ् । अजः । मेम्यत् । विश्वऽरूपः । इन्द्रापूष्णोः । प्रियम् । अपि । एति । पाथः ॥ २ ॥

पदार्थः–(यत्) ये (निर्णिजा) नित्यं शुद्धेन । निर्णिगिति रूपना० निघं० ३ । ७ (रेक्णसा) धनेन (प्रावृतस्य) आच्छादितस्य (रातिम्) दानम् (गृभीताम्) (मुखतः) (नयन्ति) (सुप्राङ्) यः सुष्ठु पृच्छति सः (अजः) न जायते यः सः (मेम्यत्) भृशं हिंसन् (विश्वरूपः) विश्वानि सर्वाणि रूपाणि यस्य सः (इन्द्रापूष्णोः) ऐश्वर्यवत्पुष्टिमतोः (प्रियम्) कमनीयम् (अपि) (एति) प्राप्नोति (पाथः) उदकम् ॥ २ ॥

अन्वयः—यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य गृभीतां रातिं मुखतो नयन्ति । यो मेम्यद्विश्वरूपः सुप्राङजो विद्वानिन्द्रापूष्णोः प्रियं पाथोऽप्येति ते सर्वे सुखमाप्नुवन्ति ॥ २ ॥

भावार्थः—ये न्यायोपार्जितेन धनेन मुख्यानि धर्म्याणि कार्य्याणि कुर्वन्ति ते परोपकारिणो भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (निर्णिजा) नित्यशुद्ध (रेक्णसा) धन से (प्रावृतस्य) ढपे हुए (गृभीताम्) ग्रहण किए (रातिम्) देने को (मुखतः) मुख से (नयन्ति) प्राप्त करते अर्थात् मुख से कहते हैं और जो (मेम्यत्) अज्ञानियों में निरन्तर मारता पीटता हुआ (विश्वरूपः) जिस के सब रूप विद्यमान (सुप्राङ्) सुन्दरता से पूछता और (अजः) नहीं उत्पन्न होता अर्थात् एक वार पूर्णभाव से विद्या पढ़ वार २ विद्वत्ता से नहीं उत्पन्न होता वह विद्वान् जन (इन्द्रापूष्णोः) ऐश्वर्यवान् और पुष्टिमान् प्राणियों के (प्रियम्) मनोहर (पाथः) जल को (अप्येति) निश्चय से प्राप्त होता है वे सब सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—जो न्याय से संचित किये हुए धन से मुख्य धर्मसम्बन्धी काम करते हैं वे परोपकारी होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

एषः । छागः । पुरः । अश्वेन । वाजिना । पूष्णः । भागः । नीयते । विश्वऽदेव्यः । अभिऽप्रियम् । यत् । पुरोळाशम् । अर्वता । त्वष्टा । इत् । एनम् । सौश्रवसाय । जिन्वति ॥ ३ ॥

पदार्थः-(एषः) प्रत्यक्षः (छागः) (पुरः) पूर्वम् (अश्वेन) तुरङ्गेन (वाजिना) बेगवता (पूष्णः) पुष्टेः (भागः) (नीयते) (विश्वदेव्यः) विश्वेषु सर्वेषु देवेषु दिव्यगुणेषु साधुः (अभिप्रियम्) अभितः कमनीयम् (यत्) यः (पुरोडाशम्) सुसंस्कृतमन्नम् (अर्वता) विज्ञानेन सह (त्वष्टा) सुरूप-साधकः (इत्) एव (एनम्) (सौश्रवसाय) शोभनेष्वन्नेषु भवाय (जिन्वति) प्राप्नोति ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् येन पुरुषेण वाजिनाऽश्वेन सह एष विश्वदेव्यः पूष्णो भागः छागः पुरो नीयते यद्यस्त्वष्टा सौश्रवसायार्वतैनमभिप्रियं पुरोडाशमिज्जिन्वति स सुखी जायते ॥ ३ ॥

भावार्थः-ये मनुष्या अश्वानां पुष्टये छागदुग्धं पाययन्ति सुसंस्कृतान्नं च भुञ्जते ते सुखिनो भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जिस पुरुष ने (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) घोड़ा के साथ (एषः) यह प्रत्यक्ष (विश्वदेव्यः) समस्त दिव्य गुणों में उत्तम (पूष्णः) पुष्टि का (भागः) भाग (छागः) छाग (पुरः) पहिले (नीयते) पंहुचाया वा (यत्) जो (त्वष्टा) उत्तम रूप सिद्ध करने वाला जन (सौश्रवसाय) सुन्दर अन्नों में प्रसिद्ध अन्न के लिये (अर्वता) विशेष ज्ञान के साथ (एनम्) इस (अभि प्रियम्) सब ओर से प्रिय (पुरोडाशम्) सुन्दर बनाये हुए अन्न को (इत्) ही (जिन्वति) प्राप्त होता है वह सुखी होता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य घोड़ों की पुष्टि के लिये छेरी का दूध उन को पिलाते और अच्छे बनाये हुए अन्न को खाते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

यत् । हविष्यम् । ऋतुऽशः । देवऽयानम् । त्रिः । मानुषाः । परि । अश्वम् । नयन्ति । अत्र । पूष्णः । प्रथमः । भागः । एति । यज्ञम् । देवेभ्यः । प्रतिऽवेदयन् । अजः ॥ ४ ॥

पदार्थः–(यत्) ये (हविष्यम्) हविष्षु ग्रहणेषु साधुम् (ऋतुशः) बहुषु ऋतुषु (देवयानम्) देवानां विदुषां यात्रासाधकम् (त्रिः) (मानुषाः) मनुष्याः (परि) सर्वतः (अश्वम्) आशुगामिनम् (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति (अत्र) अस्मिन् जगति । अत्र ऋचितुनुघेति दीर्घः (पूष्णः) पोषकस्य (प्रथमः) आदिमः (भागः) भजनीयः (एति) प्राप्नोति (यज्ञम्) संगन्तुमर्हम् (देवेभ्यः) दिव्यगुणेभ्यः (प्रतिवेदयन्) स्वगुणं प्रत्यक्षतया प्रज्ञापयन् (अजः) प्राप्तव्यश्छागः ॥ ४ ॥

अन्वयः—यद्ये मानुषा ऋतुशो हविष्यं देवयानमश्वं त्रिः परिणयन्ति योऽत्र देवेभ्यः पूष्णः प्रथमो भागः प्रतिवेदयन्नजो यज्ञमेति तानेतं च सर्वे सज्जनाः सत्कुर्वन्तु ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये सर्वर्त्तुसुखसाधकानि यानानि रचयित्वाऽश्वाऽजादीन् पशून् वर्द्धयित्वा जगद्धितं संपादयन्ति ते शरीरात्ममनोऽनुकूलं त्रिविधं सुखमश्नुवते ॥ ४ ॥

पदार्थः-(यत्) जो (मानुषाः) मनुष्य (ऋतुशः) बहुत ऋतुओं में (हविष्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में उत्तम (देवयानम्) विद्वानों की यात्रा सिद्ध कराने वाले (अश्वम्) शीघ्रगामी रथ को (त्रिः) तीन बार (परिणयन्ति) सब ओर से प्राप्त होते अर्थात् स्वीकार करते हैं वा जो (अत्र) इस जगत् में (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिये (पूष्णः) पुष्टि करने वाले का (प्रथमः) पहिला (भागः) सेवने योग्य भाग (प्रतिवेदयन्) अपने गुण को प्रत्यक्षता से जनाता हुआ (अजः) पाने योग्य छाग (यज्ञम्) संग करने योग्य व्यवहार को (एति) प्राप्त होता है उन को और इस छाग को सब सज्जन यथायोग्य सत्कारयुक्त करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो समस्त ऋतुओं के सुख सिद्ध करने वाले यानों को रच घोड़े और बकरे आदि पशुओं को बढ़ा कर जगत् का हित सिद्ध करते हैं वे शारीरिक वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः । तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

होता । अध्वर्युः । आऽवयाः । अग्निम्ऽइन्धः । ग्रावऽग्राभः । उत । शंस्ता । सुऽविप्रः । तेन । यज्ञेन । सुऽअरङ्कृतेन । सुऽइष्टेन । वक्षणाः । आ । पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७॥

पदार्थः-(होता) यज्ञसाधकः (अध्वर्युः) आत्मनोऽध्वरमहिंसनमिच्छुः (आवयाः) यः समन्ताद्यजति संगच्छते सः (अग्निमिन्धः) अग्निप्रदीपकः (ग्रावग्राभः) यो ग्राव्णः स्तावकान्

गृह्णाति सः (उत) (शंस्ता) प्रशंसिता (सुविप्रः) सुष्ठु-मेधावी (तेन) (यज्ञेन) (स्वरङ्कृतेन) सुष्ठुपूर्णेन कृतेन (स्विष्टेन) (वक्षणाः) नदीः (आ) (पृणध्वम्) पूरयध्वम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो होताऽध्वयुरावयाऽग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उतापि शंस्ता सुविप्रो विद्वानस्ति तेन साकं स्विष्टेन स्वरङ्कृतेन यज्ञेन वक्षणा यूयमापृणध्वम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—सर्वे मनुष्या दुर्गन्धनिवारणाय सुखोन्नतये च यज्ञाऽनुष्ठानं कृत्वा सर्वत्र देशेषु सुगन्धिता अपो वर्षयित्वा नदीः पूरयेयुः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (होता) यज्ञ सिद्धि कराने (अध्वर्युः) अपने को नष्ट न होने की इच्छा करने (आवयाः) अच्छे प्रकार मिलने (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रकाशित करने (ग्रावग्राभः) प्रशंसकों को ग्रहण करने (उत) और (शंस्ता) प्रशंसा करने वाला (सुविप्रः) सुन्दर बुद्धिमान् विद्वान् है (तेन) उस के साथ (स्विष्टेन) उत्तम चाहे और (स्वरङ्कृतेन) सुन्दर पूर्ण किये हुए (यज्ञेन) यज्ञकर्म से (वक्षणाः) नदियों को तुम (आ, पृणध्वम्) अच्छे प्रकार पूर्ण करो ॥ ५

भावार्थः—सब मनुष्य दुर्गन्ध के निवारने और सुख की उन्नति के लिये यज्ञ का अनुष्ठान कर सर्वत्र देशों में सुगन्धित जलों को वर्षा कर नदियों को परिपूर्ण करें अर्थात् जल से भरें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । ये चार्वते पचनं संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥

यू॒प॒ऽव्र॒स्काः । उ॒त । ये । यू॒प॒ऽवा॒हाः । च॒षाल॑म् । ये । अ॒श्व॒ऽयू॒पाय॑ । तक्ष॑ति । ये । च॒ । अर्व॑ते । पच॑नम् । स॒म्ऽभर॑न्ति । उ॒तो इति॑ । तेषा॑म् । अ॒भिऽगू॑र्त्तिः । नः॒ । इ॒न्व॒तु॒ ॥६॥

पदार्थः—(यूपव्रस्काः) यूपाय स्तम्भाय ये वृश्चन्ति ते (उत) अपि (ये) (यूपवाहाः) ये यूपं वहन्ति प्रापयन्ति (चषालम्) वृक्षविशेषम् (ये) (अश्वयूपाय) अश्वानां बन्धनाय (तक्षति) छिन्दन्ति । अत्र वचन व्यत्ययेनैकवचनम् (ये) (च) (अर्वते) अश्वाय (पचनम्) (संभरन्ति) (उतो) अपि (तेषाम्) (अभिगूर्त्तिः) अभितः सर्वतो गूर्त्तिरुद्यमो यस्य सः (नः) अस्मान् (इन्वतु) प्राप्नोतु ॥ ६ ॥

अन्वयः—ये यूपव्रस्का उत ये यूपवाहा अश्वयूपाय चषालं तक्षति । ये चार्वते पचनं संभरन्ति यस्तेषामुतो अभिगूर्त्तिरस्ति स नोऽस्मानिन्वतु ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अश्वादि बन्धनाय काष्ठानां यूपान् कुर्वन्ति ये चाश्वानां पालनाय पदार्थान् स्वीकुर्वन्ति ते उद्यमिनो भूत्वा सुखानि प्राप्नुवन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—(ये) जो (यूपव्रस्काः) खम्भे के लिये काष्ठ काटने वाले (उत) और भी (ये) जो (यूपवाहाः) खम्भे को प्राप्त कराने वाले जन (अश्वयूपाय) घोड़ों के बांधने के लिये (चषालम्) किसी विशेष वृक्ष को (तक्षति) काटते हैं (ये, च) और जो (अर्वते) घोड़े के लिये (पचनम्) पकाने को (संभरन्ति) धारण करते और पुष्टि करते हैं जो (तेषाम्) उन के बीच (उतो) निश्चय से (अभिगूर्त्तिः) सब ओर से उद्यमी है वह (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं के बांधने के लिये काठ के खम्भे वा खूंटे करते बनाते हैं वा जो घोड़ों के रक्षण को पदार्थ दाना, घास, चारा, घुड़सार आदि स्वीकार करते बनाते हैं वे उद्यमी हो कर सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उप॒ प्रागा॑त्सु॒मन्मे॑ऽधायि॒ मन्म॑ दे॒वाना॒माशा॒ उप॑ वी॒तपृ॑ष्ठः । अन्वे॑नं॒ विप्रा॒ ऋष॑यो मदन्ति दे॒वानां॑ पु॒ष्टे च॑कृमा सु॒बन्धु॑म् ॥ ७ ॥

उप॑ । प्र । अ॒गा॒त् । सु॒ऽमत् । मे॒ । अ॒धा॒यि॒ । मन्म॑ । दे॒वाना॑म् । आशाः॑ । उप॑ । वी॒तऽपृ॑ष्ठः । अनु॑ । ए॒न॒म् । विप्राः॑ । ऋष॑यः । म॒द॒न्ति॒ । दे॒वाना॑म् । पु॒ष्टे । च॒कृ॒म॒ । सु॒ऽबन्धु॑म् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(उप) समीपे (प्र) (अगात्) गच्छतु प्राप्नोतु (सुमत्) यः सुष्ठु मन्यते जानाति (मे) मम (अधायि) ध्रियते (मन्म) विज्ञानम् (देवानाम्) विदुषाम् (आशाः) प्राप्तीच्छाः (उप) (वीतपृष्ठः) वीता व्याप्ताः पृष्ठा विद्यासिद्धान्ता येन सः (अनु) (एनम्) (विप्राः) मेधाविनः (ऋषयः) वेदार्थवेत्तारः (मदन्ति) आनन्दयन्ति (देवानाम्) आप्तानाम् (पुष्टे) पुष्टियुक्ते व्यवहारे (चकृम) कुर्याम । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (सुबन्धुम्) शोभना बन्धवो यस्य तम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—येन देवानां मे मम च मन्माशाश्चोपाधायि यः सुमद्वीतपृष्ठो विद्वानेतदेताश्चोपप्रागात्। ये ऋषयो विप्राः सुबन्धुमनुमदन्त्येनं तेषां देवानां पुष्टे वयं चक्रम ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये विद्वत्सिद्धान्तितं विज्ञानं धृत्वा तदनुकूला भूत्वा विद्वांसो जायन्ते ते शरीरात्मपुष्टियुक्ता भवन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—जिस ने (देवानाम्) विद्वानों का और (मे) मेरे (मन्म) विज्ञान और (आशाः) प्राप्ति की इच्छाओं को (उप, अधायि) समीप हो कर धारण किया वा जो (सुमत्) सुन्दर मानता (वीतपृष्ठ) सिद्धान्तों में व्याप्त हुआ विद्वान् जन उक्त ज्ञान और उक्त आशाओं को (उप,प्र, अगात्) समीप हो कर अच्छे प्रकार प्राप्त हो वा जो (ऋषयः) वेदार्थज्ञान वाले (विप्राः) धीरबुद्धि जन (सुबन्धुम्) जिस के सुन्दर भाई हैं उस को (अनु, मदन्ति) अनुमोदित करते हैं (एनम्) इस सुबन्धु सज्जन को उक्त (देवानाम्) व्याप्त साक्षात्कृतशास्त्रसिद्धान्त विद्वान् जनों के (पुष्टे) पुष्टियुक्त व्यवहार में हम लोग (चकृम) करें अर्थात् नियत करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो विद्वानों के सिद्धान्त किये हुए विज्ञान का धारण कर तदनुकूल हो विद्वान् होते हैं वे शरीर और आत्मा की पुष्टि से युक्त होते हैं ॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य । यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥

यत् । वाजिनः । दाम । सम्ऽदानम् । अर्वतः । या । शीर्षण्या । रशना । रज्जुः । अस्य । यत् । वा । घ । अस्य प्रऽभृतम् । आस्ये । तृणम् । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ८ ॥

पदार्थः–(यत्) (वाजिनः) बलवतोऽश्वस्य (दाम) दमनसाधनम् (सन्दानम्) सम्यक् दीयते यत्तत् (अर्वतः) शीघ्रं स्थानान्तरं प्राप्नुतः (या) (शीर्षण्या) या शीर्ष्णि साधुः (रशना) व्यापिका (रज्जुः) (अस्य) (यत्) (वा) पक्षान्तरे (घ) एव (अस्य) (प्रभृतम्) प्रकृष्टतया धृतम् (आस्ये) (तृणम्) (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव (अपि) (देवेषु) (अस्तु) भवतु ॥ ८ ॥

अन्वयः–हे विद्वन् अस्यार्वतो वाजिनो यत्सन्दानं दाम या शीर्षण्या रशना रज्जुर्यद्वास्य घास्ये तृणं प्रभृतमस्तु ता सर्वा ते देवेष्वपि सन्तु ॥ ८ ॥

भावार्थः–येऽश्वान् सुशिक्षितान् सुदमनानुत्तमाभरणान् पुष्टान् कृत्वैतैः कार्य्याणि साध्नुवन्ति ते सर्वाणि विजयादीनि साधितुं शक्नुवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (अस्य) इस (अर्वतः) शीघ्र दूसरे स्थान को पहुंचाने वाले (वाजिनः) बलवान् घोड़ा की (यत्) जो (संदानम्) अच्छे प्रकार दिई जाती (दाम) और घोड़ों को दमन करती अर्थात् उन के बल को दाबती हुई लगाम है (या) जो (शीर्षण्या) शिर में उत्तम (रशना)

व्याप्त होने वाली (रज्जुः) रस्सी है (यत्, वा) अथवा जो (अस्य, घ) इसी के (आस्ये) मुख में (तृणम्) तृणवीरुध घास (प्रभृतम्) अच्छे प्रकार भरी (अस्तु) हो (ता) वे (सर्वा) समस्त (ते) तुम्हारे पदार्थ (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी हों ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो घोड़ों को सुशिक्षित अच्छे इन्द्रिय दमन करने वाले उत्तम गहनों से युक्त और पुष्ट कर इन से कार्यों को सिद्ध करते हैं वे समस्त विजय आदि व्यवहारों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

यत् । अश्वस्य । क्रविषः । मक्षिका । आश । यत् । वा । स्वरौ । स्वऽधितौ । रिप्तम् । अस्ति । यत् । हस्तयोः । शमितुः । यत् । नखेषु । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ९ ॥

पदार्थः—(यत्) (अश्वस्य) (क्रविषः) क्रमणशीलस्य । अत्र क्रमुधातोरौणादिक इसिः प्रत्ययो वर्णव्यत्ययेन मस्य वः (मक्षिका) मशति शब्दायते या सा (आश) अश्नाति (यत्) (वा) (स्वरौ) शब्दोपतापौ (स्वधितौ) स्वेन धृतौ (रिप्तम्) लिप्तम् (अस्ति) (यत्) (हस्तयोः) (शमितुः) यज्ञानुष्ठातुः (यत्)

(नखेषु) न विद्यते खमाकाशं येषु तेषु (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव (अपि) (देवेषु) विद्वत्सु (अस्तु) ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् क्रविषोऽश्वस्य यद्रिप्तम्मक्षिकाश वा यद्यौ स्वधितौ स्वरौ स्तः शमितुर्हस्तयोर्यदस्ति यच्च नखेष्वस्ति ता सर्वा ते सन्त्वेतद्देवेष्वप्यस्तु ॥ ९ ॥

भावार्थः—भृत्यैरश्वा दुर्गन्धलेपरहिताः शुद्धा मक्षिकादंशाविरहा रक्षणीयाः। स्वहस्तेन रज्ज्वादिना सुनियम्य यथेष्टं गमयितव्याः। एवं कृते सति तुरंगा दिव्यानि कार्याणि कुर्वन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (क्रविषः) क्रमणशील अर्थात् चाल से पैर रखने वाले (अश्वस्य) घोड़ा का (यत्) जिस (रिप्तम्) लिपे हुए मल को (मक्षिका) शब्द करती अर्थात् भिन भिनाती हुई माखी (आश) खाती है (वा) अथवा (यत्) जो (स्वधितौ) आप धारण किये हुए (स्वरौ) हींसना और कष्ट से चिल्लाना है (शमितुः) यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो है और (यत्) जो (नखेषु) जिन में आकाश नहीं विद्यमान है उन नखों में (अस्ति) है (ता) वे (सर्वा) समस्त पदार्थ (ते) तुम्हारे हों तथा यह सब (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो ॥९॥

भावार्थः—भृत्यों को घोड़े दुर्गन्ध लेप रहित शुद्ध माखी और डांश से रहित राखने चाहिये अपने हाथ तथा रज्जु आदि से उत्तम नियम कर अपने इच्छानुकूल चाल चलवाना चाहिये ऐसे करने से घोड़े उत्तम काम करते हैं ॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति। सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥ ८ ॥

यत् । ऊवध्यम् । उदरस्य । अपऽवाति । यः । आमस्य ।
क्रविषः । गन्धः । अस्ति । सुऽकृता । तत् । शमितारः ।
कृण्वन्तु । उत । मेधम् । शृतऽपाकम् । पचन्तु ॥ १० ॥ ८ ॥

पदार्थः—(यत्) (ऊवध्यम्) वधितुं ताडितुमर्हम् (उदरस्य) (अपवाति) अपगतं वाति गच्छति (यः) (आमस्य) अपक्वस्य (क्रविषः) क्रमितुं योग्यस्याऽन्नस्य (गन्धः) (अस्ति) (सुकृता) सुष्ठुकृतानि निष्पादितानि (तत्) तानि (शमितारः) संगतान्नस्य निष्पादितारः (कृण्वन्तु) हिंसन्तु (उत) (मेधम्) संगतम् (शृतपाकम्) शृतश्चासौ पाकश्च तम् । पुनरुक्तमातिसंस्कारद्योतनार्थम् (पचन्तु) परिपक्वं कुर्वन्तु ॥ १० ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः शमितारो भवन्तो य उदरस्योदरस्थस्यामस्य क्रविषो गन्धोऽपवाति यदूवध्यमस्ति वा तत्तानि कृण्वन्तु । उतापि मेधं शृतपाकं पचन्त्वेवं विधाय सुकृता भुञ्जताम् ॥ १० ॥

भावार्थः—ये मनुष्या उदररोगनिवारणाय सुसंस्कृतान्यन्नान्यौषधानि च भुञ्जते ते सुखिनो जायन्ते ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (शमितारः) प्राप्त हुए अन्न को सिद्ध करने बनाने वाले आप (यः) जो (उदरस्य) उदर में ठहरे हुए (आमस्य) कच्चे (क्रविषः) क्रम से निकलने योग्य अन्न का (गन्धः) गन्ध (अपवाति) अपान वायु के द्वारा जाता निकलता है वा (यत्) जो (ऊवध्यम्) ताड़ने के योग्य (अस्ति) है (तत्) उस को (कृण्वन्तु) काटो (उत) और (मेधम्) प्राप्त हुए (शृतपाकम्) परिपक्व पदार्थ को (पचन्तु) पकाओ ऐसे उसे सिद्ध कर (सुकृता) सुन्दरता से बनाये हुए पदार्थों को खाओ ॥ १० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य उदररोग निवारने के लिये अच्छे बनाये अन्न और ओषधियों को खाते हैं वे सुखी होते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति । मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११ ॥

यत् । ते । गात्रात् । अग्निना । पच्यमानात् । अभि । शूलम् । निऽहतस्य । अवऽधावति । मा । तत् । भूम्याम् । आ । श्रिषत् । मा । तृणेषु । देवेभ्यः । तत् । उशत्ऽभ्यः । रातम् । अस्तु ॥ ११ ॥

पदार्थः—(यत्) शस्त्रम् (ते) तव (गात्रात्) हस्तात् (अग्निना) क्रोधरूपेण (पच्यमानात्) (अभि) अभिलक्ष्य (शूलम्) शूलमिव पीडाकरं शत्रुम् (निहतस्य) नितरां चलितस्य (अवधावति) निपतति (मा) (तत्) (भूम्याम्) (आ) (श्रिषत्) श्लिष्येत् । अत्राडभावो वर्णव्यत्ययेन लस्य स्थाने रेफादेशश्च (मा) (तृणेषु) तृणादिषु (देवेभ्यः) दिव्येभ्यः शत्रुभ्यः (तत्) (उशद्भ्यः) त्वत्पदार्थान् कामयमानेभ्यः (रातम्) दत्तम् (अस्तु) ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्निहतस्य ते तवाग्निना पच्यमानाद्गात्राद्यदभि शूलमवधावति तद्भूम्यां माऽऽश्रिषत्तृणेषु माऽऽश्लिष्येत्किन्तूशद्भ्यो देवेभ्यो रातं स्याद्दत्तमस्तु ॥ ११ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिर्बलिष्ठैः संग्रामे शस्त्रचालनावसरे विचारेणैव शस्त्रं प्रक्षेपणीयं येन क्रोधान्निर्गतं शस्त्रं भूम्यादौ न निपतेत्किन्तु शत्रुष्वेव कृतकारि स्यादिति ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (निहतस्य) निरन्तर चलायमान हुए (ते) तुम्हारे (अग्निना) क्रोधाग्नि से (पच्यमानात्) तपाये हुए (गात्रात्) हाथ से (यत्) जो शस्त्र (अभि,शूलम्) लख के शूल के समान पीड़ाकारक शत्रु के सन्मुख (अव,धावति) चलाया जाता है (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि में (मा,आ,श्रिषत्) न गिरे वा लगे और वह (तृणेषु) घासादि में (मा) मत आश्रित हो किन्तु (उशद्भ्यः) आप के पदार्थों की चाहना करने वाले (देवेभ्यः) दिव्यगुणी शत्रुओं के लिये (रातम्) दिया (अस्तु) हो ॥ ११ ॥

भावार्थः—बलिष्ठ विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि संग्राम में शस्त्र चलाने के समय विचार पूर्वक ही शस्त्र चलावें जिस से क्रोध पूर्वक चला शस्त्र भूमि आदि में न पड़े किन्तु शत्रुओं को ही मारने वाला हो ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति । ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥

ये । वाजिनम् । परिऽपश्यन्ति । पक्वम् । ये । ईम् । आहुः । सुरभिः । निः । हर । इति । ये । च । अर्वतः । मांसऽभिक्षाम् । उपऽआसते । उतो इति । तेषाम् । अभिऽगूर्त्तिः । नः । इन्वतु ॥ १२ ॥

पदार्थः—(ये) (वाजिनम्) बहूनि वाजा अन्नादीनि यस्मिन् तमाहारम् (परिपश्यन्ति) सर्वतः प्रेक्षन्ते (पक्वम्) पाकेन सम्यक् संस्कृतम् (ये) (ईम्) जलम् । ईमिति उदकना० निघं० १ । १२ (आहुः) कथयन्ति (सुरभिः) सुगन्धः (निः) (हर) (इति) (ये) (च) (अर्वतः) प्राप्तस्य (मांसभिक्षाम्) मांसस्य भिक्षामलाभम् (उपासते) (उतो) (तेषाम्) (अभिगूर्त्तिः) अभिगत उद्यमः (नः) अस्मान् (इन्वतु) व्याप्नोतु प्राप्नोतु ॥ १२ ॥

अन्वयः—ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति य ईं पक्वमाहुः । ये चार्वतो मांसभिक्षामुतो उपासते तेषामभिगूर्त्तिः सुरभिश्च न इन्वतु । हे विद्वँस्त्वमिति रोगान्निर्हर ॥ १२ ॥

भावार्थः—ये अन्नं जलं च शोधितुं पक्तुं भोक्तुं जानन्ति मांसं वर्जयित्वा भुञ्जते त उद्यमिनो जायन्ते ॥ १२ ॥

पदार्थः—(ये) जो लोग (वाजिनम्) जिस में बहुत अन्नादि पदार्थ विद्यमान उस भोजन को (पक्वम्) पकाने से अच्छा बना हुआ (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं वा (ये) जो (ईम्) जल को पका (आहुः) कहते हैं (ये, च) और जो (अर्वतः) प्राप्त हुए प्राणी के (मांसभिक्षाम्) मांस के न प्राप्त होने को (उतो) तर्क वितर्क से (उपासते) सेवन करते हैं (तेषाम्) उन का (अभिगूर्त्तिः) उद्यम और (सुरभिः) सुगन्ध (नः) हम लोगों को (इन्वतु) व्याप्त वा प्राप्त हो । हे विद्वान् तू (इति) इस प्रकार अर्थात् मांसादि अभक्ष्य के त्याग से रोगों को (निर्हर) निरन्तर दूर कर ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो लोग अन्न और जल को शुद्ध करना, पकाना, उस का भोजन करना जानते और मांस को छोड़ कर भोजन करते वे उद्यमी होते हैं॥ १२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि । ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

यत् । निऽईक्षणम् । मांस्पचन्याः । उखायाः । या । पात्राणि । यूष्णः । आऽसेचनानि । ऊष्मण्या । अपिऽधाना । चरूणाम् । अङ्काः । सूनाः । परि । भूषन्ति । अश्वम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(यत्) ये (नीक्षणम्) निरन्तरं च तदीक्षणं च नीक्षणम् (मांस्पचन्याः) मांसानि पचन्ति यस्यां सा । अत्र मांसस्य पचयुड्घञोरित्यन्तलोपः (उखायाः) पाकसाधिकायाः (या) यानि (पात्राणि) (यूष्णः) रसस्य (आसेचनानि) समन्तात् सेचनाऽधिकरणानि (ऊष्मण्या) ऊष्मसु साधूनि (अपिधाना) अपिधानानि मुखाच्छादनानि (चरूणाम्) अन्नादिपचनाधाराणाम् (अङ्काः) लक्षणानि (सूनाः) प्रेरिताः (परि) (भूषन्ति) (अश्वम्) तुरङ्गम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—यद्ये मांस्पचन्या उखाया नीक्षणं कुर्वन्ति तत्र वैमनस्यं कृत्वा या यूष्ण आसेचनानि पात्राण्यूष्मण्याऽपिधाना चरूणामङ्काः सन्ति तान् सुष्ठु जानन्ति । अश्वं परिभूषन्ति च ते सूना जायन्ते ॥ १३ ॥

भावार्थः-ये मनुष्या मांसादिपचनदोषरहितां पाकस्थालीं धर्त्तुं जलादिमासेचितुमग्निं प्रज्वालयितुं पात्रैराच्छादितुं जानन्ति ते पाकविद्यायां कुशला भवन्ति । येऽश्वान् सुशिक्ष्य परिभूष्य चालयन्ति ते सुखेनाध्वानं यान्ति ॥ १३ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांसाहारी जिस में मांस पकाते हैं उस (उखायाः) पाक सिद्ध करने वाली बटलोई का (नीक्षणम्) निरन्तर देखना करते उस में वैमनस्य कर (या) जो (पूष्णः) रस के (आसेचनानि) अच्छे प्रकार सेचन के आधार वा (पात्राणि) पात्र वा (ऊष्मण्या) गरमपन उत्तम पदार्थ (अपिधाना) बटलोइयों के मुख ढांपने की ढकानियां (चरूणाम्) अन्न आदि के पकाने के आधार बटलोई कड़ाही आदि वर्त्तनों के (अङ्काः) लक्षण हैं उनको अच्छे जानने और (अश्वम्) घोड़े को (परिभूषन्ति) सुशोभित करते हैं वे (सूनाः) प्रत्येक काम में प्रेरित होते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मांसादि के पकाने के दोष से रहित बटलोई के धरने जल आदि उस में छोड़ने अग्नि को जलाने और उस को ढकनों से ढांपने को जानते हैं वे पाकविद्या में कुशल होते हैं । जो घोड़ों को अच्छा सिखा उन को सुशोभित कर चलाते हैं वे सुख से मार्ग को जाते हैं ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः । यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

निऽक्रमणम् । निऽसदनम् । विऽवर्त्तनम् । यत् । च । पड्बीशम् । अर्वतः । यत् । च । पपौ । यत् । च । घासिम् । जघास । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ १४ ॥

फर्वरी

श्रीयुत बाबू शिवदयाल जी करनाल	८)
श्रीयुत बाबू क्षेमकरण दास खजानची रेलवे करवी जिला बांदा	८)
श्रीमान् राव बहादुर पंडित सुन्दरलाल जी	२१।/)१०
श्रीयुत कुंजविहारीलाल जी पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज सद्दररावलपिंडी	८)
श्रीयुत बाबू कृष्ण लाल जी अल्मोड़ा	१४)
श्रीयुत शिवदुलारे तिवारी जी कुमिल्ला जिला त्रिपुरा	८)
श्रीयुत सरनलाल जी मंत्री आर्यसमाज जसोला थाना खतौली जिला मुजफ्फर नगर	८)
	५६।/)१०

विज्ञापन १

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहित व्याकरणादि पुस्तकें जो महाशय चाहते हैं उन को विदित हो कि वर्णोच्चारणशिक्षा जो कि पठनपाठनव्यवस्था में प्रथम पुस्तक है यह दो वार छोटे अक्षरों में छपी थी परन्तु अब की वार कई महाशयों की इच्छा पाकर बड़े अक्षरों में छपाई है।

जिन महाशयों को उक्त पुस्तक लेना हो वह शीघ्र पत्र भेजें क्योंकि पुस्तक थोड़ी ही छपे हैं और ग्राहक जन बहुत हैं ।

विज्ञापन २

जो महाशय इस यंत्रालय में पुस्तकादि मगाने के लिये पत्र भेजते हैं उन की सेवा में निवेदन है कि अपना पता अवश्य लिखें और स्पष्ट लिखा करें क्योंकि कई महाशय पुस्तक मगाने की उत्कंठा में पत्र लिखने की शीघ्रता से अपना पता लिखना भूल जाते वा लिखते भी हैं तो अविस्पष्ट लिखते हैं तो उन को पुस्तक पहुंचने में विलंब होता है । और कभी कोई २ महाशय कि पुस्तक मगाने की अत्यन्त उत्कंठा में मनीआर्डर भेज पुस्तकों के व्यौरे का पत्र लिखना ही भूल जाते हैं उन से भी निवेदन है कि—मनी आर्डर भेज कर पुस्तकों के व्यौरे का पत्र अवश्य लिखें ।

ता० १ । ३ । ८०

ज्वालादत्त स्थानापन्न
प्रबंधकर्ता वैदिकयंत्रालय
प्रयाग

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर
प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भारतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥) एक वेद के अंकों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालयप्रबन्धकर्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ।

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय के मैनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (१०६, १०७) अंक (१०, ११)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४१ वैशाख शुक्ल पक्ष

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान दशवें वर्ष के कि जो ९० । ९१ अङ्क से प्रारंभ हो कर १०० । १०१ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के आठ वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है:—

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" बिना जिल्द की ५।=)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ६)

[ख] एक वेद के ८८ अङ्क तक २९ ॥=) और दोनों वेदों के ५९ ।=)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को बिना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलेंगे एक अङ्क ।=) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुभीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जावेंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जावेंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जावें वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस से पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

पदार्थः–(निक्रमणम्) निश्चितं पादविहरणम् (निषदनम्) निश्चितमासनम् (विवर्त्तनम्) विविधं वर्त्तनम् (यत्) (च) (पड्बीशम्) पादबन्धनमाच्छादनं वा (अर्वतः) शीघ्रं गन्तुरश्वस्य (यत्) (च) (पपौ) पिबति (यत्) (च) (घासिम्) अदनम् (जघास) अत्ति (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव (अपि) (देवेषु) (अस्तु) ॥ १४ ॥

अन्वयः-हे अश्वशिक्षक अर्वतो यन्निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं पड्बीशं चास्ति । अयं यच्च पपौ यद् घासिं च जघास ता सर्वा ते सन्तु एतत्सर्वं देवेष्वप्यस्तु ॥ १४ ॥

भावार्थः—यथा सुशिक्षिता अश्वाः सुशीलाः सुगतयो भवन्ति तथा विद्वच्छिक्षिता जनाः सभ्या जायन्ते यथाश्वा मितं पीत्वा भुक्त्वा जरयन्ति तथा विचक्षणा जना अपि स्युः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे घोड़े के शिखाने वाले (अर्वतः) शीघ्र जाने वाले घोड़े का (यत्) जो (निक्रमणम्) निश्चित चलना (निषदनम्) निश्चित बैठना (विवर्त्तनम्) नाना प्रकार से चलाना फिराना (पड्बीशम्, च) और पिछाड़ी बांधना तथा उस को उढ़ाना है और यह घोड़ा (यत्, च) जो (पपौ) पीता (यत्, घासिम्, च) और जो घास को (जघास) खाता है (ता) वे (सर्वा) समस्त उक्त काम (ते) तुम्हारे हों । और यह समस्त (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जैसे सुन्दर शिखाये हुए घोड़े सुशील अच्छी चाल चलने वाले होते हैं वैसे विद्वानों की शिक्षा पाये हुए जन सभ्य होते हैं जैसे घोड़े आहार भर पी, खा के पचाते हैं वैसे विचक्षणबुद्धि विद्या से तीव्र पुरुष भी हों ॥ १४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

मा त्वाऽग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः । इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥ ९ ॥

मा । त्वा । अग्निः । ध्वनयीत् । धूमऽगन्धिः । मा । उखा । भ्राजन्ती । अभि । विक्त । जघ्रिः । इष्टम् । वीतम् । अभिऽगूर्त्तम् । वषट्ऽकृतम् । तम् । देवासः । प्रति । गृभ्णन्ति । अश्वम् ॥ १५ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(मा) (त्वा) त्वाम् (अग्निः) पावकः (ध्वनयीत्) ध्वनयेत् शब्दयेत् (धूमगन्धिः) धूमे गन्धिर्गन्धो यस्य सः (मा) (उखा) पाकस्थाली (भ्राजन्ती) प्रकाशमाना (अभि) (विक्त) विभ्रज्यात् पृथक्कुर्यात् (जघ्रिः) जिघ्रन्ती (इष्टम्) येन इज्यते तम् (वीतम्) व्याप्तिशीलम् (अभिगूर्त्तम्) अभित उद्यमिनम् (वषट्कृतम्) क्रियया निष्पादितम् (तम्) (देवासः) विद्वांसः (प्रति) (गृभ्णन्ति) ग्राहयन्ति । अत्र णिजलोपः (अश्वम्) अश्ववत् शीघ्रं गमयितारम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यमिष्टं वषट्कृतं वीतमभिगूर्त्तमश्वं देवासस्त्वा प्रतिगृभ्णन्ति तं त्वं गृहाण स धूमगन्धिरग्निर्मा ध्वनयीत् भ्राजन्त्युखा जघ्रिर्माभिविक्त ॥ १५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अग्निनाऽश्वेन वा यानानि गमयन्ति ते श्रिया भ्राजन्ते येऽग्नौ सुगन्ध्यादिकं द्रव्यं जुह्वति ते रोगार्त्तशब्दैर्न पीड्यन्ते ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जिस (इष्टम्) इष्ट अर्थात् जिस से यज्ञ वा सङ्ग किया जाता (वषट्कृतम्) जो क्रिया से सिद्ध किये हुए (वीतम्) व्याप्त होने वाले (अभिगूर्त्तम्) सब ओर से उद्यमी (अश्वम्) घोड़े के समान शीघ्र पहुंचाने वाले विजुलीरूप अग्नि को (देवासः) विद्वान् जन (त्वा) तुम्हे (प्रति, गृभ्णन्ति) प्रतीति से ग्रहण कराते हैं (तम्) उस को तुम ग्रहण करो सो (धूमगन्धिः) धूम में गन्ध रखने वाला (अग्निः) अग्नि (मा, ध्वनयीत्) मत ध्वनि दे मत बहुत शब्द दे और (भ्राजन्ती) प्रकाशमान (उखा) अन्न पकाने की बटलोई (जघ्रिः) अन्न गन्ध लेती हुई अर्थात् जिस के भीतर से भाफ उठ लौट के उसी में जाती वह (मा, अभि, विक्त) मत अन्न को अपने में से सब ओर अलग करे उगले ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि वा घोड़े से रथों को चलाते हैं वे लक्ष्मी से प्रकाशमान होते हैं जो अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमते हैं वे रोग और कष्ट के शब्दों से पीड्यमान नहीं होते हैं ॥ १५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यदश्वा॑य वास॑ उपस्तृ॒णन्त्य॑धीवा॒सं या हिर॑ण्यान्यस्मै । सं॒दान॒मर्व॑न्तं॒ पड्बी॑शं प्रि॒या दे॒वेष्वा या॑मयन्ति ॥ १६ ॥

यत् । अश्वा॑य । वास॑: । उ॒प॒ऽस्तृ॒णन्ति॑ । अ॒धी॒वा॒सम् । या । हिर॑ण्यानि । अ॒स्मै॒ । स॒म्ऽदान॑म् । अर्व॑न्तम् । पड्बी॑शम् । प्रि॒या । दे॒वेषु॑ । आ । या॒म॒य॒न्ति॒ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(यत्) (अश्वाय) अग्नये (वासः) आच्छादनम् (उपस्तृणन्ति) (अधीवासम्) अधि उपरि वास आच्छादनं यस्य तम् (या) यानि (हिरण्यानि) ज्योतिर्मयानि (अस्मै) (संदानम्) समीचीनं दानं यस्मात्तम् (अर्वन्तम्) गमयन्तम् (पड्वीशम्) प्राप्तानां पदार्थानां विभाजकम् (प्रिया) प्रियाणि कमनीयानि (देवेषु) विद्वत्सु (आ) (यामयन्ति) ॥ १६ ॥

अन्वयः—ये विद्वांसोऽस्मा अश्वाय यद्वास उपस्तृणन्ति यमधीवासं संदानमर्वन्तं पड्वीशमुपस्तृणन्ति तेन या प्रिया हिरण्यानि देवेष्वा यामयन्ति ते तानि प्राप्य श्रीमन्तो भवन्ति ॥ १६ ॥

भावार्थः-यदि मनुष्या विद्युदादिस्वरूपमग्निमुपयोक्तुं वर्द्धयितुं जानीयुस्तर्हि बहूनि सुखान्याप्नुयुः ॥ १६ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् जन (अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिये (यत्) जिस (वासः) ओढ़ने के वस्त्र को (उपस्तृणन्ति) उढ़ाते वा जिस (अधीवासम्) ऐसे चारजामा आदि को कि जिस के ऊपर ढांपने का वस्त्र पड़ता वा (संदानम्) समीचीन जिस से दान बनता उस यज्ञ आदि को (अर्वन्तम्) प्राप्त करते हुए (पड्वीशम्) प्राप्त पदार्थ को बांटने छिन्न भिन्न करने हारे अग्नि को उढ़ाते ढांपते कलाघरों में लगाते हैं और उस से (या) जिन (प्रिया) प्रिय मनोहर (हिरण्यानि) प्रकाशमय पदार्थों को (देवेषु) विद्वानों में (आ, यामयन्ति) विस्तारते हैं वे उन पदार्थों को पा कर श्रीमान् होते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य बिजुली आदि रूप वाले अग्नि के उपयोग करने और उस को बढ़ाने को जानें तो बहुत सुखों को प्राप्त हों ॥ १६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद । स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥

यत् । ते । सादे । महसा । शूकृतस्य । पार्ष्ण्या । वा । कशया । वा । तुतोद । स्रुचाऽइव । ता । हविषः । अध्वरेषु । सर्वा । ता । ते । ब्रह्मणा । सूदयामि ॥ १७ ॥

पदार्थः-(यत्) यः (ते) तव (सादे) स्थितौ (महसा) महता (शूकृतस्य) शीघ्रं निष्पादितस्य (पार्ष्ण्या) स्पर्शकारकेन (वा) (कशया) प्रेरकया (वा) (तुतोद) तुद्यात् प्रेरयेत् (स्रुचेव) (ता) तानि (हविषः) होतव्यस्य (अध्वरेषु) अहिंसनीयेषु यज्ञेषु (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव (ब्रह्मणा) धनेन (सूदयामि) क्षरयामि ॥ १७ ॥

अन्वयः-हे विद्वन् यद्यस्ते सादे महसा बलेन शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशयाऽश्वं तुतोद वाऽध्वरेषु हविषः स्रुचेव ता तानि तुतोद ता सर्वा ते ब्रह्मणाऽहं सूदयामि ॥ १७ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०-यथा विद्वांसः कशया वेत्रेणाश्वं प्रतोदेन वृषभान् अंकुशेन हस्तिनं प्रताड्य सद्यो गमयन्ति तथैव कलायन्त्रैरग्निं प्रचाल्य विमानादि यानानि शीघ्रं गमयेयुः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (यत्) जो (ते) तेरे (सादे) स्थित होने में (महसा) अत्यन्तबल से (शूकृतस्य) शीघ्र उत्पन्न किये हुए पदार्थ के (पार्ष्ण्या) छूने वाले पदार्थ से (वा) वा (कशया) जिस से प्रेरणा दिई जाती उस कोड़ा से घोड़े को (तुतोद) प्रेरणा देवे (वा) वा (अध्वरेषु) न नष्ट करने योग्य यज्ञों में (हविषः) होमने योग्य वस्तु के (स्रुचेव) जैसे स्रुचा से काम बनें वैसे (ता) उन कामों को प्रेरणा देवे (ता) उन (सर्वा) सब (ते) तेरे कामों को (ब्रह्मणा) धन से मैं (सूदयामि) अलग २ करता हूं ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे विद्वान् जन कोड़ा वा वेंत से घोड़े को पनेड़ी से बैलों को अंकुश से हाथी को अच्छी ताड़ना दे उन को शीघ्र चलाते हैं वैसे ही कलायन्त्रों से अग्नि को अच्छे प्रकार चला कर विमान आदि यानों को शीघ्र चलावें ॥ १७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति । अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८ ॥

चतुःऽत्रिंशत् । वाजिनः । देवऽबन्धोः । वङ्क्रीः । अश्वस्य । स्वऽधितिः । सम् । एति । अच्छिद्रा । गात्रा । वयुना । कृणोत । परुःऽपरुः । अनुघुष्य । वि । शस्त ॥ १८ ॥

पदार्थः—(चतुस्त्रिंशत्) एतत् संख्याकाः (वाजिनः) वेगगुणवतो जलादयः (देवबन्धोः) प्रकाशमानानां पृथिव्यादीनां संबन्धिनः (वङ्क्रीः) कुटिला गतीः (अश्वस्य) शीघ्रगामिनोऽग्नेः

(स्वधितिः) विद्युत् (सम्) (एति) गच्छति (अच्छिद्रा) द्विधाभावरहितानि (गात्रा) गात्राण्यङ्गानि (वयुना) प्रज्ञानानि कर्माणि वा (कृणोत) कुरुत (परुष्परुः) प्रति मर्म (अनुघुष्य) आनुकूल्येन शब्दायित्वा । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (वि) (शस्त) ताड़यत हिंस्त ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यूयं देवबन्धोर्वाजिनोऽश्वस्य या स्वधितिः समेति तां चतुस्त्रिंशद्वङ्क्रीश्च विशस्त परुष्परुरनुघुष्याऽच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यस्मात्कारणाद्विद्युदुत्पद्यते तत्सर्वेषु पृथिव्यादिषु व्याप्तमस्ति । अतस्तडित्ताड़नादिना कस्यचिदङ्गभङ्गो न भवेत्तावत्तां प्रयुञ्जीध्वं यद्याग्निगुणान् विदित्वा क्रियया संप्रयुज्यते तर्हि किं कार्यमसाध्यं स्यात् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो तुम (देवबन्धोः) प्रकाशमान पृथिव्यादिकों के संबन्धी (वाजिनः) वेग वाले (अश्वस्य) शीघ्र गामी अग्नि की जो (स्वधितिः) बिजुली (समेति) अच्छे प्रकार जाती है उस को और (चतुस्त्रिंशत्) चौंतीश प्रकार की (वङ्क्रीः) टेढ़ी बेढ़ी गतियों को (वि, शस्त) तड़काओ अर्थात् कलों को ताड़ना दे उन गतियों को निकालो । तथा (परुष्परुः) प्रत्येक मर्म स्थल पर (अनुघुष्य) अनुकूलता से कलायन्त्रों का शब्द करा कर (अच्छिद्रा) दो टूक होने छिन्न भिन्न होने से रहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम ज्ञान कर्मों को (कृणोत) करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस कारण से बिजुली उत्पन्न होती है वह कारण सब पृथिव्यादिकों में व्याप्त है । इस से बिजुली की ताड़ना आदि से किसी का

अङ्ग भङ्ग न हो उतनी बिजुली काम में लाओ। जो अग्नि के गुणों को जान कर यथायोग्य क्रिया से उस अग्नि का प्रयोग किया जाय तो कौन काम न सिद्ध होने योग्य हों अर्थात् सभी यथेष्ट काम बनें ॥ १८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भव-
तस्तथ ऋतुः। या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता
पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥

एकः । त्वष्टुः । अश्वस्य । विऽशस्ता । द्वा । यन्तारा ।
भवतः । तथा । ऋतुः । या । ते । गात्राणाम् । ऋतुऽथा ।
कृणोमि । ताऽता । पिण्डानाम् । प्र । जुहोमि । अग्नौ॥१९॥

पदार्थः—(एकः) (त्वष्टुः) विद्युतः (अश्वस्य) व्याप्तस्य। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (विशस्ता) (द्वा) द्वौ (यन्तारा) नियन्तारौ (भवतः) (तथा) तेन प्रकारेण (ऋतुः) वसन्तादिः (या) यानि (ते) तव (गात्राणाम्) अङ्गानाम् (ऋतुथा) ऋतौ ऋतौ । अत्र वाच्छन्दसीति थाल् (कृणोमि) (ताता) तानि तानि (पिण्डानाम्) (प्र) (जुहोमि) क्षिपामि (अग्नौ) वह्नौ ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्ते तव विद्याक्रियाभ्यां सिद्धस्य त्वष्टुरश्वस्याग्नेरेकऋतुर्विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथा या यानि गात्राणामृतुथा कर्माणि पिण्डानां च येऽवयवास्ताता प्रयुक्तान्यहं कृणोम्यग्नौ प्रजुहोमि ॥ १९ ॥

भावार्थः—ये सर्वपदार्थविच्छेदकस्य यथर्त्तुप्राप्तपदार्थेषु व्याप्तस्य वह्नेः कालसृष्टिक्रमौ नियन्तारौ प्रशंसितान् गुणान् विज्ञायाऽभीष्टानि कार्याणि साध्नुवन्तः स्थूलानि काष्ठादीनि पावके प्रक्षिप्य बहूनि कार्याणि साध्नुयुस्ते शिल्पविद्याविदः कुतो न स्युः? ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (ते) तेरी विद्या और क्रिया से सिद्ध किये हुए (त्वष्टुः) बिजुलीरूप (अश्वस्य) व्याप्त अग्नि का (एकः) एक (ऋतुः) वसन्तादि ऋतु (विशस्ता) छिन्न भिन्न करने वाला अर्थात् भिन्न २ पदार्थों में लगाने वाला और (द्वा) दो (यन्तारा) उस को नियम में रखने वाले (भवतः) होते हैं (तथा) उसी प्रकार से (या) जो (गात्राणाम्) शरीरों के (ऋतुथा) ऋतु २ में काम उन को और (पिण्डानाम्) अनेक पदार्थों में सङ्घातों के जो २ अङ्ग हैं (ताता) उन २ का काम में प्रयोग में (कृणोमि) कराता हूं और (अग्नौ) अग्नि में (प्र, जुहोमि) होमता हूं ॥ १९ ॥

भावार्थः—जो सब पदार्थों के छिन्न भिन्न करने वाले ऋतु के अनुकूल पाये हुए पदार्थों में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि के काल और सृष्टिक्रम नियम करने वालों और प्रशंसित गुणों को जान अभीष्ट कामों को सिद्ध करते हुए मोटे २ लक्कड़ आदि पदार्थों को आग में छोड़ बहुत कामों को सिद्ध करें वे शिल्प विद्या को जानने वाले कैसे न हों? ॥ १९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व१ आ तिष्ठिपत्ते । मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥

मा । त्वा । तपत् । प्रियः । आत्मा । अपिऽयन्तम् । मा । स्वऽधितिः । तन्वः । आ । तिस्थिपत् । ते । मा । ते ।

गृध्नुः। अविऽशस्ता। अतिऽहाय। छिद्रा। गात्राणि। असिना। मिथू। करिति कः॥ २०॥

पदार्थः–(मा) (त्वा) त्वाम् (तपत्) तपेत् (प्रियः) कमनीयः (आत्मा) (अपियन्तम्) म्रियमाणम् (मा) (स्वधितिः) वज्रवद्विद्युत् (तन्वः) शरीराणि (आ) (तिष्ठिपत्) स्थापयेत् (ते) तव (मा) (ते) तव (गृध्नुः) अभिकांक्षिता (अविशस्ता) अविहिंसितानि (अतिहाय) अतिशयेन त्यक्त्वा (छिद्रा) छिद्राणि (गात्राणि) अङ्गानि (असिना) खड्गेन (मिथू) परस्परम् (कः) कुर्यात्। अत्राडभावो मंत्रे घसेत्यादिना च्लेर्लुक् च॥ २०॥

अन्वयः–हे विद्वँस्ते तव प्रिय आत्मा अपियन्तं त्वा मा तपत् स्वधितिस्ते तन्वो मातिष्ठिपत्। गृध्नुरसिना तेऽविशस्ताच्छिद्रा गात्राण्यतिहाय मिथू मा कः॥ २०॥

भावार्थः–ये मनुष्या योगाभ्यासं कुर्वन्ति ते मृत्युना न पीड्यन्ते जीवने रोगाश्च न दुःखयन्ति॥ २०॥

पदार्थः–हे विद्वान् (ते) तेरा (प्रियः) मनोहर (आत्मा) आत्मा (अपियन्तम्) मरते हुए (त्वा) तुझे (मा, तपत्) मत कष्ट देवे और (स्वधितिः) वज्र के समान बिजुली तेरे (तन्वः) शरीरों को (मा, आ, तिष्ठिपत्) मत ढेर करे तथा (गृध्नुः) अभिकाङ्क्षा करने वाला प्राणी (असिना) तलवार से (ते) तेरे (अविशस्ता) न मारे हुए अर्थात् निर्घायल और (छिद्रा) छिद्र इन्द्रिय सहित (गात्राणि) अङ्गों को (अतिहाय) अतीव छोड़ (मिथू) परस्पर एकता (मा, कः) मत करे॥ २०॥

भावार्थः—जो मनुष्य योगाभ्यास करते हैं वे मृत्यु रोग से नहीं पीड़ित होते । और उन को जीवन में रोग भी दुःखी नहीं करते हैं ॥ २० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

न वा उं एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः । हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥

न । वै । ऊं इति । एतत् । म्रियसे । न । रिष्यसि । देवान् । इत् । एषि । पथिऽभिः । सुऽगेभिः । हरी इति । ते । युञ्जा । पृषती इति । अभूताम् । उप । अस्थात् । वाजी । धुरि । रासभस्य ॥ २१ ॥

पदार्थः—(न) (वै) निश्चये (उ) वितर्के (एतत्) चेतनस्वरूपम् (म्रियसे) (न) (रिष्यसि) हंसि (देवान्) विदुषो दिव्यान् पदार्थान् वा (इत्) एव (एषि) प्राप्नोषि (पथिभिः) मार्गैः (सुगेभिः) सुखेन गच्छन्ति येषु तैः (हरी) धारणाकर्षणगुणौ (ते) तव (युञ्जा) युञ्जानौ (पृषती) सेक्तारौ जलगुणौ (अभूताम्) भवतः (उप) (अस्थात्) तिष्ठेत् (वाजी) वेगः (धुरि) धारके (रासभस्य) शब्दायमानस्य ॥२१॥

अन्वयः—हे विद्वन् यदि यौ ते मन आत्मा वा युञ्जा हरी पृषती अभूतां यस्तावुपास्थात् । रासभस्य धुरि वाजीव भवेस्तर्हि एतत्स्वरूपं प्राप्य नवै म्रियसे न उ रिष्यसि सुगेभिः पथिभिरिदेव देवानेषि ॥२१॥

भावार्थः—ये योगाभ्यासेन समाहितात्मानो दिव्यान् योगिनः संगत्य धर्म्यमार्गेण गच्छन्तः परमात्मनि स्वात्मानं युञ्जते ते प्राप्तमोक्षा जायन्ते ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् यदि जो (ते) तुम्हारे मन वा आत्मा यथायोग्य करने में (युञ्जा) युक्त (हरी) धारण और आकर्षण गुण वाले (पृषती) वा सींचने वाले जल का गुण रखते हुए (अभूताम्) होते हैं उन का जो (उपास्थात्) उपस्थान करे वा (रासभस्य) शब्द करते हुए रथ आदि की (धुरि) धुरी में (वाजी) वेग तुल्य हो तो (एतत्) इस उक्त रूप को पा कर (न,वै, म्रियसे) नहीं मरते (न, उ) अथवा तो न (रिष्यसि) किसी को मारते हो और (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन से जाते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (इत्) ही (देवान्) विद्वानों वा दिव्य पदार्थों को (एषि) प्राप्त होते हो ॥ २१ ॥

भावार्थः—जो योगाभ्यास से समाहित चित्त दिव्य योगी जनों को अच्छे प्रकार प्राप्त हो धर्मयुक्त मार्ग से चलते हुए परमात्मा में अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे मोक्ष पाये हुए होते हैं ॥ २१ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् । अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥ १० ॥

सुऽगव्यम् । नः । वाजी । सुऽअश्व्यम् । पुंसः । पुत्रान् । उत । विश्वऽपुषम् । रयिम् । अनागाःऽत्वम् । नः । अदितिः । कृणोतु । क्षत्रम् । नः । अश्वः । वनताम् । हविष्मान् ॥ २२ ॥ १० ॥

पदार्थः—(सुगव्यम्) सुष्ठु गोषु भवानि यस्मिँस्तत् (नः) अस्माकम् (वाजी) वेगवान् (स्वश्व्यम्) शोभनेष्वश्वेषु भवम् (पुंसः) (पुत्रान्) (उत) (विश्वापुषम्) सर्वपुष्टिप्रदम् (रयिम्) श्रियम् (अनागास्त्वम्) निष्पापस्य भावम् (नः) अस्माकम् (अदितिः) अखण्डितः (कृणोतु) करोतु (क्षत्रम्) राज्यम् (नः) अस्मान् (अश्वः) व्याप्तिशीलोऽग्निः (वनताम्) सेवताम् (हविष्मान्) संवद्धानि हवींषि यस्मिन् सः ॥ २२ ॥

अन्वयः—यथाऽयं वाजी नः सुगव्यं स्वश्व्यं पुंसः पुत्रानुतापि विश्वापुषं रयिं कृणोतु सोऽदितिर्नोऽनागास्त्वं क्षत्रं कृणोतु स हविष्मानश्वो नो वनतां तथा वयमेनं साध्नुयाम ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये पृथिव्यादिविद्यया गवामश्वानां पुंसां पुत्राणां च पूर्णां पुष्टिं श्रियं च कृत्वाऽश्वाग्निविद्यया राज्यं वर्द्धयित्वा निष्पापा भूत्वा सुखिनः स्युस्तेऽन्यानप्येवं कुर्युरिति॥ २२॥

अत्राश्वाग्निविद्याप्रतिपादनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति द्विषष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं दशमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—जैसे यह (वाजी) वेगवान् अग्नि (नः) हमारे (सुगव्यम्) सुन्दर गौओं में हुए पदार्थ जिस में हैं उस को (स्वश्व्यम्) सुन्दर घोड़ों में उत्पन्न हुए को (पुंसः) पुरुषत्व वाले (पुत्रान्) पुत्रों (उत) और (विश्वापुषम्) सब की पुष्टि देने वाले (रयिम्) धन को (कृणोतु) करे सो (अदितिः) अखण्डित न नाश को प्राप्त हुआ (नः) हम को (अनागास्त्वम्) पापपने

से रहित (क्षत्रम्) राज्य को प्राप्त करे सो (हविष्मान्) मिले हैं होम योग्य पदार्थ जिस में वह (अश्वः) व्याप्तिशील अग्नि (नः) हम लोगों को (वननाम्) सेवे वैसे हम लोग इस को सिद्ध करें ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पृथिवी आदि की विद्या से गौ घोड़े और पुरुष सन्तानों की पूरी पुष्टि और धन को संचित करके शीघ्रगामी अश्वरूप अग्नि की विद्या से राज्य को बढ़ा के निष्पाप हो के सुखी हों वे औरों को भी ऐसे ही करें ॥ २२ ॥

इस सूक्त में अश्वरूप अग्नि की विद्या का प्रतिपादन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एक सौ वासठ का सूक्त और दशमा वर्ग समाप्त हुआ ॥

यदक्रन्द इति त्रयोदशर्चस्य त्रिषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य
दीर्घतमा ऋषिः। अश्वोऽग्निर्देवता १। ६। ७। १३
त्रिष्टुप् २ भुरिक् त्रिष्टुप् ३। ८ विराट् त्रिष्टुप्।
५। ९। ११ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ४। १०। १२
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

अथ विद्वदग्निगुणानाह ॥

अब एक सौ तिरसठि के सूक्त का आरम्भ है उस के आदि से विद्वान् और बिजुली के गुणों को कहते हैं ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥

यत् । अक्रन्दः । प्रथमम् । जायमानः । उत्ऽयन् । समुद्रात् । उत । वा । पुरीषात् । श्येनस्य । पक्षा । हरिणस्य । बाहू इति । उपऽस्तुत्यम् । महि । जातम् । ते । अर्वन् ॥ १ ॥

पदार्थः—(यत्) यस्मात् कारणात् (अक्रन्दः) शब्दायसे (प्रथमम्) आदिमम् (जायमानः) उत्पद्यमानः (उद्यन्) उदयं प्राप्नुवन् (समुद्रात्) अन्तरिक्षात् (उत) अपि (वा) पक्षान्तरे (पुरीषात्) पूर्णात्कारणात् (श्येनस्य) (पक्षा) पक्षौ (हरिणस्य) (बाहू) बाधकौ भुजौ (उपस्तुत्यम्) उपस्तोतुमर्हम् (महि) महत् (जातम्) उत्पन्नम् (ते) तव (अर्वन्) विज्ञानवन् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् यत् त्वं समुद्रादुतापि वा पुरीषादुद्यन्निव जायमानः प्रथममक्रन्दः । यस्य ते श्येनस्य पक्षेव हरिणस्य बाहू इव उपस्तुत्यं महि जातं कर्माङ्गमग्निरस्ति स सर्वैः सत्कर्त्तव्यः ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये धर्म्येण ब्रह्मचर्येण विद्या अधीयते ते सूर्यवत् प्रकाशमानाः श्येनवद्वेगवन्तो मृगवदुत्प्लवमानाः प्रशंसिता भवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) विज्ञानवान् विद्वन् (यत्) जिस कारण तू (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (उत) अथ (वा) वा (पुरीषात्) पूर्ण कारण से (उद्यन्) उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के तुल्य (जायमानः) उत्पन्न होता (प्रथमम्) पहिले (अक्रन्दः) शब्द करता है जिस (ते) तेरा (श्येनस्य) बाज के (पक्षा) पंखों के समान (हरिणस्य) हरिण के (बाहू) बाधा करने वाली भुजा के तुल्य (उपस्तुत्यम्) समीप से प्रशंसा के योग्य (महि, जातम्) बड़ा उत्पन्न हुआ काम साधक अग्नि है सो सब को सत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो धर्म युक्त ब्रह्मचर्य से विद्याओं को पढ़ते हैं वे सूर्य के समान प्रकाशमान वाज के समान वेगवान् और हरिण के समान कूदते हुए प्रशंसित होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्। गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

यमेन । दत्तम् । त्रितः । एनम् । अयुनक् । इन्द्रः । एनम् । प्रथमः । अधि । अतिष्ठत् । गन्धर्वः । अस्य । रशनाम् । अगृभ्णात् । सूरात् । अश्वम् । वसवः । निः । अतष्ट ॥ २ ॥

पदार्थः—(यमेन) नियामकेन (दत्तम्) (त्रितः) संप्लावकः । अत्रौणादिकस्तृधातोः कितच् प्रत्ययः (एनम्) पूर्वोक्तमुपस्तुत्यम् (आयुनक्) शिल्पकार्ये नियुञ्जीत (इन्द्रः) विद्युत् (एनम्) अत्र वाच्छन्दसीत्यप्राप्तं णत्वम् (प्रथमः) प्रख्यातिमान् (अधि) (अतिष्ठत्) तिष्ठेत् (गन्धर्वः) यो गां पृथिवीं धरति स वायुः (अस्य) (रशनाम्) स्नेहिकां क्रियाम् (अगृभ्णात्) गृह्णीयात् (सूरात्) सूर्यात् (अश्वम्) आशु गमयितारम् (वसवः) चतुर्विंशतिवार्षिकब्रह्मचर्येण कृतविद्याः (निः) (अतष्ट) तक्षेरन् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे वसवो यूयं यं यमेन दत्तमेनं त्रित इन्द्रोऽयुनक् प्रथम एनमध्यतिष्ठद्गन्धर्वोऽस्य रशनां सूराद्यमश्वं चागृभ्णात्तं निरतष्ट ॥ २ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या विद्वदुपदेशप्राप्तां विद्यां गृहीत्वा विद्युज्जनितकारणाद्विस्तृतं वायुना धृतं सूर्योद्भावितमाशुगामिनमग्निं प्रयोजयन्ति ते दारिद्र्यच्छेत्तारो जायन्ते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (वसवः) चौवीस वर्ष ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए सज्जनो ! तुम जिस (यमेन) नियम कर्त्ता वायु से (दत्तम्) दिये हुए (एनम्) इस पूर्वोक्त प्रशंसित अग्नि को (त्रितः) अनेकों पदार्थ वा अनेकों व्यवहारों को तरने वाला (इन्द्रः) विजुलीरूप अग्नि (आयुनक्) शिल्प कामों में नियुक्त करे (प्रथमः) वा प्रख्यातिमान् पुरुष (एनम्) इस उक्त प्रशंसित अग्नि का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता हो वा (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला वायु (अस्य) इस की (रशनाम्) स्नेह क्रिया को और (सूरात्) सूर्य से (अश्वम्) शीघ्रगमन कराने वाले अग्नि को (अगृभ्णात्) ग्रहण करे उस को (निरतष्ट) निरन्तर काम में लाओ ॥ २ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश से पाई हुई विद्या को ग्रहण कर विजुली से उत्पन्न हुए कारण से फैले वायु से धारण किये सूर्य से प्रगट हुए शीघ्रगामी अग्नि को प्रयोजन में लाते हैं वे दरिद्रपन के नाश करने वाले होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर भी उसी वि० ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन । असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३ ॥

असि । यमः । असि । आदित्यः । अर्वन् । असि । त्रितः । गुह्येन । व्रतेन । असि । सोमेन । समया । विऽपृक्तः । आहुः । ते । त्रीणि । दिवि । बन्धनानि ॥ ३ ॥

पदार्थः-(असि) अस्ति । अत्र सर्वत्र पुरुष व्यत्ययः (यमः) नियन्ता (असि) अस्ति (आदित्यः) अदितावन्तरिक्षे भवः (अर्वन्) सर्वत्र प्राप्तः (असि) अस्ति (त्रितः) सन्तारकः (गुह्येन) गोप्येन (व्रतेन) शीलेन (असि) अस्ति (सोमेन) चन्द्रेणौषधिगणेन वा (समया) सामीप्ये (विपृक्तः) स्वरूपेण संपर्करहितः (आहुः) कथयन्ति (ते) तस्य (त्रीणि) (दिवि) दिव्ये पदार्थे (बन्धनानि) प्रयोजनानि ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या यो यमोऽस्यादित्योऽस्यर्वन्नसि गुह्येन व्रतेन त्रितोऽसि सोमेन समया विपृक्तोऽसि ते तस्य दिवि त्रीणि बन्धनान्याहुरेनं यूयं वित्त ॥ ३ ॥

भावार्थः-यो गूढोऽग्निः पृथिव्यादिवाय्वोषधीषु प्राप्तोऽस्ति यस्य पृथिव्यामन्तरिक्षे सूर्ये च बन्धनानि सन्ति तं सर्वे मनुष्या विजानन्तु ॥ ३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो (यमः) नियम का करने वाला (असि) है (आदित्यः) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध होने वाला सूर्यरूप (असि) है (अर्वन्) सर्वत्र प्राप्त है (गुह्येन) गुप्त करने योग्य (व्रतेन) शील से (त्रितः) अच्छे प्रकार व्यवहारों का तरने वाला (असि) है (सोमेन) चन्द्रमा वा ओषधि गण से (समया) समीप में (विपृक्तः) अपने रूप से अलग (असि) है (ते) उस अग्नि के (दिवि) दिव्य पदार्थ में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) प्रयोजन अगले लोगों ने (आहुः) कहे हैं उस को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भावार्थः-जो गूढ़ अग्नि पृथिव्यादि पदार्थों में वायु और ओषधियों में प्राप्त है जिस के पृथिवी अन्तरिक्ष और सूर्य में बन्धन हैं उस को सब मनुष्य जानें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे । उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥

त्रीणि । ते । आहुः । दिवि । बन्धनानि । त्रीणि । अप्ऽसु । त्रीणि । अन्तरिति । समुद्रे । उतऽइव । मे । वरुणः । छन्त्सि । अर्वन् । यत्र । ते । आहुः । परमम् । जनित्रम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(त्रीणि) (ते) तव (आहुः) वदन्ति (दिवि) प्रकाशमयेऽग्नौ (बन्धनानि) (त्रीणि) (अप्सु) (त्रीणि) (अन्तः) आभ्यन्तरे (समुद्रे) अन्तरिक्षे (उतेव) (मे) मम (वरुणः) श्रेष्ठः (छन्त्सि) ऊर्जयसि (अर्वन्) विज्ञातः (यत्र) अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः (ते) तव (आहुः) कथयन्ति (परमम्) प्रकृष्टम् (जनित्रम्) जन्म ॥ ४ ॥

अन्वयः-हे अर्वन् यत्र ते परमं जनित्रमाहुस्तत्र ममाप्यस्ति वरुणस्त्वं यथा छन्त्सि तथाऽहं छन्दयामि यथा ते त्रीण्यन्तस्समुद्रे त्रीण्यप्सु त्रीणि दिवि च बन्धनान्याहुरुतेव मे सन्ति ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथाऽग्नेः कारणसूक्ष्मस्थूलानि स्वरूपाणि सन्ति वाय्वग्न्यप्पृथिवीनां च वर्त्तन्ते तथा सर्वेषां जातानां पदार्थानां त्रीणि स्वरूपाणि सन्ति । हे विद्वन् यथा तव विद्याजन्म प्रकृष्टमस्ति तथा ममापि स्यात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) विशेष ज्ञान वाले सज्जन (यत्र) जहां (ते) तेरा (परमम्) उत्तम (जनित्रम्) जन्म (आहुः) कहते हैं वहां मेरा भी उत्तम जन्म है (वरुणः) श्रेष्ठ तूं जैसे (छन्त्सि) बलवान् होता है वैसे मैं बलवान् होता हूं जैसे (ते) तेरे (त्रीणि) तीन (अन्तः) भीतर (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (त्रीणि) तीन (अप्सु) जलों में (त्रीणि) तीन (दिवि) प्रकाशमान अग्नि में भी (बन्धनानि) बन्धन (आहुः) अगले जनों ने कहे हैं (उतेव) उसी के समान (मे) मेरे भी हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे अग्नि के कारण सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के भी हैं वैसे सब उत्पन्न हुए पदार्थों के तीन स्वरूप हैं । हे विद्वान् जैसे तुम्हारा विद्या जन्म उत्तम है वैसा मेरा भी हो ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना । अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥ ११ ॥

इमा । ते । वाजिन् । अवऽमार्जनानि । इमा । शफानाम् । सनितुः । निधाना । अत्र । ते । भद्राः । रशनाः । अपश्यम् । ऋतस्य । याः । अभिऽरक्षन्ति । गोपाः ॥ ५ ॥ ११ ॥

पदार्थः—(इमा) इमानि (ते) तव (वाजिन्) विज्ञानवन् (अवमार्जनानि) शोधनानि (इमा) इमानि (शफानाम्) शं फणन्ति तेषाम् । अत्राऽन्येभ्योपि दृश्यत इति डः (सनितुः)

संविभाजकस्य (निधाना) निधानानि (अत्र) अत्र । ऋचि तुनुघेति दीर्घः (ते) तस्य (भद्राः) भजनीयाः (रशनाः) आस्वादनीयाः (अपश्यम्) पश्येयम् (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (याः) (अभिरक्षन्ति) सर्वतः पालयन्ति (गोपाः) रक्षकाः॥५॥

अन्वयः-हे वाजिन् यानीमा ते शफानामवमार्जनानि यानीमा सनितुर्निधाना सन्ति यास्त ऋतस्य भद्रा रशना गोपा अभिरक्षन्ति च तान् पूर्वोक्तानत्राऽहमपश्यम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—येऽनुक्रमात् सर्वेषां पदार्थानां कारणं संयोगं च जानन्ति ते पदार्थवेत्तारो भवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) विज्ञानवान् सज्जन जो (इमा) ये (ते) आप के (शफानाम्) कल्याण को देने वाले व्यवहारों के (अवमार्जनानि) शोधन वा जो (इमा) ये (सनितुः) अच्छे प्रकार विभाग करते हुए आप के (निधाना) पदार्थों के स्थापन करने हैं और (याः) जो (ते) आप के (ऋतस्य) सत्य कारण के (भद्राः) सेवन करने और (रशनाः) स्वाद लेने योग्य पदार्थों को (गोपाः) रक्षा करने वाले (अभिरक्षन्ति) सब ओर से पालते हैं उन सब पदार्थों को (अत्र) यहां मैं (अपश्यम्) देखूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अनुक्रम अर्थात् एक के पीछे एक एक के पीछे एक ऐसे क्रम से समस्त पदार्थों के कारण और संयोग को जानते हैं वे पदार्थवेत्ता होते हैं ॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर भी उसी वि० ॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् । शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

आत्मानम् । ते । मनसा । आरात् । अजानाम् । अवः । दिवा । पतयन्तम् । पतङ्गम् । शिरः । अपश्यम् । पथिऽभिः । सुऽगेभिः । अरेणुऽभिः । जेहमानम् । पतत्रि ॥ ६ ॥

पदार्थः—(आत्मानम्) सर्वाधिष्ठातारम् (ते) तव (मनसा) विज्ञानेन (आरात्) दूरात् समीपाद्वा (अजानाम्) जानीयाम् (अवः) रक्षणम् (दिवा) दिव्यन्तरिक्षे (पतयन्तम्) गमयन्तम् (पतङ्गम्) यः प्रतियातं गच्छति तम् (शिरः) यच्छ्रीयते तदुत्तमाङ्गम् (अपश्यम्) पश्येयम् (पथिभिः) (सुगेभिः) सुखेन गमनाधिकरणैः (अरेणुभिः) अविद्यमानरजस्पर्शैः (जेहमानम्) प्रयतमानम् (पतत्रि) पतनशीलम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथाऽहं ते तवात्मानं मनसाऽऽराऽदपश्यं तथा त्वं मदात्मानं पश्य यथाहं तवावः पतत्रि शिरोऽपश्यं तथा त्वं ममैतत्पश्य यथाऽरेणुभिः सुगेभिः पथिभिर्जेहमानं दिवा पतयन्तं पतङ्गमग्निमश्वमजानां तथा त्वमपि पश्य ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये स्वपरात्मविदो विज्ञानेनोत्पन्नकार्यपरीक्षाद्वारा कारणगुणान् जानन्ति सुखेन विद्वांसो भवन्ति येऽनावर्णे रजोयोगविरहेऽन्तरिक्षेऽग्न्यादि योगेन विमानानि चालयन्ति ते दूरमपि देशं सद्यो गन्तुमर्हन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे मैं (ते) तेरे (आत्मानम्) सब के अधिष्ठाता आत्मा को (मनसा) विज्ञान से (आरात्) दूर से वा निकट से (अपश्यम्) देखूं वैसे तूं मेरे आत्मा को देख जैसे मैं तेरे (अवः) पालने को वा (पतत्रि)

गिरने के स्वभाव को और (शिरः) जो सेवन किया जाता उस शिर को देखूं वैसे तूं मेरे उक्त पदार्थ को देख जैसे (अरेणुभिः) धूलि से रहित (सुगेभिः) सुख से जिन में जावें उन (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानम्) उत्तम यत्न करते (दिवा) अन्तरिक्ष में (पतयन्तम्) जाते हुए (पतङ्गम्) प्रत्येकस्थान में पहुंचने वाले अग्निरूप घोड़े को (अजानाम्) देखूं वैसे तूं भी देख ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अपने वा पराये आत्मा के जानने वाले विज्ञान से उत्पन्न कार्यों की परीक्षा द्वारा कारण गुणों को जानते हैं वे सुख से विद्वान् होते हैं जो विन ढपे विन धूल के संयोग अन्तरिक्ष में अग्नि आदि पदार्थों के योग से विमानादिकों को चलाते हैं वे दूरदेश को भी शीघ्र जाने को योग्य होते हैं ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अत्रा॑ ते रू॒पमु॑त्त॒मम॑पश्यं॒ जिगी॑षमाणमि॒ष आ प॒दे गोः । य॒दा ते॒ मर्त्तो॒ अनु॒ भोग॒मान॒ळादिद्ग्र॑सिष्ठ॒ ओष॑धीरजीगः ॥ ७ ॥

अत्र॑ । ते॒ । रू॒पम् । उ॒त्ऽत॒मम् । अ॒प॒श्य॒म् । जिगी॑षमाणम् । इ॒षः । आ । प॒दे । गोः । य॒दा । ते॒ । मर्त्तः॑ । अनु॑ । भोग॑म् । आन॑ट् । आत् । इत् । ग्रसि॑ष्ठः । ओष॑धीः । अ॒जी॒ग॒रिति॑ ॥ ७ ॥

पदार्थः—(अत्र) अस्मिन् विद्यायोगाभ्यासव्यवहारे । अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः (ते) तव (रूपम्) स्वरूपम् (उत्तमम्) उत्कृष्टम् (अपश्यम्) पश्येयम् (जिगीषमाणम्) जेतुमिच्छन्तम्

(इषः) अन्नानि (आ) (पदे) प्राप्तव्ये (गोः) पृथिव्याः (यदा) यस्मिन् काले (ते) तव (मर्त्तः) मनुष्यः (अनु) (भोगम्) (आनट्) प्राप्नोति । अत्र नक्षतेर्गतिकर्मणो लङि छन्दस्यपि दृश्यत इत्याडागमः। नक्षतीति गतिकर्मा निघं० २।१४ (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (ग्रसिष्ठः) अतिशयेन ग्रसिता (ओषधीः) यवादीन् (अजीगः) भृशं प्राप्नुयात् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यदा ग्रसिष्ठो मर्त्तोऽनुभोगमानट् तदादिदोषधीरजीगः। यथाऽत्राऽहं ते जिगीषमाणमुत्तमं रूपमापश्यं गोः पदे त इषः प्राप्नुयाम् तथा त्वमप्येवं विधायैतत् प्राप्नुहि ॥ ७ ॥

भावार्थः—उद्योगिनमेव भोगा उपलभन्ते नालसं ये प्रयत्नेन पदार्थविद्यां गृह्णन्ति तेऽत्युत्तमां प्रतिष्ठां लभन्ते ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (यदा) जब (ग्रसिष्ठः) अतीव खाने वाला (मर्त्तः) मनुष्य (अनु, भोगम्) अनुकूल भोग को (आनट्) प्राप्त होता है तब (आत्, इत्) उसी समय (ओषधीः) यवादि ओषधियों को (अजीगः) निरन्तर प्राप्त हो जैसे (अत्र) इस विद्या और योगाभ्यास व्यवहार में मैं (ते) तुम्हारे (जिगीषमाणम्) जीतने की इच्छा करने वाले (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) रूप को (आ, अपश्यम्) अच्छे प्रकार देखूं और (गोः) पृथिवी के (पदे) पाने योग्य स्थान में (ते) आप के (इषः) अन्नादिकों को प्राप्त होऊं वैसे आप भी ऐसा विधान कर इस उक्त व्यवहारादि को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुष ही को अच्छे २ पदार्थ भोग प्राप्त होते हैं किन्तु आलस्य करने वाले को नहीं जो यत्न के साथ पदार्थविद्या का ग्रहण करते हैं वे अतिउत्तम प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर भी उसी वि० ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्य्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् । अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥

अनु । त्वा । रथः । अनु । मर्य्यः । अर्वन् । अनु । गावः । अनु । भगः । कनीनाम् । अनु । व्रातासः । तव । सख्यम् । ईयुः । अनु । देवाः । ममिरे । वीर्यम् । ते ॥ ८ ॥

पदार्थः—(अनु) (त्वा) त्वाम् (रथः) विमानादियानम् (अनु) (मर्यः) मरणधर्मा मनुष्यः (अर्वन्) अश्ववद्वर्त्तमान (अनु) (गावः) धेनवः (अनु) (भगः) ऐश्वर्यम् (कनीनाम्) कामयमानानाम् (अनु) (व्रातासः) व्रतेषु सत्याचरणेषु भवाः (तव) (सख्यम्) सख्युर्भावः कर्म वा (ईयुः) प्राप्नुयुः (अनु) (देवाः) विद्वांसः (ममिरे) निर्मिमते (वीर्यम्) पराक्रमम् (ते) तव ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् यं त्वाऽनु रथोऽनु मर्य्योऽनु गावः कनीनामनु भगो व्रातासो देवास्ते वीर्यमनु ममिरे ते तस्य तव सख्यमन्वीयुः ॥ ८ ॥

भावार्थः—यथाऽग्निमनुयानानि मनुष्या गच्छन्ति तथाऽध्यापकोपदेशकावनु विज्ञानं लभन्ते ये विदुषः सखीन् कुर्वन्ति ते सत्याचारा वीर्यवन्तो जायन्ते ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के समान वर्त्तमान जिस (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (रथः) विमानादि रथ फिर (अनु) पीछे (मर्य्यः) मरण धर्म रखने वाला मनुष्य फिर (अनु) पीछे (गावः) गौयें और (कनीनाम्) कामना करते हुए सज्जनों के (अनु) पीछे (भगः) ऐश्वर्य तथा (व्रातासः) सत्य आचरणों में प्रसिद्ध (देवाः) विद्वान् जन (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम को (अनु, ममिरे) अनुकूलता से सिद्ध करते हैं वे उक्त विद्वान् (तव) तेरी (सख्यम्) मित्रता वा मित्र के काम को (अनु, ईयुः) अनुकूलता से प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि के अनुकूल विमानादि यानों को मनुष्य प्राप्त होते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक के अनुकूल विज्ञान को प्राप्त होते हैं जो विद्वानों को मित्र करते हैं वे सत्याचरण शील और पराक्रमवान् होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् । देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥

हिरण्यऽशृङ्गः । अयः । अस्य । पादाः । मनःऽजवाः । अवरः । इन्द्रः । आसीत् । देवाः । इत् । अस्य । हविःऽअद्यम् । आयन् । यः । अर्वन्तम् । प्रथमः । अधिऽअतिष्ठत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(हिरण्यशृङ्गः) हिरण्यानि तेजांसि शृङ्गाणीव यस्य सः (अयः) प्राप्तिसाधकाः धातवः (अस्य) विद्युद्रूपस्याऽग्नेः (पादाः) पद्यन्ते गच्छन्ति यैस्त इव (मनोजवाः) मनोवद्वेगवन्तः (अवरः) अर्वाचीनः (इन्द्रः) सूर्य्यः (आसीत्) अस्ति

(देवाः) विद्वांसो भूम्यादयो वा (इत्) एव (अस्य) (हविरद्यम्) अत्तुं योग्यम् (आयन्) आप्नुवन्ति (यः) (अर्वन्तम्) वेगवन्तमग्निमश्वम् (प्रथमः) प्रख्यातः (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता भवति ॥ ९ ॥

अन्वयः–हे मनुष्या यो हिरण्यशृङ्गो यस्याऽस्य मनोजवा अयः पादाः सन्ति सोऽवर इन्द्र आसीत् । यः प्रथमोऽर्वन्तमध्यतिष्ठद्यस्याऽस्य हविरद्यमिद्देवा आयन् स बहुव्यापी विद्युद्विधोऽग्निरस्तीति विजानीत ॥ ९ ॥

भावार्थः—अस्मिञ्जगति त्रिधाऽग्निर्वर्त्तते एकोऽतिसूक्ष्मः कारणाख्यो द्वितीयः सूक्ष्मो मूर्त्तद्रव्यव्यापी तृतीयः स्थूलः सूर्यादिस्वरूपो य इमं गुणकर्मस्वभावतो विज्ञाय संप्रयुञ्जते ते सततं सुखिनो भवन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः–हे मनुष्यो जो ऐसा है कि (हिरण्यशृङ्गः) जिस के तेजः प्रकाश शृङ्गों के समान हैं तथा जिस (अस्य) इस विजुलीरूप अग्नि के (मनोजवाः) मन के समान वेग वाले (अयः) प्राप्तिसाधक धातु (पादाः) जिन से चलें उन पैरों के समान हैं वह (अवरः) एक निराला (इन्द्रः) सूर्य (आसीत्) है और (यः) जो (प्रथमः) विख्यात (अर्वन्तम्) वेग वाले अश्वरूप अग्नि का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता होता जिस (अस्य) इस के सम्बन्ध में (हविरद्यम्) खाने योग्य होमने के पदार्थ (इत्) ही को (देवाः) विद्वान् वा भूमि आदि तेंतीश देव (आयन्) प्राप्त हैं वह बहुतों में व्याप्त होने वाला विजुली के समान अग्नि है ऐसा जानो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस जगत् में तीन प्रकार का अग्नि है एक अतिसूक्ष्म जो कारण रूप कहाता दूसरा वह जो सूक्ष्म मूर्त्तिमान् पदार्थों में व्याप्त होने वाला

और तीसरा स्थूल सूर्यादि स्वरूप वाला जो इस को गुण कर्म और स्वभाव से ज्ञान कर इस का अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः। हंसाइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥ १२ ॥

ईर्मऽअन्तासः । सिलिकऽमध्यमासः । सम् । शूरणासः । दिव्यासः । अत्याः । हंसाःऽइव । श्रेणिशः । यतन्ते । यत् । आक्षिषुः । दिव्यम् । अज्मम् । अश्वाः ॥ १० ॥ १२ ॥

पदार्थः—(ईर्मान्तासः) कंपनान्ताः (सिलिकमध्यमासः) सिलिकानां मध्ये भवाः (सम्) (शूरणासः) हिंसका कलायन्त्रताडनेन प्रकाशमानाः (दिव्यासः) दिव्यगुणकर्मस्वभावाः (अत्याः) अतितुं शीलाः (हंसाइव) हंसपङ्क्तिवत् (श्रेणिशः) पङ्क्तिवद्वर्त्तमानाः (यतन्ते) यातयन्ति । अन्तर्भावितण्यर्थः (यत्) ये (आक्षिषुः) व्याप्नुवन्ति (दिव्यम्) दिवि भवम् (अज्मम्) गमनाधिकरणं मार्गम् (अश्वाः) आशुगन्तारः ॥ १० ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यद्ये सिलिकमध्यमास ईर्मान्तासः शूरणासो दिव्यासोऽत्या अश्वा हंसाइव श्रेणिशः संयतन्ते दिव्यमज्ममाक्षिषुस्तान्वाय्वग्निजलादीन् कार्य्येषु संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ १० ॥

भावार्थः—ये शिलिकादि यन्त्रैस्संघर्षितेभ्यः पदार्थेभ्यो विद्युदादीनुत्पाद्य यानादिषु संप्रयोज्य कार्यसिद्धिं कुर्वन्ति ते मनुष्या महतीं श्रियं लभन्ते ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यत्) जो (सिलिकमध्यमासः) स्थान में प्रसिद्ध हुए (ईर्मान्तासः) कम्पन जिन का अन्त (शूरणासः) हिंसक अर्थात् कलायन्त्र को प्रबलता से ताड़ना देते हुए प्रकाशमान (दिव्यासः) दिव्यगुण कर्म स्वभाव वाले (अत्याः) निरन्तर जाने वाले (अश्वाः) शीघ्र जाने वाले अग्न्यादि रूप घोड़े (हंसाइव) हंसों के समान (श्रेणिशः) पङ्क्तिसी किये हुए वर्त्तमान (सं,यतन्ते) अच्छा प्रयत्न कराते हैं और (दिव्यम्) अन्तरिक्ष में हुए (अज्मम्) मार्ग को (आक्षिषुः) व्याप्त होते हैं उन वायु अग्नि और जलादिकों को कार्यों में अच्छे प्रकार लगाओ ॥ १० ॥

भावार्थः—जो शिलिकादि यन्त्रों से अर्थात् जिन में कोठे दर कोठे कलाओं के होते हैं उन यन्त्रों से बिजुली आदि उत्पन्न कर और विमान आदि यानों में उन का संप्रयोग कर कार्य सिद्धि को करते हैं वे मनुष्य बड़ी भारीलक्ष्मी को पाते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑इव॒ ध्रजी॑मान् । तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ ११ ॥

तव॑ । शरी॑रम् । प॒त॒यि॒ष्णु । अ॒र्व॒न् । तव॑ । चि॒त्तम् । वातः॑ऽइव । ध्रजी॑मान् । तव॑ । शृङ्गा॑णि । विऽस्थि॑ता । पु॒रु॒ऽत्रा । अर॑ण्येषु । जर्भु॑राणा । च॒र॒न्ति॒ ॥ ११ ॥

पदार्थः—(तव) (शरीरम्) (पतयिष्णुः) गमनशीलम् (अर्वन्) गन्तश्ववद्वर्त्तमान (तव) (चित्तम्) अन्तःकरणम् (वातइव) (ध्रजीमान्) गतिमान् (तव) (शृङ्गाणि) शृङ्गइव उच्छ्रितानि कर्माणि (विष्ठिता) विशेषेण स्थितानि (पुरुत्रा) पुरुषु बहुषु (अरण्येषु) वनेषु (जर्भुराणा) अत्यन्तं पुष्टानि (चरन्ति) गच्छन्ति ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् यथा पतयिष्णु यानं तथा तव शरीरं ध्रजीमान् वातइव तव चित्तं पुरुत्राऽरण्येषु विष्ठिता जर्भुराणा शृङ्गाण्यग्रेश्चरन्ति तथा तवेन्द्रियाणि प्राणाश्च वर्त्तन्ते ॥ ११ ॥

भावार्थः—यैः प्रचालिता विद्युन्मनोवद्गच्छति शैलशृङ्गवद्यानानि रच्यन्ते ये च वनाग्निवदग्न्यागारेषु पावकं प्रज्वाल्य यानानि चालयन्ति ते सर्वत्र भूगोले विचरन्ति ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) गमनशील घोड़े के समान वर्त्ताव रखने वाले जैसे (पतयिष्णु) गमनशील विमान आदि यान वा (तव) तेरा (शरीरम्) शरीर वा (ध्रजीमान्) गति वाला (वात इव) पवन के समान (तव) तेरा (चित्तम्) चित्त वा (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) बनों में (विष्ठिता) विशेषता से ठहरे हुए (जर्भुराणा) अत्यन्त पुष्ट (शृङ्गाणि) सींगों के तुल्य ऊंचे वा उत्कृष्ट अत्युत्तम काम अग्नि से (चरन्ति) चलते हैं वैसे (तव) तेरे इन्द्रिय और प्राण वर्त्तमान हैं ॥ ११ ॥

भावार्थः—जिहनों ने चलाई हुई विजुली मन के समान जाती वा पर्वतों के शिखरों के समान विमान आदि यान रचे हैं और जो बन की आग के समान अग्नि के घरों में अग्नि जला कर विमान आदि रथों को चलाते हैं वे सर्वत्र भूगोल में विचरते हैं ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः । अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥

उप । प्र । अगात् । शसनम् । वाजी । अर्वा । देवद्रीचा । मनसा । दीध्यानः । अजः । पुरः । नीयते । नाभिः । अस्य । अनु । पश्चात् । कवयः । यन्ति । रेभाः ॥ १२ ॥

पदार्थः—(उप) (प्र) (अगात्) गच्छति (शसनम्) हिंसनं ताडनम् (वाजी) वेगवान् (अर्वा) अश्वइव (देवद्रीचा) देवान् विदुषोऽञ्चता (मनसा) (दीध्यानः) देदीप्यमानः (अजः) जन्मरहितः (पुरः) पुरस्तात् (नीयते) (नाभिः) बन्धनम् (अस्य) (अनु) (पश्चात्) (कवयः) मेधाविनः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (रेभाः) विदितशब्दविद्याः ॥ १२ ॥

अन्वयः—यो दीध्यानोऽजो वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसाऽस्य शसनमुपप्रागाद्येनाऽस्य नाभिः पुरः पश्चाच्च नीयते यं रेभाः कवयोऽनुयन्ति तं सर्वे संसेव्यन्ताम् ॥ १२ ॥

भावार्थः—नहि कर्षणताड़नाशिल्पविद्याभ्यो विना अग्न्यादयः पदार्थाः कार्यसाधका जायन्ते ॥ १२ ॥

पदार्थः—जो (दीध्यानः) देदीप्यमान (अजः) कारणरूप से अजन्मा (वाजी) वेगवान् (अर्वा) घोड़े के समान अग्नि (देवद्रीचा) विद्वानों का सत्कार करते हुए (मनसा) मन से (अस्य) इस कलाधर के (शासनम्) ताड़न को (उप, प्रागात्) सब प्रकार से प्राप्त किया जाता है जिस से इस का (नाभिः) बन्धन (पुरः) प्रथम से और (पश्चात्) पीछे (नीयते) प्राप्त किया जाता है जिस को (रेभाः) शब्द विद्या को जाने हुए (कवयः) मेधावी बुद्धिमान् जन (अनु, यन्ति) अनुग्रह से चाहते हैं उस को सब सेवें ॥ १२ ॥

भावार्थः—खैंचना वा ताड़ना आदि शिल्प विद्याओं के विना अग्नि आदि पदार्थ कार्यों के सिद्ध करने वाले नहीं होते हैं ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च । अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १३ ॥ १३ ॥

उप । प्र । अगात् । परमम् । यत् । सधऽस्थम् । अर्वान् । अच्छ । पितरम् । मातरम् । च । अद्य । देवान् । जुष्टऽतमः । हि । गम्याः । अथ । आ । शास्ते । दाशुषे । वार्याणि ॥ १३ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(उप) (प्र) (अगात्) गच्छन्ति (परमम्) प्रकृष्टम् (यत्) यः (सधस्थम्) सहस्थानम् (अर्वान्) अग्न्याद्यश्वान् (अच्छ) सम्यक् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (पितरम्) जनकमध्यापकं वा (मातरम्) जननीं विद्यां वा (च)

(अद्य) अस्मिन् दिने । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (देवान्) विदुषो दिव्यान् भोगान् गुणान् वा (जुष्टतमः) अतिशयेन सेवमानः (हि) किल (गम्याः) गन्तुं योग्याः (अथ) (आ) (शास्ते) इच्छति (दाशुषे) दात्रे (वार्याणि) वर्त्तुं योग्यानि सुखानि ॥ १३ ॥

अन्वयः—यद्यो देवान् जुष्टतमोऽर्वानद्य परमं सधस्थं मातरं पितरं चाच्छोपप्रागादथ दाशुषे वार्याणि हि गम्याः प्रियाश्चा शास्ते सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ १३ ॥

भावार्थः—ये मातृपिताऽऽचार्यैः प्राप्तशिक्षाः प्रशस्तस्थाननिवासिनो विद्वत्सङ्गप्रियाः सर्वेषां सुखदातारो वर्त्तन्ते तेऽत्रोत्तममानन्दं लभन्ते ॥ १३ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वद्विद्युद्गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति त्रिषष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं त्रयोदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—(यत्) जो (देवान्) विद्वान् वा दिव्य भोग और गुणों को (जुष्टतमः) अतीव सेवता हुआ (अर्वान्) अग्नि आदि पदार्थरूपी घोड़ों को (अद्य) आज के दिन (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (मातरम्) उत्पन्न करने वाली माता (पितरं, च) और जन्म कराने वाले पिता वा अध्यापक को (अच्छ, उप, प्रागात्) अच्छे प्रकार सब ओर से प्राप्त होना (अथ) अथवा (दाशुषे) देने वाले के लिये (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्य सुख और (हि) निश्चय से (गम्याः) गमन करने योग्य प्यारी स्त्रियों वा प्राप्त होने योग्य क्रियाओं की (आ, शास्ते) आशा करता है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो माता पिता और आचार्य से शिक्षा पाये प्रशंसित स्थानों के निवासी विद्वानों के संग की प्रीति रखने वाले सब के सुख देने वाले वर्त्तमान हैं वे यहां उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और बिजुली के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एक सौ तिरसठ का सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अस्येत्यस्य द्विपञ्चाशदृचस्य चतुष्षष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः । अस्येत्यारभ्य गौरीर्मिमायेत्येतदन्तानामेकचत्वारिंशतो मन्त्राणां विश्वेदेवाः । तस्याः समुद्रा इत्यस्याः पूर्वभागस्य वाक् । उत्तरार्द्धस्यापः । शकमयमित्यस्याः पुरोभागस्य शकधूमः । चरमभागस्य सोमः । त्रयःकेशिन इत्यस्या अग्निवायुसूर्याः । चत्वारि-वागित्यस्या वाक् । इन्द्रमित्यस्याः कृष्णं नियानमित्यस्याश्च सूर्यः । द्वादशप्रधय इत्यस्याः संवत्सरात्मा कालः । यस्ते स्तन इत्यस्याः सरस्वती । यज्ञेनेत्यस्याः साध्याः । समानमेतदित्यस्याः सूर्यः पर्जन्यो वाऽग्नयो वा । दिव्यं सुपर्णमित्यस्याः सरस्वान् सूर्यो वा देवताः ॥ १ । ९ । २७ । ३५ । ४० । ५० । विराट् त्रिष्टुप् ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ११ । १८ । २६ । ३१ । ३३ । ३४ । ३७ । ४३ । ४६ । ४७ । ४९ निचृत् त्रिष्टुप् । २ । १० । १३ । १६ । १७ । १९ । २१ । २४ । २८ । ३२ । ५२ त्रिष्टुप् । १४ । ३९ । ४१ । ४४ । ४५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

१२।१५। २३ जगती। २९।३६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः
स्वरः । २० भुरिक् पङ्क्तिः । २२ । २५ ४८ स्वराट्
पङ्क्तिः ३० । ३८ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
४२ भुरिक् बृहती छन्दः । मध्यमः
स्वरः । ५१ विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अथ त्रिविधाग्निविषयमाह ॥

अब एकसौ चौंसठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में तीन प्रकार के अग्नि के विषय को कहते हैं ॥

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः । तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

अस्य । वामस्य । पलितस्य । होतुः । तस्य । भ्राता । मध्यमः । अस्ति । अश्नः । तृतीयः । भ्राता । घृतऽपृष्ठः । अस्य । अत्र । अपश्यम् । विश्पतिम् । सप्तऽपुत्रम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(अस्य) (वामस्य) शिल्पगुणैः प्रशस्तस्य (पलितस्य) प्राप्तवृद्धावस्थस्य (होतुः) दातुः (तस्य) (भ्राता) भ्रातेव (मध्यमः) मध्ये भवः पृथिव्यादिस्थो द्वितीयः (अस्ति) (अश्नः) भोक्ता (तृतीयः) (भ्राता) बन्धुवद्वर्त्तमानः (घृतपृष्ठः) घृतं जलं पृष्ठेऽस्य (अस्य) (अत्र) (अपश्यम्) (विश्पतिम्) प्रजायाः पालकम् (सप्तपुत्रम्) सप्तविधैस्तत्त्वैर्जातम् ॥ १ ॥

अन्वयः—वामस्य पलितस्याऽस्य प्रथमो होतुस्तस्य भ्रातेवाऽश्नो मध्यमो घृतपृष्ठोऽस्य भ्रातेव तृतीयोऽस्ति । अत्र सप्तपुत्रं विश्पतिं सूर्यमपश्यम् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—अस्मिञ्जगति त्रिविधोऽग्निरस्ति एको विद्युद्रूपः द्वितीयः काष्ठादिप्रज्वलितो भूमिस्थस्तृतीयः सवितृमण्डलस्थः सन् सर्वं जगत् पालयति ॥ १ ॥

पदार्थः—(वामस्य) शिल्प के गुणों से प्रशंसित (पलितस्य) वृद्धावस्था को प्राप्त (अस्य) इस सज्जन का बिजुलीरूप पहिला (होतुः) देने वा हवन करने वाले (तस्य) उस के (भ्राता) बन्धु के समान (अश्नः) पदार्थों का भक्षण करने वाला (मध्यमः) पृथिवी आदि लोकों में प्रसिद्ध हुआ दूसरा और (घृतपृष्ठः) घृत वा जल जिस के पीठ पर अर्थात् ऊपर रहता वह (अस्य) इस के (भ्राता) भ्राता के समान (तृतीयः) तीसरा (अस्ति) है । (अत्र) यहां (सप्तपुत्रम्) सात प्रकार के तत्त्वों से उत्पन्न (विश्पतिम्) प्रजा जनों की पालना करने वाले सूर्य को मैं (अपश्यम्) देखूं ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—इस जगत् में तीन प्रकार का अग्नि है एक बिजुलीरूप दूसरा काष्ठादि में जलता हुआ भूमिस्थ और तीसरा वह है जो कि सूर्यमण्डलस्थ हो कर समस्त जगत् की पालना करता है ॥ १ ॥

अथोक्ताग्निप्रयोगतो विमानादियानविषयमाह ॥

अब अग्नि के प्रयोग से विमान आदि यान के विषय को कहते हैं ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा । त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

सप्त । युञ्जन्ति । रथम् । एकऽचक्रम् । एकः । अश्वः । वहति । सप्तऽनामा । त्रिऽनाभि । चक्रम् । अजरम् । अनर्वम् । यत्र । इमा । विश्वा । भुवना । अधि । तस्थुः ॥ २ ॥

पदार्थः—(सप्त) (युञ्जन्ति) (रथम्) विमानादियानम् (एकचक्रम्) एकं सर्वकलाभ्रमणार्थं चक्रं यस्मिन् तम् (एकः) असहायः (अश्वः) आशुगामी वायुरग्निर्वा (वहति) प्रापयति (सप्तनामा) सप्त नामानि यस्य (त्रिनाभि) त्रयो नाभयो बन्धनानि यस्मिन् (चक्रम्) चक्रम् (अजरम्) जरादिरोगरहितम् (अनर्वम्) प्राकृताश्वयोजनरहितम् (यत्र) (इमा) (विश्वा) अखिलानि (भुवनानि) लोकाः (अधि) (तस्थुः) तिष्ठन्ति ॥२॥

अन्वयः—यत्र एकचक्रं रथं सप्तनामा एकोऽश्वो वहति यत्र सप्त कला युञ्जन्ति यत्रेमा विश्वा भुवनाऽधितस्थुस्तत्राऽनर्वमजरं त्रिनाभि चक्रं शिल्पिनः स्थापयेयुः ॥ २ ॥

भावार्थः—ये विद्युदग्निजलाद्यश्वयुक्तं यानं विधाय सर्वलोकाऽधिष्ठान आकाशे गमनाऽगमने सुखेन कुर्य्युस्ते समग्रैश्वर्यं लभेरन्॥२॥

पदार्थः—(यत्र) जहां (एकचक्रम्) एक सब कलाओं के घूमने के लिये जिस में चक्कर है उस (रथम्) विमान आदि यान को (सप्तनामा) सप्तनामों वाला (एकः) एक (अश्वः) शीघ्रगामी वायु वा अग्नि (वहति) पहुंचाता है वा जहां (सप्त) सात कलों के घर (युञ्जन्ति) युक्त होते हैं वा जहां (इमा) ये (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकलोकान्तर (अधि, तस्थुः) अधिष्ठित होते हैं वहां (अनर्वम्) प्राकृत प्रसिद्ध घोड़ों से रहित (अजरम्) और जीर्णता से रहित (त्रिनाभि) तीन जिस में बन्धन उस (चक्रम्) एक चक्कर को शिल्पी जन स्थापन करें ॥ २ ॥

भावार्थः—जो लोग बिजुली और जलादि रूप घोड़ों से युक्त विमानादि रथ को बनाय सब लोकों के अधिष्ठान अर्थात् जिसमें सब लोक ठहरते हैं उस आकाश में गमनाऽगमन सुख से करें वे समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः । सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

इमम् । रथम् । अधि । ये । सप्त । तस्थुः । सप्तऽचक्रम् । सप्त । वहन्ति । अश्वाः । सप्त । स्वसारः । अभि । सम् । नवन्ते । यत्र । गवाम् । निऽहिता । सप्त । नाम ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इमम्) (रथम्) (अधि) (ये) (सप्त) (तस्थुः) तिष्ठेयुः (सप्तचक्रम्) सप्त चक्राणि यस्मिँस्तम् (सप्त) (वहन्ति) चालयन्ति (अश्वाः) आशुगामिनोऽग्न्यादयः (सप्त) (स्वसारः) भगिन्यइव वर्त्तमानाः कलाः (अभि) (सम्) (नवन्ते) गच्छन्ति नवतइति गतिकर्मा० निघं० २ । १४ (यत्र) यस्मिन् (गवाम्) किरणानाम् (निहिता) धृतानि (सप्त) (नाम) नामानि ॥ ३ ॥

अन्वयः—यत्र गवां सप्त नाम निहिता सन्ति तत्र स्वसारइव सप्ताऽभि संनवन्ते सप्ताश्वाश्च वहन्ति तमिमं सप्तचक्रं रथं ये सप्त जना अधितस्थुस्तेऽत्र सुखिनो भवन्ति ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये स्वाम्यध्यापकाध्येतृनिर्मातृनियन्तृचालका अनेकचक्रतत्त्वादियुक्तानि यानानि रचयितुं जानन्ति ते प्रशंसिता भवन्ति यस्मिञ्छेदनाकर्षणादिगुणाः किरणा वर्त्तन्ते तत्र प्राणा अपि सन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यत्र) जिस में (गवाम्) किरणों के (सप्त) सात (नाम) नाम (निहिता) निरन्तर धरे स्थापित किये हुए हैं और वहां (स्वसारः) बहिनों के समान वर्त्तमान (सप्त) सात कला (अभि, सं, नवन्ते) सामने मिलती हैं (सप्त) सात (अश्वाः) शीघ्रगामी अग्नि आदि पदार्थ (वहन्ति) पहुंचाते हैं उस (इमम्) इस (सप्तचक्रम्) सात चक्कर वाले (रथम्) रथ को (ये) जो (सप्त) सातजन (अधि, तस्थुः) अधिष्ठित होते हैं वे इस जगत् में सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो स्वामी अध्यापक अध्येता रचने वाले नियम कर्त्ता और चलाने वाले अनेक चक्कर और तत्वादि युक्त विमानादि यानों को रचने को जानते हैं वे प्रशंसित होते हैं जिन में छेदन वा आकर्षण गुण वाले किरण वर्त्तमान हैं वहां प्राण भी हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्त्ति। भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुपगात्प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

कः। ददर्श। प्रथमम्। जायमानम्। अस्थन्ऽवन्तम्। यत्। अनस्था। बिभर्त्ति। भूम्याः। असुः। असृक्। आत्मा। क्व। स्वित्। कः। विद्वांसम्। उप। गात्। प्रष्टुम्। एतत् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(कः) (ददर्श) पश्यति (प्रथमम्) आदिमं प्रख्यातम् (जायमानम्) (अस्थन्वन्तम्) अस्थियुक्तं देहम् (यत्) यम् (अनस्था) अस्थिरहितः (बिभर्त्ति) धरति (भूम्याः) पृथिव्या मध्ये (असुः) प्राणः (असृक्) रुधिरम् (आत्मा) जीवः (क) कस्मिन् (स्वित्) अपि (कः) (विद्वांसम्) (उप) (गात्) गच्छेत् । अत्राडभावः (प्रष्टुम्) (एतत्) ॥ ४ ॥

अन्वयः—यद्यं प्रथमं सृष्टेः प्रागादिमं जायमानमस्थन्वन्तं देहम्भूम्या मध्येऽनस्थासुरसृगात्मा च बिभर्त्ति तं क स्वित् को ददर्श क एतत् प्रष्टुं विद्वांसमुपगात् ॥ ४ ॥

भावार्थः—यदा सृष्टेः प्रागीश्वरेण सर्वेषां शरीराणि निर्मितानि तदा कोऽपि जीव एतेषां द्रष्टा नासीत् । यदा तेषु जीवात्मानः प्रवेशितास्तदा प्राणादयो वायवः रुधिरादयो धातवो जीवाश्च मिलित्वा देहं धरन्ति स्म जीवयन्ति स्म च इत्यादि प्राप्तये विद्वांसं कश्चिदेव प्रष्टुं याति न सर्वे ॥ ४ ॥

पदार्थः—(यत्) जिस (प्रथमम्) प्रख्यात प्रथम अर्थात् सृष्टि के पहिले (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए (अस्थन्वन्तम्) हड्डियों से युक्त देह को (भूम्याः) भूमि के बीच (अनस्था) हड्डियों से रहित (असुः) प्राण (असृक्) रुधिर और (आत्मा) जीव (बिभर्त्ति) धारण करता उस को (क, स्वित्) कहीं भी (कः) कौन (ददर्श) देखता है (कः) और कौन (एतत्) इस उक्त विषय के (प्रष्टुम्) पूछने को (विद्वांसम्) विद्वान् के (उप, गात्) समीप जावे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जब सृष्टि के पहिले ईश्वर ने सब के शरीर बनाये तब कोई जीव इन का देखने वाला न हुआ। जब उन में जीवात्मा प्रवेश किये तब प्राण आदि वायु रुधिर आदि धातु और जीव भी मिल कर देह को धारण करते हुए और चेष्टा करते हुए इत्यादि विषय की प्राप्ति के लिये विद्वान् को कोई ही पूछने को जाता है किन्तु सब नहीं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर भी उसी वि० ॥

पाकः पृच्छामि मनसाऽविजानन्देवानामेना निहिता पदानि। वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥ १४ ॥

पाकः । पृच्छामि । मनसा । अविजानन् । देवानाम् । एना । निऽहिता । पदानि । वत्से । बष्कये । अधि । सप्त । तन्तून् । वि । तत्निरे । कवयः । ओतवै । ऊं इति ॥ ५ ॥ १४ ॥

पदार्थः—(पाकः) ब्रह्मचर्यादितपसा परिपचनीयोऽहम् (पृच्छामि) (मनसा) अन्तःकरणेन (अविजानन्) न विजानन् (देवानाम्) दिव्यानां विदुषाम् (एना) एनानि (निहिता) स्थितानि (पदानि) पत्तुं प्राप्तुं ज्ञातुं योग्यानि (वत्से) अपत्ये (बष्कये) द्रष्टव्ये (अधि) (सप्त) (तन्तून्) विस्तृतान् धातून् (वि) विविधतया (तत्निरे) विस्तृणन्ति (कवयः) मेधाविनः (ओतवै) विस्ताराय (उ) वितर्के ॥ ५ ॥

अन्वयः—ये कवय ओतवै बष्कये वत्से सप्त तन्तून् व्यधि तत्निरे तेषामु देवानामेना निहिता पदान्यविजानन् पाकोऽहं मनसा पृच्छामि ॥ ५ ॥

भावार्थः-मनुष्यैर्बाल्यावस्थामारभ्याविदितानि शास्त्राणि विद्वद्भ्यः पठित्वा सर्वा विद्या अध्यापनेन प्रसारणीयाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो (कवयः) बुद्धिमान् जन (ओतवै) विस्तार के लिये (बष्कये) देखने योग्य (वत्से) सन्तान के निमित्त (सप्त) सात (तन्तून्) विस्तृत धातुओं को (वि, तत्निरे) अनेक प्रकार से अधिक २ विस्तारते हैं (उ) उन्हीं (देवानाम्) दिव्य विद्वानों के (एना) इन (निहिता) स्थापित किये हुए (पदानि) प्राप्त होने वा जानने योग्य पदों को अधिकारों को (अवि-जानन्) न जानता हुआ (पाकः) ब्रह्मचर्यादि तपस्या से परिपक्व होने योग्य मैं (मनसा) अन्तःकरण से (पृच्छामि) पूछता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि बाल्यावस्था को लेकर अविदितशास्त्रों को विद्वानों से पढ़ कर दूसरों को पढ़ाने से सब विद्याओं को फैलावें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अचि॑कित्वाञ्चि॒कितु॑षश्चि॒दत्र॑ क॒वीन्पृ॑च्छामि वि॒-
द्मने॒ न वि॒द्वान् । वि यस्त॒स्तम्भ॒ षळि॒मा रजां॑स्य॒-
जस्य॑ रू॒पे किमपि॑ स्वि॒देक॑म् ॥ ६ ॥

अचि॑कित्वान् । चि॒कि॒तुषः॑ । चि॒त् । अत्र॑ । क॒वीन् । पृ॒च्छा॒मि॒ । वि॒द्मने॑ । न । वि॒द्वान् । वि । यः । त॒स्तम्भ॑ । षट् । इ॒मा । रजां॑सि । अ॒जस्य॑ । रू॒पे । किम् । अपि॑ । स्वि॒त् । एक॑म् ॥ ६ ॥

पदार्थः-(अचिकित्वान्) अविद्वान् (चिकितुषः) (चित्) अपि (अत्र) अस्मिन् विद्याव्यवहारे (कवीन्) पूर्णविद्यानाप्तान्

(पृच्छामि) (विद्मने) विज्ञानाय (न) इव (विद्वान्) विद्यावान् (वि) (यः) (तस्तम्भ) स्तभ्नाति (षट्) (इमा) इमानि (रजांसि) पृथिव्यादीनि स्थूलानि तत्त्वानि (अजस्य) प्रकृतेर्जीवस्य वा (रूपे) (किम्) (अपि) (स्वित्) (एकम्) ॥६॥

अन्वयः—अचिकित्वानहं चिदत्र चिकितुषः कवीन् विद्वान् विद्मने न पृच्छामि । यः षडिमा रजांसि वितस्तम्भ । अजस्य रूपे किं स्विदप्येकमासीत्तद्यूयं ब्रूत ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा अविद्वांसो विदुषः पृष्ट्वा विद्वांसो भवन्ति तथा विद्वांसोऽपि परमविदुषः पृष्ट्वा विद्या वर्द्धयेयुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(अचिकित्वान्) अविद्वान् मैं (चित्) भी (अत्र) इस विद्या व्यवहार में (चिकितुषः) अज्ञानरूपी रोग के दूर करने वाले (कवीन्) पूरी विद्यायुक्त आप्तविद्वानों को (विद्वान्) विद्यावान् (विद्मने) विशेष जानने के लिये (न) जैसे पूछे वैसे (पृच्छामि) पूछता हूं । (यः) जो (षट्) छः (इमा) इन (रजांसि) पृथिवी आदि स्थूल तत्त्वों को (वि,तस्तम्भ) इकट्ठा करता है (अजस्य) प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण, वा जीव के (रूपे) रूप में (किम्) क्या (स्वित् ,अपि) ही (एकम्) एक हुआ है इस को तुम कहो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे अविद्वान् विद्वानों को पूछ के विद्वान् होते हैं वैसे विद्वान् भी परमविद्वानों को पूछ कर विद्या की वृद्धि करें ॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः । शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥

इह । ब्रवीतु । यः । ईम् । अङ्ग । वेद । अस्य । वामस्य । निऽहितम् । पदम् । वेरिति वेः । शीर्ष्णः । क्षीरम् । दुह्रते । गावः । अस्य । वव्रिम् । वसानाः । उदकम् । पदा । अपुः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(इह) अस्मिन् प्रश्ने (ब्रवीतु) वदतु (यः) (ईम्) सर्वतः (अङ्ग) (वेद) जानाति (अस्य) (वामस्य) प्रशस्तस्य जगतः (निहितम्) स्थापितम् (पदम्) (वेः) पक्षिणः (शीर्ष्णः) शिरसः (क्षीरम्) दुग्धम् (दुह्रते) दुहन्ति (गावः) धेनवः (अस्य) (वव्रिम्) वर्त्तुमर्हम् (वसानाः) आच्छादिताः (उदकम्) जलम् (पदा) पादेन (अपुः) पिबन्ति ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे अङ्ग योऽस्य वामस्य वेर्निहितं पदं वेद स इहेमुत्तरं ब्रवीतु यथा वसाना गावः क्षीरं दुह्रते वृक्षाः पदोदकमपुस्तथा शीर्ष्णोऽस्य वव्रिं जानीयुः ॥ ७ ॥

भावार्थः—यथा पक्षिणोऽन्तरिक्षे भ्रमन्ति तथैव सर्वे लोका अन्तरिक्षे भ्रमन्ति । यथा गावो वत्सेभ्यो दुग्धं दत्वा वर्द्धयन्ति तथा कारणानि कार्याणि वर्द्धयन्ति । यथा वा वृक्षा मूलेन जलं पीत्वा वर्द्धन्ते तथा कारणेन कार्य्यं वर्द्धते ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) प्यारे (यः) जो (अस्य) इस (वामस्य) प्रशंसित (वेः) पक्षी के (निहितम्) धरे हुए (पदम्) पद को (वेद) जानता है वह (इह) इस प्रश्न में (ईम्) सब ओर से उत्तर (ब्रवीतु) कह देवे

जैसे (वसानाः) भूल ओढ़े हुई (गावः) गौयें (क्षीरम्) दूध को (दुह्रते) पूरा करतीं अर्थात् दुहाती हैं वा वृक्ष (पदा) पग से (उदकम्) जल को (अपुः) पीते हैं वैसे (शीर्ष्णः, अस्य) इस के शिर के (वव्रिम्) स्वीकार करने योग्य सब व्यवहार को जानें ॥ ७ ॥

भावार्थः—जैसे पक्षी अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं वैसे ही सब लोक अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं जैसे गौयें बछड़ों के लिये दूध देकर बढ़ाती हैं वैसे कारण कार्यों को बढाते हैं वा जैसे वृक्ष जड़ से जल पीकर बढ़ते हैं वैसे कारण से कार्य बढ़ता है ॥ ७ ॥

अथ सूर्यादीनां कार्य्यकारणव्यवस्थामाह ॥

अब सूर्यादिकों की कार्य कारण व्यवस्था को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे । सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

माता । पितरम् । ऋते । आ । बभाज । धीती । अग्रे । मनसा । सम् । हि । जग्मे । सा । बीभत्सुः । गर्भऽरसा । निऽविद्धा । नमस्वन्तः । इत् । उपऽवाकम् । ईयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(माता) पृथिवी (पितरम्) सूर्यम् (ऋते) विना (आ) (बभाज) सर्वं सेवते (धीती) धीत्या धारणेन । अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः (अग्रे) सृष्टेः प्राक् (मनसा) विज्ञानेन (सम्) सम्यक् (हि) किल (जग्मे) संगच्छते (सा) (बीभत्सुः) या भयप्रदा (गर्भरसा) रसो गर्भे यस्याः सा (निविद्धा) नितरां विद्युदादिभिस्ताडिता (नमस्वन्तः) प्रशस्तान्नयुक्ता भूत्वा (इत्) एव (उपवाकम्) उपगता वाक् यस्मिंस्तम् (ईयुः) यन्ति प्राप्नुवन्ति ॥ ८ ॥

अन्वयः—बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा सा माता धीत्यग्रे पितरमृते आबभाज यंहि मनसा संजग्मे तामाप्य नमस्वन्तइदुपवाकमीयुः ॥८॥

भावार्थः—यदि सूर्येण विना पृथिवी स्यात् तर्हि स्वशक्त्या सर्वान् कुतो न धारयेत्। यदि पृथिवी न स्यात्तर्हि सूर्यः स्वप्रकाशवान् कथं न भवेत्। अतोऽस्यां सृष्टौ स्व२स्वभावेन सर्वे पदार्थाः स्वतन्त्राः सन्ति सापेक्षव्यवहारे परतन्त्राश्च ॥ ८ ॥

पदार्थः—(बीभत्सुः) जो भयंकर (गर्भरसा) जिस के गर्भ में रसरूप विद्यमान (निविद्धा) निरन्तर बंधी हुई (सा) वह (माता) पृथिवी (धीती) धारणा से (अग्रे) सृष्टि के पूर्व (पितरम्) सूर्य के (ऋते) विना सब का (आ, बभाज) अच्छे प्रकार सेवन करती है जिस को (हि) निश्चय के साथ (मनसा) विज्ञान से (सं, जग्मे) संगत होते प्राप्त होते उस को प्राप्त हो कर (नमस्वन्तः) प्रशंसित अन्नयुक्त हो कर (इत्) ही (उपवाकम्) जिस में वचन मिलता उस भाग को (ईयुः) प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—यदि सूर्य के विना पृथिवी हो तो अपनी शक्ति से सब को क्यों न धारण करे जो पृथिवी न हो तो सूर्य आप ही प्रकाशमान कैसे न हो इस कारण इस सृष्टि में अपने२ स्वभाव से सब पदार्थ स्वतन्त्र हैं और सापेक्षव्यवहार में परतन्त्र भी हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युक्ता मातासींद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः। अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

युक्ता। माता। आसीत्। धुरि। दक्षिणायाः। अतिष्ठत्। गर्भः। वृजनीषु। अन्तः। इति। अमीमेत्। वत्सः। अनु। गाम्। अपश्यत्। विश्वऽरूप्यम्। त्रिषु। योजनेषु॥ ९॥

पदार्थः—(युक्ता) (माता) पृथिवी (आसीत्) (धुरि) या धरति तस्याम् (दक्षिणायाः) दक्षिणस्याम् (अतिष्ठत्) तिष्ठति (गर्भः) ग्रहीतव्यः (वृजनीषु) वर्जनीयासु कक्षासु (अन्तः) मध्ये (अमीमेत्) प्रक्षिपति (वत्सः) (अनु) (गाम्) (अपश्यत्) पश्यति (विश्वरूप्यम्) विश्वेषु अखिलेषु रूपेषु भवम् (त्रिषु) (योजनेषु) बन्धनेषु॥ ९॥

अन्वयः—यो गर्भो वृजनीष्वन्तरतिष्ठत् यस्य दक्षिणाया धुरि माता युक्ताऽऽसीत् वत्सो गामिवामीमेत् त्रिषु योजनेषु विश्वरूप्यमन्वपश्यत् स पदार्थविद्यां ज्ञातुमर्हति॥ ९॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा गर्भरूपो मेघो गच्छत्सु घनेषु विराजते तथा सर्वेषां मान्यप्रदा भूमिराकर्षणेषु युक्तास्ति यथा वत्सो गामनु गच्छति तथेयं सूर्यमनुभ्रमति यस्यां सर्वाणि शुक्लादीनि रूपाणि सन्ति सैव सर्वेषां पालिकास्ति॥ ९॥

पदार्थः—जो (गर्भः) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (वृजनीषु) वर्जनीय कक्षाओं में (अन्तः) भीतर (अतिष्ठत्) स्थिर होता है जिस के (दक्षिणायाः) दाहिनी (धुरि) धारण करने वाली धुरी में (माता) पृथिवी (युक्ता) जुड़ी हुई (आसीत्) है। और (वत्सः) बछड़ा (गाम्) गौ को जैसे वैसे (अमीमेत्) प्रक्षेप करता है तथा (त्रिषु) तीन (योजनेषु) बंधनों में (विश्वरूप्यम्) समस्त पदार्थों में हुए भाव को (अन्वपश्यत्) अनुकूलता से देखता है वह पदार्थ विद्या के जानने को योग्य है॥ ९॥

भावार्थः–इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे गर्भरूप मेघ चलते हुए बद्दलों में विराजमान है वैसे सब को मान्य देने वाली भूमि आकर्षणों में युक्त है जैसे बछड़ा गौ के पीछे जाता है वैसे यह भूमि सूर्य का अनुभ्रमण करती है जिस में समस्त सुपेद, हरे, पीले, लाल, आदि रूप हैं वही सब की पालना करने वाली है॥ ९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति। मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्॥ १०॥ १५॥

तिस्रः। मातॄः। त्रीन्। पितॄन्। बिभ्रत्। एकः। ऊर्ध्वः। तस्थौ। न। ईम्। अव। ग्लापयन्ति। मन्त्रयन्ते। दिवः। अमुष्य। पृष्ठे। विश्वऽविदम्। वाचम्। अविश्वऽमिन्वाम्॥ १०॥ १५॥

पदार्थः—(तिस्रः) (मातॄः) उत्तममध्यमनिकृष्टरूपा भूमीः (त्रीन्) विद्युत्प्रसिद्धसूर्यस्वरूपानग्नीन् (पितॄन्) पालकान् (बिभ्रत्) धरन् सन् (एकः) सूत्रात्मा वायुः (ऊर्ध्वः) (तस्थौ) तिष्ठति (न) (ईम्) सर्वतः (अव) (ग्लापयन्ति) (मन्त्रयन्ते) गुप्तं भाषन्ते (दिवः) प्रकाशमानस्य (अमुष्य) दूरे स्थितस्य सूर्यस्य (पृष्ठे) परभागे (विश्वविदम्) विश्वे विदन्ति ताम् (वाचम्) वाणीम् (अविश्वमिन्वाम्) असर्वसेविताम॥ १०॥

अन्वयः—यस्तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄनीं बिभ्रत्सन्नूर्द्ध्व एकस्तस्थौ ये विद्वांस एतमव ग्लापयन्ति । अविश्वमिन्वां विश्वमिदं वाच मन्त्रयन्ते तेऽमुष्य दिवः पृष्ठे विराजन्ते न ते दुःखमश्नुवते ॥१०॥

भावार्थः—यस्सूत्रात्मा वायुरग्निं जलं पृथिवीं च धरति तमभ्यासेन विदित्वा सत्यां वाचमन्येभ्य उपदिशेत् ॥ १० ॥

पदार्थः—जो (तिस्रः) तीन (मातॄः) उत्तम, मध्यम, अधम, भूमियों तथा (त्रीन्) बिजुली, प्रसिद्ध और सूर्य रूप तीन (पितॄन्) पालक अग्नियों को (ईम्) सब ओर से (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः) ऊपर ऊंचा (एकः) एक सूत्रात्मा वायु (तस्थौ) स्थिर होता है जो विद्वान् जन उस को (अव,ग्लापयन्ति) कहते सुनते अर्थात् उस के विषय में वार्त्तालाप करते हैं तथा (अविश्वमिन्वाम्) जो सब से न सेवन किई गई (विश्वविदम्) सब लोग उस को प्राप्त होते उस (वाचम्) वाणी को (मन्त्रयन्ते) सब ओर से विचारपूर्वक गुप्त कहते हैं वे (अमुष्य) उस दूरस्थ (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (पृष्ठे) परभाग में विराजमान होते हैं वे (न) नहीं दुःख को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

भावार्थः—जो सूत्रात्मा वायु अग्नि जल और पृथिवी को धारण करता है उस को अभ्यास से जान के सत्य वाणी का औरों के लिये उपदेश करे ॥१०॥

अथ विशेषतः कालव्यवस्थामाह ॥

अब विशेष कर काल की व्यवस्था को कहते हैं ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परि द्यामृतस्य । आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥

द्वादशऽअरम् । नहि । तत् । जराय । वर्वर्त्ति । चक्रम् । परि । द्याम् । ऋतस्य । आ । पुत्राः । अग्ने । मिथुनासः । अत्र । सप्त । शतानि । विंशतिः । च । तस्थुः ॥ ११ ॥

पदार्थः–(द्वादशारम्) द्वादश अरा मासा अवयवा यस्य तं संवत्सरम् (नहि) (तत्) (जराय) हानये (वर्वर्त्ति) भृशं वर्त्तते (चक्रम्) चक्रवद्वर्त्तमानम् (परि) सर्वतः (द्याम्) द्योतमानं सूर्य्यम् (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (आ) (पुत्राः) तनयाइव (अग्ने) विद्वन् (मिथुनासः) संयोगेनोत्पन्नाः (अत्र) अस्मिन् संसारे (सप्त) (शतानि) (विंशतिः) (च)(तस्थुः) तिष्ठन्ति ॥ ११ ॥

अन्वयः–हे अग्ने विद्वँस्त्वमत्र यो द्वादशारं चक्रं द्यां परिवर्वर्त्ति तज्जराय नहि भवति । येऽत्र ऋतस्य कारणस्य सकाशात्सप्त शतानि विंशतिश्च मिथुनासः पुत्रास्तत्त्वविषया आतस्थुस्तान् विजानीहि॥ ११॥

भावार्थः–कालोऽनन्तोऽपरिणामी विभुश्च वर्त्तते । नैव तस्य कदाचिदुत्पत्तिर्नाशोवाऽस्ति । एतज्जगतः कारणे विंशत्युत्तराणि यानि सप्तशतानि तत्त्वानि सन्ति तानि मिलित्वा स्थूलानीश्वरनियोगेन जातानि सन्ति । एषां कारणमजं नित्यं च वर्त्तते यावद्भिन्नान्येतानि तत्त्वानि प्रत्यक्षतया न जानीयात् तावद्विद्यावृद्धये मनुष्यः प्रयतेत ॥ ११॥

पदार्थः–हे (अग्ने) विद्वान् तू (अत्र) इस संसार में जो (द्वादशारम्) जिस के बारह अंग हैं वह (चक्रम्) चक्र के समान वर्त्तमान संवत्सर (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य के (परि, वर्वर्त्ति) सब ओर से निरन्तर वर्त्तमान है (तत्) वह (जराय) हानि के लिये (नहि) नहीं होता है जो इस संसार में (ऋतस्य) सत्य कारण से (सप्त) सात (शतानि) सौ (विंशतिः) वीश (च) भी (मिथुनासः) संयोग से उत्पन्न हुए (पुत्राः) पुत्रों के समान वर्त्तमान तत्त्व विषय (आ, तस्थुः) अपने २ विषयों में लगे हैं उन को जान ॥११॥

भावार्थः—काल अनन्त अपरिणामी और विभु वर्त्तमान है न उस की कभी उत्पत्ति है और न नाश है इस जगत् के कारण में सात सौ वीश जो तत्त्व हैं वे मिल के स्थूल ईश्वर के निर्माण किये हुए योग से उत्पन्न हुए हैं इन का कारण अज और नित्य है जब तक अलग २ इन तत्त्वों को प्रत्यक्ष में न जाने तब तक विद्या की वृद्धि के लिये मनुष्य यत्न किया करें ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम् । अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

पञ्चऽपादम् । पितरम् । द्वादशऽआकृतिम् । दिवः । आहुः । परे । अर्द्धे । पुरीषिणम् । अथ । इमे । अन्ये । उपरे । विऽचक्षणम् । सप्तऽचक्रे । षट्ऽअरे । आहुः । अर्पितम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(पञ्चपादम्) पञ्च क्षणमुहूर्त्तप्रहरदिवसपक्षाः पादा यस्य तं संवत्सरं सूर्यं वा (पितरम्) पितृवत्पालननिमित्तम् (द्वादशाकृतिम्) द्वादश मासा आकृतिर्यस्य तम् (दिवः) प्रकाशमानस्य (आहुः) कथयन्ति (परे) (अर्द्धे) (पुरीषिणम्) पुराणां संहितानां पदार्थानामीषितारम् (अथ) (इमे) (अन्ये) अन्ये पदार्थाः (उपरे) मेघमण्डले (विचक्षणम्) वाग्विषयम् (सप्तचक्रे) सप्तविधानि चक्राणि भ्रमणपरिधयो यस्मिंस्तस्मिन् (षळरे) षट् ऋतवोऽरा यस्मिंस्तस्मिन् (आहुः) कथयन्ति (अर्पितम्) स्थापितम ॥ १२ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या यूयं पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं पुरीषिणं दिवः परेऽर्द्धे विद्वांस आहुः। अथेमेऽन्ये विद्वांसः षडरे सप्तचक्रे उपरे विचक्षणमर्पितमाहुस्तं विजानीत ॥ १२ ॥

भावार्थः-हे मनुष्या यूयमत्र कालस्याऽवयवा विवक्षिता यत्र विभौ नित्येऽनन्ते काले सर्वं जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयान्तं लभ्यते तस्य सूक्ष्मत्वात् कालस्य बोधः कठिनोऽस्ति तस्मादेतं प्रयत्नेन विजानीत ॥१२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम (पञ्चपादम्) क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस, पक्ष, ये पाञ्च पग जिस के (पितरम्) पिता के तुल्य पालना कराने वाले (द्वादशाकृतिम्) बारह महीने जिस का आकार (पुरीषिणम्) और मिले हुए पदार्थों की प्राप्ति वा हिंसा कराने वाले अर्थात् उन की मिलावट को अलग २ कराने हारे संवत्सर को (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (परे) परले (अर्द्धे) आधेभाग में विद्वान् (आहुः) कहते हैं बताते हैं (अथ) इस के अनन्तर (इमे) ये (अन्ये) और विद्वान् जन (षडरे) जिस में छः ऋतु आरारूप और (सप्तचक्रे) सात चक्र घूमने की परिधि विद्यमान उस (उपरे) मेघमण्डल में (विचक्षणम्) वाणी के विषय को (अर्पितम्) स्थापित (आहुः) कहते हैं उस को जानो ॥ १२ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो तुम इस मन्त्रमें कालके अवयव कहने को अभीष्ट हैं जिस विभु एक रस सनातन काल में समस्त जगत् उत्पत्तिस्थिति प्रलयान्त लब्ध होता है उस के सूक्ष्मत्व से उस काल का बोध कठिन है इस से इस को प्रयत्न से जानो ॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पञ्चा॑रे च॒क्रे प॑रि॒वर्त्त॑माने॒ तस्मि॒न्ना त॑स्थु॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑। तस्य॒ नाक्ष॑स्तप्यते॒ भूरि॑भारः स॒नादे॒व न शी॑र्यते॒ सना॑भिः ॥ १३ ॥

पञ्च॑ऽअरे । च॒क्रे । परि॒ऽवर्त्त॑माने । तस्मि॑न् । आ । त॒स्थुः । भुव॑नानि । विश्वा॑ । तस्य॑ । न । अक्षः॑ । त॒प्य॒ते॒ । भूरि॑ऽभारः । स॒नात् । ए॒व । न । शी॒र्य॒ते॒ । सऽना॑भिः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(पञ्चारे) पञ्च तत्त्वानि अरा यस्मिँस्तस्मिन् (चक्रे) चक्रवद्गम्यमाने (परिवर्त्तमाने) (तस्मिन्) (आ) (तस्थुः) तिष्ठन्ति (भुवनानि) लोकाः (विश्वा) सर्वाणि (तस्य) (न) निषेधे (अक्षः) पुरोभागः (तप्यते) (भूरिभारः) भूरि बहुर्भारो यस्मिन् सः (सनात्) सनातने (एव) (न) (शीर्यते) हिंस्यते (सनाभिः) समाना नाभिर्बन्धनं यस्य सः ॥१३॥

अन्वयः-हे विद्वांसः पञ्चारे परिवर्त्तमाने तस्मिञ्चक्रे विश्वा भुवनान्यातस्थुः । तस्याक्षो न तप्यते सनाभिर्भूरिभारः कालः सनात् नैव शीर्यते ॥ १३ ॥

भावार्थः-यथेदं चक्रं कारणकालाकाशादिगात्मकं जगत्परमेश्वरे व्याप्तं वर्त्तते तथैव कालाकाशादिषु कार्यकारणात्मकं जगद्व्याप्यमस्ति ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (पञ्चारे) जिस में पाञ्च तत्त्व अराऽरूप हैं (परि, वर्त्तमाने) और जो सब ओर से वर्त्तमान (तस्मिन्) उस (चक्रे) पहिये के समान ढुलकते हुए पंचतत्त्व के पंचीकरण में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (आ, तस्थुः) अच्छे प्रकार स्थिर होते हैं (तस्य) उस का (अक्षः) अगलाभाग अर्थात् जो उस से प्रथम ईश्वर है वह (न) नहीं (तप्यते) कष्ट को प्राप्त होता अर्थात् संसार के सुख दुःख का अनुभव नहीं करता (सनाभिः)

और जिस का समान बन्धन है अर्थात् क्रिया के साथ में लगा हुआ है और (भूरिभारः) जिस में बहुत भार हैं बहुत कार्य कारण आरोपित हैं वह काल (सनात्) सनातनपन से (नैव) नहीं (शीर्यते) नष्ट होता ॥ १३ ॥

भावार्थः—जैसे यह चक्ररूप कारण काल आकाश और दिशात्मक जगत् परमेश्वर में व्याप्य है वैसे ही काल आकाश और दिशाओं में कार्यकारणात्मक जगत् व्याप्य है ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति । सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

सऽनेमि । चक्रम् । अजरम् । वि । ववृते । उत्तानायाम् । दश । युक्ताः । वहन्ति । सूर्यस्य । चक्षुः । रजसा । एति । आऽवृतम् । तस्मिन् । आर्पिता । भुवनानि । विश्वा ॥ १४ ॥

पदार्थः—(सनेमि) समानो नेमिर्यस्मिँस्तत् (चक्रम्) चक्रवद्वर्त्तमानम् (अजरम्) जरादोषरहितम् (वि) विशेषे (ववृते) पुनः पुनरावर्त्तते । अत्र तुजादीनामिति दीर्घः (उत्तानायाम्) उत्कृष्टतया विस्तृतायां जगत्याम् (दश) प्राणाः (युक्ताः) (वहन्ति) प्रापयन्ति (सूर्यस्य) (चक्षुः) व्यक्तिकारकम् (रजसा) लोकैः सह (एति) गच्छति (आवृतम्) समन्ताच्छादितम् (तस्मिन्) (आर्पिता) स्थापितानि (भुवनानि) भूगोलाख्यानि (विश्वा) सर्वाणि ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यत्सनेम्यजरं चक्रमुत्तानायां विवर्त्तते दश युक्ता वहन्ति यत्सूर्य्यस्य चक्षू रजसाऽऽवृतमेति । तस्मिन् विश्वा भुवनान्यार्पिता सन्तीति यूयं वित्त ॥ १४ ॥

भावार्थः—यो विभुर्नित्यः सर्वलोकाधारस्समयो वर्त्तते तस्यैव गत्या सूर्य्यादिलोकाः प्रकाशिता भवन्तीति सर्वैर्वेद्यम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सनेमि) समान नेमि नाभि वाला (अजरम्) जरा दोष से रहित (चक्रम्) चक्र के समान वर्त्तमान कालचक्र (उत्तानायाम्) उत्तम विथरे हुए जगत् में (वि, वर्त्तते) विशेष कर बार २ आता है और उस कालचक्र को (दश) दशप्राण (युक्ताः) युक्त (वहन्ति) वहाते हैं। जो (सूर्यस्य) सूर्य का (चक्षुः) व्यक्ति प्रगटता करने वाला भाग (रजसा) लोकों के साथ (आवृतम्) सब ओर से आवरण को (एति) प्राप्त होता है अर्थात् ढंप जाता है (तस्मिन्) उस में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) भूगोल (आर्पिता) स्थापित हैं ऐसा तुम जानो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो विभु नित्य और सब लोकों का आधार समय वर्त्तमान है उसी काल की गति से सूर्य आदि लोक प्रकाशित होते हैं ऐसा सब लोगों को जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अथ पृथिव्यादीनां रचनाविशेषमाह ॥

अब पृथिव्यादिकों की रचना विशेष की व्याख्या करते हैं ॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति । तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥ १६ ॥

साकंऽजानाम् । सप्तथम् । आहुः । एकऽजम् । षट् । इत् । यमाः । ऋषयः । देवजाः । इति । तेषाम् । इष्टानि । विऽहितानि । धामऽशः । स्थात्रे । रेजन्ते । विऽकृतानि । रूपऽशः ॥ १५ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(साकंजानाम्) सहैव जातानाम् (सप्तथम्) सप्तमम् (आहुः) कथयन्ति (एकजम्) एकस्मात्कारणाज्जातम् (षट्) (इत्) एव (यमाः) नियन्तारः (ऋषयः) गन्तारः (देवजाः) देवाद्विद्युतो जाताः (इति) प्रकारार्थे (तेषाम्) (इष्टानि) संगतानि (विहितानि) ईश्वरेण रचितानि (धामशः) धामानि धामानि(स्थात्रे) स्थितस्य कारणस्य मध्ये। अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी (रेजन्ते) कम्पन्ते (विकृतानि) विकारमवस्थान्तरं प्राप्तानि (रूपशः) रूपैः सह ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यूयं साकंजानां मध्ये यदेकजं महत्तत्त्वं सप्तथमाहुः। यत्र षड् देवजा यमा ऋषय ऋतवो वर्त्तन्ते तेषां मध्ये यानि धामश इष्टानीश्वरेण विहितानि यानि रूपशो विकृतानि स्थात्रे रेजन्ते तानीदिति विजानीत ॥ १५ ॥

भावार्थः—येऽत्र जगति पदार्थाः सन्ति ते सर्वे ब्रह्मनियोगतो युगपज्जायन्ते नात्र रचनायां क्रमाकांक्षाऽस्ति कुतः परमेश्वरस्य सर्वव्यापकत्वाऽनन्तसामर्थ्यवत्त्वाभ्याम् । अतः स स्वयमचलितः सन् सर्वाणि भुवनानि चालयति सईश्वरोऽविकारी सन् सर्वान् विकारयति यथा क्रमेण ऋतवो वर्त्तन्ते स्वानि स्वानि लिंगान्युत्पादयन्ति तथैव पदार्था उत्पद्यमानाः स्वान् स्वान् गुणान् प्राप्नुवन्ति ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो तुम (साकंजानाम्) एक साथ उत्पन्न हुए पदार्थों के बीच में जिस (एकजम्) एक कारण से उत्पन्न महत्तत्त्व को (सप्तथम्) सातवां (आहुः) कहते हैं जहां (षट्) छः (देवजाः) देदीप्यमान विजुली से उत्पन्न हुए (यमाः) नियन्ता अर्थात् सब को यथायोग्य व्यवहारों में वर्त्ताने वाले (ऋषयः) आप सब में मिलने वाले ऋतु वर्त्तमान हैं (तेषाम्) उन के बीच जिन (धामशः) प्रत्येक स्थान में (इष्टानि) मिले हुए पदार्थों को ईश्वर ने (विहितानि) रचा है और जो (रूपशः) रूपों के साथ (विकृतानि) अवस्थान्तर को प्राप्त हुए (स्थात्रे) स्थित कारण के बीच (रेजन्ते) चलायमान होते उन सब को (इत्) ही (इति) इस प्रकार से जानो ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो इस जगत् में पदार्थ हैं वे सब ब्रह्म के निश्चित किये हुए व्यवहार से एक साथ उत्पन्न होते हैं यहां रचना में क्रम की आकांक्षा नहीं है क्योंकि परमेश्वर के सर्वव्यापक और अनन्त सामर्थ्य वाला होने से इस से वह आप अचलित हुआ सब भुवनों को चलाता है और वह ईश्वर विकाररहित होता हुआ सब को विकारयुक्त करता है जैसे क्रम से ऋतु वर्त्तमान हैं और अपने २ चिन्हों को समय २ में उत्पन्न करते हैं वैसे ही उत्पन्न होते हुए पदार्थ अपने २ गुणों को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

अथ विद्वद्विदुषीविषयमाह ॥

अब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों के विषय को कहते हैं ॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः । कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥

स्त्रियः । सतीः । तान् । ऊं इति । मे । पुंसः । आहुः । पश्यत् । अक्षण्ऽवान् । न । वि । चेतत् । अन्धः । कविः ।

यः । पुत्रः । सः । ईम् । आ । चिकेत । यः । ता । विऽजानात् । सः । पितुः । पिता । असत् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(स्त्रियः) (सतीः) विद्यासुशिक्षादिशुभगुणसहिताः (तान्) (उ) वितर्के (मे) मम (पुंसः) पुरुषान् (आहुः) कथयन्ति (पश्यत्) पश्येत् । अत्र लङ्यडभावः (अक्षण्वान्) विज्ञानी (न) निषेधे (वि) (चेतत्) चेतेत् (अन्धः) ज्ञानशून्यः (कविः) विक्रान्तप्रज्ञः (यः) (पुत्रः) पवित्रोपचितः (सः) (ईम्) (आ) (चिकेत) विजानीत (यः) (ता) तानि (विजानात्) (सः) (पितुः) जनकस्य (पिता) जनकः (असत्) भवेत् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यान् अक्षण्वान् पश्यदन्धो न विचेतत् सतीः स्त्रिय आहुस्तानु मे पुंसो जनान् विजानीत। यः कविः पुत्रस्ता तानीमा विजानात् स विद्वान् स्यात् यो विद्वान् भवेत् स पितुष्पितासदिति यूयं चिकेत ॥ १६ ॥

भावार्थः—यद्विद्वांसो जानंति तदविद्वांसो ज्ञातुं न शक्नुवन्ति । यथा विद्वांसः पुत्रानध्याप्य विदुषः कुर्युस्तथा विदुष्यः स्त्रियः कन्या विदुषीः संपादयेयुः । ये पृथिवीमारभ्य परमेश्वरपर्यन्तानां पदार्थानां गुणकर्मस्वभावान् विज्ञाय धर्म्मार्थकाममोक्षान् साध्नुवन्ति ते युवानोऽपि वृद्धानां पितरो भवन्ति ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिन को (अक्षण्वान्) विज्ञानवान् पुरुष (पश्यत्) देखे (अन्धः) और अन्ध अर्थात् अज्ञानी पुरुष (न) नहीं (वि, चेतत्) विविध प्रकार से जाने और जिन को (सतीः) विद्या तथा उत्तम शिक्षादि

शुभ गुणों से युक्त (स्त्रियः) स्त्रियां (आहुः) कहती हैं (तानु) उन्हीं (मे) मेरे (पुंसः) पुरुषों को जानो (यः) जो (कविः) विक्रमण करने अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में क्रम २ से पंहुचाने वाली बुद्धि रखने वाला (पुत्रः) पवित्र वृद्धि को प्राप्त पुरुष (ता) उन इष्ट पदार्थों को (ईम्) सब ओर से (आ, विजानात्) अच्छे प्रकार जाने (सः) वह विद्वान् हो और (यः) जो विद्वान् हो (सः) वह (पितुः) पिता का (पिता) पिता (असत्) हो यह तुम (चिकेत) जानो ॥ १६ ॥

भावार्थः—जिस को विद्वान् जानते हैं उस को अविद्वान् नहीं जान सकते जैसे विद्वान् जन पुत्रों को पढ़ा कर विद्वान् करें वैसे विदुषी स्त्रियां कन्याओं को विदुषी करें । जो पृथिवी से लेके ईश्वरपर्यन्त पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जान धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्ध करते हैं वे ज्वान भी बुड्ढों के पिता होते हैं ॥ १६ ॥

पुनः पृथिव्यादीनां कार्यकारणविषयमाह ॥

फिर पृथिव्यादिकों के कार्यकारण वि० ॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् । सा कद्रीची कं स्विदर्द्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥

अवः । परेण । परः । एना । अवरेण । पदा । वत्सम् । बिभ्रती । गौः । उत् । अस्थात् । सा । कद्रीची । कम् । स्वित् । अर्द्धम् । परा । अगात् । क्व । स्वित् । सूते । नहि । यूथे । अन्तरिति ॥ १७ ॥

पदार्थः—(अवः) अधस्तात् (परेण) (परः) (एना) एनेन (अवरेण) अर्वाचीनेन (पदा) प्रापकेन गमनरूपेण

(वत्सम्) प्रसूतं मनुष्यादिकं संसारम् (बिभ्रती) धरन्ती (गौः) गच्छतीति गौः पृथिवी (उत्) (अस्थात्) तिष्ठति (सा) (कद्रीची) अचाक्षुष्यगमना (कम्) (स्वित्) (अर्द्धम्) भागम् (परा) (अगात्) गच्छति (क) कस्मिन् (स्वित्) (सूते) उत्पादयति (नहि) निषेधे (यूथे) समूहे (अन्तः) मध्ये ॥१७॥

अन्वयः—या वत्सं बिभ्रती गौर्येन परेणाऽवरेण च पदाऽव उदस्थात् । एना परः परस्ताच्चोद्गच्छति या यूथेऽन्तः कं स्विदर्द्धं सूते सा कद्रीची क्व स्विन्नहि पराऽगात् ॥ १७ ॥

भावार्थः—इयं पृथिवी सूर्यादध ऊर्ध्वं दक्षिणमुत्तरतश्च गच्छति। अस्या गतिर्विदुषोऽन्तरा न लक्ष्यते अस्याः परेऽर्द्धे सदाऽन्धकारः पूर्वेऽर्द्धे प्रकाशश्च वर्त्तते मध्ये सर्वे पदार्था वर्त्तन्ते सेयं पृथिवी जननीव सर्वान् पाति ॥ १७ ॥

पदार्थः—जो (वत्सम्) उत्पन्न हुए मनुष्यादि संसार को (बिभ्रती) धारण करती हुई (गौः) गमन करने वाली जिस (परेण) परले वा (अवरेण) उरले (पदा) प्राप्त करने वाले गमनरूप चरण से (अवः) नीचे से (उद्स्थात्) उठती है (एना) इस से (परः) पीछे से उठती है जो (यूथे) समूह के (अन्तः) बीच में (कम् , स्वित्) किसी को (अर्द्धम्) आधा (सूते) उत्पन्न करती है (सा) वह (कद्रीची) अप्रत्यक्ष गमन करने वाली (क,स्वित्) किसी में (नहि) नहीं (परा,अगात्) पर को लौट जाती ॥ १७ ॥

भावार्थः—यह पृथिवी सूर्य से नीचे ऊपर और उत्तर दक्षिण को जाती है इस की गति विद्वानों के विना न देखी जाती इस के परले आधे भाग में सदा अन्धकार और उरले आधे भाग में प्रकाश वर्त्तमान है बीच में सब पदार्थ वर्त्तमान हैं सो यह पृथिवी माता के तुल्य सब की रक्षा करती है ॥ १७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण । कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥

अवः । परेण । पितरम् । यः । अस्य । अनुऽवेद । परः । एना । अवरेण । कविऽयमानः । कः । इह । प्र । वोचत् । देवम् । मनः । कुतः । अधि । प्रऽजातम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(अवः) अवस्तात् (परेण) परेण मार्गेण (पितरम्) पालकं सूर्यम् (यः) (अस्य) (अनुवेद) विद्यापठनानन्तरं जानाति (परः) परस्मात् (एना) एनेन (अवरेण) मार्गेण (कवीयमानः) अतीव विद्वान् (कः) (इह) अस्यां विद्यायां जगति वा (प्र) (वोचत्) प्रवदेत् (देवम्) दिव्यगुणसंपन्नम् (मनः) अन्तःकरणम् (कुतः) (अधि) (प्रजातम्) उत्पन्नम् ॥१८॥

अन्वयः—यो विद्वानस्यावः परेण च वर्त्तमानं पितरमनुवेद । यः पर एनाऽवरेणानुवेद स कवीयमानः कुत इदं देवं मनः प्रजातमितीह कोऽधि प्रवोचत् ॥ १८ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या विद्युतमारभ्य सूर्यपर्यन्तमग्निं पितरमिव पालकं जानीयुः । यस्य पराऽवरे कार्यकारणाख्ये स्वरूपे स्तस्तदुपदेशं दिव्यान्तःकरणा भूत्वा इह प्रवदेयुः ॥ १८ ॥

पदार्थः— जो विद्वान् (अस्य) इस के (अवः) अधोभाग से और (परेण) परभाग से वर्त्तमान (पितरम्) पालने वाले सूर्य को (अनुवेद) विद्या पढ़ने के अनन्तर जानता है (यः) जो (परः) पर और (एना) इस उक्त (अवरेण) नीचे के मार्ग से जानता है वह (कवीयमानः) अतीव विद्वान् है और (कुतः) कहां से यह (देवम्) दिव्य गुण संपन्न (मनः) अन्तःकरण (प्रजातम्) उत्पन्न हुआ ऐसा (इह) इस विद्या वा जगत् में (कः) कौन (अधि, प्र, वोचत्) अधिकतर कहे ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य बिजुली को लेकर सूर्यपर्यन्त अग्नि को पिता के समान पालने वाला जानें जिस के पराऽवर भाग में कार्यकारण स्वरूप हैं उस का उपदेश दिव्य अन्तःकरण वाले हो कर इस संसार में कहें ॥ १८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः। इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

ये। अर्वाञ्चः। तान्। ऊं इति। पराचः। आहुः। ये। पराञ्चः। तान्। ऊं इति। अर्वाचः। आहुः। इन्द्रः। च। या। चक्रथुः। सोम। तानि। धुरा। न। युक्ताः। रजसः। वहन्ति ॥ १९ ॥

पदार्थः—(ये) (अर्वाञ्चः) अर्वागधोऽञ्चन्ति ये (तान्) (उ) (पराचः) परभागप्राप्तान् (आहुः) कथयन्ति (ये) (पराञ्चः) परत्वेन व्यपदिष्टाः (तान्) (उ) वितर्के (अर्वाचः)

अपरत्वेन व्यपदिष्टान् (आहुः) (इन्द्रः) सूर्यः (च) वायुः (या) यानि भुवनानि (चक्रथुः) कुर्यातम् (सोम) ऐश्वर्ययुक्त (तानि) (धुरा) धुरि युक्ता अश्वाइव (न) इव (युक्ताः) संबद्धाः (रजसः) लोकान् (वहन्ति) चालयन्ति ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे सोम विद्वन्येऽर्वाञ्चः पदार्थाः सन्ति तानु पराच आहुः । ये पराञ्चस्तान्वेवार्वाच आहुस्तान् विजानीहि । इन्द्रो वायुश्च या यानि धरतः । तानि युक्ता धुरा न रजसो वहन्ति तानध्यापकोपदेशकौ युवां विदितान् चक्रथुः ॥ १९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकारः—हे मनुष्या इह येऽध ऊर्ध्वपरावर स्थूलसूक्ष्मलघुत्वगुरुत्वव्यवहाराः सन्ति ते सापेक्षा वर्त्तन्ते । एकस्यापेक्षया य इदमत ऊर्ध्वं यदुच्यते तदेव उभयमाख्यां लभते यदस्मात्परं तदेवान्यस्मादवरं यदस्मात्स्थूलं तदन्यस्मात्सूक्ष्मं यदस्माल्लघु तदन्यस्माद्गुर्वीति यूयं विजानीत नह्यत्र किंचिदपि वस्तु निरपेक्षं वर्त्तते नैव चानाधारम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य युक्त विद्वान् (ये) जो (अर्वाञ्चः) नीचे जाने वाले पदार्थ हैं (तान्, उ) उन्हीं को (पराचः) परे को पहुंचे हुए (आहुः) कहते हैं । और (ये) जो (पराञ्चः) परे से व्यवहार में लाये जाते अर्थात् परभाग में पहुंचने वाले हैं (तान्, उ) इन्हें तर्क वितर्क से (अर्वाचः) नीचे जाने वाले (आहुः) कहते हैं उन को जानो (इन्द्रः) सूर्य (च) और वायु (या) जिन भुवनों को धारण करते हैं (तानि) उन को (युक्ताः) युक्त हुए अर्थात् उन में सम्बन्ध किये हुए पदार्थ (धुरा) धारण करने वाली धुरी में जुड़े हुए घोड़ों के (न) समान (रजसः) लोकों को (वहन्ति) वहाते चलाते हैं उन को हे पढ़ाने और उपदेश करने वालो तुम विदित (चक्रथुः) करो जानो ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो यहां जो नीचे ऊपर परे उरे मोटे सूक्ष्म छुटाई बड़ाई के व्यवहार हैं वे सापेक्ष हैं एक की अपेक्षा से वह इस से ऊंचा जो कहा जाता है वही दोनों कथनों को प्राप्त होता है जो इस से परे है वही और से नीचे है जो इस से मोटा है वह और से सूक्ष्म जो जो इस से छोटा है वह और से बड़ा गरू है यह तुम जानो यहां कोई वस्तु अपेक्षा रहित नहीं है और न निराधारही है ॥ १९ ॥

अथेश्वरविषयमाह ॥

अब ईश्वर के विषय को अगले० ॥

द्वा सु॒प॒र्णा स॒युजा॒ सखा॑या समा॒नं वृ॒क्षं परि॑ षस्वजाते। तयो॑र॒न्यः पिप्प॑लं स्वा॒द्वत्त्यन॑श्नन्न॒न्यो अ॒भि चा॑कशीति ॥ २० ॥ १७ ॥

द्वा। सु॒ऽप॒र्णा। स॒ऽयुजा॑। सखा॑या। स॒मा॒नम्। वृ॒क्षम्। परि॑। स॒स्व॒जा॒ते॒ इति॑। तयोः॑। अ॒न्यः। पिप्प॑लम्। स्वा॒दु। अत्ति॑। अन॑श्नन्। अ॒न्यः। अ॒भि। चा॒क॒शी॒ति॒ ॥ २० ॥ १७ ॥

पदार्थः—(द्वा) द्वौ। अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः (सुपर्णा) शोभनानि पर्णानि गमनागमनादीनि कर्म्माणि वा ययोस्तौ (सयुजा) यौ समानसम्बन्धौ व्याप्यव्यापकभावेन सहैव युक्तौ वा तौ (सखाया) मित्रवद्वर्त्तमानौ (समानम्) एकम् (वृक्षम्) यो वृश्च्यते छिद्यते तं कार्यकारणाख्यं वा (परि) सर्वतः (सस्वजाते) स्वजेते आश्रयतः। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (तयोः) जीवब्रह्मणोरनाद्योः (अन्यः) जीवः (पिप्पलम्) परिपक्वं फलं

वेदभाष्य की आमदनी

श्रीयुत बाबू [illegible] जी हड ओवरसियर लोकल फंड पिशावर	८)
श्रीमान् रायबहादुर पं० [illegible]लाल जी सु० इं० डा० अलीगढ़	५।=)॥
श्रीयुत चौधरी [illegible] जी कसबा नहटौर जिला बिजनौर	८)
श्रीयुत रामजीवन जी क्लर्क कोठरी फोरमैन [illegible] आफिस अजमेर	४)
श्रीयुत बाबू नन्दगोपाल जी ओवरसियर गुजरात	१४)
श्रीयुत देवी प्रसाद जी ओवरसियर बाराबंकी	८)
श्रीयुत पं० नारायणप्रसाद जी [illegible] अदालत सदर जंमू	८)
श्रीयुत डा० [illegible] जी पा० डा० [illegible] कानपुर	४)
	५८।=)॥

विज्ञापन

प्रिय ग्राहक महाशय! आप लोगों को [illegible] प्रकट्टी [illegible] कि वेदभाष्य के छपने में गत मार्च महीने तक ८ वर्ष पूरे हुए इस परमेश्वर की दया से नवें वर्ष का आरम्भ है आप लोग इस चित्त हो कर नवम वर्ष के निर्विघ्न पूरे होने के लिये इस कार्य की सहायता में तत्पर हों और जिन्होंने अपने २ चढ़े हुए हिसाबों को साफ करा है और जिनका नवम वर्ष का [illegible] रुपया [illegible] भेजि कर इस की सहायता करें।

आप लोगों का कृपा[illegible]

ह० [illegible]

[illegible]

वैदिक यन्त्रालय

विज्ञापन

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य भारतोद्धारक श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज संस्थापित वैदिक यंत्रालय प्रयाग के लिये एक वेदवत्सल धर्मभीरु महोत्साही और परिश्रमी मैनेजर की आवश्यकता है जो कि (१) देवनागरी लिखना पढ़ना बहुत अच्छी तरह जानता हो (२) हिसाब किताब में भी प्रवीण हो यदि अंगरेजी उर्दू संस्कृत में से एक या दो या तीनों जानता हो तो और भी अच्छा हो (३) जिस को कोई ऐसा आर्य्यसमाज सिफारिश करे जो कि स्वामी जी महाराज कृत नियम और उपनियमों को मानता और तदनुसार आचरण भी कर्त्ता हो (अभिलाषकों को) (उम्मेदवारों) को चाहिये कि प्रशंसा पत्रों के सहित निवेदन पत्र (दर्खास्त को) २१ मई से पहले २ मंत्री श्रीमती परोपकारिणी सभा के पास उदयपुर में भेजें योग्यतानुसार २०) रु० से ५०) रु० तक मासिक मिले गा परन्तु जो सिफारिश करें वह उम्मेदवार के प्रशंसा पत्र में यह भी लिखें कि दर्खास्त करने वाला आर्य्यसमाजों के उपनियमों के अनुसार आर्य्य है वा आर्य्यसभासद है और उस समाज के मंत्री और प्रधान भी इस बात पर स्वाक्षर करें कि हमारा समाज स्वामी जी महाराज कृत आर्य्यसमाज के उपनियमों के अनुसार कारर्वाई कर्त्ता है॥

भवदीय

ह० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या

मंत्री

श्रीमती परोपकारिणी सभा

उदयपुर

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर

[illegible] सहितं ।=) अङ्कद्वयस्य [illegible] ॥=)

एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भारतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो वेदों का ॥=) एक वेद के छपे का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

[illegible] पत्रम् [illegible] प्रयागनगरे वैदिक [illegible]

[illegible] वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रिताङ्को प्राप्स्यति ।

[illegible]

[illegible] (१०८, १०९) अंक (१२, १३)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४६ [illegible]

[illegible]

[illegible] विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के, और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा॥

[३] इस वर्त्तमान दशवें वर्ष के कि जो ९० । ९१ अङ्क से आरंभ हुआ है १०० । १०१ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं॥

[४] पीछे के नव वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:—

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" बिना जिल्द की १।=)

" " सर्वांगसुन्दर जिल्द की २)

[ख] एक वेद के ८९ अङ्क तक २९॥=) और दोनों वेदों के ५९॥=)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को बिना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।=) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलें गे॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुभीता हो भेजें परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि बहुमूल्य वस्तु रजिस्टरी पत्रों में भेजना चाहिये॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंध कर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लिये जावेंगे॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जावें गे॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जावें वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें॥

पापपुण्यजन्यं सुखदुःखात्मकभोगं वा (स्वादु) (अत्ति) भुङ्क्ते (अनश्नन्) उक्तभोगमकुर्वन् (अन्यः) परमेश्वरः (अभि) (चाकशीति) अभिपश्यति ॥ २० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यौ सुपर्णा सयुजा सखाया द्वा जीवेशौ समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति । अन्योऽनश्नन्नभिचाकशीतीति यूयं वित्त ॥ २० ॥

भावार्थः—अत्र रूपकालंकारः—जीवेशजगत्कारणानि त्रयः पदार्था अनादयो नित्याः सन्ति जीवेशावल्पानन्तचेतनविज्ञानिनौ सदा विलक्षणौ व्याप्यव्यापकभावेन संयुक्तौ मित्रवद्वर्त्तमानौ स्तः। तथैव यस्मादव्यक्तात्परमाणुरूपात्कारणात्कार्यं जायते तदप्यनादि नित्यं च जीवास्सर्वे पापपुण्यात्मकानि कर्माणि कृत्वा तत्फलानि भुञ्जत ईश्वरश्चैकोऽभिव्यापी सन् न्यायेन पापपुण्यफलदानात् न्यायाधीश इव पश्यति ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सुपर्णा) सुन्दर पंखों वाले (सयुजा) समान सम्बन्ध रखने वाले (सखाया) मित्रों के समान वर्त्तमान (द्वा) दो पखेरू (समानम्) एक (वृक्षम्) जो काटा जाता उस वृक्ष का (परि, सस्वजाते) आश्रय करते हैं (तयोः) उन में से (अन्यः) एक (पिप्पलम्) उस वृक्ष के पके हुए फल को (स्वादु) स्वादुपन से (अत्ति) खाता है और (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभि, चाकशीति) सब ओर से देखता है अर्थात् सुन्दर चलने फिरने वा क्रियाजन्य काम को जानने वाले व्याप्यव्यापकभाव से साथ ही संबन्ध रखते हुए मित्रों के समान वर्त्तमान जीव और ईश—जीवात्मा समान कार्यकारणरूप ब्रह्माण्ड देह का आश्रय करते हैं उन दोनों अनादि जी ब्रह्म में जो जीव है वह पाप पुण्य से उत्पन्न सुख दुःखात्मक भोग

को स्वादुपन से भोगता है और दूसरा ब्रह्मात्मा कर्मफल को न भोगता हुआ उस भोगते हुए जीव को सब ओर से देखता अर्थात् साक्षी है यह तुम जानो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालंकार है—जीव परमात्मा और जगत् का कारण ये तीन पदार्थ अनादि और नित्य हैं जीव और ईश परमात्मा यथाक्रम से अल्प अनन्त चेतन विज्ञानवान् सदा विलक्षण व्याप्यव्यापकभाव से संयुक्त और मित्र के समान वर्त्तमान हैं वैसे ही जिस अव्यक्त परमाणुरूप कारण से कार्य्यरूप जगत् होता है वह भी अनादि और नित्य है समस्त जीव पाप पुण्यात्मक कार्यों को करके उन के फलों को भोगते हैं और ईश्वर एक सब ओर से व्याप्त होता हुआ न्याय से पाप पुण्य के फल को देने से न्यायाधीश के समान देखता है ॥ २० ॥

पुनरीश्वरविषयमाह ॥

फिर ईश्वर वि० ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति । इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २१ ॥

यत्र । सुऽपर्णाः । अमृतस्य । भागम् । अनिऽमेषम् । विदथा । अभिऽस्वरन्ति । इनः । विश्वस्य । भुवनस्य । गोपाः । सः । मा । धीरः । पाकम् । अत्र । आ । विवेश ॥ २१ ॥

पदार्थः—(यत्र) यस्मिन् परमेश्वरे । अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः (सुपर्णाः) शोभनकर्माणो जीवाः (अमृतस्य) मोक्षस्य (भागम्) सेवनम् (अनिमेषम्) निरन्तरम् (विदथा) विदथे विज्ञानमये (अभिस्वरन्ति) आभिमुख्येनोच्चरन्ति (इनः) स्वामी सूर्यः (विश्वस्य) समग्रस्य (भुवनस्य) भूताधिकरणस्य (गोपाः)

रक्षकः (सः) (मा) माम् (धीरः) ध्यानवान् (पाकम्) परिपक्वव्यवहारम् (अत्र) (आ) (विवेश) आ विशति ॥ २१ ॥

अन्वयः—यत्र विदथा सुपर्णा जीवा अमृतस्य भागमनिमेषमभिस्वरन्ति यत्र विश्वस्य भुवनस्य गोपा इन आ विवेश य एतं जानाति स धीरोऽत्र पाकं मा उपदिशेत् ॥ २१ ॥

भावार्थः—यत्र सवितृप्रभृतिलोकलोकान्तरा द्वीपद्वीपान्तराश्च सर्वे लयमाप्नुवन्ति तदुपदेशेनैव साधका मोक्षमाप्नुवन्ति नान्यथा॥ २१॥

पदार्थः—(यत्र) जिस (विदथा) विज्ञानमय परमेश्वर में (सुपर्णाः) शोभन कर्म वाले जीव (अमृतस्य) मोक्ष के (भागम्) सेवने योग्य अंश को (अनिमेषम्) निरन्तर (अभिस्वरन्ति) सन्मुख कहते अर्थात् प्रत्यक्ष कहते वा जिस परमेश्वर में (विश्वस्य) समग्र (भुवनस्य) लोकलोकान्तर का (गोपाः) पालने वाला (इनः) स्वामी सूर्यमण्डल (आ, विवेश) प्रवेश करना अर्थात् सूर्यादि लोकलोकान्तर सब लय को प्राप्त होते हैं जो इस को जानता है (सः) वह (धीरः) ध्यानवान् पुरुष (अत्र) इस परमेश्वर में (पाकम्) परिपक्क व्यवहार वाले (मा) मुझ को उपदेश देवे ॥ २१ ॥

भावार्थः—जिस परमात्मा में सवितृमण्डल को आदि ले कर लोकलोकान्तर और द्वीपद्वीपान्तर सब लय हो जाते हैं तद्विषयक उपदेश से ही साधक जन मोक्ष पाते हैं और किसी तरह से मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ २१ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे । तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

यस्मिन् । वृक्षे । मधुऽअदः । सुऽपर्णाः । निऽविशन्ते । सुवते । च । अधि । विश्वे । तस्य । इत् । आहुः । पिप्पलम् । स्वादु । अग्रे । तत् । न । उत् । नशत् । यः । पितरम् । न । वेद ॥ २२ ॥

पदार्थः—(यस्मिन्) (वृक्षे) (मध्वदः) ये मधूनि कर्मफलानि वाऽदन्ति ते (सुपर्णाः) शोभनपर्णाः सुष्ठु पालनकर्माणः (नि,विशन्ते) निविष्टा भवन्ति (सुवते) जायन्ते (च) (अधि) (विश्वे) विश्वस्मिञ्जगति वा (तस्य) (इत्) एव (आहुः) कथयन्ति (पिप्पलम्) उदकमिव निर्मलं फलं कर्मफलं वा । पिप्पलमित्युदकना० निघं० १ । १२ (स्वादु) स्वादिष्ठम् (अग्रे) (तत्) (न) (उत्) (नशत्) नश्यति (यः) (पितरम्) परमात्मानम् (न) (वेद) जानाति ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यस्मिन् विश्वे वृक्षे मध्वदः सुपर्णा जीवा निविशन्तेऽधि सुवते च तस्येतिपिप्पलमग्रे स्वाद्वाहुः । तन्नोन्नशत् यः पितरं न वेद स तन्न प्राप्नोति ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्र रूपकालङ्कारः—अनाद्यनन्तात्कालादिदं विश्वं जायते विनश्यति जीवा जायन्ते म्रियन्ते च । अत्र जीवैर्यादृशं कर्म्माचरितं तादृशमेवावश्यमीश्वरन्यायेन भोक्तव्यमस्ति कर्मजीवयोरपि नित्यः सम्बन्धः । ये परमात्मानं तद्गुणकर्मस्वभावानुकूलाचरणं चाविदित्वा यथेष्टमाचरन्ति ते सततं पीड्यन्ते येऽतो विपरीतास्ते सदानन्दन्ति ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यस्मिन्) जिस (विश्वे) समस्त (वृक्षे) वृक्ष पर (मध्वदः) मधु को खाने वाले (सुपर्णाः) सुन्दर पंखों से युक्त भौंरा आदि पक्षी (नि, विशन्ते) स्थिर होते हैं (अधि, सुवते, च) और आधार भूत होकर अपने बालकों को उत्पन्न करते (तस्य, इत्) उसी के (पिप्पलम्) जल के समान निर्मल फल को (अग्रे) आगे (स्वादु) स्वादिष्ठ (आहुः) कहते हैं और (तत्) वह (न) न (उत् ,नशत्) नष्ट होता है अर्थात् वृक्षरूप इस जगत् में मधुर कर्म फलों को खाने वाले उत्तम कर्मयुक्त जीव स्थिर होते और उस में सन्तानों को उत्पन्न करते हैं उस का जल के समान निर्मल कर्म फल संसार में होना इस को आगे उत्तम कहते हैं और नष्ट नहीं होता अर्थात् पीछे अशुभ कर्मों के करने से संसाररूप वृक्ष का जो फल चाहिये सो नहीं मिलता (यः) जो पुरुष (पितरम्) पालने वाले परमात्मा को (न, वेद) नहीं जानता वह इस संसार के उत्तम फल को नहीं पाता ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालं०—अनादि अनन्त काल से यह विश्व उत्पन्न होता और नष्ट होता है जीव उत्पन्न होते और मरते भी जाते हैं इस संसार में जीवों ने जैसा कर्म किया वैसा ही अवश्य ईश्वर के न्याय से भोग्य है कर्म जीव का भी नित्यसम्बन्ध है जो परमात्मा और उस के गुण कर्म स्वभावोंके अनुकूल आचरण को न जान कर मनमाने काम करतेहैं वे निरन्तर पीडित होते हैं और जो उस से विपरीत हैं वे सदा आनन्द भोगते हैं ॥ २२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यद्गा॑यत्रे अधि॑ गाय॒त्रमाहि॑तं॒ त्रैष्टु॑भाद्वा॒ त्रैष्टु॑भं॒ निर॒तक्ष॑त । यद्वा॒ जग॒ज्जग॒त्याहि॑तं प॒दं य इत्तद्वि॒दुस्ते अ॑मृत॒त्वमा॑नशुः ॥ २३ ॥

यत्। गायत्रे। अधि। गायत्रम्। आऽहितम्। त्रैस्तुभात्। वा। त्रैस्तुभम्। निःऽअतक्षत। यत्। वा। जगत्। जगति। आऽहितम्। पदम्। ये। इत्। तत्। विदुः। ते। अमृतऽत्वम्। आनशुः॥ २३॥

पदार्थः-(यत्) (गायत्रे) गायत्री छन्दोवाच्ये (अधि) (गायत्रम्) गायतां रक्षकम् (आहितम्) स्थितम् (त्रैष्टुभात्) त्रिष्टुप्छन्दोवाच्यात् (वा) (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुभि भवम् (निरतक्षत) नितरां तनू कुर्वन्ति विस्तृणन्ति (यत्) (वा) (जगत्) (जगति) (आहितम्) स्थितम् (पदम्) वेदितव्यम् (ये) (इत्) एव (तत्) (विदुः) जानन्ति (ते) (अमृतत्वम्) मोक्षस्य भावम् (आनशुः) अश्नुवते ॥ २३ ॥

अन्वयः-ये यद्गायत्रे गायत्रमध्याहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत वा यज्जगति जगत्पदमाहितं तद्विदुस्ते इदमृतत्वमानशुः॥२३॥

भावार्थ-ये सृष्टिपदार्थान् तत्र स्वामीश्वररचनां च विज्ञाय परमात्मानमभिध्याय विद्याधर्मोन्नतिं कुर्वन्ति ते मोक्षमाप्नुवन्ति ॥ २३ ॥

पदार्थः—(ये) जो लोग (यत्) जो (गायत्रे) गायत्रीछन्दोवाच्य वृत्ति में (गायत्रम्) गाने वालों की रक्षा करने वाला (अधि, आहितम्) स्थित है (त्रैष्टुभात् , वा) अथवा त्रिष्टुप् छन्दोवाच्य वृत्त से (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् में प्रसिद्ध हुए अर्थ को (निरतक्षत) निरन्तर विस्तारते हैं (वा) वा (यत्) जो (जगति) संसार में (जगत्) प्राणि आदि जगत् (पदम्) जानने योग्य (आहितम्) स्थित है (तत्) उस को (विदुः) जानते हैं (ते) वे (इत्) ही (अमृतत्वम्) मोक्षभाव को (आनशुः) प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो सृष्टि के पदार्थ और तत्रस्थ ईश्वरकृत रचना को जान कर परमात्मा का सब ओर से ध्यान कर विद्या और धर्म की उन्नति करते हैं वे मोक्ष पाते हैं ॥ २३ ॥

पुनरीश्वरविषयमाह ॥

फिर ईश्वर वि० ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् । वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

गायत्रेण । प्रति । मिमीते । अर्कम् । अर्केण । साम । त्रैस्तुभेन । वाकम् । वाकेन । वाकम् । द्विऽपदा । चतुःऽपदा । अक्षरेण । मिमते । सप्त । वाणीः ॥ २४ ॥

पदार्थः—(गायत्रेण) गायत्री छन्दसा (प्रति) (मिमीते) रचयति (अर्कम्) ऋग्वेदम् (अर्केण) ऋचां समूहेन (साम) सामवेदम् (त्रैष्टुभेन) त्रिवेदविद्यास्तवनेन (वाकम्) यजुः (वाकेन) यजुषा (वाकम्) अथर्ववेदम् (द्विपदा) द्वौ पादौ यस्मिंस्तेन (चतुष्पदा) चत्वारः पादा यस्मिंस्तेन (अक्षरेण) नाशरहितेन (मिमते) (सप्त) गायत्र्यादिसप्तछन्दोन्विताः (वाणीः) वेदवाचः ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यो जगदीश्वरो गायत्रेणार्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाऽक्षरेण वाकेन वाकं सप्त वाणीश्च प्रति मिमीते तज्ज्ञानं ये मिमते ते कृतकृत्या जायन्ते ॥ २४ ॥

भावार्थः—येन जगदीश्वरेण वेदस्थान्यक्षरपदवाक्यछन्दोऽध्यायादीनि निर्मितानि तस्मै सर्वे मनुष्या धन्यवादं दद्युः ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो जगदीश्वर (गायत्रेण) गायत्री छन्द से (अर्कम्) ऋक् (अर्केण) ऋचाओं के समूह से (साम) साम (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द वा तीन वेदों की विद्याओं को स्तुतियों से (वाकम्) यजुर्वेद (द्विपदा) दो पद जिस में विद्यमान वा (चतुष्पदा) चार पद वाले (अक्षरेण) नाशरहित (वाकेन) यजुर्वेद से (वाकम्) अथर्ववेद और (सप्त) गायत्री आदि सात छन्द युक्त (वाणीः) वेदवाणी को (प्रति, मिमीते) प्रतिमान करता है और जो उस के ज्ञान को (मिमते) मान करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थः—जिस जगदीश्वर ने वेदस्थ अक्षर, पद, वाक्य, छन्द, अध्याय, आदि बनाये हैं उस को सब मनुष्य धन्यवाद देवें ॥ २४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् । गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥ १८ ॥

जगता । सिन्धुम् । दिवि । अस्तभायत् । रथम्ऽतरे । सूर्यम् । परि । अपश्यत् । गायत्रस्य । सम्ऽइधः । तिस्रः । आहुः । ततः । मह्ना । प्र । रिरिचे । महिऽत्वा ॥२५॥ १८॥

पदार्थः—(जगता) संसारेण सह (सिन्धुम्) नद्यादिकम् (दिवि) प्रकाशे (अस्तभायत्) स्तभ्नाति (रथन्तरे) अन्तरिक्षे (सूर्यम्) सवितृलोकम् (परि) सर्वतः (अपश्यत्) पश्यति

(गायत्रस्य) गायत्र्या संसाधितस्य (समिधः) सम्यक् प्रदीप्ताः पदार्थाः (तिस्रः) त्रित्वसंख्यायुक्ताः (आहुः) कथयन्ति (ततः) (मह्ना) महता (प्र) (रिरिचे) प्ररिणक्ति (महित्वा) महित्वेन पूज्येन ॥ २५ ॥

अन्वयः—यो जगदीश्वरो जगता सिन्धुं दिवि रथन्तरे सूर्यमस्तभायत् सर्वं पर्यपश्यत् या गायत्रस्य सकाशात्तिस्रः समिध आहुस्ततो मह्ना महित्वा प्ररिरिचे स सर्वैः पूज्योऽस्ति ॥ २५ ॥

भावार्थः—यदा ईश्वरेण जगन्निर्मितं तदैव नदीसमुद्रादीनि निर्मितानि । यथा सूर्य आकर्षणेन भूगोलान् धरति तथा सूर्यादिकं जगदीश्वरो धरति । यस्सर्वेषां जीवानां सर्वाणि पापपुण्यात्मकानि कर्माणि विज्ञाय फलानि प्रयच्छति स सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यो महानस्ति ॥ २५ ॥

पदार्थः—जो जगदीश्वर (जगता) संसार के साथ (सिन्धुम्) नदी आदि को (दिवि) प्रकाश (रथन्तरे) और अन्तरिक्ष में (सूर्यम्) सवितृलोक को (अस्तभायत्) रोकता वा सब को (पर्य्यपश्यत्) सब ओर से देखता है वा जिन (गायत्रस्य) गायत्री छन्द से अच्छे प्रकार से साधे हुए ऋग्वेद की उत्तेजना से (तिस्रः, समिधः) अच्छे प्रकार प्रज्वलित तीन पदार्थों को अर्थात् भूत, भविष्यत् , वर्त्तमान तीनों काल के सुखों को (आहुः) कहते हैं (ततः) उन से (मह्ना) बड़े (महित्वा) प्रशंसनीय भाव से (प्र, रिरिचे) अलग होता है अर्थात् अलग गिना जाता है वह सब को पूजने योग्य है ॥ २५ ॥

भावार्थः—जब ईश्वर ने जगत् बनाया तभी नदी और समुद्र आदि बनाये। जैसे सूर्य आकर्षण से भूगोलों को धारण करता है वैसे सूर्य आदि जगत् को ईश्वर धारण करता है । जो सब जीवों के समस्त पापपुण्यरूपी कर्म्मों को जान के फलों को देता है वह ईश्वर सब पदार्थों से बड़ा है ॥ २५ ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् । श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्रवोचम् ॥ २६ ॥

उप । ह्वये । सुऽदुघाम् । धेनुम् । एताम् । सुऽहस्तः । गोऽधुक् । उत । दोहत् । एनाम् । श्रेष्ठम् । सवम् । सविता । साविषत् । नः । अभिऽइद्धः । घर्मः । तत् । ऊं इति । सु । प्र । वोचम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(उप) (ह्वये) स्वीकरोमि (सुदुघाम्) सुष्ठुकामप्रपूरिकाम् (धेनुम्) दुग्धदात्रीं गोरूपाम् (एताम्) (सुहस्तः) शोभनौ हस्तौ यस्य सः (गोधुक्) यो गां दोग्धि (उत) अपि (दोहत्) दोग्धि (एनाम्) विद्याम् (श्रेष्ठम्) उत्तमम् (सवम्) ऐश्वर्यम् (सविता) ऐश्वर्यप्रदः (साविषत्) उत्पादयेत् (नः) अस्मभ्यम् (अभीद्धः) सर्वतः प्रदीप्तः (घर्मः) प्रतापः (तत्) पूर्वोक्तं सर्वम् (उ) (सु) (प्र) (वोचम्) उपदिशेयम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—यथा सुहस्तो गोधुगहमेतां सुदुघां धेनुमुपह्वये । उताप्येनां भवानपि दोहत् । यं श्रेष्ठं सवं सविता नोऽस्मभ्यं साविषद्यथाऽभीद्धो घर्मो वर्षाः करोति तदु यथाहं सु प्रवोचं तथा त्वमप्येतत्सप्रवोचेः ॥ २६ ॥

भावार्थः—अत्र रूपकालङ्कारः—अध्यापका विद्वांसः पूर्णविद्यां वाणीं प्रदद्युः । येनोत्तममैश्वर्यं शिष्याः प्राप्नुयुः । यथा सविता सर्वं जगत् प्रकाशयति तथोपदेशकाः सर्वा विद्याः प्रकाशयेयुः ॥ २६ ॥

पदार्थः—जैसे (सुहस्तः) सुन्दर जिस के हाथ और (गोधुक्) गौ को दुहता हुआ मैं (एताम्) इस (सुदुघाम्) अच्छे दुहाती अर्थात् कामों को पूरा करती हुई (धेनुम्) दूध देने वाली गौरूप विद्या को (उप, ह्वये) स्वीकार करूं (उत) और (एनाम्) इस विद्या को आप भी (दोहत्) दुहते वा जिस (श्रेष्ठम्) उत्तम (सवम्) ऐश्वर्य को (सविता) ऐश्वर्य का देने वाला (नः) हमारे लिये (साविषत्) उत्पन्न करे।वा जैसे (अभीद्धः) सब ओर से प्रदीप्त अर्थात् अतितपता हुआ (घर्मः) घाम वर्षा करता है (तदु) उसी सब को जैसे मैं (सु,प्र,वोचम्) अच्छे प्रकार कहूं वैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार कहो॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालं० —अध्यापक विद्वान् जन पूरी विद्या से भरी हुई वाणी को अच्छे प्रकार देवें । जिस से उत्तम ऐश्वर्य को शिष्य प्राप्त हों । जैसे सविता समस्त जगत् को प्रकाशित करता है वैसे उपदेशक लोग सब विद्याओं को प्रकाशित करें ॥ २६ ॥

अथ गोः पृथिव्याश्च विषयमाह ॥
अब गौ और पृथिवी के विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् । दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्द्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥

हिङ्ऽकृण्वती । वसुऽपत्नी । वसूनाम् । वत्सम् । इच्छन्ती । मनसा । अभि । आ । अगात् । दुहाम् । अश्विऽभ्याम् । पयः । अघ्न्या । इयम् । सा । वर्धताम् । महते । सौभगाय ॥२७॥

पदार्थः—(हिङ्कृण्वती) हिमिति शब्दयन्ती (वसुपत्नी) वसूनां पालिका (वसूनाम्) अग्न्यादीनाम् (वत्सम्) (इच्छन्ती) (मनसा) (अभि) (आ) (अगात्) अभ्यागच्छति (दुहाम्) (अश्विभ्याम्) सूर्यवायुभ्याम् (पयः) जलं दुग्धं वा (अघ्न्या) हन्तुमयोग्या (इयम्) (सा) (वर्द्धताम्) (महते) (सौभगाय) शोभनानामैश्वर्याणां भावाय ॥ २७ ॥

अन्वयः—यथा हिङ्कृण्वती मनसा वत्समिच्छन्तीयमघ्न्या गौरभ्यागात् । याऽश्विभ्यां पयो दुहां वर्त्तमानाभूरस्ति सा वसूनां वसुपत्नी महते सौभगाय वर्द्धताम् ॥ २७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा पृथिवीमहदैश्वर्यं वर्धयति तथा गावो महत्सुखं प्रयच्छन्ति तस्मादेताः केनापि कदाचिन्नैव हिंस्याः ॥ २७ ॥

पदार्थः—जैसे (हिङ्कृण्वती) हिंकारती और (मनसा) मन से (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई (इयम्) यह (अघ्न्या) मारने को न योग्य गौ (अभि,आ,अगात्) सब ओर से आती वा जो (अश्विभ्याम्) सूर्य और वायु से (पयः) जल वा दूध को (दुहाम्) दुहते हुए पदार्थों में वर्त्तमान पृथिवी है (सा) वह (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुसंज्ञकों में (वसुपत्नी) वसुओं की पालन वाली (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (वर्द्धताम्) बढ़े उन्नति को प्राप्त हो ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे पृथिवी महान् ऐश्वर्य को बढ़ाती है वैसे गौयें अत्यन्त सुख देती हैं इस से ये गौयें कभी किसी को मारनी न चाहिये ॥ २७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्द्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उं । सृक्काणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥

गौः । अमीमेत् । अनु । वत्सम् । मिषन्तम् । मूर्द्धानम् । हिङ् । अकृणोत् । मातवै । ऊं इति । सृक्काणम् । घर्म्मम् । अभि । वावशाना । मिमाति । मायुम् । पयते । पयःऽभिः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(गौः) पृथिवी धेनुर्वा (अमीमेत्) मिनाति (अनु) (वत्सम्) (मिषन्तम्) शब्दयन्तम् (मूर्द्धानम्) मस्तकम् (हिङ्) हिंकारम् (अकृणोत्) करोति (मातवै) मानाय (उ) वितर्के (सृक्काणम्) सृजन्तं दिनम् (घर्मम्) आतपम् (अभि) (वावशाना) भृशं कामयमाना (मिमाति) मिमीते । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (मायुम्) वाणीम् । मायुरिति वाङ्ना० निघं० १।११ (पयते) गच्छति (पयोभिः) जलैस्सह ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वावशाना गौर्मिषन्तं वत्सं मूर्द्धानमनु हिङ्ङकृणोत् मातवा उ वत्सस्य दुःखममीमेत् तथा पयोभिस्सह वर्त्तमाना गौः पृथिवी घर्मं सृक्काणं दिनं मायुं च कुर्वती पयते सुखमभिमिमाति ॥ २८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा गा अनुवत्सा वत्साननु गावो गच्छन्ति तथा पृथिवीरनुपदार्थाः पदार्थाननु पृथिव्यो गच्छन्ति ॥ २८

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वाविशाना) निरंतर कामना करती हुई (गौः) गौ (मिषन्तम्) मिमयातेहुए (वत्सम्) बछड़े को तथा (मूर्द्धानम्) मूड़ को (अनु, हिङ्, अकृणोत्) लख कर हिंकारती अर्थात् मूड़ चाटती हुई हिंकारती है और (मातवै) मान करने (उ) ही के लिये उस बछड़े के दुःख को (अमीमेत्) नष्ट करती वैसे (पयोभिः) जलों के साथ वर्त्तमान पृथिवी (घर्मम्) आतप को (सृक्काणम्) रचते हुए दिन को और (मायुम्) वाणी को प्रसिद्ध करती हुई (पयते) अपने भचक्र में जाती है और सुख का (अभि , मिमाति) सब ओर से मान करती अर्थात् तौल करती है ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे गौओं के पीछे बछड़े और बछड़ों के पीछे गौयें जातीं वैसे पृथिवियों के पीछे पदार्थ और पदार्थों के पीछे पृथिवी जाती हैं ॥ २८ ॥

पुनर्भूमिविषयमाह ॥
फिर भूमि के वि० ॥

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता । सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥

अयम् । सः । शिङ्क्ते । येन । गौः । अभिऽवृता । मिमाति । मायुम् । ध्वसनौ । अधि । श्रिता । सा । चित्तिऽभिः । नि । हि । चकार । मर्त्यम् । विऽद्युत् । भवन्ती । प्रति । वव्रिम् । औहत ॥ २९ ॥

पदार्थः—(अयम्) (सः) (शिङ्क्ते) अव्यक्तं शब्दं करोति (येन) (गौः) पृथिवी (अभीवृता) सर्वतो वायुना आवृता

(मिमाति) गच्छति (मायुम्) परिमितं मार्गम् (ध्वसनौ) अधऊर्ध्वमध्यपतनार्थे परिधौ (अधि) उपरि (श्रिता) (सा) (चित्तिभिः) चयनैः (नि) (हि) किल (चकार) करोति (मर्त्यम्) मरणधर्माणम् (विद्युत्) तडित् (भवन्ती) वर्त्तमाना (प्रति) (वव्रिम्) स्वकीयं रूपम् (औहत) ऊहते ॥ २९ ॥

अन्वयः—सोऽयं वत्सो मेघो भूमिं शिङ्क्ते येन ध्वसनावधि श्रिताऽभीवृता गौर्भूमिर्मायुं प्रतिमिमाति सा चित्तिभिर्मर्त्यं चकार। तत्र हि भवन्ती विद्युद्वव्रिं च न्यौहत ॥ २९ ॥

भावार्थः—यथा पृथिव्याः सकाशादुत्पद्याऽन्तरिक्षे बहुलो भूत्वा मेघः पृथिव्यां वृक्षादिकं संसिच्य वर्द्धयति । तथोर्वी सर्वं वर्द्धयति तत्रस्था विद्युद्रूपं प्रकाशयति। यथा शिल्पी क्रमेण चित्या विज्ञानेन गृहादिकं निर्मिमीते तथा परमेश्वरेणेयं सृष्टिर्निर्मिता ॥ २९ ॥

पदार्थः—(सः) सो (अयम्) यह बछड़े के समान मेघ भूमि को लख (शिङ्क्ते) गर्जन का अव्यक्त शब्द करता है कौन कि (येन) जिस से (ध्वसनौ) ऊपर नीचे और बीच में जाने को जो परकोटा उस में (अधि, श्रिता) धरी हुई (अभीवृता) सब ओर पवन से आवृत (गौः) पृथिवी (मायुम्) परिमित मार्ग को (प्रति, मिमाति) प्राप्त जाती है (सा) वह (चित्तिभिः) परमाणुओं के समूहों से (मर्त्यम्) मरणधर्मा मनुष्य को (चकार) करती है उस पृथिवी (हि) ही में (भवन्ती) वर्त्तमान (विद्युत्) बिजुली (वव्रिम्) अपने रूप को (नि, औहत) निरन्तर तर्क वितर्क से प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

भावार्थः—जैसे पृथिवी से उत्पन्न हो उठ कर अन्तरिक्ष में बढ़ फैल मेघ पृथिवी में वृक्षादि को अच्छे सींच उन को बढ़ाता है वैसे पृथिवी सब को

बढ़ाती है और पृथिवी में जो बिजुली है वह रूप को प्रकाशित करती । जैसे शिल्पी जन क्रम से किसी पदार्थ के इकट्ठा करने और विज्ञान से घर आदि बनाता है वैसे परमेश्वर ने यह सृष्टि बनाई है ॥ २९ ॥

पुनरीश्वरविषयमाह ॥

फिर ईश्वर के वि० ॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् । जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥ १९ ॥

अनत् । शये । तुरऽगातु । जीवम् । एजत् । ध्रुवम् । मध्ये । आ । पस्त्यानाम् । जीवः । मृतस्य । चरति । स्वधाभिः । अमर्त्यः । मर्त्येन । सऽयोनिः ॥ ३० ॥ १९ ॥

पदार्थः—(अनत्) प्राणत् (शये) शेते । अत्र लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः (तुरगातु) सद्योगमनम् (जीवम्) (एजत्) कंपयन् (ध्रुवम्) (मध्ये) (आ) (पस्त्यानाम्) गृहाणां जीवशरीराणां वा (जीवः) (मृतस्य) मरणस्वभावस्य (चरति) गच्छति (स्वधाभिः) अन्नादिभिः (अमर्त्यः) अनादित्वान्मृत्युधर्मरहितः (मर्त्येन) मरणधर्मेण शरीरेण (सयोनिः) समानस्थानः ॥ ३० ॥

अन्वयः—यद्ब्रह्म तुरगात्वनज्जीवमेजत्पस्त्यानां मध्ये ध्रुवं सच्छये यत्रामर्त्यो जीवः स्वधाभिर्मर्त्येन सह सयोनिस्सन्मृतस्य जगतो मध्य आचरति तत्र सर्वं जगद्वसतीति वेद्यम् ॥ ३० ॥

भावार्थः—अत्र रूपकालङ्कारः—यश्चलत्स्वचलोऽनित्येषु नित्यो व्याप्येषु व्यापकः परमेश्वरोऽस्ति । नहि तद्व्याप्त्या विनाऽतिसूक्ष्ममपि वस्त्वस्ति तस्मात्सर्वैर्जीवैरयमन्तर्यामिरूपेण स्थितो नित्यमुपासनीयः ॥ ३० ॥

पदार्थः—जो ब्रह्म (तुरगातु) शीघ्र गमन को (अनत्) पुष्ट करता हुआ (जीवम्) जीव को (एजत्) कपाता और (पस्त्यानाम्) घरों के अर्थात् जीवों के शरीरों के (मध्ये) बीच (ध्रुवम्) निश्चल होता हुआ (शये) सोता है । जहां (अमर्त्यः) अनादित्व से मृत्युधर्मरहित (जीवः) जीव (स्वधाभिः) अन्नादि और (मर्त्येन) मरणधर्मा शरीर के साथ (सयोनिः) एक स्थानी होता हुआ (मृतस्य) मरण स्वभाव वाले जगत् के बीच (आ, चरति) आचरण करता है उस ब्रह्म में सब जगत् वसता है यह जानना चाहिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालं०—जो चलते हुए पदार्थों में अचल अनित्य पदार्थों में नित्य और व्याप्य पदार्थों में व्यापक परमेश्वर है उस की व्याप्ति के विना सूक्ष्म से सूक्ष्म भी वस्तु नहीं है इस से सब जीवों को जो यह अन्तर्यामिरूप से स्थित हो रहा है वह नित्य उपासना करने योग्य है ॥ ३० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अपंश्यं गोपामनिंपद्यमानुमा चु परा च पथिभिश्चरन्तम् । स सुध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वंरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥

अपंश्यम् । गोपाम् । अनिंऽपद्यमानम् । आ । चु । परा । च । पथिऽभिः । चरन्तम् । सः । सुध्रीचीः । सः । विषूचीः । वसानः । आ । वरीवर्त्ति । भुवनेषु । अन्तरिति ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(अपश्यम्) पश्येयम् (गोपाम्) सर्वरक्षकम् (अनिपद्यमानम्) यो मन आदीनीन्द्रियाणि न निपद्यते प्राप्नोति तम् (आ) (च) (परा) (च) (पथिभिः) मार्गैः (चरन्तम्) (सः) (सध्रीचीः) सह गच्छन्तीः (सः) (विषूचीः) विविधा गतीः (वसानः) आच्छादयन् (आ) (वरीवर्त्ति) भृशमावर्त्तते (भुवनेषु) लोकलोकान्तरेषु (अन्तः) मध्ये ॥३१॥

अन्वयः—अहं गोपामनिपद्यमानं पथिभिरा च परा च चरन्तमपश्यं स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानो भुवनेष्वन्तरावरीवर्त्ति ॥३१॥

भावार्थः—नहि सर्वस्य द्रष्टारं परमेश्वरं द्रष्टुं जीवाः शक्नुवन्ति परमेश्वरश्च सर्वाणि याथातथ्येन पश्यति। यथा वस्त्रादिभिरावृतः पदार्थो न दृश्यते तथा जीवोऽपि सूक्ष्मत्वान्न दृश्यते। इमे जीवाः कर्मगत्या सर्वेषु लोकेषु भ्रमन्ति। एषामन्तर्बहिश्च परमात्मा स्थितस्सन् पापपुण्यफलद[illegible]येन सर्वान् सर्वत्र जन्मानि ददाति ॥ ३१ ॥

पदार्थः—मैं (गोपाम्) सब की रक्षा करने (अनिपद्यमान) मन आदि इन्द्रियों को न प्राप्त होने और (पथिभिः) मार्गों से (आ, च) आगे और (परा, च) पीछे (चरन्तम्) प्राप्त होने वाले परमात्मा वा विचरते हुए जीव को (अपश्यम्) देखता हूं (सः) वह जीवात्मा (सध्रीचीः) साथ प्राप्त होती हुई गतियों को (सः) वह जीव और (विषूचीः) नाना प्रकार की कर्मानुसार गतियों को (वसानः) ढांपता हुआ (भुवनेषु) लोकलोकान्तरों के (अन्तः) बीच (आ, वरीवर्त्ति) निरन्तर अच्छे प्रकार वर्त्तता है ॥३१॥

भावार्थः—सब के देखने वाले परमेश्वर के देखने को जीव समर्थ नहीं और परमेश्वर सब को यथार्थ भाव से देखता है। जैसे वस्त्रों आदि से ढंपा

हुआ पदार्थ नहीं देखा जाता वैसे जीव भी सूक्ष्म होनेसे नहीं देखा जाता ये जीव कर्मगति से सब लोकों में भ्रमते हैं इन के भीतर बाहर परमात्मा स्थित हुआ पापपुण्य के फल देने रूप न्याय से सब को सर्वत्र जन्म देता है ॥ ३१ ॥

पुनर्जीवविषयमात्रमाह ॥

फिर जीव विषयमात्र को अ० ॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् । स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२ ॥

यः । ईम् । चकार । न । सः । अस्य । वेद । यः । ईम् । ददर्श । हिरुक् । इत् । नु । तस्मात् । सः । मातुः । योना । परिऽवीतः । अन्तः । बहुऽप्रजाः । निःऽऋतिम् । आ । विवेश ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(यः) जीवः (ईम्) क्रियाम् (चकार) करोति (न) (सः) (अस्य) जीवस्य स्वरूपम् (वेद) (यः) (ईम्) सर्वां क्रियाम् (ददर्श) पश्यति (हिरुक्) पृथक् (इत्) एव (नु) सद्यः (तस्मात्) (सः) (मातुः) जनन्याः (योना) गर्भाशये (परिवीतः) परित आवृतः (अन्तः) मध्ये (बहुप्रजाः) बहुजन्मा (निर्ऋतिम्) भूमिम् (आ) (विवेश) आविशति ॥ ३२॥

अन्वयः—यो जीव ईं चकार सोऽस्य स्वरूपं न वेद य ईं ददर्श स्वस्वरूपं पश्यति स तस्माद्धिरुक् सन्मातुर्योनान्तः परिवीतो बहुप्रजा निर्ऋतिमिन्न्वाविवेश ॥ ३२ ॥

भावार्थः—ये जीवाः कर्ममात्रं कुर्वन्ति नोपसनां ज्ञानं च प्राप्नुवन्ति ते स्वस्वरूपमपि न जानन्ति । ये च कर्मोपासनाज्ञानेषु निपुणास्ते स्वस्वरूपं परमात्मानञ्च वेदितुमर्हन्ति । जीवनां प्राग्-जन्मनामादिरुत्तरेषामन्तश्च न विद्यते । यदा शरीरं त्यजन्ति तदाऽऽ-काशस्था भूत्वा गर्भे प्रविश्य जनित्वा पृथिव्यां चेष्टावन्तो भवन्ति ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(यः) जो जीव (ईम्) क्रियामात्र (चकार) करता है (सः) वह (अस्य) इस अपने रूप को (न) नहीं (वेद) जानता है (यः) जो (ईम्) समस्त क्रिया को (ददर्श) देखता और अपने रूप को जानता है (सः) वह (तस्मात्) उस से (हिरुक्) अलग होता हुआ (मातुः) माता के (योना) गर्भाशय के (अन्तः) बीच (परिवीतः) सब ओर से ढंपा हुआ (बहुप्रजाः) बहुत बार जन्म लेने वाला (निर्ऋतिम्) भूमि को (इत्) ही (नु) शीघ्र (आ, विवेश) प्रवेश करता है ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो जीव कर्ममात्र करते किन्तु उपासना और ज्ञान को नहीं प्राप्त होते हैं वे अपने स्वरूप को भी नहीं जानते । और जो कर्म उपासना और ज्ञान में निपुण हैं वे अपने स्वरूप और परमात्मा के जानने को योग्य हैं जीवों के अगले जन्मों का आदि और पीछे अन्त नहीं है । जब शरीर को छोड़ते हैं तब आकाशस्थ हो गर्भ में प्रवेश कर और जन्म पा कर पृथिवी में चेष्टा क्रियावान् होते हैं ॥ ३२ ॥

पुनः प्रकारान्तरेण तमेव विषयमाह ॥

फिर प्रकारान्तर से उसी वि० ॥

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् । उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

द्यौः । मे । पिता । जनिता । नाभिः । अत्र । बन्धुः । मे । माता । पृथिवी । मही । इयम् । उत्तानयोः । चम्वोः । योनिः । अन्तः । अत्र । पिता । दुहितुः । गर्भम् । आ । अधात् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(द्यौः) प्रकाशमानः सूर्यो विद्युदिव (मे) मम (पिता) (जनिता) (नाभिः) बन्धनम् (अत्र) अस्मिन् जन्मनि (बन्धुः) भ्रातृवत् प्राणः (मे) मम (माता) मान्यप्रदा जननी (पृथिवी) भूमिरिव (मही) महती (इयम्) (उत्तानयोः) उपरिस्थयोरूर्ध्वं स्थापितयोः पृथिवीसूर्य्ययोः (चम्वोः) सेनयोरिव (योनिः) गृहम् (अन्तः) मध्ये (अत्र) अस्मिन् । अत्र ऋचि-तुनुघइति दीर्घः (पिता) सूर्यः (दुहितुः) उषसः (गर्भम्) किरणाख्यं वीर्यम् (आ) (अधात्) समन्ताद्दधाति ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यत्र पिता दुहितुर्गर्भमाधात् तत्र चम्वोरिव स्थितयोरुत्तानयोरन्तो मम योनिरस्ति। अत्र मे जनिता पिता द्यौरि वाऽत्र मे नाभिर्बन्धुरियं मही पृथिवीव माता वर्त्तत इति वेद्यम् ॥३३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—भूमिसूर्यौ सर्वेषां मातापितृबन्धुव-द्वर्त्तेते इदमेवाऽस्माकं निवासस्थानं यथा सूर्यः स्वस्मादुत्पन्नाया उषसो मध्ये किरणाख्यं वीर्यं संस्थाप्य दिनं पुत्रं जनयति तथैव पितरौ प्रकाशमानं पुत्रमुत्पादयेताम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जहां (पिता) पितृस्थानी सूर्य (दुहितुः) कन्या रूप उषा प्रभात वेला के (गर्भम्) किरणरूपी वीर्य को (आ,अधात्) स्थापित

करता है वहां (चम्वोः) दो सेनाओं के समान स्थित (उत्तानयोः) उपरिस्थ ऊंचे स्थापित किये हुए पृथिवी और सूर्य के (अन्तः) बीच मेरा (योनिः) घर है (अत्र) इस जन्म में (मे) मेरा (जनिता) उत्पन्न करने वाला (पिता) पिता (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य बिजुली के समान तथा (अत्र) यहां (मे) मेरा (नाभिः) बन्धनरूप (बन्धुः) भाई के समान प्राण और (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथिवी) भूमि के समान (माता) मान देने वाली माता वर्त्तमान है यह जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—भूमि और सूर्य सब के माता पिता और बन्धु के समान वर्त्तमान हैं यही हमारा निवासस्थान है जैसे सूर्य अपने से उत्पन्न हुई उषा के बीच किरण रूपी वीर्य को संस्थापन कर दिनरूपी पुत्र को उत्पन्न करता है वैसे माता पिता प्रकाशमान पुत्र को उत्पन्न करें॥३३॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वान् के वि० ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः । पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥

पृच्छामि । त्वा । परम् । अन्तम् । पृथिव्याः । पृच्छामि । यत्र । भुवनस्य । नाभिः । पृच्छामि । त्वा । वृष्णः । अश्वस्य । रेतः । पृच्छामि । वाचः । परमम् । विऽओम ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(पृच्छामि) (त्वा) त्वाम् (परम्) (अन्तम्) (पृथिव्याः) (पृच्छामि) (यत्र) (भुवनस्य) लोकसमूहस्य (नाभिः) बन्धनम् (पृच्छामि) (त्वा) (वृष्णः) वीर्यवर्षकस्य

(अश्वस्य) अश्ववद्वीर्यवतः (रेतः) वीर्यम् (पृच्छामि) (वाचः) (परमम्) प्रकृष्टम् (व्योम) व्यापकमवकाशम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्त्वा पृथिव्याः परमन्तं पृच्छामि । यत्र भुवनस्य नाभिरस्ति तं पृच्छामि । वृष्णोऽश्वस्य रेतस्त्वा पृच्छामि । वाचः परमं व्योम त्वां पृच्छामि ॥ ३४ ॥

भावार्थः—अत्र चत्वारः प्रश्नाः सन्ति तदुत्तराण्युत्तरत्र मन्त्रे वर्त्तन्ते इत्थमेव जिज्ञासुभिर्विद्वांसो नित्यं प्रष्टव्याः ॥३४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (त्वा) आप को (पृथिव्याः) पृथिवी के (परम्) पर (अन्तम्) अन्त को (पृच्छामि) पूछता हूं (यत्र) जहां (भुवनस्य) लोक समूह का (नाभिः) बन्धन है उस को (पृच्छामि) पूछता हूं (वृष्णः) वीर्य-वान् वर्षाने वाले (अश्वस्य) घोड़ों के समान वीर्यवान् के (रेतः) वीर्य को (त्वा) आप को (पृच्छामि) पूछता हूं और (वाचः) वाणी के (परमम्) परम (व्योम) व्यापक अवकाश अर्थात् आकाश को आप को (पृच्छामि) पूछता हूं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं और उन के उत्तर अगले मन्त्र में वर्त्तमान हैं । ऐसे ही जिज्ञासुओं को विद्वान् जन नित्य पूछने चाहिये ॥३४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥ २० ॥

इयम् । वेदिः । परः । अन्तः । पृथिव्याः । अयम् । यज्ञः । भुवनस्य । नाभिः । अयम् । सोमः । वृष्णः । अश्वस्य रेतः । ब्रह्मा । अयम् । वाचः । परमम् । विऽओम ॥३५॥२०॥

पदार्थः—(इयम्) (वेदिः) विदन्ति शब्दान् यस्यां साऽऽकाशवायुस्वरूपा (परः) परः (अन्तः) भागः (पृथिव्याः) भूमेः (अयम्) (यज्ञः) यष्टुं संगन्तुमर्हः सूर्यः (भुवनस्य) भूगोलसमूहस्य (नाभिः) आकर्षणेन बन्धनम् (अयम्) (सोमः) सोमलतादिरसश्चन्द्रमा वा (वृष्णः) वर्षकस्य (अश्वस्य) (रेतः) वीर्यमिव (ब्रह्मा) चतुर्वेदविज्जनश्चतुर्णां वेदानां प्रकाशकः परमात्मा वा (अयम्) (वाचः) वाण्याः (परमम्) (व्योम) अवकाशः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं पृथिव्याः परोऽन्तरियं वेदिरयं यज्ञो भुवनस्य नाभिरयं सोमो वृष्णोऽश्वस्य रेत इवायं ब्रह्मा वाचः परमं व्योमास्ति तानि यथावद्वित्त ॥ ३५ ॥

भावार्थः—पूर्वमन्त्रस्थानां प्रश्नानामिह क्रमेणोत्तराणि वेदितव्यानि पृथिव्या अभित आकाशवायुरेकैकस्य ब्रह्माण्डस्य मध्ये सूर्यो वीर्योत्पादिका ओषधयो पृथिव्या मध्ये विद्यावधिः सर्ववेदाध्ययनं परमात्मविज्ञानं चास्तीति निश्चेतव्यम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (पृथिव्याः) भूमि का (परः) पर (अन्तः) भाग (इयम्) यह (वेदिः) जिस में शब्दों को जानें वह आकाश और वायु रूप वेदि (अयम्) यह (यज्ञः) यज्ञ (भुवनस्य) भूगोल समूह का (नाभिः)

आकर्षण से बन्धन (अयम्) यह (सोमः) सोमलतादि रस वा चन्द्रमा (वृष्णः) वर्षा करने और (अश्वस्य) शीघ्रगामी सूर्य के (रेतः) वीर्य के समान और (अयम्) यह (ब्रह्मा) चारों वेदों का प्रकाश करने वाला विद्वान् वा परमात्मा (वाचः) वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) अवकाश है उन को यथावत् जानो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—पिछले मन्त्र में कहे हुए प्रश्नों के यहां क्रम से उत्तर जानने चाहिये पृथिवी के चारों ओर आकाशयुक्त वायु एक २ ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य और बल उत्पन्न करने वाली ओषधियां तथा पृथिवी के बीच विद्या की अवधि समस्त वेदों का पढ़ना और परमात्मा का उत्तम ज्ञान है यह निश्चय करना चाहिये ॥ ३५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सप्तार्द्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि । ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥

सप्त । अर्द्धऽगर्भाः । भुवनस्य । रेतः । विष्णोः । तिष्ठन्ति । प्रऽदिशा । विऽधर्मणि । ते । धीतिऽभिः । मनसा । ते । विपःऽचितः । परिऽभुवः । परि । भवन्ति । विश्वतः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(सप्त) (अर्द्धगर्भाः) अपूर्णगर्भा महत्तत्वाहंकारपञ्चभूतसूक्ष्मावयवाः (भुवनस्य) संसारस्य (रेतः) वीर्यम् (विष्णोः) व्यापकस्य परमेश्वरस्य (तिष्ठन्ति) (प्रदिशा) आज्ञया (विधर्मणि) विरुद्धधर्मण्याकाशे (ते) (धीतिभिः) कर्मभिः (मनसा)

(ते) (विपश्चितः) विदुषः (परिभुवः) परितस्सर्वतो विद्यासु भवन्ति (परि) (भवन्ति) (विश्वतः) सर्वतः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—ये सप्तार्द्धगर्भा भुवनस्य रेतो निर्माय विष्णोः प्रदिशा विधर्मणि तिष्ठन्ति । ते धीतिभिस्ते मनसा च परिभुवो विपश्चितो विश्वतः परिभवन्ति ॥ ३६ ॥

भावार्थः—यानि महत्तत्त्वाऽहंकारौ पञ्चसूक्ष्माणि भूतानि च सप्त सन्ति तानि पञ्चीकृतानि सर्वस्य स्थूलस्य कारणानि सन्ति चेतनविरुद्धधर्मे जडेऽन्तरिक्षे सर्वाणि वसन्ति । ये यथावत्सृष्टिक्रमं जानन्ति ते विद्वांसः सर्वतः पूज्यन्ते ये चैतं न जानन्ति ते सर्वतस्तिरस्कृता भवन्ति ॥ ३६ ॥

पदार्थः—जो (सप्त) सात (अर्द्धगर्भाः) आधे गर्भरूप अर्थात् पञ्चीकरण को प्राप्त महत्तत्त्व, अहङ्कार,पृथिवी, अप् ,तेज, वायु, आकाश के सूक्ष्म अवयवरूप शरीरधारी (भुवनस्य) संसार के (रेतः) बीज को उत्पन्न कर (विष्णोः) व्यापक परमात्मा की (प्रदिशा) आज्ञा से अर्थात् उस की आज्ञारूप वेदोक्त व्यवस्था से (विधर्मणि) अपने से विरुद्ध धर्म वाले आकाश में (तिष्ठन्ति) स्थित होते हैं (ते) वे (धीतिभिः) कर्म और (ते) वे (मनसा) विचार के साथ (परिभुवः) सब ओर से विद्या में कुशल (विपश्चितः) विद्वान् जन (विश्वतः) सब ओर से (परि,भवन्ति) तिरस्कृत करते अर्थात् उन के यथार्थ भाव के जानने को विद्वान् जन भी कष्ट पाते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जो महत्तत्त्व अहङ्कार पञ्चसूक्ष्मभूत सात पदार्थ हैं वे पञ्चीकरण को प्राप्त हुए सब स्थूल जगत् के कारण हैं चेतन से विरुद्ध धर्म्म वाले जड़रूप अन्तरिक्ष में सब वसते हैं । जो यथावत् सृष्टिक्रम को जानते हैं वे विद्वान् जन सब ओर से सत्कार को प्राप्त होते हैं और जो इस को नहीं जानते वे सब ओर से तिरस्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥

उक्तं प्रकारान्तरेणाह ॥

पूर्वोक्त विषय को प्रकारान्तर से कहते हैं ॥

न वि जा॑नामि॒ यदि॑वे॒दमस्मि॒ नि॒ण्यः संन॑द्धो॒ मन॑सा चरामि । य॒दा माग॑न्प्रथम॒जा ऋ॒तस्यादि॒द्वाचो॑ अ॒श्नुवे॑ भा॒गम॒स्याः ॥ ३७ ॥

न । वि । जा॒ना॒मि॒ । यत्ऽइ॑व । इ॒दम् । अ॒स्मि॒ । नि॒ण्यः । सम्ऽन॑द्धः । मन॑सा । च॒रा॒मि॒ । य॒दा । मा॒ । आ । अग॑न् । प्र॒थ॒म॒ऽजाः । ऋ॒तस्य॑ । आत् । इत् । वा॒चः । अ॒श्नु॒वे॒ । भा॒गम् । अ॒स्याः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(न) निषेधे (वि) विशेषेण (जानामि) (यदिव) सङ्गतमिव (इदम्) जगत् (अस्मि) (निण्यः) अन्तर्हितः । अत्र वर्णव्यत्ययेन णत्वम् । निण्य इति निर्णीतान्तर्हितना० निघं० ३ । २५ (सन्नद्धः) सम्यग्बद्धः (मनसा) अन्तःकरणेन (चरामि) गच्छामि (यदा) (मा) मां जीवम् (आ) (अगन्) समन्तात्प्राप्ताः (प्रथमजाः) प्रथमात् कारणाज्जाताः पूर्वोक्ता महत्तत्त्वादयः (ऋतस्य) सत्यस्य (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (वाचः) वाण्याः (अश्नुवे) प्राप्नोमि (भागम्) (अस्याः) ॥ ३७ ॥

अन्वयः—यदा प्रथमजा मागन्नादिदृतस्यास्या वाचो भागमहमश्नुवे। यावदिदं प्राप्तो नास्मि तावदुक्तं यदिव न विजानामि मनसा संनद्धो निण्यश्चरामि ॥ ३७ ॥

भावार्थः—अल्पज्ञाऽल्पशक्तिमत्त्वात् साधनैर्विना जीवः साध्यं ग्रहीतुं न शक्नोति । यदा श्रोत्रादीनि प्राप्नोति तदा वेदितुमर्हति । यावद्विद्यया सत्यं न जानाति तावदभिमानं कुर्वन् पशुरिव विचरति ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(यदा) जब (प्रथमजाः) उपादान कारण प्रकृति से उत्पन्न हुए पूर्वोक्त महत्तत्वादि (मा) मुझ जीव को (आ, अगन्) प्राप्त हुए अर्थात् स्थूल शरीरावस्था हुई (आत्, इत्) उस के अनन्तर ही (ऋतस्य) सत्य और (अस्याः) इस (वाचः) वाणी के (भागम्) भाग को विद्या विषय को मैं (अश्नुवे) प्राप्त होता हूं । जब तक (इदम्) इस शरीर को प्राप्त नहीं (अस्मि) होता हूं तब तक उस विषय को (यदिव) जैसे के वैसा (न) नहीं (वि, जानामि) विशेषता से जानता हूं । किन्तु (मनसा) विचार से (संनद्धः) अच्छा बन्धा हुआ (निण्यः) अन्तर्हित अर्थात् भीतर उस विचार को स्थिर किये (चरामि) विचरता हूं ॥ ३७ ॥

भावार्थः—अल्पज्ञता और अल्पशक्तिमत्ता के कारण साधनरूप इन्द्रियों के विना जीव सिद्ध करने योग्य वस्तु को नहीं ग्रहण कर सकता जब श्रोत्रादि इन्द्रियों को प्राप्त होता है तब जानने को योग्य होता है जब तक विद्या से सत्य पदार्थ को नहीं जानता तब तक अभिमान करता हुआ पशु के समान विचरता है ॥ ३७ ॥

पुनः प्रकारान्तरेणोक्तविषयमाह ॥

फिर प्रकारान्तर से उक्त वि० ॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः । ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ ३८ ॥

अपाङ् । प्राङ् । एति । स्वधया । गृभीतः । अमर्त्यः । मर्त्येन । सऽयोनिः । ता । शश्वन्ता । विषूचीना । विऽयन्ता । नि । अन्यम् । चिक्युः । न । नि । चिक्युः । अन्यम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(अपाङ्) अपाञ्चतीति (प्राङ्) प्रकृष्टमञ्चतीति (एति) प्राप्नोति (स्वधया) जलादिना सह वर्त्तमानः । स्वधेत्युदकना० निघं० १ । १२ । स्वधेत्यन्नना० निघं० २ । ७ (गृभीतः) गृहीतः (अमर्त्यः) मरणधर्मरहितो जीवः (मर्त्येन) मरणधर्मसहितेन शरीरादिना । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (सयोनिः) समानस्थानः (ता) तौ मर्त्यामर्त्यौ जड़चेतनौ (शश्वन्ता) सनातनौ (विषूचीना) विष्वगञ्चितारौ (वियन्ता) विविधान् प्राप्नुवन्तौ (नि) (अन्यम्) (चिक्युः) चिनुयुः (न) (नि) (चिक्युः) (अन्यम्) ॥ ३८ ॥

अन्वयः—यः स्वधयापाङ् प्राङेति यो गृभीतो अमर्त्यो मर्त्येन सयोनिरस्ति ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता वर्त्तेते तमन्यं विद्वांसो निचिक्युरविद्वांसश्चान्यं न निचिक्युः ॥ ३८ ॥

भावार्थः—अस्मिञ्जगति द्वौ पदार्थौ वर्त्तेते जडश्चेतनश्च तयोर्जडोऽन्यं स्वस्वरूपञ्च न जानाति । चेतनश्चाऽन्यं स्वस्वरूपञ्च जानाति द्वावनुत्पन्नावनादी अविनाशिनौ च वर्त्तेते जडः संयोगेन स्थूलावस्थां प्राप्तश्चेतनो जीवः संयोगेन वियोगेन च स्वरूपं न जहाति किन्तु स्थूलसूक्ष्मयोगेन स्थूलसूक्ष्मइव विभाति कूटस्थः सन् यादृशोऽस्ति तादृशएव तिष्ठति ॥ ३८ ॥

पदार्थः—जो (स्वधया) जल आदि पदार्थों के साथ वर्त्तमान (अपाङ्) उलटा (प्राङ्) सीधा (एति) प्राप्त होता है और जो (गृभीतः) ग्रहण किया हुआ (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित जीव (मर्त्येन) मरणधर्म सहित शरीरादि के साथ (सयोनिः) एक स्थान वाला हो रहा है (ता) वे दोनों (शश्वन्ता) सनातन (विषूचीना) सर्वत्र जाने और (वियन्ता) नाना प्रकार से प्राप्त होने वाले वर्त्तमान हैं उन में से उस (अन्यम्) एक जीव और शरीर आदि को विद्वान् जन (नि, चिक्युः) निरन्तर जानते और अविद्वान् (अन्यम्) उस एक को(न, नि, चिक्युः) वैसा नहीं जानते ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस जगत् में दो पदार्थ वर्त्तमान हैं एक जड़ दूसरा चेतन उन में जड़ और को और अपने रूप को नहीं जानता और चेतन अपने को और दूसरे को जानता है दोनों अनुत्पन्न अनादि और विनाशरहित वर्त्तमान हैं जड़ अर्थात् शरीरादि परमाणुओं के संयोग से स्थूलावस्था को प्राप्त हुआ चेतन जीव संयोग वा वियोग से अपने रूप को नहीं छोड़ता किन्तु स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ के संयोग से स्थूल वा सूक्ष्म सा भान होता है परन्तु वह एकतार स्थित जैसा है वैसा ही ठहरता है ॥ ३८ ॥

पुनरीश्वरविषयमाह ॥

फिर ईश्वर के वि० ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ३९ ॥

ऋचः । अक्षरे । परमे । विऽओमन् । यस्मिन् । देवाः । अधि । विश्वे । निऽसेदुः । यः । तत् । न । वेद । किम् । ऋचा । करिष्यति । ये । इत् । तत् । विदुः । ते । इमे । सम् । आसते ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(ऋचः) ऋग्वेदादेः (अक्षरे) नाशरहिते (परमे) प्रकृष्टे (व्योमन्) व्योम्नि व्यापके परमेश्वरे (यस्मिन्) (देवाः) पृथिवीसूर्यलोकादयः (अधि) (विश्वे) सर्वे (निषेदुः) निषीदन्ति (यः) (तत्) ब्रह्म (न) (वेद) जानाति (किम्) (ऋचा) वेदचतुष्टयेन (करिष्यति) (ये) (इत्) एव (तत्) (विदुः) जानन्ति (ते) (इमे) (सम्) (आसते) सम्यगासते । अयं निरुक्ते व्याख्यातः । निरु० १३ । १० ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यस्मिन्नृचः सकाशात्प्रतिपादितेऽक्षरे परमे व्योमन्परमेश्वरे विश्वे देवा अधि निषेदुः । यस्तन्न वेद स ऋचा वेदेन किं करिष्यति ये तद्विदुस्त इमे इदेव ब्रह्मणि समासते ॥ ३९ ॥

भावार्थः—यत्सर्वेषां वेदानां परमं प्रमेयं प्रतिपाद्यं ब्रह्मामरं च जीवाः कार्य्यकारणाख्यं जगच्चाऽस्ति । एषां मध्यात्सर्वाधारो व्योमवद्व्यापकः परमात्मा जीवाः कार्यं कारणञ्च व्याप्यमस्ति । अत एव सर्वे जीवादयः पदार्थाः परमेश्वरे निवसन्ति । ये वेदानधीत्यैतत्प्रमेयं न जानन्ति ते वेदैः किमपि फलं न प्राप्नुवन्ति । ये च वेदानधीत्य जीवान् कार्यं कारणं ब्रह्म च गुणकर्मस्वभावतो विदन्ति ते सर्वे धर्मार्थकाममोक्षेषु सिद्धेषु आनन्दन्ति ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस (ऋचः) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित (अक्षरे) नाशरहित (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में (विश्वे) समस्त (देवाः) पृथिवी सूर्य लोकादि देव (अधि, निषेदुः) आधेय रूप से स्थित होते हैं । (यः) जो (तत्) उस परब्रह्म परमेश्वर को (न, वेद) नहीं जानता वह (ऋचा) चार वेद से (किम्) क्या

(करिष्यति) कर सकता है और (ये) जो (तत्) उस परब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते) (इमे,इत्) वेही ये ब्रह्म में (समासते) अच्छे प्रकार स्थिर होते हैं ॥३९॥

भावार्थः—जो सब वेदों का परमप्रमेय पदार्थरूप और वेदों से प्रतिपाद्य ब्रह्म अमर और जीव तथा कार्यकारणरूप जगत् है । इन सभों में से सब का आधार अर्थात् ठहरने का स्थान आकाशवत् परमात्मा व्यापक और जीव तथा कार्य कारण रूप जगत् व्याप्य है इसी से सब जीव आदि पदार्थ परमेश्वर में निवास करते हैं । और जो वेदों को पढ़ के इस प्रमेय को नहीं जानते वे वेदों से कुछ भी फल नहीं पाते और जो वेदों को पढ़ के जीव कार्य कारण और ब्रह्म को गुण कर्म स्वभाव से जानते हैं वे सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध होने आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥

अथ विदुषीविषयमाह ॥

अब विदुषी स्त्री के विषय में अ० ॥

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम । अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ४० ॥ २१ ॥

सुयवसऽअत् । भगऽवती । हि । भूयाः । अथोइति । वयम् । भगऽवन्तः । स्याम । अद्धि । तृणम् । अघ्न्ये । विश्वऽदानीम् । पिब । शुद्धम् । उदकम् । आऽचरन्ती ॥ ४० ॥ २१ ॥

पदार्थः—(सुयवसात्) या शोभनानि यवसानि सुखानि अत्ति सा (भगवती) बह्वैश्वर्ययुक्ता विदुषी (हि) किल (भूयाः) (अथो) (वयम्) (भगवन्तः) बह्वैश्वर्ययुक्ताः (स्याम) भवेम (अद्धि) अशान (तृणाम्) (अघ्न्ये) गौरिव वर्त्तमाने

(विश्वदानीम्) विश्वं समग्रं दानं यस्यास्ताम् (पिब) (शुद्धम्) पवित्रम् (उदकम्) जलम् (आचरन्ती) सत्याचरणं कुर्वती । अयं निरुक्ते व्याख्यातः । निरु० ११ । ४४ ॥ ४० ॥

अन्वयः-हे अघ्न्ये त्वं सुयवसाद्भगवती भूया हि यतो वयं भगवन्तस्स्याम । यथा गौस्तृणं जग्ध्वा शुद्धमुदकं पीत्वा दुग्धं दत्वा वत्सादीन् सुखयति तथा विश्वदानीमाचरन्ती सत्यथो सुखमद्धि विद्यारसं पिब ॥ ४० ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु० यावन्मातरो वेदविदो न स्युस्तावत्तदपत्यान्यपि विद्यावन्ति न भवन्ति । या विदुष्यो भूत्वा स्वयंवरं विवाहं कृत्वा सन्तानानुत्पाद्य सुशिक्ष्य विदुषः कुर्वन्ति ता गावइव सर्वं जगदाह्लादयन्ति ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (अघ्न्ये) न हनने योग्य गौ के समान वर्त्तमान विदुषी तू (सुयवसात्) सुन्दर सुखों की भोगने वाली (भगवती) बहुत ऐश्वर्यवती (भूयाः) हो कि (हि) जिस कारण (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों । जैसे गौ (तृणम्) तृण को खा (शुद्धम्) शुद्ध (उदकम्) जल को पी और दूध देकर बछड़े आदि को सुखी करती है वैसे (विश्वदानीम्) समस्त जिस में दान उस क्रिया का (आचरन्ती) सत्य आचरण करती हुई (अथो) इस के अनन्तर सुख को (अद्धि) भोग और विद्यारस को (पिब) पी ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब तक माता जन वेदवित् न हों तब तक उन के सन्तान भी विद्यावान् नहीं होते हैं । जो विदुषी हो स्वयंवर विवाह कर सन्तानों को उत्पन्न कर और उन को अच्छी शिक्षा दे कर उन्हें विद्वान् करती हैं वे गौओं के समान समस्त जगत् को आनन्दित करती हैं ॥ ४० ॥

पुनर्विदुषीविषयमाह ॥

फिर विदुषी के वि० ॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी । अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ ४१ ॥

गौरीः । मिमाय । सलिलानि । तक्षती । एकऽपदी । द्विऽपदी । सा । चतुःऽपदी । अष्टाऽपदी । नवऽपदी । बभूवुषी । सहस्रऽअक्षरा । परमे । विऽओमन् ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(गौरीः) गौरवर्णाः (मिमाय) शब्दायते (सलिलानि) जलानीव निर्मलानि वचनानि (तक्षती) (एकपदी) एकवेदाभ्यासिनी (द्विपदी) अभ्यस्तद्विवेदा (सा) (चतुष्पदी) चतुर्वेदाध्यापिका (अष्टापदी) वेदोपवेदविद्यायुक्ता (नवपदी) चतुर्वेदोपवेदव्याकरणादिशिक्षायुक्ता (बभूवुषी) अतिशयेन विद्यासु भवन्ती (सहस्राक्षरा) सहस्राणि असंख्यातान्यक्षराणि यस्याः सा (परमे) सर्वोत्कृष्टे (व्योमन्) व्योमवद्व्याप्तेऽक्षुब्धे । अयं निरुक्ते व्याख्यातः निरु० ११ । ४० ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषा यैकपदी द्विपदी चतुष्पदी अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा सती परमे व्योमन् प्रयतते गौरीर्विदुषीर्मिमाय सलिलानीव तक्षती सा विश्वकल्याणकारिका भवति ॥४१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—या स्त्रियः सर्वान् सांगोपाङ्गान् वेदानधीत्याध्यापयन्ति ताः सर्वान् मनुष्यानुन्नयन्ति ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो जो (एकपदी) एक वेद का अभ्यास करने वाली वा (द्विपदी) दो वेद जिस ने अभ्यास किये वा (चतुष्पदी) चार वेदों की पढ़ाने वाली वा (अष्टापदी) चार वेद और चार उपवेदों की विद्या से युक्त वा (नवपदी) चारवेद चार उपवेद और व्याकरणादि शिक्षायुक्त (बभूवुषी) अतिशय करके विद्याओं में प्रसिद्ध होती और (सहस्राक्षरा) असंख्यात अक्षरों वाली होती हुई (परमे) सब से उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान व्याप्त निश्चल परमात्मा के निमित्त प्रयत्न करती है और (गौरीः) गौरवर्णयुक्त विदुषी स्त्रियों को (मिमाय) शब्द कराती अर्थात् (सलिलानि) जल के समान निर्मल वचनों को (तक्षती) छांटती अर्थात् अविद्यादि दोषों से अलग करती हुई (सा) वह संसार के लिये अत्यन्त सुख करने वाली होती है ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्त्री समस्त साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़ के पढ़ाती हैं वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं ॥ ४१ ॥

अथ वाणीविषयमाह ॥

अब वाणी के वि० ॥

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः। ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥ ४२ ॥

तस्याः। समुद्राः। अधि। वि। क्षरन्ति। तेन। जीवन्ति। प्रऽदिशः। चतस्रः। ततः। क्षरति। अक्षरम्। तत्। विश्वम्। उप। जीवति ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(तस्याः) वाण्याः (समुद्राः) शब्दाऽर्णवाः (अधि) (वि) (क्षरन्ति) अक्षराणि वर्षन्ति (तेन) कार्येण (जीवन्ति)

(प्रदिशः) दिशोपदिशः (चतस्रः) चतुःसंख्योपेताः (ततः) (क्षरति) (अक्षरम्) अक्षयस्वभावम् (तत्) तस्मात् (विश्वम्) सर्वं जगत् (उप) (जीवति) अयं मन्त्रो निरुक्ते व्याख्यातः निरु० ११ । ४१ ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्यास्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन चतस्रः प्रदिशो जीवन्ति ततो यदक्षरं क्षरति तद्विश्वमुप जीवति ॥ ४२॥

भावार्थः—समुद्रवदाकाशस्तत्र रत्नवच्छब्दाः प्रयोक्तारो ग्रहीतारस्तदुपदेशश्रवणेन सर्वेषामुपजीवनं भवति ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (तस्याः) उस वाणी के (समुद्राः, अधि, वि, क्षरन्ति) शब्दरूपी अर्णव समुद्र अक्षरों की वर्षा करते हैं (तेन) उस काम से (चतस्रः) चारो (प्रदिशः) दिशा और चारो उपदिशा (जीवन्ति) जीवती हैं और (ततः) उस से जो (अक्षरम्) न नष्ट होने वाला अक्षरमात्र (क्षरति) वर्षता है (तत्) उस से (विश्वम्) समस्त जगत् (उप, जीवति) उपजीविका को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

भावार्थः—समुद्र के समान आकाश है उस के बीच रत्नों के समान शब्द शब्दों के प्रयोग करने वाले रत्नों का ग्रहण करने वाले हैं उन शब्दों के उपदेश सुनने से सब की जीविका और सब का आश्रय होता है ॥ ४२ ॥

अथ ब्रह्मचर्यविषयमाह ॥

अब ब्रह्मचर्यवि० ॥

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण । उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ ४३ ॥

शकऽमयम्। धूमम्। आरात्। अपश्यम्। विषुऽवता।
परः। एना। अवरेण। उक्षाणम्। पृश्निम्। अपचन्त।
वीराः। तानि। धर्म्माणि। प्रथमानि। आसन्॥ ४३॥

पदार्थः—(शकमयम्) शक्तिमयम् (धूमम्) ब्रह्मचर्यकर्मानुष्ठानाग्निधूमम् (आरात्) समीपात् (अपश्यम्) पश्यामि (विषूवता) व्याप्तिमता (परः) परस्तात् (एना) एनेन (अवरेण) अर्वाचीनेन (उक्षाणम्) सेचकम् (पृश्निम्) आकाशम् (अपचन्त) पचन्ति (वीराः) व्याप्तविद्याः (तानि) (धर्म्माणि) (प्रथमानि) आदिमानि ब्रह्मचर्याख्यानि (आसन्) सन्ति ॥४३॥

अन्वयः—हे मनुष्या अहमाराच्छकमयं धूममपश्यमेनाऽवरेण विषूवता धूमेन परो वीराः पृश्निमुक्षाणं चापचन्त तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्नभवन् ॥ ४३ ॥

भावार्थः-विद्वज्जना अग्निहोत्रादियज्ञैर्मेघमण्डलस्थं जलं शोधयित्वा सर्वाणि वस्तूनि शोधयन्ति। अतो ब्रह्मचर्याऽनुष्ठानेन सर्वेषां शरीराण्यात्ममनसी च शोधयन्तु। सर्वे जनाः समीपस्थं धूममग्निमन्यं पदार्थञ्च प्रत्यक्षतया पश्यन्ति परावरज्ञो विद्वाँस्तु भूमिमारभ्य परमेश्वरपर्यन्तं वस्तुसमूहं साक्षात्कर्त्तुं शक्नोति ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो मैं (आरात्) समीप से (शकमयम्) शक्तिमय समर्थ (धूमम्) ब्रह्मचर्य कर्मानुष्ठान के अग्नि के धूम को (अपश्यम्) देखता हूं (एना, अवरेण) इस नीचे इधर उधर जाते हुए (विषूवता) व्याप्तिमान् धूम से (परः) पीछे (वीराः) विद्याओं में व्याप्त पूर्ण विद्वान् (पृश्निम्)

आकाश और (उक्षाणम्) सींचने वाले मेघ को (अपचन्त) पचाते अर्थात् ब्रह्मचर्य विषयक अग्निहोत्राग्नि तपते हैं (तानि) वे (धर्माणि) धर्म (प्रथमानि) प्रथम ब्रह्मचर्यसंज्ञक (आसन्) हुए हैं ॥ ४३ ॥

भावार्थः—विद्वान् जन अग्निहोत्रादि यज्ञों से मेघमण्डलस्थ जल को शुद्ध कर सब वस्तुओं को शुद्ध करते हैं इस से ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से सब के शरीर आत्मा और मन को शुद्ध करावें । सब मनुष्यमात्र समीपस्थ धूम और अग्नि वा और पदार्थ को प्रत्यक्षता से देखते हैं और अगले पिछिले भाव को जानने वाला विद्वान् तो भूमि से लेके परमेश्वरपर्यन्त वस्तु समूह को साक्षात् कर सकता है ॥ ४३ ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

फिर विद्वानों के वि० ॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् । विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ ४४ ॥

त्रयः । केशिनः । ऋतुऽथा । वि । चक्षते । संवत्सरे । वपते । एकः । एषाम् । विश्वम् । एकः । अभि । चष्टे । शचीभिः । ध्राजिः । एकस्य । ददृशे । न । रूपम् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(त्रयः) वायुविद्युत्सूर्याः (केशिनः) प्रकाशवन्तो ज्ञापकाः (ऋतुथा) ऋतुप्रकारेण (वि) (चक्षते) दर्शयन्ति (संवत्सरे) (वपते) वीजानि संतनुते (एकः) (एषाम्) त्रयाणाम् (विश्वम्) समग्रं जगत् (एकः) सूर्यः (अभि) अभितः (चष्टे) प्रकाशयति (शचीभिः) कर्मभिः । शचीति

कर्मना० निघं० २ । १ (ध्राजिः) गतिः (एकस्य) वायोः (ददृशे) दृश्यते (न) (रूपम्) इयं निरुक्ते व्याख्याता । निरु० १३ । २७ ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे अध्यापकाऽध्येतृपरीक्षका यूयं यथा केशिनस्त्रयः सूर्यविद्युद्वायवः संवत्सरे ऋतुथा शचीभिर्विचक्षत एषामेको वपत एको विश्वमभिचष्ट एकस्य ध्राजी रूपं च न ददृशे तथा यूयमिह प्रवर्त्तध्वम् ॥ ४४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यूयं वायुसूर्यविद्युद्वदध्ययनाऽध्यापनादिभिर्विद्या वर्द्धयत यथात्मनो रूपं चक्षुषा न दृश्यते तथा विदुषां गतिर्न लक्ष्यते यथा ऋतवः संवत्सरमारभन्तं समयं विभजन्ति तथा कर्मारम्भं विद्याऽविद्ये धर्माऽधर्मौ च विभजन्तु ॥४४॥

पदार्थः—हे पढ़ने पढ़ाने वाले लोगों के परीक्षको तुम जैसे (केशिनः) प्रकाशवान् वा अपने गुण को समय पाय जताने वाले (त्रयः) तीन अर्थात् सूर्य, बिजुली और वायु (संवत्सरे) संवत्सर अर्थात् वर्ष में (ऋतुथा) वसन्तादि ऋतु के प्रकार से (शचीभिः) जो कर्म उन से (वि, चक्षते) दिखाते अर्थात् समय २ के व्यवहार को प्रकाशित कराते हैं (एषाम्) इन तीनों में (एकः) एक बिजुलीरूप अग्नि (वपते) जीवों को उत्पन्न कराता (एकः) सूर्य (विश्वम्) समग्र जगत् को (अभि, चष्टे) प्रकाशित करता और (एकस्य) वायु की (ध्राजिः) गति और (रूपम्) रूप (न) नहीं (ददृशे) दीखता वैसे तुम यहां प्रवर्त्तमान होओ ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो तुम वायु सूर्य और बिजुली के समान अध्ययन अध्यापन आदि कर्मों से विद्याओं को बढ़ाओ जैसे अपने

आत्मा का रूप नेत्र से नहीं दीखता वैसे विद्वानों की गति नहीं जाना जाती जैसे ऋतु संवत्सर को आरम्भ करते हुए समय को विभाग करते हैं वैसे कर्म्मारम्भ विद्या अविद्या और धर्म्म अधर्म्म को पृथक् २ करें ॥ ४४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

च॒त्वारि॒ वाक् परि॑मिता प॒दानि॒ तानि॑ विदुर्ब्रा॑ह्म॒णा ये म॑नी॒षिणः॑ । गु॒हा त्रीणि॒ निहि॑ता॒ नेङ्ग॑यन्ति तु॒रीयं॑ वा॒चो म॑नु॒ष्या॑ वदन्ति ॥ ४५ ॥

च॒त्वारि॑ । वाक् । परि॑ऽमिता । प॒दानि॑ । तानि॑ । वि॒दुः । ब्रा॒ह्म॒णाः । ये । म॒नी॒षिणः॑ । गु॒हा॑ । त्रीणि॑ । नि॒ऽहि॑ता । न । इ॒ङ्ग॒य॒न्ति॒ । तु॒रीय॑म् । वा॒चः । म॒नु॒ष्याः॑ । व॒द॒न्ति॒ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(चत्वारि) नामाख्यातोपसर्गनिपाताः (वाक्) वाचः । अत्र सुपां सुलुगिति ङसो लुक् (परिमिता) परिमाणयुक्तानि (पदानि) वेदितुं योग्यानि (तानि) (विदुः) जानन्ति (ब्राह्मणाः) व्याकरणवेदेश्वरवेत्तारः (ये) (मनीषिणः) मनसो दमनशीलाः (गुहा) गुहायां बुद्धौ (त्रीणि) नामाख्यातोपसर्गाः (निहिता) धृतानि (न) (इङ्गयन्ति) चेष्टन्ते (तुरीयम्) चतुर्थं निपातम् (वाचः) वाण्याः (मनुष्याः) साधारणाः (वदन्ति) उच्चारयन्ति। अयं मन्त्रो निरुक्ते व्याख्यातः । निरु० १३ । ९ । ४५ ॥

अन्वयः—ये मनीषिणो ब्राह्मणा वाक् परिमिता यानि चत्वारि पदानि तानि विदुः । तेषां गुहा त्रीणि निहिता सन्ति नेङ्गयन्ति ये मनुष्याः सन्ति ते वाचस्तुरीयं वदन्ति ॥ ४५ ॥

भावार्थः—विदुषामविदुषां चेयानेव भेदोऽस्ति ये विद्वांसः सन्ति ते नामाख्यातोपसर्गनिपातांश्चतुरो जानन्ति । तेषां त्रीणि ज्ञानस्थानि सन्ति चतुर्थं सिद्धं शब्दसमूहं प्रसिद्धे व्यवहारे वदन्ति । ये चाऽविद्वांसस्ते नामाख्यातोपसर्गनिपातान्न जानन्ति किन्तु निपातरूपं साधनज्ञानरहितं सिद्धं शब्दं प्रयुञ्जते ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(ये) जो (मनीषिणः) मन को रोकने वाले (ब्राह्मणाः) व्याकरण, वेद, और ईश्वर के जानने वाले विद्वान् जन (वाक्) वाणी के (परिमिता) परिमाणयुक्त जो (चत्वारि) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार (पदानि) जानने को योग्य पद हैं (तानि) उन को (विदुः) जानते हैं उन में से (त्रीणि) तीन (गुहा) बुद्धि में (निहिता) धरे हुए हैं (न, इङ्गयन्ति) चेष्टा नहीं करते । जो (मनुष्याः) साधारण मनुष्य हैं वे (वाचः) वाणी के (तुरीयम्) चतुर्थ भाग अर्थात् निपातमात्र को (वदन्ति) कहते हैं ॥ ४५ ॥

भावार्थः—विद्वान् और अविद्वानों में इतना ही भेद है कि जो विद्वान् हैं वे नाम,आख्यात,उपसर्ग और निपात इन चारों को जानते हैं । उन में से तीन ज्ञान में रहते हैं चौथे सिद्ध शब्दसमूह को प्रसिद्ध व्यवहार में सब कहते हैं । और जो अविद्वान् हैं वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातों को नहीं जानते किन्तु निपातरूप साधन ज्ञान रहित प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं ॥ ४५ ॥

पुनर्विद्वद्विषयान्तर्गतेश्वरविषयमाह ॥

फिर विद्वद्विषयान्तर्गत ईश्वर वि० ॥

इन्द्रं॑ मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमा॑हु॒रथो॑ दि॒व्यः स सु॑प॒र्णो ग॒रुत्मा॑न् । एकं॒ सद्विप्रा॑ बहु॒धा व॑दन्त्य॒ग्निं य॒मं मा॑त॒रिश्वा॑नमाहुः ॥ ४६ ॥ २२ ॥

इन्द्र॑म् । मि॒त्रम् । वरु॑णम् । अ॒ग्निम् । आ॒हुः । अथो॒ इति॑ । दि॒व्यः । सः । सु॒ऽप॒र्णः । ग॒रुत्मा॑न् । एक॑म् । सत् । विप्राः॑ । ब॒हु॒धा । व॒द॒न्ति॒ । अ॒ग्निम् । य॒मम् । मा॒तरिश्वा॑नम् । आ॒हुः ॥ ४६ ॥ २२ ॥

पदार्थः—(इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्तम् (मित्रम्) मित्रमिव वर्त्तमानम् (वरुणम्) श्रेष्ठम् (अग्निम्) सर्वव्याप्तं विद्युदादिलक्षणम् (आहुः) कथयन्ति (अथो) (दिव्यः) दिवि भवः (सः) (सुपर्णः) शोभनानि पर्णानि पालनानि यस्य सः (गरुत्मान्) गुर्वात्मा (एकम्) असहायम् (सत्) विद्यमानम् (विप्राः) मेधाविनः (बहुधा) बहुप्रकारैर्नामभिः (वदन्ति) (अग्निम्) सर्वव्याप्तं परमात्मरूपम् (यमम्) नियन्तारम् (मातरिश्वानम्) मातरिश्वा वायुस्तल्लक्षणम् (आहुः) कथयन्ति । अयं मन्त्रो निरुक्ते व्याख्यातः निरु० ७ । १८ ॥ ४६ ॥

अन्वयः—विप्रा इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमिति बहुधाऽहुः । अथो स दिव्यः सुपर्णो गरुत्मानस्तीति बहुधा वदन्ति एकं सद्ब्रह्म अग्निं यमं मातरिश्वानं चाहुः ॥ ४६ ॥

भावार्थः—यथाऽग्न्यादेरिन्द्रादीनि नामानि सन्ति तथैकस्य परमात्मनोऽग्न्यादीनि सहस्रशो नामानि वर्त्तन्ते । यावन्तः परमेश्वरस्य गुणकर्मस्वभावाः सन्ति तावन्त्येवैतस्य नामधेयानि सन्तीति वेद्यम् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(विप्राः) बुद्धिमान् जन (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त (मित्रम्) मित्रवत् वर्त्तमान (वरुणम्) श्रेष्ठ (अग्निम्) सर्वव्याप्त विद्युदादि लक्षण युक्त अग्नि को (बहुधा) बहुत प्रकारों से बहुत नामों से (आहुः) कहते हैं। (अथो) इस के अनन्तर (सः) वह (दिव्यः) प्रकाश में प्रसिद्ध प्रकाशमय (सुपर्णः) सुन्दर जिस के पालना आदि कर्म (गरुत्मान्) महान् आत्मा वाला है इत्यादि बहुत प्रकारों बहुत नामों से (वदन्ति) कहते हैं तथा वे अन्य विद्वान् (एकम्) एक (सत्) विद्यमान परब्रह्म परमेश्वर को (अग्निम्) सर्वव्याप्त परमात्मारूप (यमम्) सर्व नियन्ता और (मातरिश्वानम्) वायु लक्षण लक्षित भी (आहुः) कहते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थः—जैसे अग्न्यादि पदार्थों के इन्द्र आदि नाम हैं वैसे एक परमात्मा के अग्नि आदि सहस्रों नाम वर्त्तमान हैं जितने परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव हैं उतने ही इस परमात्मा के नाम हैं यह जानना चाहिये ॥ ४६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति । त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥

कृष्णम् । निऽयानम् । हरयः । सुऽपर्णाः । अपः । वसानाः । दिवम् । उत् । पतन्ति । ते । आ । अववृत्रन् । सदनात् । ऋतस्य । आत् । इत् । घृतेन । पृथिवी । वि । उद्यते ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(कृष्णम्) कर्षितुं योग्यम् (नियानम्) नित्यं प्राप्तं भूगोलाख्यं विमानादिकं वा (हरयः) हरणशीलाः

(सुपर्णाः) रश्मयः (अपः) प्राणान् जलानि वा (वसानाः) आच्छादयन्तः (दिवम्) प्रकाशमयं सूर्यम् (उत्) (पतन्ति) प्राप्नुवन्ति (ते) (आ) (अववृतन्) वर्त्तन्ते । अत्र वृतु वर्त्तने इत्यस्माद्वर्त्तमाने लङ् व्यत्ययेन परस्मैपदं प्रथमस्य बहुवचने बहुलं छन्दसीति रुडागमश्च । (सदनात्) स्थानात् (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (घृतेन) जलेन (पृथिवी) भूमिः (वि) (उद्यते) क्लिद्यते । अयं मन्त्रो निरुक्ते व्याख्यातः । निरु० ७ । २४ ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या अपो वसाना हरयः सुपर्णाः कृष्णं नियानं दिवमुत्पतन्ति ते सूर्यमाववृतन्नृतस्य सदनात्प्राप्तेन घृतेन पृथिवी व्युद्यते तमादिद्यथावद्विजानीत ॥ ४७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु० यथा सुशिक्षिता अश्वा यानानि सद्यो नयन्ति तथाऽग्न्यादयः पदार्था विमानं यानमाकाशमुद्गमयन्ति यथा सूर्यकिरणा भूमितलाज्जलमाकृष्य वर्षित्वा सर्वान् वृक्षादीनार्द्रान् कुर्वन्ति तथा विद्वांसः सर्वान् मनुष्यानानन्दयन्ति ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अपः) प्राण वा जलों को (वसानाः) ढांपती हुई (हरयः) हरणशील (सुपर्णाः) सूर्य की किरणें (कृष्णम्) खींचने योग्य (नियानम्) नित्य प्राप्त भूगोल वा विमान आदि यान को वा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य के (उत्, पतन्ति) ऊपर गिरती हैं और (ते) वे (आववृत्रन्) सूर्य के सब ओर से वर्त्तमान हैं (ऋतस्य) सत्यकारण के (सदनात्) स्थान से प्राप्त (घृतेन) जल से (पृथिवी) भूमिः (वि, उद्यते) विशेषतर गीली किई जाती है उस को (आत्, इत्) इस के अनन्तर ही यथावत् जानो ॥ ४७ ॥

भावार्थः–इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अच्छे शीखे हुए घोड़े रथों को शीघ्र पहुंचाते हैं वैसे अग्नि आदि पदार्थ विमान रथ को आकाश में पहुंचाते हैं जैसे सूर्य की किरणें भूमितल से जल को खींच और वर्षा समस्त वृक्ष आदि को आर्द्र करती हैं वैसे विद्वान् जन सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं ॥ ४७ ॥

अथ विद्वद्विषये शिल्पवि० ॥

अब विद्वद्विषय में शिल्प वि० ॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत । तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥ ४८ ॥

द्वादश । प्रऽधयः । चक्रम् । एकम् । त्रीणि । नभ्यानि । कः । ऊं इति । तत् । चिकेत । तस्मिन् । साकम् । त्रिऽशता । न । शङ्कवः । अर्पिताः । षष्टिः । न । चलाचलासः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(द्वादश) (प्रधयः) धारिका धुरः (चक्रम्) चक्रवद्वर्त्तमानम् (एकम्) (त्रीणि) (नभ्यानि) नह्यौ नाभौ साधूनि । अत्र वर्णव्यत्ययेन हस्य भः (कः) (उ) वितर्के (तत्) (चिकेत) जानीयात् (तस्मिन्) (साकम्) सह (त्रिशता) त्रीणि शतानि येषु (न) इव (शंकवः) कीलाः (अर्पिताः) (षष्टिः) (न) इव (चलाचलासः) चलाश्च अचलाश्च ताः ॥ ४८ ॥ अयं निरुक्ते०निरु० ४ । २७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्मिन्याने त्रिशता शंकवो नेव साकमर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासस्तस्मिन्नेकं चक्रं द्वादश प्रधयस्त्रीणि नभ्यानि च स्थापितानि स्युस्तत् क उ चिकेत ॥ ४८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—केचिदेव विद्वांसो यथा शरीररचनां जानन्ति तथा विमानादियाननिर्माणं विदन्ति । यदा जलस्थलाऽऽकाशेषु सद्यो गमनाय यानानि निर्मातुमिच्छा जायते तदा तेषु अनेकानि जलाग्निचक्राण्यनेकानि बन्धनानि अनेकानि धारणानि कीलकाश्च रचनीयाः । एवं कृतेऽभीष्टसिद्धिस्स्यात् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस रथ में (त्रिशता) तीन सौ (शंकवः) बांधने वाली कीलों के (न) समान (साकम्) साथ (अर्पिताः) लगाई हुई (षष्टिः) साठ कीलों (न) जैसी कीलें जो कि (चलाचलासः) चल अचल अर्थात् चलती और न चलती और (तस्मिन्) उस में (एकम्) एक (चक्रम्) पहिया जैसा गोल चक्कर (द्वादश) बारह (प्रधयः) पहिओं की हालें अर्थात् हाल लगे हुए पहिये और (त्रीणि) तीन (नभ्यानि) पहिओं की बीच की नाभियों में उत्तमता से ठहरने वाली धुरी स्थापित किई हों (तत्) उस को (कः) कौन (उ) तर्कवितर्क से (चिकेत) जाने ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—कोई ही विद्वान् जैसे शरीर रचना को जानते हैं वैसे विमान आदि यानों को बनाना जानते हैं जब जल स्थल और आकाश में शीघ्र जाने के लिये रथों को बनाने की इच्छा होती है तब उन में अनेक जल अग्नि के चक्कर अनेक बन्धन अनेक धारण और कीलें रचनी चाहिये ऐसा करने से चाही हुई सिद्धि होती है ॥ ४८ ॥

पुनरत्र विदुषीविषयमाह ॥

फिर यहां विदुषी स्त्री के वि० ॥

यस्ते॒ स्तनः॑ शश॒यो यो म॑यो॒भूर्येन॒ विश्वा॒ पुष्य॑सि॒ वार्या॑णि । यो र॑त्न॒धा व॑सु॒विद्यः॑ सु॒दत्रः॒ सर॑स्वति॒ तमि॒ह धात॑वे कः ॥ ४९ ॥

यः । ते । स्तनः । शशयः । यः । मयःऽभूः । येन । विश्वा । पुष्यसि । वार्याणि । यः । रत्नऽधाः । वसुऽवित् । यः । सुऽदत्रः । सरस्वति । तम् । इह । धातवे । कः ॥४९॥

पदार्थः—(यः) (ते) तव (स्तनः) स्तनइव वर्त्तमानः शुद्धो व्यवहारः (शशयः) शयानइव (यः) (मयोभूः) सुखं भावुकः (येन) (विश्वा) सर्वाणि (पुष्यसि) (वार्याणि) स्वीकर्त्तुमर्हाणि विद्यादीनि धनानि वा (यः) (रत्नधाः) रत्नानि रमणीयानि वस्तूनि दधाति (वसुवित्) वसूनि विन्दति प्राप्नोति (यः) (सुदत्रः) सुष्ठु दत्राणि दानानि यस्मात् सः (सरस्वति) वागिव वर्त्तमाने (तम्) (इह) (धातवे) धातुं पातुम् (कः) कुरु । अयं मंत्रो निरुक्ते व्याख्यातः । निरु० ६ । १४ ॥ ४९ ॥

अन्वयः—हे सरस्वति विदुषि स्त्रि ते यः शशयो यो मयोभूश्च स्तनो येन त्वं विश्वा वार्याणि पुष्यासि यो रत्नधा वसुविद्यश्च सुदत्रोऽस्ति तमिह धातवे कः ॥ ४९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा माता स्तनपयसा सन्तानं पाति तथा विदुषी स्त्री सर्वं कुटुम्बं रक्षति यथा सुभोजनेन शरीरं पुष्टं जायते तथा मातुः सुशिक्षां प्राप्याऽत्मा पुष्टो जायते ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (सरस्वति) विदुषी स्त्री (ते) तेरा (यः) जो (शशयः) सोतासा शान्त और (यः) जो (मयोभूः) सुख की भावना करने हारा (स्तनः) स्तन के समान वर्त्तमान शुद्ध व्यवहार (येन) जिस से तू (विश्वा) समस्त (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य विद्या आदि वा धनों को (पुष्यसि)

पुष्टकरती है (यः) जो (रत्नधाः) रमणीय वस्तुओं को धारण करने और (वसुवित्) धनों को प्राप्त होने वाला और (यः) जो (सुदत्रः) सुदत्र अर्थात् जिस से अच्छे २ देने हों (तम्) उस अपने स्तन को (इह) यहां गृहाश्रम में (धातवे) सन्तानों के पीने को (कः) कर ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे माता अपने स्तन के दूध से सन्तान की रक्षा करती है वैसे विदुषी स्त्री सब कुटुम्ब की रक्षा करती है जैसे सुन्दर घृतान्न पदार्थों के भोजन करने से शरीर बलवान् होता है वैसे माता की सुशिक्षा को पाकर आत्मा पुष्ट होता है ॥ ४९ ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥
फिर विद्वानों के वि० ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ ५० ॥

यज्ञेन । यज्ञम् । अयजन्त । देवाः । तानि । धर्म्माणि । प्रथमानि । आसन् । ते । ह । नाकम् । महिमानः । सचन्त । यत्र । पूर्वे । साध्याः । सन्ति । देवाः ॥ ५० ॥

पदार्थः— (यज्ञेन) अग्न्यादिदिव्यपदार्थसमूहेन (यज्ञम्) धर्मार्थकाममोक्षव्यवहारम् (अयजन्त) यजन्ति संगच्छन्ते (देवाः) विद्वांसः (तानि) (धर्माणि) (प्रथमानि) आदिमानि ब्रह्मचर्यादीनि (आसन्) सन्ति (ते) (ह) किल (नाकम्) दुःखविरहं सुखम् (महिमानः) पूज्यतां प्राप्नुवन्तः (सचन्त) सचन्ते लभन्ते (यत्र) यस्मिन् (पूर्वे) अधीतविद्याः (साध्याः) अन्यैर्विद्यार्थं संसेवितुमर्हाः (सन्ति) वर्त्तन्ते (देवाः) विद्वांसः॥५०॥

अन्वयः—ये देवा यज्ञेन यज्ञमयजन्त यानि ब्रह्मचर्यादीनि धर्माणि प्रथमान्यासन्तानि सेवन्ते सेवयन्ति च ते ह यत्र पूर्वे साध्या देवाः सन्ति तत्र महिमानः सन्तो नाकं सचन्त ॥ ५० ॥

भावार्थः—ये प्रथमे वयसि ब्रह्मचर्यसुशिक्षादीनि सेवितव्यानि कर्माणि प्रथमं कुर्वन्ति ते आप्तविद्वद्विद्वांसो भूत्वा विद्यानन्दं प्राप्य सर्वत्र सत्कृता भवन्ति ॥ ५० ॥

पदार्थः—जो (देवाः) विद्वान् जन (यज्ञेन) अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के समूह से (यज्ञम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के व्यवहार को (अयजन्त) मिलते प्राप्त होते हैं और जो ब्रह्मचर्य आदि (धर्माणि) धर्म (प्रथमानि) प्रथम (आसन्) हैं (तानि) उन का सेवन करते और कराते हैं (ते, ह) वे ही (यत्र) यहां (पूर्वे) पहिले अर्थात् जिन्हों ने विद्या पढ़ लिई (साध्याः) तथा औरों को विद्या सिद्धि के लिये सेवन करने योग्य (देवाः) विद्वान् जन (सन्ति) हैं वहां (महिमानः) सत्कार को प्राप्त हुए (नाकम्) दुःखरहित सुख को (सचन्त) प्राप्त होते हैं ॥५०॥

भावार्थः—जो लोग प्रथमावस्था में ब्रह्मचर्य से उत्तम २ शिक्षा आदि सेवन करने योग्य कामों को प्रथम करते हैं वे आप्त अर्थात् विद्यादि गुण धर्म्मादि कार्यों को साक्षात् किये हुए जो विद्वान् उन के समान विद्वान् हो कर विद्यानन्द को प्राप्त हो कर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

फिर विद्वान् के वि० ॥

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः । भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥ ५१ ॥

समानम् । एतत् । उदकम् । उत् । च । एति । अव । च । अहऽभिः । भूमिम् । पर्जन्याः । जिन्वन्ति । दिवम् । जिन्वन्ति । अग्नयः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(समानम्) (एतत्) पूर्वोक्तं विदुषां कर्म (उदकम्) जलम् (उत्) (च) (एति) प्राप्नोति (अव) (च) (अहभिः) दिनैः । अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति रलोपः (भूमिम्) (पर्जन्याः) मेघाः (जिन्वन्ति) प्रीणन्ति (दिवम्) अन्तरिक्षम् (जिन्वन्ति) तर्पयन्ति (अग्नयः) विद्युतः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—यदुदकमहभिरुदेति चावैति च तेनैतत्समानम् । अतः पर्जन्या भूमिं जिन्वन्ति । अग्नयो दिवं जिन्वन्ति ॥ ५१ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्याद्यनुष्ठानेषु कृतेन हवनादिना वायुवृष्ट्युदकशुद्धिर्जायते ततः शुद्धोदकवर्षणेन भूमिजास्तृप्यन्ति । तत एतद्विदुषां पूर्वोक्तं कर्मोदकवदस्ति ॥ ५१ ॥

पदार्थः—जो (उदकम्) जल (अहभिः) बहुत दिनों से (उत्,ऐति) ऊपर को जाता अर्थात् सूर्य के ताप से कण कण हो और पवन के बल से उड़ कर अन्तरिक्ष में ठहरता (च) और (अव) नीचे को (च) भी आता अर्थात् वर्षा काल पाय भूमि पर वर्षता है उस के (एतत्) यह पूर्वोक्त विद्वानों का ब्रह्मचर्य अग्निहोत्र आदि धर्मादि व्यवहार (समानम्) तुल्य है। इसी से (पर्जन्याः) मेघ (भूमिम्) भूमि को (जिन्वन्ति) तृप्त करते और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि (दिवम्) अन्तरिक्ष को (जिन्वन्ति) तृप्त करते अर्थात् वर्षा से भूमि पर उत्पन्न जीव जीने और अग्नि से अन्तरिक्ष वायु मेघ आदि शुद्ध होते हैं ॥ ५१ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठानों में किये हुए हवन आदि से पवन और वर्षा जल की शुद्धि होती है उस से शुद्ध जल वर्षने से भूमि पर जो उत्पन्न हुए जीव वे तृप्त होते हैं इस से विद्वानों का पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यादि कर्म जल के समान है जैसे ऊपर जाता और नीचे आता वैसे अग्निहोत्रादि से पदार्थ का ऊपर जाना और नीचे आना है ॥ ५१ ॥

पुनः सूर्यदृष्टान्तेन विद्वद्विषयमाह ॥
फिर सूर्य के दृष्टान्त से विद्वानों के वि० ॥

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् । अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥ ५२ ॥ २३ । २२ ॥

दिव्यम् । सुपर्णम् । वायसम् । बृहन्तम् । अपाम् । गर्भम् । दर्शतम् । ओषधीनाम् । अभीपतः । वृष्टिऽभिः । तर्पयन्तम् । सरस्वन्तम् । अवसे । जोहवीमि ॥५२॥२३।२२॥

पदार्थः–(दिव्यम्) दिव्यगुणस्वभावम् (सुपर्णम्) सुपर्णा रश्मयो विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (वायसम्) अतिगन्तारम् । वा गतिगन्धनयोरित्यतोऽसुन् युडागमश्चोणादिः (बृहन्तम्) सर्वेभ्यो महान्तम् (अपाम्) अन्तरिक्षस्य । आप इत्यन्तरिक्षना० निघं० १।३ (गर्भम्) गर्भइव मध्ये स्थितम् (दर्शतम्) यो दर्शयति तम् (ओषधीनाम्) सोमादीनाम् (अभीपतः) अभित उभयत आपो यस्मिँस्तस्मात् (वृष्टिभिः) (तर्पयन्तम्) (सरस्वन्तम्) सरांस्युदकानि बहूनि विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (अवसे) रक्षणाद्याय (जोहवीमि) भृशमाददामि ॥५२॥

अन्वयः–हे मनुष्या यथाऽहमवसे दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भमोषधीनां दर्शतं वृष्टिभिरभीपतस्तर्पयन्तं सरस्वन्तं सूर्यमिव वर्त्तमानं विद्वांसं जोहवीमि तथैतं यूयमप्यादत्त ॥ ५२ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–यथा सूर्यलोको भूगोलानां मध्यस्थः सन् सर्वान् प्रकाशयति तथैव विद्वान् सर्वलोकमध्यस्थः सन्

सर्वेषामात्मनः प्रकाशयति यथा सूर्यो वर्षाभिस्सर्वान् सुखयति तथैव विद्वान् विद्यासुशिक्षोपदेशवृष्टिभिः सर्वान् जनानानन्दयाति ॥५२॥

अत्राग्निकालसूर्यविमानादीश्वरविद्वत्स्त्र्यादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इति चतुष्षष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं त्रयो विंशो वर्गो द्वाविंशोऽनुवाकश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (अवसे) रक्षा आदि के लिये (दिव्यम्) दिव्य गुण स्वभाव युक्त (सुपर्णम्) जिस में सुन्दर गमन शील रश्मि विद्यमान (वायसम्) जो अत्यन्त जाने वाले (बृहन्तम्) सब से बड़े (अपाम्) अन्तरिक्ष के (गर्भम्) बीच गर्भ के समान स्थित (ओषधीनाम्) सोमादि ओषधियों को (दर्शतम्) दिखाने वाले (वृष्टिभिः) वर्षा से (अभीपतः) दोनों ओर आगे पीछे जल से युक्त जो मेघादि उस से (तर्पयन्तम्) तृप्ति करने वाले (सरस्वन्तम्) बहुत जल जिस में विद्यमान उस सूर्य के समान वर्त्तमान विद्वान् को (जोहवीमि) निरन्तर ग्रहण करते हैं वैसे इस को तुम भी ग्रहण करो॥५२॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य लोक भूगोलों के बीच स्थित हुआ सब को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन सब लोकों के मध्य स्थिर होता हुआ सब के आत्माओं को प्रकाशित करता है जैसे सूर्य वर्षा से सब को सुखी करता है वैसे ही विद्वान् विद्या उत्तम शिक्षा और उपदेश वृष्टियों से सब जनों को आनन्दित करता है ॥ ५२ ॥

इस सूक्त में अग्नि काल सूर्य बिमान आदि पदार्थ तथा ईश्वर विद्वान् और स्त्री आदि के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एक सौ चौंसठ का सूक्त तेईश का वर्ग और बाईश का अनुवाक पूरा हुआ ॥

कयेति पञ्चदशर्चस्य षष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य । आगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । ४ । ५ । ११ । १२ विराट् त्रिष्टुप् २ । ८ । ९ त्रिष्टुप् १३ । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ६ । ७ । १० । १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ विद्वद्गुणानाह ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले एक सौ पैंसठ के सूक्त का आरम्भ है उस में आदि से विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

कया॑ शु॒भा सव॑यसः॒ सनी॑ळाः समा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः । कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒तेऽर्च॑न्ति॒ शुष्मं॒ वृष॑णो वसू॒या ॥ १ ॥

कया॑ । शु॒भा । स॒ऽव॑यसः । स॒ऽनी॑ळाः । स॒मा॒न्या । म॒रुतः॑ । सम् । मि॒मि॒क्षुः॒ । कया॑ । म॒ती । कुत॑ः । आ॒ऽइ॑तासः । ए॒ते । अर्च॑न्ति । शुष्म॑म् । वृष॑णः । व॒सु॒ऽया ॥ १ ॥

पदार्थः—(कया) (शुभा) शुभगुणकर्मणा (सवयसः) समानं वयो येषान्ते (सनीळाः) समीपस्थाः (समान्या) तुल्यया क्रियया (मरुतः) वायवइव वर्त्तमानाः (सम्) (मिमिक्षुः) सिञ्चन्ति (कया) (मती) मत्या (कुतः) (एतासः) समन्तात् प्राप्ताः (एते) (अर्चन्ति) प्राप्नुवन्ति (शुष्मम्) बलम् (वृषणः) वर्षितारः (वसूया) आत्मनो वसूनां धनानामिच्छया ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः सवयसः सनीळा मरुतो विद्वांसः कया समान्या शुभा संमिमिक्षुः। एतासो वृषण एते वसूया कया मती कुतः शुष्ममर्चन्ति॥ १॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—(प्रश्नः) यथा वायवो वर्षाः कृत्वा सर्वान्तर्पयन्ति तथा विद्वांसो रागद्वेषरहितया धर्म्यया कया क्रियया जनानुन्नयेयुः। केन विज्ञानेन सत्क्रियया च सर्वान् सत्कुर्युः। आप्तरीत्या वेदोक्तयेत्युत्तरम्॥ १॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (सवयसः) समान अवस्था वाले (सनीळाः) समीपस्थ (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान विद्वान् जन (कया) किस (समान्या) तुल्य क्रिया के साथ (शुभा) शुभ गुण कर्म से (संमिमिक्षुः) अच्छे प्रकार सेचनादि कर्म करते हैं तथा (एतासः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (वृषणः) वर्षने वाले (एते) ये (वसूया) अपने को धनों की इच्छा के साथ (कया) किस (मती) मति से (कुतः) कहां से (शुष्मम्) बल को (अर्चन्ति) प्राप्त होते हैं॥ १॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—(प्रश्न) जैसे पवन वर्षा कर सब को तृप्त करते हैं वैसे विद्वान् जन भी रागद्वेषरहित धर्म युक्त किस क्रिया से जनों की उन्नति करावें और किस विज्ञान वा अच्छी क्रिया से सब का सत्कार करें। इस विषय में उत्तर यही है कि आप्त सज्जनों की रीति और वेदोक्त क्रिया से उक्त कार्य करें॥ १॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त्त। श्येनाँइव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम॥ २॥

कस्य । ब्रह्माणि । जुजुषुः । युवानः । कः । अध्वरे । मरुतः । आ । ववर्त्त । श्येनानऽइव । ध्रजतः । अन्तरिक्षे । केन । महा । मनसा । रीरमाम ॥ २ ॥

पदार्थः—(कस्य) (ब्रह्माणि) बृहन्ति यानि धनान्यन्नानि वा तानि। ब्रह्मेति धनना० निघं० २ । १० अन्ननाम च० निघं० २ । ७ (जुजुषुः) सेवन्ते । अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः (युवानः) ब्रह्मचर्येण विद्यया च प्राप्तयौवनाः (कः) (अध्वरे) अहिंसनीये धर्म्ये व्यवहारे (मरुतः) वायवइव (आ) समन्तात् (ववर्त्त) वर्त्तते । अत्रापि शपः श्लुस्तस्य स्थाने तप् च (श्येनानिव) अश्वानिव । श्येनास इत्यश्वना० निघं० १ । ४ (ध्रजतः) गच्छतः (अन्तरिक्षे) आकाशे (केन) (महा) महता (मनसा) (रीरमाम) सर्वान् रमयेम ॥ २ ॥

अन्वयः—ये मरुतइव युवानो विद्वांसः कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः । कोऽस्मिन्नध्वर आववर्त्त वयं केन महा मनसा ध्रजतो श्येनानिव कान् गृहीत्वाऽन्तरिक्षे रीरमाम ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा वायवो जगत्स्थान् पदार्थान् सेवन्ते तथा ब्रह्मचर्यविद्याबोधाभ्यां परमश्रियं सेवन्ताम् । यथाऽन्तरिक्षे उड्डीयमानान् श्येनादीन् पक्षिणः पश्यन्ति तथैव सभूगोला वयमाकाशे रमेमहि सर्वान् रमयामः । एतत् ज्ञातुं विद्वांसएव शक्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—जो (मरुतः) पवनों के समान वेगयुक्त (युवानः) ब्रह्मचर्य और विद्या से युवावस्था को प्राप्त विद्वान् (कस्य) किस के (ब्रह्माणि) वृद्धि

को प्राप्त होते जो अन्न वा धन उन को (जुजुषुः) सेवते हैं और (कः) कौन इस (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार में (आ, ववर्त्त) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है हम लोग (केन) कौन (महा) बड़े (मनसा) मन से (ध्रजतः) जाने वाले (श्येनानिव) घोड़ों के समान किन को ले कर (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (रीरमाम) सब को रमावें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे वायु संसारस्थ पदार्थों को सेवन करते हैं वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या के बोध से परम श्री को सेवें जैसे अन्तरिक्ष में उड़ते हुए श्येनादि पक्षियों को देखते हैं वैसे ही भूगोल के साथ हम लोग आकाश में रमें और सब को रमावें इस को विद्वान् ही जान सकते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था । सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥ ३ ॥

कुतः । त्वम् । इन्द्र । माहिनः । सन् । एकः । यासि । सत्ऽपते । किम् । ते । इत्था । सम् । पृच्छसे । सम्ऽअराणः । शुभानैः । वोचेः । तत् । नः । हरिऽवः । यत् । ते । अस्मे इति ॥ ३ ॥

पदार्थः—(कुतः) कस्मात् (त्वम्) (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (माहिनः) महिमायुक्तः । अत्र महेरिनण् चेत्युणादौ सिद्धः (सन्) (एकः) असहायः (यासि) गच्छसि (सत्पते) सतां पालक (किम्) (ते) (इत्था) अनेन हेतुना (सम्) (पृच्छसे)

(समराणः) सम्यक् प्राप्नुवन् (शुभानैः) शुभैर्वचनैः (वोचेः) उच्याः (तत्) (नः) अस्मान् (हरिवः) प्रशस्ता हरयो हरण-गुणा विद्यन्ते यस्मिँस्तत्संबुद्धौ (यत्) (ते) तव (अस्मे) अस्माकम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र सत्पते माहिन एकः सँस्त्वं सूर्यइव कुतो यासि त इत्था किमस्ति। हे हरिवः समराणस्त्वं यत्ते मनस्यस्मे वर्त्तते तच्छुभानैर्नोऽस्मान् वोचेर्यतस्त्वं संपृच्छसे च ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्य एकाकी सर्वानाकृष्य प्रकाशते। यथाऽऽप्तो विद्वान् सर्वत्र भ्राम्यन् सर्वान् सत्यपालकान् करोति तथा त्वं क्व गच्छसि कस्मादायासि किं करोषीति पृच्छामि। वदस्वोत्तरम्। धर्म्ये मार्गे गच्छामि गुरुकुलादायामि अध्यापन-मुपदेशञ्च करोमीति समाधानम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त (सत्पते) सज्जनों के पालने वाले (माहिनः) महिमायुक्त (एकः) इकिले (सन्) होते हुए (त्वम्) आप सूर्य के समान (कुतः) कहां से (यासि) जाते हैं (ते) आप का (इत्था) इस प्रकार से (किम्) क्या है। हे (हरिवः) प्रशंसित गुणों वाले (समराणः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुये आप (यत्) जो (ते) आप के मन में (अस्मे) हम लोगों के लिये वर्त्तता है (तत्) उस को (शभानैः) उत्तम वचनों से (नः) हम लोगों के प्रति (वोचेः) कहो जिस से आप (सं,पृच्छसे) सम्यक् पूछते भी हैं अर्थात् हमारी व्यवस्था आप पूछते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य एका एकी सब को खींच के आप प्रकाशमान होता है वा जैसे आप्त विद्वान् सर्वत्र भ्रमण करता

हुआ सब को सत्य पालने वाले करता है वैसे तू कहां जाता है कहां से आता है क्या करता है यह पूछता हूं उत्तर कह । धर्मयुक्त मार्गों को जाता हूं गुरु कुल से आता हूं पढ़ाना वा उपदेश करता हूं । यह समाधान है ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्त्ति प्रभृतो मे अद्रिः । आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४ ॥

ब्रह्माणि । मे । मतयः । शम् । सुतासः । शुष्मः । इयर्त्ति । प्रऽभृतः । मे । अद्रिः । आ । शासते । प्रति । हर्यन्ति । उक्था । इमा । हरी इति । वहतः । ता । नः । अच्छ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(ब्रह्माणि) धनान्यन्नानि वा (मे) मम (मतयः) मननशीला मनुष्याः (शम्) सुखम् (सुतासः) प्राप्ताः (शुष्मः) बलवान् (इयर्त्ति) प्राप्नोति (प्रभृतः) (मे) मम (अद्रिः) मेघः (आ) (शासते) इच्छन्ति (प्रति) (हर्यन्ति) कामयन्ते (उक्था) वक्तुं योग्यानि (इमा) इमानि (हरी) धारणाकर्षणगुणौ (वहतः) प्राप्नुतः (ता) तौ (नः) अस्मान् (अच्छ) सम्यक् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा प्रभृतः शुष्मोऽद्रिर्मेघइव मे उपदेशः सर्वानियर्त्ति । यथा सुतासो मतयो मे ब्रह्माणि शं चाशासते । इमोक्था प्रति हर्यन्ति यथा ता हरी नोऽस्मानच्छ वहतस्तथा यूयं भवत ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—य उदारास्ते मेघवत् सर्वेभ्यः सुखानि वर्षन्ति सर्वेभ्यो विद्यादानं कामयन्ते । यथाऽऽत्मसुखमिच्छन्ति तथा परेषां सुखानि कर्त्तुं दुःखानि विनाशयितुं सर्वं इच्छन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (प्रभृतः) शास्त्र विज्ञान से भरा हुआ (शुष्मः) बलवान् (अद्रिः) मेघ के समान (मे) मेरा उपदेश सब को (इयर्त्ति) प्राप्त होता । वा जैसे (सुतासः) प्राप्त हुए (मतयः) मननशील मनुष्य (मे) मेरे (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को और (शम्) सुख को (आ, शासते) चाहते हैं वा (इमा) इन (उक्था) कहने के योग्य पदार्थों की (प्रति, हर्यन्ति) प्रीति से कामना करते हैं वा जैसे (ता) वे (हरी) धारण आकर्षण गुण (नः) हम लोगों को (अच्छ) अच्छा (वहतः) प्राप्त होते हैं वैसे तुम सब होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो उदार हैं वे मेघ के समान सब के लिये समान सुखों को वर्षाते हैं सब के लिये विद्यादान की कामना करते हैं । जैसे अपने को सुख की इच्छा करते हैं वैसे औरों को सुख करने और दुःखों का विनाश करने को सब चाहैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्युजा॒नाः स्वक्ष॑त्रेभिस्त॒न्व॒ः शुम्भ॑मानाः । महो॑भि॒रेताँ उप॑ युज्महे॒ न्विन्द्र॑ स्व॒धामनु॒ हि नो॑ ब॒भूथ॑ ॥ ५ ॥ २४ ॥

अतः॑ । व॒यम् । अ॒न्त॒मेभिः॑ । यु॒जा॒नाः॑ । स्वऽक्ष॑त्रेभिः । त॒न्वः॑ । शुम्भ॑मानाः । महः॑ऽभिः । एता॑न् । उप॑ । यु॒ज्म॒हे॒ । नु । इन्द्र॑ । स्व॒धाम् । अनु॑ । हि । नः॒ । ब॒भूथ॑ ॥ ५ ॥ २४ ॥

पदार्थः—(अतः) अस्माद्धेतोः (वयम्) (अन्तमेभिः) समीपस्थैः । अन्तमानामित्यन्तिकना० निघं० २ । १६ (युजानाः) (स्वक्षत्रेभिः) स्वकीयै राज्यैः (तन्वः) तनूः (शुम्भमानाः) शुभगुणाढ्याः संपादयन्तः (महोभिः) महत्तमैः (एतान्) (उप) (युज्महे) समादधीमहि । अत्र बहुलं छन्दसीति श्यनो लुक् (नु) शीघ्रम् (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (स्वधाम्) अन्नमुदकं वा (अनु) (हि) किल (नः) अस्माकम् (बभूथ) भवसि ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यतस्त्वं हि नस्स्वधामनु बभूथैतानुप युङ्क्ते-ऽतो वयमेतांश्च युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमाना अन्तमेभि-र्महोभिर्नूप युज्महे ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये शरीरेण बलारोग्ययुक्ता धार्मिकैर्बलिष्ठैर्विद्वद्भिः सर्वाणि कर्माणि समादधानाः सर्वेषां सुखाय वर्त्तमाना महद्राज्य-न्यायायोपयुञ्जते ते सद्यो धर्मार्थकाममोक्षसिद्धिमाप्नुवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्तपुरुष जिस कारण आप (हि) ही (नः) हमारे (स्वधाम्) अन्न और जल का (अनु, बभूथ) अनुभव करते हैं (अतः) इस से (वयम्) हम लोग (एतान्) इन पदार्थों को (युजानाः) युक्त और (स्वक्षत्रेभिः) अपने राज्यों से (तन्वः) शरीरों को (शुम्भमानाः) शुभगुणयुक्त करते हुए (अन्तमेभिः) समीपस्थ (महोभिः) अत्यन्त बड़े कामों से (नु) शीघ्र (उप, युज्महे) उपयोग लेते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो शरीर से बल और आरोग्ययुक्त धार्मिक बलिष्ठ विद्वानों से सब कामों का समाधान करते हुए सब के सुख के लिये वर्त्तमान अत्यन्त राज्य के न्याय के लिये उपयोग करते हैं वे शीघ्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये। अहं ह्यु१ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥

क्व । स्या । वः । मरुतः । स्वधा । आसीत् । यत् । माम् । एकम् । सम्ऽअधत्त । अहिऽहत्ये । अहम् । हि । उग्रः । तविषः । तुविष्मान् । विश्वस्य । शत्रोः । अनमम् । वधऽस्नैः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(क्व) कुत्र (स्या) असौ (वः) युष्माकम् (मरुतः) प्राणाइव वर्त्तमानाः (स्वधा) अन्नमुदकं वा (आसीत्) अस्ति (यत्) (माम्) (एकम्) (समधत्त) सम्यग् धरतः (अहिहत्ये) मेघहनने (अहम्) (हि) खलु (उग्रः) तीव्रस्वभावः (तविषः) बलवतः (तुविष्मान्) बलवान् । तुविरिति बलना० निघं० ३ । १ (विश्वस्य) समग्रस्य (शत्रोः) (अनमम्) नमामि (वधस्नैः) यानि वधेन स्नापयन्ति शस्त्राणि तैः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मरुतो यद्यतो मामेकमहिहत्ये समधत्त स्या वः स्वधा क्वाऽऽसीत् । यथा तुविष्मानुग्रोऽहं तविषो विश्वस्य शत्रोर्वधस्नैरनमँस्तं हि मां यूयं सुखे धरत ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या विद्या धृत्वा सूर्यो मेघमिव शत्रुबलं निवारयेयुस्ते सर्वे विद्वांसं प्रति पृच्छेयुर्या सर्वधारिका शक्तिर्वर्त्तते सा क्वाऽस्तीति सर्वत्र स्थितेत्युत्तरम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) प्राण के समान वर्त्तमान विद्वानो (यत्) जिस से (माम्) मुझ (एकम्) एक को (अहिहत्ये) मेघ के वर्षण होने में (समधत्त) अच्छे प्रकार धारण करो (स्या) वह (वः) आप का (स्वधा) अन्न और जल (क्व) कहां (आसीत्) है जैसे (तुविष्मान्) बलवान् (उग्रः) तीव्र स्वभाव वाला (अहम्) मैं जो (तविषः) बलवान् (विश्वस्य) समग्र (शत्रोः) शत्रु के (वधस्नैः) वध से न्हवाने वाले शस्त्र उन के साथ (अनमन्) नमता हूं (हि) उसी मुझ को तुम सुख में धारण करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्याओं को धारण कर सूर्य जैसे मेघ को वैसे शत्रु बल को निवृत्त करें वे सब विद्वान् के प्रति पूछें कि जो सब को धारण करने वाली शक्ति है वह कहां है । सर्वत्र स्थित है यह उत्तर है ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

भूरि॑ चकर्थ॒ युज्ये॑भिर॒स्मे स॑मा॒नेभि॑र्वृषभ॒ पौंस्ये॑भिः । भूरी॑णि॒ हि कृ॒णवा॑मा शविष्ठेन्द्र॒ क्रत्वा॑ मरुतो॒ यद्वशा॑म ॥ ७ ॥

भूरि॑ । च॒कर्थ॑ । युज्ये॑भिः । अ॒स्मे इति॑ । स॒मा॒नेभिः॑ । वृ॒ष॒भ॒ । पौंस्ये॑भिः । भूरी॑णि । हि । कृ॒णवा॑म । श॒वि॒ष्ठ॒ । इन्द्र॑ । क्रत्वा॑ । म॒रु॒तः॒ । यत् । वशा॑म ॥ ७ ॥

पदार्थः—(भूरि) बहु (चकर्थ) करोषि (युज्येभिः) योजनीयैः कर्मभिः (अस्मे) अस्मभ्यम् (समानेभिः) तुल्यैः (वृषभ) उपदेशवर्षक (पौंस्येभिः) पुरुषार्थैः (भूरीणि) बहूनि (हि) किल (कृणवाम) कुर्याम । अत्रान्येषामपीति दीर्घः । (शविष्ठ)

बलिष्ठ (इन्द्र) सर्वसुखप्रद (क्रत्वा) प्रज्ञया (मरुतः) विद्वांसो मनुष्याः (यत्) यम् (वशाम) कामयेमहि ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे वृषभ यथा त्वं समानेभिर्युज्येभिः पौंस्येभिरस्मे भूरि सुखं चकर्थ । तस्मै तुभ्यं वयं भूरीणि सुखानि कृणवाम । हे शविष्ठेन्द्र यथा त्वं क्रत्वाऽस्मान् विदुषः करोषि तथा वयं तव सेवां कुर्याम । हे मरुतो यूयं यत् कामयिष्यध्वे तद्वयमपि वशाम हि कामयेमहि ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथेह विद्वांसो पुरुषार्थेन सर्वान् विद्यासुशिक्षायुक्तान् कुर्वन्ति तथैतान् सर्वे सत्कुर्युः । ये सर्वविद्याऽध्यापकाः सर्वेषां सुखं कामुकाः स्युस्तेऽध्यापनोपदेशयोः प्रधाना भवन्तु ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (वृषभ) उपदेश की वर्षा करने वाले जैसे आप (समानेभिः) समान तुल्य (युज्येभिः) योग्य कर्मों वा (पौंस्येभिः) पुरुषार्थों से (अस्मे) हमारे लिये (भूरि) बहुत सुख (चकर्थ) करते हैं उन आप के लिये हम लोग (भूरीणि) बहुत सुख (कृणवाम) करें । हे (शविष्ठ) बलवान् (इन्द्र) सब को सुख देने वाले जैसे आप (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से हम लोगों को विद्वान् करते हैं वैसे हम लोग आप की सेवा करें । हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो तुम (यत्) जिस की कामना करो उस की हम भी (वशाम, हि) कामना ही करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे इस संसार में विद्वान् जन पुरुषार्थ से सब को विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त करते हैं वैसे इन को सब सत्कार युक्त करें । जो सब विद्याओं के पढ़ाने और सब के सुख को चाहने वाले हों वे पढ़ाने और उपदेश करने में प्रधान हों ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् । अहमेता मनवे विश्वश्चंन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥

वधीम् । वृत्रम् । मरुतः । इन्द्रियेण । स्वेन । भामेन । तविषः । बभूवान् । अहम् । एताः । मनवे । विश्वऽचन्द्राः । सुऽगाः । अपः । चकर । वज्रऽबाहुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(वधीम्) हन्मि (वृत्रम्) मेघम् (मरुतः) प्राणवत्प्रियाः (इन्द्रियेण) मनसा (स्वेन) स्वकीयेन (भामेन) क्रोधेन (तविषः) बलात् (बभूवान्) भविता (अहम्) (एताः) (मनवे) मननशीलाय मनुष्याय (विश्वश्चन्द्राः) विश्वानि चन्द्राणि सुवर्णानि याभ्यस्ताः (सुगाः) सुष्ठुगच्छन्ति ताः (अपः) जलानि (चकर) करोमि (वज्रबाहुः) वज्रो बाहौ यस्य सः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मरुतो वज्रबाहुर्बभूवानहं यथा सूर्यो वृत्रं हत्वाऽपः सुगाः करोति तथा स्वेन भामेनेन्द्रियेण तविषश्च शत्रून् वधीं मनवे विश्वश्चन्द्रा एताश्श्रियश्चकर ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यप्रेरितया वृष्ट्या सर्वं जगज्जीवति तथा शत्रुविघ्ननिवारणेन सर्वे प्राणिनो जीवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) प्राण के समान प्रिय विद्वानो (वज्रबाहुः) जिस के हाथ में वज्र है (बभूवान्) ऐसा होने वाला (अहम्) मैं जैसे सूर्य (वृत्रम्)

रसीदमूल्य वेदभाष्य

श्रीयुत भेरोराम जी हवल्दार चौथे गोरखा गुरदासपुर	५)
महीपतिराम रूपराम जी महाजन अहमदाबाद	१॥)
साहब मजस्ट्रेट बहादुर प्रयाग	४)
श्रीयुत गोपनाथ मिश्र हेडक्लार्क आफिस जजसाहब भागलपुर	७)
महादेवप्रसाद जी पुखरायां जिला कानपुर	४८)
बाबू खेमकरनदास जी	८)
बाबू दुर्जनदास जी डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर बनारस	२५)
श्रीमान् कुमर श्यामसिंह रईस ताजपुर जिला बिजनौर	८)
बाबू जयजय राम जी गुमाश्ता कमसर्येट मुरादाबाद	८)
बाबू सखाराम जी हास्पिटल असिस्टेन्ट तरनतारन जिला अमृतसर	१०)
श्रीयुत लाला मथुरादास जी लाहौर	८)
श्रीयुत भाई मिहताब सिंह जी	८)
श्रीयुत लाला मंगलसेन जी	८)
श्रीयुत लाला किशनचंद जी	८)
श्रीयुत लाला दुर्गाप्रसाद जी	८)
श्रीयुत बाबू भगवतप्रसाद जी कोषाध्यक्ष आर्यसमाज जलन्धर	१०)
	१७४॥)

ओ३म्

विज्ञापन

श्रीमान् आर्यमहाशयोंकी सेवा में निवेदन किया जाता है कि—

श्रीमत्परिव्राड्परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ स्वामिदयानन्द सरस्वती निर्मित साङ्गोपाङ्गवेद और शास्त्रसिद्धान्तप्रकाशक जिस सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ की अपेक्षा आर्यमहाशय दिन दिन कर रहे थे वह सत्यार्थप्रकाश-ग्रन्थ छप कर तैयार हो गया है जिन महाशयों को उक्त ग्रन्थ लेने की अपेक्षा होवे प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय के नाम आज्ञापत्र भेजें तत्काल पुस्तक भेजा जायगा । पत्र भेजने के साथ मूल्य भी २॥) डाकव्ययसहित भेज देवें क्योंकि इस पुस्तक के विक्रयार्थ यह नियम हुआ है कि उधार किसी को पुस्तक न दिया जायगा न किसी प्रकार कमीशन दिया जावे गा पुस्तक जितनी जिस को अपेक्षित हो दिई जावेगी।

ज्वालादत्त—[illegible]—प्रबन्धकर्त्ता
वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

विज्ञापन

सर्वसज्जन महाशयों को विदित किया जाता है कि श्री १०८ स्वामीदयानन्दसरस्वती जी के सिद्धान्त पर जो आक्षेप किया करते हैं उन के उत्तर देने के लिये तथा आर्यसिद्धान्त यथार्थरूप से दर्शाने के लिये एक पत्र "आर्यसिद्धान्त" नामक प्रति पौर्णमासी को वैदिकयन्त्रालय से प्रकाशित हुआ करे गा वार्षिकमूल्य १) मात्र डाकव्ययसहित न रक्खा गया है जिन महाशयों को उक्त पत्र लेना स्वीकार हो वह "प्रबन्धकर्त्ता आर्यसिद्धान्तपत्र वैदिकयन्त्रालय प्रयाग" के नाम से पत्र और वार्षिक मूल्य भेज कर शीघ्र सूचित करें जो उन महाशयों का नाम ग्राहक श्रेणी में लिखा जावे।

ज्वालादत्त—[illegible] प्रबन्धकर्त्ता

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)

एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इसग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥=) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय मैनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है ॥

पुस्तक (११०, १११) अंक (९४, ९५)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४४ भाद्रपद शुक्लपक्ष

१—८—८७

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान दशवें वर्ष के कि जो ९० । ९१ अङ्क से प्रारंभ हो कर १०० । १०१ पर पूरा होगा। एक वेद के ४/रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के नव वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है:-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ५।/)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ६)

[ख] एक वेद के ८९ अङ्क तक २९ ॥/) और दोनों वेदों के ५९ ।/)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलेंगे एक अङ्क ।/) दो अङ्क ॥/) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंध कर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्ध कर्त्ता वैदिक यंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

मेघ को मार (अपः) जलों को (सुगाः) सुन्दर जाने वाले करता है वैसे (स्वेन) अपने (भामेन) क्रोध से और (इन्द्रियेण) मन से (तविषः) बल से शत्रुओं को (वधीम्) मारता हूं और (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिये (विश्वचन्द्राः) समस्त सुवर्णादि धन जिन से होते (एताः) उन लक्ष्मियों को (चकर) करता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु ०—जैसे सूर्य से प्रेरित वर्षा से समस्त जगत् जीवता है वैसे शत्रुओं से होते हुए विघ्नों को निवारने से सब प्राणी जीवते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अनु॑त्त॒मा ते॑ मघव॒न्नकि॒र्नु न त्वावाँ॑ अस्ति दे॒वता॒ विदा॑नः । न जाय॑मानो॒ नश॑ते॒ न जा॒तो यानि॑ करि॒ष्या कृ॑णु॒हि प्र॑वृद्ध ॥ ९ ॥

अनु॑त्तम् । आ । ते॒ । म॒घ॒ऽव॒न् । नकि॑ः । नु । न । त्वाऽवा॑न् । अ॒स्ति॒ । दे॒वता॑ । विदा॑नः । न । जाय॑मानः । नश॑ते । न । जा॒तः । यानि॑ । क॒रि॒ष्या । कृ॒णु॒हि । प्र॒ऽवृ॒द्ध॒ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अनुत्तम्) अप्रेरितम् (आ) समन्तात् (ते) तव (मघवन्) परमधनयुक्त (नकिः) निषेधे (नु) शीघ्रे (न) (त्वावान्) त्वया सदृशः (अस्ति) (देवता) दिव्यगुणः (विदानः) विद्वान् (न) (जायमानः) उत्पद्यमानः (नशते) नश्यति (न) जातः) उत्पन्नः (यानि) (करिष्या) कर्त्तुं योग्यानि । अत्र सुपां सुलुगिति-डादेशः (कृणुहि) कुरु (प्रवृद्ध) अतिशयेन विद्यया प्रतिष्ठित ॥९॥

अन्वयः-हे मघवन् ते तवाऽनुत्तं नकिर्विद्यते त्वावानन्यो देवता विदानो नास्ति जायमानो नु न नशते जातो न नशते । हे प्रवृद्ध त्वं यानि करिष्या सन्ति तानि न्वाकृणुहि ॥ ९ ॥

भावार्थः-यथाऽन्तर्यामिण ईश्वरात्किंचिदव्याप्तं न विद्यते न कश्चित्तत्सदृशो जायते न जातो न जनिष्यते न नश्यति कर्त्तव्यानि कार्याणि करोति तथैव विद्वद्भिर्भवितव्यं वेदितव्यं च ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) परमधनवान् विद्वान् (ते) आप का (अनुत्तम्) न प्रेरणा किया हुआ (नकिः) नहीं कोई विद्यमान है और (त्वावान्) तुम्हारे सदृश और (देवता) दिव्य गुण वाला (विदानः) विद्वान् (न) नहीं (अस्ति) है । तथा (जायमानः) उत्पन्न होने वाला (नु) शीघ्र (न) नहीं (नशते) नष्ट होता (जातः) उत्पन्न हुआ भी (न) नहीं नष्ट होता । हे (प्रवृद्ध) अत्यन्त विद्या से प्रतिष्ठा को प्राप्त आप (यानि) जो (करिष्या) करने योग्य काम हैं उन को शीघ्र (आ कृणुहि) अच्छे प्रकार करिये ॥ ९ ॥

भावार्थः-जैसे अन्तर्यामी ईश्वर से अव्याप्त कुछ भी नहीं विद्यमान है न कोई उस के सदृश उत्पन्न होता न उत्पन्न हुआ और न होगा न वह नष्ट होता है किन्तु ईश्वरभाव से अपने कर्त्तव्य कामों को करता है वैसे ही विद्वानों को होना और जानना चाहिये ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा । अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥ १० ॥ २५ ॥

एकस्य । चित् । मे । विऽभु । अस्तु । ओजः । या । नु ।
दधृष्वान् । कृणवै । मनीषा । अहम् । हि । उग्रः । मरुतः ।
विदानः । यानि । च्यवम् । इन्द्रः । इत् । ईशे । एषाम्
॥ १० ॥ २५ ॥

पदार्थः—(एकस्य) (चित्) अपि (मे) मम (विभु) व्यापकम् (अस्तु) भवतु (ओजः) बलम् (या) यानि (नु) सद्यः (दधृष्वान्) प्रसोढा (कृणवै) कर्त्तुं शक्नुयाम् (मनीषा) प्रज्ञया (अहम्) (हि) किल (उग्रः) तीव्रः (मरुतः) मरुद्वद्वर्त्तमानाः (विदानः) विद्वान् (यानि) (च्यवम्) प्राप्नुयाम् (इन्द्रः) दुःखच्छेत्ता (इत्) एव (ईशे) (एषाम्) प्राणिनाम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मरुतो यथैकस्य चिन्मे विभ्वोजोऽस्तु या दधृष्वानहं तथा ताद्धि वोऽस्तु तानि सहत यथाहं मनीषा नु विद्या कृणवै उग्रो विदान इन्द्रः सन् यानि च्यवमेषामिदीशे च तथा यूयं वर्त्तध्वम् ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा जगदीश्वरोऽनन्तपराक्रमवान् व्यापकोऽस्ति तथा विद्वांसः सर्वेषु शास्त्रेषु धर्मकृत्येषु च व्याप्नुवन्तु न्यायाधीशा भूत्वैतेषां मनुष्यादीनां सुखं संपादयन्तु ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान सज्जनो जैसे (एकस्य) एक (चित्) ही (मे) मेरे को (विभु) व्यापक (ओजः) बल (अस्तु) हो और (या) जिन को (दधृष्वान्) अच्छे प्रकार सहने वाला मैं होऊं वैसे वह बल (हि) निश्चय से तुम्हारा हो और उन का सहन तुम करो । जैसे

(अहम्) मैं (मनीषा) बुद्धि से (नु) शीघ्र (कृणवै) विद्या कर सकूं और (उग्रः) तीव्र (विद्वानः) विद्वान् (इन्द्रः) दुःख का छिन्न भिन्न करने वाला होता हुआ (यानि) जिन पदार्थों को (च्यवम्) प्राप्त होऊं और (एषाम्, इत्) इन्हीं का (ईशे) स्वामी होऊं वैसे तुम वर्त्तो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे जगदीश्वर अनन्त पराक्रमी और व्यापक है वैसे विद्वान् जन समस्त शास्त्र और धर्मकृत्यों में व्याप्त होवें और न्यायाधीश हो कर इन मनुष्यादि के सुखों को संपादन करें ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र । इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ११ ॥

अमन्दत् । मा । मरुतः । स्तोमः । अत्र । यत् । मे । नरः । श्रुत्यम् । ब्रह्म । चक्र । इन्द्राय । वृष्णे । सुऽमखाय । मह्यम् । सख्ये । सखायः । तन्वे । तनूभिः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अमन्दत्) आनन्दयतु (मा) माम् (मरुतः) विद्वांसः (स्तोमः) स्तुतिसमूहः (अत्र) (यत्) (मे) मह्यम् (नरः) नायकाः (श्रुत्यम्) श्रुतिषु साधु (ब्रह्म) वेदः (चक्र) कुर्वन्तु (इन्द्राय) विद्याप्रकाशिताय (वृष्णे) बलवते (सुमखाय) उत्तमयज्ञानुष्ठात्रे (मह्यम्) (सख्ये) सर्वमित्राय (सखायः) सर्वसुहृदः (तन्वे) शरीराय (तनूभिः) शरीरैः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मरुतो यथा मे यत् श्रुत्यं ब्रह्म स्तोमश्चाऽत्र माऽमन्दत्तथा युष्मानप्यानन्दयतु । हे नरो यथा यूयं सुमखाय वृष्ण इन्द्राय सख्ये मह्यं सखायस्सन्तस्तनूभिर्मे तन्वे सुखं चक्र तथाऽहमपि युष्मभ्यमेतत्करोमि ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्वांसो यथाऽधीताः शब्दार्थसम्बन्धतो विज्ञाता वेदाः स्वात्मनः सुखयन्ति तथैवापरान् सुखयिष्यन्तीति मत्वा ते शिष्यमध्यापयेयुः । यथा स्वयं ब्रह्मचर्येणारोग्यवीर्यवन्तो भूत्वा दीर्घायुषस्स्युस्तथैवान्यानपि कुर्युः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो जैसे (मे) मेरे लिये (यत्) जो (श्रुत्यम्) सुनने योग्य (ब्रह्म) वेद और (स्तोमः) स्तुतिसमूह है वह (अत्र) यहां (मा) मुझे (अमन्दत्) आनन्दित करे वैसे तुम को भी आनन्दित करावे । हे (नरः) अग्रगामी मुखिया जनो जैसे तुम (सुमखाय) उत्तम यज्ञानुष्ठान करने वाले (वृष्णे) बलवान् (इन्द्राय) विद्या से प्रकाशित (सख्ये) सब के मित्र (मह्यम्) मेरे लिये (सखायः) सब के सुहृद् होते हुए (तनूभिः) शरीरों के साथ मेरे (तन्वे) शरीर के लिये सुख (चक्र) करो वैसे मैं भी इस को करूं ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वान् जन जैसे पढ़े और शब्दार्थ सम्बन्ध से जाने हुए वेद पढ़ने वाले के आत्मा को सुख देते हैं वैसे ही औरों को भी सुखी करें गे ऐसा मान के वे अध्यापक शिष्य को पढ़ावें जैसे आप ब्रह्मचर्य से रोगरहित बलवान् होकर दीर्घजीवी हों वैसे औरों को भी करें ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः । संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ १२ ॥

एव । इत् । एते । प्रति । मा । रोचमानाः । अनेद्यः । श्रवः । आ । इषः । दधानाः । सम्ऽचक्ष्य । मरुतः । चन्द्रऽवर्णाः । अच्छान्त । मे । छदयाथ । च । नूनम् ॥ १२ ॥

पदार्थः–(एव) निश्चये (इत्) एव (एते) (प्रति) (मा) माम् (रोचमानाः) (अनेद्यः) प्रशस्यम् । अनेद्यइति प्रशस्यना० निघं० ३ । ८ (श्रवः) शृण्वन्ति येन तच्छास्त्रम् (आ) (इषः) इच्छाः (दधानाः) धरन्तः (संचक्ष्य) सम्यगध्याप्योपदिश्य वा । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (मरुतः) प्राणवत् प्रिया विद्वांसः (चन्द्रवर्णाः) चन्द्रस्य वर्णइव वर्णो येषान्ते (अच्छान्त) विद्यया आच्छादयन्तः (मे) मम (छदयाथ) अविद्यां दूरीकुरुत (च) विद्यां दत्त (नूनम्) निश्चितम् ॥ १२ ॥

अन्वयः–हे मरुतो यथेष आदधाना मेत्प्रति रोचमाना एते यूयमनेद्यः श्रवः संचक्ष्य चन्द्रवर्णास्सन्तो मामच्छान्त तथैवेदानीं च नूनं मे छदयाथ ॥ १२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये स्त्रीपुरुषान्विद्यासु प्रदीप्य प्रशस्तगुणकर्मस्वभावान् कृत्वा धर्म्येषु प्रयुञ्जते ते विश्वस्याऽलंकर्त्तारस्स्युः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) प्राणों के समान प्रिय विद्वान् जनो जैसे (इषः) इच्छाओं को (आ, दधानाः) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (मा,इत्) मेरे ही (प्रति, रोचमानाः) प्रति प्रकाशमान होते हुए (एते) ये तुम (अनेद्यः) प्रशंसनीय (श्रवः)सुनने के साधन शास्त्र को (संचक्ष्य) पढ़ा वा उस का उपदेशमात्र कर (चन्द्रवर्णाः) चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्ति वाले हुए मुझे

(अच्छान्त) विद्यासे ढांपते हुए वैसे (एव) ही अब (च) भी (नूनम्) निश्चय से (मे,छदयाथ) विद्याओं से आच्छादित करो मेरी अविद्या को दूर करो और विद्या देओ ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्त्रीपुरुषों को विद्याओं में प्रकाशित और उन्हें प्रशंसित गुण कर्म स्वभाव वाले कर धर्म युक्त व्यवहारों में लगाते हैं वे सब के सुभूषित करने वाले हों ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

को न्वत्रं मरुतो मामहे वः प्र यांतन सखीँ-रच्छां सखायः। मन्मांनि चित्रा अपिवातयंन्त एषां भूंत नवेंदा म ऋतानांम् ॥ १३ ॥

कः। नु। अत्रं। मरुतः। मामहे। वः। प्र। यातन। सखीन्। अच्छं। सखायः। मन्मांनि। चित्राः। अपिऽवात-यंन्तः। एषाम्। भूत। नवेंदाः। मे। ऋतानांम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(कः) (नु) सद्यः (अत्र) (मरुतः) (मामहे) महयति । अत्र महपूजायामित्यस्मात् लटि बहुलं छन्दसीति श्लुर्विकरणो व्यत्ययेनात्मनेपदं तुजादित्वाद्दीर्घः (वः) युष्मान् (प्र) (यातन) प्राप्नुवन्तु (सखीन्) सुहृदः (अच्छ) (सखायः) (मन्मानि) विज्ञानानि (चित्राः) अद्भुताः (अपिवातयन्तः) शीघ्रं गमयन्तः (एषाम्) (भूत) भवत (नवेदाः) न विद्यन्ते दुःखानि येषु (मे) मम (ऋतानाम्) सत्यानाम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे मरुतोऽत्र वः को नु मामहे। हे सखायो यूयं सखीनच्छ प्रयातन। हे चित्रा मन्मान्यपिवातयन्तो यूयं मे ऋतानामेषां नवेदा भूत ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्याः सर्वेषु सुहृदो भूत्वा विद्यां प्रापय्य सर्वान् धर्म्यपुरुषार्थे संयोजयन्तु। यत एते सर्वत्र सत्कृताः स्युः सत्याऽसत्ये विज्ञायान्यानुपदिशेयुः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) प्राणवत्प्रिय विद्वानो (अत्र) इस स्थान में (वः) तुम लोगों को (कः) कौन (नु) शीघ्र (मामहे) सत्कारयुक्त करता है। हे (सखायः) मित्र विद्वानो तुम (सखीन्) अपने मित्रों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र, यातन) प्राप्त होओ। हे (चित्राः) अद्भुत कर्म करने वाले विद्वानो (मन्मानि) विज्ञानों को (अपिवातयन्तः) शीघ्र पहुंचाते हुए तुम (मे) मेरे (एषाम्) इन (ऋतानाम्) सत्य व्यवहारों के बीच (नवेदाः) नवेद अर्थात् जिन में दुःख नहीं हैं ऐसे (भूत) होओ ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्य सब में मित्र हो और उन को विद्या पहुंचा कर सब को धर्मयुक्त पुरुषार्थ में संयुक्त करें। जिस से ये सर्वत्र सत्कारयुक्त हों और आप सत्य असत्य जान औरों को उपदेश दें ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा। ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥

आ । यत् । दुवस्यात् । दुवसे । न । कारुः । अस्मान् । चक्रे । मान्यस्य । मेधा । ओ इति । सु । वर्त्त । मरुतः । विप्रम् । अच्छ । इमा । ब्रह्माणि । जरिता । वः । अर्चत् ॥ १४॥

पदार्थः-(आ) समन्तात् (यत्) यस्मात् (दुवस्यात्) सेवमानात् (दुवसे) दुवस्यते परिचरते (न) इव (कारुः) शिल्पकार्यसाधिका (अस्मान्) (चक्रे) करोति (मान्यस्य) माननीयस्य योग्यस्य (मेधा) प्रज्ञा (ओ) आभिमुख्ये (सु) (वर्त्त) वर्त्तते (मरुतः) विद्वांसः (विप्रम्) मेधाविनम् (अच्छ) (इमा) इमानि (ब्रह्माणि) वेदान् (जरिता) स्तोता (वः) युष्मान् (अर्चत) सत्कुर्यात् ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे मरुतो यद्दुवस्याद्दुवसे नास्मभ्यं प्राप्ता मान्यस्य कारुर्मेधाऽस्मान् कारूनाचक्रेऽतो यूयं विप्रमो षु वर्त्त किमर्थं तत्राह जरिताऽच्छेमा ब्रह्माणि संगृह्याच्छ वोऽर्चत् ॥ १४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा शिल्पिनः शिल्पविद्यासिद्धानि वस्तूनि सेवन्ते तथा वेदार्थास्तज्ज्ञानं च सर्वैः सेवितव्यम् । नहि वेदविद्यया विना पूज्यतमो विद्वान् स्यात् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो (यत्) जिस कारण (दुवस्यात्) सेवन करने वाले से (दुवसे) सेवन करने वाले अर्थात् एक से अधिक दूसरे के लिये जैसे (न) वैसे हम लोगों के लिये प्राप्त हुई (मान्यस्य) मानने योग्य योग्यता को प्राप्त सज्जन की (कारुः) शिल्प कार्यों को सिद्ध करने वाली (मेधा) बुद्धि (अस्मान्) हम लोगों को (आ, चक्रे) करती है अर्थात् शिल्पकार्यों में निपुण करती

है इस से तुम (विप्रम्) मेधावी धीरबुद्धि वाले पुरुष के (आो, षु, वर्त्त) सन्मुख वर्त्तमान होओो किस लिये (जरिता) स्तुति करने वाला (इमा) इन (ब्रह्माणि) वेदों को संग्रह कर (अच्छ) अच्छे प्रकार (वः) तुम लोगों की (अर्चतु) सेवे ॥ १४॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे शिल्पीजन शिल्पविद्या से सिद्ध किई हुई वस्तुओं का सेवन करते हैं वैसे वेदार्थ और वेदज्ञान सब को सेवने चाहिये जिस कारण वेदविद्या के विना अतीव सत्कार करने योग्य विद्वान् नहीं होता ॥ १४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः । एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥ २६ । ३ ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयाम् । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ १५ ॥ २६ । ३ ॥

पदार्थः—(एषः) (वः) युष्मभ्यम् (स्तोमः) स्तुतिसमूहः (मरुतः) विद्वत्तमाः (इयम्) वेदाध्ययनसुशिक्षायुक्ता (गीः) वाक् (मान्दार्यस्य) मान्दस्य स्तोतुमर्हस्योत्तमगुणकर्मस्वभावस्य च (मान्यस्य) पूजितव्यस्य (कारोः) पुरुषार्थिनः (आ) (इषा) इच्छया (यासीष्ट) प्राप्नुयात् । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (तन्वे) विस्ताराय (वयाम्) वयम् । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (विद्याम) लभेमहि (इषम्) अन्नम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवनम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे मरुत एष वः स्तोमो मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोरियं गीर्वास्ति। अतो युष्मासु प्रत्येकस्तन्व इषाऽऽयासीष्ट वयामिषं वृजनं जीरदानुं च विद्याम ॥ १५ ॥

भावार्थः—य आप्तानां प्रयतमानानां विदुषां सकाशाद्विद्याशिक्षे लब्ध्वा धर्म्यव्यवहारमाचरन्ति तेषां जन्मसाफल्यमस्तीति वेदितव्यम् ॥ १५ ॥

अत्र विद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्बोध्या॥

इति पञ्चषष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं षड्विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

अस्मिन्नध्याये वसुरुद्राद्यर्थानां प्रतिपादनादेतदध्यायोक्तार्थानां पूर्वोऽध्यायोक्तार्थैस्सह सङ्गतिर्वर्त्तत इति विज्ञातव्यम् ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) उत्तम विद्वानो (एषः) यह (वः) तुम लोगों के लिये (स्तोमः) स्तुतियों का समूह और (मान्दार्यस्य) स्तुति के योग्य वा उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले (मान्यस्य) मानने योग्य (कारोः) कार करने वाले पुरुषार्थी जन की (इयम्) यह (गीः) वाणी है इस से तुम में से प्रत्येक (तन्वे) बढ़ाने के लिये (इषा) इच्छा के साथ (आ, यासीष्ट) आओ प्राप्त होओ (वयाम्) और हम लोग (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल (जीरदानुम्) और जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा पुरुषार्थी विद्वान् पुरुषों की उत्तेजना से विद्या और शिक्षा को प्राप्त हो कर धर्मयुक्त व्यवहार का आचरण करते हैं उन के जन्म की सफलता है यह जानना चाहिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एक सौ पैंसठ का सूक्त और छब्बीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में वसुरुद्रादिकों के अर्थों का प्रतिपादन होने से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पिछिले अध्याय में कहे अर्थों के साथ संगति वर्त्तमान है यह जानना चाहिये ॥

इति श्रीयुत परमहंसपरिब्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिब्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां सुभूषिते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

ओ३म्

अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्याय आरभ्यते ॥

——०*०——

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

तदित्यस्य पञ्चदशर्चस्य षट्षष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य मैत्रावरुणोऽगस्त्य ऋषिः । मरुतो देवताः १ । २ । ८ जगती ३ । ५ । ६ । १२ । १३ । निचृज्जगती । ४ विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७ । ९ । १० भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ मरुच्छब्दार्थप्रतिपाद्यविदुषां गुणानाह ॥

अब द्वितीयाष्टक के चतुर्थाध्याय और एकसौ छियासठवें सूक्त का आरम्भ है उस के आरम्भ से ही मरुच्छब्दार्थप्रतिपाद्य विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे । ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्त्तन ॥ १ ॥

तत् । नु । वोचाम । रभसाय । जन्मने । पूर्वम् । महिऽत्वम् । वृषभस्य । केतवे । ऐधाऽइव । यामन् । मरुतः । तुविऽस्वनः । युधाऽइव । शक्राः । तविषाणि । कर्त्तन ॥ १ ॥

पदार्थः—(तत्) (नु) सद्यः (वोचाम) उपदिशेम (रभसाय) वेगयुक्ताय (जन्मने) जाताय (पूर्वम्) (महित्वम्) महेर्महतो भावम् (वृषभस्य) श्रेष्ठस्य (केतवे) विज्ञानाय (ऐधेव) ऐधैः काष्ठैरिव (यामन्) यामनि मार्गे (मरुतः) मनुष्याः (तुविष्वणः) तुविर्बहुविधः स्वनो येषान्ते । अत्र व्यत्ययेनैकवचनम् (युधेव) युद्धेनेव (शक्राः) शक्तिमन्तः (तविषाणि) बलानि (कर्त्तन) कुरुत ॥ १ ॥

अन्वयः—हे तुविष्वणः शक्रा मरुतो युष्मान्प्रति वृषभस्य रभसाय केतवे जन्मने यत्पूर्वं महित्वं तद्वयं वोचाम यूयमैधेव यामन् युधेव तविषाणि निजकर्मभिर्नु कर्त्तन ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—विद्वांसो जिज्ञासून् प्रति वर्त्तमानजन्मनां प्रागूजन्मनाञ्च सञ्चितनिमित्तज्ञानं कार्यं दृष्ट्वोपदिशेयुः। यथा मनुष्याणां ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियत्वादिभिः शरीरात्मबलानि पूर्णानि स्युस्तथा कुरुतेति च ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (तुविष्वणः) बहुत प्रकार के शब्दों वाले (शक्राः) शक्तिमान् (मरुतः) मनुष्यो तुम्हारे प्रति (वृषभस्य) श्रेष्ठसज्जन का (रभसाय) वेगयुक्त अर्थात् प्रबल (केतवे) विज्ञान (जन्मने) जो उत्पन्न हुआ उस के लिये जो (पूर्वम्) पहिला (महित्वम्) माहात्म्य (तत्) उस को हम (वोचाम) कहें उपदेश करें तुम (ऐधेव) काष्ठों के समान वा (यामन्) मार्ग में (युधेव) युद्ध के समान अपने कर्मों से (तविषाणि) बलों को (नु) शीघ्र (कर्त्तन) करो॥१॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—विद्वान् जन जिज्ञासु जनों के प्रति वर्त्तमान जन्म और पूर्व जन्मों के सञ्चित कर्मों के निमित्त ज्ञान को उन के

कार्यों को देख कर उपदेश करें । और जैसे मनुष्यों के ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियत्वादि गुणों से शरीर और आत्मबल पूरे हों वैसे करें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः । नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्द्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

नित्यम् । न । सूनुम् । मधु । बिभ्रतः । उप । क्रीळन्ति । क्रीळाः । विदथेषु । घृष्वयः । नक्षन्ति । रुद्राः । अवसा । नमस्विनम् । न । मर्धन्ति । स्वऽतवसः । हविःऽकृतम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(नित्यम्) नाशरहितं जीवम् (न) इव (सूनुम्) अपत्यम् (मधु) मधुरादिगुणयुक्तम् (बिभ्रतः) धरन्तः (उप) सामीप्ये (क्रीळन्ति) (क्रीळाः) क्रीडकाः (विदथेषु) सङ्ग्रामेषु (घृष्वयः) सोढारः (नक्षन्ति) प्राप्नुवन्ति (रुद्राः) प्राणा इव (अवसा) रक्षणाद्येन (नमस्विनम्) बह्वन्नयुक्तम् (न) निषेधे (मर्द्धन्ति) योधयन्ति (स्वतवसः) स्वं स्वकीयं तवो बलं येषान्ते (हविष्कृतम्) हविर्भिर्दानैर्निष्पादितम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं ये नित्यं न मधु बिभ्रतः सूनुमुप क्रीळन्ति विदथेषु घृष्वयः क्रीळा नक्षन्ति रुद्राइवावसा नमस्विनं न मर्द्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतं रक्षन्ति तान्नित्यं सेवध्वम ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये सर्वेषामुपकारे प्राणवत्तर्पणे जलान्नवदानन्दे सुलक्षणाऽपत्यवद्वर्त्तन्ते ते श्रेष्ठान् वर्द्धितुं दुष्टान्नमयितुं शक्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जो लोग (नित्यम्) नाशरहित जीव के (न) समान (मधु) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (सूनुम्) पुत्र के समान (उप, क्रीडन्ति) समीप खेलते हैं वा (विदथेषु) संग्रामों में (घृष्वयः) शत्रु के बल को सहने और (क्रीडाः) खेलने वाले (नक्षन्ति) प्राप्त होते हैं वा (रुद्राः) प्राणों के समान (अवसा) रक्षा आदि कर्म से (नमस्विनम्) बहुत अन्नयुक्त जन को (न) नहीं (मर्द्धन्ति) लड़ाते और (स्वतवसः) अपना बल पूर्ण रखते हुए (हविष्कृतम्) दानों से सिद्ध किये हुए पदार्थ को रखते हैं उन का नित्य सेवन करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो सब के उपकार में प्राण के समान तृप्ति करने में जल अन्न के समान और आनन्द में सुन्दर लक्षणों वाली विदुषी के पुत्र के समान वर्त्तमान हैं वे श्रेष्ठों को बढ़ा और दुष्टों को नमा सकते हैं अर्थात् श्रेष्ठों को उन्नति दे सकते और दुष्टों को नम्र कर सकते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे। उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिताइव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

यस्मै । ऊमासः । अमृताः । अरासत । रायः । पोषम् । च । हविषा । ददाशुषे । उक्षन्ति । अस्मै । मरुतः । हिताःऽइव । पुरु । रजांसि । पयसा । मयःऽभुवः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यस्मै) (ऊमासः) रक्षणादिकर्त्तारः (अमृताः) नाशरहिताः (अरासत) रासन्ते (रायः) धर्म्यस्य धनस्य (पोषम्) पुष्टिम् (च) (हविषा) विद्यादिदानेन (ददाशुषे) दात्रे (उक्षन्ति) सिञ्चन्ति (अस्मै) संसाराय (मरुतः) वायवः (हिताइव) यथा हितसंपादकास्तथा (पुरु) पुरूणि बहूनि । अत्र संहितायामिति दीर्घः सुपांसु लुगिति शसो लुक् (रजांसि) (पयसा) जलेन (मयोभुवः) सुखं भावुकाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसोऽमृता ऊमासो भवन्तो यथा मयोभुवो हिताइव मरुतोऽस्मै पयसा पुरु रजांस्युक्षन्ति तथा यस्मै ददाशुषे हविषा रायस्पोषं विद्याञ्चारासत सोप्येवमेवेह वर्त्तेत ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—मनुष्यैर्वायुवत्सर्वेषां सुखानि संसाध्य विद्यासत्योपदेशैर्जलेन वृक्षं सिक्त्वेव मनुष्या वर्द्धनीयाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (अमृताः) नाश रहित (ऊमासः) रक्षणादि कर्म वाले आप जैसे (मयोभुवः) सुख की भावना करने वाले (हिताइव) हित सिद्ध करने वालों के समान (मरुतः) पवन (अस्मै) इस प्राणी के लिये (पयसा) जल से (पुरु) बहुत (रजांसि) लोकों वा स्थलों को (उक्षन्ति) सींचते हैं वैसे (यस्मै) जिस (ददाशुषे) देने वाले के लिये (हविषा) विद्यादि देने से (रायः) धर्मयुक्त धन की (पोषम्) पुष्टि को (च) और विद्या को (अरासत) देते हैं वह भी ऐसे ही वर्त्ते ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्यों को वायु के समान सब के सुखों को अच्छे प्रकार विद्या और सत्योपदेश से जल से वृक्षों के समान सींच कर मनुष्यों की वृद्धि करनी चाहिये ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन्। भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥

आ । ये । रजांसि । तविषीभिः । अव्यत । प्र । वः । एवासः । स्वऽयतासः । अध्रजन् । भयन्ते । विश्वा । भुवनानि । हर्म्या । चित्रः । वः । यामः । प्रऽयतासु । ऋष्टिषु ॥ ४ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (ये) (रजांसि) लोकाः (तविषीभिः) बलैः (अव्यत) प्राप्नुवन्ति (प्र) (वः) युष्माकम् (एवासः) गमनशीलाः (स्वयतासः) स्वेन बलेन नियमं प्राप्ता नत्वन्येनाश्वादिनेति (अध्रजन्) धावन्ति (भयन्ते) कम्पन्ते (विश्वा) सर्वाणि (भुवनानि) लोकाः (हर्म्या) उत्तमानि गृहाणि (चित्रः) अद्भुतः (वः) युष्माकम् (यामः) प्रापणम् (प्रयतासु) नियतासु (ऋष्टिषु) प्राप्तिषु ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो ये व एवासः स्वयतासो रथास्तविषीभी रजांसि आ अव्यत ते प्राध्रजन् । तेषां धावने विश्वा भुवनानि हर्म्या भयन्ते तस्मात् प्रयतास्वृष्टिषु चित्रो वो यामोऽस्ति ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वांसो निजशास्त्राद्भुतबलेन रथादिकं निर्माय नियतासु वृत्तिषु गत्वागत्य सत्यविद्याऽध्यापनोपदेशैः सर्वान् मनुष्यान् पालयित्वाऽसत्यविद्योपदेशान्निवर्त्तयेयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (ये) जो (वः) तुम्हारे (एवासः) गमनशील (स्वयतासः) अपने बलसे नियम को प्राप्त अर्थात् आत्मादि के विना आप ही गमन करने में सन्नद्ध रथ (तविषीभिः) बलों के साथ (रजांसि) लोकों को (आ,अच्यत) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वे (प्र, अध्रजन्) अत्यन्त धावते हैं उन के धावन में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (हर्म्या) उत्तमोत्तम घर (भयन्ते) कांपते हैं इस कारण (प्रयतासु) नियत (ऋष्टिषु) प्राप्तियों में (चित्रः) अद्भुत (वः) तुम्हारा (यामः) पहुंचना है ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वान् जन निज शास्त्रीय अद्भुत बल से रथादि बना के नियत वृत्तियों में जा आ कर सत्य विद्या पढ़ाने और उन के उपदेशों से सब मनुष्यों को पाल के असत्य विद्या के उपदेशों को निवृत्त करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः । विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथियन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥ १ ॥

यत् । त्वेषयामाः । नदयन्त । पर्वतान् । दिवः । वा । पृष्ठम् । नर्याः । अचुच्यवुः । विश्वः । वः । अज्मन् । भयते । वनस्पतिः । रथियन्तीऽइव । प्र । जिहीते । ओषधिः ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थः—(यत्) यदा (त्वेषयामाः) त्वेषे दीप्तौ सत्यां यामो गमनं येषान्ते (नदयन्त) नादयन्ति (पर्वतान्) मेघान् (दिवः) अन्तरिक्षस्य (वा) (पृष्ठम्) उपरिभागम् (नर्याः) नृभ्यो

हिताः (अचुच्यवुः) प्राप्नुवन्ति (विश्वः) (वः) युष्माकम् (अज्मन्) अज्मानि पथि (भयते) कम्पते (वनस्पतिः) वनस्पतिर्वृक्षः (रथियन्तीव) आत्मनो रथिन इच्छन्तीव सेना (प्र) (जिहीते) प्राप्नोति (ओषधिः) सोमादिः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यत्त्वेषयामा नर्या युष्मद्रथा दिवः पर्वतान्नदयन्त भुवः पृष्ठं वाऽचुच्यवुः तदा विश्वो वनस्पती रथियन्तीव वोऽज्मन्भयते ओषधिश्च प्रजिहीते ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—अन्तरिक्षप्रदेशेषु विद्वद्भिः प्रयुक्ताकाशयानानां महत्तरेण वेगेन कदाचिन्मेघविपर्याससम्भवस्तथा पृथिव्याः कम्पनेन वृक्षादीनां कम्पनसम्भवश्च ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यत्) जब (त्वेषयामाः) अग्नि का प्रकाश होने से गमन करने वाले (नर्याः) मनुष्यों के लिये अत्यन्त साधक तुम्हारे रथ (दिवः) अन्तरिक्ष के (पर्वतान्) मेघों को (नदयन्त) शब्दायमान करते अर्थात् तुम्हारे रथों के वेग से अपने स्थान से तितर वितर हुए मेघ गर्जनादि शब्द करते हैं (वा) अथवा पृथिवी के (पृष्ठम्) पृष्ठ भाग को (अचुच्यवुः) प्राप्त होते तब (विश्वः, वनस्पतिः) समस्त वृक्ष (रथियन्तीव) अपने रथी को चाहती हुई सेना के समान (वः) तुम्हारे (अज्मन्) मार्ग में (भयते) कंपता है अर्थात् जो वृक्ष मार्ग में होता वह थरथरा उठता और (ओषधिः) सोमादि ओषधि (प्र, जिहीते) अच्छे प्रकार स्थान त्याग कर देती अर्थात् कपकपाहट में स्थान से तितर वितर होती है ॥ ५ ॥

भावार्थः—अन्तरिक्ष के मार्गों में विद्वानों के प्रयोग किये हुए आकाशगामी यानों के अत्यन्त वेग से कभी मेघों के तितर वितर जाने का सम्भव और पृथिवी के कम्पन से वृक्ष वनस्पति के कम्पने का सम्भव होता है ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्त्तन। यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥

यूयम् । नः । उग्राः । मरुतः । सुऽचेतुना । अरिष्टऽग्रामाः । सुऽमतिम् । पिपर्त्तन । यत्र । वः । दिद्युत् । रदति । क्रिविःऽदती । रिणाति । पश्वः । सुधिताऽइव । बर्हणा ॥ ६ ॥

पदार्थः–(यूयम्) (नः) अस्माकम् (उग्राः) तीव्रगुणकर्मस्वभावाः (मरुतः) मरुद्वत्सुचेष्टाः (सुचेतुना) सुष्ठु विज्ञानेन (अरिष्टग्रामाः) अहिंसका ग्रामा येभ्यस्ते (सुमतिम्) प्रशस्तां प्रज्ञाम् (पिपर्तन) पूरयन्तु (यत्र)। अत्र ऋचितु० इत्यनेन दीर्घः (वः) युष्माकम् (दिद्युत्) देदीप्यमाना विद्युत् (रदति) विलिखति (क्रिविर्दती) क्रिविर्हिंसनमेव दन्ता यस्याः सा (रिणाति) गच्छति (पश्वः) पशून् (सुधितेव) सुष्ठु धृतेव (बर्हणा) वर्द्धते या सा ॥६॥

अन्वयः–हे उग्रा मरुतो विद्वांसो यूयमरिष्टग्रामाः सन्तो नः सुमतिं सुचेतुना पिपर्त्तन । यत्र क्रिविर्दती वो दिद्युद्रदति तत्र सुधितेव बर्हणा सा पश्वो रिणाति ॥ ६ ॥

भावार्थः–अत्रोपमालं०–शिल्पव्यवहारसंसाधिता विद्युदश्वादिपशुवत्कार्यसाधिका भवति । तस्याः क्रियावेत्तारो विद्वांसोऽन्यानपि तद्विद्याकुशलान् संपादयन्तु ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (उग्राः) तीव्रगुणकर्मस्वभावयुक्त (मरुतः) पवनों के समान शीघ्रता करने वाले विद्वानो (यूयम्) तुम (अरिष्टग्रामाः) जिन से ग्राम के ग्राम अहिंसक होते अर्थात् पशु आदि जीवों को जिन्हों ने ताड़ना देना छोड़ दिया ऐसे होते हुए (नः) हमारी (सुमतिम्) प्रशस्त उत्तम बुद्धि को (सुचेतुना) सुन्दर विज्ञान से (पिपर्त्तन) पूरी करो । (यत्र) जहां (क्रिविर्दती) हिंसा करने रूप दांत हैं जिस के वह (वः) तुम्हारे सम्बन्ध से (दिद्युत्) अत्यन्त प्रकाशमान बिजुली (रदति) पदार्थों को छिन्न भिन्न करती है वहां (सुधितेव) अच्छे प्रकार धारण किई हुई वस्तु के समान (बर्हणा) बढ़ती हुई (पश्वः) पशुओं को अर्थात् पशुभावों को (रिणाति) प्राप्त होती जैसे पशु, घोड़े, बैल, आदि रथादिकों को जोड़े हुए उन को चलाते हैं वैसे उन रथों को अतिवेग से चलाती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—शिल्प व्यवहार से सिद्ध किई बिजुलीरूप आग घोड़े आदि पशुओं के समान कार्य सिद्ध करने वाली होती है उस की क्रिया को जानने वाले विद्वान् अन्य जनों को भी उस विद्युद्विद्या से कुशल करें ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः । अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥

प्र । स्कम्भऽदेष्णाः । अनवभ्रऽराधसः । अलातृणासः । विदथेषु । सुऽस्तुताः । अर्चन्ति । अर्कम् । मदिरस्य । पीतये । विदुः । वीरस्य । प्रथमानि । पौंस्या ॥ ७ ॥

पदार्थः—(प्र) (स्कम्भदेष्णाः) स्तम्भनदातारः (अनवभ्रराधसः) अविनष्टधनाः (अलातृणासः) अलं शत्रूणां हिंसकाः (विदथेषु) सङ्ग्रामेषु (सुष्टुताः) सुष्ठुप्रशंसिताः (अर्चन्ति) सत्कुर्वन्ति (अर्कम्) अर्चनीयं विद्वांसम् (मदिरस्य) आनन्दप्रदस्य रसस्य (पीतये) पानाय (विदुः) जानन्ति (वीरस्य) शूरत्वादिगुणयुक्तस्य योद्धुः (प्रथमानि) (पौंस्या) बलानि ॥ ७ ॥

अन्वयः—ये स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासः सुष्टुता जना विदथेषु वीरस्य प्रथमानि पौंस्या विदुस्ते मदिरस्य पीतयेऽर्कं प्रार्चन्ति ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये युक्ताऽऽहारविहाराः शूरजनप्रियाः स्वसेनाबलानि वर्द्धयन्ते ते शत्रुभिरहिता असंख्यधना पुष्कलदातारः प्राप्तप्रशंसा भवन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (स्कम्भदेष्णाः) स्तम्भन देने वाले अर्थात् रोक देने वाले (अनवभ्रराधसः) जिन का धन विनाश को नहीं प्राप्त हुआ (अलातृणासः) पूर्ण शत्रुओं को मारने हारे (सुष्टुताः) अच्छी प्रशंसा को प्राप्त जन (विदथेषु) सग्रामों में (वीरस्य) शूरता आदि गुणयुक्त युद्ध करने वाले के (प्रथमानि) प्रथम (पौंस्या) पुरुषार्थों बलों को (विदुः) जानते हैं वे (मदिरस्य) आनन्ददायक रस के (पीतये) पीने को (अर्कम्) सत्कार करने योग्य विद्वान् का (प्र, अर्चन्ति) अच्छा सत्कार करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो यथायोग्य आहार विहार करने शूरजनों से प्रीति रखने वाले अपनी सेना के बलों को बढ़ाते हैं वे शत्रुरहित असङ्ख्य धनयुक्त बहुत दान देने वाले और प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शतभुंजिभिस्तमभिह्रुंतेरघात् पूर्भी रंक्षता मरुतो यमावंत । जनं यमुंग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनंयस्य पुष्टिषुं ॥ ८ ॥

शतभुंजिऽभिः । तम् । अभिऽह्रुंतेः । अघात् । पूःऽभिः । रक्षत । मरुतः । यम् । आवंत । जनंम् । यम् । उग्राः । तवसः । विऽरप्शिनः । पाथनं । शंसात् । तनंयस्य । पुष्टिषु ॥८॥

पदार्थः-(शतभुजिभिः) शतमसङ्ख्यं सुखं भोक्तुं शीलं येषान्ते (तम्) (अभिह्रुतेः) अभितः कुटिलात् (अघात्) पापात् (पूर्भिः) पूरणपालनसुखयुक्तैर्नगरैः (रक्षत) अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (मरुतः) वायवइव वर्त्तमानाः (यम्) (आवत) पालयत (जनम्) (यम्) (उग्राः) तेजस्विनः (तवसः) प्रवृद्धबलाः (विरप्शिनः) पूर्णविद्याशिक्षावीर्याः (पाथन) रक्षत । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (शंसात्) आत्मस्तुतिरूपात् दोषात् (तनयस्य) अपत्यस्य (पुष्टिषु) पुष्टिकरणेषु कर्म्मसु ॥ ८ ॥

अन्वयः-हे तनयस्य पुष्टिषु प्रयतमाना उग्रास्तवसो विरप्शिनो मरुतो यूयं शतभुजिभिः पूर्भिः सह यमभिह्रुतेरघाद्रक्षत यं जनमावत यं शंसात्पाथन तं वयमपि सर्वतो रक्षेम ॥ ८ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या युक्ताऽहारविहारसुशिक्षाब्रह्मचर्यविद्याभिः स्वसन्तानान् पुष्टियुक्तान् सत्यप्रशंसिनः पापात् पृथग्भूतांश्च कुर्वन्ति प्राणवत्प्रजा आनन्दयन्ति च तेऽनन्तसुखा भवन्ति॥ ८॥

पदार्थः—हे (तनयस्य) सन्तानकी (पुष्टिषु) पुष्टि करने वाले कामों में प्रयत्न करते हुए (उग्राः) तेजस्वी तीव्रप्रताप युक्त (तवसः) अत्यन्त बढे हुए बल से युक्त (विरप्शिनः) पूर्ण विद्या पूर्णशिक्षा और पूर्ण पराक्रम वाले (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान विद्वानो तुम (शतभुजिभिः) असङ्ख्य सुख भोगने को जिन का शील (पूर्भिः) पूरण पालन और सुखयुक्त नगरों के साथ (यम्) जिस की (अभिह्रुतेः) सब ओर से कुटिल (अघात्) पाप से (रक्षत) रक्षा करो बचाओ वा (यम्) जिस (जनम्) जन को (आवत) पालो वा जिस की (शंसात्) आत्म प्रशंसा रूप दोष से (पाथन) पालना करो (तम्) उस की हम लोग भी सब ओर से रक्षा करें॥ ८॥

भावार्थः—जो मनुष्य युक्त आहार विहार उत्तम शिक्षा ब्रह्मचर्य और विद्यादि गुणों से अपने सन्तानों को पुष्टि युक्त सत्य की प्रशंसा करने वाले और पाप से अलग रहने वाले करते और प्राण के समान प्रजा को आनन्दित करते हैं वे अनन्त सुख भोक्ता होते हैं॥ ८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

विश्वा॑नि भ॒द्रा म॑रुतो॒ रथे॑षु वो मिथ॒स्पृध्ये॑व तवि॒षाण्याहि॑ता। अंसे॒ष्वा व॒: प्रप॑थेषु खा॒दयो॒ऽक्षो॑ व॑श्च॒क्रा स॒मया॒ वि वा॑वृते॥ ९॥

विश्वा॑नि। भ॒द्रा। म॒रु॒तः॒। रथे॑षु। व॒ः। मि॒थ॒स्पृध्या॑ऽइव। त॒वि॒षाणि॑। आऽहि॑ता। अंसे॑षु। आ। व॒ः। प्रऽप॑थेषु। खा॒दयः॑। अक्षः॑। व॒ः। च॒क्रा। स॒मया॑। वि। व॒वृ॒ते॒॥ ९॥

पदार्थः—(विश्वानि) सर्वाणि (भद्रा) कल्याणकारकानि (मरुतः) वायुवद्बलिनः (रथेषु) रमणीयेषु यानेषु (वः) युष्माकम् (मिथस्पृध्येव) यथा परस्परं पृत्सु सङ्ग्रामेषु भवा सेना तद्वत् (तविषाणि) बलानि (आहिता) समन्ताद्धृतानि (अंसेषु) स्कन्धेषु भुजेषु (आ) (वः) युष्माकम् (प्रपथेषु) प्रकृष्टेषु सरलेषु मार्गेषु (खादयः) खाद्यानि भक्ष्यविशेषाणि (अक्षः) रथ्यो भागः (वः) युष्माकम् (चक्रा) चक्राणि (समया) निकटे (वि) (वत्रृते) वर्त्तते । अत्र तुजादीनामिति अभ्यासदीर्घः ॥१॥

अन्वयः—हे मरुतो वो रथेषु विश्वानि भद्रा मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता सन्ति वोंऽसेषु च प्रपथेषु खादयः सन्ति वोऽक्षश्चक्रा समयाऽऽ वि वत्रृते ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये स्वयं बलिष्ठाः कल्याणाचाराः सुमार्गगामिनः परिपूर्णधनसेनादिसहिताः सन्ति तेंऽजसा शत्रून् विजेतुं शक्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान बली सज्जनो (वः) तुम्हारे (रथेषु) रमणीय यानों में (विश्वानि) समस्त (भद्रा) कल्याण करने वाले (मिथस्पृध्येव) सङ्ग्रामों में जैसे परस्पर सेना है वैसे (तविषाणि) बल (आहिता) सब ओर से धरे हुए हैं (वः) तुम्हारे (अंसेषु) स्कन्धों में उक्त बल हैं तथा (प्रपथेषु) उत्तम सीधे मार्गों में (खादयः) खाने योग्य विशेष भक्ष्यभोज्य पदार्थ हैं (वः) तुम्हारे (अक्षः) रथ का अक्षभाग धुरी (चक्रा) पहियों के (समया) समीप (आ, वि, वत्रृते) विविध प्रकार से प्रत्यक्ष वर्त्तमान है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो आप बलवान् कल्याण के आचरण करने वाले सुमार्गगामी परिपूर्ण धन सेनादि सहित हैं वे प्रत्यक्ष शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

भूरी॑णि भ॒द्रा नर्ये॑षु बा॒हुषु॒ वक्षः॑सु रु॒क्मा र॑भ॒सासो॑ अ॒ञ्जयः॑ । अंसे॒ष्वेताः॑ प॒विषु॑ क्षु॒रा अधि॒ वयो॒ न प॒क्षान्व्यनु॒ श्रियो॑ धिरे ॥ १० ॥ २ ॥

भूरी॑णि । भ॒द्रा । नर्ये॑षु । बा॒हुषु॑ । वक्षः॑ऽसु । रु॒क्माः । र॒भ॒सासः॑ । अ॒ञ्जयः॑ । अंसे॑षु । एताः॑ । प॒विषु॑ । क्षु॒राः । अधि॑ । वयः॑ । न । प॒क्षान् । वि । अनु॑ । श्रियः॑ । धि॒रे ॥ १० ॥ २ ॥

पदार्थः—(भूरीणि) बहूनि (भद्रा) भजनीयानि धर्म्याणि कर्माणि (नर्येषु) नृभ्यो हितेषु (बाहुषु) प्रचण्डदोर्दण्डेषु (वक्षस्सु) उरस्सु (रुक्माः) सुवर्णरत्नादियुक्ता अलङ्काराः (रभसासः) वेगवन्तः (अञ्जयः) प्रसिद्धप्रशंसाः (अंसेषु) स्कन्धेषु (एताः) शिक्षायां प्राप्ताः (पविषु) सुशिक्षितासु वाक्षु । पवीति वाङ्ना० निघं० १ । ११ (क्षुराः) धर्म्यशब्दाः (अधि) अधिके (वयः) पक्षिणः (न) इव (पक्षान्) (वि) (अनु) (श्रियः) लक्ष्मीः (धिरे) दधिरे दधाति । अत्र छान्दसोऽभ्यासस्य लुक् ॥ १० ॥

अन्वयः—येषां नर्येषु भूरीणि भद्रा बाहुषु वक्षःसु रुक्मा अंसेष्वेता रभसासोऽञ्जयः पविष्वधिक्षुरा वर्त्तन्ते ते वयः पक्षान् न श्रियो व्यनु धिरे ॥ १० ॥

भावार्थः—ये ब्रह्मचर्येण प्राप्तविद्या गृहाश्रमे धृताऽलङ्काराः पुरुषार्थयुक्ताः कृतपरोपकारा वानप्रस्थे प्राप्तवैराग्या अध्यापनरताः

सन्यासेऽधिगतयाथातथ्याः परोपकाररताः सर्वत्र विचरन्तः सत्यं ग्राहयन्तोऽसत्यं त्याजयन्तोऽखिलाञ्जनान् वर्द्धयन्ति ते मोक्षमाप्नुवन्ति ॥ १० ॥

पदार्थः—जिन के (नर्येषु) मनुष्यों के लिये हितरूप पदार्थों में (भूरीणि) बहुत (भद्रा) सेवन करने योग्य धर्मयुक्त कर्म वा (बाहुषु) प्रचण्ड भुजदण्डों और (वक्षस्सु) वक्षःस्थलों में (रुक्माः) सुवर्ण और रत्नादि युक्त अलङ्कार (अंसेषु) स्कन्धों में (एताः) विद्या की शिक्षा में प्राप्त (रभसासः) वेग जिन में विद्यमान ऐसे (अञ्जयः) प्रसिद्ध प्रशंसायुक्त पदार्थ (पविषु, अधि) उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों में (क्षुराः) धर्मानुकूल शब्द वर्त्तमान हैं वे (वयः) पखेरू (पक्षान्) पंखो को (न) जैसे वैसे (श्रियः) लक्ष्मियों को (वि, अनु, धिरे) विशेषता से अनुकूल धारण करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य से विद्याओं को प्राप्त हुए गृहाश्रम में आभूषणों को धारण किये पुरुषार्थयुक्त परोपकारी वानप्रस्थाश्रम में वैराग्य को प्राप्त पढ़ाने में रमे हुए और सन्न्यास आश्रम में प्राप्त हुआ यथार्थभाव जिन को और परोपकारी सर्वत्र विचरते सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराते हुए समस्त मनुष्यों को बढ़ाते हैं वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्याइव स्तृभिः । मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥

महान्तः । मह्ना । विऽभ्वः । विऽभूतयः । दूरेऽदृशः । ये । दिव्याःऽइव । स्तृऽभिः । मन्द्राः । सुऽजिह्वाः । स्वरितारः । आसऽभिः । सम्ऽमिश्लाः । इन्द्रे । मरुतः । परिऽस्तुभः ॥ ११ ॥

पदार्थः-(महान्तः) परिमाणेनाधिकाः (मह्ना) स्वमहिम्ना (विभ्वः) समर्थाः (विभूतयः) विविधैश्वर्यप्रदाः (दूरेदृशः) दूरे पश्यन्ति ते (ये) (दिव्याइव) यथा सूर्य्यस्थाः किरणास्तथा (स्तृभिः) आच्छादितैर्नक्षत्रैः (मन्द्राः) कामयमानाः (सुजिह्वाः) सत्यवाचः (स्वरितारः) अध्यापका उपदेष्टारो वा (आसभिः) मुखैः (संमिश्लाः) सम्यक् मिश्रिताः। अत्र कपिलकादित्वाल्लत्वम् (इन्द्रे) विद्युति (मरुतः) वायवइव (परिष्टुभः) सर्वतो धर्त्तारः॥ ११॥

अन्वयः-ये विद्वांसो मह्ना महान्तो विभ्वो विभूतयो दूरेदृश इन्द्रे संमिश्लाः स्तृभिः सह वर्त्तमानाः परिष्टुभो मरुतो दिव्याइव मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितारः सन्त आसभिरध्यापयन्त्युपदिशन्ति च ते निर्मलविद्या जायन्ते॥ ११॥

भावार्थः-अत्रोपमा वाचकलु०-यथा वायवः सर्वमूर्त्तद्रव्यधर्त्तारो विद्युत्संयुक्तप्रकाशका व्याप्ताः सन्ति तथा विद्वांसो मूर्त्तद्रव्यविद्योपदेष्टारो विद्याविद्यार्थिसंयुक्तविज्ञानदातारः सकलविद्याशुभाचरणव्यापिनः सन्तो नरोत्तमा भवन्ति॥ ११॥

पदार्थः-जो विद्वान् जन (मह्ना) अपनी महिमा से (महान्तः) बड़े (विभ्वः) समर्थ (विभूतयः) नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को देने वाले (दूरेदृशः) दूरदर्शी (इन्द्रे) बिजुली के विषय में (संमिश्लाः) अच्छे मिले हुए (स्तृभिः) आच्छादन करने संसार पर छाया करने हारे तारागणों के साथ वर्त्तमान (परिष्टुभः) सब ओर से धारण करने हारे (मरुतः) पवनों के समान तथा (दिव्याइव) सूर्य्यस्थ किरणों के समान (मन्द्राः) कमनीय मनोहर (सुजिह्वाः)

सत्यवाणी बोलने वाले (स्वरितारः) पढ़ाने और उपदेश करने वाले होते हुए (आसभिः) मुखों से पढ़ाते और उपदेश करते हैं वे निर्मल विद्यावान् होते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे पवन समस्त मूर्त्तिमान् पदार्थों को धारण करने वाले बिजुली के संयोग से प्रकाशक और सर्वत्र व्याप्त हैं वैसे विद्वान् जन मूर्त्तिमान् द्रव्यों की विद्या के उपदेष्टा विद्या और विद्यार्थियों के संयोग के विशेष ज्ञान को देने वाले सकल विद्या और शुभ आचरणों में व्याप्त होते हुए मनुष्यों में उत्तम होते हैं ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् । इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ १२ ॥

तत् । वः । सुऽजाताः । मरुतः । महिऽत्वनम् । दीर्घम् । वः । दात्रम् । अदितेःऽइव । व्रतम् । इन्द्रः । चन । त्यजसा । वि । ह्रुणाति । तत् । जनाय । यस्मै । सुऽकृते । अराध्वम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(तत्) (वः) युष्माकम् (सुजाताः) सुष्ठुप्रसिद्धाः (मरुतः) वायवइव वर्त्तमानाः (महित्वनम्) महिमानम् (दीर्घम्) विस्तीर्णम् (वः) युष्माकम् (दात्रम्) दानम् (अदितेरिव) अन्तरिक्षस्येव (व्रतम्) शीलम् (इन्द्रः) विद्युत् (चन) अपि (त्यजसा) त्यागेन (वि) (ह्रुणाति) कुटिलं गच्छति (तत्) (जनाय) (यस्मै) (सुकृते) सुष्ठुधर्मकारिणे (अराध्वम्) दत्त ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे सुजाता मरुतो यद्वोऽदितेरिव महित्वनं दीर्घं दात्रं वो व्रतमस्ति । तद्यदिन्द्रश्चन त्यजसा विह्रुणाति तच्च यस्मै सुकृते जनायाराध्वं स जगदुपकाराय शक्नुयात् ॥ १२ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—येषां प्राणवन्महिमा विस्तृतं विद्यादानमाकाशवच्छान्तं शीलं विद्युद्वद्दुष्टाचारत्यागोऽस्ति ते सर्वेभ्यः सुखं दातुमर्हन्ति ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (सुजाता) सुन्दर प्रसिद्ध (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान जो (वः) तुम्हारा (अदितेरिव) अन्तरिक्ष की जैसे वैसे (महित्वनम्) महिमा (दीर्घम्) विस्तारयुक्त (दात्रम्) दान और (वः) तुम्हारा (व्रतम्) शील है (तत्) उस को तथा जो (इन्द्रः) बिजुली (चन) भी (त्यजसा) त्याग से अर्थात् एक पदार्थ छोड़ दूसरे पर गिरने से (वि, ह्रुणाति) टेढ़ी बेढ़ी जाती (तत्) उस वृत्त को भी (यस्मै) जिस (सुकृते) सुन्दर धर्म करने वाले (जनाय) सज्जन के लिये (अराध्वम्) देओ वह संसार का उपकार कर सके ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जिनकी प्राण के तुल्य महिमा विस्तारयुक्त विद्या का दान आकाशवत् शान्तियुक्त शील और बिजुली के समान दुष्टाचरण का त्याग है वे सब को सुख देने को योग्य हैं ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत । अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥ १३ ॥

तत् । वः । जामिऽत्वम् । मरुतः । परे । युगे । पुरु । यत् । शंसम् । अमृतासः । आवत । अया । धिया । मनवे । श्रुष्टिम् । आव्य । साकम् । नरः । दंसनैः । आ । चिकित्रिरे ॥१३॥

पदार्थः—(तत्) (वः) युष्माकम् (जामित्वम्) सुखदुःखभोगम् (मरुतः) प्राणवत्प्रियतमाः (परे) (युगे) वर्षे परजन्मनि वा (पुरु) बहु (यत्) (शंसम्) प्रशंसाम् (अमृतासः) मृत्युरहिताः (आवत) (अया) अनया (धिया) प्रज्ञया (मनवे) मनुष्याय (श्रुष्टिम्) प्राप्तव्यं वस्तु (आव्य) रक्षित्वा (साकम्) युष्मत् सत्सङ्गेन (नरः) धर्म्येषु जनानां नेतारः (दंसनैः) शुभाऽशुभसुखदुःखप्रापकैः कर्मभिः (आ) (चिकित्रिरे) जानत ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे अमृतासो मरुतः परे युगे यद्वः पुरु जामित्वं वर्त्तते तच्छंसमावत । अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्य नरः साकं युष्माभिः सह दंसनैः सर्वानाचिकित्रिरे ॥ १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा वायवोऽत्र सृष्टौ वर्त्तमाने प्रलये च वर्त्तन्ते तथा नित्या जीवास्सन्ति यथा वायवो जडमपि वस्तु अधऊर्ध्वं नयन्ति तथा जीवा अपि कर्मभिः सह पूर्वस्मिन्मध्ये आगामिनि च समये यथाकालं यथाकर्म भ्रमन्ति ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अमृतासः) मृत्युधर्मरहित (मरुतः) प्रणों के समान अत्यन्त प्रिय विद्वान् जनो (परे, युगे) परले वर्ष में वा परजन्म में (यत्) जो (वः) तुम लोगों का (पुरु) बहुत (जामित्वम्) सुख दुःख का भोग वर्त्तमान है

(तन्) उस को (शंसम्) प्रशंसारूप (आवत) रक्खो और (अया) इस (धिया) बुद्धि से (मनवे) मनुष्य के लिये (श्रुष्टिम्) प्राप्त होने योग्य वस्तु की (आव्य) रक्षा कर (नरः) धर्मयुक्त व्यवहारों में मनुष्यों को पहुंचाने वाले मनुष्य (साकम्) तुम्हारे साथ (दंसनैः) शुभ अशुभ सुख दुःख फलों की प्राप्ति कराने वाले कर्मों से (आ, चिकित्रिरे) सब को अच्छे प्रकार जानें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु इस सृष्टि में और वर्त्तमान प्रलय में वर्त्तमान हैं वैसे नित्य जीव हैं तथा जैसे वायु जड़ वस्तु को भी नीचे ऊपर पहुंचाते हैं वैसे जीव भी कर्मों के साथ पिछिले बीच के और अगले समय में समय और अपने कर्मों के अनुसार चक्कर खाते फिरते हैं ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

येन॑ दी॒र्घं म॑रुतः शू॒शवा॑म यु॒ष्माके॑न॒ परी॑णसा तुरासः । आ यत्त॒तन॑न्वृ॒जने॑ जना॑स ए॒भिर्य॒ज्ञेभि॒स्तद॒भीष्टि॑मश्याम् ॥ १४ ॥

येन॑ । दी॒र्घम् । म॒रु॒तः॒ । शू॒शवा॑म । यु॒ष्माके॑न । परी॑णसा । तु॒रा॒सः॒ । आ । यत् । त॒तन॑न् । वृ॒जने॑ । जना॑सः । ए॒भिः । य॒ज्ञेभिः॑ । तत् । अ॒भि । इ॒ष्टिम् । अ॒श्या॒म् ॥ १४ ॥

पदार्थः—(येन) (दीर्घम्) प्रलंवितं ब्रह्मचर्यम् (मरुतः) वायुवद्विद्याबलिष्ठाः (शूशवाम) वर्द्धेमहि (युष्माकेन) युष्माकं सम्बन्धेन । अत्र वाच्छन्दसीत्यनण्यपि युष्माकादेशः (परीणसा) बहुना । परीणस इति बहुना० निघं० ३ । १ (तुरासः) त्वरितारः (आ) (यत्) याम् (ततनन्) तन्वन्तु (वृजने) बले

(जनासः) विद्यया प्रसिद्धाः (एभिः) (यज्ञेभिः) विद्वत्सङ्गैः (तत्) ताम् (अभि) (इष्टिम्) (अश्याम्) प्राप्नुयाम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे तुरासो मरुतो वयं येन युष्माकेन परीणसोपदेशेन दीर्घं प्राप्य शूशवाम येन जनासो वृजने यद्यामाततनन्तत्तामभीष्टिमेभिर्यज्ञेभिरहमश्याम् ॥ १४ ॥

भावार्थः—येषां सहायेन मनुष्या बहुविद्याधनबलाः स्युस्तान्नित्यं वर्द्धयेयुः । विद्वांसो यादृशं धर्ममाचरेयुस्तादृशमितरेऽप्याचरन्तु॥१४॥

पदार्थः—हे (तुरासः) शीघ्रता करने वाले (मरुतः) पवन के समान विद्याबलयुक्त विद्वानो हम लोग (येन) जिस (युष्माकेन) आप लोगों के सम्बन्ध के (परीणसा) बहुत उपदेश से (दीर्घम्) दीर्घ अत्यन्त लम्बे ब्रह्मचर्य को प्राप्त होके (शूशवाम) वृद्धि को प्राप्त हों जिस से (जनासः) विद्या से प्रसिद्ध मनुष्य (वृजने) बल के निमित्त (यत्) जिस क्रिया को (आ, ततनन्) विस्तारें (तत्) उस (अभीष्टिम्) सब प्रकार से चांही हुई क्रिया को (एभिः) इन (यज्ञेभिः) विद्वानों के सङ्गरूपयज्ञों से मैं (अश्याम्) पाऊं ॥ १४ ॥

भावार्थः—जिन के सहाय से मनुष्य बहुत विद्या धर्म और बल वाले हों उन की नित्य वृद्धि करें विद्वान् जन जैसे धर्म्म का आचरण करें वैसा ही और भी जन करें ॥ १४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयङ्गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयाम् । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(एषः) (वः) युष्माकम् (स्तोमः) स्तवनम् (मरुतः) विद्वांसः (इयम्) (गीः) वाणी (मान्दार्यस्य) आनन्दिनो धार्मिकस्य (मान्यस्य) सत्कर्त्तुं योग्यस्य (कारोः) प्रयतमानस्य (आ) (इषा) इच्छया (यासीष्ट) प्राप्नुयात् (तन्वे) शरीराय (वयाम्) वयम् । वर्णव्यत्ययेनाऽत्र दीर्घः (विद्याम) प्राप्नुयाम (इषम्) अन्नम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवनम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे मरुतो वो य एष स्तोमो मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोरियं गीर्वर्त्तते यां तन्वे इषा कश्चिदायासीष्ट तामिषं वृजनं जीरदानुञ्च वयां विद्याम ॥ १५ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्विदुषां स्तुतिं कृत्वा आप्तस्य वाचं श्रुत्वा शरीरात्मबलं वर्द्धयित्वा दीर्घं जीवनं प्राप्तव्यमिति ॥ १५ ॥

अत्र मरुद्विद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति षट्षष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं तृतीयो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो (वः) तुम्हारा जो (एषः) यह (स्तोमः) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द करने वाले धर्मात्मा (मान्यस्य) सत्कार

करने योग्य (कारोः) अत्यन्त यत्न करते हुए जन की (इयम्) यह (गीः) वाणी और जिस क्रिया को (तन्वे) शरीर के लिये (इषा) इच्छा के साथ कोई (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हो उस क्रिया (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (वयाम्) हम लोग (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों की स्तुति कर शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं की वाणी सुन शरीर और आत्मा के बल को बढ़ा दीर्घजीवन प्राप्त करना चाहिये ॥१५॥

इस सूक्त में मरुच्छब्दार्थ से विद्वानों के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ छियासठ का सूक्त और तीसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

सहस्रमित्यस्यैकादशर्चस्य सप्तषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रो मरुच्च देवता । १ । ४ । ५ भुरिक् पङ्क्तिः ७ । ९ स्वराट् पङ्क्तिः । १० निचृत् पङ्क्तिः । ११ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ । ६ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ सज्जनगुणानाह ॥

अब एक सौ सरसठ के सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में सज्जनों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

स॒हस्रं॑ त इन्द्रो॒तयो॑ नः स॒हस्र॒मिषो॑ हरिवो गू॒र्त्तत॑माः । स॒हस्रं॒ रायो॑ माद॒यध्यै॑ सह॒स्रिण॒ उप॑ नो यन्तु॒ वाजाः॑ ॥ १ ॥

सहस्रम् । ते । इन्द्र । ऊतयः । नः । सहस्रम् । इषः । हरिऽवः । गूर्त्तऽतमाः । सहस्रम् । रायः । मादयध्यै । सहस्रिणः । उप । नः । यन्तु । वाजाः ॥ १ ॥

पदार्थः—(सहस्रम्) असङ्ख्याः (ते) तव (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सम्राट् (ऊतयः) रक्षाः (नः) अस्माकम् (सहस्रम्) (इषः) अन्नादीनि (हरिवः) धारणाऽऽकर्षणादियुक्त (गूर्त्ततमाः) अतिशयिता उद्यमाः (सहस्रम्) (रायः) श्रियः (मादयध्यै) मादयितुमानन्दयितुम् (सहस्रिणः) सहस्रमसंख्याता बहवः पदार्थाः सन्ति येषु ते (उप) (नः) अस्मान् (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (वाजाः) बोधाः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे हरिव इन्द्र यास्ते सहस्रमूतयः सहस्रमिषः सहस्रं गूर्त्ततमा रायः सन्ति ता नः सन्तु । सहस्रिणो वाजा मादयध्यै नोऽस्मानुपयन्तु ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यानि भाग्यशालिनां सर्वोत्तमसामग्र्या यथायोग्यक्रियया चाऽसंख्यानि सुखानि भवन्ति तान्यस्माकं सन्त्विति मत्वा सततं प्रयतितव्यम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (हरिवः) धारणाकर्षणादि युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य वाले विद्वान् जो (ते) आप की (सहस्रम्) सहस्रों (ऊतयः) रक्षायें (सहस्रम्) सहस्रों (इषः) अन्न आदि पदार्थ (सहस्रम्) सहस्रों (गूर्त्ततमाः) अत्यन्त उद्यम वा (रायः) धन हैं वे (नः) हमारे हों और (सहस्रिणः) सहस्रों पदार्थ जिन में विद्यमान वे (वाजाः) बोध (मादयध्यै) आनन्दित करने के लिये (नः) हम लोगों को (उप, यन्तु) निकट प्राप्त हों ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो भाग्यशालियों को सर्वोत्तम सामग्री से और यथायोग्य क्रिया से असङ्ख्य सुख होते हैं वे हमारे हों ऐसा मान कर निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ ॥

पुनर्वायुदृष्टान्तेन सज्जनगुणानाह ॥
अब पवन के दृष्टान्त से सज्जन के गुणों को अ० ॥

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः। अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥

आ। नः। अवःऽभिः। मरुतः। यान्तु। अच्छ। ज्येष्ठेभिः। वा। बृहत्ऽदिवैः। सुऽमायाः। अध। यत्। एषाम्। निऽयुतः। परमाः। समुद्रस्य। चित्। धनयन्त। पारे ॥ २ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (नः) अस्मान् (अवोभिः) रक्षणादिभिः (मरुतः) वायवः (यान्तु) प्राप्नुवन्तु (अच्छ) (ज्येष्ठेभिः) विद्यावयोवृद्धैः सह (वा) (बृहद्दिवैः) बृहती दिवा विद्या येषान्तैः (सुमायाः) सुष्ठु माया प्रज्ञा येषान्ते (अध) (यत्) ये (एषाम्) प्राज्ञानाम् (नियुतः) वायुरिव विद्युदादयोऽश्वाः (परमाः) प्रकृष्टाः (समुद्रस्य) सागरस्य (चित्) अपि (धनयन्त) आत्मनो धनमिच्छन्ति। अत्राडभावः (पारे) ॥ २ ॥

अन्वयः—यद्ये सुमाया बृहद्दिवैर्ज्येष्ठेभिर्वाऽवोभिः सह मरुत इव नोच्छायान्तु। अधैषां चित् समुद्रस्य पारे परमा नियुतो धनयन्त तान् वयं सत्कुर्याम ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये बृहत्तमाभिर्नौकाभिर्वायुवद्वेगेन व्यवहाराय समुद्रस्य पाराऽवारौ गत्वाऽऽगत्य श्रियमुन्नयन्ति तेऽतुलं सुखमाप्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (सुमायाः) सुन्दर बुद्धि वाले (बृहद्दिवैः) जिन की अतीव विद्या प्रसिद्ध उन (ज्येष्ठेभिः) विद्या और अवस्था से बड़े हुओं के (वा) अथवा (अवोभिः) रक्षा आदि कर्मों के साथ (मरुतः) पवनों के समान सज्जन (नः) हम लोगों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ,यान्तु) प्राप्त होवें (अध) इस के अनन्तर (एषाम् , चित्) इन के भी (समुद्रस्य) सागर के (पारे) पार (परमाः) अत्यन्त उत्तम (नियुतः) पवन के समान बिजुली आदि अश्व (धनयन्त) अपने को धन की इच्छा करते हैं उन का हम लोग सत्कार करें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अतीव बड़ी नौकाओं से पवन के समान वेग से व्यवहार सिद्धि के लिये समुद्र के वार पार जा आ के धन की उन्नति करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

**मि॒म्यक्ष॒ येषु॑ सुधि॑ता घृ॒ताची॒ हिर॑ण्यनिर्णि॒गु-
प॑रा॒ न ऋ॒ष्टिः। गुहा॒ चर॑न्ती॒ मनु॑षो॒ न योषा॑ स॒भा-
व॑ती विद॒थ्ये॑व॒ सं वाक् ॥ ३ ॥**

मि॒म्यक्ष॑ । येषु॑ । सु॒ऽधि॑ता । घृ॒ताची॑ । हिर॑ण्यऽनिर्णिक् । उप॑रा । न । ऋ॒ष्टिः । गुहा॑ । चर॑न्ती । मनु॑षः । न । योषा॑ । स॒भाऽव॑ती । वि॒द॒थ्या॑ऽइव । सम् । वाक् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(मिम्यत्त) प्राप्नुहि (येषु) (सुधिता) सुष्ठु धृता (घृताची) या घृतमुदकमञ्चति सा रात्री घृताचीति रात्रिना० निघं० १ । ७ (हिरण्यनिर्णिक्) या हिरण्येन निर्णेनेक्ति पुष्णाति सा (उपरा) उपरिस्था दिक् उपरा इति दिङ्ना० निघं० १ । ६ (न) इव (ऋष्टिः) प्रापिका (गुहा) गुहायाम् (चरन्ती) गच्छन्ती (मनुषः) मनुषस्य (न) इव (योषा) (सभावती) सभासम्बन्धिनी (विदथ्येव) विदथेषु सङ्ग्रामेषु विज्ञानेषु भवेव (सम्) (वाक्) वाणी ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् त्वं येषु घृताचीव सुधिता उपरा न ऋष्टिर्हिरण्यनिर्णिग्गुहा चरन्ती मनुषो योषा न विदथ्येव सभावती वागस्ति तां सं मिम्यत्त ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये मनुष्याः सत्याऽसत्यनिर्णयाय सर्वशुभगुणकर्मस्वभावां विद्यासुशिक्षायुक्तामाप्तवाणीं प्राप्नुवन्ति ते बह्वैश्वर्याः सन्तो दिक्षु सुकीर्त्तयो भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् आप (येषु) जिन में (घृताची) जल को शीतलता से छोडने वाली रात्रि के समान वा (सुधिता) अच्छे प्रकार धारण किई हुई (उपरा) ऊपरली दिशा के (न) समान वा (ऋष्टिः) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त कराने वाली (हिरण्यनिर्णिक्) जो सुवर्ण से पुष्टि होती और (गुहा, चरन्ती) गुप्त स्थलों में विचरती हुई (मनुषः) मनुष्य की (योषा) स्त्री (न) उस के समान वा (विदथ्येव) सङ्ग्राम वा विज्ञानों में हुई क्रिया आदि के समान (सभावती) सभा सम्बन्धिनी (वाक्) वाणी है उस को (सम्, मिम्यत्त) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य सत्य असत्य के निर्णय के लिये सब शुभ गुण कर्म स्वभाव वाली विद्या सुशिक्षायुक्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को प्राप्त होते हैं वे बहुत ऐश्वर्यवान् होते हुए दिशाओं में सुन्दर कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

परां शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः । न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

परां । शुभ्राः । अयासः । यव्या । साधारण्याऽइव । मरुतः । मिमिक्षुः । । न । रोदसी इति । अप । नुदन्त । घोराः । जुषन्त । वृधम् । सख्याय । देवाः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(परा) (शुभ्राः) स्वच्छाः (अयासः) शीघ्रगामिनः (यव्या) मिश्रिताऽमिश्रितगत्या (साधारण्येव) यथा साधारणया (मरुतः) वायवः (मिमिक्षुः) सिञ्चन्ति (न) निषेधे (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (अप) (नुदन्त) दूरीकुर्वन्ति (घोराः) विद्युद्योगेन भयङ्कराः (जुषन्त) सेवन्ताम् (वृधम्) वर्द्धनम् (सख्याय) मित्राणां भावाय (देवाः) विद्वांसः ॥ ४ ॥

अन्वयः—यथा शुभ्रा अयासो मरुतो यव्या रोदसी मिमिक्षुः । घोराः सन्तो न परापनुदन्त तथा देवा वृधं सख्याय साधारण्येव जुषन्त ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा वायुविद्युद्योगजन्या वृष्टिरनेका ओषधीरुत्पाद्य सर्वान् प्राणिनो जीवयित्वा दुःखानि दूरीकरोति यथोत्तमा पतिव्रता स्त्री पतिमाह्लादयति तथैव विद्वांसो विद्यासुशिक्षा वर्षणेन धर्मसेवया च सर्वान् मनुष्यानाह्लादयेयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—जैसे (शुभ्राः) स्वच्छ (अयासः) शीघ्रगामी (मरुतः) पवन (यव्या) मिली न मिली हुई चाल से (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (मिमिक्षुः) सींचते और (घोराः) बिजुली के योग से भयङ्कर होते हुए (न परा, अप, नुदन्त) उन को परावृत्त नहीं करते उलट नहीं देते वैसे (देवाः) विद्वान् जन (वृधम्) वृद्धि को (सख्याय) मित्रता के लिये (साधारण्येव) साधारण क्रिया से जैसे वैसे (जुषन्त) सेवें ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे वायु और बिजुली के योग से उत्पन्न हुई वर्षा अनेक ओषधियों को उत्पन्न कर सब प्राणियों को जीवन देकर दुःखों को दूर करती है वा जैसे उत्तम पतिव्रता स्त्री पति को आनन्दित करती है वैसे ही विद्वान् जन विद्या और उत्तम शिक्षा की वर्षा से और धर्म के सेवने से सब मनुष्यों को आह्लादित करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि०

जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः । आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥

जोषत् । यत् । ईम् । असुर्या । सचध्यै । विसितऽस्तुका । रोदसी । नृऽमनाः । आ । सूर्याऽइव । विधतः । रथम् । गात् । त्वेषऽप्रतीका । नभसः । न । इत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(जोषत्) सेवेत (यत्) यः (ईम्) जलम् (असुर्या) असुरेषु मेघेषु भवा (सचध्यै) सचितुं संयोक्तुम् (विषितस्तुका) विविधतया सिता बद्धा स्तुका स्तुतिर्यया सा (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (नृमणाः) नृषु नायकेषु मनो यस्याः सा (आ) (सूर्येव) यथा सूर्यस्य दीप्तिः (विधतः) ताडयितॄन् (रथम्) रमणीयं यानं व्यवहारञ्च (गात्) गच्छति (त्वेषप्रतीका) त्वेषस्य प्रकाशस्य प्रतीतिकारिका (नभसः) जलस्य (न) इव (इत्या) प्राप्तुं योग्या ॥ ५ ॥

अन्वयः—यद्योऽसुर्या विषितस्तुका नृमणा ईं सचध्यै सूर्येव रोदसी जोषत् त्वेषप्रतीकेत्या सती नभसो रथं न विधतश्चागात् प्रवरा स्त्री वर्त्तते ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथाऽग्निर्विद्युद्रूपेण सर्वमभिव्याप्य प्रकाशयति तथा सर्वा विद्यासुशिक्षाः प्राप्य स्त्री समग्रं कुलं प्रशंसयति ॥ ५ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (असुर्या) मेघों में प्रसिद्ध (विषितस्तुका) विविध प्रकार की जिस की स्तुति सम्बन्धी और (नृमणाः) जो अग्रगामी जनों में चित्त रखती हुई (ईम्) जल के (सचध्यै) संयोग के लिये (सूर्येव) सूर्य की दीप्ति के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (जोषत्) सेवे अर्थात् उन के गुणों मे रमे वा (त्वेषप्रतीका) प्रकाश की प्रतीति कराने वाली और (इत्या) प्राप्त होने के योग्य होती हुई (नभसः) जल सम्बन्धी (रथम्) रमण करने योग्य रथ के (न) समान व्यवहार को और (विधतः) ताड़ना करने वालों को (आ, गात्) प्राप्त होनी वह स्त्री प्रवर है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे अग्नि विजुलीरूप से सब को सब प्रकार से व्याप्त होकर प्रकाशित करती है वैसे सब विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाकर स्त्री समग्र कुल को प्रशंसित करती है ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आस्थांपयन्त युवतिं युवांनः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् । अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान् गायंद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥

आ । अस्थापयन्त । युवतिम् । युवांनः । शुभे । निऽमिश्लाम् । विदथेषु । पज्राम् । अर्कः । यत् । वः । मरुतः । हविष्मान् । गायत् । गाथम् । सुतऽसोमः । दुवस्यन् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (अस्थापयन्त) (युवतिम्) यौवनाऽवस्थां प्राप्ताम् (युवानः) यौवनावस्थास्थाः (शुभे) शुभगुणकर्मस्वभावग्रहणाय (निमिश्लाम्) नितरां पूर्णविद्यासुशिक्षायुक्ताम् (विदथेषु) धर्म्येषु व्यवहारेषु (पज्राम्) गन्त्रीम् (अर्कः) अर्चनीयमन्नम् । अर्क इत्यन्नना० निघं० २ । ७ (यत्) यः (वः) युष्माकम् (मरुतः) विद्यायुक्ताः प्राणवत्प्रियाः सज्जनाः (हविष्मान्) आदत्तबहुविद्यः (गायत्) स्तुयात् । अत्राडभावः (गाथम्) प्रशंसनीयमुपदेशम् (सुतसोमः) सुतः सोम ऐश्वर्यं येन (दुवस्यन्) परिचरन् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मरुतो युवानो भवन्तो शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्रां युवतिमास्थापयन्त । यद्योऽर्कोऽन्नं तदास्थापयन्त यो हविष्मान् सुतसोमो गायत् स गाथं दुवस्यन् सततमानन्देत् ॥ ६ ॥

भावार्थः—सर्वेषां राजपुरुषादीनामत्यन्तं योग्यमस्ति स्वकन्याः पुत्राँश्च दीर्घे ब्रह्मचर्ये संस्थाप्य विद्यासुशिक्षे सङ्ग्राह्य पूर्णविद्यानां परस्परं प्रसन्नानां स्वयंवरं विवाहं कारयेयुर्यतो यावज्जीवनं तावदानन्दिताः स्युः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्यायुक्त प्राण के समान प्रिय सज्जनो (युवानः) यौवनावस्था को प्राप्त आप (शुभे) शुभ गुण कर्म और स्वभाव ग्रहण करने के लिये (निमिश्लाम्) निरन्तर पूर्ण विद्या और सुशिक्षायुक्त और (विदथेषु) धर्मयुक्त व्यवहारों में (पज्राम्) जाने वाली (युवतिम्) युवती स्त्री को (आ, अस्थापयन्त) अच्छे प्रकार स्थापित करते । और (यत्) जो (वः) तुम्हारा (अर्कः) सत्कार करने योग्य अन्न है उस को अच्छे प्रकार स्थापित करते हो । तथा जो (हविष्मान्) बहुत विद्यावान् (सुतसोमः) जिस ने ऐश्वर्य उत्पन्न किया और (गायन्) स्तुति करे वह (गाथम्) प्रशंसनीय उपदेश को (दुवस्यन्) सेवता हुआ निरन्तर आनन्द करे ॥ ६ ॥

भावार्थः—सब राजपुरुषादिकों को अत्यन्त योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को दीर्घ ब्रह्मचर्य में संस्थापित कर विद्या और उत्तम शिक्षा उन को ग्रहण करा पूर्ण विद्या वाले परस्पर प्रसन्न पुत्र कन्याओं का स्वयंवर विवाह करावें जिस से जब तक जीवन रहे तब तक आनन्दित रहें ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति । सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७ ॥

प्र । तम् । विवक्मि । वक्म्यः । यः । एषाम् । मरुताम् । महिमा । सत्यः । अस्ति । सचा । यत् । ईम् । वृषऽमनाः । अहम्ऽयुः । स्थिरा । चित् । जनीः । वहते । सुऽभागाः ॥७॥

पदार्थः—(प्र) (तम्) (विवक्मि) विशेषेण वदामि । अत्र वाच्छन्दसीति कुत्वम् (वक्म्यः) वक्तुं योग्यः (यः) (एषाम्) (मरुताम्) वायूनामिव विदुषाम् (महिमा) महतो भावः (सत्यः) सत्सु साधुरव्यभिचारि (अस्ति) (सचा) सम्बन्धेन (यत्) यः (ईम्) सर्वतः (वृषमनाः) वृषे वीर्यसंचने मनो यस्य सः (अहंयुः) अहं विद्यते यस्मिन् सः (स्थिरा) निश्चलाः । अत्राकारादेशः (चित्) खलु (जनीः) अपत्यानि प्रादुर्भवित्रीः (वहते) प्राप्नोति (सुभागाः) शोभनो भागो भजनं यासान्ताः ॥ ७ ॥

अन्वयः—य एषां मरुतां वक्म्यः सत्यो महिमास्ति तं यद्योऽहंयुर्वृषमना ईं सचा स्थिरा चित् सुभागा जनीर्वहते तं चाहं प्रविवक्मि ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्याणामिदमेव महत्त्वं यद्दीर्घेण ब्रह्मचर्येण कुमाराः कुमार्यश्च पूर्णायशरीरात्मबलाय विद्यासुशिक्षे गृहीत्वा चिरञ्जीवानि दृढकायमनांसि भाग्यशालीन्यपत्यान्युत्पाद्य प्रशंसितकरणमिति ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (एषाम्) इन (मरुताम्) पवनों के समान विद्वानों का (वक्म्यः) कहने योग्य (सत्यः) सत्य (महिमा) बड़प्पन (अस्ति) है (तम्) उस को और (यत्) जो (अहंयुः) अहङ्कार वाला अभिमानी (वृषमनाः) जिस का वीर्य सींचने में मन वह (ईम्) सब ओर से (सचा) सम्बन्ध

के साथ (स्थिरा, चित्) स्थिर ही (सुभागाः) सुन्दर सेवन करने (जनीः) अपत्यों को उत्पन्न करने वाली स्त्रियों को (वहते) प्राप्त होता उस को भी मैं (प्र, विवक्मि) अच्छे प्रकार विशेषता से कहता हूं॥ ७॥

भावार्थः—मनुष्यों का यही बड़प्पन है जो दीर्घ ब्रह्मचर्य से कुमार और कुमारी शरीर और आत्मा के पूर्ण बल के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर चिरञ्जीवी दृढ़ जिन के शरीर और मन ऐसे भाग्यशाली सन्तानों को उत्पन्न कर उन को प्रशंसित करना॥ ७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

पान्ति मित्रावरुणावव॒द्याच्चय॑त ईमर्य्य॒मो अप्र॑शस्तान्। उ॒त च्य॑वन्ते अच्यु॑ता ध्रु॒वाणि॑ वावृ॒ध ईं॑ म॒रुतो॒ दाति॑वारः॥ ८॥

पान्ति॑। मि॒त्रावरु॑णौ। अ॒व॒द्यात्। चय॑ते। ई॒म्। अ॒र्य॒मो इति॑। अप्र॑ऽशस्तान्। उ॒त। च्य॒व॒न्ते॒। अच्यु॑ता। ध्रु॒वाणि॑। वा॒वृ॒धे। ई॒म्। म॒रु॒तः॒। दाति॑ऽवारः॥ ८॥

पदार्थः—(पान्ति) रक्षन्ति (मित्रावरुणौ) सखिवरावध्यापकोपदेशकौ वा (अवद्यात्) निन्द्यात् पापाचरणात् (चयते) एकत्र करोति (ईम्) प्रत्यक्षम् (अर्य्यमो) न्यायकारी। अत्रार्य्योपपदान्मन धातोरौणादिको बाहुलकादो प्रत्ययः (अप्रशस्तान्) निन्द्यकर्माचारिणः (उत) अपि (च्यवन्ते) प्राप्नुवन्ति (अच्युता) विनाशरहितानि (ध्रुवाणि) दृढानि कर्माणि (वावृधे) वर्द्धते (ईम्) सर्वतः (मरुतः) विद्वांसः (दातिवारः) यो दातिं दानं वृणोति सः॥ ८॥

अन्वयः—हे मरुतो भवन्तो मित्रावरुणौ चावद्यात् पान्ति जनान् रक्षन्ति । अर्यमो अप्रशस्तानीञ्चयते । उत तेऽच्युताध्रुवाणि च्यवन्ते दातिवार ईवत्वधे ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या विद्याधर्मसुशिक्षादानेनाज्ञानिनोऽधर्मान्निवर्त्य ध्रुवाणि शुभगुणकर्माणि प्रापयन्ति ते सुखात् पृथक् न भवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो आप लोग और (मित्रावरुणौ) मित्र और श्रेष्ठ सज्जन वा अध्यापक और उपदेशक जन (अवद्यात्) निन्द्यपापाचरण से (पान्ति) मनुष्यों की रक्षा करते हैं तथा (अर्यमो) न्याय करने वाला राजा (अप्रशस्तान्) दुराचारी जनों को (ईम्) प्रत्यक्ष (चयते) इकट्ठा करता है (उत) और वे (अच्युता) विनाशरहित (ध्रुवाणि) ध्रुव दृढ़ कामों को (च्यवन्ते) प्राप्त होते हैं और (दातिवारः) दान को लेने वाला(ईम्) सब ओर से (वत्वृधे) बढ़ता है ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के देने से अज्ञानियों को अधर्म से निवृत्त कर ध्रुव और शुभ गुण कर्मों को प्राप्त कराते हैं वे सुख से अलग नहीं होते ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्तांच्चिच्छवंसो अन्तंमापुः । ते धृष्णुना शवंसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परिं ष्ठुः ॥ ९ ॥

नहि । नु । वः । मरुतः । अन्ति । अस्मेइति । आरात्तात् । चित् । शवसः । अन्तम् । आपुः । ते । धृष्णुना । शवसा । शूशुऽवांसः । अर्णः । न । द्वेषः । धृषता । परि । स्थुः ॥ ९ ॥

पदार्थः–(नहि) निषेधे । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (नु) सद्यः (वः) युष्माकम् (मरुतः) महाबलिष्ठाः (अन्ति) समीपे (अस्मे) अस्माकम् (आरात्तात्) दूरात् (चित्) अपि (शवसः) बलस्य (अन्तम्) सीमानम् (आपुः) प्राप्नुवन्ति (ते) (धृष्णुना) दृढेन (शवसा) बलेन (शूशुवांसः) वर्द्धमानाः (अर्णः) उदकम् । अर्णइत्युदकना० निघं० १ । १२ (न) इव (द्वेषः) द्वेषादीन् दोषान् धर्मद्वेष्टीन् मनुष्यान् वा (धृषता) प्रागल्भ्येन (परि) सर्वतस्त्यागे (स्थुः) तिष्ठेयुः ॥ ९ ॥

अन्वयः–हे मरुतो ये वोऽस्मे चान्ति शवसोऽन्तं नु नह्यापुर्ये चारात्ताच्चित् धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न धृषता द्वेषः परिष्ठुस्त आप्ता भवेयुः ॥ ९ ॥

भावार्थः–यदि वयं पूर्णं शरीरात्मबलं प्राप्नुयाम तर्हि शत्रवोऽस्माकं युष्माकं च पराजयं कर्त्तुं न शक्नुयुः । ये दुष्टान् लोभादीन् दोषाँश्च त्यजेयुस्ते बलिष्ठा भूत्वा दुःखस्य पारं गच्छेयुः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) महा बलवान् विद्वानो जो (वः) तुम्हारे और (अस्मे) हमारे (अन्ति) समीप में (शवसः) बल की (अन्तम्) सीमा को (नु) शीघ्र (नहि) नहीं (आपुः) प्राप्त होते और जो (आरात्तात्)

दूर से (चित्) भी (धृष्णुना) दृढ़ (शवसा) बल से (शूशुवांसः) बढ़ते हुए (अर्णः) जल के (न) समान (धृषता) प्रगल्भता से ढिठाई से (द्वेषः) वैर आदि दोष वा धर्म विरोधी मनुष्यों को (परि, स्थुः) सब ओर से छोड़ने में स्थिर हों (ते) वे आप्त अर्थात् शास्त्रज्ञ धर्मात्मा हों ॥ ९ ॥

भावार्थः—यदि हम लोग पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होवें तो शत्रु जन हमारा और तुम्हारा पराजय न कर सकें । जो दुष्ट और लोभादि दोषों को छोड़ें वे अति बली हो कर दुःख के पार पहुंचें ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १० ॥

वयम् । अद्य । इन्द्रस्य । प्रेष्ठाः । वयम् । श्वः । वोचेमहि । सऽमर्ये । वयम् । पुरा । महि । च । नः । अनु । द्यून् । तत् । नः । ऋभुक्षाः । नराम् । अनु । स्यात् ॥ १० ॥

पदार्थः—(वयम्) (अद्य) अस्मिन् दिने (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्तस्य धार्म्मिकस्य विदुषः (प्रेष्ठाः) अतिशयेन प्रियाः (वयम्) (श्वः) आगामिदिने (वोचेमहि) वदेम । अत्राऽभावः (समर्ये) सङ्ग्रामे (वयम्) (पुरा) (महि) महत् (च) (नः) अस्माकम् (अनु) (द्यून्) दिनानि (तत्) (नः) अस्मभ्यम् (ऋभुक्षाः) मेधावी (नराम्) मनुष्याणाम् (अनु) आनुकूल्ये (स्यात्) ॥ १० ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो वयमद्य इन्द्रस्य प्रेष्ठाः स्मो वयं श्वः समर्ये वोचेमहि । पुरा यच्च नो महि तद्वयमनु द्यून् वोचेमहि नरां मनुष्याणां मध्ये न ऋभुक्षा अनुष्यात् ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये विद्वत्प्रीतिं युद्धेषूत्साहं मनुष्यादीनां प्रियं च पुरस्तादाचरन्ति ते सर्वेषां प्रिया भवन्ति ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (इन्द्रस्य) परम विद्या और ऐश्वर्ययुक्त धार्मिक विद्वान् के (प्रेष्ठाः) अत्यन्तप्रिय हैं (वयम्) हम लोग (श्वः) कल्ह के आने वाले दिन (समर्य्ये) सङ्ग्राम में (वोचेमहि) कहें (च) और (पुरा) प्रथम जो (नः) हम लोगों का (महि) बड़प्पन है (तत्) उस को (वयम्) हम लोग (अनु, द्यून्) प्रतिदिन कहें और (नराम्) मनुष्यों के बीच (नः) हमारे लिये (ऋभुक्षाः) मेधावी बुद्धिमान् धीर पुरुष (अनु, स्यात्) अनुकूल हों ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वानों से प्रीति युद्ध में उत्साह और मनुष्यादिकों का प्रिय काम का पहिले से आचरण करते हैं वे सब के पियारे होते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः । एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥ ५ ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयाम् । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ११ ॥ ५ ॥

पदार्थः—(एषः) (वः) युष्माकम् (स्तोमः) स्तवनम् (मरुतः) विद्वांसः (इयम्) (गीः) वेदविद्याशिक्षायुक्ता वाणी (मान्दार्यस्य) आनन्दप्रदोत्तमस्य (मान्यस्य) सत्कर्त्तुं योग्यस्य (कारोः) सर्वस्य सुखकर्त्तुः (आ) समन्तात् (इषा) इच्छया (यासीष्ट) प्राप्नुयात् (तन्वे) शरीराय (वयाम्) वयम् (विद्याम) विजानीयाम (इषम्) (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवननिमित्तम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मरुतो एष वः स्तोमो मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोरियङ्गीरस्ति। तस्या येषाऽऽयासीष्ट वयां तन्वे तामिषं जीरदानुं वृजनं च विद्याम ॥ ११ ॥

भावार्थः—ये विश्वतः श्लाघ्यान् गुणान् प्राप्याप्तानां सत्कारं कृत्वा शरीरात्मबलाय विद्यापराक्रमौ सञ्चिन्वन्ति ते सुखेन जीवन्ति॥ ११॥

अत्र वायुदृष्टान्तेन सज्जनगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम् ॥

इति सप्तषष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं पञ्चमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो (एषः) यह (वः) तुम्हारी (स्तोमः) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द के देने वाले उत्तम (मान्यस्य) मान सत्कार करने योग्य (कारोः) सब का सुख करने वाले सज्जन की (इयम्) यह (गीः) वेदविद्या की उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी है इस की जो (इषा) इच्छा के साथ (आ, यासीष्ट) प्राप्ति हो (वयाम्) हम लोग (तन्वे) शरीर के लिये उस (इषम्) इच्छा (जीरदानुम्) जीवन के निमित्त और (वृजनम्) बल को (विद्याम) जानें ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो सब से प्रशंसा करने योग्य गुणों को प्राप्त हो कर आप्त धर्मात्मा सज्जनों का सत्कार कर शरीर और आत्मा के बल के लिये विद्या और पराक्रम सम्पादन करते हैं वे सुख से जीते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से सज्जन विद्वान् जनों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिये ॥

यह एक सौ सरसठ का सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

यज्ञायज्ञेत्यस्य दशर्चस्याष्टषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ । ७ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १० पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ वायुदृष्टान्तेन सज्जनगुणानाह ॥

अब एक सौ अरसठ के सूक्त का आरम्भ है उसके आरम्भ से पवन के दृष्टान्त से सज्जनों के गुणों का वर्णन करते हैं

यज्ञायंज्ञा वः सम॒ना तु॑तु॒र्वणि॒र्धियं॑धियं वो देव॒या उं॑ दधि॒ध्वे । आ वो॒ऽर्वाचः॑ सुवि॒ताय॒ रोद॑स्योर्म॒हे व॑वृ॒त्याम॑व॑से सुवृ॒क्तिभिः॑ ॥ १ ॥

य॒ज्ञाऽयं॑ज्ञा । व॒ः । स॒म॒ना । तु॒तु॒र्वणिः॑ । धि॒यम्ऽधियम् । व॒ः । दे॒व॒ऽयाः । ऊम् इति॑ । द॒धि॒ध्वे । आ । व॒ः । अ॒र्वाचः॑ । सु॒वि॒ताय॑ । रोद॑स्योः । म॒हे । व॒वृ॒त्याम् । अव॑से । सु॒वृ॒क्तिऽभिः॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—(यज्ञायज्ञा) यज्ञेयज्ञे (वः) युष्माकम् (समना) तुल्ये (तुतुर्वणिः) शीघ्रगतिः (धियंधियम्) कर्मकर्म (वः) युष्माकम् (देवयाः) ये देवान् दिव्यान् गुणान् यान्ति ते (उ) (दधिध्वे) (आ) (वः) युष्माकम् (अर्वाचः) (सुविताय) ऐश्वर्याय (रोदस्योः) (महे) (ववृत्याम्) (अवसे) (सुवृक्तिभिः) सुष्ठुवर्जनैस्सह ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा देवयाः प्राणा वो धियंधियं दधति तथा उ यूयं तान् दधिध्वे। यथा तेषां यज्ञायज्ञा समना तुतुर्वणिरस्ति तथा वोऽस्तु। यथा वयं रोदस्योः सुविताय महेऽवसे वः सुवृक्तिभिरर्वाचो वायूनाववृत्त्यामिच्छामस्तथा यूयमिच्छथ ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा वायवो नियमेनाऽनेकविधगतयो भूत्वा विश्वं धरन्ति तथा विद्वांसो विद्याशिक्षायुक्ता भूत्वा विद्यार्थिनो धरन्तु। येनाऽसङ्ख्यैश्वर्य्यं प्राप्तं स्यात् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (देवयाः) दिव्य गुणों को जो प्राप्त होते वे प्राण वायु (वः) तुम्हारे (धियंधियम्) काम काम को धारण करते वैसे (उ) ही तुम उनको (दधिध्वे) धारण करो। जैसे उन पवनों की (यज्ञायज्ञा) यज्ञ यज्ञ में और (समना) समान व्यवहारों में (तुतुर्वणिः) शीघ्र गति है वैसे (वः) तुम्हारी गति हो जैसे हम लोग (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी सम्बन्धी (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये और (महे) अत्यन्त (अवसे) रक्षा के लिये (वः) तुम्हारे (सुवृक्तिभिः) सुन्दर त्यागों के साथ (अर्वाचः) नीचे आने जाने वाले पवनों को (आ,ववृत्याम्) अच्छे वर्त्ताने के लिये चाहते हैं वैसे तुम चाहो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पवन नियम से अनेक विध गतिमान् हो कर विश्व का धारण करते हैं वैसे विद्वान् जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त हो कर विद्यार्थियों को धारण करें जिस से असंख्य ऐश्वर्य प्राप्त हो ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः । सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

वव्रासः । न । ये । स्वऽजाः । स्वऽतवसः । इषम् । स्वः । अभिऽजायन्त । धूतयः । सहस्रियासः । अपाम् । न । ऊर्मयः । आसा । गावः । वन्द्यासः । न । उक्षणः ॥ २ ॥

पदार्थः—(वव्रासः) सद्यो गन्तारः । अत्र व्रज धातोर्बाहुलकादौणादिको डः प्रत्ययः द्वित्वञ्च (न) इव (ये) (स्वजाः) स्वस्मात्कारणाज्जाताः (स्वतवसः) स्वकीय बलयुक्ताः (इषम्) ज्ञानम् (स्वः) सुखम् (अभिजायन्त) (धूतयः) गन्तारः कंपयितारश्च (सहस्रियासः) सहस्राणि (अपाम्) जलानाम् (न) इव (ऊर्म्मयः) तरङ्गाः (आसा) मुखेन (गावः) धेनवः (वन्द्यासः) वन्दितुं कामयितुमर्हाः (न) इव (उक्षणः) वृषभान् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो ये स्वजाः स्वतवसो धूतयो वव्रासो नापां सहस्रियास ऊर्मयो नासा वन्द्यासो गाव उक्षणो नेषं स्वश्चाभिजायन्त तान् यूयं विजानीत ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये वायुवद्बलिष्ठास्तरङ्गवदुत्साहिनो गोवदुपकारकाः कारणवत् सुखजनका दुष्टानां कम्पयितारो मनुष्याः स्युस्तेऽत्र धन्या भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (ये) जो (स्वजाः) अपने ही कारण से उत्पन्न (स्वतवसः) अपने बल से बलवान् (धूनयः) जाने वा दूसरों को कम्पाने वाले मनुष्य (वव्रासः) शीघ्रगामियों के (न) समान वा (अपाम्) जलों की (सहस्रियासः) हजारों (ऊर्मयः) तरङ्गों के (न) समान (आसा) मुख से (वन्द्यासः) वन्दना और कामना के योग्य (गावः) गौयें जैसे (उक्षणः) बैलों को (न) वैसे (इषम्) ज्ञान और (स्वः) सुख को (अभिजायन्त) प्रगट करते हैं उन को तुम जानो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो पवन के समान बलवान् तरङ्गों के समान उत्साही गौओं के समान उपकार करने वाले कारण के तुल्य सुख जनक दुष्टों को कम्पाने भय देने वाले मनुष्य हों वे यहां धन्य होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सोमा॑सो॒ न ये सु॒तास्तृ॒प्तांश॑वो हृ॒त्सु पी॒तासो॑ दु॒वसो॒ नास॑ते । ऐषा॒मंसे॑षु र॒म्भिणी॑व रारभे॒ ह॒स्तेषु खा॒दिश्च॑ कृ॒तिश्च॒ सं द॑धे ॥ ३ ॥

सोमा॑सः । न । ये । सु॒ताः । तृ॒प्तऽअं॑शवः । हृ॒त्ऽसु । पी॒तास॑ः । दु॒वस॑ः । न । आस॑ते । आ । ए॒षा॒म् । अंसे॑षु । र॒म्भिणी॑ऽइव । र॒र॒भे॒ । हस्ते॑षु । खा॒दिः । च॒ । कृ॒तिः । च॒ । सम् । द॒धे॒ ॥ ३ ॥

पदार्थः–(सोमासः) सोमाद्योषधिरसाः (न) इव (ये) मरुत इव विद्वांसः (सुताः) निस्सारिताः (तृप्तांशवः) तृप्ता अंशवो येभ्यस्ते (हृत्सु) हृदयेषु (पीतासः) पीताः (दुवसः) परिचारकाः (न) इव (आसते) (आ) (एषाम्) (अंसेषु) भुजस्कन्धेषु (रम्भिणीव) यथाऽऽरम्भिका गृहकार्येषु चतुरा स्त्री (रारभे) रेभे (हस्तेषु) करेषु (खादिः) भोजनम् (च) (कृतिः) क्रिया (च) (सम्) सम्यक् (दधे) ॥ ३ ॥

अन्वयः-अहं ये सुतास्तृप्तांशवः सोमासो हृत्सु पीतासो न दुवसो न आसत एषामंसेषु रम्भिणीव आरारभे। यैर्हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च ध्रियते तैस्सह सर्वाः सत्क्रियाः सन्दधे ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये सज्जना ओषधीवत्कुशिक्षादुष्टाचारविनाशकाः परिचारकवत्सुखप्रदाः पतिव्रतास्त्रीवत्प्रियाचारिणः क्रियाकुशलाः सन्ति तेऽत्र सृष्टौ सर्वा विद्याः संधातुमर्हन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—मैं (ये) जो पवनों के समान विद्वान् (तृप्तांशवः) जिन से सूर्य किरण आदि पदार्थ तृप्त होते और वे (सुताः) कूट पीट निकाले हुए (सोमासः) सोमादि ओषधि रस (हृत्सु) हृदयों में (पीतासः) पीये हुए हों उन के (न) समान वा (दुवसः) सेवन करने वालों के (न) समान (आसते) बैठते स्थिर होते (एषाम्) इन के (अंसेषु) भुज स्कन्धों में (रम्भिणीव) जैसे प्रत्येक काम का आरम्भ करने वाली स्त्री संलग्न हो वैसे (आ, रारभे) संलग्न होता हूं। और जिन्हों ने (हस्तेषु) हाथों में (खादिः) भोजन (च) और (कृतिः) क्रिया (च) भी धारण किई है उन के साथ सब क्रियाओं को (सम्, दधे) अच्छे प्रकार धारण करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो सज्जन ओषधियों के समान दुष्ट शिक्षा और दुष्टाचार के विनाश करने सेवकों के समान सुख देने और पतिव्रता स्त्री के समान प्रिय आचरण करने वाले क्रिया कुशल हैं वे इस सृष्टि में सब विद्याओं के अच्छे धारण करने यथायोग्य कामों में वर्त्ताने को योग्ये होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अव॒ स्वयु॑क्ता दि॒व आ वृथा॑ ययुरम॑र्त्याः॒ कश॑या चोद॒त त्मना॑ । अ॒रे॒णव॑स्तुविजा॒ता अ॑चुच्यवुर्दृ॒ढानि॑ चि॒न्मरु॒तो भ्राज॑दृष्टयः ॥ ४ ॥

अव॑ । स्वऽयु॑क्ताः । दि॒वः । आ । वृथा॑ । य॒युः॒ । अम॑र्त्याः । कश॑या । चो॒द॒त । त्मना॑ । अ॒रे॒णव॑ः । तु॒वि॒ऽजा॒ताः । अ॒चु॒च्य॒वुः॒ । दृ॒ढानि॑ । चि॒त् । म॒रुत॑ः । भ्राज॑त्ऽऋष्टयः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अव) (स्वयुक्ताः) स्वेनैव गच्छन्तः (दिवः) आकाशात् (आ) (वृथा) (ययुः) गच्छन्ति (अमर्त्याः) मरणधर्म्मरहिताः (कशया) शासनेन गत्या वा (चोदत) प्रेरयत (त्मना) आत्मना (अरेणवः) न विद्यन्ते रेणवो येषु ते (तुविजाताः) तुविना बलेन सह प्रसिद्धाः (अचुच्यवुः)। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (दृढानि) (चित्) अपि (मरुतः) वायवः (भ्राजदृष्टयः) भ्राजन्त ऋष्टयो गतयो येषान्ते ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं त्मना कशया यथा स्वयुक्ता अमर्त्या अरेणवस्तुविजाता भ्राजदृष्टयो मरुतो दिव आ ययुर्दृढानि चिद्वृथाऽवाऽचुच्यवुस्तथैतान्प्रचोदत ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा वायवो स्वयमेव गच्छन्त्या-गच्छन्ति अग्न्यादीन् धृत्वा दृढत्वेन प्रकाशयन्ति तथा विद्वांसस्स्व-यमेवाऽध्यापनोपदेशेषु नियुक्ता व्यर्थानि कर्माणि त्यक्त्वा त्याजयि-त्वा च विद्यासुशिक्षाभिस्सर्वान्जनान् द्योतयन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (त्मना) आत्मा से (कशया) शिक्षा वा गति से जैसे (स्वयुक्ताः) अपने से गमन करने वाले (अमर्त्याः) मरणधर्मरहित (अरेणवः) जिन में रेणु वालू नहीं विद्यमान (तुविजाताः) बल के साथ प्रसिद्ध और (भ्राजदृष्टयः) जिन की प्रकाशमान गति वे (मरुतः) पवन (दिवः) आकाश से (आ, ययुः) आते प्राप्त होते हैं और (दृढानि) पुष्ट (चित्) भी पदार्थों को (वृथा) वृथा निष्काम (अत्र, अचुच्यवुः) प्राप्त होते वैसे इन को (चोदत) प्रेरणा देओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पवन आप ही जाते आते हैं और अग्नि आदि पदार्थों को धारण कर दृढ़ता से प्रकाशित करते हैं वैसे विद्वान् जन आप ही पढ़ाने और उपदेशों में नियुक्त हो व्यर्थ कामों को छोड़ कर और छुड़वा के विद्या और उत्तम शिक्षा से सब जनों को प्रकाशित करते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया । धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः ॥ ५ ॥ ६ ॥

कः । वः । अन्तः । मरुतः । ऋष्टिऽविद्युतः । रेजति । त्मना । हन्वाऽइव । जिह्वया । धन्वऽच्युतः । इषाम् । न । यामनि । पुरुऽप्रैषाः । अहन्यः । न । एतशः ॥ ५ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(कः) (वः) युष्माकम् (अन्तः) मध्ये (मरुतः) विद्वांसः (ऋष्टिविद्युतः) ऋष्टिर्विद्युदिव येषान्ते (रेजति) कम्पते (त्मना) आत्मना (हन्वेव) यथा हनू तथा (जिह्वया) वाचा (धन्वच्युतः) धन्वनोऽन्तरिक्षाच्च्युताः प्राप्ताः (इषाम्) इच्छानाम् (न) इव (यामनि) मार्गे (पुरुप्रैषाः) बहुभिः प्रेरिताः (अहन्यः) अहनि भवाः (न) इव (एतशः) अश्वः । एतश इत्यश्वना० निघं० १ । १४ ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे पुरुप्रैषा ऋष्टिविद्युतो मरुतो वोऽन्तः को रेजति । जिह्वया हन्वेव त्मना को वोऽन्ता रेजति । इषां धन्वच्युतो मेघा नाहन्य एतशो न यामनि युष्मान् कः संयुनक्ति ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यदा जिज्ञासवो विदुषः प्रति पृच्छेयुस्तदा विद्वांस एभ्यो याथातथ्यमुत्तराणि दद्युः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (पुरुप्रैषाः) बहुतों से प्रेरणा को प्राप्त (ऋष्टिविद्युतः) ऋष्टि—द्विधारा खड्ग को बिजुली के समान तीव्र रखने वाले (मरुतः) विद्वानो (वः) तुम्हारे (अन्तः) बीच में (कः) कौन (रेजति) कम्पता है और (जिह्वया) वाणी से (हन्वेव) कनफटी जैसे डुलाई जावें वैसे (त्मना) अपने से कौन तुम्हारे बीच में कम्पता है (इषाम्) और इच्छाओं के सम्बन्ध में (धन्वच्युतः) अन्तरिक्ष में प्राप्त मेघों के (न) समान वा (अहन्यः) दिन में प्रसिद्ध होने वाले (एतशः) घोड़े के (न) समान (यामनि) मार्ग में तुम लोगों को कौन संयुक्त करता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जब जिज्ञासु जन विद्वानों के प्रति पूछें तब विद्वान् जन इन के लिये यथार्थ उत्तर देवें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

क्व॑ स्वि॒द॒स्य रज॑सो म॒हस्प॒रं क्वाव॑रं मरु॒तो॒ यस्मि॑न्नाय॒य । यच्च्या॒वय॑थ विथु॒रेव॒ संहि॑तं॒ व्यद्रि॑णा पतथ त्वे॒षम॑र्ण॒वम् ॥ ६ ॥

क्व॑ । स्वि॒त् । अ॒स्य । रज॑सः । म॒हः । पर॑म् । क्व॑ । अव॑रम् । म॒रु॒तः॒ । यस्मि॑न् । आ॒ऽय॒य । यत् । च्य॒वय॑थ । वि॒थु॒राऽइ॑व । सम्ऽहि॑तम् । वि । अद्रि॑णा । प॒त॒थ॒ । त्वे॒षम् । अ॒र्ण॒वम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(क्व) कस्मिन् (स्वित्) एव (अस्य) (रजसः) भूगोलस्य (महः) महत् (परम्) कारणम् (क्व) (अवरम्) कार्यम् (मरुतः) विद्वांसः (यस्मिन्) (आयय) आगच्छत । अत्र लोडर्थे लिट् (यत्) (च्यावयथ) चालयथ (विथुरेव) यथा व्यथितानि (संहितम्) कृतसाधनम् (वि) (अद्रिणा) मेघेन सह (पतथ) अध आगच्छथ (त्वेषम्) सूर्य्यदीप्तिम् (अर्णवम्) समुद्रम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मरुतोऽस्य रजसो महस्परं क्व स्वित् क्वावरं वर्त्तत इति पृच्छामः । यस्मिन् यूयमायय यच्च्यावयथ यस्मिन् विथुरेव संहितमिदं जगद्येनाद्रिणा सह वायवस्त्वेषमर्णवं विपतथ तदेव सर्वस्य जगतो महत् कारणं वर्त्तत इत्युत्तरम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—यस्मिन्निदं भूगोलादिकं गच्छत्यागच्छति कम्पते तदेवाकाशवत् कारणं विजानीत यस्मिन्नेते लोका उत्पद्यन्ते विद्यन्ते भ्रमन्ति प्रलीयन्ते च तत्परं निमित्तं कारणं ब्रह्मेति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो (अस्य) इस (रजसः) भूगोल का (महः) बड़ा (परम्) कारण (क,स्वित्) निश्चय से कहां और (क) कहां (अवरम्) कार्य्य वर्त्तमान है इस को हम लोग पूछते हैं (यस्मिन्) जिस में तुम (आयय) आओ (यत्) जिस को (च्यावयथ) चलाओ जिस में (विथुरेव) दबाये पदार्थों के समान (संहितम्) मेल किये हुए यह जगत् है जिस से (अद्रिणा) मेघवृन्द के साथ पवन (त्वेषम्) सूर्य के प्रकाश और (अर्णवम्) समुद्र को (वि,पतथ) नीचे प्राप्त होते हैं वही परब्रह्म सब जगत् का बडाकारण है यही उक्त प्रश्नों का उत्तर है ॥ ६ ॥

भावार्थः—जिस में यह भूगोल आदि जगत् जाता आता कपम्ता उसीको आकाश के समान कारण जानो जिसमें ये लोक उत्पन्न होते भ्रमते और प्रलय होजाते हैं वह परम उत्कृष्ट निमित्त कारण ब्रह्म है ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सातिर्न वोऽमंवती स्वंर्वती त्वेषा विपांका मरुतः पिपिंष्वती । भद्रा वों रातिः पृंणतो न दक्षिणा पृथुज्रयीं असुर्येव जञ्जंती ॥ ७ ॥

सातिः । न । वः । अमंऽवती । स्वंःऽवती । त्वेषा । विऽपांका । मरुतः । पिपिंष्वती । भद्रा । वः । रातिः । पृणतः । न । दक्षिणा । पृथुऽज्रयीं । असुर्य्याऽइव । जञ्जंती ॥ ७ ॥

पदार्थः-(सातिः) लोकानां विभक्तिः (न) इव (वः) युष्माकम् (अमवती) ज्ञानयुक्ता (स्ववर्ती) विद्यमानसुखा (त्वेषा) प्रदीप्तिः (विपाका) विविधगुणैः परिपक्वा (मरुतः) विद्वांसः (पिपिष्वती) पिपींषि बहवोऽवयवा विद्यते यस्याः सा (भद्रा) कल्याणकारिणी (वः) युष्माकम् (रातिः) दानम् (पृणतः) पालकस्य विद्यादिभिः प्रपूरकस्य वा (न) इव (दक्षिणा) दातुं योग्या (पृथुज्रयी) बहुवेगा (असुर्येव) असुषु प्राणेषु भवा विद्युदिव (जञ्जती) यथा युद्धे प्रवृत्ता सेना ॥ ७ ॥

अन्वयः-हे मरुतो वो या पिपिष्वत्यमवती स्ववर्ती विपाका त्वेषा सातिर्नैवास्ति वो या पृणतो दक्षिणा नेव पृथुज्रय्यसुर्येव जञ्जती भद्रा रातिरस्ति तया सर्वान् वर्द्धय ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यैषां जीवानां पापपुण्यजन्या सुखदुःखफला गतिरस्ति तया सर्वे जीवा विचरन्ति । ये पुरुषार्थिनः सैन्याः शत्रूनिव पापानि विजित्य निवार्य धर्ममाचरन्ति ते सदैव सुखिनो भवन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो (वः) तुम्हारी जो (पिपिष्वती) बहुत अङ्गों वाली (अमवती) ज्ञानवती (स्ववर्ती) जिस में सुख विद्यमान (विपाका) विविध प्रकार के गुणों से परिपक्व (त्वेषा) उत्तम दीप्ति (सातिः) लोकों की विभक्ति अर्थात् विशेष भाग के (न) समान है और (वः) तुम्हारी जो (पृणतः) पालन करने वा विद्यादि गुणों से परिपूर्ण करने वाले की (दक्षिणा) देने योग्य दक्षिणा के (न) समान (पृथुज्रयी) बहुत वेगवती (असुर्येव) प्राणों में होने वाली बिजुली के समान वा (जञ्जती) युद्ध में प्रवृत्त भंभिफयाती हुई सेना के समान (भद्रा) कल्याण करने वाली (रातिः) देनी है उस से सब को बढ़ाओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो इन जीवों की पाप पुण्य से उत्पन्न हुई सुख दुःख फल वाली गति है उस से समस्त जीव विचरते हैं। जो पुरुषार्थी जन सेना जन शत्रुओं को जैसे वैसे पापों को जीत निवारि धर्म का आचरण करते हैं वे सदैव सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति । अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥

प्रति । स्तोभन्ति । सिन्धवः । पविऽभ्यः । यत् । अभ्रियाम् । वाचम् । उत्ऽईरयन्ति । अव । स्मयन्त । विऽद्युतः । पृथिव्याम् । यदि । घृतम् । मरुतः । प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—(प्रति) (स्तोभन्ति) स्तभ्नन्ति । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (सिन्धवः) नद्यः (पविभ्यः) वज्रवत् किरणेभ्यः (यत्) यदा (अभ्रियाम्) अभ्रेषु भवां गर्जनाम् (वाचम्) वाणीम् (उदीरयन्ति) प्रेरते (अव) (स्मयन्त) ईषद्धसन्ति (विद्युतः) तडितः (पृथिव्याम्) भूमौ (यदि) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (घृतम्) उदकम् (मरुतः) (प्रुष्णुवन्ति) स्नेहयन्ति ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यद्यदा मरुतोऽभ्रियां वाचमुदीरयन्ति तदा सिन्धवः पविभ्यः प्रतिष्टोभन्ति यदि च मरुतो घृतं प्रुष्णुवन्ति तदा विद्युतः पृथिव्यामवस्मयन्त तद्यूयं भवत ॥ ८ ॥

रसीद मूल्य वेदभाष्य

श्रीमान् सरदार अतरसिंह जी	लुधियाना	१६)
श्रीमान् रायबहादुर पंडित सुन्दरलाल जी की	मारफत	
बाबू रामनारायणजी इन्स्पेक्टर डाकखाना	कानपुर	११।≈)॥
आनन्दीप्रसाद जी मन्त्री आर्यसमाज बांदीकुई जिला जयपुर		८)
गोविन्दकिशोर जी	चीकली	८)
पंडित कृष्णाराम इच्छाराम जी आर्यसमाज	मुम्बई	८)
रूपकृष्णदयाल जी	फतहपुर	२३)
		७४।≈)॥

ओ३म्

विज्ञापन

सर्व सज्जन महाशयों से निवेदन किया जाता है कि आर्यसमाज नियम देवनागरी तथा अंगरेजी भाषा में छपे हुए तैयार हैं मूल्य पर्चों के ॥) सैकड़ा प्रत्येक प्रकार के पर्चों का है जिन महाशयों को अपेक्षित हों २५ पर्चे मिल सकते हैं क्योंकि यह भी नियम है कि २५ से न्यून न दिये जावें जिन महाशयों को चाहिये हों मुझे सूचना देवें।

विज्ञापन

सब आर्यसमाजस्थ महाशयों को आनन्द का समाचार दिया जाता है कि दश २ अध्याय की दो जिल्द यजुर्वेद भाष्य की तयार होंगी और चार चार अध्याय की २ जिल्द ऋग्वेद भाष्य की होंगी इन के शुद्धि पत्र और सूचीपत्र बनाये जाते हैं सो लगाये जावें गे जो ग्राहक लोग दोनों वेद के भाष्य ले चुके हैं उन के पास शुद्धि सूची और जिल्द के लिये टाटिल छाप के भेजा जावे गा तब जिल्दों में लगवा लेवें॥

सब आर्य सज्जन महाशयों से निवेदन किया जाता है कि जिन महाशयों को आर्यसामाजिक सिद्धान्तानुकूल पुस्तक, फार्म, लेबिल, कार्ड आदि छपवाना हो कृपा करि भेज देवें उत्तम टायप स्पष्ट अक्षर और शुद्ध छापे जायंगे॥

कृपाकांक्षी

ज्वालादत्त शर्म्मा

स्थानापन्न प्रबन्धकर्त्ता

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्री[illegible]नन्दसरस्वती स्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर
प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीभूतस्य ॥=)
एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास छपे एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक
महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥=) एक वेद
के अंकों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

[illegible] वैदिक [illegible] समीपे वार्षिकमूल्यमेकवारं [illegible] प्रतिमासं
मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ।

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रंथ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय के मैनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अंकों को प्राप्त कर सकता है।

अंक (११२, ११३) अंक (९६, ९७)

[illegible] वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् [illegible] कृष्ण पक्ष

[illegible]

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान छठवें वर्ष के लिये ८९ । ९० अङ्क से प्रारंभ हो कर १०० । १०१ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के सब वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है:—

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ३॥)

" अबरीवरयुक्त जिल्द की ४)

[ख] एक वेद के ८८ अङ्क तक २९ ॥) और दोनों वेदों के ५९ ॥)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।) दो अङ्क ॥) तीन अङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुभीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधनी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंध कर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जावेंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जावें गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जावें वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस से पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य, संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्ध कर्त्ता वैदिक यन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

भावार्थः—ये मनुष्या नदीवदार्द्रा तडिद्वत्तीव्रा विद्यां पठित्वाऽध्यापयन्ति ते सूर्यवत् सत्याऽसत्यप्रकाशका जायन्ते ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यत्) जब (मरुतः) पवन (अभ्रियाम्) मेघों में हुई गर्जनारूप (वाचम्) वाणी को (उदीरयन्ति) प्रेरणा देते अर्थात् बद्दलों को गर्जाते हैं तब (सिन्धवः) नदियां (पविभ्यः) वज्र तुल्य किरणों से अर्थात् बिजुली की लपट झपटों से (प्रति,क्षोभन्ति) क्षोभित होती हैं और (यदि) जब पवन (घृतम्) मेघों के जल (प्रुष्णुवन्ति) वर्षाते हैं तब (विद्युतः) बिजुलियां (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव,स्मयन्त) मुसुकियाती सी जान पड़ती हैं वैसे तुम होओ ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य नदी के समान आर्द्रचित्त बिजुली के समान तीव्र स्वभाव वाले विद्या को पढ़ कर पढ़ाते हैं वे सूर्य के समान सत्य और असत्य को प्रकाश करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् । ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥

असूत । पृश्निः । महते । रणाय । त्वेषम् । अयासाम् । मरुताम् । अनीकम् । ते । सप्सरासः । अजनयन्त । अभ्वम् । आत् । इत् । स्वधाम् । इषिराम् । परि । अपश्यन् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(असूत) सूते (पृश्निः) आदित्य इव (महते) (रणाय) सङ्ग्रामाय (त्वेषम्) प्रदीप्तम् (अयासाम्) गन्तॄणाम् (मरुताम्) मनुष्याणाम् (अनीकम्) सैन्यम् (ते) (सप्सरासः) गन्तारः । अत्र सप्तेरौणादिकः सरप्रत्ययः । सप्तीति गतिकर्मा निघं० ३ । १४ (अजनयन्त) (अभ्वम्) अविद्यमानम् (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (स्वधाम्) अन्नम् (इषिराम्) प्राप्तव्याम् (परि) (अपश्यन्) सर्वतः पश्येयुः ॥ १ ॥

अन्वयः—एषामयासां मरुतां पृश्निरिव त्वेषमनीकं महते रणायासूत ते आदिदिषिरां स्वधामजनयन्त सप्सरासः सन्तोऽभ्वं पर्य्यपश्यन् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये विचक्षणा राजपुरुषा विजयाय प्रशस्तां सेनां स्वीकृत्याऽन्नाद्यैश्वर्यमुन्नयन्ति ते तृप्तिमाप्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—(एषाम्) इन (अयासाम्) गमनशील (मरुताम्) मनुष्यों का (पृश्निः) आदित्य के समान प्रचण्ड प्रतापवान् (त्वेषम्) प्रदीप्त (अनीकम्) गण (महते) महान् (रणाय) सङ्ग्राम के लिये (असूत) उत्पन्न होता है (आत्) इस के अनन्तर (इत्) ही (ते) वे (इषिराम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के बीच (स्वधाम्) अन्न को (अजनयन्त) उत्पन्न करते और (सप्सरासः) गमन करते हुए (अभ्वम्) अविद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष विद्यमान नहीं उस को (पर्य्यपश्यन्) सब ओर से देखते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विचक्षण राजपुरुष विजय के लिये प्रशंसित सेना को स्वीकार कर अन्नादि ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं वे तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः । एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ ७ ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयाम् । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ १० ॥ ७ ॥

पदार्थः—(एषः) (वः) युष्माकम् (स्तोमः) प्रश्नोत्तराख्य आलापः (मरुतः) विद्वांसः (इयम्) (गीः) सत्यप्रिया वाक् (मान्दार्यस्य) सर्वेभ्य आनन्दप्रदस्योत्तमस्य (मान्यस्य) ज्ञातुं योग्यस्य (कारोः) क्रियाकुशलस्य (आ) (इषा) इच्छया (यासीष्ट) प्राप्नुयात् (तन्वे) शरीरसुखाय (वयाम्) (विद्याम) प्राप्ताभवेम (इषम्) अन्नम् (वृजनम्) शत्रुनिकन्दनं बलम् (जीरदानुम्) जीवदयाम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मरुतो य एष वस्स्तोमो मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोर्येयङ्गीर्येषा तन्वे आयासीष्ट तया वयामिषं वृजनं जीरदानुं विद्याम ॥ १० ॥

भावार्थः—ये सकलविद्यास्तावका आप्तवाचो जीवदयाविशिष्टाः सन्ति ते सर्वेषां सुखजनका भवन्तीति ॥ १० ॥

अत्र वायुदृष्टान्तेन सज्जनगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

॥ इत्यष्टषष्ट्युत्तरं शततमं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) श्रेष्ठ विद्वानो जो (एषः) यह (वः) तुम्हारा (स्तोमः) प्रश्नोत्तर रूप आलाप कथन (मान्दार्यस्य) सब के लिये आनन्द देने वाले उत्तम (मान्यस्य) जानने योग्य (कारोः) क्रियाकुशल सज्जन की जो (इयम्) यह (गीः) सत्यप्रिया वाणी और जो (इषा) इच्छा के साथ (तन्वे) शरीर सुख के लिये (आ, यासीष्ट) प्राप्त हो उस से (वयाम्) हम लोग (इषम्) अन्न (वृजनम्) शत्रुओं को दुःख देने वाले बल और (जीरदानुम्) जीवों की दया को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थः—जो समस्त विद्या की स्तुति और प्रशंसा करने और आप्तवाक् अर्थात् धर्मात्मा विद्वानों की वाणियों में रहने तथा जीवों की दया से युक्त सज्जन पुरुष हैं वे सभों के सुखों को उत्पन्न कराने वाले होते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्त में पवनों के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एक सौ अरसठवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

महश्चिदित्यस्याष्टर्चस्य एकोनसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता १ । ३ भुरिक् पङ्क्तिः २ पङ्क्तिः ५ । ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ४ ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ७ । ८ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ विद्वद्गुणानाह ॥

अब एकसौ उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

म॒हश्चि॒त्त्वमि॑न्द्र य॒त ए॒तान्म॒हश्चि॑दसि॒ त्यज॑सो वरू॒ता । स नो॑ वेधो म॒रुतां॑ चिकि॒त्वान्त्सु॒म्ना व॑नुष्व॒ तव॒ हि प्रेष्ठा॑ ॥ १ ॥

म॒हः । चि॒त् । त्वम् । इ॒न्द्र॒ । य॒तः । ए॒तान् । म॒हः । चि॒त् । अ॒सि॒ । त्यज॑सः । व॒रू॒ता । सः । नः॒ । वे॒धः॒ । म॒रुता॑म् । चि॒कि॒त्वान् । सु॒म्ना । व॒नु॒ष्व॒ । तव॑ । हि । प्रेष्ठा॑ ॥ १ ॥

पदार्थः-(महः) महतः (चित्) अपि (त्वम्) (इन्द्र) दुःखविदारकातिविद्याबलसम्पन्न (यतः) यस्मात् कारणात् (एतान्) (महः) महतः (चित्) (असि) (त्यजसः) त्यागात् (वरूता) वरिता स्वीकर्त्ता । ग्रसित० इत्यादिषु निपातः (सः) (नः) अस्मभ्यम् (वेधः) प्राज्ञ (मरुताम्) विदुषां मनुष्याणाम् (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (सुम्ना) सुम्नानि सुखानि (वनुष्व) प्रयच्छ (तव) (हि) किल (प्रेष्ठा) अतिशयेन प्रियाणि ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यतस्त्वमेतान् महश्चिन्महतोऽपि त्यजसो वरूतासि ततो महश्चिदसि। हे मरुतां वेधः स चिकित्वाँस्त्वं यानि सुम्ना तव प्रेष्ठा सन्ति तानि नो वनुष्वहि ॥ १ ॥

भावार्थः—ये विरक्तानां संन्यासिनां सङ्गेन मेधाविनो जायन्ते तेषां कदाचिदप्रियं नोत्पद्यते ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःख के विदारण करने वाले अत्यन्त विद्या गुण सम्पन्न (यतः) जिस कारण (त्वम्) आप (एतान्) इन विद्वानों को (महः) अत्यन्त (चित्) भी (त्यजसः) त्याग से (वरूता) स्वीकार करने वाले (असि) हैं इस कारण (महश्चित्) बड़े भी हैं। हे (मरुताम्) विद्वान् सज्जनों के बीच (वेधः) अत्यन्त बुद्धिमान् (सः) सो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् आप जो (सुम्ना) सुख (तव) आप को (प्रेष्ठा) अत्यन्त प्रिय हैं उनको (नः) हमारे लिये (वनुष्व,हि) निश्चय से देओ ॥ १ ॥

भावार्थः—जो विरक्त संन्यासियों के सङ्ग से बुद्धिमान् होते हैं उनको कभी अनिष्टदुःख नहीं उत्पन्न होता ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अयुञ्जन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥

अयुञ्जन् । ते । इन्द्र । विश्वऽकृष्टीः । विदानासः । निःऽसिधः । मर्त्यऽत्रा । मरुताम् । पृत्सुतिः । हासमाना । स्वःऽमीळ्हस्य । प्रऽधनस्य । सातौ ॥ २ ॥

पदार्थः—(अयुज्रन्) युञ्जन्ति (ते) (इन्द्र) सुखप्रद (विश्वकृष्टीः) सर्वान् मनुष्यान् (विदानासः) विद्वांसः सन्तः (निःसिधः) अधर्मं प्रतिषेधन्तः (मर्त्यत्रा) मर्त्येषु (मरुताम्) मनुष्याणाम् (पृत्सुतिः) वीरसेना (ह्रासमाना) आनन्दमयी (स्वर्मीढस्य) सुखैः सेचकस्य (प्रधनस्य) प्रकृष्टस्य धनस्य (सातौ) सङ्ग्रामे॥२॥

अन्वयः—हे इन्द्र ये निः सिधो मर्त्यत्रा विदानासः स्वर्मीढस्य प्रधनस्य सातौ विश्वकृष्टीरयुज्रंस्ते या मरुतां ह्रासमाना पृत्सुतिस्तां प्राप्नुवन्तु ॥ २ ॥

भावार्थः—ये पूर्वं ब्रह्मचर्येण विद्यामधीत्याप्तानां सङ्गेनाखिलां शिक्षां प्राप्य धार्मिका जायन्ते ते विश्वस्य सुखप्रदा भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख के देने हारे विद्वन् जो (निष्षिधः) अधर्म का निषेध करने हारे (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (विदानासः) विद्वान् होते हुए (स्वर्मीढस्य) सुखों से सींचने हारे (प्रधनस्य) उत्तम धन के (सातौ) अच्छे प्रकार भाग में (विश्वकृष्टीः) सब मनुष्यों को (अयुज्रन्) युक्त करते हैं (ते) वे जो (मरुताम्) मनुष्यों की (ह्रासमाना) आनन्दमयी (पृत्सुतिः) वीरसेना है उस को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थः—जो पहिले ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़ कर धर्मात्मा शास्त्रज्ञ विद्वानों के सङ्ग से समस्त शिक्षा को पाकर धार्मिक होते हैं वे संसार को सुख देने वाले होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति । अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥

अभ्यक् । सा । ते । इन्द्र । ऋष्टिः । अस्मे इति । सनेमि । अभ्वम् । मरुतः । जुनन्ति । अग्निः । चित् । हि । स्म । अतसे । शुशुक्वान् । आपः । न । द्वीपम् । दधति । प्रयांसि ॥ ३ ॥

पदार्थः–(अभ्यक्) अभिं सरलां गतिमञ्चाति गच्छति (सा) (ते) तव (इन्द्र) दुष्टविदारक (ऋष्टिः) प्राप्तिः (अस्मे) अस्मभ्यम् (सनेमि) पुराणम् । सनेमीति पुराण ना० निघं० ३ । २७ (अभ्वम्) अचाक्षुषत्वेनाप्रसिद्धं कारणम् (मरुतः) मनुष्याः (जुनन्ति) प्राप्नुवन्ति (अग्निः) पावका इव (चित्) इव (हि) खलु (स्म) (अतसे) निरन्तर आकाशे (शुशुक्वान्) शोचकः (आपः) जलानि (न) इव (द्वीपम्) द्विधापांसि यस्मिंस्तम् (दधति) धरन्ति (प्रयांसि) कमनीयानि वस्तूनि ॥ ३ ॥

अन्वयः–हे इन्द्र यया मरुतः सनेम्यभ्वं जुनन्ति सा ते ऋष्टिरस्मे अभ्यगस्ति । शुशुक्वानग्निश्चित्त्वं हि स्मापो द्वीपं न सर्वेषामनादिकारणमतसेऽतः सर्वे प्रयांसि दधति ॥ ३ ॥

भावार्थः–अत्रोपमालं०–यदनादिकारणं विद्वांसो जानन्ति तदितरे जना ज्ञातुं न शक्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः–हे (इन्द्र) दुष्टों को विदारण करने वाले जिस से (मरुतः) मनुष्य (सनेमि) प्राचीन और (अभ्वम्) नेत्र से प्रत्यक्ष देखने में अप्रसिद्ध उत्तम विषय को (जुनन्ति) प्राप्त होते हैं (सा) वह (ते) आप की (ऋष्टिः) प्राप्ति (अस्मे) हमारे लिये (अभ्यक्) सीधी चाल को प्राप्त होती है अर्थात् सरलता से आप हम लोगों को प्राप्त होते हैं । और (शुशुक्वान्) शुद्ध करने वाले (अग्निः) अग्नि के समान (चित्) ही आप (हि) निश्चय के साथ

(स्म) जैसे आश्चर्यवत् (आपः) जल (द्वीपम्) दो प्रकार से जिस में जल आवें जावें उस बड़े भारी नद को प्राप्त हों (न) वैसे सब के अनादि कारण को (अतसे) निरन्तर प्राप्त होते हैं इस से सब मनुष्य (प्रयांसि) सुन्दर मनोहर चाहने योग्य वस्तुओं को (दधति) धारण करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिस अनादि कारण को विद्वान् जानते उसको और जन नहीं जान सकते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिण-येव रातिम्। स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥

त्वम् । तु । नः । इन्द्र । तम् । रयिम् । दाः । ओजिष्ठया । दक्षिणयाइव । रातिम् । स्तुतः । च । याः । ते । चकनन्त । वायोः । स्तनम् । न । मध्वः । पीपयन्त । वाजैः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (तु) एव (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्र) बहुप्रद (तम्) (रयिम्) दुग्धादि धनम् (दाः) देहि (ओजिष्ठया) अतिशयेन पराक्रमयुक्तया (दक्षिणयेव) यथा दक्षिणया तथा (रातिम्) दानम् (स्तुतः) स्तुतिं कुर्वत्यः । क्विबन्तःशब्दोऽयम् (च) (याः) (ते) त्वाम् । कर्मणि षष्ठी (चकनन्त) कामयन्ते (वायोः) पवनम् । अत्र कर्मणि षष्ठी (स्तनम्) दुग्धस्याधारम् (न) इव (मध्वः) मधुरस्य (पीपयन्त) पाययन्ति (वाजैः) अन्नादिभिः सह ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं तु न ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिं तं रयिं दाः । यं ते वायोश्च यास्तुतस्ता मध्वः स्तनं न चकनन्त वाजैः पीपयन्त च ॥ ४ ॥

भावार्थः—यथा बहुप्रदो यजमान ऋत्विजे पुष्कलं धनं दत्वैतमलंकरोति यथा वा पुत्रा मातुर्दुग्धं पीत्वा पुष्टा जायन्ते तथा सभाध्यक्षपरितोषेण भृत्या अलंधना भोजनादिदानेन च बलिष्ठा भवन्ति॥४।

पदार्थः—हे (इन्द्र) बहुत पदार्थों के देने वाले (त्वम्) आप (तु) तो (नः) हमारे लिये (ओजिष्ठया) अतीव बलवती (दक्षिणयेव) दक्षिणा के साथ दान जैसे दिया जाय वैसे (रातिम्) दान को तथा (तम्) उस (रयिम्) दुग्धादि धन को (दाः) दीजिये कि जिस से (ते) आप की और (वायोः) पवन की (च) भी (याः) जो (स्तुतः) स्तुति करने वाली हैं वे (मध्वः) मधुर उत्तम (स्तनम्) दूध के भरे हुए स्तन के (न) समान (चकनन्त) चाहती और (वाजैः) अन्नादिकों के साथ (पीपयन्त) बछरों को पिलाती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे बहुत पदार्थों को देने वाला यजमान ऋतु २ में यज्ञादि कराने वाले पुरोहित के लिये बहुत धन देकर उस को सुशोभित करता है वा जैसे पुत्र माता का दूध पी के पुष्ट हो जाते हैं वैसे सभाध्यक्ष के परितोष से भृत्यजन पूर्ण धनी और उनके दिये भोजनादिपदार्थों से बलवान् होते हैं ॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वे रायं इन्द्र तोशतंमाः प्रणेतारः कस्यं चिदृतायोः । ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मां पुरा गांतुयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥ ८ ॥

त्वे इति । रायः । इन्द्र । तोशऽतमाः । प्रऽनेतारः । कस्य । चित् । ऋतऽयोः । ते । सु । नः । मरुतः । मृळयन्तु । ये । स्म । पुरा । गातुयन्तिऽइव । देवाः ॥ ५ ॥ ८ ॥

पदार्थः-(त्वे) त्वयि सहायकारिणि सति (रायः) धनानि (इन्द्र) दातः (तोशतमाः) अतिशयेन प्रीताः सन्तः (प्रणेतारः) प्रसाधकाः (कस्य) (चित्) (ऋतायोः) आत्मन ऋतं सत्यमिच्छुः (ते) (सु) (नः) अस्मान् (मरुतः) वायुविद्यावेत्तारः (मृळयन्तु) सुखयन्तु (ये) (स्म) एव । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (पुरा) पूर्वम् (गातुयन्तीव) आत्मनो गातुं पृथिवीमिच्छन्तीव (देवाः) विद्वांसः ॥ ५ ॥

अन्वयः-हे इन्द्र ये कस्य चिदृतायोः प्रणेतारस्तोशतमा मरुतो देवास्त्वे सति रायः प्रापय्य नः सुमृळयन्तु पुरा गातुयन्तीव प्रयतन्ते ते स्म रक्षितारः स्युः ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये वायुविद्यादिवेत्तारः परोपकारविद्यादानप्रियाः पृथिवीवत् सर्वान् पुरुषार्थे धरन्ति ते सर्वदा सुखिनो भवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) देनेवाले (ये) जो (कस्य, चित्) किसी (ऋतायोः) अपने को सत्यकी चांहना करने वाले (प्रणेतारः) उत्तमसाधक (तोशतमाः) और अतीव प्रसन्नचित्त होते हुए (मरुतः) पवनविद्या को जानने वाले (देवाः) विद्वान् जन (त्वे) तुम्हारे रक्षक होते (रायः) धनों की प्राप्ति करा (नः) हमलोगों को (सु,मृळयन्तु) अच्छे प्रकार सुखी करें वा (पुरा) पूर्व (गातुयन्तीव) अपने को पृथिवी चांहते हुए प्रयत्न करते हैं (ते,स्म) वेही रक्षा करने वाले हों ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो वायुविद्या के जानने वाले परोपकार और विद्यादान देने में प्रसन्नचित्त पृथिवी के समान सब प्राणियों को पुरुषार्थ में धारण करते हैं वे सर्वदा सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रति प्रयाहीन्द्र मीढुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व । अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥

प्रति । प्र । याहि । इन्द्र । मीढुषः । नॄन् । महः । पार्थिवे । सदने । यतस्व । अध । यत् । एषाम् । पृथुऽबुध्नासः । एताः । तीर्थे । न । अर्य्यः । पौंस्यानि । तस्थुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(प्रति) (प्र) (याहि) गच्छ (इन्द्र) प्रयतमान (मीढुषः) सुखैः सेचकान् (नॄन्) नायकान् (महः) महति (पार्थिवे) पृथिव्यां विदिते (सदने) गृहे (यतस्व) यतमानो भव (अध) अनन्तरम् (यत्) ये (एषाम्) (पृथुबुध्नासः) विस्तीर्णान्तरिक्षाः (एताः) (तीर्थे) तरन्ति येन तस्मिन् (न) इव (अर्यः) वैश्यः (पौंस्यानि) बलानि (तस्थुः) तिष्ठन्ति ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं यद्ये पृथुबुध्नासो जना एताः स्त्रियश्चैषां पौंस्यानि तीर्थे समुद्रादितारिकायां नाव्यर्य्यो न तस्थुः तान् मीढुषो नॄन् प्रति प्रयाह्यध महः पार्थिवे सदने यतस्व ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये पुरुषा याः स्त्रियश्च ब्रह्मचर्य्येण बलानि वर्द्धयित्वाऽऽप्तान् सज्जनान् सेवन्ते ते ताश्च विद्वांसो विदुष्यश्च जायन्ते ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रयत्न करने वाले आप (यन्) जो (पृथुबुध्नासः) विस्तार युक्त अन्तरिक्ष वाले जन (एताः) ये स्त्री जन और (एषाम्) इन के (पौंस्यानि) बल (तीर्थे) जिस से समुद्र रूप जल समूहों को तरें उस नौका में (अर्यः) वैश्य के (न) समान (तस्थुः) स्थिर होते हैं उन (मीढुषः) सुखों से सींचने वाले (नॄन्) अग्रगामी मनुष्यों को (प्रति) (प्र, याहि) प्राप्त होओ (अध) इस के अनन्तर (महः) बड़े (पार्थिवे) पृथिवी में विदित (सदने) घर में (यतस्व) यत्न करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो पुरुष और जो स्त्री ब्रह्मचर्य से बलों को बढ़ा कर आप्त धर्म्मात्मा शास्त्र वक्ता सज्जनों की सेवा करते हैं वे पुरुष विद्वान् और वे स्त्रियां विदुषी होती हैं ॥ ६ ॥

अथ प्रकृतविषये शूरवीरत्वगुणानाह ॥
अब प्रकृत विषय में शूरवीर होने के गुणों को अ० ॥

प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः । ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥

प्रति । घोराणाम् । एतानाम् । अयासाम् । मरुताम् । शृण्वे । आऽयताम् । उपब्दिः । ये । मर्त्यम् । पृतनाऽयन्तम् । ऊमैः । ऋणऽवानम् । न । पतयन्त । सर्गैः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(प्रति) वीप्सायाम् (घोराणाम्) हन्त्रीणाम् (एतानाम्) पूर्वोक्तानाम् (अयासाम्) प्राप्तानाम् (मरुताम्) वायूनामिव

विदुषां विदुषीजनानां वा (शृण्वे) (आयताम्) आगच्छता-मागच्छन्तीनां वा (उपब्दिः) वाक् । उपब्दिरिति वाङ्ना० निघं० १ । ११ (ये) (मर्त्यम्) मनुष्यम् (पृतनायन्तम्) आत्मनः पृतनां सेनामिच्छन्तम् (ऊमैः) रक्षणादिभिः (ऋणावानम्) ऋण-युक्तम् (न) इव (पतयन्त) पतिमिवाचरन्तु । अत्राडभावः (सर्गैः) संसृष्टैः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽहं घोराणामेतानामयासामायतां मरुतां योपब्दिरस्ति तां प्रति शृण्व ये पृतनायन्तं मर्त्यमृणावानं नोमैः सर्गैः पतयन्त तान्सेवे तथा यूयमप्याचरत ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये दुष्टानां पुरुषाणां स्त्रीणां च कठोरान् शब्दान् श्रुत्वा न शोचन्ति ते शूरवीरा भवन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (घोराणाम्) मारने वाली (एतानाम्) इन पूर्वोक्त (अयासाम्) प्राप्त हुए वा (आयताम्) (मरुताम्) आते हुए पवनवत् शीघ्रकारी मनुष्य स्त्री जनों की जो (उपब्दिः) वाणी है उस को (प्रति,शृण्वे) वार २ सुनता हूं और (ये) जो (पृतनायन्तम्) अपने को सेना की इच्छा करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्य को (ऋणावानम्) ऋणयुक्त को जैसे (न) वैसे (ऊमैः) रक्षणादि (सर्गैः) संसर्गों से युक्त विषयों के साथ (पतयन्त) स्वामी के समान मानें उन का सेवन करता हूं वैसे तुम भी आचरण करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो दुष्ट पुरुषों और स्त्रियों के कठोर शब्दों को सुन कर नहीं शोच करते हैं वे शूरवीर होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः । स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ ९ ॥

त्वम् । मानेभ्यः । इन्द्र । विश्वऽजन्या । रद । मरुत्ऽभिः । शुरुधः । गोऽअग्राः । स्तवानेभिः । स्तवसे । देव । देवैः । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ८ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (मानेभ्यः) सत्कारेभ्यः (इन्द्र) सभेश (विश्वजन्या) या विश्वं जनयन्ति ताः । अत्र भव्यगेयेति कर्त्तरि जन्यशब्दः सुपां सुलुगिति जसस्स्थाने आकारादेशः (रद) विलिख। अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (मरुद्भिः) मरुद्विद्याविद्भिः (शुरुधः) ये शुरून् हिंसकान् सूर्यकिरणान् दधति धरन्ति ते (गोअग्राः) गावः सूर्यकिरणा अग्रे यासान्ताः (स्तवानेभिः) सर्वविद्यास्तावकैः (स्तवसे) स्तुतये (देव) विद्वन् (देवैः) विद्वद्भिः (विद्याम) जानीयाम (इषम्) अन्नम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवस्वरूपम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे देवेन्द्र यथा वयं मानेभ्यस्स्तवसे स्तवानेभिर्मरुद्भिर्देवैर्विश्वजन्या शुरुधो गोअग्रा अप इषं वृजनं जीरदानुं च विद्याम तथैता एतच्च त्वं रद ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्विदुषां सत्कारेण विद्या अधीत्य पदार्थविद्या विज्ञानं प्राप्तव्यम् ॥ ८ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेदितव्या ॥

इत्येकोनसप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तं नवमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (देव) विद्वान् (इन्द्र) सभापति जैसे हम लोग (मानेभ्यः) सत्कारों से (स्तवसे) स्तुति के लिये (स्तवानेभिः) समस्त विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करने वाले (मरुद्भिः) पवनों की विद्या जानने वाले (देवैः) विद्वानों से (विश्वजन्या) विश्व को उत्पन्न करने और (शुरुधः) निज हिंसक किरणों के धारण करने वाले (गो अग्राः) जिन के सूर्य किरण आगे विद्यमान उन जल और (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवस्वरूप को (विद्याम) जानें वैसे इन जल और अन्नादि को (त्वम्) आप (रद) प्रत्यक्ष जानो अर्थात् उन का नाम धामरूप सब प्रकार जानो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक लु०—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्कार से विद्याओं को अध्ययन कर पदार्थ विद्या के विज्ञान को प्राप्त होवें॥८॥

इस सूक्त में विद्वान् आदि के गुणों का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एक सौ उनहत्तर का सूक्त और नवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

ननूनमिति पञ्चर्चस्य सप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ स्वराडनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः प्रकारान्तरेण विद्वद्गुणानाह ॥

अब एक सौ सत्तर के सूक्त का आरम्भ है उस में आरम्भ से प्रकारान्तर कर के विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम्। अन्यस्य चित्तमभि संञ्चरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥

न। नूनम्। अस्ति। नो इति। श्वः। कः। तत्। वेद। यत्। अद्भुतम्। अन्यस्य। चित्तम्। अभि। सम्ऽचरेण्यम्। उत। आऽधीतम्। वि। नश्यति ॥ १ ॥

पदार्थः—(न) निषेधे (नूनम्) निश्चितम् (अस्ति) विद्यते (नो) (श्वः) आगामिदिने (कः) (तत्) (वेद) जानाति (यत्) (अद्भुतम्) आश्चर्य्यभूतमिव वर्त्तमानम् (अन्यस्य) (चित्तम्) अन्तःकरणस्य स्मरणात्मिकां वृत्तिम् (अभि) (सञ्चरेण्यम्) सम्यक् चरितुं ज्ञातुं योग्यम् (उत) अपि (आधीतम्) समन्ताद्धृतम् (वि) (नश्यति) अदृष्टं भवति ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यदन्यस्य सञ्चरेण्यं चित्तमुताधीतं नाभि विनश्यति नाद्य भूत्वा नूनमस्ति नो श्वश्च तदद्भुतं को वेद ॥ १ ॥

भावार्थः—यो जीवो भूत्वा न जायते भूत्वा न विनश्यति नित्य आश्चर्यगुणकर्मस्वभावोऽनादिश्चेतनो वर्त्तते तस्य वेत्ताऽप्याश्चर्यभूतः॥ १॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (अन्यस्य) औरों को (सञ्चरेण्यम्) अच्छे प्रकार जानने योग्य (चित्तम्) अन्तःकरण की स्मरणात्मिका वृत्ति (उत) और (आधीतम्) सब ओर से धारण किया हुआ विषय (न) न (अभि, वि, नश्यति) नहीं विनाश को प्राप्त होता न आज हो कर (नूनम्) निश्चित रहता (अस्ति) है और (नो) न (श्वः) अगले दिन निश्चित रहता है (तत्) उस (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूप के समान वर्त्तमान को (कः) कौन (वेद) जानता है ॥ १ ॥

भावार्थः—जो जीवरूप हो कर उत्पन्न नहीं होता और न उत्पन्न हो कर विनाश को प्राप्त होता है नित्य आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला अनादि चेतन है उस का जानने वाला भी आश्चर्यस्वरूप होता है ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

किं नं इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥२॥

किम् । नः । इन्द्र । जिघांससि । भ्रातरः । मरुतः । तव । तेभिः । कल्पस्व । साधुऽया । मा । नः । सम्ऽअरणे । वधीः ॥ २ ॥

पदार्थः—(किम्) (नः) अस्मान् (इन्द्र) सभेश विद्वन् (जिघांससि) हन्तुमिच्छसि (भ्रातरः) बन्धवः (मरुतः) मनुष्याः

(तव) (तेभिः) तैः सह (कल्पस्व) समर्थो भव (साधुया) साधुना कर्मणा (मा) (नः) अस्मान् (समरणे) सङ्ग्रामे । समरण इति सङ्ग्रामना० निघं० २ । १७ (वधीः) हन्याः ॥२॥

अन्वयः—हे इन्द्र ये वयं मरुतस्तव भ्रातरः स्मस्तान्नोऽस्मान् किं जिघांससि? तेभिः साधुया कल्पस्व समरणे नो मा वधीः॥ २ ॥

भावार्थः—ये बन्धून् पीडयितुमिच्छेयुस्ते सदा पीडिता जायन्ते ये रक्षितुमिच्छन्ति ते समर्था भवन्ति। ये सर्वोपकारकास्तेषां किञ्चिदप्यप्रियं न प्राप्तं भवति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभापति विद्वान् जो हम (मरुतः) मनुष्य लोग (तव) आप के (भ्रातरः) भाई हैं उन (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (जिघांससि) मारने की इच्छा करते हो ? (तेभिः) उन हम लोगों के साथ (साधुया) उत्तम काम से (कल्पस्व) समर्थ होओ और (समरणे) सङ्ग्राम में (नः) हम लोगों को (मा, वधीः) मत मारिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो कोई बन्धुओं को पीड़ा देना चाहैं वे सदा पीड़ित होते हैं और जो बन्धुओं की रक्षा किया चाहते हैं वे समर्थ होते हैं अर्थात् सब काम उन के प्रबलता से बनते हैं जो सब का उपकार करने वाले हैं उन को कुछ भी काम अप्रिय नहीं प्राप्त होता ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

किं नो॑ भ्रातरगस्त्य॒ सखा॒ सन्नति॑ मन्यसे ।
वि॒द्मा हि ते॒ यथा॒ मनो॒ऽस्मभ्य॒मिन्न दि॑त्ससि ॥ ३ ॥

किम् । नः । भ्रातः । अगस्त्य । सखा । सन् । अति ।
मन्यसे । विद्म । हि । ते । यथा । मनः । अस्मभ्यम् ।
इत् । न । दित्ससि ॥ ३ ॥

पदार्थः-(किम्) प्रश्ने (नः) अस्मान् (भ्रातः) बन्धो (अगस्त्य) अगस्तौ विज्ञाने साधो (सखा) मित्रम् (सन्) (अति) (मन्यसे) (विद्म) जानीयाम । अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (हि) किल (ते) तव (यथा) (मनः) अन्तःकरणम् (अस्मभ्यम्) (इत्) एव (न) (दित्ससि) दातुमिच्छसि ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे अगस्त्य भ्रातः विद्वन् सखा संस्त्वं नः किमति मन्यसे ? यथा ते मनोऽस्मभ्यं हि न दित्सासि तथेत्त्वा वयं विद्म॥ ३ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०-ये येषां सखायस्ते मनोकर्मवाग्भिस्तेषां प्रियमाचरेयुर्यावज्ज्ञानं स्वस्य भवेत्तावन्मित्राय समर्पयेत् ॥३॥

पदार्थः-हे (अगस्त्य) विज्ञान में उत्तमता रखने वाले (भ्रातः) भाई विद्वान् (सखा) मित्र (सन्) होते हुए आप (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (अति, मन्यसे) अतिमान करते हो ? अर्थात् हमारे मान को छोड़ कर वर्त्तते हो ? (यथा) जैसे (ते) तुम्हारा अपना (मनः) अन्तःकरण (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (हि) ही (न) न (दित्ससि) देना चाहते हो अर्थात् हमारे लिये अपने अन्तःकरण को उत्साहित क्या नहीं किया चाहते हो ? वैसे (इत्) ही तुम को हम लोग (विद्म) जानें ॥ ३ ॥

भावार्थ.-इस मन्त्र में उपमालं०-जो जिन के मित्र हों वे मन वचन और कर्म से उन की प्रसन्नता का काम करें और जितना विद्या ज्ञान अपने को हो उतना मित्र के लिये समर्पण करें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः । तत्रा-मृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥

अरम् । कृण्वन्तु । वेदिम् । सम् । अग्निम् । इन्धताम् । पुरः । तत्र । अमृतस्य । चेतनम् । यज्ञम् । ते । तनवावहै ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अरम्) अलम् (कृण्वन्तु) कुर्वन्तु (वेदिम्) वेत्ति यया तां प्रज्ञाम् (सम्) (अग्निम्) पावकमिव विज्ञानम् (इन्धताम्) दीप्यन्तु (पुरः) प्रथमम् (तत्र) वेद्याम् (अमृतस्य) अविनाशिनो जीवस्य (चेतनम्) चेतति येन तम् (यज्ञम्) यजति संगच्छति येन तम् (ते) तव (तनवावहै) विस्तृणावहै ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे सखे यथा विद्वांसो यत्र पुरो वेदिमग्निं च समिन्धतामरं कृण्वन्तु तत्राऽमृतस्य ते चेतनं यज्ञं तथाऽऽवामध्यापकोपदेशकौ तनवावहै ॥ ४ ॥

भावार्थः—यथा ऋत्विग्यजमाना वह्नौ सुगन्ध्यादि द्रव्यं हुत्वा वायुजले संशोध्य सुखेन सहितं जगत् कुर्वन्ति तथाऽध्यापकोदेशकावन्येषामन्तःकरणेषु विद्यासुशिक्षे संस्थाप्य सर्वेषां सुखं विस्तारयताम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मित्र जैसे विद्वान् जन जहां (पुरः) प्रथम (वेदिम्) जिस से प्राणी विषयों को जानता है उस प्रज्ञा और (अग्निम्) अग्नि के समान देदीप्यमान विज्ञान को (समिन्धताम्) प्रदीप्त करें वा (अरम्, कृण्वन्तु) सुशोभित करें (तत्र) वहां (अमृतस्य) विनाश रहित जीवमात्र (ते) आप

के (चेतनम्) चेतन अर्थात् जिस से अच्छे प्रकार यह जीव जानता और (यज्ञम्) विषयों को प्राप्त होता उस को वैसे हम पढ़ाने और उपदेश करने वाले (तनवावहै) विस्तारें ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे ऋतु २ में यज्ञ कराने वाले और यजमान अग्नि में सुगन्धादि द्रव्य का हवन कर उस से वायु और जल को अच्छे प्रकार शोध कर जगत् को सुख से युक्त करते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक औरों के अन्तःकरणों में विद्या और उत्तम शिक्षा संस्थापन कर सब के सुख का विस्तार करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः । इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥ १० ॥

त्वम् । ईशिषे । वसुऽपते । वसूनाम् । त्वम् । मित्राणाम् । मित्रऽपते । धेष्ठः । इन्द्र । त्वम् । मरुत्ऽभिः । सम् । वदस्व । अध । प्र । अशान । ऋतुऽथा । हवींषि ॥५॥ १०॥

पदार्थः—(त्वम्) (ईशिषे) ऐश्वर्यं करोषि (वसुपते) वसूनां धनानां पालक (वसूनाम्) कृतचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्याणां पृथिव्यादिवत् क्षमादिधर्मयुक्तानाम् (त्वम्) (मित्राणाम्) सुहृदाम् (मित्रपते) मित्राणां पालक (धेष्ठः) अतिशयेन धाता (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रद (त्वम्) (मरुद्भिः) वायुवद्वर्त्तमानैर्विद्वद्भिः सह (सम्) (वदस्व) (अध) अनन्तरम् (प्र) (अशान) भुङ्क्ष्व (ऋतुथा) ऋत्वनुकूलानि (हवींषि) अत्तुं योग्यान्यन्नानि ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे वसूनां वसुपते त्वमीशिषे । हे मित्राणां मित्रपते त्वं धेष्ठो भवसि । हे इन्द्र त्वं मरुद्भिः सह संवदस्वाध त्वमृतुथा हवींषि प्राशान ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये धनवन्तः सर्वेषां सुहृदो बहुभिः सह संस्कृतान्यन्नानि भुञ्जते विद्यावृद्धविद्वद्भिः सह संवदन्ते ते समर्था ऐश्वर्यवन्तो जायन्ते ॥ ५ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति सप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तं दशमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—(वसूनाम्) किया है चौवीश वर्ष ब्रह्मचर्य जिन्हों ने और जो पृथिव्यादिकों के समान सहनशील हैं उन (वसुपते) हे धनों के स्वामी (त्वम्) तुम (ईशिषे) ऐश्वर्यवान् हो वा ऐश्वर्य बढ़ाते हो । हे (मित्राणाम्) मित्रों में (मित्रपते) मित्रों के पालने वाले श्रेष्ठ मित्र (त्वम्) तुम (धेष्ठः) अतीव धारण करने वाले होते हो । हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देने वाले (त्वम्) तुम (मरुद्भिः) पवनों के समान वर्त्तमान विद्वानों के साथ (संवदस्व) संवाद करो । (अध) इस के अनन्तर (ऋतुथा) ऋतु २ के अनुकूल (हवींषि) खाने योग्य अन्नों को (प्र,अशान) अच्छे प्रकार खाओ ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो धनवान् सब के मित्र बहुतों के साथ संस्कार किये हुए अन्नों को खाते और विद्या से परिपूर्ण विद्वानों के साथ संवाद करते हैं वे समर्थ और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ सत्तर का सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

प्रतीत्यस्य षड्चस्यैकसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य। अगस्त्य ऋषिः। मरुतो देवताः १।५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ४। ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्विद्वत्कृत्यमाह॥

अब एक सौ इकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस में फिर विद्वानों के कृत्य का वर्णन करते हैं॥

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम्। रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान्॥ १॥

प्रति। वः। एना। नमसा। अहम्। एमि। सुऽउक्तेन। भिक्षे। सुऽमतिम्। तुराणाम्। रराणता। मरुतः। वेद्याभिः। नि। हेळः। धत्त। वि। मुचध्वम्। अश्वान्॥ १॥

पदार्थः—(प्रति) (वः) युष्मान् (एना) एनेन (नमसा) नमस्कारेणान्नेन वा (अहम्) (एमि) प्राप्नोमि (सूक्तेन) सुष्ठु कथितेन (भिक्षे) याचे (सुमतिम्) शोभनां मतिम् (तुराणाम्) शीघ्रकारिणाम् (रराणता) रममाणेन मनसा (मरुतः) विद्वांसः (वेद्याभिः) वेदितुं योग्याभिः (नि) (हेळः) अनादरम् (धत्त) (वि) (मुचध्वम्) त्यजत (अश्वान्) अत्युत्कृष्टवेगवतः॥ १॥

अन्वयः—हे मरुतोऽहमेना नमसा वः प्रत्येमि । सूक्तेन तुराणां सुमतिं भिक्षे । हे मरुतो यूयं रराणता मनसा वेद्याभिर्हेडो निधत्ताश्वान् विमुचध्वञ्च ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये शुद्धेनान्तःकरणेन नानाविज्ञानानि लभन्ते ते क्वाप्यनादरं नाप्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो (अहम्) मैं (एना) इस (नमसा) नमस्कार सत्कार वा अन्न से (वः) तुम्हारे (प्रति,एमि) प्रति आता हूं और (सूक्तेन) सुन्दर कहे हुए विषय से (तुराणाम्) शीघ्रकारी जनों की (सुमतिम्) उत्तम मति को (भिक्षे) मांगता हूं । हे विद्वानो तुम (रराणता) रमण करते हुए मन से (वेद्याभिः) दूसरे को बताने योग्य क्रियाओं से (हेडः) अनादर को (नि, धत्त) धारण करो अर्थात् सत्कार असत्कार के विषयों को विचार के हर्ष शोक न करो । और (अश्वान्) अतीवउत्तम वेगवान् अपने घोड़ों को (वि,मुचध्वम्) छोड़ो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो शुद्ध अन्तःकरण से नाना प्रकार के विज्ञानों को प्राप्त होते हैं वे कहीं अनादर नहीं पाते ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः । उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २ ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । नमस्वान् । हृदा । तष्टः । मनसा । धायि । देवाः । उप । ईम् । आ । यात । मनसा । जुषाणाः । यूयम् । हि । स्थ । नमसः । इत् । वृधासः ॥ २ ॥

पदार्थः–(एषः) (वः) युष्माकम् (स्तोमः) स्तुतिविषयः (मरुतः) विद्वांसः (नमस्वान्) सत्कारात्मकः (हृदा) हृदयस्थेन (तष्टः) (विहितः) (मनसा) अन्तःकरणेन (धायि) ध्रियेत (देवाः) कामयमानाः (उप) (ईम्) सर्वतः (आ) (यात) समन्तात्प्राप्नुत (मनसा) चित्तेन (जुषाणाः) सेवमानाः (यूयम्) (हि) किल (स्थ) भवथ । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (नमसः) अन्नाद्यैश्वर्यस्य (इत्) एव (वृधासः) वर्द्धमाना वर्द्धयितारो वा ॥ २ ॥

अन्वयः–हे देवा मरुतो येनैष वो नमस्वान् हृदा तष्टः स्तोमो मनसा धायि तं हि मनसा जुषाणाः सन्तो यूयमुपा यात नमस इदीं वृधासः स्थ ॥ २ ॥

भावार्थः–ये धार्मिकाणां विदुषां शीलं स्वीकुर्वन्ति ते प्रशंसिता भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) कामना करते हुए (मरुतः) विद्वानो जिस से (एषः) यह (वः) तुम्हारा (नमस्वान्) सत्कारात्मक (हृदा) हृदयस्थ विचार से (तष्टः) विधान किया (स्तोमः) सत्कारात्मक स्तुति विषय (मनसा) मन से (धायि) धारण किया जाय (हि) उसी को (मनसा) मन से (जुषाणाः) सेवते हुए (यूयम्) तुम लोग (उप, आ, यात) समीप आओ और (नमसः) अन्नादि ऐश्वर्य की (इत्) ही (ईम्) सब ओर से (वृधासः) वृद्धि को प्राप्त वा उस को बढ़ाने वाले (स्थ) होओ ॥ २ ॥

भावार्थः–जो धार्मिक विद्वानों के शील को स्वीकार करते हैं वे प्रशंसित होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः। ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥

स्तुतासः । नः । मरुतः । मृळयन्तु । उत । स्तुतः । मघऽवा । शम्ऽभविष्ठः । ऊर्ध्वा । नः । सन्तु । कोम्या । वनानि । अहानि । विश्वा । मरुतः । जिगीषा ॥ ३ ॥

पदार्थः-(स्तुतासः) प्रशंसिताः (नः) अस्मान् (मरुतः) बलिष्ठा विद्वांसः (मृळयन्तु) सुखयन्तु (उत) अपि (स्तुतः) प्रशंसां प्राप्तः (मघवा) पूजितुं योग्यः (शम्भविष्ठः) सुखस्य भावयितृतमः (ऊर्ध्वा) उत्कृष्टानि (नः) अस्माकम् (सन्तु) (कोम्या) प्रशंसनीयानि (वनानि) भजनीयानि (अहानि) दिनानि (विश्वा) सर्वाणि (मरुतः) शूरवीराः (जिगीषा) जेतुमिष्टानि ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे मरुतोऽस्माभिः स्तुतासो भवन्तो नोऽस्मान् मृळयन्तु उतापि स्तुतस्सन्मघवा शम्भविष्ठोऽस्तु । हे मरुतो यथा नो विश्वा कोम्या जिगीषा वनान्यहान्यूर्ध्वा सन्ति तथा युष्माकमपि सन्तु ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्येषु यादृशा गुणकर्मस्वभावास्स्युः तेषां तादृश्येव प्रशंसा कार्या त एव प्रशंसिता भवेयुर्येऽन्येषां सुखोन्नतये प्रयतेरन् त एव सेवनीयाः स्युर्य इह पापाचरणं विहाय धार्मिका भवेयुस्ते प्रतिदिनं विद्यासुशिक्षावृद्धय उद्योगिनः स्युः ॥३॥

पदार्थः—हे (मरुतः) बलवान् विद्वानो हम लोगों से (स्तुतासः) स्तुति किये हुए आप (नः) हम को (मृळयन्तु) सुखी करो (उत) और (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त होता हुआ (मघवा) सत्कार करने योग्य पुरुष (शम्भविष्ठः) अतीव सुख की भावना करने वाला हो । हे (मरुतः) शूरवीर जनो जैसे (नः) हमारे (विश्वा) समस्त (कोम्या) प्रशंसनीय (जिगीषा) जीतने और (वनानि) सेवने योग्य (अहानि) दिन (ऊर्ध्वा) उत्कृष्ट हैं वैसे तुम्हारे (सन्तु) हों ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जिन में जैसे गुण कर्म स्वभाव हों इन की वैसी ही प्रशंसा करें और प्रशंसा योग्य वे ही हों जो औरों की सुखोन्नति के लिये प्रयत्न करें और वे ही सेवने योग्य हों जो पापाचरण को छोड़ धार्मिक हों वे प्रतिदिन विद्या और उत्तम शिक्षा की वृद्धि के अर्थ उद्योगी हों ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः । युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥

अस्मात् । अहम् । तविषात् । ईषमाणः । इन्द्रात् । भिया । मरुतः । रेजमानः । युष्मभ्यम् । हव्या । निऽशितानि । आसन् । तानि । आरे । चकृम । मृळत । नः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अस्मात्) (अहम्) (तविषात्) बलिष्ठात् (ईषमाणः) ऐश्वर्य्यं कुर्वन् । अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (इन्द्रात्) परमैश्वर्यात् सभासेनेशात् (भिया) भयेन (मरुतः) प्राण इव प्रियाः सभासदः (रेजमानः) कम्पमानः (युष्मभ्यम्) (हव्या) आदातुमर्हाणि (निशितानि) तीव्राणि शस्त्रास्त्राणि (आसन्) सन्ति (तानि) (आरे) समीपे (चकृम) कुर्याम (मृळत) सुखयत । अत्रोभयत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (नः) अस्मान् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मरुतोऽस्मात्तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया रेजमानोऽहमिदं निवेदयामि । यानि युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासंस्तानि वयमारे चकृम तैर्नोऽस्मान् यूयं यथा मृळत तथा वयमपि युष्मान् सुखयेम ॥ ४ ॥

भावार्थः—यदा कस्माच्चिद्राजपुरुषादन्यायेन पीड्यमानः प्रजाजनः सभायां स्वदुःखं निवेदयेत्तदा तस्य हृच्छल्यमुत्पाटयेत् । येन राजपुरुषा न्याये वर्त्तेरन् । प्रजाजनाश्च प्रीताः स्युः । यावन्तः स्त्रीपुरुषा भवेयुस्तावन्तः सर्वे शस्त्राभ्यासं कुर्युः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) प्राण के समान सभासदो (अस्मात्) इस (तविषात्) अत्यन्त बलवान् से (ईषमाणः) ऐश्वर्य करता और (इन्द्रात्) परमैश्वर्यवान् सभा सेनापति से (भिया) भय के साथ (रेजमानः) कम्पता हुआ (अहम्) मैं यह निवेदन करता हूं कि जो (युष्मभ्यम्) तुम्हारे लिये (हव्या) ग्रहण करने योग्य (निशितानि) शस्त्र अस्त्र तीव्र (आसन्) हैं (तानि) उन को हम लोग (आरे) समीप (चकृम) करें और उन से (नः) हम लोगों को तुम जैसे (मृळत) सुखी करो वैसे हम भी तुम लोगों को सुखी करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—जब किसी राजपुरुष से अन्याय पूर्वक पीड़ा को प्राप्त होता हुआ प्रजा जन सभा के बीच अपने दुःख का निवेदन करे तब उस के मन के कांटों को उपाड़ देवें अर्थात् उस के मन की शुद्ध भावना करा देवें जिस से राजपुरुष न्याय में वर्त्तें और प्रजा जन भी प्रसन्न हों जितने स्त्री पुरुष हों वे सब शस्त्र का अभ्यास करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् । स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥

येन । मानासः । चितयन्ते । उस्राः । विऽउष्टिषु । शवसा । शश्वतीनाम् । सः । नः । मरुत्ऽभिः । वृषभ । श्रवः । धाः । उग्रः । उग्रेभिः । स्थविरः । सहःऽदाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(येन) (मानासः) विचारवन्तः (चितयन्ते) संज्ञापयन्ति (उस्राः) मूलराज्ये परंपरया निवसन्तः (व्युष्टिषु) विविधासु वसतिषु (शवसा) बलेन (शश्वतीनाम्) सनातनीनाम् (सः) (नः) अस्माकम् (मरुद्भिः) विद्वद्भिः सह (वृषभ) सुखानां वर्षक (श्रवः) अन्नादिकम् (धाः) दध्याः । अत्राडभावः (उग्रः) तीव्रस्वभावः (उग्रेभिः) तेजस्विभिः (स्थविरः) कृतज्ञो वृद्धः (सहोदाः) बलप्रदः ॥ ५ ॥

अन्वयः—येन शवसा वर्त्तमाना शश्वतीनां व्युष्टिषूस्रा मानासो विद्वांसः प्रजाश्चितयन्ते । हे वृषभसभेशोग्रेभिर्मरुद्भिस्सहोग्रः स्थविरः सहोदाः संस्त्वं श्रवो धाः स नोऽस्माकं राजा भव ॥ ५ ॥

भावार्थः—यत्र सभायां मौलाः शास्त्रविदो धार्मिका सभासदः सत्यं न्यायं कुर्युर्विद्यावयोवृद्धः सभेशश्च स्यात्तत्राऽन्यायस्य प्रवेशो न भवति ॥ ५ ॥

पदार्थः—(येन) जिस (शवसा) बल से वर्त्तमान (शश्वतीनाम्) सनातन (व्युष्टिषु) नाना प्रकार की बस्तियों में (उस्राः) मूल राज्य में परम्परा से निवास करते हुए (मानासः) विचारवान् विद्वान् जन प्रजाजनों को (चितयन्ते) चैतन्य करते हैं । हे (वृषभ) सुखों की वर्षा करने वाले सभापति (उग्रेभिः) तेजस्वी (मरुद्भिः) विद्वानों के साथ (उग्रः) तीव्रस्वभाव (स्थविरः) कृतज्ञ वृद्ध (सहोदाः) बल के देने वाले होते हुए आप (श्रवः) अन्न आदि पदार्थ को (धाः) धारण कीजिये और (सः) सो आप (नः) हमारे राजा हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—जहां सभा में मूल जड़ के अर्थात् निष्कलङ्क कुल परम्परा से उत्पन्न हुए और शास्त्रवेत्ता धार्मिक सभासद् सत्य न्याय करें और विद्या तथा अवस्था से वृद्ध सभापति भी हो वहां अन्याय का प्रवेश नहीं होता है ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वं पा॑हीन्द्र॒ सही॑यसो॒ नॄन्भवा॑ म॒रुद्भि॒रव॑यात-हे॑ळाः । सु॒प्र॒के॒तेभि॑ः सास॒हिर्दधा॑नो वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ ६ ॥ ११ ॥

त्वम् । पा॒हि॒ । इ॒न्द्र॒ । सही॑यसः । नॄन् । भव॑ । म॒रुत्ऽभि॑ः । अव॑यातऽहेळाः । सु॒ऽप्र॒के॒तेभि॑ः । सा॒स॒हिः । दधा॑नः । वि॒द्याम॑ । इ॒षम् । वृ॒जन॑म् । जी॒रऽदा॑नुम् ॥ ६ ॥ ११ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (पाहि) (इन्द्र) सभेश (सहीयसः) अतिशयेन बलयुक्तान् सोढॄन् (नॄन्) मनुष्यान् (भव) अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (मरुद्भिः) प्राण इव रक्षकैर्विद्वद्भिः (अवयातहेळाः) अवयातं दूरीभूतं हेळो यस्मात् सः (सुप्रकेतेभिः) शोभनः प्रकृष्टः केतो विज्ञानं येषान्ते (सासहिः) अतिशयेन सोढा (दधानः) धरन् (विद्याम) जानीयाम (इषम्) विद्यायोगजं बोधम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवात्मानम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं सुप्रकेतेभिर्मरुद्भिः सह सहीयसो नॄन् पाहि । अवयातहेळा भव यथेषं वृजनं जीरदानुं दधानः सन् सासहिर्भवसि तथा भूत्वैतद्द्वयं विद्याम ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या क्रोधादिदोषरहिता विद्याविज्ञानधर्मयुक्ताः क्षमावन्तः सज्जनैस्सह अदण्ड्यान् रक्षन्ति दण्ड्यान् दण्डयन्ति च ते राजकर्मचारिणो भवितुमर्हन्ति ॥ ६ ॥

अत्र विद्वत्कृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति एकसप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभापति (त्वम्) आप (सुप्रकेतेभिः) सुन्दर उत्तम ज्ञानवान् (मरुद्भिः) प्राण के समान रक्षा करने वाले विद्वानों के साथ (सहीयसः) अतीव बलयुक्त सहने वाले (नॄन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कीजिये और (अवयातहेळाः)दूर हुआ अनादर अपकीर्तिभाव जिस से ऐसे (भव) हूजिये जैसे (इषम्) विद्या योग से उत्पन्न हुए बोध (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवात्मा को (दधानः) धारण करते हुए (सासहिः) अतीवसहनशील होते हो वैसे हुए इस को हम लोग (विद्याम) जानें ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य क्रोधादि दोषरहित विद्या विज्ञान धर्मयुक्त क्षमावान् जन सज्जनों के साथ जो दण्ड देने योग्य नहीं हैं उन की रक्षा करते और दण्ड देने योग्यों को दण्ड देते हैं वे राजकर्मचारी होने को योग्य हैं ॥६॥

इस सूक्त में विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

॥ यह एकसौ इकहत्तर का सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

चित्र इत्यस्य त्र्यृचस्यागस्त्य ऋषिः । मरुतो देवताः । १ विराड् गायत्री २ । ३ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ वायुदृष्टान्तेन विद्वद्गुणानाह ॥

अब तीन ऋचा वाले एकसौ बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में पवन के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

चित्रो वोऽस्तु याम॑श्चित्र ऊती सु॑दानवः । मरु॑तो अहि॑भानवः ॥ १ ॥

चित्रः । वः । अस्तु । यामः । चित्रः । ऊती । सुऽदानवः । मरुतः । अहिऽभानवः ॥ १ ॥

पदार्थः—(चित्रः) विचित्रः (वः) युष्माकम् (अस्तु) भवतु (यामः) गमनम् (चित्रः) अद्भुतः (ऊती) रक्षणादिना (सुदानवः) सुष्ठु दातारः (मरुतः) प्राणवद्वर्त्तमानाः (अहिभानवः) अहेर्मेघस्य प्रकाशकाः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे ऊती सह वर्त्तमाना अहिभानवः सुदानवो मरुतो यथा वायूनां चित्रो यामश्चित्रः स्वभावोऽस्ति तथा वोऽस्तु ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा जीवनप्रदानवर्षाकारणादीनि वायूनामद्भुतानि कर्माणि सन्ति तथा भवतामपि सन्तु॥ १॥

पदार्थः—हे (ऊती) रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान (अहिभानवः) मेघ का प्रकाश करने वाले (सुदानवः) सुन्दर दानशील और (मरुतः) प्राण के समान वर्त्तमान जनो जैसे पवनों का (चित्रः) अद्भुत (यामः) गमन करना वा (चित्रः) चित्र विचित्र स्वभाव है वैसे (वः) तुम्हारा (अस्तु) हो ॥ १॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे जीवन का अच्छे प्रकार देना वर्षा करना आदि पवनों के अद्भुत कर्म्म हैं वैसे तुम्हारे भी हों ॥ १॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥

आरे । सा । वः । सुऽदानवः । मरुतः । ऋञ्जती । शरुः ।
आरे । अश्मा । यम् । अस्यथ ॥ २ ॥

पदार्थः—(आरे) दूरे (सा) (वः) युष्माकम् (सुदानवः) प्रशस्तदानकर्त्तारः (मरुतः) वायुवद्बलिष्ठाः (ऋञ्जती) ऋञ्जमाना पाचयित्री (शरुः) दुष्टानां हिंसिका ऋष्टिः (आरे) समीपे (अश्मा) मेघइव (यम्) शस्त्रविशेषम् (अस्यथ) प्रक्षिपत ॥२॥

अन्वयः—हे सुदानवो मरुतो वो युष्माकं या ऋञ्जती शरुरस्ति साऽस्मत्त आरे अस्तु । यं शस्त्रविशेषमश्मा यूयमस्यथ सोऽस्मत्त आरे अस्तु ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या मेघवत् सुखप्रदा दुष्टानां त्यक्तारः श्रेष्ठानां समीपे दुष्टेभ्यो दूरे वसन्ति ते सङ्गन्तव्या भवन्ति॥२॥

पदार्थः—हे (सुदानवः) प्रशंसित दान करने वाले (मरुतः) वायुवत् बलवान् विद्वानो (वः) तुम्हारी जो (ऋञ्जती) पचाती जलाती (शरुः) दुष्टों को विनाशती हुई द्विधारा तलवार है (सा) वह हम से (आरे) दूर रहे और (यम्) जिस विशेष शस्त्र को (अश्मा) मेघ के समान तुम (अस्यथ) छोड़ते हो वह हमारे (आरे) समीप रहे ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य मेघ के समान सुख देने वाले दुष्टों को छोड़ने वाले श्रेष्ठों के समीप और दुष्टों से दूर वसते हैं वे संग करने योग्य हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान्नः कर्त्त जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

तृणऽस्कन्दस्य । नु । विशः । परि । वृङ्क्त । सुदानवः ।
ऊर्ध्वान् । नः । कर्त्त । जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(तृणस्कन्दस्य) यस्तृणानि स्कन्दति गच्छति गमयति वा तस्य (नु) शीघ्रम् (विशः) प्रजाः (परि) सर्वतः

(वृङ्क्त) त्यजत (सुदानवः) उत्तमदानाः (ऊर्ध्वान्) उत्कृष्टान् (नः) अस्मान् (कर्त्त) कुरुत (जीवसे) जीवितुम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे सुदानवो यूयं स्तृणस्कन्दस्य विशो नु परि वृङ्क्त जीवसे नो ऊर्ध्वान् कर्त्त ॥ ३ ॥

भावार्थः—यथा वायुः सर्वाः प्रजा रक्षति तथा सभेशो वर्त्तेत । यथा प्रजापीडा नश्येत् मनुष्या उत्कृष्टा दीर्घजीविनो जायेरन् तथा सर्वैरनुष्ठेयम् ॥ ३ ॥

अत्र वायुवद्विद्वद्गुणप्रशंसनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति द्विसप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तं द्वादशो वर्गश्च समाप्तः ॥ * ॥

पदार्थः—हे (सुदानवः) उत्तम दान देने वाले तुम (तृणस्कन्दस्य) जो तृणों को प्राप्त अर्थात् तृणमात्र का लोभ करता वा दूसरों को उस लोभ पर पहुंचाता उस की (विशः) प्रजा को (नु) शीघ्र (परि,वृङ्क्त) सब ओर से छोड़ो और (जीवसे) जीवने के अर्थ (नः) हम लोगों को (ऊर्ध्वान्) उत्कृष्ट (कर्त्त) करो॥३॥

भावार्थः—जैसे वायु समस्त प्रजा की रक्षा करता वैसे सभापति वर्त्ते । जैसे प्रजा जनों की पीड़ा नष्ट हो मनुष्य उत्कृष्ट अति उत्तम बहुत जीवने वाले उत्पन्न हों वैसा कार्य्यारम्भ सब को करना चाहिये ॥ ३ ॥

इस सूक्त में पवन के तुल्य विद्वानों के गुणों की प्रशंसा होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ * ॥ यह एकसौ बहत्तर का सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥ * ॥

गायदित्यस्य त्रयोदशर्चस्य त्रिसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य
सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ५ ।
११ पङ्क्तिः । ६ । ९ । १० । १२ भुरिक्
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ८ ।
विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ७ । १३
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः
स्वरः । ४ बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

पुनर्विद्वद्गुणानाह ॥

अब तेरह ऋचा वाले एक सौ तेहत्तर के सूक्त का आरम्भ है उस में आरम्भ से फिर विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

गाय॒त्साम॑ नभ॒न्यं१॒ यथा॒ वेरर्चा॑म॒ तद्वा॑वृ॒धानं॒ स्व॑र्वत् । गावो॑ धे॒नवो॑ ब॒र्हिष्यद॑ब्धा॒ आ यत्स॒द्मानं॑ दि॒व्यं विवा॑सान् ॥ १ ॥

गाय॑त् । साम॑ । न॒भ॒न्य॑म् । यथा॑ । वेः । अर्चा॑म । तत् । व॒वृ॒धान॑म् । स्वः॑ऽवत् । गावः॑ । धे॒नवः॑ । ब॒र्हिषि॑ । अद॑ब्धाः । आ । यत् । स॒द्मान॑म् । दि॒व्यम् । विवा॑सान् ॥ १ ॥

पदार्थः-(गायत्) गायेत् (साम) (नभन्यम्) नभसि साधु । अत्र वर्णव्यत्ययेन सस्य नः (यथा) (वेः) स्वीकुर्याः (अर्चाम) सत्कुर्याम (तत्) (ववृधानम्) भृशं वर्द्धकम् । अत्र तुजादीनामित्यभ्यासदैर्घ्यम् (स्वर्वत्) स्वः सुखं सम्बद्धं

यस्मिँस्तत् । अत्र सम्बन्धे मतुप् (गावः) किरणा इव (धेनवः) दुग्धदात्र्यः (बर्हिषि) अन्तरिक्षे (अदब्धाः) हिंसितुमयोग्याः (आ) (यत्) (सद्मानम्) सीदन्ति यस्मिँस्तम् (दिव्यम्) कमनीयम् (विवासान्) सेवेरन् ॥ १ ॥

अन्वयः-यत्स्वर्वद्वृद्धधानं नभन्यं साम विद्वान् यथा त्वं वेस्तथा गायद्बर्हिषि गाव इव याश्चादब्धा धेनवो दिव्यं सद्मानमाविवासाँस्त त्ताश्च वयमर्चाम ॥ १ ॥

भावार्थः-अत्रोपमा वाचकलु०-यथा किरणा अन्तरिक्षे विस्तीर्णा भूत्वा सर्वं प्रकाशयन्ति तथाऽस्माभिर्विद्यया सर्वेषामन्तःकरणानि प्रकाशनीयानि । यथा निराधाराः पक्षिण आकाशे गच्छन्त्यागच्छन्ति तथा विदुषां भूगोलानाञ्च गतिरस्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (स्वर्वत्) सुख सम्बन्धी वा सुखोत्पादक (वृद्धधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त (नभन्यम्) आकाश के बीच में साधु अर्थात् गगन-मण्डल में व्याप्त (साम) साम गान को विद्वान् आप (यथा) जैसे (वेः) स्वीकार करें वैसे (गायत्) गावे और (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में जो (गावः) किरणें उन के समान जो (अदब्धाः) न हिंसा करने योग्य (धेनवः) दूध देने वाली गौयें (दिव्यम्) मनोहर (सद्मानम्) जिस में स्थित होते हैं उस घर को (आ, विवासान्) अच्छे प्रकार सेवन करें (तत्) उस सामगान और उन गौओं को हम लोग (अर्चाम) सराहें उन का सत्कार करें ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे किरणें अन्तरिक्ष में विथुर कर सब का प्रकाश करती हैं वैसे हम लोगों को विद्या से सब के अन्तःकरण प्रकाशित करने चाहियें जैसे निराधार पक्षी आकाश में जाते आते हैं वैसे विद्वानों और लोकलोकान्तरों की चाल है ॥ १ ॥

अथ प्रकृतविषये स्त्रीपुरुषयोर्गृहकृत्यदृष्टान्तेनान्यानुपदिशति ॥

अब चलते हुए प्रकरण में स्त्री पुरुष के घर के काम के दृष्टान्त से औरों को उपदेश करते हैं ॥

अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात्। प्र मन्दयुर्मनां गूर्त्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

अर्चत् । वृषा । वृषऽभिः । स्वऽइंदुहव्यैः । मृगः । न । अश्नः । अति । यत् । जुगुर्यात् । प्र । मन्दयुः । मनाम् । गूर्त्त । होता । भरते । मर्य्यः । मिथुना । यजत्रः ॥ २ ॥

पदार्थः—(अर्चत्) अर्चेत् (वृषा) सत्योपदेशशब्दवर्षकः (वृषभिः) उपदेशकैः सह (स्वेदुहव्यैः) स्वेन प्रकाशितदानाऽऽदानैः (मृगः) (न) इव (अश्नः) व्यापकः (अति) (यत्) (जुगुर्यात) उद्यच्छेत् (प्र) (मन्दयुः) आत्मनो मन्दं प्रशंसनमिच्छुः (मनाम्) मननशीलानाम् (गूर्त्त) उद्यच्छत (होता) दाता (भरते) धरते (मर्यः) मरणधर्मा मनुष्यः (मिथुना) मिथुनानि स्त्रीपुरुषद्वन्द्वानि (यजत्रः) सङ्गन्ता ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वृषा अश्नो मन्दयुर्होता यजत्रो मर्यो स्वेदुहव्यैर्वृषभिस्सह यन्मृगो नाऽति जुगुर्याद्भरते मनां सङ्गमर्चेत् यथा वा मिथुना सङ्गतं व्यवहारं कुर्युस्तथा यूयं प्रगूर्त्त ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा स्वयंवृताः स्त्रीपुरुषाः परस्परमुद्योगं कृत्वा मृगवद्वेगेन गृहकृत्यानि संसाध्य विदुषां सङ्गेन

सत्यं स्वीकृत्याऽसत्यं विहाय परमेश्वरं विदुषश्च सत्कुर्वन्ति तथा सर्वे मनुष्याः सङ्गन्तारः स्युः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वृषा) सत्योपदेशरूपी शब्दों की वर्षा करने वाला (अश्नः) शुभ गुणों में व्याप्त (मन्दयुः) अपनी प्रशंसा चाहता हुआ (होता) दानशील (यजत्रः) सङ्ग करने वाला (मर्यः) मरणधर्मा मनुष्य (स्वेदुहव्यैः) आप ही प्रकाशित किये देने लेने के व्यवहारों और (वृषभिः) उपदेश करने वालों के साथ (यत्) जो (मृगः) हरिण के (न) समान (अति, जुगुर्यात्) अतीव उद्यम करे अनियत्न करे और (भरते) धारण करता (मनाम्) विचारशीलों का सङ्ग (अर्चत्) सराहे प्रशंसित कर वा जैसे (मिथुना) स्त्री पुरुष दो२ मिल के सङ्ग धर्म को करें वैसे तुम (प्र, गूर्त्त) उत्तम उद्यम करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे स्वयंवर किये हुए स्त्री पुरुष परस्पर उद्योग कर हरिण के समान वेग से घर के कामों को सिद्ध कर विद्वानों के सङ्ग से सत्य का स्वीकार कर असत्य को छोड़ कर परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार करते हैं वैसे समस्त मनुष्य सङ्ग करने वाले हों ॥२॥

पुनः प्रकारान्तरेणोपदेशविषयमाह ॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश वि० ॥

नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः । क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥

नक्षत् । होता । परि । सद्म । मिता । यन् । भरत् । गर्भम् । आ । शरदः । पृथिव्याः । क्रन्दत् । अश्वः । नयमानः । रुवत् । गौः । अन्तः । दूतः । न । रोदसी इति । चरत् । वाक् ॥ ३ ॥

पदार्थः–(नक्षत्) प्राप्नुयात् (होता) ग्रहीता (परि) सर्वतः (सद्म) सद्मानि स्थानानि (मिता) मितानि (यन्) गच्छेयुः । अत्राडभावः (भरत्) भरेत् (गर्भम्) (आ) (शरदः) (पृथिव्याः) भूमेः (क्रन्दत्) ह्वयति (अश्वः) तुरङ्ग इव (नयमानः) (रुवत्) शब्दायते (गौः) वृषभ इव (अन्तः) मध्ये (दूतः) समाचारप्रापकः (न) इव (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (चरत्) प्राप्नोति (वाक्) वाणी ॥ ३ ॥

अन्वयः–हे मनुष्या यथा होताग्निर्मिता सद्म नक्षच्छरदः पृथिव्या गर्भमाभरत् नयमानोऽश्वइव क्रन्दत् । गौरिव रुवद्दूतो न वागिव वा रोदसी अन्तश्चरत्तथा भवन्तः परियन् ॥ ३ ॥

भावार्थः–अत्रोपमा वाचकलु०–यथाऽश्वो गावश्च परिमितं मार्गं गच्छन्ति तथाऽग्निर्नियतं देशं गच्छति यथा धार्मिकाः स्वकीयं वस्तु गृह्णन्ति तथा ऋतवः स्वालिङ्गान्याप्नुवन्ति यथा द्यावापृथिव्यौ सहैव वर्त्तेते तथा विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ वर्त्तेयाताम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (होता) ग्रहण करने वाला (मिता) प्रमाण युक्त (सद्म) घरों को (नक्षत्) प्राप्त होवे वा (शरदः) शरद् ऋतु सम्बन्धी (पृथिव्याः) पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ को (आ, भरत्) पूरा करता वा (नयमानः) पदार्थों को पहुंचाता हुआ (अश्वः) घोड़े के समान (क्रन्दत्) शब्द करता वा (गौः) वृषभ के समान (रुवत्) शब्द करता वा (दूतः) समाचार पहुंचाने वाले दूत के (न) समान वा (वाक्) वाणी के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी के (अन्तः) बीच (चरत्) विचरता वैसे आप लोग (परि, यन्) पर्यटन करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे घोड़ा और गौयें परिमित मार्ग को जाती हैं वैसे अग्नि नियत किये हुए देशस्थान को जाता है जैसे धार्मिक जन अपने पदार्थ लेते हैं वैसे ऋतु अपने चिन्हों को प्राप्त होते हैं वा जैसे द्यावापृथिवी एक साथ वर्त्तमान हैं वैसे विवाह किये हुए स्त्रीपुरुष वर्त्तें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ता कर्मार्षतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥४॥

ता । कर्म । अर्षऽतरा । अस्मै । प्र । च्यौत्नानि । देवऽयन्तः । भरन्ते । जुजोषत् । इन्द्रः । दस्मऽवर्चाः । नासत्याऽइव । सुग्म्यः । रथेऽस्थाः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(ता) तानि (कर्म) कर्म्म । अत्र लुङि च्लेर्लुक् छन्दस्युभयथेत्यार्द्धधातुकत्वेन ङित्वाभावाद्गुणः (अर्षतरा) प्राप्ततराणि । अत्र ऋष धातो रेफस्य लोपः (अस्मै) (प्र) प्रकर्षे (च्यौत्नानि) स्तोत्राणि (देवयन्तः) आत्मनो देवान् विदुष इच्छन्तः (भरन्ते) दधति (जुजोषत्) जुषेत (इन्द्रः) ऐश्वर्य-मिच्छुः (दस्मवर्चाः) दस्मेषु शत्रुषु वर्चस्तेजः प्रागल्भ्यं यस्य सः (नासत्येव) सूर्याचन्द्रमसाविव (सुग्म्यः) सुगेषु सुखाधिकर-णेषु साधुः (रथेष्ठाः) यो रथे तिष्ठति सः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा देवयन्तोऽस्मै याऽर्षतरा च्यौत्नानि प्र भरन्ते ता दस्मवर्चाः सुग्म्यो रथेष्ठा इन्द्रो नासत्येव ता जुजोष-त्तथा वयं कर्म ॥ ४ ॥

भावार्थः-अत्रोपमा वाचकलु०-ये सूर्याचन्द्रवच्छुभगुणकर्मस्वभावैः प्रकाशिता आप्तवदाचरन्ति ते किं किं सुखन्नाप्नुवन्ति॥४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जैसे (देवयन्तः) अपने को विद्वानों की इच्छा करने वाले सज्जन (अस्मै) जिन (अप्नतरा) अतीव प्राप्त पदार्थों और (स्तौत्रानि) इस आगे कहने योग्य ऐश्वर्य चाहने वाले सभापति आदि के लिये स्तुतियों को (प्र, भरन्ते) उत्तमता से धारण करते हैं (ता) उन को (दुस्मवर्चाः) शत्रुओं में जिस का पराक्रम वर्त्त रहा है वह (सुम्न्यः) सुख साधन पदार्थों में उत्तम (रथेष्ठाः) रथ में बैठने वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्य चाहता हुआ (नासत्येव) सूर्य और चन्द्रमा के समान (जुजोषत्) सेवे वैसे हम लोग (कर्म) करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो सूर्य चन्द्रमा के समान शुभ गुण कर्म स्वभावों से प्रकाशित आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं के तुल्य आचरण करते हैं वे क्या २ सुख नहीं पाते हैं ? ॥ ४ ॥

अथ सदसद्विवेचनपरं विद्वद्विषयमाह ॥

अब भले बुरे के विवेक करने पर जो विद्वानों का विषय उ० ॥

तमुंष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः । प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५॥ १३ ॥

तम् । ॐ इति । स्तुहि । इन्द्रम् । यः । ह । सत्वा । यः । शूरः । मघऽवा । यः । रथेऽस्थाः । प्रतीचः । चित् । योधीयान् । वृषण्ऽवान् । ववव्रुषः । चित् । तमसः । विऽहन्ता ॥ ५ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(तम्) (उ) वितर्के (स्तुहि) प्रशंस (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं सेनेशम् (यः) (ह) किल (सत्वा) बलिष्ठः (यः) (शूरः) निर्भयः (मघवा) परमपूजितधनयुक्तः (यः) (रथेष्ठाः) रथे तिष्ठति (प्रतीचः) यत् प्रत्यगञ्चति तस्य (चित्) अपि (योधीयान्) अतिशयेन योद्धा (वृषण्वान्) बलवान् (ववव्रुषः) रूपवतः । अत्र वव्रिरिति रूपनाम धातोर्लिटः क्वसुः (चित्) अपि (तमसः) अन्धकारस्य (विहन्ता) विशेषेण नाशकः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्त्वं यः सत्वा यश्चिच्छूरो मघवा यश्चिद्रथेष्ठा योधीयान् वृषण्वान् प्रतीचो ववव्रुषस्तमसो विहन्ता सूर्यइवाऽस्ति तमु हेन्द्रं स्तुहि ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैस्तस्यैव स्तुतिः कार्या यः प्रशंसितानि कर्माणि कुर्यात् । तस्यैव निन्दा कार्या यो निन्द्यानि कर्माण्याचरेत् सैव स्तुतिर्यत्सत्यभाषणं सैव निन्दा यन्मिथ्याप्रलपनम्॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् आप (यः) जो (सत्वा) बलवान् (यः, चित्) और जो (शूरः) शूर (मघवा) परम पूजित धनयुक्त (यः, चित्) और जो (रथेष्ठाः) रथ में स्थित होने वाला (योधीयान्) अत्यन्त युद्ध शील (वृषण्वान्) बलवान् (प्रतीचः) प्रति पदार्थ प्राप्त होने वाले (ववव्रुषः) रूपयुक्त (तमसः) अन्धकार का (विहन्ता) विनाश करने वाले सूर्य के समान हैं (तम्, उ, ह) उसी (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् सेनापति की (स्तुहि) प्रशंसा करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि उसी की स्तुति करें जो प्रशंसित कर्म करे, और उसी की निन्दा करें, जो निन्दित कर्मों का आचरण करे, वही स्तुति है जो सत्य कहना और वही निन्दा है जो किसी के विषय झूंठ बकना है ॥ ५ ॥

अथ प्रकृतविषये लोकलोकान्तरविषयमाह ॥

अब इस प्रकृत विद्वद्विषय में लोकलोकान्तर विज्ञान वि० ॥

प्र यदि॒त्था म॑हि॒ना नृभ्यो॒ अस्त्यरं॒ रोद॑सी क॒क्ष्ये॒३ नास्मै॑ । सं वि॑व्य॒ इन्द्रो॑ वृ॒जनं॒ न भूमा॒ भर्ति॑ स्व॒धावाँ॑ ओप॒शमि॑व॒ द्याम् ॥ ६ ॥

प्र । यत् । इ॒त्था । म॒हि॒ना । नृऽभ्यः॑ । अस्ति॑ । अर॑म् । रोद॑सी॒ इति॑ । क॒क्ष्ये॒३ इति॑ । न । अ॒स्मै॒ । सम् । वि॒व्ये॒ । इन्द्रः॑ । वृ॒जन॑म् । न । भूम॑ । भर्ति॑ । स्व॒धाऽवा॑न् । ओ॒प॒शम्ऽइ॑व । द्याम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(प्र) (यत्) (इत्था) अस्माद्धेतोः (महिना) महिम्ना निजमहत्त्वेन (नृभ्यः) नायकेभ्यः (अस्ति) (अरम्) अलम् (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (कक्ष्ये) कक्षासु भवे (न) निषेधे (अस्मै) (सम्) (विव्ये) संवृणोति (इन्द्रः) सूर्यः (वृजनम्) बलम् (न) इव (भूम) भूमानि वस्तूनि । अन्ये-षामपीति दीर्घः (भर्त्ति) बिभर्त्ति । अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (स्वधावान्) अन्नवान् (ओपशमिव) अत्यन्तं सम्बद्धम् (द्याम्) प्रकाशम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—यद्य इन्द्रो वृजनं न भूम संविव्ये स्वधावानोपशमिव द्यां प्रभर्त्ति अस्मै कक्ष्ये रोदसी नारं पर्यास इत्था महिना नृभ्योऽरमस्ति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमा वाचकलु०—यथा प्रकाशरहिताः पृथिव्यादयः पदार्थाः सर्वमावृण्वन्ति तथा सूर्यः स्वप्रकाशेन सर्वमाच्छादयति यथा भौमान् पदार्थान् पृथिवी धरतीत्थमेव सूर्यो भूगोलान् बिभर्त्ति॥६॥

पदार्थ.—(यन्) जो (इन्द्रः) सूर्य (वृत्रनम्) बल के (न) समान (भूम) बहुत पदार्थों को(सम्,विव्ये)अच्छे प्रकार स्वीकार करता और(स्वधावान्) अन्नादि पदार्थ वाला यह सूर्यमण्डल (ओपशमिव) अत्यन्त एक में मिले हुए पदार्थ के समान (द्याम्) प्रकाश को (प्र, भर्त्ति) धारण करता (अस्मै) इस के लिये (कक्ष्ये) अपनी २ कक्षाओं में प्रसिद्ध हुए (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक (न) नहीं (अरम्) परिपूर्ण होते वह (इत्था) इस प्रकार (महिना) अपनी महिमा से (नृभ्यः) अग्रगामी मनुष्यों के लिये परिपूर्ण (अरमस्ति) समर्थ है ॥६॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे प्रकाश रहित पृथिवी आदि पदार्थ सब का आच्छादन करते हैं वैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब का आच्छादन करता है जैसे भूमिज पदार्थों को पृथिवी धारण करती है ऐसे ही सूर्य भूगोलों को धारण करता है ॥ ६

अथ प्रकृतविषये राज्यप्राप्तिसाधनमाह ॥

अब विद्वद्विषय में राज्य प्राप्ति का साधन कि० ॥

समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै। सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥

समत्ऽसु। त्वा। शूर। सताम्। उराणम्। प्रपथिन्ऽतमम्। परिऽतंसयध्यै। सजोषसः। इन्द्रम्। मदे। क्षोणीः। सूरिम्। चित्। ये। अनुऽमदन्ति। वाजैः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(समत्सु) सङ्ग्रामेषु (त्वा) त्वाम् (शूर) दुष्ट-हिंसक (सताम्) सत्पुरुषाणाम् (उराणम्) बहुबलं कुर्वन्तम् (प्रपथिन्तमम्) अतिशयेन प्रकृष्टपथगामिनम् (परितंसयध्यै) परितः सर्वतस्तंसयितुं भूषयितुम् (सजोषसः) समानप्रीतिसेवनाः (इन्द्रम्) सेनेशम् (मदे) हर्षाय (क्षोणीः) भूमीः (सूरिम्) विद्वांसम् (चित्) इव (ये) (अनु, मदन्ति) (वाजैः) वेगादिगुणयुक्तैर्वीरैरश्वैर्वा ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे शूर ये सजोषसः समत्सु परितंसयध्यै सतामुराणं प्रपथिन्तममिन्द्रं त्वा मदे क्षोणीः सूरिं चिदिव वाजैरनुमदन्ति ताँस्त्वमप्यनुमन्दय ॥ ७ ॥

भावार्थः—त एव निर्वैरा ये स्वात्मतुल्यानन्यान् प्राणिनो जानन्ति तेषामेव राज्यं वर्द्धते ये सत्पुरुषाणामेव सङ्गं प्रतिदिनं कुर्वन्ति ॥७॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्टों की हिंसा करने वाले सेनाधीश (ये) जो (सजोषसः) समान प्रीति सेवने वाले (समत्सु) सङ्ग्रामों में (परितंसयध्यै) सब ओर से भूषित करने के लिये (सताम्) सत्पुरुषों में (उराणम्) अधिक बल करते हुए (प्रपथिन्तमम्) आवश्यकता से उत्तम पथगामी (इन्द्रम्) सेनापति (त्वा) तुम को (मदे) हर्ष आनन्द के लिये (क्षोणीः) भूमियों को (सूरिम्) विद्वान् के (चित्) समान (वाजैः) वेगादि गुणयुक्त वीर वा अश्वादिकों के साथ (अनु, मदन्ति) अनुमोद आनन्द देते हैं उन को तूं भी आनन्दित कर ॥ ७ ॥

भावार्थः—वे ही निर्वैर हैं जो अपने समान और प्राणियों को जानते हैं उन्हीं का राज्य बढ़ता है जो सत्पुरुषों का ही प्रतिदिन सङ्ग करते हैं ॥ ७ ॥

पुनर्विद्वदुपदेशेन राजविषयमाह ॥
फिर विद्वानों के उपदेश से राजवि० ॥

एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः । विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरीँश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥ ८ ॥

एव । हि । ते । शम् । सवना । समुद्रे । आपः । यत् । ते । आसु । मदन्ति । देवीः । विश्वा । ते । अनु । जोष्या । भूत् । गौः । सूरीन् । चित् । यदि । धिषा । वेषि । जनान् ॥ ८ ॥

पदार्थः–(एव) अवधारणे । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (हि) खलु (ते) तव (शम्) सुखम् (सवना) ऐश्वर्य्याणि (समुद्रे) अन्तरिक्षे (आपः) जलानि (यत्) यदा (ते) तव (आसु) अप्सु (मदन्ति) (देवीः) दिव्यगुणसम्पन्नाः (विश्वा) सर्वा (ते) तव (अनु) (जोष्या) सेवितुं योग्या (भूत्) भवति । अत्राडभावः (गौः) विद्यासुशिक्षिता वाणी (सूरीन्) विदुषः (चित्) (यदि) (धिषा) प्रज्ञया (वेषि) कामयसे (जनान्) उत्तमान् मनुष्यान् ॥ ८ ॥

अन्वयः–हे इन्द्र सभेश समुद्र आप इव ते हि सवनाच्छमेव कुर्वन्ति ते देवीर्यदासु मदन्ति त्वं च यदि धिषा सूरीँश्चिज्जनान् वेषि तदा ते विश्वा गौरनुज्जोष्याभूत् ॥ ८ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–यथा सूर्य आकाशे मेघमुन्नीय सर्वान् सुखयति तथा सत्पुरुषस्यैश्वर्य्यं वर्द्धमानं सत्सकलानानन्दयति यथा पुरुषा विद्वांसो भवेयुस्तथैव स्त्रियोऽपि स्युः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे सभापति (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (आपः) जलों के समान (ते) आप के (हि) ही (सवना) ऐश्वर्य (शम्) सुख (एव) ही करते हैं वा (ते) आप की (देवीः) दिव्य गुण सपन्न विदुषी (यत्) जब (आसु) इन जलों में (मदन्ति) हर्षित होती हैं और आप (यदि) जो (धिषा) उत्तम बुद्धि से (सूरीन्) विद्वान् (चित्) मात्र (जनान्) जनों को (वेषि) चाहते हो तब (ते) आप की (विश्वा) समस्त (गौः) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (अनु, जोष्या) अनुकूलता से सेवने योग्य (भूत्) होती है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य आकाश में मेघ की उन्नति कर सब को सुखी करता है वैसे सज्जनपुरुष का बढ़ता हुआ ऐश्वर्य सब को आनन्दित करता है जैसे पुरुष विद्वान् हों वैसे स्त्री भी हों ॥ ८ ॥

अथ मित्रपरत्वेन विद्वद्विषयमाह ॥

अब मित्रपरत्व से विद्वानों के वि० ॥

असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः । असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

असाम । यथा । सुऽसखायः । एन । सुऽअभिष्टयः । नराम् । न । शंसैः । असत् । यथा । नः । इन्द्रः । वन्दनेऽस्थाः । तुरः । न । कर्म । नयमानः । उक्था ॥ ९ ॥

पदार्थः—(असाम) भवेम (यथा) (सुसखायः) शोभनाः सखायो येषान्ते (एन) एति पुरुषार्थेन सुखानियस्तत्सम्बुद्धौ (स्वभिष्टयः) शोभना अभिष्टयोऽभिप्राया येषान्ते (नराम्) नायकानाम् (न) इव (शंसैः) प्रशंसाभिः (असत्) भवेत् (यथा) (नः) अस्मान् (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तो मित्रः (वन्दनेष्ठाः) स्तवने

तिष्ठति यः (तुरः) शीघ्रकारी (न) इव (कर्म) धर्म्यं कृत्यम् (नयमानः) प्राप्नुवन् प्रापयन् वा (उक्था) प्रशस्तानि विज्ञानानि ॥९॥

अन्वयः—हे एन विद्वन् यथा स्वभिष्टयः सुसखायो वयं नरां शंसैर्नोत्तमगुणैस्त्वां प्राप्ता असाम यथा वा वन्दनेष्ठाः तुर इन्द्रः कर्मेव नोऽस्माकमुक्था नयमानोऽसत् तथा वयमाचरेम ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये सर्वेषु प्राणिषु सुहृद्भावेन वर्त्तन्ते ते सर्वैरभिवन्दनीयाः स्युः । ये सर्वान् सुबोधन्नयन्ति ते अत्युत्तमविद्या भवन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (एन) पुरुषार्थ से सुखों को प्राप्त होते हुए विद्वान् (यथा) जैसे (स्वभिष्टयः) सुन्दर अभिप्राय और (सुसखायः) उत्तम मित्र जिन के वे हम लोग (नराम्) अग्रगामी प्रशंसित पुरुषों की (शंसैः) प्रशंसाओं के (न) समान उत्तम गुणों से आप को प्राप्त (असाम) होवें वा (यथा) जैसे (वन्दनेष्ठाः) स्तुति में स्थिर होता हुआ (तुरः) शीघ्रकारी (इन्द्रः) परमैश्वर्य युक्त मित्र (कर्म) धर्म युक्त कर्म के (न) समान (नः) हमारे (उक्था) प्रशंसा युक्त विज्ञानों को (नयमानः) प्राप्त करता वा कराता हुआ (असत्) हो वैसा आचरण हम लोग करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो सब प्राणियों में मित्रभाव से वर्त्तमान हैं वे सब को अभिवादन करने योग्य हों जो सब को उत्तम बोध को प्राप्त करते हैं वे अतीव उत्तम विद्या वाले होते हैं ॥ ९ ॥

अथ राजशासनपरं विद्वद्विषयमाह ॥

अब राज शिक्षा पर विद्वानों के वि० ॥

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः । मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥ १४ ॥

विऽस्पर्धसः । नराम् । न । शंसैः । अस्माकं । असत् । इन्द्रः । वज्रऽहस्तः । मित्रऽयुवः । न । पूःऽपतिम् । सुऽशिष्टौ । मध्यऽयुवः । उप । शिक्षन्ति । यज्ञैः ॥ १० ॥ १४ ॥

पदार्थः–(विष्पर्द्धसः) परस्परं विशेषतः स्पर्द्धमानाः (नराम्) धर्मस्य नेतॄणाम् (न) इव (शंसैः) प्रशंसायुक्तैः (अस्माक) अस्माकम् । अत्र छान्दसोवर्णलोपोवेतिमलोपः (असत्) भवेत् (इन्द्रः) सभेशः (वज्रहस्तः) शस्त्रास्त्रशासनपाणिः (मित्रायुवः) य आत्मनो मित्राणीच्छवः (न) इव (पूर्पतिम्) पुरां पालकम् (सुशिष्टौ) शोभने शासने (मध्यायुवः) य आत्मनो मध्यं मध्यस्थमिच्छवो विद्वांसः (उप) (शिक्षन्ति) शिक्षां प्रददति (यज्ञैः) अध्यापनाऽध्ययनोपदेशसङ्गतिकरणैः ॥ १० ॥

अन्वयः–वज्रहस्त इन्द्रोऽस्माकासदिति नरां शंसैर्न वादानुवादैः परस्परं विस्पर्द्धसो मित्रायुवो न मध्यायुवो जनाः सुशिष्टौ यज्ञैः पूर्पतिमुपशिक्षन्ति ॥ १० ॥

भावार्थः–अत्रोपमावाचकलु०–यथा सत्याचरणस्पर्द्धिनः सर्वेषां सुहृदः पक्षपातविरहाः सत्यमाचरन्तो जनाः सत्यमुपदिशन्ति तथैव सभेशो राजा प्रजासु वर्त्तेत ॥ १० ॥

पदार्थः–(वज्रहस्तः) शस्त्र और अस्त्रों की शिक्षा जिस के हाथ में है वह (इन्द्रः) सभापति (अस्माक) हमारा (असत्) हो अर्थात् हमारा रक्षक हो ऐसी (नराम्) धर्म की प्राप्ति कराने वाले पुरुषों की (शंसैः) प्रशंसायुक्त विवादों के (न) समान वादानुवादों से (विष्पर्द्धसः) परस्पर

विशेषता से स्पर्द्धा ईर्ष्या करते और (मित्रायुवः) अपने को मित्र चाहते हुए जनों के (न) समान (मध्यायुवः) मध्यस्थ चाहते हुए विद्वान् जन (सुशिष्टौ) उत्तम शिक्षा के निमित्त (यज्ञैः) पढ़ना पढ़ाना उपदेश करना और संग मेल मिलाप करना इत्यादि कर्मों से (पूर्पतिम्) पुरी नगरियों के पालने वाले सभापति राजा को (उप, शिक्षन्ति) उपशिक्षा देते हैं अर्थात् उस के समीप जा कर उसे अच्छे बुरे का भेद सिखाते हैं ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे सत्याचरण में स्पर्द्धा करने वाले सब के मित्र पक्षपात रहित सत्य का आचरण करते हुए जन सत्य का उपदेश करते हैं वैसे ही सभापति राजा प्रजा जनों में वर्त्तें ॥ १० ॥

पूर्वोक्तं विषयमाह ॥

पूर्वोक्त विषय को विशद करते हुए अ० ॥

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् । तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥

यज्ञः । हि । स्म । इन्द्रम् । कः । चित् । ऋन्धन् । जुहुराणः । चित् । मनसा । परिऽयन् । तीर्थे । न । अच्छ । ततृषाणम् । ओकः । दीर्घः । न । सिध्रम् । आ । कृणोति । अध्वा ॥ ११ ॥

पदार्थः—(यज्ञः) राजधर्माख्यः (हि) (स्म) एव (इन्द्रम्) (कः) (चित्) अपि (ऋन्धन्) वर्द्धमानः सन् (जुहुराणः) दुष्टेषु कुटिलः (चित्) इव (मनसा) (परियन्) परितः सर्वतः प्राप्नुवन् (तीर्थे) जलाशये (न) इव (अच्छ) सम्यक् ।

अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (ततृषाणम्) भृशं तृषितम् (ओकः) गृहम् (दीर्घः) वृहत् (न) इव (सिध्रम्) शीघ्रताम् (आ) (कृणोति) करोति (अध्वा) सन्मार्गरूपः ॥ ११ ॥

अन्वयः—कश्चिद्यज्ञो हि ष्मेन्द्रमृन्धन्मनसा जुहुराणश्चित्परियँस्तीर्थे न स्थानेऽच्छ ततृषाणं दीर्घ ओको नाध्वरूपः सिध्रमा कृणोति ॥ ११ ॥

भावार्थः—पूर्वमन्त्रे शीघ्रतररक्षाभिकाङ्क्षिणो विपश्चितः शासनादियज्ञैः पूर्पतिं राजानमुपशिक्षन्तीति यदुक्तम् तत्र यज्ञतः शीघ्रभावमुपदिशन्नाह । (यज्ञोहीति०) अत्रोपमावाचकलु०—यदि सुखं वर्द्धयितुमिच्छेयुस्तर्हि सर्वे धर्ममाचरन्तु यदि परोपकारं कर्त्तुमिच्छेयुस्तर्हि सत्यमुपदिशन्तु ॥ ११ ॥

पदार्थः—(कश्चित्) कोई (यज्ञः) राजधर्म (हि, ष्म) निश्चय से ही (इन्द्रम्) सभापति को (ऋन्धन्) उन्नति देता वा (मनसा) विचार के साथ (जुहुराणः) दुष्टजनों में कुटिल क्रिया अर्थात् कुटिलता से वर्त्ता (चित्) सो (परियन्) सब ओर से प्राप्त होता हुआ (तीर्थे) जलाशय के (न) समान स्थान में (अच्छ) अच्छे (ततृषाणम्) निरन्तर पियासे को (दीर्घः) बड़ा (ओकः) स्थान जैसे मिले (न) वैसे (अध्वा) सन्मार्ग रूप हुआ (सिध्रम्) शीघ्रता को (आ, कृणोति) अच्छे प्रकार करता है ॥ ११ ॥

भावार्थः—पूर्व मन्त्र में अति शीघ्रता से रक्षा चाहते हुए विद्वान् बुद्धिमान् जन शिक्षा करना रूप आदि यज्ञों से अपनी पुरी नगरी के पालने वाले राजा को समीप जाकर शिक्षा देते हैं यह जो विषय कहा था वहां यज्ञ से शीघ्रता का उपदेश करते हुए (यज्ञो हि०) इस मन्त्र का उपदेश करते हैं

इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो सुख के बढ़ाने की इच्छा करें तो सब धर्म का आचरण करें और जो परोपकार करने की इच्छा करें तो सत्य का उपदेश करें ॥ ११ ॥

अथ साधारणजनेषु बलादिविषये विद्वदुपदेशमाह ॥

अब साधारण जनों में बलादि विषय में विद्वानों का उ० ॥

मो षू ण॑ इन्द्रात्र॑ पृत्सु देवैरस्ति॒ हि ष्मा॑ ते शुष्मिन्नवयाः । महश्चि॒द्यस्य॑ मीढुषो॑ यव्या ह॒वि- ष्म॑तो म॒रुतो॒ वन्द॑ते॒ गीः ॥ १२ ॥

मो इति॑ । सु । न॒ः । इन्द्र॒ । अत्र॑ । पृ॒त्सु । दे॒वैः । अस्ति॑ । हि । स्म॒ । ते॒ । शु॒ष्मि॒न् । अ॒व॒ऽयाः । म॒हः । चि॒त् । यस्य॑ । मी॒ढुषः॑ । य॒व्या । ह॒विष्म॑तः । म॒रुतः॑ वन्द॑ते । गीः ॥ १२ ॥

पदार्थः—(मो) निषेधे (सु) (नः) अस्माकम् (इन्द्र) विद्यैश्वर्यप्रापक (अत्र) आसु (पृत्सु) सङ्ग्रामेषु (देवैः) विद्वद्भिर्वीरैस्सह (अस्ति) (हि) यतः (स्म) एव (ते) (शुष्मिन्) बलिष्ठ (अवयाः) योऽवयजति विरुद्धं कर्म न सङ्गच्छते सः (महः) महतः (चित्) अपि (यस्य) (मीढुषः) (यव्या) नदीव । यव्येति नदीना० निघं० १ । १३ (हविष्मतः) बहुविद्यादानसम्बन्धिनः (मरुतः) विदुषः (वन्दते) (गीः) सत्यगुणाढ्या वाणीः ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र भवानत्र देवैर्नोऽस्माकं पृत्सु सहायकारी हि स्वस्तिष्म । हे शुष्मिन्नवयाः संस्त्वं यस्य ते मीढुषो हविष्मतो महर्मरुतो यव्या गीर्वन्दते चिदिव वर्त्तते स त्वमस्मान् मो हिन्धि ॥ १२ ॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०-यो बलं प्राप्नुयात् स सज्जनेषु शत्रुवन्न वर्त्तेत सदाप्तस्योपदेशमङ्गीकुर्यान्नेतरस्य ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले विद्वन् आप (अत्र) यहां (देवैः) विद्वान् वीरों के साथ (नः) हम लोगों के (पृत्सु) सङ्ग्रामों में (हि) जिस कारण (सु, अस्ति) अच्छे प्रकार सहायकारी हैं (स्म) ही और हे (शुष्मिन्) अत्यन्त बलवान् (अवयाः) जो विरुद्ध कर्म को नहीं प्राप्त होता ऐसे होते हुए आप (यस्य) जिन (मीढुषः) सींचने वाले (हविष्मतः) बहुत विद्यादान सम्बन्धी (महः) बड़े (ते) आप (मरुतः) विद्वान् की (पथ्या) नदी के समान (गीः) सत्य गुणों से युक्त वाणी (वन्दते) स्तुति करती अर्थात् सब पदार्थों की प्रशंसा करती (चित्) सी वर्त्तमान है वे आप हम लोगों को (मो) मत मारिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो बल को प्राप्त हो वह सज्जनों में शत्रु के समान न वर्त्ते सदा आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा जनों के उपदेश को स्वीकार करे इतर अधर्मात्मा के उपदेश को न स्वीकार करे ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एषः स्तोमं इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः। आ नो ववृत्याः सुवितायं देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥ १५ ॥

एषः । स्तोमः । इन्द्र । तुभ्यम् । अस्मे इति । एतेन । गातुम् । हरिवः । विदः । नः । आ । नः । ववृत्याः । सुवितायं । देव । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरदानुम् ॥ १३ ॥ १५ ॥

पदार्थः—(एषः) (स्तोमः) श्लाघा (इन्द्र) प्रशस्तैश्वर्य (तुभ्यम्) (अस्मे) अस्माकम् (एतेन) न्यायेन (गातुम्) भूमिम् (हरिवः) प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (विदः) लभस्व (नः) अस्मान् (आ) (नः) अस्माकम् (वहत्याः) वर्त्तेथाः (सुविताय) ऐश्वर्याय (देव) सुखप्रद (विद्याम) प्राप्नुयाम (इषम्) इच्छासिद्धिम् (वृजनम्) सन्मार्गम् (जीरदानुम्) दीर्घञ्जीवनम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे देवेन्द्र य एषोऽस्मे स्तोमोस्ति स तुभ्यमस्तु । हे हरिवो त्वमेतेन गातुं नोऽस्माँश्च विदः नः सुविताय आ वहत्या यतो वयमिषं वृजनं जीरदानुं च विद्याम ॥ १३ ॥

भावार्थः—केनचिद्भद्रेण जनेन स्वमुखेन स्वप्रशंसा नैव कार्य्या परोक्तां स्वप्रशंसां श्रुत्वा न प्रमुदितव्यम् । यथा स्वोन्नतिरीष्येत तथा परोन्नतिः सदैष्टव्येति ॥ १३ ॥

अत्र विद्वद्विषयवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति त्रिसप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तं पञ्चदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (देव) सुख देने वाले (इन्द्र) प्रशंसायुक्त ऐश्वर्यवान् जो एषः) यह (अस्मे) हमारी (स्तोमः) स्तुति पूर्वक चाहना है वह (तुभ्यम्) ारे लिये हो। हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ों वाले आप (एतेन) इस न्याय (गातुम्) भूमि और (नः) हम लोगों को (विदः) प्राप्त हूजिये (नः) ारे (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (आ, वहृत्याः) आ वर्त्तमान हूजिये जिस म लोग (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) सन्मार्ग और (जीरदानुम् जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १३ ॥

भावार्थः—किसी भद्रजन को अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये तथा और ने कही हुई अपनी प्रशंसा सुन कर न आनन्दित होना चाहिये अर्थात् न हंसना चाहिये जैसे अपने से अपनी उन्नति चाही जावे वैसे औरों की उन्नति सदैव चाहनी चाहिये ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के विषय का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एक सौ तिहत्तर का सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

त्वं राजेत्यस्य दशर्चस्य चतुस्सप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता १ निचृत्पङ्क्तिः । २ । ३ । ६ । ८ । १० भुरिक्पङ्क्तिः । ४ स्वराट्पङ्क्तिः । ५ । ७ । ९ । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ राजकृत्यवर्णनमाह ॥

अब एकसौ चौहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसमें आरम्भ से राजकृत्य का वर्णन करते हैं ॥

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् । त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

त्वम् । राजा । इन्द्र । ये । च । देवाः । रक्ष । नॄन् । पाहि । असुर । त्वम् । अस्मान् । त्वम् । सत्ऽपतिः । मघऽवा । नः । तरुत्रः । त्वम् । सत्यः । वसवानः । सहःऽदाः ॥१॥

पदार्थः—(त्वम्)(राजा) न्यायविनयाभ्यां राजमानः (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (ये) (च) (देवाः) सद्गुणिनो धर्मात्मानो

विद्वांसः (रक्ष) । अत्र द्व्यचोतस्तिङइति दीर्घः (नॄन्) मनुष्यान् (पाहि) (असुर) मेघइव वर्त्तमानः (त्वम्) (अस्मान्) (त्वम्) (सत्पतिः) सतां वेदानां सत्पुरुषाणां वा पालकः (मघवा) परमपूजितधनयुक्तः (नः) अस्माकम् (तरुत्रः) दुःखादुल्लंघयिता (त्वम्) (सत्यः) सत्सु साधुः (वसवानः) वसोर्धनस्यानः प्राप्तिर्यतः (सहोदाः) बलप्रदः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रोऽसि त्वं सत्यो वसवानः सहोदा असि त्वं राजासि । अतो हे असुर त्वमस्मान् नॄन्पाहि ये च देवाः सन्ति तान् रक्ष ॥ १ ॥

भावार्थः—यो राजा भवितुमिच्छेत्स धार्मिकान् सत्पुरुषान् विदुषोऽमात्यान् संरक्ष्यैतैः प्रजाः पालयेत् । यो हि सत्याचारी बलवान् सत्सङ्गी भवतिस राज्यमाप्नोति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (त्वम्) आप (सत्पतिः) वेद वा सज्जनों को पालने वाले (मघवा) परमप्रशंसित धनवान् (नः) हम लोगों को (तरुत्रः) दुःखरूपी समुद्र से पार उतारने वाले हैं (त्वम्) आप (सत्यः) सज्जनों में उत्तम (वसवानः) धन प्राप्ति कराने और (सहोदाः) बल के देने वाले हैं तथा (त्वम्) आप (राजा) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा हैं इस से हे (असुर) मेघ के समान (त्वम्) आप (अस्मान्) हम (नॄन्) मनुष्यों को (पाहि) पालो (ये, च) और जो (देवाः) श्रेष्ठ गुणों वाले धर्मात्मा विद्वान् हैं उन की (रक्ष) रक्षा करो ॥ १ ॥

भावार्थः—जो राजा होना चाहे वह धार्मिक सत्पुरुष विद्वान् मन्त्री जनों को अच्छे प्रकार रख के उन से प्रजा जनों की पालना करावे जो ही सत्याचारी बलवान् सज्जनों का सङ्ग करने वाला होता है वह राज्य को प्राप्त होता है॥१॥

पुनस्तमेव विषयं सूर्यदृष्टान्तेनाह ॥

फिर उसी विषय को सूर्य के दृष्टान्त से कहते हैं ॥

दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् । ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥

दनः । विशः । इन्द्र । मृध्रऽवाचः । सप्त । यत् । पुरः । शर्म । शारदीः । दर्त् । ऋणोः । अपः । अनवद्य । अर्णाः । यूने । वृत्रम् । पुरुऽकुत्साय । रन्धीः ॥ २ ॥

पदार्थः—(दनः) अनदः। अत्राद्यन्तवर्णविपर्ययोऽडभावश्च। (विशः) प्रजाः (इन्द्र) विद्युदग्निरिव वर्त्तमान (मृध्रवाचः) मृध्राः प्रवृद्धा वाणीः (सप्त) सप्तछन्दोन्विता (यत्) (पुरः) शत्रुनगर्यः (शर्म) गृहम् (शारदीः) शरदृतुसम्बन्धिनीः (दर्त्) विदारितवान्भवति । अत्रविकरणाभावः (ऋणोः) प्राप्नुयाः (अपः) जलानि (अनवद्य) प्रशंसित (अर्णाः) नदी सम्बन्धिनीः। अर्ण इति नदी ना० निघं० १ । १३ (यूने) (वृत्रम्) मेघम् (पुरुकुत्साय) पुरवो बहवः कुत्सा वज्राः किरणा यस्मिन् (रन्धीः) संराध्नुहि । अत्राडभावः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यद्यस्त्वंसप्तशारदीः पुरः शर्म च दर्त्मृध्रवाचो विशोदनः । स हे अनवद्य यथा सूर्यः पुरुकुत्साय यूने वृत्रं प्राप्यार्णा अपो वर्षयति तथा त्वमृणो रन्धीश्च ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—राज्ञा शत्रुपुराणि वीरस्थानादि चावनाश्य ते निवारणीयाः सूर्यो जलेन यथा जगद्रक्षति तथा राज्ञा प्रजा रक्षणीयाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्युत् अग्नि के समान वर्त्तमान (यत्) जो आप (सप्त) सात (शारदीः) शरद् ऋतुसम्बन्धिनी (पुरः) शत्रुओं की नगरी और (शर्म) शत्रु घर को (दर्त्त) विदारने वाले होते हैं (मृध्रवाचः) अति बढ़ी हुई जिनकी वाणी उन (विशः) प्रजाओं को (दनः) शिक्षा देते राज्य के अनुकूल शासन देते हैं सो हे (अनवद्य) प्रशंसा को प्राप्त राजन् जैसे सूर्यमण्डल (पुरुकुत्साय) बहुत वज्ररूपी अपनी किरणें जिस में वर्त्तमान उस (यूने) तरुण प्रबलतर वा सुख दुःख से मिलते न मिलते हुए संसार के लिये (वृत्रम्) मेघ को प्राप्त करा के (अर्णाः) नदी सम्बन्धी (अपः) जलों को वर्षाना वैसे आप (ऋणोः) प्राप्त होओ (रन्धीः) अच्छे प्रकार कार्य सिद्धि करने वाले होओ ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—राजा को चाहिये कि शत्रुओं के पुर नगर शरद्आदि ऋतुओं में सुखदेने वाले स्थान आदि वस्तु नष्टकर शत्रुजन निवारणे चाहिये और सूर्य मेघ जल से जैसे जगत् की रक्षा करता है वैसे राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥

अथ राजानस्सपत्नीकाः परिवर्त्तन्तां कलाकौशलसिद्धये अग्निविद्यां विदन्त्वित्याह ॥

अब राज जन सपत्नीक परिभ्रमण करें और कला कौशल की सिद्धि के लिये अग्नि विद्या को जानें इस वि० ॥

अजा वृतं इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् । रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥

अजं । वृतः । इन्द्र । शूरऽपत्नीः । द्याम् । च । येभिः । पुरुऽहूत । नूनम् । रक्षो इति । अग्निम् । अशुषम् । तूर्वयाणम् । सिंहः । न । दमे । अपांसि । वस्तोः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अज) जानीहि । अत्र द्व्यचोतस्तिङइति दीर्घः (वृतः) स्वीकृतः सन् (इन्द्र) शत्रुदल विदारक (शूरपत्नीः) शूराणां स्त्रियः (द्याम्) प्रकाशम् (च) (येभिः) यैः (पुरुहूत) बहुभिस्सत्कृत (नूनम्) निश्चितम् (रक्षो) रक्षैव (अग्निम्) (अशुषम्) शोषरहितम् (तूर्वयाणम्) तूर्वाणि शीघ्रगमनानि यानानि यस्मात्तम् (सिंहः) (न) इव (दमे) गृहे (अपांसि) कर्माणि (वस्तोः) वासयितुम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे पुरुहूतेन्द्र वृतस्त्वं येभिस्सह शूरपत्नीर्द्यां च नूनमजजानीहि तैःसिंहो न दमेऽपांसि वस्तोः तूर्वयाणमशुषमग्निं रक्षो ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा सिंहः स्वगृहे बलात्सर्वान् निरुणद्धि तथा निजबलाद्राजा स्वगृहे लाभप्राप्तये प्रयतेत येन संयुक्तेनाग्निना यानानि तूर्णं गच्छन्ति तेन संसाधिते याने स्थित्वा स पत्नीका इतस्ततो गच्छन्त्वागच्छन्तु ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों ने सत्कार किये हुए (इन्द्र) शत्रु दल के नाशक (वृतः) राज्याधिकार में स्वीकार किये हुए राजन् आप (येभिः) जिन के साथ (शूरपत्नीः) शूरों की पत्नी और (द्याञ्च) प्रकाश को (नूनम्) निश्चित (अज) जानो उन के साथ (सिंहः) सिंह के (न) समान (दमे) घर में (अपांसि) कर्मों के (वस्तोः) रोकने को (तूर्वयाणम्) शीघ्र गमन

कराने वाले यान जिस से सिद्ध होते उस (अशुषम्) शोष रहित जिस में अर्थात् लोहा तांबा पित्तल आदि धातु टिघिला करें गीले हुआ करें उस (अग्निम्) अग्नि को (रक्षो) अवश्य रक्खो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सिंह अपने भिटे में बल से सब को रोकता ले जाता है वैसे राजा निज बल से अपने घर में लाभ प्राप्ति के लिये प्रयत्न करे जिस अच्छे प्रकार प्रयोग किये अग्नि से यान शीघ्र जाते हैं उस अग्नि से सिद्ध किये हुए यान पर स्थिर हो कर स्त्री पुरुष इधर उधर से जावें आवें ॥ ३ ॥

अथ राजधर्मे सङ्ग्रामविषयमाह ॥
अब राज धर्म में सङ्ग्राम विषय को अ० ॥

शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना । सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

शेषन् । नु । ते । इन्द्र । सस्मिन् । योनौ । प्रऽशस्तये । पवीरवस्य । मह्ना । सृजत् । अर्णांसि । अव । यत् । युधा । गाः । तिष्ठत् । हरी । इति । धृषता । मृष्ट । वाजान् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(शेषन्)शयेरन् । अत्र लेटि व्यत्ययेन परस्मैपदम् (नु) सद्यः (ते) (इन्द्र) सेनेश (सस्मिन्) अत्र । छान्दसो वर्णविपर्यासः (योनौ) स्थाने (प्रशस्तये) उत्कृष्टतायै (पवीरवस्य) वज्रध्वनेः (मह्ना) महिम्ना (सृजत्) सृजेत् (अर्णांसि) जलानि (अव) (यत्) यस्मिन् सङ्ग्रामे (युधा) युद्धेन (गाः) भूमीः (तिष्ठत्) अतितिष्ठति (हरी) यौ यानानि हरतस्तौ (धृषता) दृढेन बलेन (मृष्ट) शत्रुबलं सह (वाजान्) शत्रुवेगान् ॥४॥

अन्वयः-हे इन्द्र प्रशस्तये सस्मिन् योनौ ते पवीरवस्य मह्ना नु शेषन् सद्यः शत्रवः शयेरन्। यद्यस्मिन् सङ्ग्रामे सूर्योऽर्णांस्यवसृजादिव युधा गा हरी तिष्ठत्। हे मृष्ट धृषता वाजांश्च तिष्ठत् ॥ ४ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-ये स्वप्रकृतिस्थाः शूरवीरास्सन्ति ते स्वस्वाधिकारे न्यायेन वर्त्तित्वा शत्रून्निःशेषान् कृत्वा धर्म्यं स्वमहिमानं प्रकाशयेयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः-हे (इन्द्र) सेनापति (प्रशस्तये) तेरी उत्कर्षता के लिये (सस्मिन्) उस (योनौ) स्थान में वा सङ्ग्राम में (ते) तेरे (पवीरवस्य) वज्रकी ध्वनि के (मन्हा) महिमा से (नु) शीघ्र (शेषन्) शत्रु जन शोवें (यत्) जिस सङ्ग्राम में सूर्य जैसे (अर्णांसि) जलों को (अव, सृजत्) उत्पन्न करे अर्थात् मेध से वर्षावे वैसे (युधा) युद्ध से (गाः) भूमिओं और जो यानों को ले जाते उन घोड़ों को (तिष्ठत्) अधिष्ठित होता और हे (मृष्ट) शत्रुबल को सहने वाले (धृषता) दृढ़ बल से (वाजान्) शत्रुओं के वेगों को अधिष्ठित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जो अपने स्वभावानुकूल शूरवीर हों वे अपने २ अधिकार में न्याय से वर्त्त कर शत्रु जनों को विशेष कर धर्म के अनुकूल अपनी महिमा वा प्रकाश करावें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वह॒ कुत्स॑मिन्द्र॒ यस्मिँ॑श्चा॒कन्त्स्यू॑म॒न्यू ऋ॒ज्रा वात॒स्याश्वा॑। प्र सूर॑श्च॒क्रं वृ॑हताद॒भीके॒ऽभि स्पृधो॑ यासि॒षद्वज्र॑बाहुः ॥ ५ ॥ १६ ॥

वह॑ । कुत्स॑म् । इ॒न्द्र॒ । यस्मि॑न् । चा॒कन् । स्यू॒म॒न्यू इति॑ ।
ऋ॒ज्रा । वात॑स्य । अश्वा॑ । प्र । सूरः॑ । च॒क्रम् । वृ॒ह॒ता॒त् ।
अ॒भीके॑ । अ॒भि । स्पृधः॑ । या॒सि॒ष॒त् । वज्र॑ऽबाहुः ॥ ५ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(वह) प्रापय (कुत्सम्) वज्रम् (इन्द्र) सभेश (यस्मिन्) (चाकन्) कामयसे अत्र । कनीदीप्तिकान्तिगतिष्विति अस्माल्लङो मध्यमैकवचने बहुलंछन्दसीति शपः स्थाने श्लुः श्लाविति द्वित्वं बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपीत्यडभावः । संयोगान्तसलोपश्च (स्यूमन्यू) आत्मनः स्यूमानं शीघ्रं गमनमिच्छू (ऋज्रा) ऋजुगामिनौ (वातस्य) वायोरिव (अश्वा) अश्वौ (प्र) (सूरः) सूर्यः (चक्रम्) स्वराज्यम् (वृहतात्) वर्द्धयन्तु (अभीके) समीपे (अभि) सन्मुखे (स्पृधः) स्पर्द्धमानान् शत्रून् (यासिषत्) यातुमिच्छतु (वज्रबाहुः) वज्रः शस्त्रास्त्रम्बाह्वोर्यस्य ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं यस्मिन् वातस्य वायोरिव स्यूमन्यू ऋज्रा च चाकँस्तस्मिन् कुत्सं वह सूर इव वज्रबाहुर्भवाँश्चक्रं प्रवृहतादभीके स्पृधोऽभियासिषत् ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यस्तथा प्रतापवान् राजा शस्त्रास्त्र प्रहारैः सङ्ग्रामे शत्रून् विजित्य निजराज्यं वर्द्धयेत् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभापति आप (यस्मिन्) जिस सङ्ग्राम में (वातस्य) पवन की सी शीघ्र और सरल गति (स्यूमन्यू) चाहने और (ऋज्रा) सरल चाल चलने वाले (अश्वा) घोड़ों को (चाकन्) चाहते हैं उस में (कुत्सम्) वज्र को (वह) पहुंचाओ वज्र चलाओ अर्थात् वज्र से शत्रुओं का संहार करो

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य टोक भेज कर मंगावे (२) टोक भेजने वालों को ५०) वा इस से अधिक पर १०) रु० १००) वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जायं गे (३) डाक महसूल किसी से नलिया जावगा । (४) २०) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिष्टरी कर भेजे जायंगे (५) मूल्य नोचे लिखे पते से भेजें ॥

ऋग्वेदभाष्य अं० १—८१	३१॥८)
यजुर्वेदभाष्य अं० १—८१	३१॥८)
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	
बिना जिल्द की	५।)
जिल्द की	६)
वर्णोच्चारण शिक्षा	।)
„ (डाकव्यय)	)।
सन्धिविषय	॥)
नामिक	॥)
कारकीय	।)
सामासिक	॥)
स्त्रैणताद्धित	१।)
अव्ययार्थ	।)
[illegible]ख्यातिक	१।)
[illegible]र	।)
[illegible]रिभाषिक	।)
[illegible]	।)
[illegible]ड	।)
[illegible]कोष	।)
[illegible]निघण्टु	।)
[illegible]ध्यायी	१।)

संस्कृतवाक्यप्रबोध	।)
व्यवहारभानु	।)
भ्रमोच्छेदन	)
अनुभ्रमोच्छेदन	।)
मेलाचान्दापुर	)
आर्योद्देश्यरत्नमाला	)॥
गोकरुणानिधि	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन	
संस्कृत-भाषा	)
शि[illegible]पत्री	)
[illegible]ध्वान्त[illegible]	)
भ्रान्तिनिवारण	)
आर्याभिविनय	।)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	)
[illegible]	)
पञ्चमहायज्ञविधि	।)
सत्यार्थप्रकाश	२।)
„ (बिना कमीशन)	
सत्यार्थप्रकाश दो जिल्दों[illegible]	
„ (डाकव्यय सहित)	

[illegible]सोदमूल्य वेदभाष्य

श्रीमान् रमाशंकर जी त्रिपाठी मन्त्री आर्यसमाज	नयनीताल	८
श्रीमान् पण्डित रामचन्द्र जी मन्त्री आर्यसमाज	मेरठ	[illegible]
श्रीमान् बलीराम जी गुरु [illegible]	जयपुर	१[illegible]
		[illegible]

सूचना

सब सज्जन महाशयों से सविनय सूचना दी जाती है कि [illegible] विधि जो बत्तीस पृष्ठे फारम पर छपती थी छप कर तैयार हो गई कीमत ।) प्रति पुस्तक जो पहिले था वही अब भी रक्खा गया है जिन महाशयों को जितनी पुस्तकें लेनी हों मुझे सूचित करें ॥

आर्यसिद्धान्त

सर्वसज्जन महाशयों को विदित किया जाता है कि श्री १०८ स्वामीदयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्त पर जो आक्षेप किया करते हैं उन के उत्तर देने तथा आर्यसिद्धान्त यथार्थरूप से दर्शाने के लिये एक पत्र «आर्यसिद्धान्त» नामक प्रति पौर्णमासी को वैदिकयन्त्रालय से प्रकाशित हुआ करता है वार्षिक मूल्य १) मात्र डांकव्यय सहित रक्खा गया है जिन महाशयों को उक्त पत्र लेना स्वीकार हो वह [illegible] «आर्यसिद्धान्तपत्र, वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग» के नाम से पत्र और अग्रिम वार्षिकमूल्य भेज कर शीघ्र सूचित करें जो उन महाशयों का [illegible] श्रेणी में लिखा जावे ॥

[illegible] शर्मा

[illegible] प्रबन्धकर्ता

[illegible] प्रयाग.

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर
प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इसग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।/) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥/) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालयप्रबन्धकर्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालय मैनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (११४, ११५) अंक (९८, ९९)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४४ माघ कृष्ण पक्ष

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान दशवें वर्ष के कि जो ९० । ९१ अङ्क से प्रारंभ हो कर १०० । १०१ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के नव वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है:-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ५।/)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ६)

[ख] एक वेद के ८९ अङ्क तक २९ ॥/) और दोनों वेदों के ५९ ।/)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।/) दो अङ्क ॥/) तीन अङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्रों में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंध कर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायं गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ॥

[१०] " वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्ध कर्त्ता वैदिक यंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

(सूरः) सूर्य के समान प्रतापवान् (वज्रबाहुः) शस्त्र अस्त्रों को भुजाओं में धारण किये हुए आप (चक्रन्) अपने राज्य को (प्र,बृहताम्) बढ़ाओ और (अभीके) सङ्ग्राम में (स्पृधः) ईर्ष्या करते हुए शत्रुओं के (अभि,यासिषत्) सन्मुख जाने की इच्छा करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य प्रतापवान् है वैसा प्रतापवान् राजा अस्त्र और शस्त्रों के प्रहारों से सङ्ग्राम में शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर अपने राज्य को बढ़ावे ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

जघन्वाँइन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् । प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥

जघन्वान् । इन्द्र । मित्रेरून् । चोदऽप्रवृद्धः । हरिऽवः । अदाशून् । प्र । ये । पश्यन् । अर्यमणम् । सचा । आयोः । त्वया । शूर्ताः । वहमानाः । अपत्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(जघन्वान्) हतवान् (इन्द्र) सूर्यइव सभेश (मित्रेरून्) मित्रहिंसकान् शत्रून् । अत्र मित्रोपपदाद्रुषधातोर्बाहुलकादौणादिको डुः प्रत्ययः (चोदप्रवृद्धः) चोदेन प्रेरणेन प्रवृद्धः (हरिवः) बह्वैश्वर्ययुक्त (अदाशून्) अदातॄन् (प्र) (ये) (पश्यन्) समीक्षन्ते (अर्य्यमणम्) न्यायेशम् (सचा) संयोगेन (आयोः) प्रापकस्य (त्वया) (शूर्त्ताः) विमर्दिताः (वहमानाः) नयन्तो धूर्त्ताः (अपत्यम्) सन्तानम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे हरिव इन्द्र चोदप्रवृद्धस्त्वमदाशून् मित्रेरून् जघन्वानसि। अतो ये आयोरपत्यं वहमानास्त्वया शूर्त्ता हतास्ते सचा तत्सम्बन्धेन त्वामर्य्यमणं प्रपश्यन् ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये मित्रवदाभाषमाणाः परिच्छिन्नाश्चतुराः शत्रवः सज्जनानुद्वेजयन्ति तान् राजा समूलघातं हन्यात्। न्यायासने स्थित्वा सुसमीक्ष्याऽन्यायं निवर्त्तयेत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (हरिवः) बहुत घोड़ों वाले (इन्द्र) सूर्य के समान सभापति (चोदप्रवृद्धः) सदुपदेशों की प्रेरणा से अच्छे प्रकार बढ़े हुए आप (अदाशून्) दान न देने और (मित्रेरून्) मित्रों की हिंसा करने वाले शत्रुओं को (जघन्वान्) मारने वाले हो इस से (ये) जो (आयोः) दूसरे को सुख पहुंचाने वाले सज्जन के (अपत्यम्) सन्तान को (वहमानाः) पहुंचाने अर्थात् अन्यत्र ले जाने वाले धूर्त्तजन (त्वया) आप ने (शूर्त्ताः) छिन्न भिन्न किये वे (सचा) उस सम्बन्ध से तुम (अर्य्यमणम्) न्यायाधीश को (प्र, पश्यन्) देखते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मित्र के समान बात चीत करते हुए दुष्टप्रकृति चतुर शत्रुजन सज्जनों को उद्वेग कराने उन को राजा समूल जैसे वे नष्ट हों वैसे मारे और न्यायासन पर बैठ कर अच्छे प्रकार देख विचार अन्याय को निवृत्त करे ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

रप॑त्क॒विरि॑न्द्रा॒र्कसा॑तौ॒ क्षां दा॒सायो॑प॒बर्ह॑णीं॒ कः।
कर॑त्ति॒स्रो म॒घवा॒ दानु॑चित्रा॒ नि दु॑र्यो॒णे कुय॑वाचं॒ मृ॒धि श्रे॑त् ॥ ७ ॥

रपंत् । कविः । इन्द्र । अर्कऽसांतौ । क्षाम् । दासाय । उपऽबर्हणीम् । करिति कः । करंत् । तिस्रः । मघऽवा । दानुंऽचित्राः । नि । दुर्योणे । कुयवाचम् । मृधि । श्रेत् ॥ ७ ॥

पदार्थः–(रपत्) व्यक्तं वदेत् (कविः) सर्वशास्त्रवित् (इन्द्र) सूर्यवत् सभेश (अर्कसातौ) अन्नानां संविभागे (क्षाम्) भूमिम् (दासाय) शूद्रवर्गाय (उपबर्हणीम्) सुवर्द्धिकाम् (कः) करोति। अत्राडभावः (करत्) कुर्यात् (तिस्रः) उत्तममध्यमनिकृष्टरूपेण त्रिविधा (मघवा) उत्तमधनसम्बन्धी (दानुचित्राः) अद्भुतदानाः (नि) (दुर्योणे) समराङ्गणे (कुयवाचम्) यः कुयवान्वक्तिप्रशंसति तम् (मृधि) युद्धे (श्रेत्) आश्रयेत् ॥ ७ ॥

अन्वयः–हे इन्द्र यः कविरर्कसातौ दासायोपबर्हणीं क्षां कः स सत्यं रपद्यो मघवा तिस्रो दानुचित्राः करत्स दुर्योणे मृधि कुयवाचं निश्रेत् ॥७॥

भावार्थः–शास्त्रज्ञस्सभापतिः शूद्रवर्गाय शास्त्रशिक्षयोत्तमान्नादिवृद्धिकरीं भूमिं सम्पादयेत् । सत्यशीलदानवैचित्र्यसम्पादनायोत्तममध्यमनिकृष्टान् दानव्यवहारान् सम्पादयेत् सर्वदा सङ्ग्रामादिभूमौ शत्रून् संहृत्य राज्यं विवर्द्धयेत् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान सभापति जो (कविः) सर्वशास्त्रों का जानने वाला (अर्कसातौ) अन्नों के अच्छे प्रकार विभाग में (दासाय) शूद्र वर्ग के लिये (उपबर्हणीम्) अच्छी वृद्धि देने वाली (क्षाम्) भूमि को (कः) नियत करता वह सत्य स्पष्ट (रपत्) कहे जो (मघवा) उत्तम धन का सम्बन्ध रखने वाला (तिस्रः) उत्तम मध्यम और निकृष्ट कि (दानुचित्राः)

अद्भुत दान जिन में होता उन क्रियाओं को (करत्) नियत करे वह (दुर्योणे) समर भूमि विषयक (मृधि) युद्ध में (कुयवाचम्) कुत्सित यवों की प्रशंसा करने वाले सामान्य जन का (नि,श्रेत्) आश्रय लेवे ॥ ७ ॥

भावार्थः—शास्त्र जान ने वाले सभापति शूद्र वर्ग के लिये शास्त्र की शिक्षा के साथ उत्तमान्नादि की वृद्धि करने वाली भूमि को संपादन करावें और सत्य शील तथा दान की विचित्रता संपादन करने के लिये उत्तम मध्यम निकृष्ट दानव्यवहारों को सिद्ध करे और सब काल में सङ्ग्रामादि भूमियों में शत्रुओं का संहार कर अपने राज्य को बढ़ाता रहै ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः । भिनत्पुरो न भिदोअदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥

सना । ता । ते । इन्द्र । नव्याः । आ । अगुः । सहः । नभः । अविऽरणाय । पूर्वीः । भिनत् । पुरः । न । भिदः । अदेवीः । ननमः । वधः । अदेवस्य । पीयोः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(सना) सनानि प्रसिद्धानि शौर्याणि (ता) तानि तेजांसि (ते) तव (इन्द्र) सवितृवद्वर्त्तमान (नव्याः) नवा जनाइव (आ) (अगुः) आगच्छेयुः (सहः) सहसे लङिमध्यमैकवचनेऽडभावः (नभः) हिंसकान् (अविरणाय) युद्धनिवृत्तये (पूर्वीः) प्राचीनाः (भिनत्) अभिनत् । अत्राऽडभावः

(पुरः) शत्रूणां नगरीः (न) इव (भिदः) भिन्नाः (अदेवीः) असुरस्य दुष्टस्य नगरीः (ननमः) नमयति। अत्रान्तर्भावितो एयर्थः। नम धातोर्लिटि मध्यमेकवचने शपः श्लुः श्लाविति द्विर्वचनम् (बधः) नाशः (अदेवस्य) असुरस्य शत्रुगणस्य (पीयोः) स्थूलस्य। अत्र पीव धातोर्बाहुलकादौणादिको युक् प्रत्ययः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वमविरणाय नभः सहो भवान् पूर्वीः पुरो भिनत् न भिदोऽदेवीर्ननमस्तेनादेवस्य पीयोर्बधो भवतीत्येतानि यानि ते सना ता नव्या आगुः ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—राजानः सङ्ग्रामादिष्वीदृशानि शूरता प्रदर्शकानि कर्माण्याचरेयुर्यानि दृष्ट्वैवादृष्टपूर्वकर्माणो नवीना दुष्टाः प्रजाजना बिभ्येयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान प्रतापवान् राजन् आप (अविरणाय) युद्ध की निवृत्ति के लिये (नभः) हिंसक शत्रुजनों को (सहः) सहते हो। आप जैसे (पूर्वीः) प्राचीन (पुरः) शत्रुओं की नगरियों को (भिनत्) छिन्न भिन्न करते हुए (न) वैसे (भिदः) भिन्न अलग २ (अदेवीः) शत्रुवर्गों की दुष्ट नगरियों को (ननमः) नमाते ढहाते हो उस से (अदेवस्य, पीयोः) राक्षसपन संचारते हुए शत्रुगण का (बधः) नाश होता है यह जो (ते) आप के (सना) प्रसिद्ध शूरपने के काम हैं (ता) उन को (नव्याः) नवीन प्रजा जन (आगुः) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—राजजन सङ्ग्रामादि भूमियों में ऐसे शूरता दिखलाने वाले कामों का आचरण करें जिन को देख के ही जिन्हों ने पिछिले शूरता के काम नहीं देखे वे नवीन दुष्ट प्रजाजन भयभीत हों ॥ ८ ॥

अथ प्रकारान्तरेण राजधर्मविषयमाह ॥

अब प्रकारान्तर से राजधर्म विषय को अ० ॥

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः। प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

त्वम्। धुनिः। इन्द्र। धुनिऽमतीः। ऋणोः। अपः। सीराः। न। स्रवन्तीः। प्र। यत्। समुद्रम्। अति। शूर। पर्षि। पारय। तुर्वशम्। यदुम्। स्वस्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (धुनिः) कम्पकः (इन्द्र) सूर्य्यवद्वर्त्तमान (धुनिमतीः) कम्पयुक्ताः (ऋणोः) प्राप्नुयाः (अपः) जलानि (सीराः) नाडीः (न) इव (स्रवन्तीः) गच्छन्तीः (प्र) (यत्) यः (समुद्रम्) (अति) (शूर) शत्रुहिंसक (पर्षि) सिक्तमुदकम् (पारय) तीरे प्रापय। अत्रान्येषामपीति दीर्घः (तुर्वशम्) यस्तूर्णकारी वशंगतस्तं मनुष्यम् (यदुम्) यत्नशीलम् (स्वस्ति) सुखम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र धुनिस्त्वं विद्वदग्निर्धुनिमतीरपः स्रवन्तीः सीरा न प्रजाः प्रार्णोः हे शूर यद्यस्त्वं समुद्रमति पर्षि स यदुन्तुर्वशं स्वस्ति पारय ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा शरीरस्था विद्युन्नाडीषु रुधिरं गमयति सूर्यो जलं च जगति प्रापयति तथा प्रजासु सुखं गमयेद्दुष्टान् कम्पयेत ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान (धुनिः) शत्रुओं को कंपाने वाले (त्वम्) आप बिजुली रूप सूर्यमण्डलस्थ अग्नि जैसे (धुनिमतीः) कम्पते हुए (अपः) जलों को वा बिजुली रूप जठराग्नि जैसे (स्रवन्तीः) चलती हुई (सीराः) नाड़ियों को (न) वैसे प्रजाजनों को (प्राणीः) प्राप्त हूजिये । हे (शूर) शत्रुओं की हिंसा करने वाले (यत्) जो आप (समुद्रम्) समुद्र को (अति,-पर्षि) अतिक्रमण करके उतरि के पार पहुंचते हो सो (यदुम्) यत्नशील और (तुर्वशम्) जो शीघ्र कार्यकर्त्ता अपने वश को प्राप्त हुआ उस जन को (स्वस्ति) कल्याण जैसे हो वैसे (पारय) समुद्रादिनद के एक तट से दूसरे तट को झट पट पहुंचवाइये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे शरीरस्थ बिजुलीरूप अग्नि नाड़ियों में रुधिर को पहुंचाती है और सूर्यमण्डल जल को जगत् में पहुंचाता है वैसे प्रजाओं में सुख को प्राप्त करावें और दुष्टों को कंपावे ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता । स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ १७ ॥

त्वम् । अस्माकम् । इन्द्र । विश्वध । स्याः । अवृकऽतमः । नराम् । नृऽपाता । सः । नः । विश्वासाम् । स्पृधाम् । सहःऽदाः । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ १० ॥ १७ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (अस्माकम्) (इन्द्र) सुखप्रदातः (विश्वध) विश्वैस्सर्वैःप्रकारैरितिविश्वध । अत्रछान्दसो ह्रस्वः (स्याः) भवेः (अवृकतमः) न सन्ति वृकाश्चोरो यस्य सम्बन्धे सोतिशयित इति

(नराम्) नराणाम् (नृपाता) नृणां रक्षकः (सः) (नः) अस्माकम् (विश्वासाम्) सर्वासाम् (स्पृधाम्) युद्धक्रियाणाम् (सहोदाः) बलप्रदाः (विद्याम) विजानीयाम (इषम्) शास्त्रविज्ञानम् (वृजनम्) धर्म्यं मार्गम् (जीरदानुम्) जीवस्वरूपम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वमस्माकं मध्ये विश्वध नरां नृपातावृकतमः स्याः स नो विश्वासां स्पृधां सहोदाःस्या यतो वयं जीरदानुं वृजनमिषं च विद्याम ॥ १० ॥

भावार्थः—ये यमान्विताऽनियतेन्द्रियाः प्रजारक्षकाश्चौर्यादिकर्म त्यक्तवन्तो निवसेरँस्ते महदैश्वर्यमाप्नुवन्ति ॥ १० ॥

अत्र राजकृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति चतुस्सप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख देने वाले (त्वम्) आप (अस्माकम्) हमारे बीच (विश्वध) सब प्रकार से (नराम्) मनुष्यों में (नृपाता) मनुष्यों की रक्षा करने वाले अर्थात् प्रजाजनों की पालना करने वाले और (अवृकतमः) जिन के सम्बन्ध में चोरजन नहीं ऐसे (स्याः) हूजिये तथा (सः) सो आप (नः) हमारे (विश्वासाम्) समस्त (स्पृधाम्) युद्ध की क्रियाओं के (सहोदाः) बल देने वाले हूजिये जिस से हम लोग (जीरदानुम्) जीव के रूप को (वृजनम्) धर्म युक्त मार्ग को और (इषम्) शास्त्रविज्ञान को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थः—जो यम नियमों से युक्त नियत इन्द्रियों वाले प्रजाजनों के रक्षक चौर्यादि कर्मों को छोड़े हुए अपने राज्य में निवास करते हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

इस मन्त्र में राजजनों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एक सौ चौहत्तर का सूक्त और सत्रहवां वर्ग पूरा हुआ ॥

मत्सीत्यस्य षडृचस्य पञ्चसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य ।
अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ स्वराडनुष्टुप् ।
२ विराऽनुष्टुप् । ५ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः
स्वरः । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ उष्णिक्
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ राजविषयं प्रकारान्तरेणाह ॥
अब राजविषय को प्रकारान्तर से कहते हैं ॥

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः । वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१॥

मत्सि । अपायि । ते । महः । पात्रस्यऽइव । हरिऽवः । मत्सरः । मदः । वृषा । ते । वृष्णे । इन्दुः । वाजी । सहस्रऽसातमः ॥ १ ॥

पदार्थः—(मत्सि) हृष्यसि (अपायि) (ते) तव (महः) महतः (पात्रस्येव) यथा पात्रस्य मध्ये (हरिवः) प्रशस्ताश्व (मत्सरः) हर्षकरः (मदः) मदन्ति हर्षन्ति नैरोग्येण येनाऽसौ (वृषा) बलकरः (ते) तुभ्यम् (वृष्णे) सेचकाय बलवते (इन्दुः) ऐश्वर्यकरः (वाजी) वेगवान् (सहस्रसातमः) अतिशयेन सहस्रस्य विभाजकः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे हरिवो महः पात्रस्येव यस्ते मत्सरो मदस्त्वपायि तेन त्वं मत्सि स च वाजी सहस्रसातमो वृष्णे ते वृषेन्दुर्भवति ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथाऽश्वा दुग्धादिकं पीत्वा घासं जग्ध्वा बलिष्ठा वेगवन्तो जायन्ते तथा पथ्योषधिसेविन आनान्दती भवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ों वाले (महः) बड़े (पात्रस्येव) पात्र के बीच जैसे रक्खा हो वैसे जो (ते) आप का (मत्सरः) हर्ष करने वाला (मदः) नीरोगता के साथ जिस से जन आनन्दित होते हैं वह ओषधियों का सार आपने (अपायि) पीया है उस से आप (मत्सि) आनन्दित होते हैं और वह (वाजी) वेगवान् (सहस्रसातमः) अतीव सहस्र लोगों का विभाग करने वाला (वृष्णे) सींचने वाले बलवान् जो (ते) आप उन के लिये (वृषा) बल और (इन्दुः) ऐश्वर्य करने वाला होता है ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे घोड़े दूध आदि पी घास खा बलवान् और वेगवान् होते हैं वैसे पथ्य ओषधियों के सेवन करने वाले मनुष्य आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

आ । नः । ते । गन्तु । मत्सरः । वृषा । मदः । वरेण्यः ।
सहऽवान् । इन्द्र । सानसिः । पृतनाषाट् । अमर्त्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (नः) अस्मान् (ते) तव (गन्तु) प्राप्नोतु (मत्सरः) सुखकरः (वृषा) वीर्यकारी (मदः) ओषधिसारः (वरेण्यः) वर्त्तुं स्वीकर्त्तुमर्हः (सहावान्) सहो बहु सहनं विद्यते यस्मिन् सः । अत्राऽन्येषामपीत्युपधादीर्घः (इन्द्र) शमेश

(सानसिः) संविभाजकः (पृतनाषाट्) पृतनां नृसेनां सहते येन सः (अमर्त्यः) मनुष्यस्वभावाद्विलक्षणः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ते यो मत्सरो वरेण्यो वृषा सहावान् सानसिः पृतनाषाडमर्त्यो मदोऽस्ति स नोऽस्माना गन्तु ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यैराप्तानां धर्मात्मनामोषधिरसोऽस्मान् प्राप्नोत्विति सदैवेषितव्यम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभापति (ते) आप का जो (मत्सरः) सुख करने वाला (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (वृषा) वीर्यकारी (सहावान्) जिस में बहुत सहनशीलता विद्यमान (सानसिः) जो अच्छे प्रकार रोगों का विभाग करने वाला (पृतनाषाट्) जिस से मनुष्यों की सेना को सहते हैं और (अमर्त्यः) जो मनुष्य स्वभाव से विलक्षण (मदः) ओषधियों का रस है वह (नः) हम लोगों को (आ,गन्तु) प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा जनों का ओषधि रस हम को प्राप्त हो ऐसी सदा चाहना करें ॥ २ ॥

अथ राज्यविषये सेनापतिविषयमाह ॥

अब राज्यविषय में सेनापति के वि० ॥

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

त्वम् । हि । शूरः । सनिता । चोदयः । मनुषः । रथम् । सहऽवान् । दस्युम् । अव्रतम् । ओषः । पात्रम् । न । शोचिषा ॥ ३ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (हि) यतः (शूरः) निर्भयः (सनिता) संविभक्ता (चोदयः) प्रेरय (मनुषः) मनुष्यान् (रथम्) युद्धाय प्रवर्त्तितम् (सहावान्) बलवान् । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (दस्युम्) प्रसह्यपरस्वापहर्त्तारम् (अव्रतम्) दुःशीलम् (ओषः) दहसि (पात्रम्) (न) इव (शोचिषा) प्रदीप्तया-ऽग्निज्वालया ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे सेनेश हि यतः शूरस्सनिता त्वं मनुषो रथं चोदयः । सहावाञ्छोचिषा पात्रं नाव्रतं दस्युमोषस्तस्मान्मान्यभाक् स्याः ॥३॥

भावार्थः—ये सेनापतयो युद्धसमये रथादियानानि योद्धॄंश्च युद्धाय प्रचालयितुं जानन्ति ते वह्निः काष्ठमिव दस्यून् भस्मीकर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे सेनापति (हि) जिस कारण (शूरः) शूरवीर निडर (सनिता) सेना को संविभाग करने अर्थात् पद्मादि व्यूह रचना से बांटने वाले (त्वम्) आप (मनुषः) मनुष्यों और (रथम्) युद्ध के लिये प्रवृत्त किये हुए रथ को (चोदयः) प्रेरणा दें अर्थात् युद्ध समय में आगे को बढ़ावें और (सहावान्) बलवान् आप (शोचिषा) दीपते हुए अग्नि की लपट से जैसे (पात्रम्) काष्ठ आदि के पात्र को (न) वैसे (अव्रतम्) दुश्शील दुराचारी (दस्युम्) हठ कर पराये धन को हरने वाले दुष्ट जन को (ओषः) जलाओ इस से मान्य भागी होओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो सेनापति युद्ध समय में रथ आदि यान और योद्धाओं को ढंग से चलाने को जानते हैं वे आग जैसे काठ को वैसे डाकुओं को भस्म कर सकते हैं ॥ ३ ॥

अथ राजधर्मविषये सभापतिविषयमाह ॥
अब राजधर्म विषय में सभापति के वि० ॥

मुषाय सूर्य्यं कवे चक्रमीशान ओजसा । वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

मुषाय । सूर्य्यम् । कवे । चक्रम् । ईशानः । ओजसा । वह । शुष्णाय । वधम् । कुत्सम् । वातस्य । अश्वैः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(मुषाय) (सूर्यम्) (कवे) क्रान्तदर्शन सकलविद्याविद्वन् (चक्रम्) भूगोलराज्यम् (ईशानः) ऐश्वर्यवान् समर्थः (ओजसा) बलेन (वह) प्रापय (शुष्णाय) परेषां हृदयस्य शोषकाय (वधम्) (कुत्सम्) वज्रम् (वातस्य) वायोः (अश्वैः) वेगादिभिर्गुणैः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे कवे ईशानस्त्वं सूर्यमिवौजसा चक्रं मुषाय शुष्णाय वातस्याऽश्वैरिव स्वबलैः कुत्सं परिवर्त्य वधं वह प्रापय ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तुमिच्छेयुस्ते दस्यून् दुष्टाचारान् मनुष्यान्निवर्त्त्य न्यायं प्रवर्त्तयेयुः ॥ ४ ॥

पदार्थ:—हे (कवे) क्रम क्रम से दृष्टि देने समस्त विद्याओं के जानने वाले सभापति (ईशानः) ऐश्वर्य्यवान् समर्थ आप (सूर्य्यम्) सूर्यमण्डल के समान (ओजसा) बल से युक्त (चक्रम्) भूगोल के राज्य को (मुषाय) हर के (शुष्णाय) औरों के हृदय को शुखाने वाले दुष्ट के लिये (वातस्य) पवन के (अश्वैः) वेगादि गुणों के समान अपने बलों से (कुत्सम्) वज्र को घुमा के (वधम्) वध को (वह) पहुंचाओ अर्थात् उक्त दुष्ट को मारो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो चक्रवर्त्ती राज्य करने की इच्छा करें वे डांकू और दुष्टाचारी मनुष्यों को निवार के न्याय को प्रवृत्त करावें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

शुष्मिन्ऽतमः । हि । ते । मदः । द्युम्निन्ऽतमः । उत । क्रतुः । वृत्रऽघ्ना । वरिवःऽविदा । मंसीष्ठाः । अश्वऽसातमः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(शुष्मिन्तमः) अतिशयेन बली (हि) यतः (ते) तव (मदः) हर्षः (द्युम्निन्तमः) अतिशयेन यशस्वी (उत) अपि (क्रतुः) कर्मपराक्रमः (वृत्रघ्ना) वृत्रं मेघं हन्ति यस्तेन सूर्येणेव (वरिवोविदा) परिचरणं विन्दति प्राप्नोति येन तेन पराक्रमेण (मंसीष्ठाः) मन्येथाः (अश्वसातमः) योऽश्वान् सनति संभजति सोऽतिशयितः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे सर्वेश हि ते शुष्मिन्तमो मद उतापि द्युम्निन्तमः क्रतुः पराक्रमोऽस्ति तेन वृत्रघ्ना वरिवोविदाऽश्वसातमो मंसीष्ठाः ॥५॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये सूर्यवत्तेजस्विनो विद्युद्वत्पराक्रमिणो यशस्विनो बलिष्ठा विद्याविनयधर्मान् सेवन्ते ते सुखमश्नुवते ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे सब के ईश्वर सभापति (हि) जिस कारण (ते) आप का (शुष्मिन्तमः) अतीव बल वाला (मदः) आनन्द (उत) और (द्युम्निन्तमः) अतीव यशयुक्त (क्रतुः) पराक्रमरूप कर्म है उस से (वृत्रघ्ना) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान प्रकाशमान (वरिवोविदा) जिस से कि सेवा को प्राप्त होता उस पराक्रम से (अश्वसातमः) अतीव अश्वादिकों का अच्छे विभाग करने वाले आप दूसरे के विषय को (मंसीष्ठाः) मानो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य्य के समान तेजस्वी बिजुली के समान पराक्रमी यशस्वी अत्यन्त बली जन विद्या विनय और धर्म का सेवन करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ । तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

यथा । पूर्वेभ्यः । जरितृऽभ्यः । इन्द्र । मयःऽइव । आपः । न । तृष्यते । बभूथ । ताम् । अनु । त्वा । निऽविदम् । जोहवीमि । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

पदार्थः—(यथा) येन प्रकारेण (पूर्वेभ्यः) अधीतपूर्वविद्येभ्यः (जरितृभ्यः) सकलविद्यागुणस्तावकेभ्यः (इन्द्र) विद्यैश्वर्ययुक्त (मयइव) सुखमिव (आपः) जलानि (न) इव

(तृष्यते) तृषाक्रान्ताय (बभूथ) भव (ताम्) (अनु) (त्वा) (निविदम्) नित्यविद्याम् (जोहवीमि) भृशं स्तौमि (विद्याम) (इषम्) (वृजनम्) बलम् । वृजनमिति बल ना० निघं० २ । ९ (जीरदानुम्) स्वात्मस्वरूपम् ॥ ६ ॥

अन्वयः-हे इन्द्र यथा निविदा पूर्वेभ्यो जरितृभ्यो मयइव तृष्यत आपो न त्वं बभूथ तां निविदमनु त्वाहं जोहवीमि। अतो वयमिषं वृजनं जीरदानुञ्च विद्याम ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये ब्रह्मचर्येणाप्तेभ्यो विद्याशिक्षे प्राप्या ऽन्येभ्यः प्रयच्छन्ति ते सुखेन तृप्ताः सन्तो प्रशंसामाप्नुवन्ति । ये विरोध विहाय परस्परमुपादिशन्ति त विज्ञान बल जीवपरमात्म-स्वरूपं च जानन्ति ॥ ६ ॥

अत्र राजव्यवहारवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गति-रस्तीति वेद्यम् ॥

इति पञ्चसप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तमष्टादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्यैश्वर्ययुक्त (यथा) जिस प्रकार नित्य विद्या से (पूर्वेभ्यः) प्रथम विद्या अध्ययन किये (जरितृभ्यः) समस्त विद्या गुणों की स्तुति करने वाले जनों के लिये (मयइव) सुख के समान वा (तृष्यते) तृषा से पीड़ित जन के लिये (आपः) जलों के (न) समान आप (बभूथ) हूजिये (ताम्) उस (निविदम्) नित्य विद्या के (अनु) अनुकूल (त्वा) आप की मैं (जोहवीमि) निरन्तर स्तुति करता हूं । और इसी से हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) आत्मस्वरूप को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो ब्रह्मचर्य के साथ शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं से विद्या और शिक्षा पाकर औरों को देते हैं वे सुख से तृप्त होते हुए प्रशंसा को प्राप्त होते हैं और जो विरोध को छोड़ परस्पर उपदेश करते हैं वे विज्ञान बल और जीवात्मा परमात्मा के स्वरूप को जानते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजव्यवहार के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ पचहत्तर का सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

मत्सीत्यस्य षडृचस्य षट्सप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजविषये विद्यापुरुषार्थयोगमाह ॥

अब एकसौ छिहत्तर के सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजविषय में विद्यानुकूल पुरुषार्थ योग को कहते हैं ॥

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

मत्सि । नः । वस्यःऽइष्टये । इन्द्रम् । इन्दो इति । वृषा । आ । विश । ऋघायमाणः । इन्वसि । शत्रुम् । अन्ति । न । विन्दसि ॥ १ ॥

पदार्थः-(मत्सि) आनन्दासि (नः) अस्माकम् (वस्यइष्टये) वसीयसोऽतिशयितस्य धनस्य सङ्गमनाय (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यम् (इन्दो) आर्द्रस्वभाव (वृषा) बलिष्ठः (आ) समन्तात् (विश) प्राप्नुहि (ऋघायमाणः) वर्द्धमानः । अत्र ऋधु धातोः कः प्रत्ययो वर्णव्यत्ययेन घः तत उपमानादाचार इति क्यङ् (इन्वसि) व्याप्नोषि (शत्रुम्) (अन्ति) (न) निषेधे (विन्दसि) लभसे ॥ १ ॥

अन्वयः-हे इन्दो चन्द्रइव वर्त्तमानन्यायेश वृषाया ऋघायमाणस्त्वं नो वस्यइष्टये इन्द्रं प्राप्य मत्सि शत्रुमिन्वसि । अन्ति न विन्दसि स त्वं सेनामाविश ॥ १ ॥

भावार्थः-ये प्रजानामिष्टसुखाय दुष्टान् निवर्त्तयन्ति सत्याचारं व्याप्नुवन्ति ते महदैश्वर्य्यमाप्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः-हे (इन्दो) चन्द्रमा के समान शीतल शान्तस्वभाव वाले न्यायाधीश जो (वृषा) बलवान् (ऋघायमाणः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए आप (नः) हमारे (वस्यइष्टये) अत्यन्त धन की सङ्गति के लिये (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को प्राप्त हो कर (मत्सि) आनन्द को प्राप्त होते हो और (शत्रुम्) शत्रु को (इन्वसि) व्याप्त होते अर्थात् उन के किये हुए दुराचार को प्रथम ही जानते हो किन्तु (अन्ति) अपने समीप (न) नहीं (विन्दसि) शत्रु पाते सो आप सेना को (आ, विश) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थः-जो प्रजाजनों के चाहे हुए सुख के लिये दुष्टों की निवृत्ति कराते और सत्य आचरण को व्याप्त होते वे महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अथ प्रकृतविषये विद्याबीजविषयमाह ॥
अब प्रकृत विषय में विद्यारूप बीज के विषय को कहते हैं ॥

तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥

तस्मिन् । आ । वेशय । गिरः । यः । एकः । चर्षणीनाम् ।
अनु । स्वधा । यम् । उप्यते । यवम् । न । चर्कृषत् । वृषा ॥ २ ॥

पदार्थः—(तस्मिन्) (आ) (वेशय) समन्तात् प्रापय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (गिरः) उपदेशरूपा वाणीः (यः) (एकः) असहायः (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (अनु) (स्वधा) अन्नम् (यम्) (उप्यते) (यवम्) (न) इव (चर्कृषत्) भृशं कर्षन् भृशं भूमिं विलिखन् (वृषा) कृषिकर्मकुशलाः ॥२॥

अन्वयः—हे विद्वंस्तस्मिन् गिर आ वेशय यश्चर्षणीनामेकएवाऽस्ति । यमनुलक्ष्य चर्कृषद्वृषा यवं न स्वधान्नमुप्यते च ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा कृषीवलाः क्षेत्रेषु बीजान्युप्त्वा धनानि लभन्ते तथा विद्वांसो जिज्ञासूनामात्मसु विद्यासुशिक्षे प्रवेश्य सुखानि लभन्ते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (तस्मिन्) उस में (गिरः) उपदेशरूप वाणियों को (आ,वेशय) अच्छे प्रकार प्रविष्ट कराइये कि (यः) जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (एकः) एक अकेला सहायरहित दीन जन है और (यम्) जिस का (अनु) पीछा लखि कर (चर्कृषत्) निरन्तर भूमि को जोतता हुआ (वृषा) कृषि कर्म में कुशल जन जैसे (यवम्) यव अन्न को (न) बोओ वैसे (स्वधा) अन्न (उप्यते) बोया जाता अर्थात् भोजन दिया जाता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे कृषीवल खेती करने वाले उन खेतों के बीजों को बो कर अन्नों वा धनों को पाते हैं वैसे विद्वान् जन ज्ञान विद्या चाहने वाले शिष्य जनों के आत्मा में विद्या और उत्तम शिक्षा प्रवेश करा सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि०

यस्य विश्वा॑नि॒ हस्त॑यो॒ः पञ्च॑ क्षि॒ती॒नां वसु॑ ।
स्पा॒शय॑स्व॒ यो अ॑स्म॒ध्रुग्दि॒व्येवा॒शनि॑र्ज॒हि ॥ ३ ॥

यस्य॑ । विश्वा॑नि । हस्त॑योः । पञ्च॑ । क्षि॒ती॒नाम् । वसु॑ । स्पा॒शय॑स्व । यः । अ॒स्म॒ऽध्रुक् । दि॒व्याऽइ॑व । अ॒शनिः॑ । ज॒हि ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यस्य) (विश्वानि) सर्वाणि (हस्तयोः) (पञ्च) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रनिषादानाम् (क्षितीनाम्) मनुष्याणाम् (वसु) विद्याधनानि (स्पाशयस्व) (यः) (अस्मध्रुक्) अस्मान् द्रोग्धि (दिव्येव) यथा दिव्या (अशनिः) विद्युत् (जहि) ॥३॥

अन्वयः—हे विद्वन् यस्य हस्तयोः पञ्च क्षितीनां विश्वानि वसु सन्ति स त्वं योऽस्मध्रुक्तं स्पाशयस्वाशनिर्दिव्येव जहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यस्याऽधिकारे समग्रा विद्याः सन्ति यो जातशत्रून् हन्ति स दिव्यैश्वर्यस्य प्रापको भवति ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् (यस्य) जिन के आप (हस्तयोः) हाथों में (पञ्च) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और निषाद इन जातियों के (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (विश्वानि) समस्त (वसु) विद्याधन हैं सो आप (यः) जो (अस्मध्रुक्)

हम लोगों को द्रोह करता है उस को (न्याशयस्व) पीड़ा देओ और (अशनिः) बिजुली (दिव्येव) जो आकाश में उत्पन्न हुई और भूमि में गिरी हुई संहार करती है उस के समान (जहि) नष्ट करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिस के अधिकार में समग्र विद्या है जो उत्पन्न हुए शत्रुओं को मारता है वह दिव्य ऐश्वर्य प्राप्ति कराने वाला होता है ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥

असुन्वन्तम् । समम् । जहि । दुःऽनशम् । यः । न । ते । मयः । अस्मभ्यम् । अस्य । वेदनम् । दद्धि । सूरिः । चित् । ओहते ॥ ४ ॥

पदार्थः—(असुन्वन्तम्) अभिषवादिनिष्पादनपुरुषार्थरहितम् (समम्) सर्वम् (जहि) (दूणाशम्) दुःखेन नाशनीयम् (यः) (न) निषेधे (ते) तव (मयः) सुखम् (अस्मभ्यम्) (अस्य) (वेदनम्) धनम् (दद्धि) धर । अत्र दध धारण इत्यस्माद्बहुलं छन्दसीति शपोलुक् व्यत्ययेन परस्मैपदञ्च (सूरिः) विद्वान् (चित्) इव (ओहते) व्यवहारान् वहति । अत्र वाच्छन्दसीति संप्रसारणं लघूपध गुणः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे राजन् त्वं तमसुन्वन्तं दूणाशं समं जहि यः सूरिश्चिदिवौहते ते मयो न प्रापयति त्वमस्य वेदनमस्मभ्यं दद्धि ॥४॥

भावार्थः—येऽलसा भवेयुस्तान् राजा ताडयेत् । यथा विद्वान् सर्वेभ्यः सुखं ददाति तथा यावच्छक्यं तावत्सुखं सर्वेभ्यो दद्यात् ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् आप उस (असुन्वन्तम्) पदार्थों के सार खींचने आदि पुरुषार्थ से रहित (दूणाशम्) और दुःख से विनाशने योग्य (समम्) समस्त आलसी गण को (जहि) मारो दण्ड देओ कि (यः) जो (सूरिः) विद्वान् के (चित्) समान (ओहते) व्यवहारों की प्राप्ति करता है और (ने) तुम्हारे (मयः) सुख को (न) नहीं पहुंचाता तथा आप (अस्य) इस के (वेदनम्) धन को (अस्मभ्यम्) हमारे अर्थ (दद्धि) धारण करो ॥४॥

भावार्थः—जो आलसी जन हों उन को राजा ताड़ना दिलावे जैसे विद्वान् जन सब के लिये सुख देता है वैसे जितना अपना सामर्थ्य हो उतना सुख सब के लिये देवे ॥ ४

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् । आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

आवः । यस्य । द्विऽबर्हसः । अर्केषु । सानुषक् । असत् । आजौ । इन्द्रस्य । इन्दो इति । प्र । आवः । वाजेषु । वाजिनम् ॥५॥

पदार्थः—(आवः) (यस्य) (द्विबर्हसः) यो द्वाभ्यां विद्यापुरुषार्थाभ्यां वर्द्धते तस्य (अर्केषु) सुसत्कृतेष्वन्नेषु (सानुषक्) साकूल्लता (असत्) भवेत् (आजौ) सङ्ग्रामे (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यस्य (इन्दो) सुप्रजासु चन्द्रवद्वर्त्तमान (प्र) (आवः) रक्ष (वाजेषु) वेगेषु (वाजिनम्) बलवन्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे इन्दो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत्। यं त्वमावः स इन्द्रस्याजौ वाजेषु वाजिनं त्वां प्रावः सततं रक्षन्तु ॥ ५ ॥

भावार्थः—यथा सेनेशो सर्वान् भृत्यान् रक्षेत्तथा भृत्यास्तं सततं रक्षेयुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (इन्दो) अपनी प्रजाओं में चन्द्रमा के समान वर्त्तमान (यस्य) जिस (द्विबर्हसः) विद्या पुरुषार्थ से बढ़ते हुए जन के (अर्केषु) अच्छे सराहे हुए अन्नादि पदार्थों में (सानुषक्) सानुकूलता ही (असत्) हो जिस की आप (आवः) रक्षा करें वह (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य सम्बन्धी (आजौ) सङ्ग्राम में (वाजेषु) वेगों में वर्त्तमान (वाजिनम्) बलवान् आप को (प्र, आवः) अच्छे प्रकार रक्षायुक्त करे अर्थात् निरन्तर आप की रक्षा करे ॥ ५ ॥

भावार्थः—जैसे सेनापति सब चाकरों की रक्षा करे वैसे वे चाकर भी उस की निरन्तर रक्षा करें ॥ ५ ॥

अथ प्रकृतविषये योगपुरुषार्थः प्रोच्यते ॥

अब प्रकृत विषय में योग के पुरुषार्थ का वर्णन किया जाता है ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ। तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १९ ॥

यथा । पूर्वेभ्यः । जरितृऽभ्यः । इन्द्र । मयःऽइव । आपः । न । तृष्यते । बभूथ । ताम् । अनु । त्वा । निऽविदम् । जोहवीमि । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ६ ॥ १९ ॥

पदार्थः–(यथा) (पूर्वेभ्यः) कृतयोगाभ्यासपुरःसरेभ्यः (जरितृभ्यः) योगगुणसिद्धीनां वेदितृभ्यः (इन्द्र) योगैश्वर्यजिज्ञासो (मयइव) सुखमिव (आपः) जलानि (न) इव (तृष्यते) पिपासवे (बभूथ) भव (ताम्) (अनु) (त्वा) (निविदम्) निश्चितप्रतिज्ञम् (जोहवीमि) भृशं ह्वयामि (विद्याम) (इषम्) इच्छासिद्धिम् (वृजनम्) दुःखत्यागम् (जीरदानुम्) जीवदयाम् ॥ ६ ॥

अन्वयः–हे इन्द्र त्वं योगजिज्ञासवः यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्यो योगं प्राप्य साधित्वा सिद्धा भवन्ति तथा भूत्वा मयइव तृष्यत आपो न बभूथ। तां योगविद्यामनुवर्त्तमानं निविदं त्वा जोहवीमि। एवं कृत्वा वयमिषं वृजनं जीरदानुं च विद्याम ॥ ६ ॥

भावार्थः–ये योगारूढेभ्यो योगशिक्षां प्राप्य पुरुषार्थेन योगमभ्यस्य सिद्धा जायन्ते तेऽलं सुखं लभन्ते । ये तान् सेवन्ते तेऽपि सुखं प्राप्नुवन्ति ॥ ६ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्यापुरुषार्थयोगवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेदितव्या ॥

इति षट्सप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) योग के ऐश्वर्य का ज्ञान चाहते हुए जन (यथा) जैसे योग जानने की इच्छा वाले (पूर्वेभ्यः) किया है योगाभ्यास जिन्हों ने उन प्राचीन (जरितृभ्यः) योग गुण सिद्धियों के जानने वाले विद्वानों से योग को पाकर और सिद्ध कर सिद्ध होते अर्थात् योग सम्पन्न होते हैं वैसे होकर (मयइव) सुख के समान

और (तृष्यते) पियासे के लिये (आपः) जलों के (न) समान (बभूथ) हूजिये और (ताम्) उस विद्या के (अनु) अनुवर्त्तमान (निनिदम्) और निश्चित प्रतिज्ञा जिन्हों ने किई उन (त्वा) आप को (जोहवीमि) निरन्तर कहता हूं ऐसे कर हम लोग (इषम्) इच्छा सिद्धि (वृजनम्) दुःखत्याग और (जीरदानुम्) जीव दया को (विद्याम) प्राप्त हों ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो जिज्ञासु जन योगारूढ पुरुषों से योगशिक्षा को प्राप्त हो कर पुरुषार्थ से योग का अभ्यास कर सिद्ध होते हैं वे पूर्ण सुख को पाते और जो उत्तम योगियों का सेवन करते वे भी सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्या पुरुषार्थ और योग का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ छिहत्तर का सूक्त और उन्नीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

आ चर्षणिप्रा इत्यस्य पञ्चर्चस्य सप्तसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ राजविद्वद्गुणानाह ॥

अब एकसौ सतहत्तर सूक्त का आरम्भ है उस में राजा और विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

आ च॒र्ष॒णि॒प्रा वृ॑ष॒भो जना॑नां॒ राजा॑ कृष्टी॒नां पु॑रुहू॒त इन्द्रः॑ । स्तु॒तः श्र॑व॒स्यन्नव॒सोप॑ म॒द्रिग्यु॒क्त्वा हरी॒ वृष॒णा या॑ह्य॒र्वाङ् ॥ १ ॥

आ । चर्षणिऽप्राः । वृषभः । जनानाम् । राजा । कृष्टीनाम् । पुरुऽहूतः । इन्द्रः । स्तुतः । श्रवस्यन् । अवसा । उप । मद्रिक् । युक्त्वा । हरी इति । वृषणा । आ । याहि । अर्वाङ् ॥ १ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (चर्षणिप्राः) यश्चर्षणीन्मनुष्यान् प्राति विद्यया पिपर्त्ति सः (वृषभः) अतीव बलवान् (जनानाम्) शुभगुणेषु प्रादुर्भूतानाम् (राजा) प्रकाशमानः (कृष्टीनाम्) मनुष्याणाम् (पुरुहूतः) बहुभिः सत्कृतः (इन्द्रः) ऐश्वर्यप्रदः (स्तुतः) प्रशंसितः (श्रवस्यन्) आत्मनः श्रवोऽन्नमिच्छन् (अवसा) रक्षणादिना (उप) (मद्रिक्) यो मद्धं काममञ्चति सः (युक्त्वा) संयोज्य (हरी) हरणशीलौ (वृषणा) बलिष्ठावश्वौ (याहि) प्राप्नुहि (अर्वाङ्) योऽर्वागधो देशमञ्चाति गच्छति तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वृषभो जनानां चर्षणिप्रा राजा कृष्टीनां पुरुहूतः स्तुतः श्रवस्यन्मद्रिगिन्द्रो वृषणा हरी युक्त्वा अर्वाङ् याति तथाऽवसा त्वमस्मानुपा याहि ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा शुभगुणकर्मस्वभावा सभाध्यक्षाः प्रजासु चेष्टेरँस्तथा प्रजास्थैश्चेष्टितव्यम् । यथा कश्चिद्विमानमारुह्योपरि गत्वाऽधआयाति तथा विद्वांसः पराऽवरज्ञाः स्युः ॥ १ ॥

पदार्थ:—हे विद्वान् जैसे (वृषभः) अतीव बलवान् (जनानाम्) शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध हुए जनों में (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को विद्या से पूर्ण करने वाला (राजा) प्रकाशमान और (कृष्टीनाम्) मनुष्यों में (पुरुहूतः) बहुतों से

सत्कार को प्राप्त हुआ (स्तुतः) प्रशंसित (श्रवस्यन्) अपने को अन्न की इच्छा करता हुआ (मद्रिक्) जो काम को प्राप्त होता वह (इन्द्रः) ऐश्वर्य का देने वाला (वृषणा) अतिबली (हरी) हरणशील घोड़ों को (युक्त्वा) जोड़ कर (अर्वाङ्) नीचली भूमियों में जाता है वैसे (अवसा) रक्षा आदि के साथ आप हम लोगों के (उप, आ, याहि) समीप आओ ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले सभाध्यक्ष प्रजा जनों में चेष्टा करें वैसे प्रजा जनों को भी चेष्टा करनी चाहिये जैसे कोई विमान पर चढ़ि और ऊपर को जाय कर नीचे आता है वैसे विद्वान् जन अगले पिछिले विषय को जानने वाले हों ॥ १ ॥

अथ राजविषयमाह ॥

अब अगले मन्त्र में राजवि० ॥

ये ते॒ वृष॑णो वृष॒भास॑ इन्द्र ब्रह्म॒युजो॒ वृष॑रथासो॒ अत्याः॑ । ताँ आ ति॑ष्ठ॒ तेभि॒रा या॑ह्य॒र्वाङ् हवा॑महे त्वा सु॒त इ॑न्द्र॒ सोमे॑ ॥ २ ॥

ये । ते॒ । वृष॑णः । वृ॒ष॒भासः॑ । इ॒न्द्र॒ । ब्र॒ह्म॒ऽयुजः॑ । वृष॑ऽरथासः । अत्याः॑ । तान् । आ । ति॒ष्ठ॒ । तेभिः॑ । आ । या॒हि॒ । अ॒र्वाङ् । हवा॑महे । त्वा॒ । सु॒ते । इ॒न्द्र॒ । सोमे॑ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(ये) (ते) (वृषणः) प्रबला युवानः (वृषभासः) परिशक्तिबन्धकाः (इन्द्र) विद्युदिव सेनेश (ब्रह्मयुजः) ब्रह्माणं युञ्जन्ति यैस्ते (वृषरथासः) वृषाः शक्तिबन्धका रथा रमणसाधनानि येषान्ते (अत्याः) नितरां गमनशीला अश्वाः (तान्) (आ) समन्तात् (तिष्ठ) (तेभिः) तैः (आ) आभिमुख्ये (याहि) आगच्छ (अर्वाङ्) अभिमुखम् (हवामहे) स्वीकु-

महे (त्वा) त्वाम् (सुते) निष्पन्ने (इन्द्र) सूर्यइव वर्त्तमान (सोमे) ओषध्यादिगुणइवैश्वर्ये ॥ २ ॥

अन्वयः-हे इन्द्र ते वृषणो ये वृषभासो ब्रह्मयुजो वृषरथासोऽत्याः सन्ति तानातिष्ठ । हे इन्द्र वयं सुते सोमे त्वा हवामहे त्वं तेभिरर्वाङायाहि ॥ २ ॥

भावार्थः-ये राजानः सर्वसाधनसाध्यरथान् प्रवलानश्वान् वृषभांश्च कार्येषु संयोजयन्ति ते प्रशस्तयानादियुक्ता ऐश्वर्यं लभन्ते ॥२॥

पदार्थः-हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान राजन् (ते) आप के (ये) जो (वृषणः) प्रबल ज्वान (वृषभासः) वृषभ (ब्रह्मयुजः) उत्तम अन्न का योग करने वाले (वृषरथासः) शक्तिबन्धक और रमण साधन रथ (अत्याः) और निरन्तर गमनशील घोड़े हैं (तान्) उन को (आ, तिष्ठ) यत्नवान् करो अर्थात् उन पर चढ़ो उन्हें कार्यकारी करो। हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान राजन् हम लोग (सुते) उत्पन्न हुए (सोमे) ओषधि आदिकों के गुण के समान ऐश्वर्य्य के निमित्त (त्वा) आप को (हवामहे) स्वीकार करते हैं आप (तेभिः) उन के साथ (अर्वाङ्) सन्मुख (आ, याहि) आओ ॥ २ ॥

भावार्थः-जो राजजन समस्त साधनों से साध्य रथों प्रबल घोड़ों और बैलों को कार्य्यों में संयुक्त कराते हैं वे प्रशस्त यान आदि पदार्थों से युक्त हुए राजराजन ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि। युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥

आ । तिष्ठ । रथम् । वृषणम् । वृषा । ते । सुतः । सोमः । परिऽसिक्ता । मधूनि । युक्त्वा । वृषऽभ्याम् । वृषभ । क्षितीनाम् । हरिऽभ्याम् । याहि । प्रऽवता । उप । मद्रिक् ॥३॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (तिष्ठ) (रथम्) विमानादि यानम् (वृषणम्) दृढम् (वृषा) रसादिपूर्णः (ते) तुभ्यम् (सुतः) निष्पादितः (सोमः) सोमलतादिरसः (परिषिक्ता) परितः सर्वतः सिक्तानि (मधूनि) मधुरादि द्रव्याणि (युक्त्वा) (वृषभ्याम्) बलिष्ठाभ्याम् (वृषभ) परशक्तिबन्धकत्वेन बलिष्ठ (क्षितीनाम्) मनुष्याणाम् (हरिभ्याम्) हरणशीलाभ्याम् (याहि) (प्रवता) निम्नेन मार्गेण (उप) (मद्रिक्) अस्मानञ्चन् प्राप्नुवन् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे वृषभ राजन् मद्रिग्वृषा सँस्त्वं यस्ते सोमः सुतस्तत्र मधूनि परिषिक्ता तं पीत्वा क्षितीनां वृषभ्यां हरिभ्यां वृषणं रथं युक्त्वा युद्धमा तिष्ठ प्रवतोप याहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये युक्ताहारविहाराः सोमाद्योषधिरससेविनो दीर्घब्रह्मचर्य्याः शरीरात्मबलयुक्ता राजानो विद्युदादिपदार्थवेगयुक्तानि यानानि साधयित्वा दण्डेन दुष्टान् निवार्य्य न्यायेन राज्यं रक्षयेयुस्त एव सुखिनो भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (वृषभ) दूसरों के सामर्थ्य रोकने से बलिष्ठ राजन् (मद्रिक्) हम लोगों को प्राप्त होते और (वृषा) रस आदि से परिपूर्ण होते हुए आप जो (ते) अपने लिये (सोमः) सोमलता आदि का रस (सुतः) उत्पन्न किया

गया है उस में (मधूनि) मीठे २ पदार्थ (परिषिक्ता) सब ओर से सींचे हुए हैं उस रस को पी कर (चितीनाम्) मनुष्यों के (वृषभ्याम्) प्रबल (हरिभ्याम्) हरणशील घोड़ों से (वृषणम्) दृढ (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोड़ युद्ध का (आ,तिष्ठ) यत्न करो वा युद्ध की प्रतिज्ञा पूर्ण करो और (प्रवता) नीचे मार्ग से (उप, याहि) समीप आओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो आहार विहार से युक्त सोमादि ओषधियों के रस के सेवने वाले दीर्घ ब्रह्मचर्य्य किये हुए शरीर और आत्मा के बल से युक्त राज जन बिजुली आदि पदार्थों के वेग से युक्त यानों को सिद्ध कर दण्ड से दुष्टों को निवारण कर न्याय से राज्य की रक्षा कराया करें वे ही सुखी होते हैं॥४॥

अथ राजविद्वद्विषयमाह ॥

अब राजा और विद्वान् के वि० ॥

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्य- यमिन्द्र सोमः। स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥ ४ ॥

अयम्। यज्ञः। देवऽयाः। अयम्। मियेधः। इमा। ब्रह्माणि। अयम्। इन्द्र। सोमः। स्तीर्णम्। बर्हिः। आ। तु। शक्र। प्र। याहि। पिब। निऽसद्य। वि। मुच। हरी इति। इह। ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अयम्) (यज्ञः) राजधर्मशिल्पकार्य्यसङ्गत्युन्नतः (देवयाः) देवान् दिव्यान् गुणान् विदुषो वा याति प्राप्नोति येन सः (अयम्) (मियेध) मियेन प्रक्षेपणेनैधः प्रदीपनं यस्य

सः (इमा) इमानि (ब्रह्माणि) धनानि । ब्रह्मेति धनना० निघं० २ । १० (अयम्) (इन्द्र) सभेश (सोमः) महौषधिरस ऐश्वर्य्यं वा (स्तीर्णम्) आच्छादितम् (बर्हिः) उत्तमासनम् (आ) (तु) (शक्र) शक्तिमान् (प्र) (याहि) प्राप्नुहि (पिब) अत्र । द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (निसद्य) उपविश्य (वि) (मुच) त्यज । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः । वा छन्दसीति उपधानकारलोपः (हरी) विद्युतो धारणाकर्षणावश्वौ । हरीइ तीन्द्रस्येत्यादिष्टोपयोजन ना० निघं० १ । १५ (इह) अस्मिन् जगति ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे शक्रेन्द्र अयं देवया यज्ञोऽयं मियेधोऽयं सोमस्त्विदं स्तीर्णं बर्हिर्निसद्येमा ब्रह्माणि प्रायाहि । इमं सोमं पिब इह हरी स्वीकृत्य दुःखं विमुच ॥ ४ ॥

भावार्थः—सर्वैर्जनैर्व्यवहारे प्रयत्य यदा राजा स्नातको विद्याव-योवृद्धश्चागच्छेत्तदाऽऽसनादिभिः सत्कृत्य प्रष्टव्यः स तान् प्रति यथोचितं धर्म्यं विद्याप्रापकं वचो ब्रूयाद्यतो दुःखहानिसिद्धिर्विद्युदा-दिपदार्थसिद्धिश्च स्यात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) सभापति (अयम्) यह (देवयाः) जिस से दिव्यगुण वा उत्तम विद्वानों को प्राप्त होना होता वह (यज्ञः) राजधर्म और शिल्प की सङ्गति से उन्नति को प्राप्त हुआ यज्ञ वा (अयम्) यह (मियेधः) जिस की पदार्थों के डारने से वृद्धि होती वह (अयम्) यह (सोमः) बड़ी २ ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य (तु) और यह (स्तीर्णम्) ढंपा हुआ (बर्हिः) उत्तम आसन है (निसद्य) इस आसन पर बैठ

(इमा) इन (ब्रह्माणि) धनों को (प्रयाहि) उत्तमता से प्राप्त होओ । इस उक्त ओषधि को (पिब) पी (इह) यहां (हरी) बिजुली के धारण और आकर्षणरूपी घोड़ों को स्वीकार कर और दुःख को (विमुच) छोड़ ॥ ४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को व्यवहार में अच्छा यत्न कर जब राजा ब्रह्मचारी तथा विद्या और अवस्था से बढ़ा हुआ सज्जन आवे तब आसन आदि से उस का सत्कार कर पूंछना चाहिए वह उन के प्रति यथोचित धर्म के अनुकूल विद्या की प्राप्ति करने वाले वचन को कहे जिस से दुःख की हानि सुख की वृद्धि और बिजुली आदि पदार्थों की भी सिद्धि हो ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः । विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

ओ इति । सुऽस्तुतः । इन्द्र । याहि । अर्वाङ् । उप । ब्रह्माणि । मान्यस्य । कारोः । विद्याम । वस्तोः । अवसा । गृणन्तः । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

पदार्थः—(ओ) सम्बोधने (सुष्टुतः) सुष्टु प्रशंसितः (इन्द्र) धनप्रद सभेश (याहि) प्राप्नुहि (अर्वाङ्) अर्वाचीनमञ्चन् (उप) (ब्रह्माणि) धनानि (मान्यस्य) सत्कर्त्तु योग्यस्य (कारोः) कारकस्य (विद्याम) जानीयाम (वस्तोः) प्रतिदिनम् (अवसा) रक्षणाद्येन (गृणन्तः) स्तुवन्तः (विद्याम) विजानीयाम (इषम्) प्राप्तिम् (वृजनम्) सद्गतिम् (जीरदानुम्) जीवात्मानम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—ओ इन्द्र यथा वयं मान्यस्य कारोर्ब्रह्माणि वस्तोरुपविद्याम । यथा वावसा गृणन्तः सन्त इषं वृजनं जीरदानुञ्च विद्याम तथा त्वं सुष्टुतोऽर्वाङ् याहि ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये धनमाप्नुयुस्ते परेषां सत्कारं कुर्युः। ये क्रियाकुशलाः शिल्पिन ऐश्वर्यमाप्नुयुस्ते सर्वैः सत्कर्त्तव्याः स्युः। यथा २ विद्यादिसद्गुणा अधिकाः स्युस्तथा २ निरभिमानिनो भवन्तु॥५॥

अत्र राजादिविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इति सप्तसप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तं विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—(ओ, इन्द्र) हे धन देने वाले सभापति जैसे हम लोग (मान्यस्य) सत्कार करने योग्य (कारोः) कार करने वाले के (ब्रह्माणि) धनों को (वस्तोः) प्रतिदिन (उप, विद्याम) समीप में जानें वा जैसे (अवसा) रक्षा आदि के साथ (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग (इषम्) प्राप्ति (वृजनम्) उत्तम गति और (जीरदानुम्) जीवात्मा को (विद्याम) जानें वैसे आप (सुष्टुतः) अच्छे प्रकार स्तुति को प्राप्त हुए (अर्वाङ्) (याहि) सन्मुख आओ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो धन को प्राप्त हों वे औरों का सत्कार करें जो क्रियाकुशल शिल्पी जन ऐश्वर्य को प्राप्त हों वे सब को सत्कार करने योग्य हों जैसे २ विद्या आदि अच्छे गुण अधिक हों वैसे २ अभिमान रहित हों ॥ २ ॥

यहां राजा आदि विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ सतहत्तर का सूक्त और बीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

यद्धेति पञ्चर्चस्याऽष्टसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ सेनापतिगुणानाह ॥

अब एकसौ अठहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस में आरम्भ से सेनापति के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती । मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥

यत् । ह । स्या । ते । इन्द्र । श्रुष्टिः । अस्ति । यया । बभूथ । जरितृऽभ्यः । ऊती । मा । नः । कामम् । महयन्तम् । आ । धक् । विश्वा । ते । अश्याम् । परि । आपः । आयोः ॥ १ ॥

पदार्थः–(यत्) या (ह) किल (स्या) असौ (ते) तव (इन्द्र) सेनेश (श्रुष्टिः) श्रोतव्या विद्या (अस्ति) (यया) (बभूथ) भवसि (जरितृभ्यः) सकलविद्यास्तावकेभ्यः (ऊती) ऊत्या रक्षणादिकर्मयुक्तया (मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (कामम्) (महयन्तम्) सत्कर्त्तव्यम् (आ) समन्तात् (धक्) दहेः (विश्वा) सर्वाणि (ते) तव (अश्याम्) प्राप्नुयाम् (परि) सर्वतः (आपः) प्राणबलानि (आयोः) जीवनस्य ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यद्या स्या ते श्रुष्टिरस्ति यया त्वं जरितृभ्य उपदेष्टा बभूथ तयोती नो महयन्तं कामं मा धक् । ते ह्यायोः या आपस्ताः विश्वापर्यश्याम् ॥ १ ॥

भावार्थः—ये सेनापत्यादयो राजपुरुषाः स्वप्रयोजनाय कस्यापि कार्य्यं न विनाशयेयुः । सदाऽध्यापकाऽध्येतॄणां रक्षां कुर्युः । यतो बलिष्ठा दीर्घायुषो जनाः स्युः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापति (यत्) जो (स्या) यह (ते) आप की (श्रुष्टिः) सुनने योग्य विद्या (अस्ति) है (यया) जिस से आप (जरितृभ्यः) समस्त विद्या की स्तुति करने वालों के लिये उपदेश करने वाले (बभूथ) होते हैं उस (ऊती) रक्षा आदि कर्म से युक्त विद्या से (नः) हमारे (महयन्तम्) सत्कार प्रशंसा करने योग्य (कामम्) काम को (मा,आ,धक्) मत जलाओ (ते) आप के (ह) ही (आयोः) जीवन के जो (आपः) प्राण बल हैं उन (विश्वा) सभों को (पर्यश्याम्) सब ओर से प्राप्त होऊं ॥ १ ॥

भावार्थः—जो सेनापति आदि राजपुरुष अपने प्रयोजन के लिये किसी के काम को न विनाशें सदैव पढ़ाने और पढ़ने वालों की रक्षा करें जिस से बहुत बलवान् आयु युक्त जन हों ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ । आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥

न । घ । राजा । इन्द्रः । आ । दभत् । नः । या । नु । स्वसारा । कृणवन्त । योनौ । आपः । चित् । अस्मै । सुऽतुकाः । अवेषन् । गमत् । नः । इन्द्रः । सख्या । वयः । च ॥ २ ॥

पदार्थः—(न) निषेधे (घ) एव। अत्र ऋचितुनुघेति दीर्घः (राजा) विद्याविनयाभ्यां राजमानः (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तः (आ) समन्तात् (दभत्) हिंस्यात् (नः) अस्मान् (या) ये (नु) सद्यः (स्वसारा) भगिन्याविव (कृणवन्त) कुरुत (योनौ) गृहे (आपः) जलानि (चित्) इव (अस्मै) (सुतुकाः) सुष्ठु आदातारः (अवेषन्) व्याप्नुवन्ति (गमत्) प्राप्नुयात् (नः) अस्मान् (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (सख्या) मित्रस्य कर्म्माणि (वयः) जीवनम् (च) ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा इन्द्रो राजा नोऽस्मान्नादभत्तथा वयं नु तं घ मा हिंसेम। यथा या स्वसारा योनौ बन्धुं न हिंस्यात्तां तथा तद्वद्वयं कञ्चिदपि न हिंस्याम यथा विद्वांसो हिंसां न कुर्वन्ति तथा सर्वे न कृणवन्त यथेन्द्रोऽस्मै सख्या वयश्च सुतुका आपोऽवेषंश्चिदिव नोऽस्मान् गमत्तथैतं वयमपि प्राप्नुयाम ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाप्ता दयालवः कञ्चन न हिंसन्ति तथा सर्वे आचरन्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्य युक्त (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान राजा (नः) हम लोगों को (न) न (आ, दभत्) मारे न दण्ड देवे वैसे हम लोग (नु) भी उस को (घ) ही मत दुःख देवें जैसे (या) जो (स्वसारा) दो बहिनियों के समान दो स्त्री (योनौ) घर में बन्धु को न मारें वैसे उन के समान हम किसी को न मारें जैसे विद्वान् जन हिंसा नहीं करते हैं वैसे सब लोग न (कृणवन्त) करें जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (अस्मै) इस सज्जन के लिये (सख्या) मित्रपन के काम (वयः)

जीवन (च) और (सुतुकाः) सुन्दर ग्रहण करने वाली स्त्री (आपः) जलों को (अवेषन्) व्याप्त होती हैं (चित्) उन के समान (नः) हम लोगों को (गमत्) प्राप्त हो वैसे उस को हम भी प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे शास्त्रज्ञ धर्मात्मा दयालु विद्वान् किसी को नहीं मारते वैसे सब आचरण करें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः। प्रभर्त्ता रथं दाशुषं उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥

जेता । नृऽभिः । इन्द्रः । पृत्ऽसु । शूरः । श्रोता । हवम् । नाधमानस्य । कारोः । प्रऽभर्त्ता । रथम् । दाशुषः । उपाके । उत्ऽयन्ता । गिरः । यदि । च । त्मना । भूत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(जेता) जेतुं शीलः (नृभिः) नायकैर्वीरैस्सह (इन्द्रः) सेनेशः (पृत्सु) सङ्ग्रामेषु (शूरः) शत्रूणां हिंसकः (श्रोता) (हवम्) आदातुमर्हं विद्याबोधम् (नाधमानस्य) याचमानस्य (कारोः) कर्त्तुं शीलस्य (प्रभर्त्ता) प्रकृष्टानां विद्यानां धर्त्ता (रथम्) यानम् (दाशुषः) दातुं शीलस्य (उपाके) समीपे (उद्यन्ता) उत्कृष्टतया नियन्ता (गिरः) वाणीः (यदि) (च) (त्मना) आत्मना (भूत्) भवेत्। अत्राडभावः लिङर्थे लुङ् च ॥ ३ ॥

अन्वयः—यदि नृभिस्सह शूरो जेता नाधमानस्य कारोर्हवं श्रोता प्रभर्त्ता दाशुष उपाके गिर उद्यन्तेन्द्रस्त्वं त्मना पृत्सु रथं च गृहीत्वा प्रवृत्तोभूत्तर्हि तस्य ध्रुवो विजयः स्यात् ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये विद्यां याचेयुस्तेभ्यस्सततं दद्यात्। ये जितेन्द्रिया सत्यवादिनो भवन्ति तेषामेव विद्या प्राप्ता भवति। ये विद्याशरीरबलैर्युक्ता शत्रुभिः सह युध्यन्ते तेषां कुतः पराजयः? ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यदि) जो (नृभिः) नायक वीरों के साथ (शूरः) शत्रुओं की हिंसा करने वाला (जेता) विजयशील (नाधमानस्य) मांगते हुए (कारोः) कार्यकारी पुरुष के (हवम्) ग्रहण करने योग्य विद्या बोध को (श्रोता) सुनने वाला (प्रभर्त्ता) उत्तम विद्याओं का धारण करने वाला (दाशुषः) दानशील के (उपाके) समीप (गिरः) वाणियों का (उद्यन्ता) उद्यम करने वाला (इन्द्रः) सेनाधीश तूं (त्मना) अपने से (पृत्सु) सङ्ग्रामों में (रथम्) रथ को (च) भी ग्रहण करके प्रवृत्त (भूत्) होवे उस का दृढ़ विजय हो ॥३॥

भावार्थः—जो विद्या की याचना करें उन को निरन्तर विद्या देवें जो जितेन्द्रिय सत्यवादी होते हैं उन्हीं को विद्या प्राप्त होती है जो विद्या और शरीर वालों से शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं उन का कैसे पराजय हो? ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत्। समर्य्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥

एव। नृऽभिः। इन्द्रः। सुऽश्रवस्या। प्रऽखादः। पृक्षः। अभि। मित्रिणः। भूत्। सऽमर्ये। इषः। स्तवते। विऽवाचि। सत्राऽकरः। यजमानस्य। शंसः॥ ४॥

पदार्थः—(एव) निश्चये। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (नृभिः) वीरैः पुरुषैः सह (इन्द्रः) सेनेशः (सुश्रवस्या) शोभनान्नेच्छया (प्रखादः) अतिभक्षकः (पृक्षः) ज्ञापयितुमिष्टमन्नम् (अभि) आभिमुख्ये (मित्रिणः) मित्राणि यस्य सन्ति तस्य (भूत्) भवेत् (समर्ये) सम्यगर्य्ये वणिजि (इषः) अन्नानि (स्तवते) प्रशंसति (विवाचि) विविधविद्यासुशिक्षायुक्ते (सत्राकरः) सत्रा सत्यं करोतीति (यजमानस्य) दातुः (शंसः) प्रशंसकः॥ ४॥

अन्वयः—हे मनुष्या नृभिः सहेन्द्रः सुश्रवस्या पृक्षः प्रखादो मित्रिणोऽभि भूत् विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः समर्य्ये इषः स्तवतयेव॥ ४॥

भावार्थः—ये उद्योगिनः सत्यवादिनः सत्योपदेशं कुर्वन्ति ते नायका भवन्ति॥ ४॥

पदार्थः—(नृभिः) वीर पुरुषों के साथ (इन्द्रः) सेनापति (सुश्रवस्या) उत्तम अन्न की इच्छा से (पृक्षः) दूसरे को बता देने को चाहा हुआ अन्न उस को (प्रखादः) अतीव खाने वाला और (मित्रिणः) मित्र जिस के वर्त्तमान उस के (अभि, भूत्) सन्मुख हो तथा (विवाचि) नाना प्रकार की विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वीर जन के निमित्त (सत्राकरः) सत्य व्यवहार करने और (यजमानस्य) देने वाले की (शंसः) प्रशंसा करने वाला (समर्य्ये) उत्तम वणिये के निमित्त (इषः) अन्नों की (स्तवते) स्तुति प्रशंसा करता (एव) ही है॥ ४॥

भावार्थः—जो उद्योगी और सत्यवादी जन सत्योपदेश करते हैं वे नायक अधिपति और अग्रगामी होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् । त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

त्वया । वयम् । मघऽवन् । इन्द्र । शत्रून् । अभि । स्याम । महतः । मन्यमानान् । त्वम् । त्राता । त्वम् । ऊं इति । नः । वृधे । भूः । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

पदार्थः—(त्वया) (वयम्) (मघवन्) परमपूजितधनयुक्त (इन्द्र) शत्रुविदारक (शत्रून्) (अभि) आभिमुख्ये (स्याम) भवेम (महतः) प्रबलान् (मन्यमानान्) अभिमानिनः (त्वम्) (त्राता) (त्वम्) (उ) वितर्के (नः) अस्माकम् (वृधे) (भूः) भवेः (विद्याम) (इषम्) प्रेरणम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवस्वभावम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मघवन्निन्द्र त्वया सह वर्त्तमाना वयं महतो मन्यमानाञ्छत्रून् विजयमाना अभि स्याम । त्वं नस्त्राता त्वमु वृधे भूर्यतो वयमिषं वृजनं जीरदानुञ्च विद्याम ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये युद्धाऽधिकारिणो भृत्यान् सर्वथा सत्कृत्योत्साह्य योधयन्ति युद्ध्यमानानां सततं रक्षणं मृतानां पुत्रकलत्राणां च पालनं कुर्य्युस्ते सर्वत्र विजयितारः स्युरिति ॥ ५ ॥

अत्र सेनापति गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इति अष्टसप्तत्युत्तरं शततमं सूक्तमेकविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) परम प्रशंसित धनयुक्त (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले (त्वया) आप के साथ वर्त्तमान (वयम्) हम लोग (महतः) प्रबल (मन्यमानान्) अभिमानी (शत्रून्) शत्रुओं को जीतने वाले (अभि, स्याम) सब ओर से होवें (त्वम्) आप (नः) हमारे (त्राता) रक्षक सहायक और (त्वम्, उ) आप तो ही (वृधे) वृद्धि के लिये (भूः) हो जिस से हम लोग (इषम्) प्रत्येक काम की प्रेरणा (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीव स्वभाव को (विद्याम) पावें ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो युद्ध करने वाले भृत्यों का सर्वथा सत्कार कर और उन को उत्साह दे युद्ध कराते हैं युद्ध करते हुओं की निरन्तर रक्षा और मरे हुओं के पुत्र कन्या और स्त्रियों की पालना करें वे सब सर्वत्र विजय करने वाले हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सेनापति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ अठहत्तर का सूक्त और इक्कीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

पूर्वीरिति षड्ऋचस्यैकोनाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य लोपामुद्राऽगस्त्यौ ऋषी। दम्पती देवता। १ । ४ त्रिष्टुप् । २ । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः। ५ निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः। ॥

अथ विद्वत् स्त्रीपुरुषविषयमाह ॥

अब एकसौ उनासी सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् स्त्रीपुरुष के विषय को कहते हैं ॥

पूर्वीर॒हं श॒रदः॑ शश्रमा॒णा दो॒षा वस्तो॑रु॒षसो॑ ज॒रय॑न्तीः । मि॒नाति॒ श्रियं॑ जरि॒मा त॒नूना॒मप्यू॒ नु पत्नी॒र्वृष॑णो जगम्युः ॥ १ ॥

पू॒र्वीः॑ । अ॒हम् । श॒रदः॑ । श॒श्र॒मा॒णा । दो॒षाः । वस्तोः॑ । उ॒षसः॑ । ज॒रय॑न्तीः । मि॒नाति॑ । श्रिय॑म् । ज॒रि॒मा । त॒नूना॑म् । अपि॑ । ऊँ इति॑ । नु । पत्नीः॑ । वृष॑णः । ज॒ग॒म्युः॒ ॥ १ ॥

पदार्थः—(पूर्वीः) पूर्व भूताः (अहम्) (शरदः) (शश्रमाणा) तपोन्विता (दोषाः) रात्रयः (वस्तोः) दिनम् (उषसः) प्रभाताः (जरयन्तीः) जरां प्रापयन्तीः (मिनाति) हिनस्ति (श्रियम्) लक्ष्मीम् (जरिमा) अतिशयेन जरिता वयोहानिकर्त्ता (तनूनाम्) शरीराणाम् (अपि) (उ) वितर्के (नु) शीघ्रम् (पत्नीः) (वृषणः) सेक्तारः (जगम्युः) भृशं प्राप्नुयुः । अत्र वा च्छन्दसीति नुगागमाभावः ॥ १ ॥

अन्वयः—यथाऽहं पूर्वीः शरदो दोषा वस्तो जरयन्तीरुषसश्च शश्रमाणाऽस्मि अप्यु अपि तु यथा तनूनां जरिमा श्रियं मिनाति तथा वृषणः पत्नीर्नु जगम्युः ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा बाल्यावस्थामारभ्य विदुषीभिः स्त्रीभिः प्रत्यहं प्रभातसमयात् गृहकार्य्याणि पतिसेवादीनि च कर्माणि कृतानि तथा कृतब्रह्मचर्यस्त्रीपुरुषैः सर्वाणि कार्याण्यनुष्ठेयानि ॥ १ ॥

पदार्थः—जैसे (अहम्) मैं (पूर्वीः) पहिले हुईं (शरदः) वर्षों तथा (दोषाः) रात्रि (वस्तोः) दिन (जरयन्तीः) सब की अवस्था को जीर्ण करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाओं भर (शश्रमाणा) श्रम करती हुई हूं (अपि, उ) और तो जैसे (तनूनाम्) शरीरों की (जरिमा) अतीव अवस्था को नष्ट करने वाला काल (श्रियम्) लक्ष्मी को (मिनाति) विनाशता है वैसे (वृषणः) वीर्य्य सेचने वाले (पत्नीः) अपनी २ स्त्रियों को (नु) शीघ्र (जगम्युः) प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे बाल्यावस्था को ले कर विदुषी स्त्रियों ने प्रतिदिन प्रभात समय से घर के कार्य और पति की सेवा आदि कर्म किये हैं वैसे किया है ब्रह्मचर्य जिन्हों ने उन स्त्रीपुरुषों को समस्त कार्यों का अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि । ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥

ये । चित् । हि । पूर्वे । ऋतऽसापः । आसन् । साकम् । देवेभिः । अवदन् । ऋतानि । ते । चित् । अव । आसुः ।

नहि । अन्तम् । आयुः । सम् । ऊं इति । नु । पत्नीः ।
वृषऽभिः । जगम्युः ॥ २ ॥

पदार्थः–(ये) (चित्) (हि) खलु (पूर्वे) (ऋतसापः) य आप्नुवते त आपः समानाश्च ते इति सापः सत्यस्य मध्ये व्यापकाः व्यापयितारो वा विद्वांसः (आसन्) (साकम्) (देवेभिः) विद्वद्भिस्सह (अवदन्) (ऋतानि) सत्यानि (ते) (चित्) इव (अव) (आसुः) दोषान् प्रक्षिपेयुः (नहि) (अन्तम्) (आयुः) प्राप्नुवन्ति (सम्) (उ) (नु) सद्यः (पत्नीः) स्त्रियः (वृषभिः) वीर्यवद्भिः पतिभिस्सह (जगम्युः) भृशं गच्छेयुः ॥२॥

अन्वयः–ये ऋतसापः पूर्वे विद्वांसो देवेभिः साकमृतान्यवदंस्ते चिद्धि सुखिन आसन् ये नु पत्नीर्वृषभिस्सह संजग्म्युश्चिदिवाऽवासुस्त उ अन्तं नह्यायुः ॥ २ ॥

भावार्थः–अत्रोपमालं०–ब्रह्मचारिभिर्विद्यार्थिभिस्तेभ्य एवाविद्या शिक्षे ग्राह्ये। ये पूर्वमधीतविद्याःसत्याचारिणो जितेन्द्रियाः स्युस्ताभिर्ब्रह्मचारिणीभिस्सह विवाहं कुर्युर्याः स्वतुल्यगुणकर्मस्वभावा विदुष्यः स्युः ॥ २ ॥

पदार्थः–(ये) जो (ऋतसापः) सत्यव्यवहार में व्यापक वा दूसरों को व्याप्त कराने वाले (पूर्वे) पूर्व विद्वान् (देवेभिः) विद्वानों के (साकम्) साथ (ऋतानि) सत्य व्यवहारों को (अवदन्) कहते हुए (ते, चित्, हि) वेभी सुखी (आसन्) हुए। और जो (नु) शीघ्र (पत्नीः) स्त्रीजन (वृषभिः) वीर्य्यवान् पतियों के साथ (सम्, जगम्युः) निरन्तर जावें (चित्) उन के समान (अवासुः) दोषों को दूर करें वे (उ) (अन्तम्) अन्त को (नहि) नहीं (आयुः) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—ब्रह्मचर्य्यस्थ विद्यार्थियों को उन्हीं से विद्या और अच्छी शिक्षा लेनी चाहिये कि जो पहिले विद्या पढ़े हुए सत्याचारी जितेन्द्रिय हों । और उन ब्रह्मचारिणियों के साथ विवाह करें जो अपने तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाली विदुषी हों ॥ २ ॥

अथ गृहाश्रमे स्त्रीपुरुषयोः परस्परं संवादरूपाविषयमाह ॥

अब गृहाश्रम व्यवहार में स्त्री पुरुष के व्यवहार को अ० ॥

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव । यजावेदत्रं शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥

न । मृषा । श्रान्तम् । यत् । अवन्ति । देवाः । विश्वाः । इत् । स्पृधः । अभि । अश्नवाव । यजाव । इत् । अत्र । शतऽनीथम् । आजिम् । यत् । सम्यञ्चा । मिथुनौ । अभि । अजाव ॥ ३ ॥

पदार्थः—(न) निषधे (मृषा) मिथ्या (श्रान्तम्) खिद्यन्तम् (यत्) यतः (अवन्ति) रक्षन्ति (देवाः) विद्वांसः (विश्वाः) सर्वाः (इत्) एव (स्पृधः) सङ्ग्रामान् (अभि) आभिमुख्ये (अश्नवाव) व्याप्नयाव जेतुं समर्थौ स्याव (यजाव) (इत्) एव (अत्र) (शतनीथम्) शतैः प्राप्तव्यम् (आजिम्) सङ्ग्रामम् (यत्) यतः (सम्यञ्चा) सम्यगञ्चन्तौ (मिथुनौ) स्त्रीपुरुषौ (अभि) (अजाव) प्राप्नुयाव ॥ ३ ॥

अन्वयः-देवा विद्वांसो यदत्रमृषाश्रान्तन्नावन्ति तत आवां विश्वा इत् स्पृधोऽभ्यश्नवाव यद्यतो गृहाश्रमं सम्यञ्चा सन्तौ मिथुनावभ्यजाव ततः शतनीथमाजिं यजावेत् ॥ ३ ॥

भावार्थः—यत आप्ता विद्वांसो मिथ्याचारिणो मूढान् विद्यार्थिनो नाध्यापयन्ति किन्तु परित्यजन्ति ततः स्त्रीपुरुषा मिथ्याचारान् व्यभिचारादिदोषान् त्यजेयुः । यथा गृहाश्रमोत्कर्षः स्यात्तथा स्त्री पुरुषौ परस्परं धर्माचारिणौ प्रयतेताम् ॥ ३ ॥

पदार्थः-(देवाः) विद्वान् जन (यत्) जिस कारण (अत्र) इस जगत् में (मृषा) मिथ्या (श्रान्तम्) खेद करते हुए को (न) नहीं (अवन्ति) रक्षा करते हैं इस से हम(विश्वा, इत्) सभी (स्पृधः) सङ्ग्रामों को (अभि, अश्नवाव) सन्मुख होकर (यत्) जिस कारण गृहाश्रम को (सम्यञ्चा) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (मिथुनौ) स्त्रीपुरुष हम दोनों (अभ्यजाव) सब ओर से उस के व्यवहारों को प्राप्त होवें इस से (शतनीथम्) जो सैकड़ों से प्राप्त होने योग्य (आजिम्) सङ्ग्राम को (यजावेत्) जीतते ही हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिस कारण आप्त विद्वान् जन मिथ्याचारी मूढ़ विद्यार्थी जनों को नहीं पढ़ाते हैं इस से स्त्रीपुरुष मिथ्या आचार और व्यभिचारादि दोषों को त्यागें। और जैसे गृहाश्रम का उत्कर्ष हो वैसे स्त्रीपुरुष परस्पर धर्म के आचरण करने वाले हों ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् । लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥

नदस्य । मा । रुधतः । कामः । आ । अगन् । इतः ।
आऽजातः । अमुतः । कुतः । चित् । लोपामुद्रा । वृषणम् ।
निः । रिणाति । धीरम् । अधीरा । धयति । श्वसन्तम् ॥४॥

पदार्थः—(नदस्य) अव्यक्तशब्दं कुर्वतो वृषभादेः (मा) माम् (रुधतः) रेतो निरोद्धुः (कामः) (आगन्) आगच्छति प्राप्नोति (इतः) अस्मात् (आजातः) सर्वतः प्रसिद्धः (अमुतः) अमुष्मात् (कुतः) कस्मात् (चित्) अपि (लोपामुद्रा) लोप एव आमुद्रा समन्तात् प्रत्ययकारिणी यस्याः सा (वृषणम्) वीर्यवन्तम् (निः) नितराम् (रिणाति) (धीरम्) धैर्ययुक्तम् (अधीरा) धैर्यरहिता (धयति) आधरति (श्वसन्तम्) प्राणयन्तम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—इतोऽमुतः कुतश्चिदाजातो रुधतो नदस्य कामो मागन्नधीरा लोपामुद्रेयं वृषणं धीरं श्वसन्तं पतिं नीरिणाति धयति च॥४॥

भावार्थः—ये विद्याधैर्य्यादिरहिता स्त्रिय उद्वहन्ति ते सुखन्नाप्नुवन्ति । योऽकामां कन्यां यमकामं कुमारी चोद्वाहयेत्तत्र किमपि सुखं न जायते। तस्मात् परस्परं प्रीतौ सदृशौ विवाहं कुर्यातां तत्रैव मङ्गलम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(इतः) इधर से वा (अमुतः) उत्तर से वा (कुतश्चित्) कहीं से (आजातः) सब ओर से प्रसिद्ध (रुधतः) वीर्य रोकने वा (नदस्य) अव्यक्त शब्द करने वाले वृषभ आदि का (कामः) काम (मा) मुझ को (आगन्) प्राप्त होता अर्थात् उन के सदृश कामदेव उत्पन्न होता है । और (अधीरा) धीरज से रहित वा (लोपामुद्रा) लोप हो जाना लुकि जाना ही प्रतीत

का चिन्ह है जिस का सो यह स्त्री (वृषणम्) वीर्यवान् (धीरम्) धीरजयुक्त (श्वसन्तम्) श्वासें लेते हुए अर्थात् शयनादि दशा में निमग्न पुरुष को (नीरिणाति) निरन्तर प्राप्त होती और (धयति) उस से गमन भी करती है ॥४॥

भावार्थः—जो विद्या धैर्य आदि रहित स्त्रियों को विवाहते हैं वे सुख नहीं पाते हैं जो पुरुष कामरहित कन्या को वा कामरहित पुरुष को कुमारी विवाहे वहां कुछ भी सुख नहीं होता इस से परस्पर प्रीति वाले गुणों में समान स्त्री पुरुष विवाह करें वहां हीं मङ्गल समाचार है ॥ ४ ॥

अथ प्रकृतविषये महौषधिसारसङ्ग्रहविषयमाह ॥

अब प्रकृत विषय में महौषधियों के सार सङ्ग्रह को क० ॥

इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे । यत्सीमाग॑श्चकृमा तत्सुमृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

इमम् । नु । सोमम् । अन्तितः । हृत्ऽसु । पीतम् । उप । ब्रुवे । यत् । सीम् । आगः । चकृम । तत् । सु । मृळतु । पुलुऽकामः । हि । मर्त्यः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(इमम्) (नु) (सोमम्) ओषधिरसम् (अन्तितः) समीपतः (हृत्सु) हृदयेषु (पीतम्) (उप) (ब्रुवे) उपदिशामि (यत्) (सीम्) सर्वतः (आगः) अपराधम् (चकृम) कुर्य्याम । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (तत्) (सु) (मृळतु) सुखयतु (पुलुकामः) बहुकामः (हि) खलु (मर्त्यः) मनुष्यः ॥५ ॥

अन्वयः—अहं यदिमं हृत्सु पीतं सोममुपब्रुवे तत्पुलुकामो हि मर्त्यः सुमृळतु यदागो वयं चकृम तन्नु सीमन्तितस्सर्वे त्यजन्तु ॥५॥

भावार्थः—ये महौषधिरसं पिबन्ति तेऽरोगा बलिष्ठा जायन्ते ये कुपथ्यमाचरन्ति ते रोगैः पीड्यन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—मैं (यत्) जिस (इमम्) इस (हृत्सु) हृदयों में (पीतम्) पिये हुए (सोमम्) ओषधियों के रस को (उप, ब्रुवे) उपदेश पूर्वक कहता हूं उस को (पुलुकामः) बहुत कामना वाला (मर्त्यः) पुरुष (हि) ही (सुमृळतु) सुख संयुक्त करें अर्थात् अपने सुख में उस का संयोग करे । जिस (आगः) अपराध को हम लोग (चकृम) करें (तत्) उस को (नु) शीघ्र (सीम्) सब ओर से (अन्तितः) समीप से सभी जन छोड़ें अर्थात् क्षमा करें ॥५॥

भावार्थः—जो महौषधियों के रस को पीते हैं वे रोग रहित बलिष्ठ होते हैं जो कुपथ्याचरण करते हैं वे रोगों से पीड्यमान होते हैं ॥ ५ ॥

अथ सन्तानोत्पत्तिविषयमाह ॥

अब सन्तानोत्पत्तिविषय को अ० ॥

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः । उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अगस्त्यः । खनमानः । खनित्रैः । प्रऽजाम् । अपत्यम् । बलम् । इच्छमानः । उभौ । वर्णौ । ऋषिः । उग्रः । पुपोष । सत्याः । देवेषु । आशिषः । जगाम ॥ ६ ॥ २२ ॥ २३ ॥

पदार्थः—(अगस्त्यः) ये धर्मादन्यत्र न गच्छन्ति तेऽगस्तयस्तेषु साधुः (खनमानः) खनमानो भूमिमवदारयन् (खनित्रैः) खननसाधनैः (प्रजाम्) राज्यम् (अपत्यम्) सन्तानम्

(बलम्) (इच्छमानः) (उभौ) (वर्णौ) परस्परेण ध्रियमाणौ सुन्दरस्वरूपौ (ऋषिः) वेदार्थवेत्ता (उग्रः) तेजस्वी (पुपोष) पुष्णाति (सत्याः) सत्सु कर्मसु साधवः (देवेषु) विद्वत्सु कामेषु वा (आशिषः) सिद्धा इच्छाः (जगाम) गच्छति ॥ ६ ॥

अन्वयः—यथा खनित्रैर्भूमिं खनमानः कृषीवलो धान्यादिकं प्राप्य सुखी जायते तथा ब्रह्मचर्येण विद्यया प्रजामपत्यं बलमिच्छमानोऽगस्त्यः ऋषिरुग्रो विद्वान् पुपोष देवेषु सत्या आशिषो जगाम तथोभौ वर्णौ स्त्रीपुरुषौ भवेताम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा कृषीवलाः सुक्षेत्रेषु सुबीजानि उप्त्वा फलवन्तो जायन्ते । यथा च धार्मिका विद्वांसो सत्यान् कामान् प्राप्नुवन्ति तथा ब्रह्मचर्य्येण यौवनं प्राप्य स्वेच्छया विवाहं कुर्युस्ते सुक्षेत्रोत्तमबीजसम्बन्धवत्फलवन्तो भवन्ति ॥६॥

अत्र विद्वत्स्त्रीपुरुषगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इत्येकोनाशीत्युत्तरं शततमं सूक्तं द्वाविंशो वर्गस्त्रयोविंशोऽनुवाकश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—जैसे (खनित्रैः) कुद्दाल फांवड़ा कसी आदि खोदने के साधनों से भूमि को (खनमानः) खोदता हुआ खेती करने वाला धान्य आदि अनाज पाके सुखी होता है वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या से (प्रजाम्) राज्य (अपत्यम्) सन्तान और (बलम्) बल की (इच्छमानः) इच्छा करता हुआ (अगस्त्यः) निरपराधियों में उत्तम (ऋषिः) वेदार्थ वेत्ता (उग्रः) तेजस्वी विद्वान् (पुपोष) पुष्ट होता है (देवेषु) और विद्वानों में वा कामों में (सत्याः) अच्छे कर्मों

में उत्तम सत्य और (आशिषः) सिद्ध इच्छाओं को (जगाम) प्राप्त होता है वैसे (उभौ) दोनों (वर्णौ) परस्पर एक दूसरे का स्वीकार करते हुए स्त्री पुरुष होवें ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे कृषि करने वाले अच्छे खेतों में उत्तम बीजों को बोय कर फलवान् होते हैं और जैसे धार्मिक विद्वान् जन सत्य कामों को प्राप्त होते हैं वैसे ब्रह्मचर्य से युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी इच्छा से विवाह करें वे अच्छे खेत में उत्तम बीज सम्बन्धी के समान फलवान् होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ उनाशी का सूक्त वाईशवां वर्ग और तेईशवां अनुवाक समाप्त हुआ ॥

युवोरित्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य दशर्चस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ४ । ७ निचृत् त्रिष्टुप् ३ । ५ । ६ । ८ विराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः

पुनस्स्त्रीपुरुषगुणानाह ॥

अब एकसौ अस्सी सूक्त का प्रारम्भ है उस में आरम्भ से स्त्री पुरुषों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्य्यर्णांसि दीयत् । हिरण्यया वां पवयः प्रुषा-यन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥

युवोः । रजांसि । सुऽयमासः । अश्वाः । रथः । यत् । वाम् । परि । अर्णांसि । दीयत् । हिरण्ययाः । वाम् । पवयः । प्रुषायन् । मध्वः । पिबन्तौ । उषसः । सचेथे इति ॥ १ ॥

पदार्थः—(युवोः) युवयोः (रजांसि) लोकान् (सुयमासः) संयमयुक्ताः (अश्वाः) वेगवन्तो वन्ह्यादयः (रथः) यानम् (यत्) यः (वाम्) युवयोः (परि) सर्वतः (अर्णांसि) जलानि (दीयत्) गच्छेत् । दीयतीति गतिकर्मा । निघं० २ । १४ (हिरण्ययाः) सुवर्णप्रचुराः (वाम्) युवयोः (पवयः) चक्राणि (प्रुषायन्) छिन्दन्ति (मध्वः) मधुरस्य रसस्य (पिबन्तौ) (उषसः) प्रभातस्य (सचेथे) संवेते ॥ १ ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ यद्यदा युवोः सुयमासोऽश्वा रजांसि वां रथोऽर्णांसि परिदीयत् वां रथस्य हिरण्यया पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्तौ भवन्तावुषसः सचेथे ॥ १ ॥

भावार्थः—यौ स्त्रीपुरुषौ लोकविज्ञानौ पदार्थसंसाधितरथेन यायिनौ स्वलंकृतौ दुग्धादिरसं पिबन्तौ समयानुरोधेन कार्यसाधकौ स्तस्तौ प्राप्तैश्वर्यौ स्याताम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषौ (यत्) जब (युवोः) तुम दोनों को (सुयमासः) संयम चाल के नियम को पकड़े हुए (अश्वाः) वेगवान् अग्नि आदि पदार्थ (रजांसि) लोक लोकान्तरों को और (वाम्) तुम्हारा (रथः) रथ (अर्णांसि) जल स्थलों को (परि, दीयत्) सब ओर से जावें (वाम्) तुम दोनों के रथ के (हिरण्ययाः) बहुत सुवर्ण युक्त (पवयः) चाक पहिये (प्रुषायन्) भूमि को छेदते भेदते हैं तथा (मध्वः) मधुर रस को (पिबन्ता) पीते हुए आप (उषसः) प्रभातसमय का (सचेथे) सेवन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष लोक का विज्ञान रखते और पदार्थ विद्या संसाधित रथ से जाने वाले अच्छे आभूषण पहिने दुग्धादि रस पीते हुए समय के अनुरोध से कार्य्य सिद्धि करने वाले हैं वे ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

युवमत्यस्यावं नक्षथो यद्विपत्मनो नर्य्यस्य प्रयंज्योः। स्वसा यद्वां विश्वगूर्त्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥

युवम् । अत्यस्य । अव । नक्षथः । यत् । विऽपत्मनः । नर्य्यस्य । प्रऽयंज्योः । स्वसा । यत् । वाम् । विश्वगूर्त्ती इति विश्वऽगूर्त्ती । भराति । वाजाय । ईट्टे । मधुऽपौ । इषे । च ॥ २

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (अत्यस्य) अत्यस्याश्वस्य (अव) (नक्षथः) प्राप्नुथः (यत्) यौ (विपत्मनः) विशेषेण गमन शीलस्य (नर्य्यस्य) नृषु साधोः (प्रयज्योः) प्रयोक्तुं योग्यस्य (स्वसा) भगिनी (यत्) या (वाम्) युवाम् (विश्वगूर्त्ती) समग्रो द्यमौ (भराति) भरेत् (वाजाय) विज्ञानाय (ईट्टे) स्तौति (मधुपौ) मधुरं पिबन्तौ (इषे) अन्नाय (च) ॥२॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ यद्यौ युवं युवां प्रयज्योर्नर्य्यस्य विपत्मनोऽत्यस्यावनक्षथः। यद्यौ विश्वगूर्त्ती वां स्वसाभराति वाजाय चेट्टेतौ मधुपौ युवामिषे प्रयतेथाम् ॥ २ ॥

भावार्थः-यदि स्त्री पुरुषावग्न्याद्यश्वविद्यां जानीयातां तर्हि यथेष्टं गन्तुं शक्नुयात्। यस्य भगिनी विदुषी स्यात् तस्य प्रशंसा कुतो न स्यात्॥ २॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषौ (यत्) जो (युवम्) तुम दोनों (प्रयज्योः) प्रयोग करने योग्य अर्थात् कार्य्य संचार में वर्त्तने योग्य (नर्यस्य) मनुष्यों में उत्तम (विपत्मनः) विशेष चलने वाले (अत्यस्य) घोड़े को (अव, नक्षथः) प्राप्त होते हो (यत्) जिस (विश्वगूर्त्ती) समस्त उद्यम के करने वाली (वाम्) तुम दोनों को (स्वसा) बहिनि तुम्हारी (भराति) पाले पोषे (वाजाय,च) और विज्ञान होने के लिये (ईट्टे) तुम दोनों की स्तुति करती अर्थात् प्रशंसा करती वे (मधुपौ) मधुर मीठे को पीते हुए तुम दोनों (इषे) अन्नादि पदार्थों के होने के लिये उत्तम यत्न करो॥ २॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष अग्नि आदि पदार्थों को शीघ्र गामी करने की विद्या को जानें तो यथेष्ट स्थान को जा सकते हैं जिस की बहिन पंडिता हो उस की प्रशंसा क्यों न हो?॥ २॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

युवं पयं उस्रियायामधत्तं पक्कमामायामव पूर्व्यं गोः। अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान्॥ ३॥

युवम्। पर्यः। उस्रियायाम्। अधत्तम्। पक्कम्। आमायाम्। अव। पूर्व्यम्। गोः। अन्तः। यत्। वनिनः। वाम्। ऋतप्सू इत्यृतऽप्सू। ह्वारः। न। शुचिः। यजते। हविष्मान्॥ ३॥

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (पयः) दुग्धम् (उस्त्रियायाम्) गावि (अधत्तम्) दध्यातम् (पक्वम्) (आमायाम्) अप्रौढायाम् (अव) (पूर्व्यम्) पूर्वैः कृतम् (गोः) (अन्तः) (यत्) (वनिनः) रश्मिमतः (वाम्) युवयोः (ऋतप्सू) ऋतं जलं प्सातो भक्षयतस्तौ । ऋतमित्युदकना० निघं० १ । १२ (ह्वारः) ह्वरस्य क्रोधस्यायं निवारकः (न) इव (शुचिः) पवित्रः (यजते) सङ्गच्छते (हविष्मान्) शुद्धसामिग्रीयुक्तः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे ऋतप्सू युवं शुचिर्हविष्मान् ह्वारो न वामुस्त्रियायां पयो आमायां पक्वं गोः पूर्व्यं वनिनो यद्यजतेन्तरस्ति तदवाधत्तम्॥३॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा सूर्य्योरसमाकर्षति चन्द्रो वर्षयति पृथिवीं पुष्णाति तथा अध्यापकोपदेशकौ वर्त्तेतां यथा क्रोधादिदोषरहिता जनाः शान्त्यादिभिः सुखानि लभन्ते तथा युवामपि भवेतम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (ऋतप्सू) जल खाने हारे स्त्रीपुरुषो (युवम्) तुम दोनों (शुचिः) पवित्र (हविष्मान्) शुद्ध सामग्री युक्त (ह्वारः) क्रोध के निवारण करने वाले सज्जन के (न) समान (वाम्) तुम दोनों की (उस्त्रियायाम्) गौ में (यत्) जो (पयः) दुग्ध वा (आमायाम्) जो युवावस्था को नहीं प्राप्त हुई उस गौ में (पक्वम्) अवस्था से परिपक्व भाग (गोः) गौ का (पूर्व्यम्) पूर्वज लोगों ने प्रसिद्ध किया हुआ है वा (वनिनः) किरणों वाले सूर्य मण्डल के (अन्तः) भीतर अर्थात् प्रकाश रूप (यजते) प्राप्त होता है उस को (अवाधत्तम्) अच्छे प्रकार धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे सूर्य मण्डल रस को खींचता है और चन्द्रमा वर्षाता पृथिवी की पुष्ठ करता वैसे अध्यापक उपदेश करने वाले वर्त्ताव रक्खें जैसे क्रोधादि दोष रहित जन शान्ति आदि गुणों से सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे तुम भी होओ ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥

युवम् । ह । घर्मम् । मधुऽमन्तम् । अत्रये । अपः । न । क्षोदः । अवृणीतम् । एषे । तत् । वाम् । नरौ । अश्विना । पश्वःऽइष्टिः । रथ्याऽइव । चक्रा । प्रति । यन्ति । मध्वः ॥४॥

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (ह) किल (घर्मम्) दिनम् (मधुमन्तम्) मधुरादिगुणयुक्तम् (अत्रये) न सन्ति त्रीणि भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालजानि दुःखानि यस्य तस्मै सर्वदा सुख सम्पन्नाय (अपः) प्राणान् (न) इव (क्षोदः) उदकम् (अवृणीतम्) वृणीयाताम् (एषे) समन्तादिच्छवे (तत्) (वाम्) युवयोः (नरौ) नायकौ (अश्विना) विद्युदादिविद्याव्यापिनौ (पश्वइष्टिः) पशोः सङ्गतिः (रथ्येव) यथा रथेषु साधूनि (चक्रा) चक्राणि (प्रति) (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (मध्वः) मधूनि ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे नरावश्विना युवमेषेऽत्रये मधुमन्तमं घर्मं क्षोदोऽपो नाऽवृणीतं यद्वां पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा मध्वः प्रतियन्ति तद्ध युवां प्रायातम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यदि स्त्रीपुरुषौ गृहाश्रमे मधुरादिरसयुक्तानि द्रव्याणि उत्तमान् पशून् रथादीनि यानान्यप्राप्स्यतं तर्हि तयोः सर्वाणि दिनानि सुखेनागमिष्यन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (नरौ) नायक अग्रगन्ता (अश्विना) बिजुली आदि की विद्या में व्याप्त स्त्री पुरुषो (युवम्) तुम दोनों (एषे) सब ओर से इच्छा करते हुए (अत्रये) और भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों काल में जिस को दुःख नहीं ऐसे सर्वदा सुख युक्त रहने वाले पुरुष के लिये (मधुमन्तम्) मधुरादि गुणयुक्त (घर्मम्) दिन और (क्षोदः) जल को (अपः) प्राणों के (न) समान (अवृणीतम्) स्वीकार करो जिस कारण (वाम्) तुम दोनों की (पश्वइष्टिः) पशुकुल की सङ्गति (रथ्येव) रथों में उत्तम (चक्रा) पहियों के समान (मध्वः) मधुर फलों को (प्रति, यन्ति) प्रति प्राप्त होते हैं (तत्,ह) इस कारण प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—यदि स्त्रीपुरुष गृहाश्रम में मधुरादि रसों से युक्त पदार्थों और उत्तम पशुओं को रथ आदि यानों को प्राप्त होवें तो उन के सब दिन सुख से जावें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ वां दानायं ववृतीय दस्रा गोरोहेंण तौग्र्यो न जिव्रिः । अपः क्षोणी संचते माहिंना वां जूर्णो वामक्षुरंहंसो यजत्रा ॥ ५ ॥ २३ ॥

आ । वाम् । दानायं । ववृतीय । दस्रा । गोः । ओहेंन । तौग्र्यः । न । जिव्रिः । अपः । क्षोणी इति । सचते । माहिंना । वाम् । जूर्णः । वाम् । अक्षुः । अंहंसः । यजत्रा ॥ ५ ॥ २३ ॥

पदार्थः-(आ) समन्तात् (वाम्) युवाम् (दानाय) (ववृतीय) वर्त्तयामि । अत्र बहुलं छन्दसीति साभ्यासत्वम् (दस्रा) दुःखोपक्षेतारौ (गोः) पृथिव्याः (ओहेन) बीजादिस्थापनेन (तौग्र्यः) तुग्रा बलिनस्तेषु भवः (न) इव (जिव्रिः) जीर्णो वृद्धः (अपः) जलानि (क्षोणी) भूमिः (सचते) सम्बध्नाति (माहिना) महत्वेन (वाम्) युवम् (जूर्णः) रोगी (वाम्) युवाम् (अक्षुः) व्याप्तुं शीलः (अंहसः) दुष्टाचारात् (यजत्रा) सङ्गमयितारौ ॥५॥

अन्वयः-हे दस्रा यजत्रा जिव्रिस्तौग्र्यो नाहं गोरोहेण वां दानायाववृतीय यथा माहिना क्षोण्यपः सचते तथा जूर्णोहं वां सचेयमक्षुरंहसो वां पृथक्क्षयेम् ॥ ५ ॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलु०-विद्वांसो स्त्रीपुरुषेभ्य एवमुपदिशेयुर्यथा वयं युष्मभ्यं विद्या दद्याम दुष्टाचारात् पृथक्क्षयेम तथा युष्माभिरप्याचरणीयम्। पृथिवीवत् क्षमोपकारादीनि कर्माणि कर्त्तव्यानि ॥ ५ ॥

पदार्थः-हे (दस्रा) दुःख दूर करने और (यजत्रा) सर्वव्यवहार की सङ्गति कराने वाले स्त्री पुरुषो (जिव्रिः) जीर्णवृद्ध (तौग्र्यः) बलवानों में बली जन के (न) समान मैं (गोरोहेण) पृथिवी के बीज स्थापन से (वाम्) तुम दोनों को (दानाय) देने के लिये (आववृतीय) अच्छे वर्त्तूं जैसे (माहिना) बड़ी होने से (क्षोणी) भूमि (अपः) जलों का (सचते) सम्बन्ध करती है वैसे (जूर्णः) रोगवान् मैं (वाम्) तुम्हारा सम्बन्ध करूं और (अक्षुः) व्याप्त होने को शील स्वभाव वाला मैं (अंहसः) दुष्टाचार से (वाम्) तुम दोनों को अलग रक्खूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—विद्वान् जन स्त्री पुरुषों के लिये ऐसा उपदेश करें कि जैसे हम लोग तुम्हारे लिये विद्यायें देवें दुष्ट आचारों से अलग रक्खें वैसा तुम को भी आचरण करना चाहिये और पृथिवी के समान क्षमा तथा परोपकारादि कर्म करने चाहिये ॥ ५ ॥

अथ सन्तानशिक्षापरं गार्हस्थ्यकर्म्माह ॥

अब सन्तान शिक्षा परक गार्हस्थ कर्म अ० ॥

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम्। प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

नि । यत् । युवेथे इति । निऽयुतः । सुदानू इति सुऽदानू । उप । स्वधाभिः । सृजथः । पुरम्ऽधिम् । प्रेषत् । वेषत् । वातः । न । सूरिः । आ । महे । ददे । सुऽव्रतः । न । वाजम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(नि) (यत्) यदा (युवेथे) सङ्गमयथः (नियुतः) वायोर्वेगादिगुणानिव निश्चितान् पदार्थान् (सुदानू) सुष्ठुदानकर्त्तारौ (उप) (स्वधाभिः) अन्नादिभिः पदार्थैः (सृजथः) (पुरन्धिम्) प्राप्तव्यं विज्ञानम् (प्रेषत्) प्रीणीत। लेट् प्रयोगः तिपि (वेषत्) अभिगच्छतु। तिपि लेट् प्रयोगः (वातः) वायुः (न) इव (सूरिः) विद्वान् (आ) (महे) महते (ददे) (सुव्रतः) शोभनैर्व्रतैर्धर्म्यैर्नियमैर्युक्तः (न) इव (वाजम्) विज्ञानम् ॥ ६ ॥

अन्वयः–यद्यदा हे सुदानू स्त्रीपुरुषौ नियुतो नियुवेथे तदा स्वधाभिर्यस्य पुरन्धिमुपसृजथः स सूरिः प्रेषत् वातो न वेषत्। सुव्रतो न महे वाजमाददे ॥ ६ ॥

भावार्थः–अत्रोपमालं०–पित्रादयः शिल्पक्रियाकौशलतां पुत्रेषु सम्पादयेयुः । शिक्षां प्राप्ताः पुत्रादयः सर्वपदार्थान् विजानीयुः कलायन्त्रैः चलितेन वायुवद्वेगेन यानेन यत्र कुत्राभीष्टप्रदेशं स्थाने गच्छेयुः ॥ ६ ॥

पदार्थः–(यत्) जब हे (सुदानू) सुन्दर दान शील स्त्रीपुरुषो (नियुतः) पवन के वेगादि गुणों के समान निश्चित पदार्थों को (नियुवेथे) एक दूसरे से मिलाते हो तब (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से जिस के (पुरन्धिम्) प्राप्त होने योग्य विज्ञान को (उप, सृजथः) उत्पन्न करते हो वह (सूरिः) विद्वान् (प्रेषत्) प्रसन्न हो (वातः) पवन के (न) समान (वेषत्) सब ओर से गमन करे और (सुव्रतः) सुन्दर व्रत अर्थात् धर्म के अनुकूल नियमों से युक्त सज्जन पुरुष के (न) समान (महे) महत्त्व अर्थात् बडप्पन के लिये (वाजम्) विशेष ज्ञान को (आददे) ग्रहण करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—पितादिकों को चाहिये कि शिल्प क्रिया की कुशलता को पुत्रादिकों में उत्पन्न करावें शिक्षा को प्राप्त हुए पुत्रादि समस्त पदार्थों को विशेषता से जानें और कलायंत्रों से चलाये हुए पवन के समान जिस में वेग उस यान से जहां तहां चाहे हुए स्थान को जावें ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

व॒यं चि॒द्धि वां॑ जरि॒तारः॑ स॒त्या वि॑प॒न्याम॑हे॒ वि प॒णिर्हि॒तावा॑न् । अधा॑ चि॒द्धि ष्मा॑श्विनावनि॒न्द्या पा॒थो हि ष्मा॑ वृषणा॒वन्ति॑देवम् ॥ ७ ॥

वयम् । चित् । हि । वाम् । जरितारः । सत्याः । विपन्यामहे । वि । पणिः । हितऽवान् । अध । चित् । हि । स्म । अश्विनौ । अनिन्द्या । पाथः । हि । स्म । वृषणौ । अन्तिऽदेवम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(वयम्) (चित्) अपि (हि) (वाम्) युवाम् (जरितारः) स्तावकाः (सत्याः) सत्सु साधवः (विपन्यामहे) विशेषेण स्तुमहे (वि) (पणिः) व्यवहर्त्ता (हितावान्) हितं विद्यते यस्य सः (अधः) अनन्तरम् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (चित्) इव (हि) खलु (स्म) एव (अश्विनौ) सर्वपदार्थगुणव्यापिनौ स्त्रीपुरुषौ (अनिन्द्या) निन्दितुमनर्हौ (पाथः) उदकम् (हि) विस्मये (स्म) अतीते । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (वृषणौ) बलिष्ठौ (अन्तिदेवम्) अन्तिषु विद्वत्सु विद्वांसम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हेऽनिन्द्या वृषणावश्विनौ यथा हितावान् विपणिर्वां प्रशंसति तथा वां प्रशंसेम यथा चिद्धि जरितारः सत्या वयं युवां विपन्यामहे तथा स्माह्यन्तिदेवं सेवेमहि यथा हि स्म पाथश्चित् तर्पयति तथाध विदुषः सत्कुर्याम ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—मनुष्यैर्यथा विद्वांसो प्रशंसनीयान् प्रशंसन्ति निन्द्यान्निन्दन्ति तथा वर्त्तितव्यम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अनिन्द्या) निन्दा के न योग्य (वृषणौ) बलवान् (अश्विनौ) समस्त पदार्थ गुण व्यापी स्त्री पुरुषो तुम जैसे (हितावान्) हित जिस के

विद्यमान वह (विपणिः) विशेष तर व्यवहार करने वाला जन (वाम्) तुम दोनों की प्रशंसा करता है वैसे हम लोग प्रशंसा करें। वा जैसे (चित्, हि) ही (जरितारः) स्तुति प्रशंसा करने और (सत्याः) सत्य व्यवहार वर्त्तने वाले (वयम्) हम लोग तुम दोनों की (विपन्यामहे) उत्तम स्तुति करते हैं वैसे (स्म, हि) ही (अग्निदेवम्) विद्वानों में विद्वान् जन की सेवा करें वा जैसे (हि, स्म) ही आश्चर्यरूप (पाथः) जल (चित्) निश्चय से तृप्ति करता है वैसे (अध) इस के अनन्तर विद्वानों का सत्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वान् जन प्रशंसा करने योग्यों की प्रशंसा करते और निन्दा करने योग्यों की निन्दा करते हैं वैसे वर्त्ताव रक्खें ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युवां चिद्धि ष्मांश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवंणस्य सातौ । अगस्त्यो नरां नृषु प्रशंस्तः कारांधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८ ॥

युवाम् । चित् । हि । स्म । अश्विनौ । अनुं । द्यून् । विऽरुंद्रस्य । प्रऽस्रवंणस्य । सातौ । अगस्त्यः । नराम् । नृषुं । प्रऽशंस्तः । कारांधुनीऽइव । चितयत् । सहस्रैः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(युवाम्) (चित्) (हि) यतः (स्म) (अश्विनौ) सूर्य्याचन्द्रमसाविव स्त्रीपुरुषौ (अनुद्यून्) प्रतिदिनम् (विरुद्रस्य) विविधा रुद्राः प्राणा यस्मिन् तस्य (प्रस्रवणस्य) प्रकर्षेण गतस्य (सातौ) संविभक्तौ (अगस्त्यः) अगपराधमस्यन्ति प्रक्षिपन्ति

तेषु साधुः (नराम्) मनुष्याणाम् (नृषु) मनुष्येषु (प्रशस्तः) उत्तमः (काराधुनीव) कारान् शब्दान् धूनयतीव (चितयत्) संज्ञापयेत् (सहस्रैः) ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे अश्विनौ यथा युवां चिद्धि स्म विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातावनुद्यून्निजापत्यानुपादिशतं तथा नरां नृषु प्रशस्तोऽगस्त्यः सहस्रैः काराधुनीव सर्वांश्चितयत्संज्ञापयेत् ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—येऽनिशं सूर्याचन्द्रवत्सन्तानान् विद्योपदेशाभ्यां प्रकाशयन्ति ते प्रशंसिता भवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य गुण वाले स्त्री पुरुषो जैसे (युवां, चित्) तुमही (हि, स्म) जिस कारण (विरुद्रस्य) विविध प्रकार से प्राण विद्यमान उस (प्रस्रवणस्य) उत्तमता से जाने वाले शरीर की (सातौ) संभक्ति में (अनु, द्यून्) प्रति दिन अपने सन्तानों को उपदेश देओ वैसे उसी कारण (नराम्) मनुष्यों के बीच (नृषु) श्रेष्ठ मनुष्यों में (प्रशस्तः) उत्तम (अगस्त्यः) अपराध को दूर करने वाला जन (सहस्रैः) हजारों प्रकार से (काराधुनीव) शब्दों को कंपाते हुए वादित्र आदि के समान सब को (चितयत्) उत्तम चितावे ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो स्त्रीपुरुष निरन्तर सूर्य और चन्द्रमा के समान अपने सन्तानों को विद्या और उत्तम उपदेशों से प्रकाशित कराते हैं वे प्रशंसावान् होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता । धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥

प्र । यत् । वहेथे इति । महिना । रथस्य । प्र । स्पन्द्रा ।
याथः । मनुषः । न । होता । धत्तम् । सूरिऽभ्यः । उत ।
वा । सुऽअश्व्यम् । नासत्या । रयिऽसाचः । स्याम ॥ ९ ॥

पदार्थः—(प्र) (यत्) यौ (वहेथे) प्राप्नुथः (महिना) महत्वेन सह (रथस्य) रमणीयस्य (प्र) (स्पन्द्रा) प्रचलितौ (याथः) गच्छथः (मनुषः) मानवान् (न) इव (होता) दाता (धत्तम्) धरतम् (सूरिभ्यः) विद्वद्भ्यः (उत) अपि (वा) (स्वश्व्यम्) शोभना अश्वा यस्मिंस्तम् (नासत्या) सत्यस्वभावौ (रयिषाचः) ये रयिणा सह समवयन्ति ते (स्याम) भवेम ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे स्पन्द्रा नासत्या यत् युवां होता मनुषो न महिना रथस्य प्र वहेथे देशान्तरं प्रयाथस्तौ सूरिभ्यो धनं धत्तं उत वा स्वश्व्यं प्राप्नुतं यतो वयं रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्या यथा स्वसुखाय यानि साधनानीच्छेयुस्तान्येव परेषामानन्दायेच्छेयुः । ये सुपात्रेभ्योऽध्यापकेभ्यो दानं ददति ते श्रीमन्तो भवन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (स्पन्द्रा) उत्तम चाल चलने और (नासत्या) सत्य स्वभावयुक्त स्त्रीपुरुषो (यत्) जो तुम (होता) दान करने वाले (मनुषः) मनुष्य के (न) समान (महिना) बड़प्पन के साथ (रथस्य) रमण करने योग्य विमानादि रथ को (प्रवहेथे) प्राप्त होते और (प्रयाथः) एक देश से दूसरे देश पहुंचाते हो वे आप (सूरिभ्यः) विद्वानों के लिये धन को (धत्तम्) धारण करो (उत, वा) अथवा (स्वश्व्यम्) सुन्दर घोड़ा जिस में विराजमान उत्तम धनादि विभव को प्राप्त होओ जिस से हम लोग (रयिसाचः) धन के साथ सम्बन्ध करने वाले (स्याम) हों ॥ ९ ॥

वैदिकयंत्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेजकर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को ५०) वा इस से अधिक पर १०) रु० १००) वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जायंगे (३) डाक महसूल किसी से न लिया जायगा। (४) २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिष्टरी कर भेजे जायंगे (५) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें॥

ऋग्वेदभाष्य अं० १—९५	३१॥≡)
यजुर्वेदभाष्य अं० १-९५	३१।≡)
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	
विना जिल्द की	५।/)
जिल्द की	६)
वर्णोच्चारण शिक्षा	/)
„ (डाकव्यय)	)॥
सन्धिविषय	॥)
नामिक	॥)
कारकीय	।/)
सामासिक	॥)
स्त्रैणताद्धित	१।)
अव्ययार्थ	≡)
आख्यातिक	२।)
सौवर	≡)
पारिभाषिक	।)
धातुपाठ	॥)
गणपाठ	।≡)
उणादिकोष	॥।)
निघण्टु	॥)
अष्टाध्यायी मूल	।/)

संस्कृतवाक्यप्रबोध	।)
व्यवहारभानु	।)
भ्रमोच्छेदन	/)
अनुभ्रमोच्छेदन	/)
मेलाचान्दापुर	/)
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)॥
गोकरुणानिधि	/)॥
स्वामीनारायण मतखण्डन	
संस्कृतगुजराती	/)
उक्त गुजराती	/)
वेदविरुद्धमतखण्डन	।)
शास्त्रार्थकाशी	/)
आर्याभिविनय	।/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	/)
भ्रान्तिनिवारण	/)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	।)
सत्यार्थप्रकाश	२॥)
„ (विना कमीशन)	
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।
„ (डाकव्यय अलग)	

रसीदमूल्यवेदभाष्य

श्रीयुत पण्डित रामचन्द्र जी मन्त्री आर्यसमाज	नेटा	४)
„ बाबू खागल प्रसाद जी हेडक्लर्क डांकखाना	रायबरेली	४)
„ पं० केशव राम विष्णुलाल पंड्या जी	फैजाबाद	८)
„ मुं० जयंती प्रसाद जी महाफिज दफतर जजी	गाजीपुर	२०)
„ पं० पुत्तूलाल जी मुदर्रिस चौबेपुर जिला	कानपुर	५)
„ बाबू विष्णुमोरेश्वर फर्स्टक्लास सबजज	शोलापुर	२५)
„ बाबू गोपालदास डाक्टर	खैरवाड़ा	४)
		७०)

रसीदधर्मार्थवेदभाष्य

श्रीयुत बाबू खागल प्रसाद जी हेडक्लर्क डाकघर	रायबरेली	१)

आर्यसिद्धान्त

सर्वसज्जन महाशयों को विदित किया जाता है कि श्री १०८ स्वामीदयानन्दसरस्वती जी के सिद्धान्त पर जो आक्षेप किया करते हैं उन के उत्तर देने तथा आर्यसिद्धान्त यथार्थरूप से दर्शाने के लिये एक पत्र "आर्यसिद्धान्त" नामक प्रति पौर्णमासी को वैदिकयन्त्रालय से प्रकाशित हुआ करता है वार्षिक मूल्य १।) मात्र डांकव्यय सहित रक्खा गया है जिन महाशयों को उक्त पत्र लेना स्वीकार हो वह "सम्पादक आर्यसिद्धान्तपत्र, वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग" के नाम से पत्र और अग्रिम वार्षिकमूल्य भेज कर शीघ्र सूचित करें जो उन महाशयों का नामग्राहक श्रेणी में लिखा जावे ॥

ज्वालादत्त शर्मा

स्थानापन्न प्रबन्धकर्ता

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग

ऋग्वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=) एकवेदाङ्कवार्षिकम् ४) द्विवेदाङ्कवार्षिकं तु ८)

इसग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।/) एक साथ छपे हुए दो अंकों का ॥/) एक वेद के अङ्कों का वार्षिक मूल्य ४) और दोनों वेदों के अंकों का ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालय मेनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है

पुस्तक (११६, ११७) अंक (१००, १०१)

अयं ग्रंथः प्रयागनगरे वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४४ चैत्र कृष्ण पक्ष

१—३—८८

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" और "यजुर्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क ऋग्वेद के और दूसरे मास में उतने ही बड़े दो अङ्क यजुर्वेद के अर्थात् १ वर्ष में १२ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के और १२ अङ्क "यजुर्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्त्तमान दशवें वर्ष के कि जो ९० । ९१ अङ्क से प्रारंभ हो कर १०० । १०१ पर पूरा होगा। एक वेद के ४) रु० और दोनों वेदों के ८) रु० हैं ॥

[४] पीछे के नव वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है इस का मूल्य यह है:-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ५।/)

" स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ६)

[ख] एक वेद के ८९ अङ्क तक २९ ॥=) और दोनों वेदों के ५९ ।=)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की चौथी तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।=) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलें गे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेजदें और पुस्तक के न लेने से प्रबंध कर्त्ता को सूचित करदें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे ॥

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायं गे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पते से प्रबंधकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" संबन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्ध कर्त्ता वैदिक यंत्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये जिन साधनों की इच्छा करें उन्हीं को औरों के आनन्द के लिये चाहें जो सुपात्र पढ़ाने वालों को धनदान देते हैं वे श्रीमान् धनवान् होते हैं ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् । अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ २४ ॥

तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम । स्तोमैः । अश्विना । सुविताय । नव्यम् । अरिष्टऽनेमिम् । परि । द्याम् । इयानम् । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ १० ॥ २४ ॥

पदार्थः-(तम्) पूर्वमन्त्रप्रतिपादितम् (वाम्) युवयोः (रथम्) रमणीयं विमानादियानम् (वयम्) (अद्य) अस्मिन् दिने । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (हुवेम) स्वीकुर्याम (स्तोमैः) प्रशंसाभिः (अश्विना) हे सर्वगुणव्यापिनौ स्त्रीपुरुषौ (सुविताय) ऐश्वर्य्याय (नव्यम्) नवीनम् (अरिष्टनेमिम्) दुःखनिवारकम् (परि) सर्वतः (द्याम्) आकाशम् (इयानम्) गच्छन्तम् (विद्याम) विजानीयाम (इषम्) प्राप्तव्यं सुखम् (वृजनम्) गमनम् (जीरदानुम्) जीवम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे अश्विना वयमद्य सुविताय स्तोमैररिष्टनेमिं नव्यं द्यां परीयानं तं वां रथं हुवेमेषं वृजनं जीरदानुञ्च विद्याम ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यैः सदैव नवीनानि २ विद्याकार्याणि साधनीयानि । येनाऽत्र प्रशंसा स्यादाकाशादिषु गमनेनेच्छासिद्धिश्च प्राप्येत ॥१०॥

अत्र स्त्रीपुरुषगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

इत्यशीत्युत्तरं शततमं सूक्तं चतुर्विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सर्वगुणव्यापी पुरुषो (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये (स्तोमैः) प्रशंसाओं से (अरिष्टनेमिम्) दुःखनिवारक (नव्यम्) नवीन (द्याम्) आकाश को (परि, इयानम्) सब ओर से जाते हुए (तम्) उस पूर्व मन्त्रोक्त (वाम्) तुम दोनों के (रथम्) रथ को (हुवेम) स्वीकार करें तथा (इषम्) प्राप्तव्य सुख (वृजनम्) गमन और (जीरदानुम्) जीव को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदैव नवीन २ विद्या के कार्य सिद्ध करने चाहिये जिस से इस संसार में प्रशंसा हो और आकाशादिकों में जाने से इच्छा सिद्धि पाई जावे ॥ १० ॥

इस सूक्त में स्त्री पुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्तार्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह १८० एक सौ अस्सी का सूक्त और चौवीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

कदित्यस्य नवर्चस्यैकाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ४ । ६ । ७ । ८ । ९ निचृत् त्रिष्टुप् । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथाश्विदृष्टान्तेनाध्यापकोपदेशकगुणानाह ॥

अब एक सौ इक्यासी सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अश्विपद वाच्यों के दृष्टान्त से अध्यापक और उपदेशक के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

कदु प्रेष्ठा॑विषां र॑यीणाम॑ध्वर्यन्ता यदु॑न्निनी॑थो अपाम् । अयं वां य॒ज्ञो अ॑कृत प्रश॑स्तिं वसु॑धिती अवि॑तारा जनानाम् ॥ १ ॥

कत् । ऊं इति॑ । प्रेष्ठौ॑ । इ॒षाम् । र॒यीणाम् । अ॒ध्व॒र्यन्ता॑ । यत् । उ॒त्ऽनि॒नी॑थः । अ॒पाम् । अ॒यम् । वा॒म् । य॒ज्ञः । अ॒कृ॒त । प्रऽश॑स्तिम् । वसु॑धिती॒ इति॑ वसु॑ऽधिती । अवि॑तारा । ज॒ना॒नाम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(कत्) कदा (उ) (प्रेष्ठौ) प्रीणीत इति प्रियौ इगुपधेति कः । अतिशयेन प्रियौ प्रेष्ठौ (इषाम्) अन्नानाम् (रयीणाम्) (अध्वर्यन्ता) आत्मनोऽध्वरमिच्छन्तौ (यत्) (उन्निनीथः) उत्कर्षं प्राप्नुथः (अपाम्) जलानां प्राणानां वा (अयम्) (वाम्) युवयोः (यज्ञः) (अकृत) करोति (प्रशस्तिम्) प्रशंसाम् (वसुधिती) यौ वसूनि धरतस्तौ (अवितारा) रक्षितारौ (जनानाम्) मनुष्याणाम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इषां रयीणां प्रेष्ठौ जनानामवितारा वसुधिती अध्यापकोपदेशकौ युवां कदुकदाचिदध्वर्यन्ता यदपामुन्निनीथः सोऽयं वां यज्ञो प्रशस्तिमकृत ॥ १ ॥

भावार्थः—यदा विद्वांसो मनुष्यान् विद्या नयन्ति तदा ते सर्वप्रिया ऐश्वर्यवन्तो भवन्ति । यदाऽध्ययनाऽध्यापनेन सुगन्ध्यादिहोमेन च जीवात्मनो जलानि च शोधयन्ति तदा प्रशंसामाप्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इषाम्) अन्न और (रयीणाम्) धनादि पदार्थों के विषय (प्रेष्ठौ) अत्यन्त प्रीति वाले (जनानाम्) मनुष्यों की (अवितारा) रक्षा और (वसुधिती) धनादि पदार्थों को धारण करने वाले अध्यापक और उपदेशको तुम (कत् , उ) कभी (अध्वर्यन्ता) अपने को यज्ञ की इच्छा करते हुए (यत्) जो (अपाम्) जल वा प्राणों की (उत् , निनीथः) उन्नति को पहुंचाते अर्थात् अत्यन्त व्यवहार में लाते हैं सो (अयम्) यह (वाम्) तुम्हारा (यज्ञः) द्रव्यमय वा वाणीमय यज्ञ (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को (अकृत) करता है ॥ १ ॥

भावार्थः—जब विद्वान् जन मनुष्यों को विद्याओं की प्राप्ति कराते हैं तब वे सब के पियारे ऐश्वर्यवान् होते हैं जब पढ़ने और पढ़ाने से और सुगन्धादि पदार्थों के होम से जीवात्मा और जलों की शुद्धि कराते हैं तब प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः । मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥

आ । वाम् । अश्वासः । शुचयः । पयःऽपाः । वातऽरंहसः । दिव्यासः । अत्याः । मनःऽजुवः । वृषणः । वीतऽपृष्ठाः । आ । इह । स्वऽराजः । अश्विना । वहन्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (वाम्) युवयोः (अश्वासः) शीघ्रगामिनः (शुचयः) पवित्राः (पयस्पाः) पयस उदकस्य पातारः (वातरंहसः) वातस्य रंहो गमनमिव गमनं येषान्ते (दिव्यासः) (अत्याः) सततगमनाः (मनोजुवः) मनसइव जूर्वेगो येषान्ते (वृषणः) शक्तिबन्धकाः (वीतपृष्ठाः) वीतं व्याप्तं पृष्ठं पृथिव्यादितलं यैस्ते (आ) अभितः (इह) अस्मिन् संसारे (स्वराजः) स्वयं राजमानाः (अश्विना) वायुविद्युदिव वर्त्तमानौ (वहन्तु) प्राप्नुवन्तु ॥ २ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसौ ये ऽश्वासः शुचयः पयस्पा दिव्यासो वातरंहसो मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा स्वराजो अत्या आसन्ति त इह वामश्विनाऽऽवहन्तु ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्वांसो यान् विद्युदादिपदार्थान् गुणकर्मस्वभावतो विजानीयुस्तानन्येभ्योऽप्युपदिशन्तु यावन्मनुष्याः सृष्टिपदार्थविद्या न जानन्ति तावदखिलं सुखन्नाप्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (अश्वासः) शीघ्रगामी घोड़े (शुचयः) पवित्र (पयस्पाः) जल के पीने वाले (दिव्यासः) दिव्य (वातरंहसः) पवन के समान वेग वा (मनोजुवः) मनोवद्वेग वाले (वृषणः) परशक्ति बन्धक (वीतपृष्ठाः) जिन्हों से पृथिवी तल व्याप्त (स्वराजः) जो आप प्रकाशमान

(अत्याः) निरन्तर जाने वाले (आ) अच्छे प्रकार हैं वे (इह) इस स्थान में (वाम्) तुम (अश्विना) अध्यापक और उपदेशकों को (आ, वहन्तु) पहुंचावें ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्वान् जन जिन बिजुली आदि पदार्थों को गुण कर्म स्वभाव से जानें और उन का औरों के लिये भी उपदेश देवें जब तक मनुष्य सृष्टि की पदार्थविद्या को नहीं जानते तब तक संपूर्ण सुख को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवंधुरः सुवितायं गम्याः । वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥ ३ ॥

आ । वाम् । रथः । अवनिः । न । प्रवत्वान् । सृप्रऽवंधुरः । सुवितायं । गम्याः । वृष्णः । स्थातारा । मनसः । जवीयान् । अहम्ऽपूर्वः । यजतः । धिष्ण्या । यः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (वाम्) युवयोः (रथः) यानम् (अवनिः) पृथिवी (न) इव (प्रवत्वान्) प्रशस्ता प्रवतो वेगादयो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् (सृप्रवन्धुरः) सृप्रैः सद्गतैर्वन्धुरैर्वन्धनैर्युक्तः (सुविताय) ऐश्वर्याय (गम्याः) गमयितुं योग्याः (वृष्णः) बलवतः (स्थातारा) स्थातारौ (मनसः) (जवीयान्) अतिशयेन वेगवान् (अहंपूर्वः) अयमहमित्यात्मज्ञानेन पूर्णः (यजतः) सङ्गतः (धिष्ण्या) धिष्णौ प्रगल्भौ (यः) ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे स्थातारा धिष्णया यो वामवनिर्न प्रवत्वान्नृप्रबन्धुरो मनसो जवीयान् अहंपूर्वो यजतो रथः सुविताय भवति यत्र वृष्ण आगम्याः प्रयुज्यन्ते तमहं साध्नुयाम ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरैश्वर्योन्नतये पृथिवीवन्मनोवेगवद्वेगवन्ति यानानि निर्मीयन्ते तेऽत्र दृढा स्थिरसुखा जायन्ते ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (स्थातारा) स्थित होने वाले (धिष्ण्या) धृष्टप्रगल्भ अध्यापक और उपदेशको (यः) जो (वाम्) तुम्हारा (अवनिः) पृथिवी के (न) समान (प्रवत्वान्) जिस में प्रशस्त वेगादि गुण विद्यमान (नृप्रबन्धुरः) जो मिले हुए बन्धनों से युक्त (मनसः) मन से भी (जवीयान्) अत्यन्त वेगवान् (अहंपूर्वः) यह मैं हूं इस प्रकार आत्मज्ञान से पूर्ण (यजतः) मिला हुआ (रथः) रथ (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये होता है जिस में (वृष्णः) बलवान् (आ, गम्याः) चलाने को योग्य अग्न्यादि पदार्थ अच्छे प्रकार जोड़े जाते हैं उस को मैं सिद्ध करूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों से जो ऐश्वर्य्य की उन्नति के लिये पृथिवी के तुल्य वा मन के वेग तुल्य वेगवान् यान बनाये जाते हैं वे यहां स्थिर सुख देने वाले होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः। जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥

इहऽइ॑ह । जा॒ता । सम् । अ॒वा॒व॒शी॒ता॒म् । अ॒रे॒पसा॑ । त॒न्वा॑ । नाम॑ऽभिः । स्वैः । जि॒ष्णुः । वा॒म् । अ॒न्यः । सुऽम॑खस्य । सू॒रिः । दि॒वः । अ॒न्यः । सु॒ऽभगः॑ । पु॒त्रः । ऊ॒हे ॥४॥

पदार्थः—(इहेह) अस्मिञ्जगति । अत्र वीप्सायां द्वित्वं प्रकर्षद्योतनार्थम् (जाता) जातौ (सम्) सम्यक् (अवावशीताम्) भृशं कामयेथाम् । वशकान्तावित्यस्य यङ्लुगन्तं लङि रूपम् (अरेपसा) न विद्यते रेपः पापं ययोस्तौ (तन्वा) शरीरेण (नामभिः) आख्याभिः (स्वैः) स्वकीयैः (जिष्णुः) जेतुं शीलः (वाम्) युवयोर्मध्ये (अन्यः) द्वितीयः (सुमखस्य) (सूरिः) विद्वान् (दिवः) प्रकाशात् (अन्यः) (सुभगः) सुन्दरैश्वर्यः (पुत्रः) यः पुनाति सः (ऊहे) वितर्कयामि ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे अरेपसाऽश्विनौ युवयोरिहेह जाता युवां स्वया तन्वा स्वैर्नामभिः समवावशीताम् । वां जिष्णुरन्यः सुमखस्य दिवः सूरिरन्यः सुभगः पुत्रोऽस्ति तमहमूहे ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्या अस्यां सृष्टौ भूगर्भादिविद्यां विज्ञाय यो जेताऽध्यापको बह्वैश्वर्य्यः सर्वस्य रक्षकः पदार्थविद्यां तर्केण विजानीयात् स प्रसिद्धो जायते ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अरेपसा) निष्पाप सर्वगुण व्यापी अध्यापक और उपदेशक जन (इहेह) इस जगत् में (जाता) प्रसिद्ध हुए आप लोगो अपने (तन्वा) शरीर से और (स्वैः) अपने (नामभिः) नामों के साथ (सम् , अवावशीताम्) निरन्तर कामना करने वाले हूजिये (वाम्) तुम में से (जिष्णुः) जीतने को

स्वभाव वाला (अन्यः) दूसरा (सुमखस्य) सुख के (दिवः) प्रकाश से (सूरिः) विद्वान् (अन्यः) और (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्यवान् (पुत्रः) पवित्र करता है उस को (ऊहे) तर्कता हूं—तर्क से कहता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो इस सृष्टि में भूगर्भादि विद्या को जान के जो जीतने ने वाला अध्यापक बहुत ऐश्वर्य वाला मन का रक्षक पदार्थ विद्या को तर्क से जाने वह प्रसिद्ध होता है ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः । हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥ २५ ॥

प्र । वाम् । निऽचेरुः । ककुहः । वशान् । अनु । पिशङ्गऽरूपः । सदनानि । गम्याः । हरी इति । अन्यस्य । पीपयन्त । वाजैः । मथ्ना । रजांसि । अश्विना । वि । घोषैः ॥५॥ २५॥

पदार्थः—(प्र) (वाम्) युवयोः (निचेरुः) चरन् (ककुहः) सर्वा दिशः (वशान्) वशवर्त्तिनः (अनु) आनुकूल्ये (पिशङ्गरूपः) पिशङ्गं पीतं सुवर्णादिमिश्रितं रूपं यस्य सः (सदनानि) भुवनानि (गम्याः) गच्छेः (हरी) धारणाकर्षणाविव बलपराक्रमौ (अन्यस्य) (पीपयन्त) आप्याययन्ति (वाजैः) वेगादिभिर्गुणैः (मथ्ना) मथ्नानि मथितानि (रजांसि) लोकान् (अश्विना) वायुसूर्यवदध्यापकोपदेशकौ (वि) (घोषैः) शब्दैः ॥५॥

अन्वयः—हे अश्विना ययोर्वां पिशङ्गरूपो ककुहो निचेरूरथो वशाननुवर्त्तते तयोः प्रत्येकस्त्वं सदनानि प्रगम्याः । यथाऽन्यस्य हरी वाजैर्घोषैश्च प्रमथ्ना रजांसि वर्द्धयतस्तथा जनास्तौ विपीपयन्त ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा वायुः सर्वान् वशयति वायुसूर्यौ लोकान् धरतः । तथा विद्याधर्मौ धृत्वा यूयं सुखिनो भवत ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) पवन और सूर्य के समान अध्यापक और उपदेशको जिन (वाम्) तुम्हारा जैसे (पिशङ्गरूपः) पीला सुवर्ण आदि से मिला हुआ रूप है जिस का वह (ककुहः) सब दिशाओं को (निचेरुः) विचरने वाला (वशान्) वशवर्त्ति जनों को (अनु) अनुकूल वर्त्तता है उन में से प्रत्येक तुम (सदनानि) लोकों को (प्र, गम्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ जैसे (अन्यस्य) और अर्थात् अपने से भिन्न पदार्थ की (हरी) धारण और आकर्षण के समान बल पराक्रम (वाजैः) वेगादि गुणों और (घोषैः) शब्दों से (मथ्ना) अच्छे प्रकार मथे हुए (रजांसि) लोकों को बढ़ाते हैं वैसे मनुष्य उन को (वि, पीपयन्त) विशेष कर परिपूर्ण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे पवन सब को अपने वश में करता है तथा वायु और सूर्य लोक सब को धारण करते हैं वैसे विद्या धर्म्म को धारण कर तुम भी सुखी होओ ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् । एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥

प्र । वाम् । शरत्ऽवान् । वृषभः । न । निष्षाट् । पूर्वीः ।
इषः । चरति । मध्वः । इष्णन् । एवैः । अन्यस्य । पीपयन्त ।
वाजैः । वेषन्तीः । ऊर्ध्वाः । नद्यः । नः । आ । अगुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(प्र) प्रकर्षे (वाम्) युवयोः (शरद्वान्) शरदो या ऋतवस्ता विद्यन्ते यस्मिन् सः (वृषभः) वृष्टिकर्त्ता (न) इव (निष्षाट्) यो नितरां सहते (पूर्वीः) पूर्वं प्राप्ताः (इषः) ज्ञातव्याः प्रजाः (चरति) प्राप्नोति (मध्वः) मधूनि (इष्णन्) इच्छन् (एवैः) प्रापकैः (अन्यस्य) भिन्नस्य (पीपयन्त) वर्द्धयन्ति (वाजैः) वेगैः (वेषन्तीः) व्याप्नुवत्यः (ऊर्ध्वाः) ऊर्ध्व गामिन्यो ज्वालाः (नद्यः) सरितः (नः) अस्मान् (आ) समन्तात् (अगुः) व्याप्नुवन्तु ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे अध्यापकोपदेशकौ यथा वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्नेवैरन्यस्य पूर्वीरिषः प्राप्नोति तथा वाजैस्सह वर्त्तमाना ऊर्ध्वा वेषन्तीर्नद्योऽनोस्मान् प्रपीपयन्त आगुः॥६॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—य आप्तयोरध्यापकोपदेशकयोः सकाशाद्विद्याः प्राप्याऽन्यान्ददति तेऽग्निवत्तेजस्विनः शुद्धा भूत्वा सर्वतो वर्त्तन्ते ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे अध्यापकोपदेशक जनो जैसे (वाम्) तुम्हारा (शरद्वान्) शरद् जो ऋतुयें वे जिस में विद्यमान वह (वृषभः) वर्षा कराने वाला जो सूर्य्यमण्डल उस के (न) समान (निष्षाट्) निरन्तर सहनशील जन (पूर्वीः) अगले समय में प्राप्त हुई प्रजा (इषः) और जानने योग्य प्रजा जनों को (चरति) प्राप्त होता है वा (मध्वः) मधुर पदार्थों को (इष्णन्) चाहता

हुआ (एवैः) प्राप्ति कराने वाले पदार्थों से (अन्यस्य) दूसरे की पिछिला वा जानने योग्य अगली प्रजाओं को प्राप्त होता है वैसे (वाजैः) वेगों के साथ वर्त्तमान (ऊर्द्ध्वाः) ऊपर को जाने वाली लपटें वा (वेषन्तीः) इधर उधर व्याप्त होने वाली (नद्यः) नदियां (नः) हम लोगों को (प्र, पीपयन्त) वृद्धि दिलाती हैं और (आगुः) प्राप्त होती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो आप्त अध्यापक और उपदेशकों से विद्याओं को प्राप्त हो के औरों को देते हैं वे अग्नि के तुल्य तेजस्वी शुद्ध हो कर सब ओर से वर्त्तमान हैं ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाढे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती । उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

असर्जि । वाम् । स्थविरा । वेधसा । गीः । बाढे । अश्विना । त्रेधा । क्षरन्ती । उपऽस्तुतौ । अवतम् । नाधमानम् । यामन् । अयामन् । शृणुतम् । हवम् । मे ॥ ७ ॥

पदार्थः—(असर्जि) (वाम्) युवयोः (स्थविरा) स्थूला विस्तीर्णा (वेधसा) प्राज्ञौ (गीः) वाणी (बाढे) प्रापणे (अश्विना) सत्योपदेशव्यापिनौ (त्रेधा) त्रिप्रकारैः (क्षरन्ती) प्राप्नुवन्ती (उपस्तुतौ) निकटे प्रशंसितौ (अवतम्) प्राप्नुतम् (नाधमानम्) विद्यैश्वर्य्यवन्तं संपादितवन्तम् (यामन्) यामनि सत्ये मार्गे (अयामन्) अगन्तव्ये मार्गे (शृणुतम्) (हवम्) श्रोतुमर्हं शब्दम् (मे) मम ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे वेधसाऽश्विना वां या स्थविरा त्रेधा क्षरन्ती गीर्वाढेऽसर्जि तामुपस्तुतौ सन्तौ युवामवतं वां नाधमानं मे मम हवं यामन्नयामञ्छृणुतम् ॥ ७ ॥

भावार्थः—य आप्तवाचं शृण्वन्ति ते कुमार्गं विहाय सुमार्गं प्राप्नुवन्ति । ये मनःकर्मभ्यां मिथ्या वक्तुन्नेच्छन्ति ते माननीया भवन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (वेधसा) प्राज्ञ उत्तम बुद्धि वाले (अश्विना) सत्योपदेश व्यापी अध्यापकोपदेशको (वाम्) तुम्हारी जो (स्थविरा) स्थूल और विस्तार को प्राप्त (त्रेधा) तीन प्रकारों से (क्षरन्ती) प्राप्त होती हुई (गीः) वाणी (वाढे) प्राप्ति कराने वाले व्यवहार में (असर्जि) रची गई उस को (उपस्तुतौ) अपने समीप दूसरे से प्रशंसा को प्राप्त होते हुए तुम दोनों (अवतम्) प्राप्त होओ तुम दोनों को (नाधमानम्) विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त संपादित करता हुआ अर्थात् तुम्हारे ऐश्वर्य्य को वर्णन करते हुए (मे) मेरे (हवम्) सुनने योग्य शब्द को (यामन्) सत्य मार्ग (अयामन्) और न जाने योग्य मार्ग में (शृणुतम्) सुनिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को सुनते हैं वे कुमार्ग को छोड़ सुमार्ग को प्राप्त होते हैं जो मन और कर्म से झूठ बोलने को नहीं चाहते वे माननीय होते हैं ॥ ७ ॥

पुनरध्यापकोपदेशकविषयमाह ॥

फिर अध्यापकोपदेशक वि० ॥

उत स्या वां रुशतो वप्संसो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् । वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

उत। स्या। वाम्। रुशतः। वप्ससः। गीः। त्रिऽब्र्हिषि। सदसि। पिन्वते। नॄन्। वृषा। वाम्। मेघः। वृषणा। पीपाय। गोः। न। सेके। मनुषः। दशस्यन्॥ ८ ॥

पदार्थः—(उत) अपि (स्या) सा (वाम्) युवयोः (रुशतः) प्रकाशितस्य (वप्ससः) सुरूपस्य (गीः) वाक् (त्रिबर्हिषि) त्रयो वेदवेत्तारो वृद्धा यस्यां तस्याम् (सदसि) सभायाम् (पिन्वते) सेवते (नॄन्) नायकान् मनुष्यान् (वृषा) (वाम्) युवयोः (मेघः) मेघ इव (वृषणा) दुष्टसामर्थ्यबन्धकौ (पीपाय) आप्याययति वर्द्धयति (गोः) पृथिव्याः (न) इव (सेके) सिञ्चने (मनुषः) मनुष्यान् (दशस्यन्) अभिमतं प्रयच्छन्॥८॥

अन्वयः—हे वृषणा वां रुशतो वप्ससो या गीः स्या त्रिबर्हिषि सदसि नॄन् पिन्वते तां वां यो वृषा मेघो दशस्यन् गोः सेके न च व्यवहारे मनुषः पीपाय तमुत वयं सेवेमहि ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—मनुष्या यदा सत्यं वदन्ति तदा मुखाऽऽकृतिर्मलीना न भवति यदा मिथ्या वदन्ति तदा मुखं मलीनं जायते। यथा पृथिव्यामौषधानां वर्द्धको मेघस्तथा ये सभासद उपदेश्यांश्च सत्यभाषणेन वर्द्धयन्ति ते सर्वेषां हितैषिणो भवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (वृषणा) दुष्टों की सामर्थ्य बांधने वाले अध्यापकोपदेशको (वाम्) तुम दोनों के (रुशतः) प्रकाशित (वप्ससः) रूप की जो (गीः) वाणी है (स्या) वह (त्रिबर्हिषि) तीन वेदवेत्ता वृद्ध जिस में हैं उस

(सद्मनि) सभा में (नॄन्) अग्रगन्ता मनुष्यों को (पिन्वते) सेवती है और (वाम्) तुम दोनों का जो (वृषा) सेचने में समर्थ (मेघः) मेघ के समान वाणी विषय (दशस्यन्) चाहे हुए फल को देता हुआ (गोः) पृथिवी के (सेके) सेचन में (न) जैसे वैसे अपने व्यवहार में (मनुषः) मनुष्यों की (पीपाय) उन्नति कराता है उस को (उत) भी हम सेवें ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्य जब सत्य कहते हैं तब उन के मुख की आकृति मलीन नहीं होती और जब झूंठ कहते हैं तब उन का मुख मलीन हो जाता है जैसे पृथिवी पर ओषधियों का बढ़ाने वाला मेघ है वैसे जो सभासद् उपदेश करने योग्यों को सत्यभाषण से बढाते हैं वे सब हितैषी होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् । हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥ २६ ॥

युवाम् । पूषाऽइव । अश्विना । पुरम्ऽधिः । अग्निम् । उषाम् । न । जरते । हविष्मान् । हुवे । यत् । वाम् । वरिवस्या । गृणानः । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ९ ॥ २६ ॥

पदार्थः—(युवाम्) (पूषेव) पुष्टिकर्त्ता सूर्य्यइव (अश्विना) सत्योपदेशक रक्षयितः (पुरन्धिः) यः पुरं जगद्धरति सः (अग्निम्) पावकम् (उषाम्) उषसं प्रभातवेलाम् (न) इव (जरते) स्तौति

(हविष्मान्) प्रशस्तानि हवींषि दानानि विद्यन्ते यस्य सः (हुवे) स्वीकरोमि (यत्) यः (वाम्) युवयोः (वरिवस्या) वरिवासि परिचर्य्यायां भवानि सेवनकर्माणि (गृणानः) स्तुवन् (विद्याम) विजानीयाम (इषम्) विज्ञानम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) दीर्घं जीवनम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे अश्विनाऽग्निमुषां यत् पुरन्धिः पूषेव हविष्मान् युवां न जरते तथा वां वरिवस्या स गृणानः सन्नहं युवां हुवे । एवं कुर्वन्तो वयमिषं वृजनं जीरदानुञ्च विद्याम ॥ ९ ॥

भावार्थः अत्रोपमालं०—यथा सूर्यः सर्वेषां पुष्टिकरोऽग्निं प्रभातकालं चाविः करोति तथा प्रशस्तदानशीलः पुरुषो विद्वद्गुणानाख्यापयति ॥ ९ ॥

अस्मिन् सूक्तेऽश्विदृष्टान्तेनाऽध्यापकोपदेशकगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्येकाशीत्युत्तरं शततमं सूक्तं षड्विंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सत्योपदेश और रक्षा करने वाले विद्वानो (अग्निम्) अग्नि और (उषाम्) प्रभात वेला को (यत्) जो (पुरन्धिः) जगत् को धारण करने और (पूषेव) पुष्टि करने वाले सूर्य के समान (हविष्मान्) प्रशस्त दान जिस के विद्यमान वह जन (युवाम्) तुम दोनों की (न) जैसे (जरते) स्तुति करता है वैसे (वाम्) तुम दोनों की (वरिवस्या) सेवा में हुए कर्मों की (गृणानः) प्रशंसा करता हुआ वह मैं तुम को (हुवे) स्वीकार करता हूं ऐसे करते हुए हम लोग (इषम्) विज्ञान (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) दीर्घजीवन को (विद्याम) जानें ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सूर्य सब की पुष्टि करने वाला अग्नि और प्रभात समय को प्रकट करता वैसे प्रशंसित दानशील पुरुष विद्वानों के गुणों को अच्छे प्रकार कहता है ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अश्वि के दृष्टान्त से अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की संगति पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ इक्याशी का सूक्त और छव्वीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अभूदित्यष्टर्चस्य द्व्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ५ । ७ निचृज्जगती । ३ जगती । ४ विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ । ८ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ विद्वत्कृत्यमाह ॥

अब एक सौ बयाशी के सूक्त का आरम्भ है इस में प्रारम्भ से विद्वानों के कार्य को कहते हैं ॥

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः । धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

अभूत् । इदम् । वयुनम् । ओ इति । सु । भूषत । रथः । वृषण्ऽवान् । मदत । मनीषिणः । धियम्ऽजिन्वा । धिष्ण्या । विश्पलावसू इति । दिवः । नपाता । सुऽकृते । शुचिऽव्रता ॥ १ ॥

पदार्थः-(अभूत्) भवति (इदम्) (वयुनम्) प्रज्ञानम् (ओ) सम्बोधने (सु) (भूषत) अलंकुरुत । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (रथः) यानम् (वृषण्वान्) अन्ययानानां वेगशक्तिबन्धयिता (मदत) आनन्दत । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (मनीषिणः) मेधाविनः (धियंजिन्वा) यौ धियं प्रज्ञां जिन्वतः प्रीणीतस्तौ (धिष्ण्या) दृढौ प्रगल्भौ (विश्पलावसू) विशां पालयितारौ च तौ वासकौ (दिवः) प्रकाशस्य (नपाता) प्रपातरहितौ (सुकृते) शोभने मार्गे (शुचिव्रता) पवित्रकर्मशीलौ ॥ १ ॥

अन्वयः—ओ मनीषिणो याभ्यामिदं वयुनमभूदुत्पन्नं स्यात् । वृषण्वान्रथश्चाभूत्तौ सुकृते धियंजिन्वा दिवो नपाता धिष्ण्या शुचिव्रता विश्पलावसू अध्यापकोपदेशकौ यूयं सुभूषत तत्सङ्गेन मदत ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या न तौ वराऽध्यापकोपदेशकौ ययोः सङ्गेन प्रजापालनसुशीलतेश्वरधर्मशिल्पव्यवहारविद्या न वर्द्धेरन् ॥ १ ॥

पदार्थः—(ओ) ओ (मनीषिणः) धीमानो जिन से (इदम्) यह (वयुनम्) उत्तम ज्ञान (अभूत्) हुआ और (वृषण्वान्) और यानों की वेग शक्ति को बांधने वाला (रथः) रथ हुआ उन (सुकृते) सुकर्मरूप शोभन मार्ग में (धियंजिन्वा) बुद्धि को तृप्त रखते (दिवः) विद्यादि प्रकाश के (नपाता) पतन से रहित (धिष्ण्या) दृढ़ प्रगल्भ (शुचिव्रता) पवित्र कर्म करने के स्वभाव से युक्त (विश्पलावसू) प्रजा जनों की पालना करने और बसाने वाले अध्यापक और उपदेशकों को तुम (सु, भूषत) सुशोभित करो और उन के संग से (मदत) आनन्दित होओ ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो वे श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक नहीं हैं कि जिन के संग से प्रजा पालना, सुशीलता, ईश्वर धर्म, और शिल्प व्यवहार की विद्या न बढ़ें ॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्र॑तमा हि धिष्ण्या॑ म॒रुत्त॑मा द॒स्रा दंसि॑ष्ठा र॒थ्या॑ र॒थीत॑मा । पू॒र्णं रथं॑ वहेथे॒ मध्व॒ आचि॑तं॒ तेन॑ दा॒श्वांस॒मुप॑ याथो अ॒श्विना ॥ २ ॥

इन्द्र॑ऽतमा । हि । धिष्ण्या॑ । म॒रुत्ऽत॑मा । द॒स्रा । दंसि॑ष्ठा । र॒थ्या॑ । र॒थिऽत॑मा । पू॒र्णम् । रथ॑म् । व॒हे॒थे॒ इति॑ । मध्वः॑ । आऽचि॑तम् । तेन॑ । दा॒श्वांस॑म् । उप॑ । या॒थः॒ । अ॒श्वि॒ना ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्रतमा) अतिशयेनैश्वर्ययुक्तौ (हि) (धिष्ण्या) प्रगल्भौ (मरुत्तमा) अतिशयेन विद्वद्युक्तौ (दस्रा) दुःखोपक्षयितारौ (दंसिष्ठा) अतिशयेन दंसितारौ पराक्रमिणौ (रथ्या) रथेषु साधू (रथीतमा) प्रशंसितरथयुक्तौ (पूर्णम्) (रथम्) रमणीयं यानम् (वहेथे) प्राप्नुथः (मध्वः) मधुना तृतीयार्थे षष्ठी (आचितम्) सहितम् (तेन) (दाश्वांसम्) विद्यादातारम् (उप) (याथः) प्राप्नुथः (अश्विना) विद्युत्पवनाविव सकलविद्याव्यापिनौ ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अश्विना यौ युवां हीन्द्रतमा धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा स्थः । मध्व आचितं पूर्णं शस्त्रास्त्रैः परिपूर्णं यं रथं वहेथे तेन दाश्वांसमुपयाथस्तावस्माभिर्नित्यं सत्कर्त्तव्यौ ॥ २ ॥

भावार्थः—ये विद्युदग्निजलवायुभिश्चालितं रथमास्थाय देशदेशान्तरं गच्छन्ति तेऽखंधनविजया जायन्ते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापकोपदेशक जनो (हि) तुम्ही (इन्द्रतमा) अतीवऐश्वर्ययुक्त (धिष्ण्या) प्रगल्भ (मरुत्तमा) अत्यन्त विद्वानों को साथ लिये हुए (दस्रा) दुःख के दूर करने वाले (दंसिष्ठा) अतीव पराक्रमी (रथ्या) रथ चलाने में श्रेष्ठ और (रथीतमा) प्रशंसित पराक्रमयुक्त हो और (मध्वः) मधु से (आचितम्) भरे हुए (पूर्णम्) शस्त्र और अस्त्रों से परिपूर्ण जिस (रथम्) रथ को (वहेथे) प्राप्त होते हो (तेन) और उस से (दाश्वांसम्) विद्या देने वाले जन के (उप, याथः) समीप जाते हो वे हम लोगों को नित्य सत्कार करने योग्य हो ॥ २ ॥

भावार्थः—जो बिजुली अग्नि जल और वायु इन से चलाये हुए रथ पर स्थित हो देशदेशान्तर को जाते हैं वे परिपूर्ण धन जीतने वाले होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते । अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥

किम् । अत्र । दस्रा । कृणुथः । किम् । आसाथेइति । जनः । यः । कः । चित् । अहविः । महीयते । अति । क्रमिष्टम् । जुरतम् । पणेः । असुम् । ज्योतिः । विप्राय । कृणुतम् । वचस्यवे ॥ ३ ॥

पदार्थः—(किम्) (अत्र) अस्मिन् व्यवहारे (दस्रा) दुःखोपक्षयितारौ (कृणुथः) (किम्) (आसाथे) उपविशथः (जनः) मनुष्यः (यः) (कः) (चित्) अपि (अहविः) अविद्यमानं हविरादानमदनं वा यस्य सः (महीयते) आत्मानं त्यागबुद्ध्या बहु मनुते (अति) (क्रमिष्टम्) अतिक्रमणं (जुरतम्) रुजतं नाशयतम् (पणेः) सदसद्व्यवहर्त्तुः (असुम्) प्रज्ञाम् (ज्योतिः) प्रकाशम् (विप्राय) मेधाविने (कृणुतम्) (वचस्यवे) आत्मनो वचइच्छवे ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे दस्राऽध्यापकोपदेशकौ युवां यः कश्चिदहविर्जनो महीयते तस्मै वचस्यवे विप्राय ज्योतिः कृणुतम् । पणेरसुमातिक्रमिष्टं जुरतं च किमत्रासाथे किं कृणुथश्च ॥ ३ ॥

भावार्थः—अध्यापकाऽध्येतारौ यथाऽप्तो विद्वान् सर्वेषां सुखाय प्रयतते तथा वर्त्तेयाताम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (दस्रा) दुःख के नाश करने वाले अध्यापक उपदेशको तुम (यः) जो (कः, चित्) कोई ऐसा है कि (अहविः) जिस के लेना वा भोजन करना नहीं विद्यमान हैं वह (जनः) मनुष्य (महीयते) अपने को त्याग बुद्धि से बहुत कुछ मानता है उस (वचस्यवे) अपने को वचन की इच्छा करते हुए (विप्राय) मेधावी उत्तम धीर बुद्धि पुरुष के लिये (ज्योतिः) प्रकाश (कृणुतम्) करो अर्थात् विद्यादि सद्गुणों का आविर्भाव करो और (पणेः) सत् और असत् पदार्थों का व्यवहार करने वाले जन की (असुम्) बुद्धि को (अति, क्रमिष्टम्) अति क्रमण करो और (जुरतम्) नाश करो अर्थात् उस की अच्छे काम में लगने वाली बुद्धि को विवेचन करो और असत् काम में लगी हुई बुद्धि को विनाशो तथा (किम्) क्या (अत्र) इस व्यवहार में (आसाथे) स्थिर होते और (किम्) क्या (कृणुथः) करते हो ? ॥ ३ ॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक जैसे आप्त विद्वान् सब के सुख के लिये उत्तम यत्न करता है वैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना। वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥

जम्भयतम् । अभितः । रायतः । शुनः । हतम् । मृधः । विदथुः । तानि । अश्विना । वाचंऽवाचम् । जरितुः । रत्निनीम् । कृतम् । उभा । शंसम् । नासत्या । अवतम् । मम ॥४॥

पदार्थः—(जम्भयतम्) विनाशयतम् (अभितः) सर्वतः (रायतः) शब्दयतः (शुनः) कुक्कुरान् (हतम्) नाशयतम् (मृधः) सङ्ग्रामान् (विदथुः) विजानीथः (तानि) वचांसि (अश्विना) विद्याबलव्यापिनौ (वाचंवाचम्) (जरितुः) स्तोतुरध्यापकादुपदेशकात् (रत्निनीम्) रमणीयाम् (कृतम्) कुरुतम् (उभा) (शंसम्) स्तुतिम् (नासत्या) अविद्यमानसत्यौ (अवतम्) (मम) ॥ ४ ॥

अन्वयः-हे नासत्याश्विना यौ युवां शुनो रायतो दुष्टानभितो जम्भयतं मृधो हतं तानि विदथुर्जरितू रत्निनीं वाचंवाचञ्च विदथुः। शंसं कृतं तावुभा मम वाणीमवतम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—येषां दुष्टबन्धने शत्रुविजये विद्वदुपदेशस्वीकारे च सामर्थ्यमस्ति त एवास्माकं रक्षकाः सन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार वर्त्तने और (अश्विना) विद्या बल में व्याप्त होने वाले सज्जनो जो तुम (रायतः) भौंकते हुए मनुष्यभक्षी दुष्ट (शुनः) कुत्तों को (अभितः, जम्भयतम्) सब ओर से विनाशो तथा (मृधः) संग्रामों को (हतम्) विनाशो और (तानि) उन सब कामों को (विदथुः) जानते हो तथा (जरितुः) स्तुति प्रशंसा करने वाले अध्यापक और उपदेशक से (रत्निनीम्) रमणीय (वाचंवाचम्) वाणी २ को जानते हो और (शंसम्) स्तुति (कृतम्) करो वे (उभा) दोनों तुम (मम) मेरी वाणी को (अवतम्) तृप्त करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—जिन का दुष्टों के बांधने शत्रुओं के जीतने और विद्वानों के उपदेश के स्वीकार करने में सामर्थ्य है वे ही हम लोगों के रक्षक होते ॥ ४ ॥

अथ प्रकृतविषये नौकाविमानादिनिर्माणविषयमाह ॥

अब प्रकरणगत विषय में नौका और विमानादि बनाने के वि० ॥

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् । येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥ २७ ॥

युवम् । एतम् । चक्रथुः । सिन्धुषु । प्लवम् । आत्मन्ऽवन्तम् । पक्षिणम् । तौग्र्याय । कम् । येन । देवऽत्रा । मनसा । निःऽऊहथुः । सुऽपप्तनी । पेतथुः । क्षोदसः । महः ॥ ५ ॥ २७ ॥

पदार्थः—(युवम्) (एतम्) (चक्रथुः) कुर्य्यातम् (सिन्धुषु) नदीषु समुद्रेषु वा (प्लवम्) प्लवन्ते पारावारौ गच्छन्ति येन तं नौकादिकम् (आत्मन्वन्तम्) स्वकीयजनयुक्तम् (पक्षिणम्) पक्षौ विद्यन्ते यस्मिंस्तम् (तौग्र्याय) तुग्रेषु बलिष्ठेषु भवाय (कम्) सुखकारिणम् (येन) (देवत्रा) देवेष्विति (मनसा) विज्ञानेन (निरूहथुः) नितरां वाहयेतम् (सुपप्तनी) शोभनं पतनं गमनं ययोस्तौ (पेतथुः) पतेतम् (क्षोदसः) जलस्य (महः) महतः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अश्विना युवं युवां सिन्धुषु तौग्र्यायैतमात्मन्वन्तं पक्षिणं कं प्लवं चक्रथुः । येन देवत्रा मनसा सुपप्तनी निरूहथुर्महः क्षोदसः पेतथुः ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये विस्तीर्णा दृढा नावो रचयित्वा समुद्रस्य मध्ये गमनाऽऽगमने कुर्वन्ति ते स्वयं सुखिनो भूत्वाऽन्यान् सुखयन्ति॥५॥

पदार्थः—हे उक्त गुण वाले अध्यापकोपदेशको (युवम्) तुम (सिन्धुषु) नदी वा समुद्रों में (तौग्र्याय) बलवानों में प्रसिद्ध हुए जन के लिये (एतम्) इस (आत्मन्वन्तम्) अपने जनों से युक्त (पक्षिणम्) और पक्ष जिस में विद्यमान ऐसे (कम्) सुखकारी (प्लवम्) उस नौकादि यान को जिस से पार अवार अर्थात् इस पार उस पार जाते हैं (चक्रथुः) सिद्ध करो कि (येन) जिस से (देवत्रा) देवों में (मनसा) विज्ञान के साथ (सुपप्तनी) जिन का सुन्दर गमन है वे आप (निरूहथुः) निरन्तर उस नौकादि यान को वहाइये और (महः) बहुत (क्षोदसः) जल के (पेतथुः) पार जावें ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो जन लम्बी चौड़ी ऊंची नावों को रच के समुद्र के बीच जाना आना करते हैं वे आप सुखी हो कर औरों को सुखी करते हैं ॥ ५ ॥

पुनर्नौकादियानविषयमाह ॥
फिर नौकादि यान विषय को अ० ॥

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् । चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥

अवऽविद्धम् । तौग्र्यम् । अप्ऽसु । अन्तः । अनारम्भणे । तमसि । प्रऽविद्धम् । चतस्रः । नावः । जठलस्य । जुष्टाः । उत् । अश्विऽभ्याम् । इषिताः । पारयन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—(अवविद्धम्) अवताडितम् (तौग्र्यम्) बलादातृषु भवम् (अप्सु) जलेष्वन्तरिक्षे वा (अन्तः) मध्ये (अनारम्भणे) अविद्यमानमारम्भणं यस्य तस्मिन् (तमसि) अन्धकारे (प्रविद्धम्) प्रकर्षेण व्यथितम् (चतस्रः) एतत्सङ्ख्याकाः (नावः) पार्श्वस्था नौकाः (जठलस्य) जठरस्य उदरस्य मध्ये (जुष्टाः) सेविताः (उत्) (अश्विभ्याम्) वाय्वग्निभ्याम् (इषिताः) प्रेरिताः (पारयन्ति) पारं गमयन्ति ॥ ६ ॥

अन्वयः—या अश्विभ्यामिषिता एकैकस्या अभितश्चतस्रो नावो जठलस्य मध्यइव समुद्रे जुष्टा अनारम्भणे तमसि प्रविद्धमप्स्वन्तरवविद्धन्तौग्र्यमुत्पारयन्ति ता विद्वद्भिर्निर्मातव्याः ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्या यदा नौकायां स्थित्वा समुद्रमार्गेण गन्तुमिच्छेयुस्तदा महत्या नावा सह ह्रस्वाः सम्बद्ध्य समुद्रमध्ये गमनागमने कुर्युः ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो (अश्विभ्याम्) वायु और अग्नि से (इषिताः) प्रेरणा दिई हुई अर्थात् पवन और अग्नि के बल से चली हुई एक २ चौतरफी (चतस्रः) चार २ (नावः) नावें (जठलस्य) उदर के समान समुद्र में (जुष्टाः) सेवन किई हुई (अनारम्भणे) जिस का अविद्यमान आरम्भण उस (तमसि) अन्धकार में (प्रविद्धम्) अच्छे प्रकार व्यथित (अप्सु) जलों के (अन्तः) भीतर (अवविद्धम्) विशेष पीड़ा पाये हुए (तौग्र्यम्) बल को ग्रहण करने वालों में प्रसिद्ध जन को (उत्पारयन्ति) उत्तमता से पार पहुंचाती हैं वे विद्वानों को बनानी चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य जब नौका में बैठ के समुद्र के मार्ग से जाने की इच्छा करें तब बड़ी नाव के साथ छोटी २ नावें जोड़ समुद्र में जाना आना करें ॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् । पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥

कः । स्वित् । वृक्षः । निःऽस्थितः । मध्ये । अर्णसः । यम् । तौग्र्यः । नाधितः । परिऽअसस्वजत् । पर्णा । मृगस्य । पतरोःऽइव । आऽरभे । उत् । अश्विना । ऊहथुः । श्रोमताय । कम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(कः) (स्वित्) प्रश्ने (वृक्षः) (निष्ठितः) नितरां स्थितः (मध्ये) (अर्णसः) जलस्य (यम्) (तौग्र्यः) तुग्रेषु बलवत्सु भवः (नाधितः) उपतप्तः (पर्यषस्वजत्)

परिष्वजति (पर्णा) पर्णानि (मृगस्य) मार्जयितुं योग्यस्य (पतरोरिव) गन्तुरिव (आरभे) आरब्धुम् (उत्) ऊर्ध्वे (अश्विना) जलाग्नी इव निर्मातृवोढारौ (ऊहथुः) वहतः (श्रोमताय) प्रशस्तकीर्त्तियुक्ताय व्यवहाराय (कम्) ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे अश्विनावर्णसो मध्ये कः स्विद्वृत्तो निष्ठितो यं नाधितस्तौग्र्यः पर्य्यषस्वजन्मृगस्य पतरोरिव पर्णा श्रोमतायारभे कमुदूहथुः ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—हे नौयायिनोऽर्णवस्य मध्ये कश्चिद्वृत्तोऽस्ति यस्मिन् बद्धा नौकास्तिष्ठेयुरिति । न तत्र वृत्तो नाप्यन्याधारः किन्तु नावएवाऽऽधारोऽरित्राण्येव स्तम्भनानि । एवमेव यथा पक्षिण ऊर्ध्वं गत्वाऽधः पतन्ति तथैव विमानानि सन्तीत्युत्तरम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) जल और अग्नि के समान विमानादि यानों के रचने और पहुंचाने वाले विद्वानो (अर्णसः) जल के (मध्ये) बीच में (कः, स्वित्) कौन (वृत्तः) वृक्ष (निष्ठितः) निरन्तर स्थिर हो रहा है (यम्) जिस को (नाधितः) कष्ट को प्राप्त (तौग्र्यः) बलवानों में प्रसिद्ध हुआ पुरुष (पर्यषस्वजत्) लगता अर्थात् जिस में अटकना है और (मृगस्य) शुद्ध करने योग्य (पतरोरिव) जाते हुए प्राणी के (पर्णा) पंखों के समान (श्रोमताय) प्रशस्त कीर्त्तियुक्त व्यवहार के लिये (आरभे) आरम्भ करने को (कम्) कौन यान को (उत्, ऊहथुः) ऊपर के मार्ग से पहुंचाते हो ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे नौका पर जाने वालो समुद्र में कोई वृक्ष है जिस में बंधी हुई नौका स्थिर हो वहां नहीं वृक्ष और न

और आधार है किन्तु नौका ही आधार वली हीं खम्भे हैं ऐसे ही जैसे पखेरू ऊपर को जाय फिर नीचे आते हैं वैसे ही विमानादि यान हैं ॥ ७ ॥

पुनः साधारणतयाऽध्यापकोपदेशकविषयमाह ॥

फिर साधारण भाव से अध्यापक और उपदेशक के वि० ॥

तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् । अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ २८ ॥

तत् । वाम् । नरा । नासत्यौ । अनु । स्यात् । यत् । वाम् । मानासः । उचथम् । अवोचन् । अस्मात् । अद्य । सदसः । सोम्यात् । आ । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ८ ॥ २८ ॥

पदार्थः—(तत्) (वाम्) युवयोः (नरा) नेतारौ (नासत्यौ) असत्याचारविरहितौ (अनु) (स्यात्) (यत्) (वाम्) युवयोः (मानासः) विज्ञानवन्तः (उचथम्) वक्तुं योग्यम् (अवोचन्) कथयेयुः (अस्मात्) (अद्य) (सदसः) सभातः (सोम्यात्) सोमगुणसम्पन्नात् (आ) (विद्याम) (इषम्) इच्छासिद्धिम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवनोपायम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे नरा नासत्यौ यद्वां युवयोरिष्टमनुष्यात्तद्वां भवतु मानासो यदुचथमवोचंस्तद्युवां गृह्णीयाताम् । यथाऽद्यास्मात्सोम्यात्सदस इषं वृजनं जीरदानुं वयमाविद्याम तथैतद्युवामप्याप्नुतम् ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यस्येदं समुचितमस्ति यत्स्वार्थमिच्छेत्परार्थमपीच्छेत् । विद्वांसो यद्यदुपदिशेयुस्तत्तत्प्रीत्या सर्वे गृह्णीयुरिति ॥ ८ ॥

अत्र विद्वत्कृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति द्व्यशीत्युत्तरं शततमं सूक्तमष्टादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (नरा) नायक अग्रगामी (नासत्यौ) असत्य आचरण से रहित अध्याकोपदेशको (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों को (अनु, स्यात्) चाहते हुए के अनुकूल हो (तत्) वह आप लोगों को हो अर्थात् परिपूर्ण हो और (मानासः) विचारशील सज्जन पुरुष (यत्) जिस (उचथम्) कहने योग्य विषय को (अवोचन्) कहें उस को तुम दोनों ग्रहण करो जैसे (अद्य) आज (अस्मात्) इस (सोम्यात्) सोम गुण सम्पन्न (सदसः) सभा स्थान से (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल (जीरदानुम्) जीवन के उपाय को हम लोग (आ) (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य को यह अच्छे प्रकार उचित है कि जो अपने प्रयोजन को चाहे तथा परोपकार भी चाहें और विद्वान् जन जिस २ का उपदेश करें उस २ को प्रीति से सब लोग ग्रहण करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ बयासी का सूक्त और अट्ठाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

तमित्यस्य षड़ृचस्य त्र्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य।
अगस्त्य ऋषिः। अश्विनौ देवते।१।४।६
निचृत् त्रिष्टुप्।२।३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः।५ भुरिक् पङ्क्ति-
श्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ विद्वच्छिल्पविद्यागुणानाह॥

अब एक सौ तिरासी सूक्त का आरम्भ है उस के आरम्भ से
विद्वान् की शिल्प विद्या के गुणों का वि०॥

तं यु॑ञ्जाथां॒ मन॑सो॒ यो जवी॑यान् त्रिवन्धु॒रो वृ॑षणा॒ यस्त्रि॑च॒क्रः। येनो॑पया॒थः सु॒कृतो॑ दु॒रो॒णं त्रि॒धातु॑ना पतथो॒ विर्न प॒र्णैः॥१॥

तम्। यु॒ञ्जा॒था॒म्। मन॑सः। यः। जवी॑यान्। त्रि॒ऽव॒न्धु॒रः। वृ॒ष॒णा॒। यः। त्रि॒ऽच॒क्रः। येन॑। उ॒प॒ऽया॒थः। सु॒ऽकृतः॑। दु॒रो॒णम्। त्रि॒ऽधातु॑ना। प॒त॒थः। विः। न। प॒र्णैः॥१॥

पदार्थः—(तम्) (युञ्जाथाम्) (मनसः) (यः) (जवीयान्) अतिशयेन वेगवान् (त्रिवन्धुरः) त्रयो वन्धुरा यस्मिन् सः (वृषणा) बलिष्ठौ (यः) (त्रिचक्रः) त्रीणि चक्राणि यस्मिन् सः (येन) (उपयाथः) समीपं प्राप्नुतः (सुकृतः) धर्मात्मनः (दुरोणम्) गृहम् (त्रिधातुना) त्रयो धातवो यस्मिँस्तेन (पतथः) गच्छथः (विः) पक्षी (न) इव (पर्णैः) पक्षैः॥१॥

अन्वयः—हे वृषणाऽश्विनौ विद्वांसौ युवां यः पर्णैर्विर्न मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो यस्त्रिचक्रो येन त्रिधातुना सुकृतो दुरोणमुपयाथः सद्यः पतथस्तं युञ्जाथाम्॥१॥

भावार्थः—ये शीघ्रं गमयितारं पक्षिवदाकाशे गमनसाधनं साङ्गोपाङ्गसुरचितं यानं न साध्नुवन्ति ते कथमैश्वर्यं लभेरन्? ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (वृषणा) बलवान् सर्व विद्या सम्पन्न शिल्पविद्या के अध्यापकोपदेशको तुम (यः) जो (पर्णैः) पंखों से (विः, न) पखेरू के समान (मनसः) मन से (जवीयान्) अत्यन्त वेग वाला (त्रिवन्धुरः) और तीन बन्धन जिस में विद्यमान (यः) तथा जो (त्रिचक्रः) तीन चक्कर वाला रथ है (येन) जिस (त्रिधातुना) तीन धातुओं वाले रथ से (सुकृतः) धर्मात्मा पुरुष के (दुरोणम्) घर को (उपयाथः) निकट जाते हो (तम्) उस को (युञ्जाथाम्) जोड़ो जोतो ॥ १ ॥

भावार्थः—जो शीघ्र ले जाने और पखेरू के समान आकाश में चलाने वाले साङ्गोपाङ्ग अच्छे बने हुए रथ को नहीं सिद्ध करते हैं वे कैसे ऐश्वर्य को पावें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे। वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥

सुऽवृत्। रथः। वर्त्तते। यन्। अभि। क्षाम्। यत्। तिष्ठथः। क्रतुऽमन्ता। अनु। पृक्षे। वपुः। वपुष्या। सचताम्। इयम्। गीः। दिवः। दुहित्रा। उषसा। सचेथे इति ॥ २ ॥

पदार्थः—(सुवृत्) यस्सुवर्त्तुमर्हः (रथः) रन्तुं योग्यः (वर्त्तते) (यन्) गच्छन् । इण् धातोः शतृप्रत्ययो यणादेशश्च (अभि-) अभितः (क्षाम्) पृथिवीम् (यत्) यस्मिन् (तिष्ठथः) (क्रतुमन्ता) बहुप्रज्ञायुक्तौ (अनु) (पृक्षे) संपर्के (वपुः) रूपम् (वपुष्या) वपुषि भवानि (सचताम्) (इयम्) (गीः) सुशिक्षिता वाक् (दिवः) सूर्य्यस्य (दुहित्रा) या कन्येव वर्त्तमाना तया (उषसा) प्रभातवेलया (सचेथे) संयुङ्क्थः ॥२॥

अन्वयः—हे क्रतुमन्ता यानसाधकचालकौ युवां सुवृद्रथः क्षां यन्नभि वर्त्तते यत्पृक्षे युवां तिष्ठथो यद्वपुरस्ति तेन वपुष्यानु सचतां यथेयं गीर्वक्ता च दिवो दुहित्रोपसा सह युवां सचेथे तथा कथन्न भाग्यशालिनौ भवथः ? ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्या येन यानेन गन्तुमिच्छेयुस्तत्सुन्दरं पृथिव्यादिषु सद्योगमनयोग्यमुषाइव प्रकाशमानं यथा तथा सुविचारेण रचयन्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (क्रतुमन्ता) बहुत उत्तम बुद्धि युक्त रथों के चलाने और सिद्ध करने वाले विद्वानो तुम (सुवृत्) सुन्दरता से स्वीकार करने (रथः) और रमण करने योग्य रथ (क्षाम्) पृथिवी को (यन्) जाता हुआ (अभि) सब ओर से (वर्त्तते) वर्त्तमान है (यत्) जिस में (पृक्षे) दूसरों के सम्बन्ध में तुम लोग (तिष्ठथः) स्थिर होते हो और जो (वपुः) रूप है अर्थात् चित्रसा बन रहा है उस सब से (वपुष्या) सुन्दर रूप में प्रसिद्ध हुए व्यवहारों का (अनु, सचताम्) अनुकूलता से सम्बन्ध करो । और जैसे (इयम्) यह (गीः) सुशिक्षित वाणी और कहने वाला पुरुष (दिवः) सूर्य की (दुहित्रा) कन्या के समान वर्त्तमान (उषसा) प्रभात वेला से तुम दोनों को (सचेथे) संयुक्त होते हैं वैसे कैसे न तुम भाग्यशाली होते हो? ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य जिस यान से जाने को चाहें वह सुन्दर पृथिव्यादिकों में शीघ्र चलने योग्य प्रभात वेला के समान प्रकाशमान जैसे वैसे अच्छे विचार से बनावें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्त्तते हविष्मान्। येन नरा नासत्येषयध्यै वर्त्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥

आ । तिष्ठतम् । सुऽवृतम् । यः । रथः । वाम् । अनु । व्रतानि । वर्त्तते । हविष्मान् । येन । नरा । नासत्या । इषयध्यै । वर्तिः । याथः । तनयाय । त्मने । च ॥ ३ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (तिष्ठतम्) (सुवृतम्) यः सुष्ठु सर्वाङ्गैः शोभनस्तम् (यः) (रथः) (वाम्) युवाम् (अनु) (व्रतानि) शीलानि (वर्त्तते) (हविष्मान्) बह्वद्यादिपदार्थयुक्तः (येन)(नरा) नेतारौ (नासत्या) सत्यविद्याक्रियौ (इषयध्यै) एषयितुं गमयितुम् (वर्त्तिः) मार्गम् (याथः) गच्छथः (तनयाय) सन्तानाय (त्मने) आत्मनि (च) ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे नरा नासत्या यो हविष्मान् रथो वामनु वर्त्तते येनेषयध्यै व्रतानि वर्द्धयित्वा तनयाय त्मने च वर्त्तिर्याथस्तं सुवृतं रथं युवामातिष्ठतम् ॥ ३ ॥

भावार्थ- मनुष्याः स्वस्य सन्तानादीनाञ्च सुखोन्नतये सुदृढेन विस्तीर्णेन साङ्गोपाङ्गसामग्र्या पूर्णेन सद्यो गामिना भक्ष्यभोज्य-लेह्यचूष्यैर्युक्तेन रथेन भूसमुद्राकाशमार्गेषु प्रसमाहिततया गच्छे-युरागच्छेयुश्च ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (नरा) अग्रगामी नायक (नासत्या) सत्य विद्या क्रिया युक्त पुरुषो (यः) जो (हविष्मान्) बहुत खाने योग्य पदार्थों वाला (रथः) रथ (वाम्) तुम दोनों के (अनु, वर्त्तते) अनुकूल वर्त्तमान है (येन) जिस से (इषयध्यै) ले जाने को (व्रतानि) शील उत्तम भावों को बढा कर (तन-याय) सन्तान के लिये (च) और (त्मने) अपने लिये भी (वर्त्तिः) मार्ग को (याथः) जाते हो (सुवृतम्) उस सर्वांग सुन्दर रथ को तुम दोनों (आ, तिष्ठतम्) अच्छे प्रकार स्थिर होओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्य अपने सन्तानों की सुखोन्नति के लिये अच्छा दृढ़ लंबे चौड़े सांगोपांग सामग्री से पूर्ण शीघ्र चलने वाले भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य अर्थात् चट पट खाने उत्तमता से धीरज में खाने चाटने और चूषने योग्य पदार्थों से युक्त रथ से पृथिवी समुद्र और आकाश मार्गों में अतिउत्तमता से सावधानी के साथ जावें और आवें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

मा वां वृको मा वृकीरा दंधर्षीन्मा परिं वर्क्त-मुत माति धक्तम् । अयं वां भागो निहिंत इयं गीर्दस्त्राविमे वां निधयो मधूंनाम् ॥ ४ ॥

मा । वाम् । वृकः । मा । वृकीः । आ । दधर्षीत् । मा । परिं । वर्क्तम् । उत । मा । अतिं । धक्तम् । अयम् । वाम् ।

भागः । निऽहितः । इयम् । गीः । दस्रौ । इमे । वाम् । निऽधयः । मधूनाम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(मा) निषेधे (वाम्) युवाम् (वृकः) स्तेनः (मा) (वृकीः) स्तेनस्य स्त्रीः । अत्र पूर्वसवर्णादेशः (आ) अपि च (दधर्षीत्) धर्षेत् (मा) (परि) (वर्क्तम्) त्यजतम् (उत) अपि (मा) (अति) (धक्तम्) दहतम् (अयम्) (वाम्) युवयोः (भागः) भजनीयोधिकारः (निहितः) स्थापितः (इयम्) (गीः) आज्ञप्ता वाक् (दस्रौ) दुःखोपक्षयितारौ (इमे) (वाम्) युवयोः (निधयः) राशयः (मधूनाम्) मधुरादिगुणयुक्तानां सोमादिपदार्थानाम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे दस्रौ वामिमे मधूनां निधयो वामयं भागो निहित इयं गीश्चास्ति । युवामस्मान् मा परिवर्क्तमुतापि मातिधक्तं येन वां वृको मा वृकीर्मा दधर्षीत् । तमुपायं युवां सदा नितिष्ठताम् ॥४॥

भावार्थः—मनुष्या यदा गृहे निवसेयुर्यानेष्वरण्ये वा प्रतिष्ठेरँस्तदा भोगोपभोगयोग्यान् पदार्थान् शस्त्रास्त्राणि वीरसेनाश्च संस्थाप्य निवसेयुर्गच्छेयुर्वा यतः कश्चिदपि विघ्नो न स्यात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (दस्रौ) दुःखनाशक शिल्पविद्याऽध्यापक उपदेशको (वाम्) तुम दोनों के (इमे) ये (मधूनाम्) मधुरादि गुण युक्त पदार्थों के (निधयः) राशी समूह (वाम्) तुम दोनों का (अयम्) यह (भागः) सेवने योग्य अधिकार (निहितः) स्थापित और (इयम्) यह (गीः) वाणी है तुम दोनों हम को (मा, परि, वर्क्तम्) मत छोड़ो (उत) और (मा, अति, धक्तम्) मत विनाशो और जिस से (वाम्) तुम दोनों को (वृकः) चोर, ठग,

गठकटा आदि दुष्ट जन (मा) मत (वृकीः) चोरी ठगी गठकटी आदि दुष्ट औरतें (मा, आ, दधर्षीत्) मत विनाशें मत नष्ट करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य जब घर में निवास करें वा यानों में और बन में प्रतिष्ठित होवें तब भोग करने के लिये पूर्ण भोग और उपभोग योग्य पदार्थों शस्त्र वा अस्त्रों और वीरसेना को संस्थापन कर निवास करें वा जावें जिस से कोई विघ्न न हो ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् । दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥

युवाम् । गोतमः । पुरुऽमीळ्हः । अत्रिः । दस्रा । हवते । अवसे । हविष्मान् । दिशम् । न । दिष्टाम् । ऋजुयाऽइव । यन्ता । आ । मे । हवम् । नासत्या । उप । यातम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(युवाम्) (गोतमः) मेधावी (पुरुमीढः) पुरुभिर्बहुभिः पदार्थैः सिक्तः (अत्रिः) सततं गामी (दस्रा) दुःखदारिद्र्यनाशकौ (हवते) गृह्णाति (अवसे) रक्षणाद्याय (हविष्मान्) प्रशंसितादेययुक्तः (दिशम्) (न) इव (दिष्टाम्) निदर्शिताम् (ऋजूयेव) ऋजुना मार्गेणेव। अत्र टा स्थाने यादेशः। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (यन्ता) नियमकर्त्ता (मे) (आ) मम (हवम्) दानम् (नासत्या) सत्यप्रियौ (उप) (यातम्) प्राप्नुतम्॥५॥

अन्वयः—हे दस्रा नासत्या युवां यो हविष्मान् पुरुमीढोऽत्रिर्गोतमोऽवसे हवते तद्वत् यन्ता ऋजूयेव दिष्टां दिशन्न च मे हवमुपयातम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा नौकादियानयायिनस्सरलेन मार्गेणोद्दिष्टां दिशं गच्छन्ति तथा जिज्ञासव आप्तानां विदुषां सामीप्यं गच्छेयुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (दस्रा) दुःख दारिद्र्य विनाशने (नासत्या) सत्य प्रिय शिल्पविद्याऽध्यापकोपदेशक विद्वानो (युवाम्) तुम दोनो (यः) जो (हविष्मान्) प्रशंसित ग्रहण करने योग्य (पुरुमीढः) बहुत पदार्थों से सींचा हुआ (अत्रिः) निरन्तर गमनशील (गोतमः) मेधावी जन (अवसे) रक्षा आदि के लिये (हवते) उत्तम पदार्थों को ग्रहण करता है वैसे और जैसे (यन्ता) नियमकर्त्ता जन (ऋजूयेव) सरल मार्ग से जैसे तैसे (दिष्टाम्) निर्देश किई (दिशम्) पूर्वादि दिशा के (न) समान (मे) मेरे (हवम्) दान को (उप, आ, यातम्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे नौकादि यान से जाने वाले जन सरल मार्ग से बताई हुई दिशा को जाते हैं वैसे सीखने वाले विद्यार्थी जन आप्त विद्वानों के समीप जावें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि । एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ २९ ॥

अतारिष्म । तमसः । पारम् । अस्य । प्रति । वाम् । स्तोमः । अश्विनौ । अधायि । आ । इह । यातम् । पथिऽभिः । देवऽयानैः । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ६ ॥ २९ ॥

पदार्थः–(अतारिष्म) तरेम (तमसः) रात्रेः प्रकाशरहितस्य समुद्रस्य वा (पारम्) परतटम् (अस्य) (प्रति) (वाम्) युवयोर्युवां वा (स्तोमः) श्लाघ्यो व्यवहारः (अश्विनौ) शिल्पविद्याव्यापिनौ (अधायि) (आ) (इह) (यातम्) (पथिभिः) (देवयानैः) देवा यान्ति येषु तैः (विद्याम) (इषम्) (वृजनम्) (जीरदानुम्) ॥ ६ ॥

अन्वयः–हे अश्विनौ यथेह वां स्तोमोऽधायि तथा वां प्रत्यस्य तमसः पारमतारिष्म यथा वयमिषं वृजनं जीरदानुं विद्याम तथा युवां देवयानैः पथिभिरस्मानायातम् ॥ ६ ॥

भावार्थः–ये शिल्पविद्यावित्तमा भवेयुस्त एव नौकादियानैर्भूसमुद्रान्तरिक्षमार्गैः पारावारौ गमयितुं शक्नुवन्ति त एव विद्वन्मार्गेष्वऽग्न्यादियानैर्गन्तुं योग्या इति ॥ ६ ॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वच्छिल्पविद्यागुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति त्र्यशीत्युत्तरं शततमं सूक्तमेकोनत्रिंशो वर्गश्चतुर्थोऽध्यायश्च समाप्तः ॥

अस्मिन्नध्याये जन्ममरुदिन्द्राऽग्न्यश्विविमानादियानगुणवर्ण-नादेतदध्यायार्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

पदार्थः—हे (अश्विनौ) शिल्प विद्या व्यापी सज्जनो जैसे (इह) यहां (वाम्) तुम दोनों का (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अधायि) धारण किया गया वैसे तुम्हारे (प्रति) प्रति हम (अस्य) इस (तमसः) अन्धकार के (पारम्) पार को (अतारिष्म) तरें पहुचें जैसे हम (इषम्) इच्छा सिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें वैसे तुम दोनों (देवयानैः) विद्वान् जिन मार्गों से जाने उन (पथिभिः) मार्गों से हम लोगों को (आ, यातम्) प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो अतीव शिल्पविद्यावेत्ता जन हों वेही नौकादि यानों से भू समुद्र और अन्तरिक्ष मार्गों से पार अवार लेजा लेआ सकते हैं वेही विद्वानों के मार्गों में अग्नि आदि पदार्थों से बने हुए विमान आदि यानों से जाने को योग्य हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों की शिल्प विद्या के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ तिरासी का सूक्त और ऊनतीशवां वर्ग और चतुर्थाऽध्याय समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में जन्म, पवन, इन्द्र, अग्नि, अश्वि और विमानादि यानों के गुणों का वर्णन आदि होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछिले अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीमद्विर-जानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचा-र्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृता-र्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाऽष्टकस्य चतुर्थाऽध्यायः समाप्तः ॥

वैदिकयंत्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को ५०) वा इस से अधिक पर १०) रु० १००) वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जायं गे (३) डाक महसूल किसी से नलिया जायगा। (४) २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिष्टरी कर भेजे जायंगे (५) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें॥

ऋग्वेदभाष्य अं० १—८५	३१॥=)
यजुर्वेदभाष्य अं० १—८५	३१॥=)
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	
विना जिल्द की	५।/)
जिल्द की	६)
वर्णोच्चारण शिक्षा	/)
„ (डाकव्यय)	)॥
सन्धिविषय	॥)
नामिक	॥)
कारकीय	।=)
सामासिक	॥)
स्त्रैणताद्धित	१।)
अव्ययार्थ	=)
आख्यातिक	२।)
सौवर	=)
पारिभाषिक	।)
धातुपाठ	॥)
गणपाठ	।=)
उणादिकोष	॥)
निघण्टु	॥)
अष्टाध्यायी मूल	।=)

संस्कृतवाक्यप्रबोध	।)
व्यवहारभानु	।)
भ्रमोच्छेदन	/)
अनुभ्रमोच्छेदन	/)
मेलाचान्दापुर	=)
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)॥
गोकरुणानिधि	/)॥
स्वामीनारायण मतखण्डन संस्कृतगुजराती	=)
उक्त गुजराती	/)
वेदविरुद्धमतखण्डन	।)
शास्त्रार्थकाशी	=)
आर्य्याभिविनय	।/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	=)
भ्रान्तिनिवारण	=)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	।)
सत्यार्थप्रकाश	२॥)
„ (विना कमीशन)	
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।
„ (डाकव्यय अलग)	

रसीद मूल्य वेदभाष्य

बालगोविन्द जी प्रयाग १)

विज्ञापन

वैदिकयन्त्रालय से व्यवहार रखने वाले महाशयों से सविनय निवेदन है कि जो महाशय इस यन्त्रालय में मनी आर्डर भेजें वे मनीआर्डर पर लिख दिया करें कि यह दाम अमुक मद में भेजा जाता है अथवा तत्काल ब्यौरे का पत्र दिया करें जिस से खाता करने में विलम्ब न हो।

कृपाकांक्षी
ज्वालादत्त शर्मा
व्या० प्र० वै० यं०
प्रयाग